मर्यादा ।

सचित्र मासिक पत्रिका ।

नवां भाग, नवां खण्ड ।

माघ-ज्येष्ठ ।

(जनवरी—जून)

१६७१

वार्षिक मूल्य तीन रुपया ।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग ।

वर्णानुक्रमिक विषय-सूची ।

विषय पृष्ठ से पृष्ठ तक

विषय-सूची।

वीरबाला.

लक्समबर्गकी रानी।
आप अविवाहिता हैं और आपकी अवस्था २० वर्ष की है.

ब्रिटिश धावा.
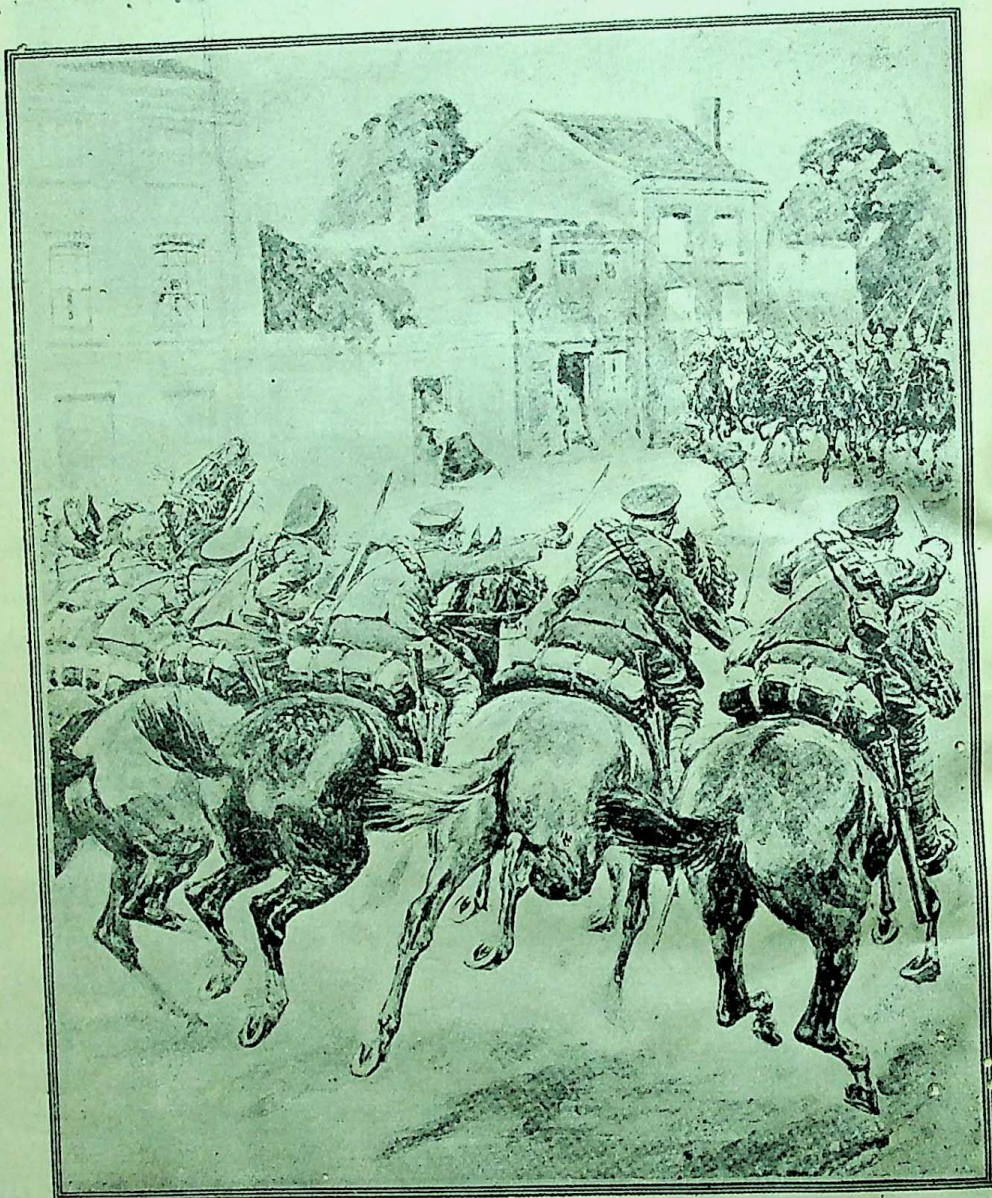
अचानक जर्मनोंको अपने सामनें पाकर ब्रिटिश वीर
धावा कर रहे हैं.

भाग ९] जनवरी सन् १९१५-माघ [संख्या १

हमारा नया वर्ष।

वर्षारंभ के दिन रूढ़ि के अनुसार प्रायः लोग जगन्नियन्ता जगदाधार की वन्दना करते हैं। वे लिखते हैं, उन्हीं की कृपा से आज पत्र या पत्रिका नूतन वर्ष में पदार्पण करती है। हम भी आज चार वर्षों से यही करते आये हैं किन्तु अबकी बार हम उसे दोहराना नहीं चाहते। आज हम शुष्क, नीरस शब्दों में यही कहकर "कि मर्यादा अब चार वर्ष की हुई" अपने कार्यभार से मुक्त होते हैं।

मर्यादा चार वर्ष की हुई; यह प्रसन्नता की बात है। अवस्था के अधिकार से अभी यह लालन-योग्य है। अब भी इसमें त्रुटियां अनेक हैं इसके लिए हम कुसूरवार हैं और ग्राहकों से क्षमा माँगते हैं।

यह सच है कि गत वर्ष में मर्यादा विगत वर्षों से अच्छी निकली, कई एक विशेष संख्याएं, जो शिक्षाप्रद और समयोपयोगी थीं, प्रकाशित की गई। श्रीमती उमादेवी नेहरू द्वारा सम्पादित "स्त्रियों की विशेष संख्या" और दक्षिण अफ्रिका नम्बर की इतनी मांग रही कि फाइल में रखने को भी वे संख्याएं नहीं नसीब हुई किन्तु साथ ही साथ "समय से प्रकाशित न होने का इसका दुःखदायी रोग" बढ़ गया और विशेषकर वर्ष के अन्तिम दिनों में इस रोग ने भीषण रूप धारण कर लिया था।

इसके लिए भी दोषी हमीं हैं, सम्पादक के नहीं वरन प्रबन्धकर्ता के नाते से। एक तो सदा के रोगी, दूसरे "अभ्युदय" के दैनिक रूप धारण करने से हमारा कर्तव्यभार कहीं अधिक होगया, रोज़ का काम स्थगित नहीं किया जा सकता लाचार मासिक का काम पिछड़ जाता था। अब इसका प्रबन्ध होगया है, अब कर्तव्य भार चार हाथों में रहेगा और आशा है कि "समय से न प्रकाशित होने के रोग" का हम मूलोच्छेद कर सकेंगे।

अब नूतन वर्ष भी जनवरी मास से माना जायगा। अधिक समय जो इधर मिला जाता है। उससे आशा है कि मर्यादा अब प्रति मास ठीक समय से अपने उदार, क्षमाशील और प्रेमी पाठकों की सेवा में उपस्थित होती रहेगी।

मर्यादा अन्य बातों में भी, आशा है, इस वर्ष अधिक उन्नति करेगी। मर्यादा का एक मात्र उद्देश्य राजनैतिक लेखों का प्रकाश करना तथा राजनैतिक सिद्धान्तों का प्रचार करना है। यद्यपि खुश होने की अभी बात नहीं है तथापि यह सन्तोष की बात अवश्य है कि अङ्गरेज़ो पढ़े हुए भाइयों का ध्यान अब मातृभाषा द्वारा अपने देशभाइयों की सेवा करने की ओर अधिक है। कितनों ही मित्रों ने इधर लेख लिख भेजे हैं और कितनों ही ने भेजने की प्रतिज्ञा की है। (प्रायः ऐसे ही लेखों की बाट जोहने के कारण भी मर्यादा के प्रकाशित होने में कभी २ विलंब हुआ है।)

इसके सिवा विशेष संख्याओं के प्रकाशित करने का भी विशेष प्रबन्ध हो रहा है और आशा है कि "स्त्रियों की विशेष संख्या" शीघ्रही प्रकाशित होगी। अन्य विशेष संख्याओं की विज्ञप्ति भी शीघ्रही प्रकाशित की जायगी।

अपने आदरास्पद लेखकों के प्रति हम मौखिक कृतज्ञता प्रकाश कर उनके भार से मुक्त होना नहीं चाहते। वे जानते हैं कि मर्यादा को उनका अभिमान है, वह उनसे गौरवान्वित है और उनके सामने वह सदा कृतज्ञताभार से नत है। किन्तु इस स्थिति में भी हम परम देशभक्त ला० लाजपतिराय जी के प्रति जो सहस्रों कामों के रहते हुए भी वर्ष में कितने ही लेख नाम से तथा बेनाम से भेजा करते हैं, बिना कृतज्ञता प्रकाश किये नहीं रह सकते। इसके कारण और भी हैं, जिनमें एक तो यह है कि दूर देश विलायत में बैठे हुए भी मर्यादा को उन्होंने नहीं बिसराया है और बिना किसी प्रकार की याद दिलाये ही वहां से इस संख्या में प्रकाशनार्थ एक लेख उन्होंने भेज दिया है। हमारे वे मित्र जिन्हें फुर्सत नहीं मिलती और कार्य की अधिकता के कारण जो सदा व्याकुल रहते हैं इस बात को ज़रा सोचें कि क्या लाला जी को काम कम है और क्या लाला जी को फुर्सत अधिक है? इसी समय में श्रीमती उमादेवी नेहरू को भी, जिन्होंने बड़ी कृपाकर "स्त्रियों की विशेष संख्या" का सम्पादन किया था, धन्यवाद देना हम अपना कर्तव्य समझते हैं। उस संख्या को देखकर पाठकों को विदित हुआ होगा कि श्रीमती जी को उस संख्या के लिए कितना परिश्रम उठाना पड़ा था। सभी प्रान्तों की महिलाओं से लेख मँगवाना, उनके अनुवाद का प्रबन्ध करना, उचित विषयों का चुनना यह सब काम सरल न था; किन्तु यह प्रसन्नता की बात है कि इस परिश्रम से घबड़ा जाने के स्थान में श्रीमती जी का अपनी भगनियों की सेवा करने का प्रेम और गाढ़ा होगया और उन्होंने स्त्रियों की एक दूसरी विशेष संख्या निकालने की सूचना उसी अङ्क में दे दी। हमें खेद है कि श्रीमती जी के अनेक बार कहने पर भी हम इस दूसरी संख्या को अभी तक नहीं प्रकाशित कर सके। आशा है अब हम शीघ्र ही इस संख्या को जिसमें अधिकतर "स्त्रियों के स्वत्व" सम्बन्धी लेख रहेंगे प्रकाशित कर सकेंगे।

सहृदय पाठकों से यह हमारी विनीत प्रार्थना है कि वे समय समय पर हमें बतलाते रहें कि वे क्या चाहते हैं, किस प्रकार के लेख अधिक लाभप्रद और रुचिकर होंगे। एक की राय निरंकुश शासन की भांति हेय है और मर्यादा उसका सदा विरोध करनेवाली है।

मर्यादा को शिक्षाप्रद, रुचिकर और शक्तिशालिनी बनाने को हम तैयार हैं किन्तु इसके लिए पाठकों की कमेटी होनी चाहिये जो हमें यह बताया करे कि अमुक बात की इस समय आवश्यकता है। पाठकों की कार्यकारिणी

सम्मिति का होना एक दुष्कर बात है। ऐसी अवस्था में यही उचित होगा कि प्रत्येक पाठक को यह पूरा अधिकार रहे कि वह अपनी उचित सम्मति लिख भेजे। यथाशक्ति उनकी सम्मति के अनुसार किया जायगा।

अब हमें कुछ अधिक नहीं कहना है। मर्यादा का उद्देश्य जनता में स्वतंत्रता, समता और भ्रातृभाव की स्थापना तथा अत्याचारों की चाहे वे सामाजिक, चाहे धार्मिक और चाहे सरकारी हों, विरोध करना है।

मनुष्यों को मनुष्योचित और मनुष्य-प्राप्त अधिकार प्राप्त कराना इसका लक्ष्य है और इसी लक्ष्य की ओर यह बढ़ती रहेगी। इन्हीं विचारों को शिरोधार्य कर मर्यादा आज पाँचवें वर्ष में प्रविष्ट होती है और आशा करती है कि अपने लेखकों और पाठकों की सहायता से वह अपने प्रयत्न में सफलता प्राप्त करेगी।

विजयादशमी के दिन माता को नमस्कार।*

माता! आज विजयादशमी है। तेरे पुत्र उत्तर से दक्षिण तक, पूर्व से पश्चिम तक, तेरे ही एक महान् पुत्र के, महान् विष्णु के यश और कीर्ति को स्मरण कर उत्सव मना रहे हैं। चारों ओर वह प्यारा शब्द मुंह से निकल रहा है जिसका चिन्तन करते ही मन मान और उमंग से भर जाता है। २२ करोड़ आर्यसन्तान आज एकही स्वर से और एकही हृदय से महाराज रामचन्द्र जी की जय मना रहे हैं। जिह्वा से शब्द निकालते ही वे अपने मन के मन्दिर में एक मूर्ति को स्थापन करते हैं और उस मूर्ति के सामने अति प्रेम और भक्ति से श्रद्धारूपी फूल चढ़ाते हैं। वह मूर्ति क्या है? माता तुम्हारे यौवन, तुम्हारे बल, तुम्हारे पराक्रम, तुम्हारे पुण्य, और तुम्हारे गौरव की एक प्रतिमा है; जी चाहता है कि उसके पैर चूम लें उसके चरणों से लिपट जायँ। मगर यह समझकर हट जाते हैं कि ऐसा न हो कि हमारे नापाक मुंह और हमारे अपवित्र शरीर के छू जाने से वह अपवित्र हो जावे परन्तु पवित्र वस्तुएँ तो सब प्रकार की अपवित्रता को अपने छूने मात्र से दूर कर देती हैं।

माता क्या तुमने अपनी पवित्रता से अपवित्र बालक रामचन्द्रजी को पवित्र न कर दिया था? इसलिए शारीरिक अपवित्रता का तो भय नहीं किन्तु मानसिक अपवित्रता हमें उनके निकट जाने से रोकती है। परन्तु मानसिक अपवित्रता का उपाय भी तो यही है कि मनुष्य पवित्र व्यक्तियों से अपना नाता जोड़े। माता तुमसे उतरकर महाराज रामचन्द्र से ज़्यादा पवित्र व्यक्ति हमको कहां से मिलेंगे। उनके साथ हमारा गहरा सम्बन्ध है। ये उसी कोख में पैदा हुए जिसमें तुमने हमको रक्खा। उनकी नाड़ियों में वही रक्त था जो तुमने हमको दिया था। उनके माथे पर वही टीका था जो तुमने अपने प्यारे हाथों से हमारे मस्तक पर लगाया। उन्होंने उन्हीं छातियों से दूध पिया जिनसे तुमने हमको पाला; फ़रक इतना है कि वह उसी दूध को पान करके मुक्त हो गये और हमने उसी दूध में नाना प्रकार की बीमारियों के कीड़े मिलाकर अपने आपको रोगों का केन्द्र बना लिया। माता तुम्हारे दूध में दोष नहीं। दूध तो वैसाही पवित्र, निर्मल, साफ़, बल और पराक्रमवाला है परन्तु हमारे कर्मों का दोष है। हमने अपनी लापरवाही से, अपनी

---

* विलम्ब से आने के कारण यह लेख उचित समय पर न छप सका। (सं० म०।)

मूर्खता से और सब से ज़्यादा अपनी कायरता से उस दूध को कलुषित बना दिया है। माता के जिस दूध को पानकर छत्रधारी क्षत्री पैदा हुए थे, जिस दूध के एक दो घूंट पीकर अन्य माताओं की सन्तान वीर हो जाती थीं आज वही दूध तुम्हारी अपनी सन्तान को पृथ्वी का भार और कायर बना रहा है।

कारण क्या है।

माना कि तुम्हारा दूध खालिस नहीं रहा कुछ तो तुम्हारा दूध कलमश होगया है। मगर उसके अतिरिक्त हमने और बहुत बेशुमार अन्य वस्तुएं भी खानी शुरू कर दीं हैं जिन्होंने हमारे अन्दर रोग पैदा कर दिया है। माता ऐसी अवस्था में हम तुम्हारे शिरोमणि पुत्र महाराज रामचन्द्र को देखकर अत्यन्त अचम्भे में पड़ जाते हैं और यह कहने लगते हैं कि वह तो स्वयम् प्रभू थे, तुम्हारे पुत्र न थे। परन्तु यह हमारी भूल है वह प्रभू के पुत्र थे इसमें सन्देह नहीं परन्तु आखिर निकले तो वे तुम्हारे पेट से ही थे न? उनकी जननी तो तुम्हीं थीं फिर आज क्या हो गया कि हम ऐसे ख़स्ताहाल और बेहाल हुए फिरते हैं? माता सामने से ज़रा हट जाओ, हमको जानकी जी को देख लेने दो। अहा हा! क्या सुन्दर छबि है। स्वयम् सरस्वती का रूप है। सौन्दर्य, रस, मिठास की मूर्ति है। आँखें तो देखो कमल की तरह से खिली हैं, लोगों की आँखों में धँसती जाती हैं, मानों उनके दिल के सारे भ्रम और भेद निकाल लेंगी। वे लोगों को अपनी तरफ़ बुला रही हैं। लोग देखते हैं। अहा हा! कहकर जल्दी से आगे बढ़ते हैं, आँख उठा कर देखते हैं और स्वयम् पैरों की तरफ निगाह चली जाती है। एकदम पैरों में वे गिर पड़ते हैं। जानकी जी! उठाओ, हम गिरे हुओं का उद्धार करो, हम दुर्बलों के हाथों और पैरों में शक्ति संचार करो। जो सन्देशा तुम ने हनुमान जी के हाथ भेजा था वह फिर हमको सुनाओ ताकि हम अपने धर्म से पतित होने से बचें। एक वह समय था कि तुमने हनुमान जैसे मित्र के हाथ से अपना छुटकारा अस्वीकार कर दिया था क्योंकि उससे महाराज रामचन्द्र के क्षत्रियत्व पर बट्टा लगता था आज वह समय है कि हम अपनी स्त्रियों, अपनी बेटियों, बहिनों और अपने प्यारे देश की माताओं को दूसरों को सौंप रहे हैं कि वह उनको हमारे लिए कामिनियाँ बना दें। हाहाहा! माता हमको क्या होगया? जानकी जी भी आज हम से रूठ गईं। उन्होंने अपना मुँह फेर लिया, आँख मूंद लीं, वह हमारी शक्ल से बेज़ार हैं, क्यों न हो हमारे जैसा पुरुषार्थहीन, निकम्मा, अपने काम दूसरों को सौंपनेवाला, दूसरों के दान पर जीवन निर्वाह करनेवाला, दूसरों की दया का भिखारी संसार में कौन होगा? जानकी जी क्यों हमारी तरफ देखें उनको यह निश्चय नहीं कि हम उनके भाई हैं, उनके पति के भाई हैं। वह तो अपना समझकर हमारी तरफ बढ़ी थीं हमारी शक्ल सूरत से उनका ख़याल हुआ था कि हम तुम्हारी ही सन्तान हैं मगर आँख उठाकर जो देखा तो हमारे कायर हृदयों का भेद उन पर खुल गया। उन्होंने आँखें उठालीं और क़दम पीछे हटा लिए। हाय! हमारे मन्द भाग! माता अच्छा ज़रा आगे से हट जाओ हम भरत जी को ही देखलें वह तो शायद हमें पहिचान लेंगे। अहाहा! कैसी मोहनी मूरत है, सत्य, न्याय, धीरज, प्रेम, वीरता और धर्म उनके अपूर्व चेहरे पर लिखे हुए हैं। उनकी आँखों में दया और प्रेम है। वे हमको छाती से लगाएंगे। माता तुम हमारे और उनके बीच में से हट जाओ, हम उनके पास जायँगे। माना कि हम मैले हैं, मलीन हैं, भीरु हैं, झूठे हैं, मक्कार हैं, माना कि हम स्वार्थी और नीच हैं, माना कि हमारे हाथ पाप कर रहे हैं, हमारे मुँह से मदिरा की बू आती है, हमारे हाथ अपने ही भाई, बहिनों के रक्त से रंगे हुए हैं, माना कि आज हम औरों के दास हैं, औरों का जूठा

खाते हैं और तान कर सोते हैं परन्तु आख़िर हैं तो तुम्हारी ही सन्तान । हट जाओ हमको भाई भरत से मिलने दो । माता यह कठोरता, यह निर्दयता क्यों? सच है भरत जी हमसे बहुत ऊंचे हैं, वह महाराज राम के भाई हैं, भाई देवता के रूप हैं, प्रेम की मूर्ति हैं, ऋषि और देवता उनका मान करते हैं । माता उनकी पदवी ऋषियों से भी ऊंची है, वह ब्राह्मणों से भी बड़े हैं फिर भी तो वे हमारे भाई हैं । माता हमको उन्हें देख लेने दो, हमारे देखने से उनके यश और कीर्ति में कुछ कमी नहीं आवेगी । अच्छा माता अगर आप भरत जी के दर्शन हमको करने नहीं देतीं तो हमको लक्ष्मण जी ही को देख लेने दो; उनकी आँखों में बेशक क्रोध और अभिमान भरा हुआ है परन्तु वह भ्रातृस्नेह से कोमल हो रही हैं, उनकी आंखों में नीर के डोरे बँधे हैं, वह हम को गले लगाना चाहते हैं । माता यह सच है कि हमने सैकड़ों भाइयों का साथ छोड़ दिया, लाखों को धोखा दे दिया, करोड़ों को दरिन्दों के हवाले कर दिया, हमने आजतक किसी भाई का साथ नहीं दिया । किसी की सेवा नहीं की, नहीं नहीं बल्कि बारम्बार उनसे दगा की, उनको अपनी ही आंखों के सामने अपने हाथों से भट्टी में झोंक दिया, कुएँ में ढकेल दिया, बनवास दिला दिया और लंका के अथाह समुद्र में डुबवा दिया, यह सब सच है मगर इस वक़्त हमारा वह भ्रातृस्नेह जोश मार रहा है । हमको सच्चा पश्चात्ताप कर लेने दो, हम लक्ष्मण जी के पैरों से सर रगड़ कर प्रायश्चित्त करेंगे । माता हट जाओ, हम अभागों के रास्ते में न पड़ो । परमात्मा के नाम पर दया करो । ओहो ओहो अब मालूम हुआ माता तुम हमको पहिचानती ही नहीं, शक करती हो कि हम तुम्हारे पुत्र नहीं । बस आख़ीर हो चुकी अब यह सब असहनीय है ।

आपका

एक लंदनप्रवासी दिलजला पुत्र ।

जातीय भाषा ।*

[लेखक—पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय ।]

षटपद

(१)

जातियाँ जिससे बनीं ऊंची हुई फूली फलीं ।
अंक में जिसके बड़े ही गौरवों से हैं पलीं ॥
रत्न हो करके रहीं जो रंग में उसके ढलीं ।
राज भूलीं पर न सेवा से कभी जिसकी टलीं ॥
ऐ हमारे बन्धुओ जातीय भाषा है वही ।
है सुधा की धार बहु मरुभूमि में जिससे बही ॥

(२)

जो हुए निर्जीव हैं उनको जिला देती है वह ।
धार सुरसरि कर्मनासा में मिला देती है वह ॥
स्वच्छ पानी प्यासवाले को पिला देती है वह ।
जो कली कुम्हला गई उसको खिला देती है वह ॥
नीम में हैं दाख के गुच्छे वही देती लगा ।
ऊसरों में है रसालों को वही देती उगा ।

(३)

आन में जिनकी दिखाती देस ममता है निरी ।
जो सपूतों की न उँगली देख सकते हैं चिरी ॥
रह नहीं सकतीं सफलतायें कभी जिनसे फिरी ।
वह नई पौधें उठी हैं जातियां जिनसे गिरी ॥
थीं इसी जातीय भाषा के हिंडोले में पलीं ।
फूंक से जिनकी घटायें आपदाओं की टलीं ॥

(४)

है कलह की फूट का जिसमें फहरता फरहरा ।
दम्भ उल्लू नाद जिसमें है बहुत देता डरा ॥
मोह आलस मूढ़ता जिसमें जमाती है परा ।
वह अंधेरा देश का बहु आपदाओं से भरा ।

---

* कविता सम्मेलन के लिए लिखी गई थी ।

दूर करती है उसे जातीय भाषा की किरन।
भानु कासा है चमकता भाल का जिसके रतन॥

(५)

सूझती जिनको नहीं अपनी भलाई की गली।
पड़ गई है बीच में जिनके बड़ी ही खलबली॥
है अनाशारंग में जिनकी सभी आशा ढली।
जिन समाजों की जड़ें भी हो गई हैं खोखली॥
ढंग से जातीय भाषा ही उन्हें आगे बढ़ा।
है समुन्नति के शिखर पर सर्वदा देती चढ़ा॥

(६)

उस स्वकीया जाति भाषा सर्वथा सुखदानि की।
परम सुरला सुन्दरी आधारभूता आनि की॥
जननि सी उपकारिका प्रतिपालिका कुल कानि की
उस निराली नागरी अति आगरी गुण खानि की॥
आप में कितनी है ममता दीजिये मुझको बता।
आज भी क्या प्यार उससे आप सकते हैं जता॥

(७)

खोलकर आँखें निरखिये बंगभाषा की छटा।
मरहठी की देखिये कैसी बनी ऊंची अटा॥
क्या लसी साहित्य नभ में गुर्जरी की है घटा।
आह! उर्दू का है कैसा चौतरा ऊंचा पटा॥
किन्तु हिन्दी के लिए ये बार अब भी दूर हैं।
आज भी इसके लिए उपजे न सच्चे सूर हैं॥

(८)

फिर कहें क्यों आप उससे प्यार सकते हैं जता।
फिर कहें क्यों आप में है उसकी ममता का पता॥
फिर कहें क्यों है लुभाती नागरी लोनी लता।
किन्तु प्यारे बन्धुओ देता हूं मैं सच्ची बता॥
दृष्टि उससे दैव की चिरकाल रहती है फिरी।
जिस अभागी जाति की जातीय भाषा है गिरी॥

(९)

क्यों चमकते मिलते हैं बंगाल में मानव रतन।
किस लिए हैं बम्बई में देवतों से दिव्य जन॥
क्यों मुसलमानों की है जातीयता इतनी गहन।
क्यों कहाँ जाते हैं वे पाते हैं आदर मान धन॥

और कोई हेतु इसका है नहीं ये बन्धु गन।
ठीक है जातीय भाषा से हुई उनकी गठन॥

(१०)

आँख उठाकर देखिये इस प्रान्त की बिगड़ी दसा।
हैं जहाँ पर यूथ हिन्दी भाषियों का ही बसा॥
आज भी जो है बड़ों के कीर्त्ति चिह्नों से लसा।
सूर तुलसी के जनम से पूत है जिसकी रसा॥
सिद्ध विद्यापीठ गौरव खानि विबुधों से भरी।
आज भी है अङ्क में जिसके लसी काशीपुरी॥

(११)

अल्प भी जो है खिंचा जातीय भाषा ओर चित।
तो दसा को देख करके आप होवेंगे व्यथित॥
नागरी अनुरागियों की न्यूनता अवलोक नित।
चित्त ऊबेगा दृगों से वारि भी होगा पतित॥
आह! जाती हैं नहीं इस प्रान्त की बातें कही।
नित्य हिन्दी को दबा उर्दू सबल है हो रही॥

(१२)

यह कथा सुन कह उठेंगे आप तुम कहते हो क्या।
पर कहूंगा मैं कि मैंने जो कहा वह सच कहा॥
जाँच इसकी जो करेंगे आप गावों बीच जा।
तो दिखायेगा वहाँ पर आपको ऐसा समा॥
हिन्दुओं के लाल प्रतिदिन हाथ सुविधा का गहे।
भूल अपनापन को उर्दू ओर ही हैं जा रहे॥

(१३)

जो उठाकर हाथ में दस साल पहले का गज़ट।
देख लेंगे और तो होगी अधिक जी की कचट॥
मिडल हिन्दी पास का था जो लगा उस काल ठट।
वह गया है एक चौथे से अधिक इस काल घट॥
बढ़ रही है नित्य यों उर्दू छबीली की कला।
घोटते हैं हाथ अपने हाय! हम अपना गला॥

(१४)

बन फलों को प्यार से खा छाल के कपड़े पहन।
राजभोगों पर नहीं जो डालते थे निज नयन॥
फूल सा बिकसा हुआ लख जाति भाषा का बदन।
जो सदा थे वारते सानन्द अपना प्राण धन॥

उन द्विजों की हाय! कुछ संतान भी चाहों भरी।
पड़ गई है पेच उर्दू में तजी निज नागरी॥

(१५)

हिन्द हिन्दू और हिन्दी कष्ट से हो के अथिर।
खौल उठता था अहो जिनके शरीरों का रुधिर॥
जो हथेली पर लिए फिरते थे इनके काज शिर।
थे उन्हीं के वास्ते जो राज तज देते रुचिर॥
बहु कुँवर उन क्षत्रियों के तुच्छभोगों से डिगे।
तोड़ नाता नागरी से रंग उर्दू में रंगे॥

(१६)

हो जहाँ पर सिरधरों का आज दिनयों सिर फिरा।
फिर वहाँ पर क्यों फड़क सकती है औरों की शिरा
किन्तु क्यों है नागरी के पास इतना तम घिरा।
आँख से कुछ हिंदुओं के क्यों है उसका पद गिरा॥
आप सोचेंगे अगर इसको तनिक भी जी लगा।
तो समझ जायेंगे है अज्ञानता ने की दगा॥

(१७)

आज दिन भी गाँव गाँवों में अँधेरा है भरा।
है वहाँ नहिं आज दिन भी ज्ञान का दीपक बरा॥
आज दिन भी मूढ़ता का है वहां डेरा परा।
जाति हित के रंग से कोरी वहां की है धरा॥
हाथ का पारस भला वह फेंक देगा क्यों नहीं।
आह! उसके दिव्य गुण को जानता है जो नहीं॥

(१८)

है नगर के वासियों में ज्ञान का अंकुर उगा।
जाति हित में किन्तु वैसा जो नहीं अब भी लगा॥
फूंक से वह आपदा है सैकड़ों देता भगा।
जाति भाषा रंग में नर-रत्न जो सच्चा रँगा॥
उस बदन की ज्योति देती है तिमिर सारा नसा।
जाति के अनुराग का न्यारा तिलक जिसपर लसा॥

(१९)

नागरी के नेह से हम लोग आये हैं यहां।
किन्तु सच्चा त्याग हममें आज दिन भी है कहां॥
जातिसेवा के लिए हैं जन्मते त्यागी जहां।
आपदायें ढूंढ़ने पर भी नहीं मिलती वहां॥

जातिभाषा के लिए, किस सिद्ध की धूनी जगी।
वे कहां हैं जिनके जी को चोट है सच्ची लगी॥

(२०)

निज धरम के रंग में डूबे, तजे निज बन्धुजन।
हैं यहां आते चले यूरोप के सच्चे रतन॥
किसलिए! इसहेतु! जिसमें वे करें तम का निधन।
दीन दुखियों का हरें दुख औ उन्हें देवें सरन॥
देखिये उनको कहां आ करके क्या करते हैं वे।
एक हम हैं आंख से जिनके न आंसू भी स्रवे॥

(२१)

जो अँधेरे में पड़ा है ज्योति में लाना उसे।
जो भटकता फिर रहा है पंथ दिखलाना उसे॥
फँस गया जो रोग में है पथ्य बतलाना उसे।
सीखता हो जो नहीं कर प्यार सिखलाना उसे॥
काम है इनका जिन्हें पा पूत होती है मही।
इस विषम संसार पादप के सुधा फल हैं वही॥

(२२)

आज का दिन है बड़ा ही दिव्य बहु रत्नों जड़ा।
जो यहाँ इतने स्वभाषा प्रेमियों का पग पड़ा॥
किन्तु होवेगा दिवस वह और भी सुन्दर बड़ा।
लाल कोई बीर लौं जिस दिन कि होवेगा खड़ा॥
दूर करने के लिये निज नागरी की कालिमा।
औ लसाने के लिये उन्नति गगन में लालिमा॥

(२३)

राज महलों से गिनेगा झोंपड़ी को वह न कम।
वह फिरेगा उन थलों में है जहाँ पर घोर तम॥
जो समझते यह नहीं, है काल क्या, हैं कौन हम।
वह बतादेगा उन्हें जातीय उन्नति के नियम॥
वह बना देगा बिगड़ती आँख को अंजन लगा।
जाति भाषा के लिये वह जाति को देगा जगा॥

(२४)

वह नहीं कपड़ा रँगेगा किन्तु उर होगा रँगा।
घर न छोड़ेगा, रहेगा पर नहीं उसमें पगा॥
काम में निज वह परम अनुराग से होगा लगा।
प्यार होगा सब किसी से और होगा सब सगा॥

...बात में होगी सुधा उसका रहेगा पूत मन।
जाति भाषा तेज से होगा दमकता वर बदन॥

(२५)

दूर होवेगा उसीसे गाँव गाँवों का तिमिर।
खुल पड़ेगी हिन्दुओं की बंद होती आँख फिर॥
तम भरे उर में जगेगी जोति भी अतिही रुचिर।
वह सुनेगी बात सब, जो जाति है कब की बधिर॥
दूर होगी नागरी के सीस की सारी बला।
चौगुनी चमकेगी उसकी चारुता डूबी कला॥

(२६)

दैनिकों के वास्ते हैं आज दिन लाले पड़े।
सैकड़ों दैनिक लिये तब लोग होवेंगे खड़े॥
केतु होंगे नागरी की कीर्ति के सुन्दर बड़े।
जगमगायेंगे बिभूषण अंग में रत्नों जड़े॥
देस भाषा रूप से वह जायगी उस दिन बरी।
सब सगी बहनें बनायेंगी उसे निज सिरधरी॥

(२७)

मैं नहीं सकटेरियन हूं और हूं न उतावला।
बात गढ़कर मैं किसी को चाहता हूं कब छला॥
मैं न हूं उरदू बिरोधी मैं न हूं उससे जला।
कौन हिन्दू चाहता है घोंटना उसका गला॥
निज पड़ोसी का बुरा कर कौन जग फूला फला।
हैं इसी से चाहते हम आज भी उसका भला॥

(२८)

किन्तु रह सकता नहीं यह बात बतलाये बिना।
ज्यों न जीयेगा कभी जापान जापानी बिना॥
ज्यों न जायेगा मुसल्माँ पारसी अरबी बिना।
जी सकोगे हिन्दुओ वोंही न तुम हिन्दी बिना॥
देखकर उरदू कुतुब यह दीजिये मुझको बता।
आपकी जातीयता का है कहीं उसमें पता॥

(२९)

क्या गुलाबों पर करेंगे आप कमलों को निसार।
क्या करेंगे कोकिलों को छोड़ कर बुलबुल को प्यार
क्या रसालों को सरो शमशाद पर देवेंगे वार।
क्या लखेंगे हिन्द में ईरान का मौसिम बहार॥
क्या हिरासे और दजला आदि से होगी तरी।
तज हिमालय सानु गिरिवर पूत सलिला सुरसरी॥

(३०)

भीम अर्जुन की जगह पर गेव रुस्तम को बिठा।
सभ्य लोगों में नहीं दृग आप सकते हैं उठा॥
साथ कैकाऊस दारा प्रेम की गाँठें गठा।
क्या भला होगा! रसातल भोज बिक्रम को पठा॥
कर्ण की ऊँची जगह जो हाथ हातिम के चढ़ी।
तो समझिये ढह पड़ेगी आपकी गौरव गढ़ी॥

(३१)

क्या हसन की मसनबी से आप होकर मुग्धमन।
फेंक देंगे हाथ से वह दिव्य रामायन रतन॥
क्या हटाकर सूर तुलसी मुख सरोरुह से नयन।
आप अवलोकन करेंगे मीरग़ालिब का बदन॥
क्या सुधा को छोड़कर मंजुल मयंक मुखी स्रवी।
आप सहबा पान करके हो सकेंगे गौरवी॥

(३२)

जो नहीं तो देखिये जातीय भाषा का बदन।
पोंछिये उसपर लगे हैं जो बहुत से धूलिकन॥
जो लगाकर कीजिये उसकी भलाई का जतन।
पूजिये उसका चरन उस पर चढ़ा न्यारे रतन॥
जगमगा जायेगी उसकी ज्योति से भारत धरा।
आप का उद्यान यश होगा फला फूला हरा॥

(३३)

हे प्रभो उर हिन्दुओं में ज्ञान का अंकुर उगे।
हिन्द में बनकर रहें सब काल वे सब के सगे॥
दूसरों को हानि पहुंचाये बिना औ बिन ठगे
दूर हों सब विघ्न बाधा भाग हिन्दी का जगे॥
जाति भाषा के लिये जो राज सुख को रजगने।
बुद्ध शंकर भूमि कोई लाल फिर ऐसा जने॥

———

युद्ध के अन्तर्राष्ट्रीय कानून।

[लेखक—श्रीयुत सुपार्श्वदास गुप्त ।]

वर्तमान् यूरोपीय महाभारत की दैनिक घटनाओं का महत्व और युद्ध में प्रवृत्त राज्यों के दाँव पेंच समझने के लिए उनके अन्तर्राष्ट्रीय नियमों का पूर्ण ज्ञान आवश्यक है। इस छोटे से लेख में समस्त अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों का समालोचनात्मक वर्णन करना कठिन ही नहीं, बल्कि असम्भव है। फिर भी थोड़े से में ही उनकी प्रकृति और विकास, उत्पत्ति स्थान, और आधुनिक रूप, उपयुक्तता और अन्य प्रश्नों पर विचार किया जायगा। इससे हमारे पाठकों को युद्ध के समाचार समझने में बड़ी सुविधा होगी।

अन्तर्राष्ट्रीय कानून वे नियम हैं जो संसार के समस्त सभ्य राज्यों के पारस्परिक आचरणों को निर्दिष्ट करते हैं। इस परिभाषा से राज्यों के बाध्य होने का भाव टपकता है; और वास्तव में तात्विक दृष्टि से वे राज्य उन नियमों को पालन करने के लिए बाध्य भी हैं। पर अभ्यास में कुछ का कुछ होता दीख पड़ता है। इसका प्रधान कारण किसी अत्यन्त शक्तिशाली मध्यस्थ संस्था, या राजा का अभाव है। अभी तक सिर तोड़ प्रयत्न करने पर भी, ऐसा कोई न्यायालय सब शक्तियों की सम्मति से स्थापित नहीं हुआ है, जो किसी दो या अधिक राज्यों के अन्तर्विग्रह का निपटारा कर दे और वे उसे बिना सांस लिये मान लें तो भी समय समय पर इस प्रकार का न्याय होता आया है। माध्यमिक काल में जब रोम के पोप की तूती बोलती थी, तो वे राज्यों के झगड़ों का न्याय प्रायः किया करते थे।

पर इस प्रकार का न्याय उच्च कोटि के प्रश्नों के सम्बन्ध में नहीं देखा गया। १७वीं और १८वीं शताब्दियों में तो इसका कुछ टीमटाम भी सुनाई नहीं दिया, पर १९वीं शताब्दी में इस प्रश्न ने खूब ज़ोर पकड़ा और बड़े २ राजनीतिज्ञों का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ। इसका प्रधान कारण युद्ध का असीम व्यय, लड़ाके और उदासीन राज्यों के व्यापारिक जीवन का नाश और सम्पूर्ण सभ्य संसार में औद्योगिक और आर्थिक उन्नति का पारस्परिक निर्बंधन है। इन कारणों के महत्व ने इन दो शताब्दियों में लोगों पर अपना प्रभाव ऐसा डाला कि १९वीं शताब्दी ही में कम से कम सौ जटिल प्रश्नों का निपटारा सभा-पञ्चायतों द्वारा हो गया।

जैसे मनुष्य के बाह्य स्वरूप आदि पर विचार करने से वह सब प्रकार से स्वाधीन और अनियंत्रित जान पड़ता है, उसी प्रकार प्रत्येक राज्य दीख पड़ता है। कोई राज्य चाहे वह कितना हो बड़ा हो या छोटा, शक्तिसम्पन्न हो या शक्तिरहित, रूस हो चाहे काबुल पर दूसरे पर बिना कारण किसी प्रकार का अत्याचार नहीं कर सकता और न उसपर अपने कानून ही चला सकता है। राजनैतिक स्वतंत्रता ही प्रत्येक राज्य के अस्तित्व की जड़ है। परन्तु तात्विक दृष्टि से ऐसी स्वाधीनता प्राप्त होने पर भी, साधारण रीति से भिन्न २ राज्य आपस में भिन्न २ नियमों से बँधे रहते हैं। उनके व्यापार और कलाकौशल का सम्बन्ध और नागरिकों का आवागमन उन्हें एक सूत्र में बाँधकर उनसे कुछ ऐसे नियमों का पालन कराता है, जिनसे दोनों पक्षों का हितसाधन हो। आधुनिक सभ्य संसार में अनेक प्रकार की लौकिक सुविधाओं के कारण एक राज्य अपने पड़ोसी राज्यों के साहित्य, विचार, कला और कौशल

आदि से इतना घनिष्ट सम्बन्ध रखता है कि वह उनसे संपूर्ण राजनैतिक पार्थक्य रूप से निभा नहीं सकता। विशेषतः यदि उन राज्यों की भाषा, धर्मादि एकही हैं और उनके निवासी एकही, व्यक्ति वंश वा जाति के सन्तान होने का गर्व रखते हैं, जिनसे दोनों को एकही प्राचीन रिवाज और इतिहासादि का समान अहंकार और अधिकार प्राप्त है।

अध्यापक टी० जी० लारेन्स ने अपने "अन्तर्राष्ट्रीय कानून" नामक ग्रन्थ में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के विकार को तीन कालों में विभक्त किया है। इस विभाग का प्रधान कारण उन कालों में उन सम्बन्धों के विचार में परिवर्तन है। अर्थात् प्रथम काल में लोगों के अन्तर्राष्ट्रीय कानून सम्बन्धी विचार अन्य दो कालों के उन्हीं विचारों से एक दम भिन्न थे। प्रथम काल सभ्यता के प्रारम्भ से लेकर रोमन साम्राज्य के पतन तक का है, द्वितीय, १६४८ ई० के वेस्टफेलिया की सन्धि तक का और तृतीय, उस तिथि से आज तक का है। प्रथम काल में तो सचमुच ही अन्तर्राष्ट्रीय नियम थे ही नहीं। पड़ोसी जातियों में पारस्परिक युद्ध तो उस समय की साधारण घटना थी। यदि इन युद्धों में किसी निर्दिष्ट नियमों का पालन भी होता था तो वे बाध्य न थे और न उनकी कोई ठीक व्यवस्था ही थी। रोमन लोग अपने प्रजातन्त्र के जमाने में सैमनीट और इटालियन जातियों से कभी कभी अन्तर्राष्ट्रीय नियमों का पालन कराते थे। पर इस प्रकार के कोई नियम यूरोप के अन्य सभ्य या अर्ध सभ्य जातियों में नहीं देखे जाते थे। उस समय रोमन साम्राज्य में जस जेंटियम (Jus Gentium) नाम का एक कानून जारी था जो रोम में रहनेवाले विदेशियों के या रोमनों और विदेशियों के परस्पर झगड़े का न्याय करता था। उस कानून को कितने ही लेखकों ने भूल से अन्तर्राष्ट्रीय नियम बतलाया है। पर वास्तव में ऐसा नहीं है। अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों का दो भिन्न और स्वतंत्र राज्यों से सम्बन्ध है; पर जस जेंटियम का एकही साम्राज्य के अधिवासी दो विदेशियों से सम्बन्ध था। हां इतना कहा जा सकता है कि जस जेंटियम अन्तर्राष्ट्रीय नियमों से बहुत मिलता जुलता था। उसमें उन्हीं नियमों का समावेश था, जो प्रत्येक राज्य के विचारों में साधारण रूप से पाये जाते हैं। उसमें उन नियमों की चर्चा भी नहीं है जो रीति नीति या जलवायु की विशेषता से केवल एकही जाति के उपयुक्त हो सकते हैं।

दूसरे काल में, जिसका आरम्भ रोमन साम्राज्य के स्थापन के बाद से होता है, विश्वव्यापी साम्राज्य के प्रश्न ने अधिक ज़ोर पकड़ा था। लोग उस समय इससे बड़े मोहित हो गये थे कि विश्वव्यापी एक ऐसा विशाल साम्राज्य का स्थापन हो, जो अन्य छोटे बड़े राज्यों का अधिपति हो और सबों की देखरेख रखता हुआ उनके हितसाधन में लगा रहे। इससे उनके हृदय में यह भावना उठा करती थी कि शीघ्र ही पारस्परिक युद्ध का अन्त हो जायगा। शार्लमेन (सन् ८०० ई०) के राज्यकाल के पूर्व ईसाई मत के प्रभाव के कारण, जो शीघ्रही विश्वव्यापी होनेवाला था, विश्वव्यापी साम्राज्य का प्रश्न भी बड़ी तेज़ी से चल निकला। "सीज़र" बादशाह प्रायः समस्त रियासतों और राज्यों का न्यायकर्ता समझा जाता था। अपील वहीं होती थी। शार्लमेन के शासनकाल ही में इस विचार के अनेक पृष्ठपोषक थे, पर पिछली शताब्दियों में इस विचार की जड़ ढीली पड़ गई। विश्वव्यापी साम्राज्य की बिजली देखते २ अन्धकार में विलीन हो गई। अब धर्माधिकारी पोप ने लौकिक राजा से प्रतिद्वन्दिता शुरू कर दी। पहिले तो वे दोनों मिलकर विश्वव्यापी साम्राज्य के स्वप्न को सत्य में परिणत करना चाहते थे, पर पीछे वे परस्पर विरोधी हो गये। इस प्रकार विश्वव्यापी साम्राज्य को दो वृहत्

विभाग होने से अनेक छोटे मोटे स्वाधीन राज्यों का विकाश हुआ। साथही फ्यूडल प्रथा के प्रचलित होने और ज़ोर पकड़ने से एक नवीन भाव का जन्म हुआ। यह भाव यह था कि राज्यों के संगठन में भूमि भी एक प्रधान तत्व है। अर्थात् एक राज्य दूसरे राज्य से पृथक् तभी कहा जा सकता है जब उसकी भूमि एक दूसरे से पृथक् और निर्दिष्ट हो यानी राज्य की सीमाएं भूमि से निर्धारित की जाने लगीं। इसके पूर्व भूमि के आधिपत्य पर उतना ज़ोर नहीं दिया जाता था, जितना प्रजा के। इसके बाद फिर कैथोलिकों और प्रोटेस्टेंटों में ३० वर्षों तक चलनेवाला इतना भीषण युद्ध छिड़ा कि जिससे विश्वव्यापी साम्राज्य का प्रश्न ही निकल गया। १६४८ ई० में इस युद्ध के अन्त होने के बाद से ही तृतीय अर्थात् आधुनिक काल का प्रारम्भ होता है।

आधुनिक अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों का संगठन इसी काल में हुआ है। पर इस काल के आरम्भ होते ही उनके प्राचीन आधार में परिवर्तन हुआ। इसका नवीन आधार राजनैतिक स्वाधीनता और भौमिक आधिपत्य हुआ। अब अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहारमात्र ही उसका आधार न रहा। १६वीं और १७वीं शताब्दियों के विकराल जंगली युद्धों से थककर, जिनमें नरहत्या बड़ी क्रूरता से हुआ करती थी, लोगों ने उन्हें बन्द करने अथवा उनकी भीषणता कम करने के लिए कुछ ऐसे पारस्परिक सम्बन्धों और नियमों की आवश्यकता देखी जिनसे उक्त उद्देश्यों की पूर्ति किसी अंश में हो सकती थी। इस आवश्यकता ने प्रसिद्ध डच क़ानून बनानेवाले ह्यूगो ग्रोटियस के लेखों को जन्म दिया जिनमें पहिले पहिल आधुनिक अन्तर्राष्ट्रीय क़ानूनों की नींव पड़ी। ग्रोटियस और उसके अनुयायियों ने यूनानी स्टोइक (stoic) दार्शनिकों के "प्रकृति के नियमों" को अपने अन्तर्राष्ट्र सम्बन्धी विचारों का आधार बनाया। अन्तर इतना ही था कि स्टोइक (stoic) दार्शनिकों ने इन नियमों को दो व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्धों के नियमन के लिए बनाया था और ग्रोटियस आदि ने दो या दो से अधिक राज्यों के लिए। उन लोगों का विचार था कि संसार में प्रत्येक काल और दशा में कुछ ऐसे नियम स्वयं वर्तमान रहते हैं जो मनुष्य मात्र के हृदय पर अधिकार कर लेते हैं और जिन्हें आत्महित की दृष्टि से पालन करना पड़ता है। ये नियम न किसी राजनैतिक संस्था द्वारा ही बनाये जाते हैं और न कानून द्वारा ही। वे स्वयं मनुष्यहृदय में जन्म लेकर उनके विचारों पर प्रभाव डालते हुए उनसे वही कार्य करवाते हैं, जो सबके मन के अनुकूल हों। ऐतिहासिक दृष्टि से येही विश्वव्यापी "प्राकृतिक नियम" जिनके पालन के लिए सब राज्य स्वयं बाध्य से थे, आधुनिक अन्तर्राष्ट्रीय नियमों की नींव की पहली ईंट समझे जा सकते हैं। इसके बाद तो कई शताब्दियों के रस्म-रिवाज़, सन्धियों और पंचायतों आदि से ऐसे २ नियम सब शक्तियों की सम्मति से संगठित किये गये कि साहित्य का यह अंश खूब ही भर गया। आधुनिक अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों में इन्हीं की प्रधानता है। वेस्टफेलिया की सन्धि में जिसमें प्रायः सभी राज्य सम्मिलित थे, यह राय ठहरी कि प्रत्येक छोटा या बड़ा राज्य राजनैतिक रूप से अपनी सीमाओं के भीतर सर्वथा स्वाधीन है। विश्वव्यापी साम्राज्य का ख्याल त्याग दिया गया। यूट्रेक्ट (Utrect) की सन्धि में यह निश्चित हुआ कि युद्ध के समय शत्रु से छीना हुआ व्यक्तिगत माल युद्ध के अन्त में उसे लौटा दिया जायगा। १८४१ ई० की सन्धि के अनुसार जो डार्डनलीज़ और वासफ़ोरस के जन्माधिकार के विषय में हुई थी, यह निश्चित हुआ कि प्रत्येक राज्य का उसके निकटस्थ समुद्र पर अधिकार रहेगा। १८७१ ई० की वाशिङ्गटन की सन्धि के अनुसार, जिसमें अमेरिका के

संयुक्त राज्य और ग्रेटब्रिटेन सम्मिलित थे, प्रत्येक उदासीन राज्य का कर्तव्य है कि वह अपने देश के किसी भाग के किसी लड़ाके राज्य को युद्ध की तैयारियां करने से रोके। इनके सिवा १८६४ ई० की प्रथम जेनेवा पंचायत, १८७४ ई० का ब्रूसेल्स सम्मिलन, १८६८ ई० की सेंटपिटर्सबर्ग की घोषणा, १८९९ ई० की प्रथम हेग कान्फरेंस, १९०६ की द्वितीय जेनेवा पंचायत और १९०७ की द्वितीय हेग कान्फरेन्स उल्लेखयोग्य हैं। इन सम्मिलनों और पंचायतों में जिन अन्तर्राष्ट्रीय नियमों का संगठन यूरोप की बड़ी २ शक्तियों की सर्वसम्मति से हुआ, उनका कुछ वर्णन आगे चलकर किया जायगा। ये कानून तो जान बूझकर उद्देश को लक्ष्यकर सर्वसम्मति से बनाये गये थे। पर दो तीन मार्ग और भी हैं, जिनसे इन नियमों का आविर्भाव समय २ पर हुआ करता है। प्रथम तो वे सरकारी घोषणाएं हैं, जो युद्ध छिड़ने पर सरकार की ओर से प्रजा को सुनाई जाती हैं और जिन्हें वह शत्रु और उदासीन राज्यों के साथ व्यवहार करने में पालन करती है। दूसरे उन प्राइज़ कोर्टों के फैसले हैं, जो युद्धघोषणा के समय लड़ाके राज्यों में स्थापित किये जाते हैं और जो जहाज़ों पर शत्रु के लूटे हुए माल का न्याय करते हैं। तीसरे उन विद्वान कानून जाननेवालों की सम्मतियां हैं जिन्होंने बड़े २ ग्रन्थ उस विषय पर लिख डाले हैं। केंट ने अपनी "कमेंटरीज़" (Commentaries) में लिखा है कि "जहां प्रधान २ कानूनवेत्ताओं का एकमत हो जाता है, वहां समझ लेना होता है कि उनके कथन पुष्ट और हितकर हैं और किसी सरकार को जो एकदम अपनी ढिठाई और अहम्मन्यता से कानून पर लात मारना नहीं चाहती, साहस न होगा कि उनके मतों का खंडन कर उनके विपरीत आचरण द्वारा प्रजा का हितसाधन कर सके।"

अन्तर्राष्ट्रीय नियमों के विकास, मूल और आधार आदि प्रश्नों पर विचार कर लेने के बाद उनके क्षेत्र पर विचार करना अत्यन्तावश्यक है। इस स्थान पर यह विचार किया जायगा कि अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों के भीतर कौन २ से विषय आजतक सम्मिलित किये गये हैं। अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों का प्रारम्भिक बिन्दु, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, समस्त राज्यों की स्वाधीनता के समान अधिकारप्राप्ति है। इस प्रधान नियम के बाद राज्यों की भूमि और निकटस्थ समुद्र पर अधिकार की बात है। साथ ही यह प्रश्न भी उठता है कि राज्य का विस्तार करने के लिए युद्ध में जो साधन अवलम्बित किये गये हैं, वे कहां तक न्यायसंगत हैं और आत्मसमर्पण, विजय, या अन्य किसी प्रकार से प्राप्त हुए अधिकार कहां तक नीतियुक्त हैं।

प्रजा के दूसरे राज्यों में अधिवास करने से उस प्रजा के सम्बन्ध में उसकी सरकार को क्या अधिकार प्राप्त हैं। इसी प्रकार के नियम और सम्बन्ध अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों के भीतर आते हैं। ये कानून दो भागों में विभक्त हैं:—

(१) शान्ति के कानून और (२) युद्ध के कानून।

इनमें युद्ध के कानूनों की ही अधिकता है। यद्यपि अभी तक जैसा मैं ऊपर कह आया हूं, ऐसा प्रबल न्यायालय स्थापित नहीं हुआ है जो दो लड़ाके राज्यों का निपटारा कर दे तथापि इन नियमों द्वारा आधुनिक युद्ध में बहुत कुछ मनुष्यत्व और साधुता आगई है। इसका प्रधान कारण व्यर्थ के दुःख और पीड़ाओं को कम करना और उदासीन राज्यों की जान-माल की रक्षा करना है। इसीलिए युद्ध में बुलेटों और विष का प्रयोग और नरहत्या आदि साधन अन्याययुक्त बताये गये हैं। युद्ध के समय समाचार भेजने के लिए झंडे, पासपोर्ट आदि का प्रबन्ध रहता है। उदासीन राज्यों का व्यापार लड़ाके राज्यों के साथ बन्द नहीं होता। व्यापार तभी बन्द हो सकता है जब उससे किसी लड़ाके

राज्य को युद्ध में सहायता पहुंचती हो या पहुंचने का भय हो। आधुनिक अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों का अधिकांश उदासीन राज्यों से ही सम्बन्ध रखता है। लीकौक ने लिखा है कि विशेषकर १८वीं और १९वीं शताब्दियों में "उदासीनता" के कानून की उन्नति पर ही अधिक ध्यान दिया गया है और अब यह अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों का प्रधान अङ्ग समझा जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों पर अबतक जो कुछ लिखा गया है वह शास्त्रिक दृष्टि से लिखा गया है। उसका किसी विशेष राज्य या युद्धकाल या देश से सम्बन्ध नहीं है। नीचे वर्तमान यूरोपीय महाभारत को अपना लक्ष्य मानकर कुछ लिखा जायगा। इसमें कुछ उन नियमों का अवतरण दिया जायगा जो समय २ पर सम्मिलनों और पंचायतों द्वारा स्वीकृत हुए हैं और जिन्हें प्रत्येक राज्य कर्तव्याकर्तव्य दृष्टि से पालन करने के लिए बाध्य है।

जब दो सभ्य राज्यों में युद्ध छिड़ जाता है तो अनुमान किया जाता है कि युद्ध-क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय नियमों में निषेध किये गये साधनों का अवलम्बन न करने तथा किसी भी नियम का पददलन न करने से वे युद्ध में मनुष्यत्व को पूर्ण स्थान देंगे। हां, जब असभ्य और जंगली जातियों का दमन करने के लिए उनसे युद्ध ठाना जाता है या जब दो असभ्य जातियां लड़ती हैं तो उन नियमों का पालन, जिनकी आवश्यकता और उपयुक्तता जंगली जातियां नहीं जानतीं, सभ्य जातियां नहीं कर सकतीं। क्योंकि ऐसा करने से सिवा हानि के लाभ की आशा नहीं है। पर वर्त्तमान युद्ध में सभी जातियां सभ्य और अपने को संसार की नेत्री कहनेवाली हैं। यदि इन्हीं के बनाये हुये नियमों की अवहेलना इन्हीं द्वारा हुई, तो कितने कष्ट और लज्जा की बात होगी? पर जेर्मनी का तो कहना है कि "प्रेम* और युद्ध में जो कुछ किया जाता है सब न्यायसंगत है"। भला इस उक्ति के सामने बेचारे अन्तर्राष्ट्रीय कानून कैसे खड़े रह सकते हैं। यह तो जर्मनी को ही शोभा देनेवाली डाँट कही जा सकती है। जर्मनी की आँखों में तो पंचायत और सम्मिलनों के नियम मानों कागज़ के चिट हैं, जो समयानुकूल उल्लंघन किये जा सकते हैं। बात यह है कि हेग, जेनेवा या सेंटपिटर्सबर्ग आदि की पंचायतें इस समय सब धूल में मिल गई हैं। वे स्वप्नवत् मालूम होती हैं, मानों हुई ही नहीं।

बेलजियनों और शत्रुओं पर जर्मन द्वारा किये गये अत्याचारों की जाँच करने के लिए जो बेलजियन कमीशन बैठी थी, उसने अनुसन्धान करके ऐसी बातें प्रकाशित की हैं जिनको पढ़कर सारा सभ्य संसार क्रोधाग्नि में कूद पड़ा है। उनके अत्याचार, आबाल-वृद्ध-हत्या, सतीत्व-हरण आदि अमानुषिक और पैशाचिक आचरणों ने संसार में क्रोध और घृणा की जो प्रचंड लहरें पैदा की हैं, उनसे कोई सभ्य और न्यायशील मनुष्य स्पर्श हुए बिना न रहेगा। इतना ही नहीं यदि जर्मनी का यह घृणित व्यवहार इनेगिने अशिक्षित सैनिकों द्वारा किया जाता तो उतनी तेज आग न भड़कती पर इसमें सभ्यता और शिक्षा विज्ञान और दर्शन का दम भरनेवाले जर्मन कमांडरों का भी पूरा ज़ोर था। इस अवस्था में यह कहने में क्या संसार न्याय नहीं करता कि इस समय जर्मन लोग जंगली सभ्यता के दृश्य दिखा रहे हैं।

नीचे लिखे हुए युद्ध सम्बन्धी नियम १९०७ ई० में हेग की पंचायत में स्वीकृत हुए थे:—

१–उस शत्रु के प्राण लेना या घायल करना मना है जिसने अपने हथियार त्यागकर या आत्मरक्षा का और कोई उपाय न देखकर शत्रु की इच्छानुसार आत्मसमर्पण किया हो।

२–शरण नहीं दी जायगी यह घोषणा प्रकाशित करना मना है।

* यहां से जो कुछ लिखा जाता है वह "इंडियन रिव्यू" के एक लेख के आधार पर है। लेखक।

३-यदि युद्ध की आवश्यकताएं ऐसी कठिन नहीं हैं कि शत्रु के माल लूटे और नष्ट किये जायँ, तो ऐसा करना मना है।

४-अरक्षित नगरों, गाँवों, मकानों या इमारतों पर आक्रमण या गोलन्दाज़ी करना मना है।

५-हमला करनेवाली सेना के कमांडरों का कर्तव्य है कि अकस्मात् धावा करने (assault) के सिवा और सब अवस्थाओं में स्थानीय अफ़सरों को पहिले सूचना दे दें।

६-घेरने और गोलन्दाज़ी करने के समय धर्मस्थान, कलाभवन, विज्ञानशाला तथा दातव्यनिकेतनों की रक्षा के लिए यथाशक्ति प्रयत्न करना चाहिये—यदि वे साथ २ युद्ध के कामों में न लाये जाते हों।

७-अकस्मात् धावा (assault) करके लेने पर भी, किसी शहर या स्थान को लूटना मना है।

८-प्रजा की स्वाधीनता, जानमाल, धर्म विश्वास, कुलमर्यादा और अधिकारों का आदर करना होगा।

९-प्रजा की सम्पत्ति ज़ब्त नहीं की जा सकती।

१०-प्रकटरूप से (formally) लूट मार करना मना है। यदि राज्य के हित के लिए चुंगी, कर आदि लगाने के सिवा अधिकारी अधिकृत देश पर दूसरा टेक्स लगावे तो ऐसा युद्ध की आवश्यकतानुसार और उस देश के शासन के लिए ही किया जा सकता है।

११-प्रजा को कोई धन सम्बन्धी या और किसी प्रकार का व्यापक दंड, व्यक्तिगत आचरणों के लिए नहीं दिया जा सकता, क्योंकि वह उनके लिए सम्पूर्णरूप से दायी नहीं है।

१२-अधिकार करनेवाली सेना की आवश्यकता के सिवा अन्य अवस्थाओं में प्रान्तों या अधिवासियों से सेना के लिए खाद्यपदार्थ नहीं लिए जा सकते और न अन्य काम कराये जा सकते हैं।

१३-रसद के लिए यथाशक्ति नकद रुपये चुकाने पड़ेंगे।

१४-कलाकौशल और विज्ञान की चीज़ों, ऐतिहासिक चिह्नों और धर्म, दान अथवा शिक्षा संस्थाओं को छीनना, नष्ट करना या जान बूझ कर तोड़ फोड़ डालना मना है; यदि ऐसा हो तो उचित कार्रवाई की जा सकती है।

इन प्रतिबन्धों के रहते हुए भी जर्मनों के जो अत्याचार हुए हैं, वे सचमुच ही घृणोत्पादक हैं। जब उन्होंने किसी स्थान पर अधिकार किया है वहां उन्होंने सीधी साधी प्रजा पर क्रूरता दिखाई है। कहीं २ तो पुरुष कैदी खेतों में काम करने के लिए जर्मनी भेज दिये गये हैं। सड़कों और गलियों में बेलजियन युवतियों पर जो अमानुषिक अत्याचार किये गये हैं उन्हें हमारी आँखें नहीं देख सकतीं। सभ्यता के प्राचीन समय में युद्ध के कैदी गुलाम बनाकर रक्खे या मार दिये जाते थे। १९वीं शताब्दी में भी इनको बड़ी क्रूरता और निर्दयता से दुःख दिया जाता था। ऐसी अवस्था में यदि कैदी इन अत्याचारों से छुटकारा पाने के लिए आत्महत्या करले तो क्या आश्चर्य है? पर कैदियों को छीन लेने का तो तात्पर्य यही है कि वे भविष्यत् में शत्रु की ओर से लड़ें। उनकी इस प्रवृत्ति की जड़ काटने के लिए यथासम्भव मनुष्योचित साधनों का अवलम्बन ही सर्वथा न्यायसंगत कहा जायगा पर उसके लिए क्रूरता और अपौरुषेयता की शरण लेना कहां का न्याय है। साथ ही जिस सरकार के हाथों में वे कैदी आये हैं उसे उनके जीवननिर्वाह का पूरा सामान करना होता है। उनके स्वास्थ्य का ख्याल, उनके निवासस्थान को साफ़ सुथरा रखना और उनके रहन सहन के अनुकूल बनाना पड़ता है। उन कैदियों को जो भागते हुए

पकड़े जाते हैं अथवा जिनका भागना किसी कारण से काम न कर सका, किसी प्रकार का दण्ड नहीं दिया जा सकता पर जो कैदी शर्तों पर छोड़ दिये जाते हैं और जिन्हें प्रतिज्ञा के अनुसार उन शर्तों को पूरा करना होता है वे यदि भागने की कोशिश करें तो उनको यथोचित दंड दिया जा सकता है। यदि सेनापति यह विचार कर कि कैदियों की अधिक संख्या के कारण उसकी गति या युद्धक्रिया में बाधा पहुंचती है या उनके पालनपोषण में बड़ी कठिनाई है या उन्होंने स्वतन्त्रता प्राप्त करने की चेष्टा की है उन्हें मरवा डाले तो उसका यह आचरण अन्याययुक्त कहा जायगा। इस प्रकार की सब से अन्तिम घटना १७९९ ई० में जाफ़ा में हुई थी जहां नेपोलियन की हुंकार से ३९५१ अरब समुद्र तीर पर गोलियों और भालों से मार गिराये गये थे। पर आधुनिक समय में इसकी आवश्यकता न रहने पर भी १९०२ ई० का जर्मन 'क्रूजब्रा' (Krugebrauch) कहता है कि "बड़ी कड़ी ज़रूरत पड़ने पर जब उनकी रक्षा का कोई उपाय न रह गया हो और जब उनका जीवित रहना उनके ही अस्तित्व में बाधक हो तो कैदी मारे जा सकते हैं। युद्ध की ज़रूरतों और राज्य की रक्षा पर पहिले ख्याल किया जाता है; पीछे कैदियों के आराम का।" घायलों और रोगियों के साथ यथासम्भव सद्व्यवहार ही करना चाहिये, चाहे वे अपने हों या शत्रु के पर १८६४ और १९०६ ई० के जेनेवा सम्मिलनों के नियमों के रहते हुए भी जर्मनों ने इसकी अवहेलना खूब ही की है। वे प्रायः यह समझकर उन्हें पीछे छोड़ देते हैं कि उनसे उनके काम में बाधा होगी।

और भी युद्ध-क्षेत्र में घायलों का पता लगाकर उनकी एक सूची तैयार की जाती है जो उनके नाम तथा उनके पास पाये हुए पत्रादि के साथ कैदियों के ब्यूरो के पास भेजी जाती है। इन कामों को अन्जाम करने के लिए जो लोग नियुक्त किये जाते हैं उन्हें कोई दल आघात नहीं पहुंचा सकता और न वे कैद ही किये जा सकते हैं। पर जर्मनों ने इसकी भी अवहेलना की है। बड़ी इमारतों को जिन पर रेड् क्रास (Red cross) की पताका उड़ रही थीं इन्होंने धूल में मिला दिया; रोगियों और घायलों को मार डाला और अस्पतालों को जला दिया। रेड् क्रास (Red cross) गाड़ियां, तोप और बन्दूक आदि ढोने के काम में लाई गईं।

अब कुछ उन नियमों का वर्णन सुनिये जो जलयुद्ध के संबन्ध में १९०७ के 'हेग' सम्मिलन में पास किये गये थे।

(१) ऐसी सुरंगें लगाना मना है जो उनके नियामक के कार्य बन्द करने पर अधिक से अधिक एक घंटे के बाद निरुपद्रव न हो जायँ।

(२) ऐसी सुरंगें बिछाना मना है जो अपनी (movings) से अलग होतेही बेकार न हो जायँ।

(३) ऐसे टारपीडो का व्यवहार में लाना मना है जो निशाना चूकने पर बेकार न हो जायँ।

समाचारपत्रों के पाठकों को मालूम है कि उत्तर समुद्र को जर्मनों ने सुरंगों से पाट दिया है, जिससे बृटेन नार्वे, और हालैंड के अनेक जहाज़ क्रूज़र आदि नष्ट हो गये हैं। अबतो अटलांटिक महासागर में भी जर्मनों ने सुरंगें बिछादी हैं। एक अमेरिकन जहाज़ भी टकराकर डूब गया है। ये जर्मन सुरंगें नियामक के काम बन्द करने पर १ घंटे के बाद बेकार नहीं होतीं। इसपर भी मजा यह है कि हेग सम्मिलन में जर्मनों ने ही इस रुकावट की स्वीकृति पर ज़ोर दिया था। उपर्युक्त बन्धनों के सिवा अन्य कितने ही हैं जिनका वर्णन यहां नहीं किया जा सकता। फिर भी निम्नलिखित जानने योग्य हैं।

किसी बन्दर पर इसलिए गोलन्दाजी नहीं की जा सकती कि उसके पास सुरंगें बिछी हैं।

यदि खाद्य पदार्थ देने से इनकार किये जाने या गोलियां चलने पर शत्रु गोलन्दाज़ी करे, तो उस समय उसे उपर्युक्त छठे नियम का पालन करना होगा। जो नौकाएं समुद्रतट के निकट ही मछलियों का काम करती हैं अथवा स्थानीय व्यापार का माल ले जाती और ले आती हैं, वे और न उनकी कोई चीज़ पकड़ी जा सकती है। इस नियम के होते हुए भी जर्मनों ने डोवर तीर के पास के १५ मछुए जहाज़ों को डुबा दिया। शत्रु के सरकारी और प्राइवेट जहाज़, यदि वे उदासीन राज्य के तीर पर नहीं हैं तो पकड़े जा सकते हैं। अस्पतालवाले जहाज़, जिनसे शत्रु को भड़कानेवाला कोई दूसरा काम नहीं लिया जाता, पकड़े नहीं जा सकते। इन पर बिना तार का तार खड़ा नहीं किया जा सकता। जर्मन जहाज़ "गोबेन" और "ब्रेसलो" के सम्बन्ध में, जिन्हें टर्की ने कहा कि उसने खरीद लिये हैं, यही कहा जा सकता है कि—१६०६ के लंडन की घोषणा के अनुसार कोई उदासीन राज्य लड़ाके राज्य के जहाज़ को ले नहीं सकता, जबतक वह यह प्रमाण न दे कि ऐसा आचरण उसको शत्रु से बचाने के लिए नहीं किया गया। पर यह साफ़ है कि ये दोनों जर्मन जहाज़ यदि टर्की उन्हें न ले लेता तो भूमध्य सागर के एंगलो-फ्रांसीसी नौ-सेना द्वारा ज़रूर पकड़ लिये जाते। १६०७ के हेग सम्मिलन में यह भी निश्चित हुआ कि सामुद्रिक तार, जो अधिकृत (occupied) देश और उदासीन राज्य को मिलाता है, बहुत बड़ी ज़रूरत पड़ने पर ही तोड़ा जा सकता है। उदासीन राज्य में बिना तार के तार गाड़ने और व्यवहार में लाने का निषेध लड़ाके राज्यों के लिए है। इसी नियम के अनुसार अमेरिका ने बोस्टन का तार बन्द कर दिया है, जिसे जर्मन लोग नियम के विरुद्ध काम में ला रहे थे।

लड़ाई बन्द करने और आत्मसमर्पण की सूचना देने के लिए झूठे झंडे दिखाये नहीं जा सकते। झंडों का प्रयोग भागने के लिए अवसर प्राप्ति या नई सेना जमा करने के लिए नहीं किया जा सकता। शत्रु को धोखा देने के लिए बनावटी आत्मसमर्पण करना और जब कैदी एकत्र करने के लिए शत्रु निकट आवें तो उन पर हमला करना मना है। पर जर्मनों ने ऐसा कई बार किया है।

धोखा देने के लिए शत्रु के राष्ट्रीय झंडे और पोशाक को काम में लाना मना नहीं है। पर रणक्षेत्र में जब लड़ाई हो रही है, ऐसा नहीं किया जा सकता। हम लोग जानते हैं कि लड़ाई की भीषणता, मुर्दा गाड़ने, रोगियों की सेवा करने या कैदियों के बदलने या शत्रु से बातें करने के लिए कम कर दी जाती है। ऐसे अवकाश का समय बहुत कम रहता है। बिना सूचना दिये लड़ाके फिर युद्ध शुरू नहीं कर सकते। ट्रूस के समय युद्ध करने के सिवा और सब काम किये जा सकते हैं—जैसे, सैनिकों को शिक्षा देना, नई सेना का बुलाना, इत्यादि। अर्थात् वे काम किये जा सकते हैं जिन्हें शत्रु युद्ध के समय में भी रोक नहीं सकता था।

पर अंत में यह कहना ही पड़ती है कि इन सब नियमों के विरुद्ध जर्मनों का ऐसा कुत्सित आचरण होते हुए भी, एमडेन का व्यवहार, शत्रु जहाज़ों के नाविकों और कप्तान आदि के साथ इतना उत्तम, प्रशंसनीय और मानुषिक कैसे हुआ, यह जटिल समस्या युद्ध के बाद ही सुलझायी जा सकती है।
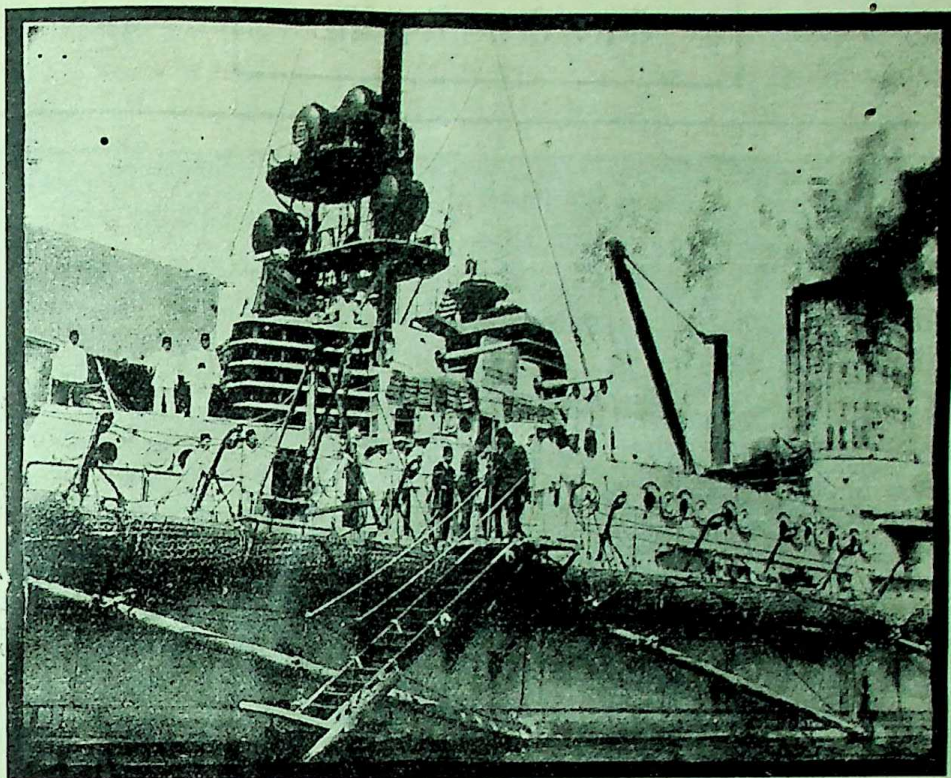
टर्कीमें जर्मन क्रूज़र 'गोवेन'
नौसेना विभागके प्रधान जमालपाशा उसकी देखरेख करते फिर रहे हैं.
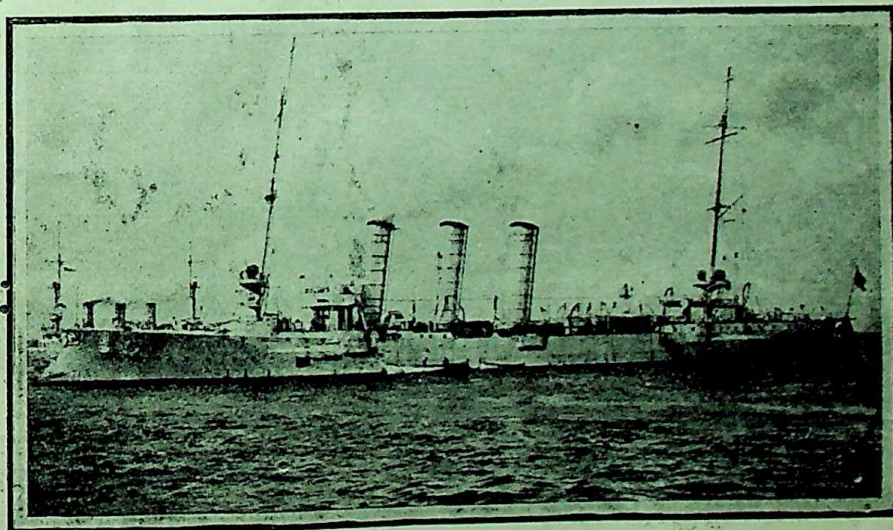
बंगालकी खाडीमें उपद्रव करनेवाला
सुप्रसिद्ध जर्मन क्रूज़र 'एमडन्.'

'रॉयल' तोफखानेंका वीर.
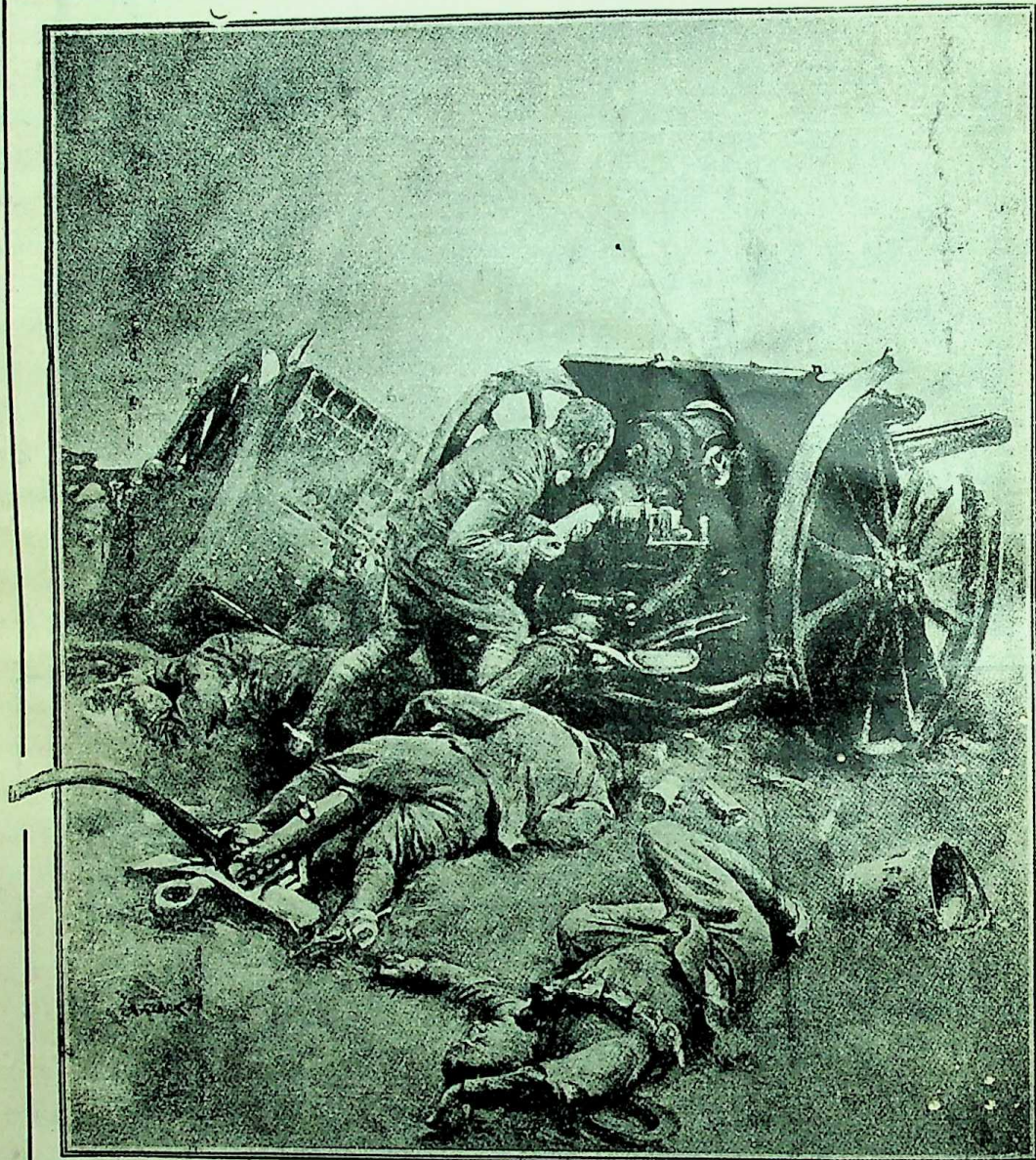
एक ब्रिटिश तोफखानेके वीर गोलोंकी वर्षा कर रहे थे। जर्मन गोलन्दाज़ोंने एकदम भीषण गोला बरसाये। एकसौ छोड़कर बाकी सब ब्रिटिश तोपखानेवाले मारे गये। किन्तु वह वीर अपनी जगह से हटा नहीं और बराबर गोलन्दाजी करता रहा।

सामुद्रिक लड़ाई ।*

[अनुवादक—श्रीयुत राजाराम ।]

४ अगस्त को लड़ाई छिड़ते ही यह मालूम हो गया था कि ग्रेट-ब्रिटेन को १०० वर्ष के अन्दर ही फिर एक बार सामुद्रिक लड़ाई का सामना करना पड़ेगा। ईश्वर की कृपा से युद्ध घोषणा होते ही जंगी बेड़ा भी लड़ाई के लिए तैयार करा लिया गया था, जिससे कि यह शीघ्रता से काम में लाया जा सके। इस कार्य का परिणाम सब पर बिदित ही था। इसका पहिला काम शत्रु के बेड़े को तलाश करना और हराना है और दूसरा इङ्गलैंड के समस्त व्यापारी मार्गों की रक्षा करना है। युद्ध की घोषणा होने के तीन घंटे के अन्दर ही ब्रिटिश जलमग्न जहाज़ हेलिगोलैंड की खाड़ी में जाँच करते नज़र आते थे। यहीं से युद्ध में इस नई डोंगी का प्रयोग आरम्भ होता है और दोनों ओर की लड़ाई के इतिहास ने यह बात दिखला दी है कि आधुनिक सामुद्रिक लड़ाइयों में जलमग्न जहाज़ और हलके क्रूज़र, ये दोनों ही बड़े ज़ोरदार और काम की चीज़ें हैं। इसका पहिला कार्य ५ अगस्त से प्रारम्भ होता है। उस दिन उत्तरी सागर में गश्त लगाते हुए 'ऐम्फियन' नामी जहाज़ ने जिसके कप्तान मि० फाक्स थे, जर्मन सुरंग लगानेवाले कोनिगन-लुई जहाज़ को डुबोया था। अभाग्य से उसी दिन थोड़ी ही देर बाद स्वयं ऐम्फियन भी सुरंग से टकराकर डूब गया। इस घटना से पता लगता है कि जल-सेना को तैयार होते कुछ भी देर न लगी थी। उसी दिन सन्ध्या समय २० जर्मन जहाज़ पकड़ कर ब्रिटिश बन्दरगाहों में लाये गये थे। इससे अब यह सिद्ध होता है कि बेड़े के दूसरे कार्य पर भी ध्यान दिया गया था। ८ अगस्त को उत्तरी सागर में एक जर्मन जलमग्न जहाज़ डुबोया गया और अन्य जहाज़ों को गिरफ्तार न करने का केवल यही कारण था कि वे अपने २ सुदृढ़ बन्दरगाहों में ही डटे रहे और बाहर नहीं निकले थे। युद्ध छिड़ने के एक सप्ताह के अन्दर ही नौ-सैन्य विभाग ने २४ "व्यापारी क्रूज़रों" को कुछ दिनों के लिए मोल ले लिया। इन व्यापारी जहाज़ों को शत्रु के समस्त व्यापार को व्यापारी मार्गों से हटाने और ब्रिटिश व्यापार को जारी रखने ही के लिए राजपत्र दिया गया है। इन्होंने अपना कार्य कैसा अच्छा किया है इसका पता ब्रिटिश बन्दरगाहों में लाये हुए जहाज़ों और जर्मन क्रूज़रों द्वारा डुबोये गये अङ्गरेज़ी जहाज़ों की संख्या देखने ही से लग सकता है। ८ अगस्त और १४ अगस्त के बीच में जल-सेना ने युद्ध के इतिहास में बड़ा ही अद्भुत कार्य कर दिखाया है। ब्रिटिश सेना बिना किसी रोक टोक और शत्रु के हमले के फ्रांस में सहीसलामती पहुंचाई गई थी।

इस सफलता के प्राप्त होने का कारण जर्मन तटों को पूर्णतया बन्द कर देना और सामुद्रिक उड़ाऊ सेना और ८वें जलमग्न फ्लो-टिला की चौकसी ही थी।

यह जहाज़ सेना भेजे जाते समय अपने २ स्थानों पर रात दिन पहरा देते थे। ऐसे समय में और २ भी स्थानों में उड़ाऊ सेना ने भेद लाने में अच्छा काम किया है।

अब तक जल सेना ने अपनी कार्यकारिता ऊंचे दरजे की दिखलाई थी, परन्तु सामुद्रिक लड़ाई में यह किस प्रकार काम कर सकेगी

* "इन्डियन रिव्यू" से।

इसे दिखाने का इसे अभीतक कोई मौका न मिला था। आखिर २८ अगस्त को यह समय भी उपस्थित हो हुआ। बृटिश जलमग्न जहाज़ हेलिगोलैण्ड के आगे जर्मन बेड़े की कार्यवाहियों की खबर लाये और इसी कारण 'अरथ्यूसा' के कप्तान टिरन्हिट को एक विध्वंसी फ्लोटिला, जिसकी रक्षा हल्के क्रूज़र और लड़ाई के क्रूज़र करते थे—के साथ उनके और जर्मन तटों के बीच जाने का प्रयत्न करना ही पड़ा। घनघोर घटा होने के कारण वे लोग ऐसा करने में समर्थ हुए और जर्मन जहाज़ों को पीछे हटने के लिए उन लोगों ने मज़बूर किया। लड़ाई होने पर अंगरेज़ों की ओर न कोई जहाज़ ही नष्ट हुआ और मृत्युसंख्या भी सौ से कम ही रही। इसके अतिरिक्त बृटिश स्क्वाडनों ने दो जर्मन विध्वंसी जहाज़ और तीन क्रूज़र डुबो दिये और ३०० मनुष्य भी गिरफ्तार किये।

इसके अनन्तर फिर जर्मनों ने अपने क्रूज़रों और विध्वंसी जहाज़ों के ज़रिये धावा करने का साहस न किया। इस प्रकार अगस्त मास के अन्त तक समुद्र में ग्रेटब्रिटेन ही का पक्ष बलवान रहा। जर्मन लोग उत्तरी सागर से भगा दिये गए और उनका व्यापार बिलकुल चौपट हो गया। अबतक उत्तरी सागर में कुछ जर्मन क्रूज़र थे परन्तु वे बिचारे डूबते हुए जहाज़ों की रक्षा में लगे हुए थे, क्योंकि वे उन्हें किसी भी बन्दरगाह में नहीं ले जा सकते थे।

इस प्रकार इन जहाज़ों के मालिकों को पूरी हानि हो रही थी और उधर जर्मनी भी इनसे कोई लाभ नहीं उठा सकता था।

५ सितम्बर को पथप्रदर्शक नाम का एक हल्का क्रूज़र उत्तरी सागर में सुरङ्गों को बहाते समय एक सुरङ्ग से टकराकर डूब गया। इसका बदला बृटिश जलमग्न जहाज़ 'ई-६' ने जर्मन क्रूज़र हेलट को डुबो कर लिया था।

२२ सितम्बर को तीन बृटिश क्रूज़र, आबूकीर, क्रीसी और हो जलमग्न जहाज़ों से डुबाये गये।

यह ठीक २ नहीं मालुम कि धावा करनेवाले जहाज़ों में से भी एक या दो डुबाये गये थे या नहीं। इन छोटी २ लड़ाइयों में अच्छी २ जानें अवश्य गईं, परन्तु इसका लड़ाई पर कुछ भी असर नहीं हो सकता। बिना खुले समुद्र में आये जर्मनी को कदापि इन छुट्टा लड़ाइयों से विजय नहीं प्राप्त हो सकती और यही एक बात जर्मनी करना भी नहीं चाहता। ६ अक्टूबर को 'ई-६' ने ऐम्स की खाड़ी में एक जर्मन विध्वंसी जहाज़ पर आक्रमण करके अपने अद्भुत बल का फिर परिचय दिया; इतना ही नहीं वरन् उसे डुबाने के बाद वह सही सलामत लौट भी आया। यह बड़ी बहादुरी का काम था क्योंकि इसका मतलब यह है कि अंगरेज़ लोग घूम कर ठीक उनके पीछे चले गये थे।

१५ अक्टूबर को 'हावेक' नामी जहाज़ को एक जर्मन जलमग्न जहाज़ ने बहुत से मल्लाहों सहित डुबो दिया था। इसका भी बदला खूब अच्छी तरह हालैंड के तट के आगे लिया गया। १६ अक्टूबर को 'अनडान्टेड' नामी क्रूज़र ने जिसके कप्तान फाक्स थे चार विध्वंसी जहाज़ों को साथ लेकर केवल डेढ़ घंटे ही की लड़ाई में चार जर्मन विध्वंसी जहाज़ों को डुबो दिया। बचने के हज़ार प्रयत्न करने पर भी जर्मन लोग घेर लिये गये और लड़ने के लिए मजबूर किये गये। वे बहादुरी से लड़े, और शेष ३० मनुष्य बन्दी हो गये। युद्ध में यह दूसरी बार सामुद्रिक लड़ाई हुई थी, और इसमें भी जर्मनों की निशानेबाजी अच्छी न होने के कारण अंगरेज़ों को कुछ भी हानि न हुई।

उत्तरी सागर में १८ अक्टूबर को इंग्लिश ज़लमग्न जहाज़ 'ई-३' का डूबना समुद्र की

अन्तिम घटना थी। वेलजियन तट के आगे १६ ता० से लेकर जल-सेना मित्रों का साथ दे रही है। इसका कारण जर्मनों को समुद्रतट पर अधिकार जमाने से रोकना है। यह कार्य इतना अच्छा हुआ है कि इससे जर्मन खाइयां बिलकुल बचाव रहित हो गई हैं। एक ज़ेपलिन और एक वायुयान भी नष्ट हुआ है। इस कार्य के लिए नौ-सैन्य विभाग ने 'मानिटरों' (एक क़िस्म के छोटे जहाज़) की सहायता ली। यह युद्ध के आरम्भ ही में खरीदे गए थे। यह जहाज़ वास्तव में नदी ही के काम के हैं और यह इतने हलके होते हैं कि आवश्यकता पड़ने पर ये किनारे पर भी लाये जा सकते हैं।

प्रत्येक जहाज़ में दो ६ इंच की तोपें लगी रहती हैं। इन सब बातों को देखते हुए यही कहना पड़ता है कि पिछले तीन महीने से हमारा बेड़ा अच्छा काम कर रहा है। इसका प्रधान काम जर्मन बेड़े को हानिकारक न होने देना था।

इसके अतिरिक्त ब्रिटिश बेड़ा जर्मन और आस्ट्रियन जहाज़ों को समुद्र से हटाने; सेनाओं को पहुंचाने और लुटेरे जर्मन क्रूज़रों से व्यापारी मार्गों को साफ करने में बड़ी चतुराई से लगा रहा।

कुछ वृटिश व्यापारी जहाज़ भी डुबोये गये हैं। इन सब में प्रधान लुटेरा 'एमडन' था जिसने २२ सितम्बर को मद्रास पर गोले बरसाकर अपना ढंग ही बदल दिया था और जो आखीर में सिडनी नाम के ब्रिटिश जहाज़ का शिकार हुआ। दूसरे जहाज़ अन्य व्यापारी मार्गों पर भी वैसा ही कर रहे हैं। सब मिलाकर करीब २७ ब्रिटिश जहाज़ डूब चुके हैं।

अब तक नौ जर्मन क्रूज़रों का पता लग चुका है और मित्रों के ७० जहाज़ उनकी खोज में भेजे गये हैं। जर्मनों ने भी व्यापारी जहाज़ों को कुछ दिन के लिए ठेके पर ले लिया है और इनमें के दो 'हाईफलायर' और 'कारमीनिया' नामी जहाज़ों से डुबाये भी जा चुके हैं।

कठिनाई यह है कि यूनाईटेड स्टेट्स स्वजातियों को निष्पक्षता भंग करने से रोक नहीं सकती, क्योंकि उसके यहां ऐसा करने के लिए कोई कानून नहीं है।

साथही साथ हम लोग एक एमेरिकन को जर्मन जहाज़ों को कोयला देने से रोक भी नहीं सकते क्योंकि यह डर लगा रहता है कि वह कहीं पकड़ न लिया जाय।

इसके अतिरिक्त जल-सेना जर्मन उपनिवेशों पर आक्रमण करने में लगी रही। चीन में जापान कियाओ-चौ लेने में लगा है; प्रशान्त महासागर में जापान, आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैण्ड ने जर्मन द्वीपों पर अधिकार कर लिया है; एफ्रिका में ग्रेटब्रिटेन और फ्रान्स ने प्रायः जर्मन उपनिवेशों के समस्त बन्दरों पर कब्ज़ा कर लिया है।

यद्यपि मेडिट्रेनियन सागर में ब्रिटिश बेड़े ने लड़ाई में कुछ भाग लिया है, परन्तु ज़्यादातर लड़ाइयां इन सागरों में फ्रान्स ही ने लड़ी हैं।

उसने आस्ट्रियन बेड़े को जो दूसरे दर्जे के जहाज़ से कुछ अच्छा नहीं था बिलकुल निकम्मा कर दिया और इस समय वह आस्ट्रिया के मार्ग को बन्द करने में लगा हुआ है।

गोवेन और ब्रेसलो नाम के दो जर्मन क्रूज़र जिन्होंने एक अरक्षित नगर को ध्वंस करने के बाद डार्डिनेलज़ में शरण ली थी, अन्त में शत्रु ही निकले।

यह ख्याल किया जाता है कि टर्की ने उन्हें खरीद लिया है परन्तु ऐसा भी कहा जाता है कि उनपर मल्लाह अभी तक जर्मन ही हैं। इन सब बातों से ठीक २ परिणाम

निकालना अभी बहुत दूर है। परन्तु तौभी यह प्रगट है कि इङ्गलैंड के लिए बड़ी नौ सेना की नीति का अनुकरण करना श्रेय होगा। युद्ध छिड़ने के कठिन समय में इसी से हमारी रक्षा हो सकी है। इसके लम्बान चौड़ान ही को देखकर शत्रु भयभीत हो गया है। इसीने जर्मन व्यापार को समुद्र से बिलकुल हटा दिया और इसी के ज़रिये से ग्रेट ब्रिटेन, उसके मित्रों और निरपक्ष रियासतों की रक्षा हो सकी है। जब तक समुद्र हमारा दबदबा है, तब तक मित्रों ही की जीत होगी इसमें कुछ भी सन्देह नहीं।

बेलजियम के जातीय गीत का भाषान्तर।

[लेखक—श्रीयुत जगन्नाथप्रशाद चतुर्वेदी।]

दासपने के दिन हैं बीते,
आखिर बारी आई है।
बेलजियम की ऊंची गर्दन,
सुयश धजा फहराई है॥

अपने राजपाट की रक्षा
अपने बल से करो अभी।
तजो भीरुता, करो वीरता
होगा सच्चा काम तभी॥
"नृप, स्वतन्त्रता विधि"* लिख
अपनी धजा पुरानी फहराओ।
पद पीछे मत धरो भूलकर,
विजय करो औ सुख पाओ॥ १॥

राजमुकुट है जैसा वैसा
दिखलाओ साहस अनुपम।
श्रम से खुश भगवान तुम्हारे
औ रक्षक वह हैं हरदम॥

उपजाऊ है भूमि तुम्हारी
श्रम फल बहु गुन पाते हो।
"नृप, स्वतन्त्रता, विधि" का आसन
जमा कला पर गाते हो॥ २॥

वह रिपु जो थे सुहृद पुराने
प्रेम दिखाने आते हैं।
है स्वातन्त्र्य जहां तक उसको
कंचन सा अपनाते हैं॥

बेलजियम बटेवियावासी
भ्रातृभाव से बँध जावें।
"नृप, स्वतन्त्रता, विधि" को मिलकर
ऊंचे सुर से सब गावें॥ ३॥

बेलजियम माता के आगे
आज प्रतिज्ञा करते हैं।
नहीं घटेगा प्रेम हमारा
दम उसका ही भरते हैं॥
वह आशा औ कुशल हमारी,
हृदय रक्त उसके अर्पन।
प्रान तजें रक्षा में उसकी
है तुझसे बिनती भगवन॥

"नृप, स्वतन्त्रता, विधि" का सब दिन
करें चिन्ह अब हम धारन।
घर बाहर, सुख दुख में निस दिन
होय इन्हीं का उच्चारण॥ ४॥

---

* Kifig, Liberty, Law.

जीवन का मूल्य।*

[लेखक–श्रीयुत श्रीराम मा...

बिना नौकरी की पेंशन।

फ्रांस व इटली सीमाप्रान्त पर भूमध्यसागर के तीरवर्ती एक बहुत छोटा सा स्वतन्त्र राज्य है—उसका नाम मोनाको है। इस छोटे से स्वतन्त्र राज्य की तुलना में अन्य देशों के साधारण नगर भी जनसंख्या में अधिक पाये जायँगे। यदि मनुष्यगणना की जाय तो यह मुश्किल से ७००० से अधिक किसी प्रकार से भी न होगी। यदि राज्य का जनसमुदाय समभाव से विभाग किया जाय तो प्रति मनुष्य के हिस्से एक एकड़ भूमि भी न पड़ेगी, ऐसे इस राज्य का एक राजा था। राजा के लिए सुन्दर राजमहल था, भव्य सभामन्दिर था, उसमें सभासद थे, धन के याचक थे, शान्ति-रक्षा के लिए सैन्याध्यक्ष था तथा एक छोटी सी फौज की पल्टन भी थी।

यद्यपि फौज थी परन्तु फौज में कठिनता से ६० मनुष्य होंगे तथापि थी वह स्वतन्त्र राज्य की स्वतन्त्र फौज! अन्य देशों की तरह इस राज्य में भी प्रजा को कर देना पड़ता था, प्रति मनुष्य पीछे राज्य कर वसूल किया जाता था। मादक द्रव्य से भी कुछ चुङ्गी वसूल की जाती थी कारण यहां के लोग भी शराब या तमाकू के कम शौकीन न थे। परन्तु यह सब करने पर भी जनसंख्या इतनी कम थी कि केवल कर के भरोसे राज्य की रक्षा होनी कठिन थी अतः राजा को राज्य रक्षा के निमित्त धन के लिए एक नया उपाय ढूंढ़ना पड़ा। राज्य में एक जुए का अड्डा स्थापित हुआ, लोग वहां पर बाज़ी लगाकर रुलेट (Raullete † खेलने लगे। बहुत लोग जुआ खेलने को पहुंचने लगे, कोई जीतता था, कोई हारता था परन्तु अड्डाधारी को हमेशा लाभ ही था। उस माल की आमदनी से राजा की नज़र ली जाती थी। इस प्रकार राजा को अच्छी आमदनी हो जाती थी कारण यूरोप में अन्य राज्यों में सभ्यता के लिहाज़ से जुआ खेलना मना था। जर्मनी के किसी २ स्थान में जुए के अड्डे थे परन्तु उन्हें भी धीरे २ राजा को उठा देने में बाध्य होना पड़ा, कारण जुए का परिणाम किसी से अविदित नहीं है। लोग जुए के नशे में अपना तथा पराया सब खो डालते हैं फिर नुकसान होने से अथवा देना चुकाने से असमर्थ होने से कोई जल में डूब कर, कोई गोली मारकर अपने जीवन को समाप्त करता है, इसलिए जर्मनी के सभ्य लोगों ने दबाव डालकर इस कुरीति को बन्द करवा दिया। परन्तु मोनाको के राजा को रोकनेवाला कोई नहीं था, उसकी इस विषय में पूर्ण क्षमता थी।

जिसको जुए का नशा चढ़ता वह फौरन मोनाको पहुंचता। लोग चाहे हारें चाहे जीतें राजा का लाभ अवश्य था। राजा के लिए यह कोई गौरव की बात न थी। राजा इसे जानते थे पर वे लाचार थे। वे जानते थे कि "धर्माचरण द्वारा कठोर परिश्रम से भी वे राजप्रासाद नहीं बनवा सकते।" अन्त में "आत्मानं सततं रक्षेत्" इस नीति के अनुवर्ती होकर धन के

---

* फ्रांसीसी गल्प के आधार पर बंगला से अनुवादित।

† यह खेल टेबिल पर गेंद द्वारा खेला जाता है। टेबिल के बीच में एक बड़ा गोल गढ़हा रहता है, उस गढ़हे में एक घूमती हुई तस्तरी रहती है जिसमें लाल व काले घर बने रहते हैं। गेंद कभी लाल व कभी काले घर पर गिरता है इसी पर बाजी लगती है।

उपार्जन के लिए राजा इस पथ का त्याग न कर सके।

समय २ पर मोनाको में भी अभिषेकोत्सव होते थे, दरबार होते थे। रियाया को भले बुरे कामों पर तिरष्कार व पुरष्कार भी मिलता था। सिपाही राजा के सामने नकली लड़ाई भी करते थे। शान्ति रत्ता के लिए कानून अदालत की भी कमी न थी। ठीक और राज्यों की तरह से ही कार्य होता था परन्तु एक छोटे स्वरूप में!

कुछ दिनों की बात है इस अजनबी राज्य में एक खून हुआ। मोनाको के अधिवासीगण बड़े शान्तिप्रिय थे। ऐसी घटना आजपर्यन्त पहिले कभी नहीं हुई थी। खूनी के विचार करने के लिए जज साहब गम्भीरता के साथ न्यायासन पर विराजमान हुए। उनकी सहायता के लिए नगर के कई जूरी भी बुलाये गये। उभयपत्त के विद्वान वकीलों की तेजस्वी बहस भी कुछ काल तक जारी रही। अन्त में जूरी ने एकमत होकर यह निश्चय किया कि कानून के अनुसार खूनी का सर धड़ से अलग कर दिया जाय। राजा ने दुखी होकर "यदि मनुष्य का प्राण बध करना ही है तो करो" कह कर दंड का अनुमोदन किया। यहां तक सब कार्य ठीक २ हुआ।

परन्तु अब दण्डाज्ञा को पूर्ण करने में एक बाधा उपस्थित हुई। उस राज्य में कोई जल्लाद न था और न कोई फांसी का यंत्र ही था। मंत्रीगण बड़े २ विचार कर फरासीसी राज्य के शरणागत हुये। लिखा गया कि यदि फरासीसी राज्य एक जल्लाद और फांसी देने का सरंजाम भेजने की कृपा करे तो जो कुछ खर्च लगेगा उसे मोनाको के राजा हर्षपूर्वक देना स्वीकृत करेंगे व उपकृत होंगे" फरासीसीराज्य से उत्तर मिला—फरासीसी राज्य जल्लाद व फांसी के यंत्र को भेज सकता है परन्तु खर्च सिर्फ १६०००) रुपया लगेगा। राजा के पास खबर पहुंची। राजा सुनकर चुप हो गये। एक मनुष्य की फांसी और १६०००) का खर्च! राजा ने कहा—भाई एक मनुष्य का मूल्य इतना अधिक नहीं हो सकता! मनुष्य पीछे २) से भी अधिक! इसके लिये नया कर लगाना पड़ेगा, गरीब प्रजा इस अपव्यय को कदापि सहन न कर सकेगी और दंगा उत्पात का होना भी संभव है।

तब राजा ने एक सभा की, निश्चय किया कि इटाली के राजा को चिट्ठी लिखी जाय। फ्रांस में प्रजातंत्र शासनप्रणाली है, वे राजा का मान करना क्या जानें। इटली के राजा तो उनके जाति भाई हैं आशा है सस्ते में काम निपट जायगा। इटली के राजा ने उत्तर दिया सहर्ष जल्लाद व फांसी का सरंजाम दे देंगे आपको १२०००) रुपया खर्च देना पड़ेगा। अब मुनाको के राजा बड़े असमञ्जस में पड़े। यद्यपि मूल्य सस्ता है तथापि एक दुष्ट के बध के लिए इतना खर्च कदापि न होगा। इसमें भी तो जन प्रति २) रुपये से कुछ कम कर लगाना पड़ेगा। फिर सभा एकत्रित हुई कि क्या करने से खर्च कम लगे। क्या कोई सिपाही किसी प्रकार से काय को नहीं कर सकता! सेनापति से इस विषय में पूंछा गया, लड़ाई में तो सिपाही लोग कितने मनुष्यों का बध करते हैं। सेनापति ने सिपाहियों से पूंछने का वचन दिया। कोई भी सिपाही इस काम को करने में राज़ी न हुआ, उन लोगों ने कहा कि वे जल्लाद का काम नहीं कर सकते।

अब क्या किया जाय? सभा हुई। बड़े तर्कवितर्क के बाद यह निश्चय हुआ कि फांसी के बदले असामी को यावज्जीवन कारावास का दण्ड हो इससे राजा की दया भी प्रकट होगी व खर्च भी कम लगेगा।

इस प्रस्ताव पर राजा ने अपनी अनुमति दिखाई। कैदी को यावज्जीवन कैद करने का

उद्योग होने लगा, परन्तु अब एक नया विघ्न उपस्थित हुआ कैदी को यावज्जीवन कैद रखने के लिये सुदृढ़ कारागार कहां ? जो कैदखाना था उसमें साधारण कैदी अस्थायी भाव से रक्खे जाते थे। परन्तु राज्य में यावज्जीवन कैदी को रखने का कोई स्थान न था। अन्त में एक स्थान निर्दिष्ट हुआ। वहां पर वह युवा खूनी कैद किया गया। कैदी की खबरदारी के लिए एक प्रहरी भी नियुक्त हुआ। वही मनुष्य राजा के राजगृह से कैदी को खाने के लिए भोजन ले जाया करता था।

कैदी का जीवन भी मास पर मास उसी कारागार में कटने लगा। इस प्रकार एक वर्ष बीत गया। वर्ष के अन्त में एक दिन राजा अपने राज्य का हिसाब देख रहे थे। बही में एक नयी रकम उनके नज़र पड़ी। कैदी के भोजन में और चौकीदार के वेतन आदि में प्रायः ६००) रुपये अधिक वर्ष में खर्च होगये थे। विशेष आशङ्का इस बात की थी कि कैदी हृष्ट पुष्ट निरोगी था, उसके अभी ५० वर्ष और जीने की आशा थी। राजा ने मंत्री को बुलाया और कहा "इस एक दुष्ट के लिए इतना खर्च नहीं हो सकता और कोई उपाय सोचिये।

राजसभा में इस विषय के सम्बन्ध में फिर सलाह हुई। भांति भांति के तर्क वितर्क हुये। एक ने कहा-"प्रहरी को छुड़ा देने से खर्च घटेगा" दूसरे ने प्रतिवाद किया "कैदी भाग जायगा।" परन्तु भाग के जायगा कहां? अतः यही निश्चय हुआ कि प्रहरी छुड़ा दिया जाय। प्रहरी उसी दिन से छुड़ा दिया गया।

दूसरे दिन कैदी ने प्रहरी को न देखा। पेट में भूख की आग धीरे २ तेज होती देख कैदी को कोई उपाय न सूझा और वह स्वयं राजगृह से खाना लेने चला। खाना लाकर, कारागार का उसने दरवाज़ा बंद किया और कैदखाने से उसके भागने की कोई आसार नहीं दिखाई दिया। कैदी बड़े आराम और शान्ति से जीवन बिताने लगा। भूख लगने पर राजमहल से भोजन ले आता और फिर दिन भर वह चैन से काटता था! अब क्या करना चाहिये? फिर मंत्री की पुकार हुई।

सभासदों ने कहा महाराज कैदी को साफ़-साफ़ कह देना चाहिये कि उसे हम लोग कैद नहीं रखना चाहते। तब मंत्री ने कैदी को बुलवाया और कहा-"अब चौकीदार तो है नहीं तुम भाग क्यों नहीं जाते? अब तुम जहां चाहो जा सकते हो, राजा कुछ न कहेंगे। कैदी ने कहा "राजा को मेरे जाने में कोई आपत्ति नहीं है यह संभव है, परन्तु अब मेरे जाने का स्थान कहां है? मैं निरुपाय हूं। आप लोगों ने मेरे ऊपर वधाज्ञा देकर मेरे चरित्र में कलङ्क लगाया है। अब मैं जहां जाऊंगा वहां ही मेरी ताड़ना होगी, मेरा अपमान होगा। इसके सिवा बैठे बैठे आपका अन्न खाने से मेरी कार्य करने की शक्ति जाती रही है। आप लोगों ने मुझ गरीब पर बड़ा अन्याय किया है जब मुझे प्राणदण्ड की आज्ञा हुई थी तब मेरा अन्त करना ही उचित था परन्तु आपने वैसा नहीं किया! मैंने इसके विरुद्ध कोई अभियोग आप पर नहीं चलाया। इसके बाद आपने मुझे यावज्जीवन कारागारवास का दण्ड दिया, मुझपर कठिन पहरा रक्खा। प्रहरी मुझे भोजन ला देता था परन्तु धीरे धीरे वह भी बंद हुआ। मैं स्वयम् कष्ट सह कर राजगृह जाकर आहार ले आता था, तब भी मैंने आपसे कुछ न कहा, अब आप लोग मुझे भगाना चाहते हैं। मैं इसमें कदापि राज़ी नहीं हूं। महाराज जो चाहें करें मैं राज्य से जाने में कदापि राज़ी नहीं हूं।

मंत्री फिर चिन्ता में पड़ा। कैदी किसी प्रकार से भी जाना नहीं चाहता। सभासदगण बहुत विचार करने पर भी कुछ निश्चय न कर सके। कैदी को पेंसन देने की बात होने लगी। कारण, इसके सिवा और कोई उपाय ही

नज़र नहीं पड़ता था। सब यही चाहते थे कि किसी भी प्रकार से जान बचे। लाचार होकर कैदी के लिए राजा ने ६००) वार्षिक पेंसन का बंदोवस्त किया।

कैदी ने यह सुनकर कहा "महाराज मुझे यदि नियमित रूप से पेंसन मिलती जाय तो राजाज्ञास्वीकार करने में हमें कोई आपत्ति न होगी"। इस प्रकार इस मामले का अन्त हुआ। कैदी एक तिहाई रुपया पेशगी लेकर राज्य त्याग करके रेलगाड़ी पर चढ़कर १५ मिनट में मोनाको राज्य की सीमा से बाहर हो गया। सीमान्त देश में एक ग्राम में कुछ ज़मीन खरीद कर वहां वह रहने लगा। ज़मीन से उत्पन्न तरकारी, भाजी को बाज़ार में बेंचकर धीरे धीरे वह दो पैसे का रोज़गार भी करने लगा। अब वह बड़े आराम से जीवन विताता था। पेंसन का रुपया वसूल करने के लिए ठीक समय से मोनाको के राजगृह के सम्मुख वह हाज़िर हो जाया करता था। पेंसन के रुपयों से राजगृह से लौटते समय वह जुए के अड्डे में भी दो चार हाथ खेल लिया करता था। कभी जीतता था कभी हारता था। संध्या होते २ वह अपने देहाती घर पर पहुंच जाता और अपने शान्तिमय जीवन को व्यतीत करता था।

भारत-वन्दना।*

[लेखक—पं० जीवानन्द शर्मा (काव्यतीर्थ)।]

द्वितीय दिन की कविता।

दिन दिन सुख शान्ति लहै जननी मम प्यारी।

जासों हरिचन्द पूत जनम्यो अर्जुन सपूत
राम कृष्ण गोद लहैं ऋषियन महतारी॥

हिमगिरि अरु विंध्यशिखर जाके शिर मुकुटकोट
नदिअन कवरीकलोल मलय गन्धवारी।

ब्रह्मचर्य की प्रसूति दर्शन को आदि भूमि
रतननि की खानि ज्ञानभक्ति कोखधारी॥

करमें इकशश्य लहैं दूजे कर शोभित श्रुति
तीजे कर में रसाल चौथ अभयकारी।

जाके पगु धोइ धोइ वारिधि निज भाग लहैं
झरननि अन्हवावै नग ऋतुन जिहिं सिंगारी॥

कान्हरा सहाना झपताला।

आओ ज़नम भू की आरती उतारो।

हिन्दू मुसलमान चाहे किरिस्तान
सब सुत इकट्ठे हो माता उद्धारो।

बाती स्वदेशी परम प्रेम घृत डालि
विज्ञान की ज्योति जगमग उज्यारो॥

प्रफुलित हृदयकञ्ज चरननि अरपि आज
एकै सुरनि मातु जय जय उचारो।

गाड़ो ध्वजा एकता की परम रम्य
ऊंचे सिंहासन पै माता बिठारो॥

देश तीनताला।

शक्ति कउ घूमति घूमि जगावति।

उठहु उठहु प्रिय भारतवासी
सब कह कहि समझावति॥

सबहि नवल उत्साह दिलावति
सब कहँ मन अकुलावति।

हृदय कमल विच बहत झकोरनि
वायु अगिनि उकसावति॥

एक भाव लै सबहि मिलावति
मानस जाइ हिलावति।

---

* यह कविता, हिन्दी साहित्य सम्मेलन में पढ़ी गई थी।

नस नस में पुनि देति गुदगुदी
धमनिन रुधिर चढ़ावति ॥
विज्जुशक्ति कड तन दौड़ावति
कारज शक्ति बढ़ावति ।
मंत्र फूंक दै सवनि उठावति
आलस रिपुहि भगावति ॥

तीसरे दिन की कविता ।

(काफी, वा कान्हरा) उलहना—
सुनौजो भारत के तुम बीर ।
मेरी गोदी में तव पितरन पल्यो रह्यो बिनु पीर ॥
मेरे हित दधीचि ने हड्डी कवच कर्ण ने दीने ।
श्रीअभिमन्यु प्राण दै डारे प्रिय प्रताप प्रन कीने ॥
पद्मावती आदि बेटी सब मम हित तनहि जलाये ।
निज पीठन पै बांधि शिशुन को लड़ि लड़ि प्राण गँवाये ॥
जीवानन्द कहो अब किहिकृत भूले मोहि तुम प्यारे ।
छिन्न भिन्न सी अब हो रही हूं किहि विधि जीवन धारे ॥

भारत के कन्याओं का भारतमाता के प्रति आश्वासन—

सहैंगी सहैंगी विपत्ती का सदमा ।
यह माता खड़ी रोरही मातृभूमी .
हमीं इसका आंसू पोछैंगी पोछैंगी ।
ये सूखी हुई आर्यकीरति की पोखी
हमीं प्रेम जल से भरैंगी भरैंगी ॥
धरम पंथ पै ये जो कांटे बिछे हैं
उन्हें हम मसल कर चलैंगी चलैंगी ।
कला का कमल हिन्द में सूखा जाता
उन्हें लहलहे हम करैंगी करैंगी ।
हमीं डूबती हिन्द की नाव को झट
भँवर से बचावा करैंगी करैंगी ॥

प्राचीन भारतवर्ष में युद्ध ।*

[लेखक—पं० प्रयाग प्रसाद त्रिपाठी ।]

प्राचीन भारतवर्ष में युद्ध जातीय व्यवहारों में स्वाभाविक थे । प्राचीन आर्यों में एक दूसरे से वादाविवाद बहुधा उठा ही करते थे तथा इनका सम्बन्ध ऋग्वेद में पाया जाता है यथा वशिष्ठ तथा विश्वामित्र के सम्बन्ध में । आर्य जाति तथा इस देश के प्राचीन निवासियों से नाना प्रकार के युद्ध होते रहे जिससे आर्य जाति संग्रामिक बल में स्थित रही । राक्षस, पिशाच तथा असुरजातियों में इस देश में युद्ध स्वाभाविक थे क्योंकि एक दूसरे पर अपना आधिपत्य चाहते थे। इस समय की आर्य जाति में वर्णव्यवस्था का नियम इतना कड़ा नहीं था जितना कि वर्तमान समय में है। कोई जाति गान विद्या में निपुण थी, कोई यज्ञ में, कोई कला-कौशल तथा वाणिज्य में । एक विशेष जाति रक्षक तथा योद्धा थी। जब परस्पर में भेदभाव का आरम्भ हुआ तो प्रथम ब्राह्मण तथा क्षत्री में भेद माना जाने लगा। जिसका विशेष विवरण कठोपनिषद् में पाया जाता है।

प्राचीन भारत के देवता भी युद्ध में निपुण थे । योद्धा इन्द्र ने वृत्र, शुष्ण, पिप्रू, शम्बर

* 'इन्डियन रिव्यू' के आधार पर ।

तथा अन्य शत्रुओं का वध किया। उसने उन जातियों का नाश किया जोकि कटुभाषी थीं और उन जातियों के सात दुर्गों को छिन्न भिन्न किया। कविगण उसका गुणानुवाद अपनी कविता में किया करते थे। इसी प्रकार अग्नि, मित्र, वरुण, मारुत, अश्विनी तथा स्वर्गीय वैद्य भी शूरवीर थे तथा युद्धों में प्रसिद्धि प्राप्त करते थे। देवताओं को युद्ध में उत्साहित करने के लिए कविगण कविताओं का गान करते थे। सोमरस पान करने के कारण उनकी शक्ति बढ़ जाती थी।

जब देवताओं के शत्रु माया तथा कूट युद्ध करते थे तब देवता भी उनके विरुद्ध माया का विस्तार करते थे। नास्तिक-शत्रुओं से माया युद्ध करने के कारण इन्द्र देवता की बड़ी स्तुति की गई है, "वृत्र तथा अन्य शत्रुओं के मायापूर्ण युद्ध को उसने माया ही द्वारा नाश किया।" युद्ध में अश्वादि जीव बहुत लाभदायक तथा अमूल्य समझे जाते थे। एक कवि कहता है "मैं आप का शरणागत हूं जैसे योद्धा घोड़े की शरण लेकर युद्ध में जाता है।" सोमलता का रस निकालकर पान किया जाता था तथा देवतागण योद्धाओं को उसे समर्पण करते थे क्योंकि वह "केवल शूरों के पान करने योग्य था" कविगण भी संग्राम में लड़ा करते थे। युद्ध-भूमि में वाण, कमान, तीर, ज़िरहबख़्र, खड्ग, भाले इत्यादि का प्रयोग किया जाता था, तथा योद्धा लोग किसी पक्ष के क्यों न हों बड़े सन्मान की दृष्टि से देखे जाते थे। बड़े २ युद्ध भी यहां पर होते थे, जैसा कि एक जगह लिखा मिलता है कि "एक सौ एक महान दुर्ग नष्ट कर डाले गये" "असंख्य शत्रु पृथ्वी पर मार डाले गये, रुधिर धाराएँ बहने लगीं।" अनुपमेय योद्धा उस समय इस भूमि पर विद्यमान थे। एक श्लोक में बृहस्पति देवता की स्तुति पाई जाती है "वीरेषु वीरम् उपपृग्धि नाहत्वं" "अर्थात् हम तुम्हारी महान कीर्ति वीरों के बीच में गाएँगे, वीरों को उत्तम कीजिये, हम यद्यपि वीर हैं" इत्यादि। उस समय जितने अस्त्र प्रचलित थे उन्हीं का प्रयोग युद्ध में होता था। जब नवीन अस्त्रों का आविष्कार हुआ, यहां के निवासी उन्हें असभ्य तथा पिशाची अस्त्र कहने लगे तथा उनके प्रयोग का घोर तिरस्कार किया। आग्नेयास्त्रों के प्रयोगकर्त्ता को सेना में कोई स्थान नहीं प्राप्त होता था पक्षी तथा विपक्षी दोनों उसका तिरस्कार करते थे। वर्तमान समय में अदृश्य आग्नेयास्त्रों काभी प्रयोग युद्ध में सभ्यता के विरुद्ध किया जाता है। जब मनुष्य विकट अस्त्रों से परिचित होगये तो उनका भी प्रयोग होने लगा। जब युद्ध में अन्य शस्त्र फलरहित हो गये तो इन्द्र देवता ने मायापूर्ण अस्त्रों का प्रयोग कर शत्रुओं का दमन किया जिससे उनकी बड़ी प्रशंसा हुई।

जैसे २ सभ्यता बढ़ती गई, युद्ध विषय स्मृतियों तथा नीतिशास्त्र द्वारा अनुमोदित होने लगा। राज-धर्म पर स्मृतियों में विशेष विस्तारपूर्वक लेख पाये जाते हैं। मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य, विष्णुस्मृति, महाभारत तथा अन्य पुराणों में राज धर्म तथा युद्ध-नियम पर बड़े २ कितने ही लेख पाये जाते हैं। शुक्राचार्य कौटिल्य तथा कामण्डक में सेना विस्तार, समय तथा नियम, मित्र शत्रु का ज्ञान तथा अन्य विषयों पर नाना प्रकार के लेख मिलते हैं। महाभारत (शान्ति पर्व ५७-१००) में युद्ध सम्बन्धी विशेष विवरण मिलता है। उसमें बृहस्पति, विशालाक्ष, प्रचेतसमनु, भरद्वाज, गौरासिर तथा इन्द्र के निर्मित नियम मिलते हैं। ब्रह्मा देवता ने स्वयम् युद्ध-सम्बन्धी बहुत सा विषय विस्तारित किया है।

शुक्राचार्य असुरों के गुरु थे। देवताओं के शत्रु होने के कारण उनके नियम युद्ध विषय में बहुत ही ढीले हैं। युद्ध-धर्म भी है

तथा कूट भी है। मनु ने कूट युद्ध का घोर विरोध किया है किन्तु शुक्राचार्य ने शत्रुनाश के हेतु कूट युद्ध की भी आज्ञा दी है। उनकी सम्मति है कि ये नियम कूट तथा धर्म युद्ध दोनों के लिए हैं। प्रबल शत्रुओं के नाश करने के लिए कूट-युद्ध से बढ़कर अन्य कोई युद्ध नहीं है। उनकी सम्मति है कि रामचन्द्र, कृष्ण, इन्द्रादि देवताओं ने भी कूट युद्ध करके शत्रुओं का दमन किया। उनकी यह भी सम्मति है कि यदि नम्रता, छन्दानुवर्तन (खुशामद) तथा तिरस्कार आदि द्वारा अभिप्राय सिद्ध हो। शत्रुओं के साथ इनका प्रयोग करे अर्थशास्त्र के अनुसार न्याय को आवश्यकता के नीचे स्थान दिया गया है। स्मृतियों में हमें प्रमाण मिलता है कि धर्मशास्त्र का स्थान अर्थशास्त्र के ऊपर है क्योंकि अर्थशास्त्र में "आवश्यकता" ही को प्रधान मानकर मानव-धर्म का स्थान नीचे दिया है।

राजनीति पर कौटिल्य कृत अर्थशास्त्र इसके पश्चात् आता है। चन्द्रगुप्त का मंत्री चाणक्य-कौटिल्य तथा विष्णुगुप्त नामों से पुकारा जाता था। वह ब्राह्मण मन्त्री बड़ा ही विद्वान तथा योग्य था, इसी की नीति से नन्द-वंश का नाश हुआ तथा मौर्यवंश की स्थापना हुई, इसी का निर्माणित राजनीति पर महान ग्रन्थ 'कौटिल्य अर्थशास्त्र' कहलाता है। इस महानुभाव का समय, यदि चन्द्रगुप्त से इसका सम्बन्ध ठीक है तो, चतुर्थ शताब्दी है। 'मुद्राराक्षस' नाटक से इस महाशय की राजनैतिक योग्यता का पूर्ण परिचय मिलता है।

नीतिशास्त्र पर कामण्डक का भी उत्तम ग्रन्थ ध्यान देने योग्य है, इस ग्रन्थ में शासन तथा युद्ध का उल्लेख मिलता है। कामण्डक कौटिल्य का शिष्य था। कामण्डक के ग्रन्थ में १२५० श्लोक हैं तथा कौटिल्य के ग्रन्थ में ६००० श्लोक हैं। इनकी सम्मति है कि "दुर्बल राजा प्रबल शत्रु के साथ कूट युद्ध का प्रयोग करे। शत्रुओं को स्वप्नावस्था में यमपुरी भेजे जैसा कि महाभारत में अश्वत्थामा ने किया है।

युद्ध-विज्ञान पर आने को सीमाबद्ध करने से विदित होता है कि हिन्दुओं में युद्ध में वीरता दिखाने पर बड़ी प्रशंसा की गई है। युद्ध में भागना हिन्दुओं के यहां मृत्यु से भी अधिक अपमानित किया गया है। मनु में देखिये। अ० ७।

समोत्तमाधमै राजा त्वाहूतः पालयन् प्रजाः।
न निवर्तेत संग्रामात् क्षात्रं धर्ममनुस्मरन् ॥८७॥
संग्रामेष्वनिवर्त्तित्वं प्रजानां चैव पालनम्।
शुश्रूषा ब्राह्मणानां च राज्ञां श्रेयस्करं परम् ॥८८॥
आहवेषु मिथोऽन्योन्यं जिघांसन्तो महीक्षितः।
युध्यमानाः परं शक्त्या स्वर्गं यान्त्यपराङ्मुखा ८९

अर्थात्, छोटे नीच ऊंच या बराबर शक्तिशाली राजा राजा द्वारा युद्ध के लिए निमंत्रित राजा प्रजा की रक्षा करता हुआ क्षात्र धर्म को स्मरण करके युद्ध से कदापि पराङ्मुख न हो। युद्ध से न हटना, प्रजापालन, ब्राह्मणों की सेवा, आदि बातें राजा का कल्याण ही करती हैं। एक दूसरे के नाश करने की इच्छा से आने से महान् शक्तिशाली राजा से लड़ते हुए जो राजा मरता है वही स्वर्ग का अधिकारी होता है।

याज्ञवल्क्य में राजधर्म को देखिये:—

य आहवेषुवध्यन्ते भूम्यर्थमपराङ्मुखाः।
अकूटैरायुधैर्यान्ति ते स्वर्गं योगिनो यथा ॥३२४॥
पदानि क्रतु तुल्यानि भग्नेष्वप्यनिवर्तिनाम्।
राजा सुकृतमादत्ते हतानां विपलायिनाम् ॥३२५॥

अर्थात्, जो लोग राज्य की रक्षा के लिए सामने लड़ते हुए मर जाते हैं यदि वे लोग विष से बुझाये शस्त्रों से न लड़ें और संग्राम के समय भय से पीठ न फेरें और अपने राजा के पूरे २ भक्त हों तो ऐसे लोग योगियों के तुल्य स्वर्ग के उत्तम सुख भोगते हैं।

युद्ध में हाथी, घोड़ा, रथादि के टूट फूट जाने वा मरजाने पर भी जो लोग युद्ध से पीठ नहीं फेरते किन्तु अपने राजा के लिए प्राण रहते तक युद्ध करते हैं उनके चलने फिरने में अन्त समय के पग अश्वमेधादि यज्ञ के तुल्य फलदायक होते हैं और जो लोग युद्ध से पीठ फेर के भाग आते हैं उनका जन्म भर में किया हुआ जो पुण्य होता है वह राजा को मिलता है ॥

अब शुक्राचार्य की सम्मति देखिये :—

"इस संसार में दो ही मनुष्य स्वर्ग को जाते हैं, एक योगी और दूसरा युद्ध में शत्र के सन्मुख से न भागनेवाला मनुष्य। श्रुति का अभिप्राय है कि युद्ध में विद्वान, गुरु और ब्राह्मण को भी यदि वह शत्रु हो, मारकर अपनी रक्षा करे। गुरु दयालु होते हैं तथा विद्वान् पुरुष अपराध के विरोधी होते हैं, महान भय के समय उनसे प्रार्थना न करना चाहिये। जो प्राणरक्षा के लिए युद्ध से भागता है वास्तव में वह मर चुका यद्यपि वह जीवित हो तथा सब प्राणियों के पाप अपने ऊपर लेता है। वह मनुष्य जो अपने मित्र को तथा स्वामी को छोड़ देता है और संग्राम भूमि से भागता है नर्क को जाता है तथा जीवित सबके अपमान सहता है। वह मनुष्य जो अपने मित्र को युद्ध में दुःखित देखते हुए भी उसकी सहायता नहीं करता अपमानित होता है और मृत अवस्था में नरक को जाता है (शुक्रनीति ४ अ० ७-३१७-३१८)

शुक्रनीति में यह भी लिखा है कि "यदि स्त्रियों का तिरस्कार हुआ हो या गोवध हुआ हो तो ब्राह्मणों को भी लड़ना चाहिये। युद्ध का भगेड़ू देवताओं द्वारा वध किया जाता है। बिछौने पर क्षत्री की मृत्यु घोर पाप है। भगवद्गीता में कहा है:—

यदृच्छयाचापपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम् ।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभंते युद्धमीदृशम् ॥

अर्थात्-हे पार्थ ! यह समय अपने आप उपस्थित हो गया है, इसमें स्वर्ग का द्वार खुल जाता है, पुण्यवान क्षत्रियों को ही यह युद्ध समागम मिलता है अर्थात् जो क्षत्री युद्ध में मरते हैं वे सीधे स्वर्ग को चले जाते हैं।

हमारे हिन्दू शास्त्रों में अधर्म-युद्ध का तिरस्कार किया है। केवल असभ्यता दर्शाना अथवा न्यायरहित देश-प्राप्ति की इच्छा से युद्ध करना वर्जित है। महाभारत में प्रमाण मिलता है कि "यतोधर्मस्ततो जयः" जहां धर्म है तहां जय है। मनु के अनुसार प्रजा की रक्षा ही क्षत्री का प्रधान धर्म है। राजा को सदैव प्रजारक्षा का उद्योग करना चाहिये। राजा के पड़ोसियों के दो भाग किये गये हैं, शत्रु तथा मित्र। राजा के समीप का अन्य राजा शत्रु समझा जाता है। उसके पश्चात् जो राजा रहता है वह मित्र समझा जाता है, उससे दूरस्थ राजा सामान्य समझा जाता है। मनु से लेकर कामंदक तक शत्रु तथा मित्र के ३ भाग किये गये हैं, सहज शत्रु तथा मित्र, प्रकृत शत्रु तथा मित्र-तथा बनावटी शत्रु और मित्र। मनु के अनुसार शत्र तथा मित्रों पर सदैव राजा को कड़ी दृष्टि रखना चाहिये।

राजाओं में मित्रता के विषय में शुक्राचार्य का मत है कि, "जो राजा बलवान है, जो आक्रमण करनेवाला प्रबल योद्धा है, जो नीतिनिपुण है उनके सभी शत्रु हैं, भीतरी हृदय से उनसे घृणा करते हैं तथा उचित समय की आकांक्षा करते हैं। राजाओं का कोई मित्र नहीं है तथा वे भी किसी के मित्र नहीं हैं। मित्रों की रक्षा तथा शत्रुओं का नाश करना चाहिये। इस अभिप्राय से साम, दाम, दंड, तथा भेद का प्रयोग करना चाहिये। कामण्डक की सम्मति के अनुसार माया का भी प्रयोग होना चाहिये ;" मनु के अनुसार प्रथम साम, दाम, भेद का प्रयोग हो,

यदि इससे शान्ति न हो तो फिर अन्त में दण्ड (युद्ध) का आश्रय लेना चाहिये क्योंकि जय निश्चय होती है किन्तु पराजय बहुधा होती है। इस कारण युद्ध को जहांतक हो सके वर्जना चाहिये। जब पराजय निश्चय हो तो युद्ध से हटना ही उचित है। मित्र-प्राप्ति, राज्यविस्तार प्राप्ति तथा धन-प्राप्ति, ये युद्ध के फल हैं।

मनु की सम्मति है कि धन तथा राज्य-प्राप्ति से मित्र प्राप्ति राजा के लिए बहुत उत्तम है। शत्रु के पराजय करने में छः बातों की राजा के लिए आवश्यकता है, सन्धि करना, युद्ध, युद्ध-क्षेत्र पदार्पण, कैम्प लगाकर स्थित रहना, अधिक बलवान राजा से मित्रता तथा सेना का उचित स्थान पर नियत करना।

युद्ध के पूर्व एक राजा दूसरे के पास अन्तिम दूत सूचनार्थ भेजता था। हनुमान रावण के पास युद्ध के पूर्व गये थे। राजदूत का शरीर अत्यन्त पवित्र समझा जाता है तथा शत्रु-राजा बड़े आदर से उसका सत्कार करते थे। इस विषय पर पूर्ण रीति से विभीषण ने रावण को शिक्षा दी थी। महाभारत में युद्ध के पूर्व उलूक, संजय तथा श्रीकृष्ण आदि दूत सन्धि के लिए भेजे गये थे। जब कृष्ण को दुर्योधन ने बन्दी बनाना चाहा तो बड़े २ योद्धाओं ने उसका बड़ा तिरस्कार किया।

हमारे शास्त्रों में युद्ध में भगेड़ू शत्रु, असहाय, शरण प्राप्त शत्रु को मारना सभ्यता के विरुद्ध माना गया है। बौद्धायन का लेख है:—

"किसी को विषपूर्ण अस्त्रों से युद्ध न करना चाहिये। भयभीत, मतवाला, पागल, शस्त्रहीन; स्त्री, बालक तथा ब्राह्मण से युद्ध न करना चाहिये। किन्तु यदि ब्राह्मण वध की इच्छा से आगे बढ़े तो उसके साथ युद्ध अवश्य करना चाहिये"॥ १०-११-१२

मनु का वचन है—अध्याय ७।

न कूटैरायुधैर्हन्याद्युध्यमानो रणे रिपून्।
न कर्णिभिर्नापि दिग्धैर्नाग्निज्वलिततेजनैः ॥९०॥

न च हन्यात्स्थलारूढं न क्लीबं न कृताञ्जलिम्।
न मुक्तकेशम् नासीनं न तवास्मीति वादिनम् ९१

न सुप्तं न विसन्नाहं न नग्नं न निरायुधम्।
नायुध्यमानं पश्यन्तं न परेण समागतम् ॥ ९२ ॥

नायुधव्यसनप्राप्तं नार्तं नातिपरिक्षतम्।
न भीतं न परावृत्तं सतां धर्ममनुस्मरन् ॥ ९३ ॥

अर्थात् कूट आयुध जो ऊपर से काष्ठादि से बने हों और भीतर उनके तीक्ष्ण शस्त्र छिपे हों, ऐसे आयुधों से युद्ध करता हुआ राजा शत्रु को न मारे और जिनके फल टेढ़े कांटे के आकार के मांस के खींचनेवाले हों तथा विष के बुझे हुये और अग्नि के तपाये हुये हों ऐसे बाणों से शत्रु को न मारे ॥ ९० ॥ आप रथ में बैठा हुआ रथ को छोड़ के भूमि में खड़े हुये को न मारे तथा नपुंसक को और हाथ जोड़कर सन्मुख आये हुए को और बाल जिसके खुले हों और जो बैठा हो तथा मैं तुम्हारा हूं ऐसा कहनेवाले को न मारे ॥९१॥ सोते हुए को, बिना कवचवाले को, नंगे को, शस्त्ररहित को, नहीं लड़नेवाले को, युद्ध देखनेवाले को और दूसरे से युद्ध न करनेवाले को न मारे ॥ ९२ ॥ जिसके खड्ग आदि शस्त्र टूट गये हैं और जो पुत्र आदि के शोक से व्याकुल हो और जो बहुत चोटों से व्याकुल हो तथा जो युद्ध से भागा हो इन सबों को कठिन क्षत्रिय धर्म का स्मरण करता हुआ न मारे ॥९३॥

याज्ञवल्क्य की सम्मति। अध्याय १ ॥

तवाहं वादिनं क्लीबं निहेतिं परसङ्गतम्।
न हन्याद्विनिवृत्तञ्च युद्धप्रेक्षणकादिकम् ॥३-६॥

अर्थात युद्ध के समय जो शरणागत होकर कहे कि मैं आपका ही हूं उसको, नपुंसक को, जिसने हथियार धर दिये हों, जो अन्य के साथ

युद्ध करता हो, जो युद्ध करने से हट गया हो, जो युद्ध देखने को आया व जो कहार आदि सेवक हों, इन सब को युद्ध में नहीं मारना चाहिये।

शुक्राचार्य की सम्मति है कि शत्रु को किसी प्रकार बध करना चाहिये चाहे धर्म से हो या अधर्म से। युद्ध की सूचना शत्रु को युद्धारंभ के पूर्व अवश्य देना चाहिये। युद्ध एक राजा तथा दूसरे राजा के बीच में पारस्परिक नहीं होता है किन्तु राज्य का युद्ध राज्य से होता है, तथा युद्ध में असहाय प्रजा को दुःख न देना चाहिये, उनका माल धन स्पृशनीय नहीं होना चाहिये। महाभारत का युद्ध, जिसका मुख्य अभिप्राय पाण्डवों को राज्य में उचित भाग दिलाने का था तथा जिसमें समस्त भारतवर्ष के राजा लड़े थे, कुरुक्षेत्र के रणक्षेत्र में हुआ था जो कि जनपदों से बिलकुल अलग था, तथा कोई सेना नगरों पर अत्याचार नहीं करने पाती थी, प्रजा निर्विघ्नावस्था में थी। युद्ध में अनुपमेय सेना सम्मिलित थी। एक अक्षौहिणी सेना में २१८७० रथ थे, उतनेही हाथी, ६५६१० घोड़े तथा १०९३५० पैदल सेना थी। यह स्मरण करते हुए कि हाथी घोड़े सुसज्जित थे, अक्षौहिणी की शक्ति २००,००० से अधिक थी तथा १८ अक्षौहिणी सेनाएँ लड़ीं। इससे प्रगट है कि कुल शक्ति ३६००००० से अधिक थी। ११ अक्षौहिणी सेनाएँ कौरव की ओर तथा ७ पाण्डवों की ओर थीं। इस अक्षौहिणी सेना के एकत्रित करने में बड़ा परिश्रम लगा होगा। यदि यह सेना अत्याचार शान्तिपूर्ण निवासियों पर करती तो भारतवर्ष उजड़ गया होता और हिन्दू नाम इतिहास से उड़ गया होता किन्तु ऐसा करना हमारे शास्त्रों के विरुद्ध था।

मनु की सम्मति है कि:—७ अ०

उपरुध्यारिमासीत राष्ट्रं चास्योपपीडयेत्।
दूषयेच्चास्य सततं यवसान्नोदकेन्धनम् ॥१९५॥
भिन्द्याच्चैव तड़ागानि प्राकार परिखास्तथा।
समवस्कन्दयेच्चैनं रात्रौ वित्रासयेत्तथा १९६॥

अर्थात् किले में होवे अथवा बाहर होवे ऐसे युद्ध करते हुए राजा को घेरा डाले हुए पड़ा रहे उसके देश को उजाड़े और घास, अन्न, पानी, ईंधन को दूषित वस्तुओं से दूषित करे। शत्रु के जल पीने योग्य तड़ाग आदि को किला आदि तोड़ तोड़ कर भर दे और उसकी खाइयों को जलरहित कर दे, ऐसे शत्रुओं को शंकारहित होके दबावे और शक्ति को लेलेवे और रात्रि में ढंका काहलिक आदि शब्दों से डरवावे। मुख्य उद्देश्य शत्रु को शक्तिरहित कर देना है। इससे अभिप्राय यह नहीं है कि कुओं में विष मिलावे किन्तु डरवाकर शत्रु का पराजय करना है।

शुक्राचार्य की सम्मति है। (अ० ४ श्लो० ७। ३६७) "शक्तिवान राजा को चाहिये कि जल, भोजन, घास इत्यादि को शत्रु के पास न जाने दे जिससे शत्रु बलहीन हो जावे"। उचित विद्वान शत्रुओं की दशा जानने के लिए दूत भी नियत करे। राजा को चार चक्षु की पदवी दी गई है अर्थात् दूतों के द्वारा राजा देखता है तथा शत्रु का भेद लेने में दूत निपुण होते हैं। आगे भी शुक्राचार्य की सम्मति है:—

"जो मनुष्य बुद्धिमान तथा प्रशंसनीय स्वभाव के होते हैं वे पुरुषार्थ का बड़ा सत्कार करते हैं तथा दुर्बल केवल भाग्य का ही सहारा लेते हैं।"

महाभारत तथा रामायण के युद्धों में कुछ निन्दनीय बातों का प्रयोग किया गया है जो धर्म-युद्ध के विरुद्ध है यद्यपि सैनिक आवश्यकता से वे ठीक क्यों न हों, जैसे राम द्वारा ताड़का बध, क्योंकि स्त्रियों को मारना पाप है किन्तु इसको विश्वामित्र ने इस युक्ति से न्यायसिद्ध बताया है कि यह स्त्री बड़ी पापिन तथा दुष्टा थी, कुटिला तथा यज्ञविध्वंसिका थी अतः

उसका बध उचित था। जबकि रामचन्द्र ने वृक्ष में छिपकर सुग्रीव के भ्राता बालि को मारा तथा जब बालि अपने भ्राता से लड़ने में अकेले लगा था, राम ने युद्ध नीति का उल्लंघन किया तथा बालि द्वारा अन्तिम समय में बड़ा निन्दित किया गया। इस पर यही युक्ति लग सकती है कि बालि रामचन्द्र के मित्र का शत्रु था तथा उसका बध आवश्यक था।

महाभारत में भी ऐसी बहुत प्रमाणें मिलती हैं, जिससे यही सिद्ध होता है कि युद्ध के समय नीति सभी भूल जाते हैं केवल बदला लेने का विचार रहता है।

जहां धर्म है वहां जय है, इसी कारण भारतवासियों का दृढ़ विश्वास है कि ग्रेट ब्रिटेन का युद्ध धर्म-युद्ध है अतः हमें विश्वास है कि अन्त में हमारी जय होगी और ज़र्मनी का नाश होगा क्योंकि धर्म का अवलम्बन लेकर ब्रिटेन युद्ध कर रहा है।

तिजारती लड़ाई।

[लेखक—श्रीयुत सैयद हैदर हुसेन।]

यूरोप में जो लड़ाई हो रही है उसके मुताल्लिक इङ्गलिस्तान की गवर्नमेंट ने यह फैसला कर दिया है कि जर्मन और आस्ट्रिया की जो बड़ी भारी तिजारत अंगरेज़ों के सल्तनत में थी उस पर भी हमला इस ज़ोर से किया जाय कि लड़ाई समाप्त होने से पहिले आस्ट्रिया और जर्मनी को पता चल जाय कि अङ्गरेज़ी राज्य के हर बाज़ार में अङ्गरेज़ी बने हुए माल ने जगह छेक ली। इस काम के लिए इङ्गलिस्तान भर में ज़ोर लगाया जा रहा है कि नये कारखानों के खोलने में पूरी कोशिश की जाय। हम भी अङ्गरेज़ी हुकूमत के रहनेवाले हैं और हमारा मुल्क हिन्दुस्तान अङ्गरेज़ी सल्तनत के अन्दर है। कुछ ज़माना हुआ कि इस मुल्क के बड़े २ आदमियों ने स्वदेशी के लिए बड़ा ज़ोर लगाया और कुछ थोड़ी बहुत कामयाबी भी हुई। दियासलाई, बटन, तरह २ के कपड़े, जूते, कागज़, शक्कर विलायती शीशे की चीज़ें गरज़ सैकड़ों तरह के माल इस देश में, इसी देश के पैदावार से और इसी मुल्क के निवासियों के बनाये हुये मिलने लगे हैं। हाँ वह चीज़ें इतनी नहीं तैयार होती हैं कि इस बड़े देश के सब लोगों की ज़रूरत पूरी कर सकें लेकिन हमारे देश ने पूरी कोशिश देशी बने हुए माल के खरीदने और बनाने में नहीं की। अगर ऐसी कोशिश आँख खोल कर की होती तो हिन्दुस्तान को यह दिन क्यों देखना पड़ता कि कल यूरोप में लड़ाई शुरू हुई और आज बम्बई और तमाम बड़े शहरों में दियासलाई जैसे रोज़ के काम की चीज़ का दाम चौगुना होगया। यह बड़े शर्म की बात है कि दियासलाई छोटी चीज़ भी हम जर्मनी, आस्ट्रिया या नारवे की लें तब हमारा काम चले। इस घड़ी अङ्गरेज़ी सल्तनत अपने दुश्मनों से तोप, बन्दूक, तलवार से लड़ रही है बलिक जिन २ बाज़ारों और देश में उसके दुश्मन के बने हुये माल बिकते हैं उन बाज़ारों और मंडियों पर कब्ज़ा कर रही है इस कारण से न जर्मनों के पास ज्यादा तिजारत रहेगी न जर्मनी के पास खज़ाना इतना होगा कि लड़ाई का सामान ज्यादे मुहइया कर सके। क्योंकि इस लड़ाई

में जर्मनी के बादशाह मुल्क लेने के लिए नहीं लड़ते, बल्कि अपने मुल्क के बने हुए माल की निकासी के लिए मण्डियों की तलाश में लड़ते मरते हैं। अंगरेज़ी हुकूमत के रहनेवाले जो मैदान में जाकर अपनी फौज के साथ दुश्मन से लड़ नहीं सकते उनके लिए भी घर बैठे तावान पहुंचाने का यह रास्ता सरकार ने बतला दिया है कि तुम उन चीज़ों के कारखानों को जारी करो जो जर्मन आस्ट्रिया के देश में हैं और खुद माल बना कर अङ्गरेज़ी हुकूमत के अन्दर तमाम मंडियों में ले जाओ जिससे जर्मन की चीज़ों की जगह पर खुद तुम्हारी चीज़ें बिकें। इस तरह जो बड़ी दौलत प्रति वर्ष अङ्गरेज़ी रियाया के हाथों से दुश्मन के देश में जाकर उसको मालदार और मोटी बना रही थी वह खुद तुम्हारी ही भलाई करे और घर की दौलत घर के अन्दर ही रह जाय। जर्मन अब उसको खाकर न मोटे हों, न तुम्हें आँखें दिखावें और सतावें। सच बात तो यह है कि यह बड़े मार्के की चाल है। इसलिए हमने ये बातें लिख डालीं। हमारी यह इच्छा है कि जिससे हमारे देशभाइयों को भी इन बड़े भारी मालदारी के नुसखे की नकल मिल जाय और एक ढेले को फेंक कर दो चिड़िया कैसे पकड़ी जा सकती हैं यह उन्हें भी मालूम हो जाय।

हमारे देश के भाइयों को जिनके पास रुपया भी है कान खोलकर इसको सुनना चाहिये— 'सांप मरै और लाठी न टूटै' की सबने कहावत ही सुनी है। आज हम उस कहावत को सच्ची कर दिखाने का मार्ग दिखलाते हैं। इससे सांप मरैगा लाठी बची रहेगी। इसके सिवाय लाठी और मज़बूत हो जायगी और फिर दस पांच लाठी हम लोग और पैदा कर सकेंगे। गवर्नमेंट का इतना हक़ ज़रूर है कि उसके मुश्किल की घड़ी में उसकी मदद की जाय। अगर हमारे देश के बड़े २ ज़मींदार, महाजन, दूकानदार चाहें तो घर बैठे आज यह मदद सरकार की कर सकते हैं और उसके दुश्मन से लड़ सकते हैं और खुद अपना और अपने भारतमाता दोनों का नफ़ा भी साथ २ है। ऐसा मौक़ा किसी देश के आदमी को कम मिलता है कि जेब भी अपनी भरें और हाकिम को भी खुश करें, अपने भाइयों की भी भलाई करें और देश की भी खिदमत करें। आज हमारी क़िस्मत ने यह दिन हमको दिखलाया है कि हमारे बादशाह और हमारी गवर्नमेंट खुश है कि हम स्वदेशी को ऐसा बढ़ावें कि उनके दुश्मनों के हाथ से तिज़ारत छीन लें और उनको अब अपना पैसा न दें फिर क्या मुनासिब है कि ऐसे अच्छे सबूत को हम हाथ से जाने दें। अपने देश को ग़रीब से ग़रीब मुफलिस रहने दें। हमारे प्यारे देश के लोगो और हमारे भाइयो! यह तो ऐसा समय है कि तुम जागो और अपने भलाई के मौक़े को जाने न दो। फिर भलाई अपनी और खुशी अपने हाकिम और अपने मादरी देश की। अगर इस घड़ी चुप रहे और काम न किया तो याद रक्खो कि सौ साल तक ऐसा मौक़ा न मिलेगा। सरकार और देश दोनों नाराज़ रहेंगे और दोनों के सामने हम हिन्दुस्थानियों को शर्म से सर नीचा करना पड़ेगा। इससे अधिक कहने की ज़रूरत नहीं है, बात बड़ी है मगर ऐसी चमकदार है कि अन्धा भी उसकी चमक को देख ले। आज इङ्गलिस्तान के आदमी जिनके पास रुपया है, जी तोड़ कर कोशिश कर रहे हैं कि तिज़ारत में जिस तरह से हो सके जर्मनी और आस्ट्रिया को हटा दें और यह मार ऐसी मार है कि जो लड़ाई के समाप्त होजाने के पचास साल तक इसकी चोट याद रहेगी। तिजारती मार वह लाठी है कि जिसमें आवाज़ नहीं है मगर उसकी चोट बन्दूक, तलवार, तोप से हज़ार गुना ज्यादा है। क्या हमारे देश के अमीर और रुपयावाले अपने गवर्नमेंट की मदद करने पर तैयार हैं।

यूरोपीय रणक्षेत्रमें हिन्दुस्थानी वीर.
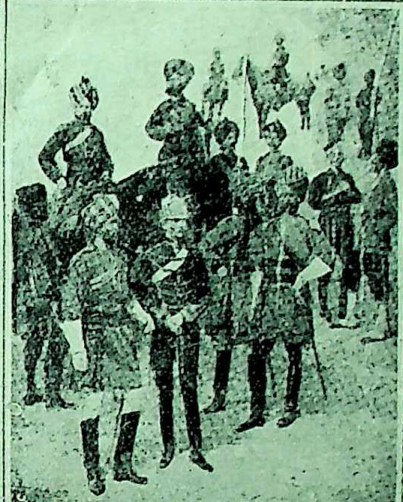
१. सैनिक. २. आफ़िसर्स. ३. भालाबरदार.
४. २लांसर्स ५. राजासाहेबकी पल्टन. ६. १४ लांसर्स.
७. भालाबरदार. ८. भालाबरदारोंका दल. ९. भालाबरदार.
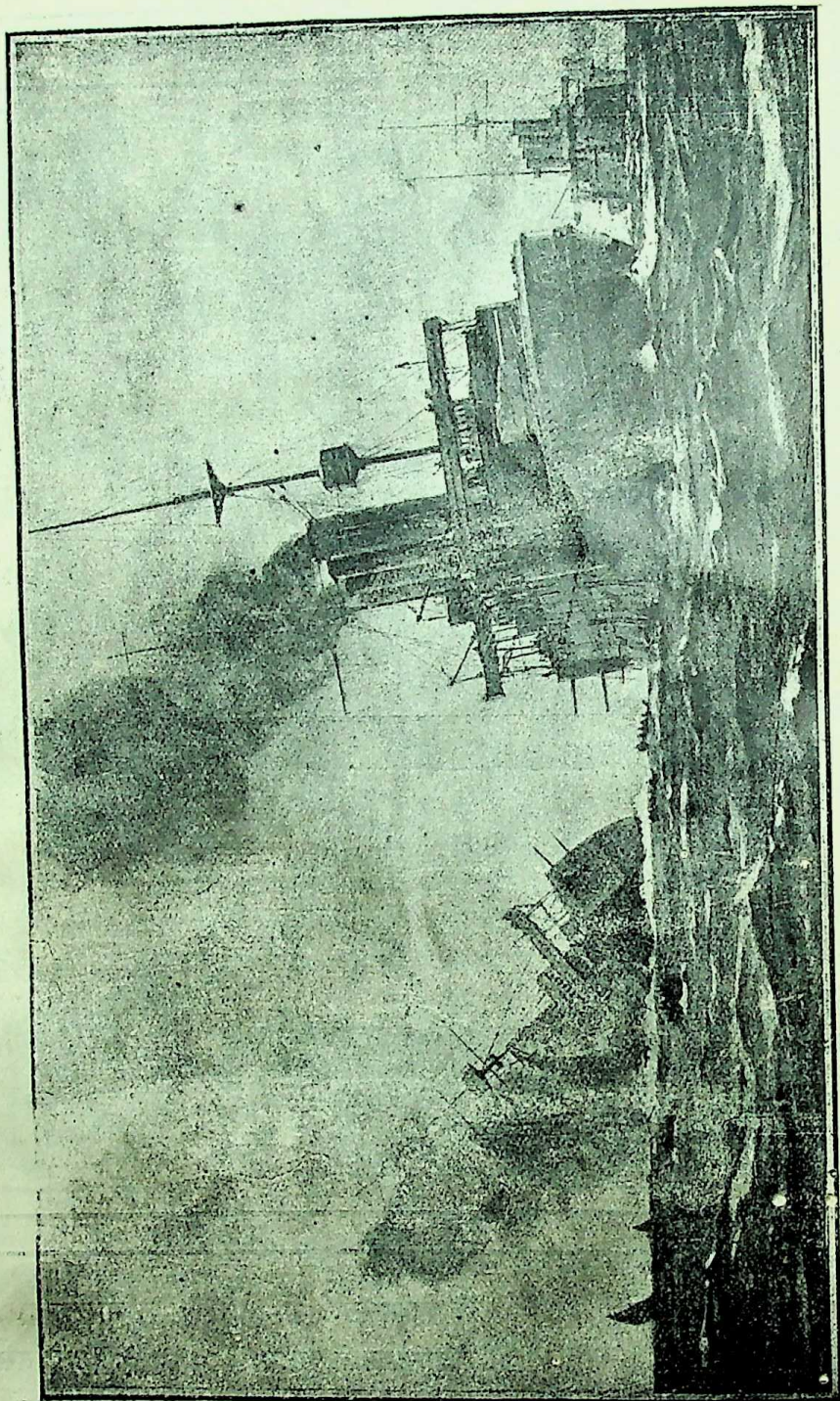
'अबाउकर,' 'हॉग' व 'क्रेसी' नामके क्रूज़र टकरा कर डूब रहे हैं.

इङ्गलैंड की शासन-पद्धति ।*

[लेखक—श्रीयुत शिवनारायण द्विवेदी ।]

आज यूरोप में इङ्गलैंड की शासन-पद्धति सर्वोत्तम समझी जाती है। इस सर्वोत्तम पद को प्राप्त करने में, प्रजा के विजयी बनने में जिन २ कठिनाइयों ने वहां के कार्यकर्ताओं का सामना किया उनका इतिहास जान लेना प्रत्येक उन्नतिशील जाति का कर्तव्य है। साधारण तौर पर वहां यह झगड़ा राजा और प्रजा या शासक और प्रजा में चला आता था। राजा और शासक प्रजा का भाग्य अपने हाथ में रक्खा चाहते थे और प्रजा अपने भाग्य की मालिक आपही बनना चाहती थी। यह कशमकश वहां प्रारम्भ ही से चली आरही थी। ग्यारहवीं शताब्दी में इङ्गलैंड का राजदंड नार्मन लोगों ने धारण किया; उस समय पार्लामेन्ट थी किन्तु उसके अधिकार कुछ नहीं थे। उस समय राजा के पूछने पर सम्मति भर दे देना पार्लामेन्ट का काम था; तथा पार्लामेन्ट के सभासद लार्ड, प्रान्तिक धर्माधिकारी (बिशप) और यार्क कंटरबरी के मुख्याधिकारी आर्च बिशप आदि थे। लार्ड लोग युद्ध में राजा की सहायता करते थे और प्रसन्न होकर राजा उन्हें ज़मीन और पद इनाम में देते थे। राजा की इच्छा पर अपना जीना मरना जान कर बड़े आदमियों ने ही राजा के अधिकारों से अपने आप को बचाना चाहा था। इस महत्कार्य की सिद्धि के लिए पहिले तो इन्होंने बड़े आदमियों को (बैरन, नाइट आदि) अपने में मिलाया और अन्त में साधारण प्रजा को भी इसमें शामिल किया। अनेक प्रकार की आपत्तियों का सामना करते हुए और केवल तलवार के ज़ोर पर विजय पाते हुए अन्त में सर्वसाधारण ने मेग्नाचार्टा प्राप्त किया। इङ्गलैंड का यह प्रतिज्ञापत्र बड़े महत्व का है, इसके ही द्वारा प्रजा अपने भाग्य की नियामक बनी। जब पार्लामेन्ट में प्रजा का प्रवेश होगया तब वह दो भागों में विभक्त हो गई, एक लार्डों की, दूसरी कामन्स की। तेरहवीं, चौदहवीं और पन्द्रहवीं शताब्दियों में पार्लामेन्ट की उन्नति हुई, उसे हर एक प्रकार के राजकीय स्वत्व मिले; किन्तु इस समय तक लार्ड सभा ने कामन्स सभा को अपना सहायक बना रक्खा था और राष्ट्रीय सत्ता के अधिक भाग की स्वामिनी लार्ड सभा ही थी। सोलहवीं शताब्दी में यह बात उठाई गई कि कामन्स (सर्वसाधारण) के अधिकार भी लार्ड (सरदार) के समान हैं। इसके अनन्तर ही यह नियम बना कि किसी कार्य के उपस्थित होने पर प्रथम वह कामन्स और लार्ड सभा में निश्चित हो और अनन्तर राजा की स्वीकृति से वह काम में लाया जाय। इस समय तक कामन्स (सर्वसाधारण) के अधिकार राजा और लार्ड्स के नीचे ही दबे थे, किन्तु थोड़े ही समय के अनन्तर यह नियम निश्चित हुआ कि राष्ट्रीय नियम (धन सम्बन्धी बिल, बजट आदि) पहिले कामन्स में पेश हों और अनन्तर लार्ड्स के सम्मुख उपस्थित किये जायँ। यहीं से कामन्स का प्रभाव बढ़ने लगा।

सन् १६८८ ई० में इङ्गलैंड में राज्यक्रान्ति हुई। इस क्रान्ति का कारण राजा प्रजा का झगड़ा ही था। इस क्रान्ति में अधिकांश लार्ड और सर्दार लोग मारे गये। पीछे से राजा के बनाये हुए लार्ड लोग निर्बल हो गये इसी

* प्रिंसिपल दामोदर गणेश पाध्ये एम० ए० के एक लेख के आधार पर। ले०।

कारण सन् १७१४ ई० में कामन्स का लार्ड्स पर पूरा अधिकार हो गया। धीरे २ इस सभा का अधिकार इतना बढ़ा कि राजा के अधिकार बहुतही संकुचित हो गये। धीरे २ लोगों को यह समझ हो गई कि "राजा राजा रह सकता है, शासक नहीं" (The King rules but does not govern) इस नियम के प्रचलित होते ही दोनों सभाएँ अपने २ नेता (Leader) चुनने लगीं और प्रत्येक बात का अन्तिम फैसला अपनी ज़िम्मेदारी पर करने लगीं। राजा को सम्मति देने मात्र का अधिकार रह गया। सर्वसाधारण की प्रत्येक बात में राजा और लार्ड सभा को सम्मति देनी पड़ती थी, इसीलिए सर्वसाधारण की सत्ता का इन सब पर प्रभाव विशेष था। किन्तु लार्ड सभा की सर्वथा असम्मति होने पर अनेक बातें नहीं हो पाती थीं, यही अड़चन सर्वसाधारण के सामने थी। पार्लामेन्ट के चुनाव के समय में लिबरल (उदार) और कंसर्वेटिव दल जिसे यूनियनिस्ट दल कहना चाहिये, अपना २ मसौदा-कि अपने शासन में वे किस प्रकार से प्रजा का हितसम्पादन करेंगे-प्रजा के सामने पेश करते थे। अधिक संख्या से प्रजा जिस दल की बात को पसन्द करती उसी दलवाले सभा को वह अपना प्रतिनिधि चुनती, जिस दल के प्रतिनिधि अधिक होते उसी दल के हाथ शासन का काम होता। फिर यह मसौदा जैसे का तैसा कामन्स के सामने पेश किया जाता था। कामन्स के बाद लार्ड सभा से निश्चित कराना आवश्यक होता था किन्तु अपना पक्ष रखने के लिए अधिकारी वर्ग अपनी ओर के नये लार्ड चुनते थे। यह बात लिबरल और कंसर्वेटिव दोनों के लिए समान थी। अनेक विचारकों का अनुमान है कि यह नीति कामन्स का जीवन थी।

यदि तात्विक दृष्टि से विचार किया जाय तो लार्ड सभा का प्रधान रहना कुछ आवश्यक था। क्योंकि अन्तिम फैसला देनेवाली सभा यदि तीसरी ही हो तो देश में अनिष्टों की सम्भावना कम रहती है। अन्यथा दो समान अधिकारियों में जो घर की दशा होती है वही देश की होती है। योग्य कार्यों में अधिकारों की रक्षा करते हुए योग्य सलाह देनेवाली 'वृद्ध सभा' अपनी नीति को बचाती रहती है। जापान, फ्रांस और एमेरिका के संयुक्तराज्य अपना प्रबन्ध विशेष करके इस ही नीति पर करते हैं। किन्तु लार्ड सभा की द्वितीय समिति (Second Chamber) अधिकांश इन गुणों से रहित है। बड़े बाप के बेटे कहानेवाले (Hereditary) मान्य सभासद अधिकांश इन गुणों से रहित हैं। इङ्गलैंड के साढ़े सात सौ लार्ड घरानों में ऐसे बुद्धिमान पुत्रों को जन्म देनेवाले बहुत ही कम हैं। नार्मनवंश से प्रतिज्ञापत्र (मेग्नाचार्टा) के युद्ध से महारानी विक्टोरिया के पूर्व तक जितने लार्ड नवीन स्थापित किये गये, उनमें तीन चौथाई राजाओं के कृपापात्र थे। नये लार्ड बड़े २ ज़मींदार, धनी, व्यापारी और श्रीमन्त बनाये गये थे, इनमें से अधिकांश भोगविलासी और गाल्फ, पोलो तथा फाक्सहंटिंग के प्रेमी थे। प्रजातान्त्र राज्य का सुधार होने के बाद लार्ड लोगों की राजनीति की सीमा इतनी ही रह गई थी कि वे इस ही को नीति समझते थे कि अपने अधिकारों की रक्षा करना और प्रजातान्त्रिक सत्ता के विरोधी बने रहना। साढ़े सात सौ लार्ड्स का सातवां भाग भी लिबरल नहीं है। आज जो लिबरल मनुष्य लार्ड बनाया गया वह दो वर्ष के बाद कंसर्वेटिव बन जायगा, इसीलिए कंसर्वेटिव अर्थात् यूनियनिस्ट पक्ष का ही मत अधिक रहता था। एक ही पक्ष की अधिकता बहुत विशेष बनी रहने के कारण राज्यपद्धति को पक्षपात का रोग लग गया था। लिबरल दल के कार्यों का बड़ी कठोरता से विरोध किया जाता था। इसीलिए शासक सभा प्रजा की प्रगति की विरोधक

मात्र बन गई थी। यदि किसी वर्ष कंसर्वेटिव दल की जीत होती तो वह जितने नये नियम और बजट बनाता वे सब बेरोक टोक लार्ड सभा से पास हो जाते किन्तु यदि लिबरल पक्ष अधिकारी बनता तो उसके नियम पास होने के लिए लार्ड सभा में सड़ा करते थे। कामन्स सभा के पास किये हुए नियम इस प्रकार से लार्ड सभा में पड़े रहते थे। कोई नया नियम याँ सुधार बिना पार्लामेंट की दोनों सभाओं से पास हुए प्रचलित नहीं हो सकता था। इसी लिए लिबरल दल के नियम चाहे जैसे भले हों किन्तु लार्ड सभा से पास हुए बिना वे काम में नहीं आ सकते थे और सर्वसाधारण का जो हित लिबरल दल सोचता था वह काम में नहीं लाया जा सकता था। कामन्स भवन में लिबरल पक्ष की विशेषता होने पर भी वह अपने मतानुसार कोई नियम प्रचलित नहीं कर सकता था और यों प्रजा की विशेष सहायता होने पर भी प्रत्येक बार उसे कंसर्वेटिव दल से हार खानी पड़ती थी। इस निरन्तर की हार ने प्रजापक्षी लिबरल दल को लार्ड लोगों का कट्टर विरोधी बना दिया और उन्हें पूरा निश्चय होगया कि उनके मार्ग में लार्ड सभा काँटा स्वरूप है।

१९११ ई० का पार्लामेंट एक्ट।

विजयी बनने पर लिबरल दल को अधिकार था कि वह किसी नियम पर अपनी असम्मति प्रकट करके अपने मत बढ़ाने के लिए नये लार्ड चुने या पार्लामेंट तोड़कर फिर से चुनाव करे। अपने इस अधिकार को काम में लाने के लिए लिबरल दल ने कोई २२ वर्ष पहिले प्रथम होमरूल के समय मन्त्री ग्लेडस्टन के समक्ष इस विषय को उठाया था। उसी समय से इस विषय पर बड़े ज़ोर से वादविवाद होने लगा था। सन् १९०५ ई० में पार्लामेंट के चुनाव में लिबरल दल की ही जीत रही। उसी समय लिबरल दल के चार वर्ष के कामन्स द्वारा पास हुए प्रस्तावों को लार्ड सभा ने दाखिल दफ्तर कर दिये। इसीलिए १९०८ ई० में लिबरल दल ने पार्लामेंट का विसर्जन कर दिया और अपने कई प्रस्ताव और आयरिश होमरूल को पास किया। इन कार्यों से लिबरल दल को पूर्ण यश प्राप्त हुआ। प्रजा के हित को सामने रखने के कारण पुनः मि० लायड जार्ज कोषाध्यक्ष (Chancellor of the Exchequer) ने कई प्रजा-हित के प्रस्ताव कामन्स के सामने रक्खे। ये प्रस्ताव थे धनिकों पर उनके धन के अनुसार कर लगाना, इनकम टैक्स, डेथ ड्यूटीज़ (मृत मनुष्य की सम्पत्ति पर अधिकारी से कर) ज़मीन की मालगुज़ारी, आय पर कर जो खर्च के बाद बचे आदि। इन प्रस्तावों के पास हो जाने से लार्ड और धनी लोगों को टैक्स देना पड़ता किन्तु इस ओर कर बढ़ जाने से दीन मनुष्यों पर कर घटता था। इसी लिए, इस बिल के सामने आतेही कंसर्वेटिव दल को यह बुरा लगा और उन्होंने पार्लामेन्ट विसर्जन करके नई चुनी। किन्तु किसी बिल के पास करने या न करने का अधिकार कामन्स सभा को तेरहवीं शताब्दी से था, लार्ड सभा से योंही सम्मति लेली जाती थी। लार्ड सभा ने कामन्स का यह अधिकार सर्वथा तोड़ देना चाहा, किन्तु इसे लक्ष्य करके सर्वसाधारण लार्ड सभा से बहुत विरक्त हो गये। सन् १९१० ई० में जब पार्लामेन्ट भरी तब भी लिबरल पक्ष की जीत रही। नई पार्लामेन्ट में सब से प्रथम मि० लायड जार्ज ने साधारण प्रजा के उद्धार के लिए धनिकों पर कर लगाने का प्रस्ताव उठाया। कामन्स ने इसे पास किया। लार्ड सभा ने साफ़ उत्तर दे दिया कि हम इसमें सम्मति ही न देंगे। इसके उत्तर में लिबरल प्रधान मंडल ने कहा कि, हम पुनः पार्लामेंट विसर्जन करके अपने पक्ष के पांच सौ लार्ड चुनेंगे और

राजा की सम्मति लेकर अपने प्रस्ताव को प्रचलित कर देंगे। अन्त में प्रस्ताव पास होता ही देखकर लार्ड सभा को हार माननी पड़ी, बहुत से लार्ड अनुपस्थित रहे, बहुत से दूसरे मत में रहे, बहुतों ने अपनी सम्मति भी दी इस प्रकार १६११ ई० की पार्लामेन्ट में लिबरल पक्ष की जीत हुई।

१६११ के पार्लामेन्ट एक्ट में पास हुआ है कि, (१) किसी सर्कारी बजट को यदि कामन्स सभा स्वीकार करले तो उसे लार्ड सभा स्वीकार करे या न करे राजा की सम्मति से वह कार्य-रूप में परिणत कर दी जायगी। यदि लार्ड सभा उसमें विवाद उपस्थित करेगी तो कामन्स के अध्यक्ष (Speaker) उसका फैसला करेंगे। (२) दोनों सभाओं और राजा की सम्मति से तो प्रत्येक नियम पास होता ही है किन्तु यदि किसी नियम पर लार्ड और कामन्स में भिन्न मत होंगे, और वही प्रस्ताव ज्यों का त्यों दो वर्ष के बाद फिर कामन्स सभा में पेश होगा और कामन्स सभा तीन बार उसे पास कर देगी तो लार्ड सभा से फिर पूछने की आवश्यकता न रहेगी। राजा की सम्मति से ही वह नियम का रूप धारण करेगा। (३) पहिले पार्लामेन्ट का जीवन ७ वर्ष का था किन्तु अब वह केवल ५ वर्ष का हो गया है। पाँच वर्ष के बाद पार्लामेन्ट का नया चुनाव होता है।

इन नियमों से सहज ही में विचार किया जा सकता है कि, कामन्स सभा का इंगलैंड की राजनीति पर कितना अधिक प्रभाव है। प्रत्येक नियम में राजा की सम्मति अवश्य ली जाती है किन्तु वह केवल शिष्टाचार मात्र है। वास्तव में इंगलैंड का शासन कामन्स सभा के हाथ में है। प्रजापक्ष के लिबरल लोगों की जीत से इङ्गलैंड की प्रजा बहुत सन्तुष्ट है। कंसर्वेटिव दलवाले यह पुकार मचाते थे कि लिबरदल के हाथ में सत्ता जाते ही राज्यव्यवस्था एक ही सभा के हाथ हो जायगी (One Chamber Government) और खराब हो जायगी, किन्तु लिबरल दल ने पार्लामेन्ट की अवधि पाँच वर्ष की रखकर यह असुविधा भी मिटा दी है। यदि कंसर्वेटिव दल सेना के द्वारा लिबरल को हराना चाहे तो भी वह यशस्वी नहीं हो सकता। इस प्रकार इङ्गलैंड में प्रजासत्तात्मक राज्य की पूरी जय हुई है।

पार्लामेन्ट के एक्ट का फल।

प्रत्येक नियम की उत्तमता उसके निश्चित कर लेने ही में नहीं बल्कि, उसकी सार्थकता और उसके उपयोग में है। लिबरल और कंसर्वेटिव के झगड़े का मुख्य स्थान पार्लामेन्ट है। वहां सदा से कंसर्वेटिव दल का अधिकार चला आया है। वहां धनियों के सामने दीन प्रजा का पक्ष लेनेवाले लिबरल दल की जय होना बहुत ही कठिन था, किन्तु उसके सार्वदेशिक प्रेम ने उसे तीन बार जय प्रदान किया है।

आयरिश होमरूल के पास हो जाने से प्रजा के प्रतिनिधियों का प्रभाव इङ्गलैंड में और विशेष होगया। यह जब पहिले कामन्स सभा से पास होगया था तब लार्ड सभा ने (Veto) वर्जन अधिकार के द्वारा इसे त्याग कर दिया था, किन्तु दो वर्ष के बाद यह कामन्स के सामने फिर वैसे का वैसा ही पेश हुआ, कामन्स के पास कर देने पर लार्ड सभा पार्लामेंट विसर्जन करने की चिन्ता में लगी। किन्तु नई पार्लामेंट में भी लिबरल पक्ष की ही जय हुई, तब लार्ड सभा को और कोई कारण न मिलने से वह होमरूल में अलस्टर को छोड़ देने के लिए पुकारने लगी। इस पर इङ्गलैंड के सब पत्रसम्पादक लार्ड सभा की हठधर्मिता की कथा कहने लगे। समाचारपत्रों में लार्ड लोगों के बड़े भद्दे २ चित्र निकलने लगे। अन्त में लार्ड सभा ने अलस्टर को जुदा करने के

लिए तुल ही गई। सर एडवर्ड कार्सन की अध्यक्षता में एक लाख स्वयंसेवक युद्ध के लिए तैयार होगये। यदि यूरोपीय महासंग्राम न छिड़ गया होता तो इङ्गलैंड में घरेलू कलह से नररक्त अवश्य बहता। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि प्रजा के पक्ष का इङ्गलैंड में पूर्ण विजय हुआ है और आज लार्ड लोगों का सिर झुक गया है। मि० एसक्विथ ने कहा था—'बहुत समय से जो लार्ड सभा लिबरल दल पर अन्याय करती चली आरही है, उसका अब प्रायश्चित्त हो रहा है।'

पार्लामेंट एक्ट की दूसरी महत्व की विजय एप्रिल मास में हुई। इस मास में "वेल्स डिशएस्टेब्लिशमेंट बिल" पास हो गया। इसकी कथा इस प्रकार है, लार्ड सभा या यूनियनिस्टदल क्रिश्चियन धर्म की शाखा एपिस्कोपल चर्च या चर्च आफ इङ्गलैंड पन्थ का अनुयायी है और इङ्गलैंड के सरकारी खजाने से केवल इस ही धर्म के प्रचार में रुपया खर्च किया जाता है। सम्पूर्ण आयरिश लोग कैथोलिक धर्म के अनुयायी हैं, इसलिए ग्लैडस्टन के समय में यह रुपया वहां विश्वविद्यालय में लगा देने का प्रबन्ध किया गया था। वेल्स के निवासी 'नानकन्फर्मिस्ट' धर्म के अनुयायी हैं, वहां के लिए भी "वेल्स डिसेस्टब्लिशमेंट बिल" के द्वारा चर्च आफ इङ्गलैंड धर्म के लिए जो रुपया खर्च किया जाता था वह विश्वविद्यालय में लगाये जाने का प्रबन्ध किया गया था। यदि पार्लामेंट में सर्वथा लिबरल पक्ष की जय न हुई होती तो यह बिल कभी पास न होता। इसके पास हो जाने से भी प्रजा का बहुत लाभ हुआ है तथा लिबरल पक्ष का प्रभाव बढ़ गया है।

तीसरा लिबरल दल का अधिक प्रभाव बढ़ानेवाला कारण मि० लाइड जार्ज का १९०९ ई० वाला बिल है। यह भी कामन्स के सामने दो वर्ष के अनन्तर ज्यों का त्यों पेश होकर पास हुआ है। देश की सम्पूर्ण आय बीस करोड़ पाउण्ड (१ पा० = १५ रुपये) में इस बिल का कैसा प्रभाव हुआ है:-

१-मृत पुरुषों के वारिसों से कर ... ... २८८ लाख पाउण्ड।
२-इनकम टैक्स ... ... ५०॥ लाख "
३-३००० पाउण्ड से अधिक वार्षिक आय पर इनकम टैक्स ... ५८ लाख "
४ ज़मीन की बढ़ती हुई पैदावार पर कर ... ... ७। लाख "

बड़े २ धनाढ्यों पर इस बिल के अनुसार निम्नलिखित रूप से कर लगाया जाता है (साधारण मनुष्यों के लिए यह कर नहीं है।)

आय पाउण्ड	इनकम टैक्स प्रत्येक पाउण्ड पर पेन्स
१६०	०
२००	१.८
५००	३.३
१०००	६
२५००	१४
३०००	१६.८३
५०००	१९.७
१००००	२४.९
१०००००	३१.३

(१२ पेन्स = १ शिलिङ्ग तथा २० शिलिङ्ग = १ पाउण्ड।)

इस बिल के सम्बन्ध में व्याख्यान देते हुए मि० लायड जार्ज ने कहा था कि—यदि सर्वसाधारण का कर श्रीमान् लोग स्वीकार न

करेंगे और उनके परामर्श को न मानेंगे तो इङ्गलैंड में एक बड़ी राज्यक्रान्ति हो जायगी, जिसमें सर्वथा श्रीमान् लोगों की ही हानि होगी।' १९०५ और ०६ ई० की आय की अपेक्षा १९१४-१५ ई० की आय ४४० लाख पाउण्ड अधिक हुई है। इसमें से १८० लाख पाउण्ड सर्वसाधारण की सहायता के लिए और २२६ लाख पाउण्ड पाठशालाओं के सुधार के लिए व्यय किया गया है। यह शासन में प्रजा के हाथ का फल है।

गीताञ्जलि।*

[लेखक—श्रीयुत रवीन्द्रनाथ ठाकुर।]

जिसे मैं अपने नाम से पुकारता हूं वह बन्दीगृह में रोता है। मैं सदा अपने आसपास दीवार चुनने में लगा रहता हूं और ज्यों २ यह दीवार आकाश की ओर चढ़ती जाती है उसकी अंधेरी छाया में मेरा 'सत्य स्वरूप अदृष्ट होता जाता है।

मैं इस विस्तृत भित्त पर बड़ा घमंड करता हूं। रेत और मिट्टी का उसपर लेप चढ़ाता हूं ताकि ऐसा न हो कि कहीं कोई ज़रा सा भी छिद्र रह जाय और इसपर जितना मैं ध्यान लगाता हूँ उतनी ही दूर मैं अपनी हस्ती से चला जाता हूं।

* * * *

मैं मिलने के स्थान में अकेला जा रहा हूं। किन्तु इस अंधकारमय सन्नाटे में कौन मेरे पीछे चला आरहा है। मैं इससे बचने के लिए मार्ग से एक ओर हट जाता हूं। परन्तु मैं इससे बचकर कहाँ जा सकता हूं। यह अपनी मनोहारिणी चाल से पृथ्वी से धूल उड़ाता है। प्रत्येक शब्द के साथ जो मेरे मुख से निकलता है वह अपनी ऊंची आवाज़ मिलाता है।

मेरे प्रभु यह मेरा ही अहंकारमय आत्मा है। यह निर्लज्ज है परन्तु मैं इसके साथ तेरे द्वार पर आकर बहुत लज्जित हुआ हूं।

* * * *

बन्दी बता तो तुझे किसने बांधा?

बन्दी—मेरे स्वामी ने। मैंने सोचा कि इस संसार में धन व मान में मैं सब को मात कर सकता हूं। इसलिए मैंने अपने स्वामी का सब धन अपने कोष में डाल रक्खा। जब नींद ने घेरा तो मैं अपने स्वामी के पलँग पर ही सो गया। जब मेरी आंख खुली तो मैंने अपने को अपने ही भंडार के अन्दर 'बन्दी' पाया।

बन्दी, यह तो बता कि इस अटूट जंज़ीर को किसने बनाया?

बन्दी—मैंने ही इस जंज़ीर को बड़े कष्ट और हिकमत के साथ बनाया था। मैंने सोचा कि मेरी प्रबल शक्ति सारे संसार को जकड़ लेगी और मैं स्वतंत्र होजाऊंगा। इसलिए रात दिन मैं इस भयंकर जंज़ीर को बड़ी २ भट्टियों में बड़ी कठिनता से बनाता रहा। परन्तु जब अंत में कार्य समाप्त होगया और जंज़ीर पूरी तय्यार हो गई तो मुझे मालूम हुआ कि मैं स्वयं इससे जकड़ा गया हूं?

* * * *

जो लोग मुझसे इस संसार में प्रेम करते हैं वे हर प्रकार से मुझे बांधने का प्रयत्न करते हैं परन्तु तेरा प्रेम इससे भिन्न है। वह इनके प्रेम से गाढ़ है। तू मुझे बांधता नहीं है किन्तु स्वतंत्र करता है।

* रवीन्द्र बाबू के 'गीताञ्जलि' के कुछ अंशों का अनुवाद।

कदाचित मैं उनको भूल जाऊं इसलिए वे मुझे अकेला छोड़ने को तय्यार नहीं होते। इधर दिन व्यतीत हो जाते हैं किन्तु तू दिखाई नहीं देता।

यदि अपनी प्रार्थनाओं में मैं तुझे न बुलाऊँ और तुझे अपने हृदय में स्थान न दूं तो भी तेरा प्रेम मेरे प्रेम की प्रतीक्षा करता है।

* * * *

वे दिन के समय मेरे घर आये और कहने लगे 'हम सबसे छोटे कमरे में रहेंगे'।

उन्होंने कहा हम परमात्मा की भक्ति में तुम्हारी सहायता करेंगे और इससे जो लाभ पावेंगे उसमें तुम्हें भी शामिल करेंगे। यह कह कर वे कोने में चुपचाप बैठ गये।

परन्तु रात्रि के समय अंधकार में वह मेरी पूजा के स्थान पर आघुसे और शोर मचाते और स्वार्थ से अन्धे होकर ईश्वर के चढ़ाने की वस्तुओं को वे अपवित्र तृष्णा के साथ उठा ले गये।

* * * *

तू मेरे जीवन का वह थोड़ा सा भाग रहने दे जिससे मैं तुझे अपना सब कुछ कह सकूं।

तू मेरी तृष्णाओं का वह थोड़ा सा भाग रहने दे जिससे मैं तुझे अनुभव करूं और हर एक वस्तु में तेरे पास आऊं और प्रतिक्षण अपना प्रेम तुझे अर्पण करूँ।

तू मेरे जीवन का वह थोड़ा सा भाग रहने दे जिससे मैं तुझे कभी न छुपा सकूं।

तू मेरी बेड़ियों का वह भाग रहने दे जिससे मैं तेरी इच्छा में बँधा हुआ हूं। तेरी इच्छा मेरे जीवन में पूर्ण हो। यही तेरे प्रेम की साँकल है।

* * * *

जहां मन भय-ग्रसित नहीं है, जहां मनुष्य शीस ऊंचा उठाये हुये हैं, जहां ज्ञान स्वतन्त्र है, जहां संसार तंग घरेलू दीवारों के कारण छोटे २ भागों में बँटा हुआ नहीं है; जहां आत्म-विचार हृदय की गहराई से उत्पन्न होते हैं, जहां सर्वोच्च शिखर पर पहुंचने के लिए पुरुषार्थ बाहु फैलाये रहता है, जहां बुद्धि की स्वच्छ नदी का मार्ग मृतवत् स्वभाव (Dead habit) के बियाबान में लोप नहीं हो जाता, जहां मन तेरी आधीनता स्वीकार कर विस्तृत होनेवाले विचार और कर्म के मैदान में पहुंचता है—ऐ पिता स्वतन्त्रता के उस उच्चतर शिखर पर मेरा देश पहुंचे।

* * * *

मेरे प्रभु! तुझसे मेरी यही प्रार्थना है कि तू निर्धनता और दीनता को मेरे हृदय से दूर कर। तू मुझे बल दे कि मैं अपने सुखों व दुःखों को सरलतापूर्वक धारण कर सकूं। तू मुझे यह शक्ति दे कि दूसरों की सेवा से मेरा प्रेम फलदायक हो।

मेरे स्वामी मुझे शक्ति दे कि मैं कंगालों से द्वेष न करूं और अपना घुटना अहंकारी शक्तिशाली पुरुषों के सामने न झुकाऊं।

तू मुझे यह शक्ति दे कि मैं अपने मन को रोज़ के झगड़ों से स्वतन्त्र करके तेरी ओर लगाऊं।

तू मुझे यह शक्ति दे कि हार्दिक प्रेम और आनन्द के साथ अपनी शक्ति व अपने जीवन को तुझे अर्पण करूं।

* * * *

जब हृदय कठोर और दुःखमय हो तब तू दया के प्रवाह के साथ मुझ तक आ।

जब जीवन से कृपा उठ चुकी हो तू मुझ पर राग के सुरों के साथ प्रकट हो।

जब कामकाज की अधिकता और काम करनेवालों की चिल्लाहट अधिक हो और जब वे मुझे आगे बढ़ने से रोकें तो मेरे शान्तिमय स्वामी मुझ तक आ।

जब मेरा हृदय विध्वंस होकर कोने में निराश हो बैठा हो तो मेरे स्वामी द्वार तोड़ कर और राजसी ठाठ के साथ अन्दर आ। जब कामना, भ्रम और मलिनता मन को अंधा कर देती हैं तो ऐ पवित्र पुरुष ! तू चेतन है अपने प्रकाश और गर्जन के साथ मुझ तक आ।

* * * *

ऐ मेरे ईश्वर ! तेरी प्रेम वर्षा के बन्द होने से मेरा हृदय शुष्क हो रहा है। दिक् मंडल की ललाई को दहलानेवाले बादल की छाया दृष्टिगोचर नहीं होती, दूर गिरे हुये, मधुर मेह का चिह्न तक नहीं दिखाई देता।

यदि तेरी इच्छा हो तो तू भयंकर तूफान भेज जो मृत्यु के अंधकार से भी अधिक कृष्ण हो और बिजली की चमक से आकाश एक किनारे से दूसरे किनारे तक चमका दे। परन्तु प्रभू तू इस दमघुटनेवाली गर्मी को वापिस बुला ले। यह बड़ी भयंकर और पीड़ा देनेवाली है और निर्दयता से हृदय को जलाये डालती है। तू अपनी दया के मेघ को भेज जिस प्रकार माता के नेत्र, बालक पर पिता के क्रुद्ध होते समय आंसुओं से भर जाते हैं।

अनुवादक—व्रजमोहनलाल वर्मा।

लार्ड मेयो।

[लेखक-श्रीयुत पुत्तनलाल विद्यार्थी।]

आपका जन्म २१ फरवरी सन् १८२२ को और मृत्यु ८ फरवरी १८७२ ई० को हुई। इस तरह आपकी जीवनलीला का काल केवल ५० वर्ष था परन्तु इस काल का आपने सुव्यय करके अपनी मातृभूमि और अपनी जाति की जो सेवा की वह हम भारतवासियों के लिए आदरणीय ही नहीं किन्तु अनुकरणीय भी है।

आप आयर्लैंड में पैदा हुए थे। यह विलायत का वही भाग है जिसको कि जातीय शासन प्रदान करने के लिए वर्तमान उदार लिबरल अंगरेज़ी गवर्नमेंट ने जी तोड़कर प्रयत्न किया है और जिसका विरोध विरोधी यूनियनिस्ट (unionist) दल ने केवल वक्तृताओं द्वारा ही नहीं वरन् स्वयंसेवकों की सेना बनाकर और आन्तरिक युद्ध (Civil war) की धमकी देकर भी किया।

इनका जन्म एक प्राचीन और मान्य घराने में हुआ था। इनके पिता एक विशप के पुत्र थे और इसलिए उनकी आय इतनी नहीं थी कि अपने ८ सन्तानों को स्कूल में पढ़ा सकें। अस्तु हमारे चरितनायक की शिक्षा घर पर ही हुई। आपकी माता बड़ी सुशीला थीं और सारे दिन काम ही में लगी रहती थीं। वे जिस कार्य का प्रबन्ध करतीं उसके छोटे से छोटे भाग की भी देखभाल करती थीं। इस और अन्य बातों में बालक रिचर्ड (यह आपका ईसाई (Christian) नाम था) के चरित्र संगठन में माता के उदाहरण से बड़ी सहायता मिली। आपने सदा अपनी माता में भक्तिबुद्धि रक्खी।

मसल है कि 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' आपने १२ वर्ष की ही अवस्था में अपनी धर्मपुस्तक बाइबिल की एक भूमिका लिख डाली। २३ वर्ष की अवस्था में आपने रूस

देश की यात्रा की। कई मास तक रहकर और इस देश के हाल से परिचित होकर जब आप घर लौटे तब रूस की प्राचीन और नवीन राजधानियां (मास्कोऊ व सेंटपीटर्सबर्ग) तथा महाराजा (ज़ार) की राज सभा का वृत्तान्त दो पुस्तकों में लिखकर अपने देशवासियों के भेंट किया (हे परमात्मन् भारत के शिक्षितों को भी आप ऐसी बुद्धि प्रदान करें कि वह भी निजोपार्जित ज्ञान अपने देशबन्धुओं के अर्पण करें) जो दूसरों का भला करता है उसका स्वयं भी भला होता है। जहां इनके देशवासियों के ज्ञान में वृद्धि हुई वहां इन्होंने भी अपने विचारों को निश्चित करके शृंखलाबद्ध प्रकाशित करना सीखा। आपका लिखा हुआ रूस का हाल (१८४५ का) हम थोड़ा सा उद्धृत करते हैं। "रूस में मध्यम श्रेणी के पुरुषों का बड़ा अभाव है। परिणाम यह होता है कि उच्च और नीच श्रेणी के मनुष्यों में सहानुभूति नहीं है। गुलाम भेड़ की खाल पहिने हुए अपने मालिक लार्ड के महल में भले ही चला जाय और उसके फाटक पर पहरा दे परन्तु उसके हृदय में यह भाव स्फुटित नहीं होते कि वह भी उसी जाति में पैदा हुआ है जिसमें कि उसका मालिक और उसके जन्म का भी वही अभिप्राय है जो कि उच्च कोटि के लार्ड का। मालिक महाशय अपने दासों पर कृपादृष्टि तो रखते हैं परन्तु उसी तरह से जैसे कि कोई भला आदमी अपने लाभदायक पशु का ध्यान रखता है। पर उसके साथ मैत्री करने या उसे बराबरी का अधिकार प्रदान करने का विचार मालिक के हृदय में कभी नहीं उठता। इसका परिणाम यह होता है कि एक ओर शिक्षित व उन्नत लार्ड हैं दूसरी ओर महामूर्ख व अवनत प्रजा जो गुलामी कर रही है। एक तरफ नभोमंडल से बात करते हुए प्रासाद हैं तो दूसरी ओर टूटा हुआ झोंपड़ा, सभ्यता और सुख की नदी कभी महलों की सीढ़ियों और चमन के किनारे बहती है, कभी जंगल और दलदल से अपना रास्ता बनाती है। उच्च पदों पर राजघराने और ऊंचे दर्जे के लोग ही रक्खे जाते हैं। जो प्रजा के हाल और व्यापार के रहस्यों से पूर्णतया अनभिज्ञ हैं उनके बनाये हुए कानून कभी सर्वहितकारी नहीं हो सकते।

रूस के किसानों का हाल प्रायः वही था जो आज भारतीय किसानों का है। रूस के गुलामों के विषय में आप लिखते हैं:—"वह अपने मालिक के मन के अतिरिक्त और किसी कानून को नहीं जानता और रूस के महाराज को जिनको कि पिता कहकर सम्बोधन किया जाता है वह भूमि पर की सर्व समृद्धियों की मूर्ति समझता है। जब उनके साथ अच्छा बर्ताव किया जाता है तब वह मालिक से प्रेम करते हैं और अनुगृहीत होते हैं, आगन्तुकों का आतिथ्य करते हैं और आपस में हिलमिल कर रहते हैं परन्तु गुलामी का कड़ा जुआ उनके कन्धों पर पड़ा हुआ है और उनके सारे कार्यों से उदासीनता झलकती है। पुश्तैनी मालिकों के प्रति इनकी भक्ति वास्तविक धर्म का अंग है। वे श्रेष्ठतर कार्यों के सम्पादन करने के योग्य हैं। जब नेपोलियन ने उनको स्वतन्त्रता प्रदान करनी चाही तब उन्होंने साफ इन्कार कर दिया और संग्राम में कभी रूसी दल को गुलामों के विद्रोह से हानि नहीं पहुंची। उन्होंने अपना जीवन और माल सब "पिता" के कहने से स्वाहा कर दिया, अपने हाथ से अपनी सारी सम्पत्ति आग में दे दी और बाल्यकाल के घर को छोड़कर बालबच्चों सहित भूखे प्यासे जंगल २ घूमते फिरे, इसलिए कि "पिता" की भूमि में आक्रमण करनेवाले फरासीसी को भोजन और छाया न मिले। रूसी फौज के सहस्रों योद्धा गोली से मार दिये गये परन्तु किसी ने भागने या अपना स्थान छोड़ने का विचार भी नहीं किया। परन्तु! वह शायद ही कभी घोर आक्रमण करके शत्रु के दल पर टूट

पड़े हों। उनकी शहीदों (निज धर्म पर प्राण त्यागनेवालों) की सी बहादुरी थी सिपाही की सी नहीं। गुलामी के भाव ने उनसे सारे कष्ट झिलवा लिये किन्तु इस प्रकार कार्य करने को उत्तेजित नहीं किया मानों विजय उन्हीं के पुरुषार्थ पर निर्भर हो। उनमें यह भाव नहीं रहा था कि हम भी कुछ कार्य कर सकते हैं। इससे शासकों को शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

रूस में गुलामों के कोड़े मार मार कर जान लेने की प्रथा थी। एक गुलाम को जिसने कि राज-पुत्र को मारा था इस प्रकार प्राणदंड मिला। पहिले उसे सिपाही बनाया गया क्योंकि वह प्रायः फ़ौजी दंड है जब उसपर कोड़े पड़ रहे थे और हर कोड़े पर शरीर से मांस के छीछड़े उड़ रहे थे तब वह सिपाहियों की पंक्तियों के सामने ज़बरदस्ती घुमाया जाता था। १२०वां कोड़ा पड़ने पर वह गिर पड़ा, हुक्म था एक सहस्र (१०००) कोड़े पड़ने का, उससे पूछा गया कि बाक़ी कोड़े उसी दिन मारे जायँ या दूसरे दिन उसने कहा उसी दिन क्योंकि दूसरे दिन के अर्थ यह होते कि दुःख अधिक काल तक सहना पड़ता। वह उठाया गया, कुछ कोड़े और पड़े और वह फिर गिर पड़ा। तीसरी दफ़ा फिर उठाया गया किन्तु वह बेहोश हो गया। वैसी ही अवस्था में उसे लोग वहां से उठा कर ले गये। घावों के दर्द से तड़प २ कर दूसरे दिन वह मर गया। यह दृश्य सार्वभौमिक प्रेम की शिक्षा देनेवाले ईसा के अनुयायी देश को अपमानित करानेवाला और शासन के सच्चे नियमों के विरुद्ध है"।

रूस से लौटकर आपने प्यारे आयरलैंड को रोगग्रस्त और अकाल से पीड़ित पाया। इस समय आपने अपना धर्म पालन किया और महीनों घोड़े की पीठ ही पर बिता दिये। आज यहां एक सभा में भाग लिया तो कल तीस मील दूर दूसरी सभा में जा पहुंचे (उस समय आयरलैंड में रेल नहीं थी) दुखियों को सहायता पहुंचाने का प्रबन्ध किया; भूखों को भोजन दिया; बिनने का सामान क्रय करके स्त्रियों को दिया और तैयार की हुई वस्तुओं को लन्दन ले जाकर अपने फ़ैशनदार मित्रों द्वारा अच्छे मूल्य पर बिकवाया। आप गानविद्या में भी कुशल थे इस समय आपने जलसे कराके आसपास के सब सज्जनों से टिकट लेकर या योंहीं चन्दा लेकर अकालपीड़ितों के सहायतार्थ धन इकट्ठा किया। थोड़े ही दिन बाद देश ने इनको पार्लामेन्ट में प्रतिनिधि चुन कर कृतज्ञता प्रकट की। इस समय आपकी अवस्था केवल २५ वर्ष की थी।

१८४७ से १८४८ तक आप पार्लामेन्ट में चुपचाप बैठे रहे। १८४९ के आरम्भ में आपने अपनी प्रथम वक्तृता दी। आपकी पार्टी के नेता ने आपको सफलता पर बधाई दी। विषय था आपका 'आयरलैंड'। इस विषय से आपका पूर्ण परिचय ही नहीं था वरन् इसपर आपका अगाध प्रेम भी था। १८४९ से ५१ तक १० वक्तृतायें आयरलैंड पर और दो आस्ट्रेलिया तथा भारत के सम्बन्ध में हुईं। सारे सदस्य आपको समझदार, विचारशील और अपने विषय के ज्ञाता मानने लगे। जिस पार्टी (Conservative) में आप सम्मिलित हुए थे उसकी आपने अच्छी सेवा की। १८५२ में पुरानी रीति नीति का अवलम्बन करनेवालों (Conservative) के हाथों में गवर्नमेन्ट की बाग आई। उन्होंने लार्ड नास (पिता के अर्ल आफ़ मेयो हो जाने से आप अब लार्ड नास कहलाने लगे थे) को आयरलैंड के प्रधानमंत्री के उच्च पद पर नियुक्त किया। अवस्था कम होने के कारण लार्ड नास को लोग "बालमंत्री" (boy Secretary) कहने लगे। इनकी पार्टी का अधिकार अल्पकाल तक ही रहा पर इसमें भी आपने कृषकों को अधिकार दिलाकर उनकी अवस्था सुधारने की चेष्टा की। इसके पश्चात् ६ वर्ष तक आप अपनी पार्टी के साथ

विरुद्ध दल (Opposition) में रहे। पार्लमेन्ट में भिन्न २ राजनैतिक मतावलम्वी दल हैं मुख्य और अधिक संख्या में उदार (Liberals) और पुरातनी (Conservatives) हैं। इनमें से जिसके दल के अधिक सदस्य होते हैं उसी दल का आधिपत्य होता है और उसी का नेता अपने दलवालों में से सज्जनों को चुनकर मंत्रिमण्डल बनाता है और स्वयं प्रधान मंत्री होता है। अस्तु, १८५८ में फिर पुरातनियों का भाग्योदय हुआ और नास फिर आयरलैंड के प्रधान-मंत्री हुए, परन्तु एक वर्ष पश्चात् इनकी पार्टी फिर हार गई और शासन उदार दल के हस्तगत हुआ। १८६६ में तृतीय और अन्तिमबार लार्ड नास उसी पद पर नियुक्त हुए और १८६८ तक, जब कि आपको भारत के वाइसराय का पद मिला, आप उक्त पद पर कार्य करते रहे। आपका आयरलैंड पर अगाध प्रेम था और उसी के लिए आप निरन्तर श्रम करते थे। आपने दीन दुखिया और असहाय निर्बलों के उद्धार के लिए विशेष यत्न किया जो किसी दर्जे तक सफल भी हुआ। "किसी दर्जे तक" इसलिए कि विलायत में सब राजनैतिक कार्यों का विशेषतः उनका जिनमें कि निम्न श्रेणी के पुरुषों का हित हो, सफलतापूर्वक करना बड़ा कठिन है। एक तो जो पार्टी कुछ करना चाहे उसके विरुद्धवाली अवश्य जी तोड़ कर कार्य को नाश करने का यत्न करती है। इसके अतिरिक्त अपनी ही पार्टी के वे सदस्य जिनकी कि हानि होने की सम्भावना होती है विरोध करते हैं। हमारे चरितनायक को एक बड़ी कठिनता पड़ी। आपके विचार उस समय के पुरातनियों से बहुत आगे बढ़े हुये थे परन्तु इतने नहीं कि यह उदार दल में सम्मिलित हो सकते। यह निश्चय था कि यदि यह किसी भी पार्टी में नहीं मिलेंगे तो देश की सेवा न कर सकेंगे अतः कलेजे पर पत्थर रखकर यह कन्सरवेटिव दल के साथ हो गये। बिलकुल अपने सिद्धान्तों के अनुसार कार्य न करना सब से बड़ी कुर्बानी है परन्तु देशभक्ति ने इनसे यह भी करा लिया। उन भारतवासियों को जो विशेषतः क्षुद्र बातों में आपस में सहमत न होकर देशसेवा को छोड़ बैठते हैं और कभी २ हानि भी पहुंचा देते हैं लार्ड नास के आचरण से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

जब मन्त्रिमंडल इनकी बात न मानता तो यह कहते कि अच्छा न मानिये परसाल उदार दल इससे अधिक कड़ी बात आपसे मनवावेगा। यह तो सृष्टि का नियम ही है। जो मनुष्य या जाति समयानुसार अपने आचार व्योवहारों में परिवर्तन नहीं करती प्रकृति उसे ठोकरें मार कर अपने अनुकूल चलने को बाधित करती है। उस समय की अवस्था देखकर लार्ड नास बहुधा निरास से हो जाते थे। कौन ऐसा मनुष्य है जिसने परोपकार के कार्य में हाथ डाला और यदा कदा नैराश्य के दर्शन नहीं किये? पर यह वह मनुष्य नहीं थे कि कठिनाइयों के सामने हाथ बांधकर बैठ जायँ। जितनी बड़ी मुश्किल उतना ही प्रबल उसके निवारण का उपाय यह आपका नियम था। जब आयरलैंड में विद्रोह हुआ तब आपने शान्तिपूर्वक स्थिर चित्त से उसका प्रवन्ध किया कभी घबड़ाये नहीं, उदारता को न छोड़ा।

१८६७ में पिता के देहान्त पर आप अर्ल आफ़ मेयो (Earl of Mayo) हो गये। १८६८ में आपको भारत के वाइसराय का पद मिला। विलायत में भी यह पद बड़े महत्व का समझा जाता है। इसलिए नहीं कि इतना वेतन इङ्गलैंड के किसी कर्मचारी या मंत्री को नहीं मिलता वरिक इसलिए कि वाइसराय को बहुत कुछ कार्य करने का स्वातंत्र्य और अधिकार मिलता है। जब मेयो की नियुक्ति का समाचार प्रकाशित किया गया तब विलायत के समाचारपत्रों ने इसकी बड़ी कड़ी समालोचना की, खूब शोर मचाया। उस समय पुरात-

नियों का दल निर्बल हो रहा था और यह सम्भावना थी कि जबतक मेयो भारत में जाकर चार्ज लेंगे तब तक उदार दल का आधिपत्य हो जायगा। इस घोर विरोध से आपको दुःख हुआ, अपने लिए नहीं परन्तु अपने-साथियों के लिए क्योंकि इस विरोध का प्रभाव इनके दल पर भी अच्छा नहीं पड़ा, परन्तु आपने किसी पर क्रोध नहीं किया और कहा कि मुझे किसी से द्वेष नहीं है। मेरी ईश्वर से यही प्रार्थना है कि अपने विरोधियों को अपने प्रबन्ध और कार्य से मैं यह दिखा दूं कि उन्होंने विरोध करने में भूल की थी। यद्यपि आप इस उच्च पद के महत्व और कठिनता को जानते थे तथापि कभी घबड़ाये नहीं। जैसे कोई शूरबीर समर में जाते समय इस आशा से कि उसको अपना पराक्रम दिखा कर देश की सेवा का अवसर मिलेगा हर्षित और गद्गद् होता है वैसेही इनका स्वदेश के गौरव वृद्धि के विचार से हृदय प्रफुल्लित हो जाता था। इंडिया आफ़िस जाकर इन्होंने भारतसम्बन्धी बातों का ज्ञान प्राप्त करना आरम्भ किया। एक दफ़ा आयरलैंड अपनी मातृभूमि के दर्शन करने गये और बाल्यकाल के दृश्यों को प्रेम भरी निगाहों से देखते हुए घूमा किये। ११ नवम्बर १८६८ को आप अपने प्रिय देश की मनोहर चट्टानों का अन्तिम दर्शन करके बिदा हुए। २० दिसम्बर १८६८ को आपने बम्बई में पदार्पण किया और वहां के गवर्नर के अतिथि हुए। दस दिन बम्बई में रहकर और वहां की सारी देखने-योग्य वस्तुओं को देखकर मद्रास होते हुए और बराबर नये देश का अनुभव तथा तत्सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करते हुए १२ जनवरी १८६९ को तोपों की सलामी लेकर आप कलकत्ते में जहाज़ (इस पर मद्रास से चढ़े थे) पर से उतरे। नवीन वाइसराय का स्वागत गवर्नमेंट हाउस (राजगृह) के विशाल ज़ीने पर बड़ी तड़क भड़क से होता है। आज उसकी शोभा निराली ही थी। ज़ीने के ऊपर वृद्ध सर जान लारेन्स, जिन्होंने ४० वर्ष इस देश में रहकर स्वदेश के लिए राष्ट्र का निर्माण और संरक्षण किया था, खड़े थे; आपने वाइसराय की देदीप्यमान यूनीफार्म आज अन्तिम वार धारण की थी, आपका शरीर दुर्बल था परन्तु सिर सीधा और मुख तेजोमय था। चारो ओर नीले और सुनहिले वस्त्र धारण किये उच्चकोटि के अफ़सर खड़े थे। नीचे युवा वाइसराय सैनिकों की सलामी लेता हुआ प्रसन्न चित्त से गाड़ी से उतरा। जब मेयो ज़ीने पर चढ़े तब पूर्व प्रथानुसार लारेन्स साहब ने तीन क़दम आगे बढ़कर ज़ीने के ऊपर आपका स्वागत किया। दोनों वाइसराय उच्च अधिकारियों के साथ कौंसिल के कमरे में जाकर बैठ गये। प्रधान मन्त्री चारो ओर खड़े हो गये। क्लर्क (लेखक) महाशय ने उच्चस्वर से शपथ पढ़ी। मेयो ने स्वीकृति प्रकट की। बाग़ में राजबाजा बजने लगा। बाहर एकत्रित हुए जनसमुदाय ने जयध्वनि की। किले ने जय सलामी दागी और सम्राट् की १९ करोड़ ६० लाख प्रजा नवीन शासक के अधिकार में चली गई। सायंकाल को लारेन्स ने भोज दिया और मेयो वाइसराय की यूनीफार्म में पधारे। आपके शील स्वभाव को देखकर बहुत से अफसर जिन्होंने विलायती समाचार-पत्रों में नवीन वाइसराय पर आक्रमण देखकर अन्यथा विचार रक्खा था, मुग्ध हो गये। भारतवर्ष में यह आपकी पहिली सफलता थी।

इस समय भारतीय गवर्नमेंट ७ विभागों में विभाजित था (अब ८ हैं। शिक्षाविभाग को कुछ ही वर्ष हुये कि संगठन हुआ है।) हर विभाग एक एक सदस्य के आधीन है। (वाइसराय एक विभाग वैदेशिक (Foreign) अपने आधीन रखता है परन्तु मेयो ने इसके अतिरिक्त पब्लिक वर्क्स (मकान सड़क इत्यादि का विभाग भी स्वाधीन रक्खा था) सदस्य के नीचे एक

प्रधान मन्त्री रहता है और मन्त्री के नीचे उप-मन्त्री, सहायक-मन्त्री इत्यादि। हर एक सरकारी कार्य वाइसराय और उसकी सभा (गवर्नर जनरल इन कौंसिल) के नाम से होता है पर वाइसराय को जो कि इस सभा का प्रधान होता है अधिकार है कि वह सब सदस्यों के निश्चित एक मत के विरुद्ध कार्य करे। वह गवर्नमेंट के सब कार्यों का स्वयं उत्तरदाता है। वास्तव में ऐसा करने का अवसर बहुत ही कम पड़ता है। मामूली कार्य सब सदस्य के हुक्म से हो जाते हैं (बहुत से प्रधान मन्त्री या उप-मन्त्री ही कर डालते हैं) जो ज़रा महत्व के होते हैं उनपर सदस्य अपना मत लिखकर वाइसराय के पास भेज देता है। वाइसराय यदि सहमत हुआ तो उस मामले का अन्त हो जाता है और मन्त्री सदस्य की सम्मति के अनुसार पत्र अथवा प्रस्ताव (Resolution) का ड्राफ्ट को लिख देता है जोकि 'गवर्नर जनरल इन कौंसिल' के नाम से प्रकाशित होता है। अधिक महत्व के मामलों में सहमत होने पर भी सब सदस्यों के पास या जिनके पास जाने की वाइसराय आवश्यकता समझे कागज़ात एक बक्स के अन्दर बन्द करके भेजे जाते हैं। वे अपनी २ सम्मति लिख देते हैं। जिन मामलों में वाइसराय सहमत नहीं होते वह बहुधा सब सदस्यों के पास घुमाये जाते हैं और अक्सर सप्ताह में साधारणतया एक बार होने-वाली कौंसिल के अधिवेशन में निश्चित किये जाते हैं। सब सदस्य मामले पर विचार कर के आते हैं। इसलिए निश्चय होने में बहुत देर नहीं लगती। जिन मामलों में शीघ्रता की आवश्यकता होती है उन्हें प्रधान मन्त्री सीधा वाइसराय के पास भेज देता है। वाइसराय या तो स्वयं आज्ञा दे देते हैं या उस विभाग के सदस्य के पास भेज देते हैं। एक २ दिन सातो विभागों के मन्त्रियों के लिए निश्चित है। उस दिन वह वाइसराय से मिलकर विशेष बातें बताते, उनके प्रश्नों का उत्तर देते और उचित आज्ञा प्राप्त करते हैं।

कभी २ किसी मामले में कौंसिल में बहस भी हो जाया करती है। एक नमूना देखिये—निश्चय हुआ कि किसी सरहद्दी देश पर आक्रमण किया जाय। सेनापति (कमांडर इंचीफ़) का धर्म है कि वह सफलता का पूर्ण प्रबन्ध करे, वाइसराय तथा और सदस्यों का धर्म है कि आवश्यकता से अधिक व्यय न होने दें। सेनापति का बनाया हुआ अनुमान पत्र पहिले वाइसराय सेनाविभाग के मन्त्री की सहायता से जांचते हैं, फिर मामला कौंसिल में प्रविष्ट होता है। सेनापति बहुधा व्यय का पूरा और उचित विचार नहीं करते। सम्भव है कि उन्होंने जिस कार्य के लिए हाथी और ऊंटों का एक दल मांगा है वह स्थानिक और तद्देशीय विचार से बैलों के दल से हो सकता हो। सैनिक मामलों में सेनापति की सम्मति हर सदस्य को मान्य होती है। सम्भव है कि दो या तीन सदस्य सेनापति के बनाये हुये अनुमानपत्र से सहमत हों और शेष वाइसराय से, ऐसी अवस्था में जब दोनों पक्षों के प्रमाण कह दिये गये तब यदि एक ओर के सदस्य दूसरी ओर से सहमत होगये तो मामला निश्चित होगया नहीं तो कुछ काट छांट करके अनुमानपत्र ठीक कर लिया जाता है।

यह लिखा जाचुका है कि परराष्ट्र (Foreign) विभाग वाइसराय के ही आधीन रहता है इसलिए पहिले इसी का ज़िक्र करते हैं। साधारणतः इसके ३ उपविभाग किये जा सकते हैं। देशी राज्य; (Native states) देश की सीमा पर रहने वाली जातियों के मामले और अफ़गानिस्तान, पर्शिया इत्यादि देश। Questions regarding frontier tribes foreign countries like Afganistan, Persia etc. १८५८ वाले बलवे के पूर्व देशी राज्य सन्देह की दृष्टि से देखे

जाते थे। शासकों का विचार था कि भारत की जनता गवर्नमेंट के अनुकूल है और रजवाड़े प्रतिकूल। अतएव वे दमन करने योग्य हैं और जहां तक हो सके उनको अंगरेज़ी राज्य में मिला लेना चाहिये। बलवे में यह प्रमाणित हुआ कि देशी राज्य राजभक्त हैं अतः इस पुरानी नीति में परिवर्तन हुआ। रजवाड़ों के आधीन भूमि को विदेशी और इसलिए अपने में सम्मिलित करने योग्य न मानकर गवर्नमेंट ने उनकी उन्नति और समृद्धि का न्यूनाधिक उत्तरदायित्व स्वीकार कर लिया। लार्ड मेयो जब भारतवर्ष में आये तब नीति में परिवर्तन हो चुका था। आपने राजाओं को सुशासन करने के लिए उत्तेजित किया। अलवर राज्य की अवस्था बड़ी शोचनीय थी। आपने पहिले तो महाराज को बहुत समझाया बुझाया जब उन्होंने न माना तब आप ने राज्य प्रबन्ध करने के लिए एक राज-सभा स्थापित करके अंगरेज़ी एजेन्ट को उसका सभापति बनाया और महाराजा को २४०,००० साल की पेन्शन दे दी। ऐसा कड़ा व्यवहार आपको और किसी देशी राजा के साथ नहीं करना पड़ा। लार्ड मेयो ने अपने वर्ताव से यह दर्शाया कि राजा चाहे बड़ा हो या छोटा यदि वह सदाचारी सुशासक है तो उनका मित्र तथा मानास्पद हो सकता है अन्यथा नहीं।

सीमाप्रान्तवासी जंगली मुसलमान जातियां सदा ही से उद्दंड हैं। वे अचानक आक्रमण करके लूट मार करतीं और कुछ आदमियों को भी पकड़ ले जाया करती थीं। इनसे दुखित होकर स्थानिक अफ़सरों ने यह प्रस्ताव किया कि कुछ सेना तैयार रक्खी जाय जिसका उपयोग आवश्यकता पड़ने पर तत्काल ही किया जा सके। लार्ड मेयो ने लिखा कि स्थानिक अफ़सरों का पत्र पढ़कर यही मालूम होता है कि लेखक के हृदय में प्रबल पर गुप्त आकांक्षा बदला लेनेवाली नीति के अवलम्बन करने की है जिसे गवर्नमेंट पसन्द नहीं करती। इस ढंग की लूट मार निम्न श्रेणी की चोरी या डकैती की कोटि में है। सभ्य जातियों के संग्राम की पदवी इसे नहीं दी जा सकती अतः इसके प्रतीकार के लिए मज़बूत शस्त्र पुलिस ही की आवश्यकता है सेना की नहीं। आपने विचारा कि देशी राज्यों द्वारा नवीन और सभ्य पाश्चात्य शैली पर शासन होने के लिए उसी प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता है इसलिए मेयो कालेज अजमेर की बुनियाद आपने डाली।

प्राचीन काल से भारतवर्ष पर आक्रमण उत्तर पश्चिम दिशा से ही होते आये हैं अतएव उसी ओर की सीमा को सुरक्षित रखना बड़े महत्व का कार्य है। लार्ड मेयो के समय के पूर्व भारत सरकार ने अन्य देशों में हस्तक्षेप न करने की नीति का अवलम्बन किया था। उस अस्थिर समय में राजाओं में बाहुल्यता से संग्राम होते थे और उन्हीं के परिणाम में प्रायः राजा बदला करते थे। भारतवर्ष का वैदेशिक विभाग सामयिक शासक से सम्बन्ध जोड़ लिया करता था। सन् १८६३ में अफ़गानिस्तान के शक्तिशाली राजा दोस्तमुहम्मद की मृत्यु होने के पश्चात् उत्तराधिकारियों में संग्राम आरम्भ हुआ। शेर अली और अफ़ज़ल खां दो प्रतिद्वन्दी थे। दोनों ही यह चाहते थे कि भारत सरकार उन्हें राजा मान ले। शेरअली का हिरात पर अधिकार था और अफ़ज़ल खां का काबुल और खन्धार पर। लार्ड मेयो के पूर्वगामी वाइसराय लार्ड लारेन्स ने दोनों को यही लिखा कि हिरात और क़ाबुल तथा खन्धार के शासक की हैसियत से दोनों से सम्बन्ध जोड़ा जा सकता है पर अफ़गानिस्तान के नाते से नहीं, यह उसी समय होगा जब दोनों में से कोई एक अपना अधिकार सारे देश पर जमा ले। इस नीति से दोनों राजा असन्तुष्ट हुए। शेरअली ने कहा कि भारत सरकार भाई भाई को लड़ाना चाहती है मैं अब और किसी वृहद्‌राज्य से सम्बन्ध

जोड़ूंगा। रूस अपने पैर मध्य पशिया में फैला रहा था और भय था कि कहीं उसके प्रभाव में अफ़गानिस्तान न आ जाय। इसी अवसर पर सन् १८६८ में शेरअली ने काबुल से अफ़ज़लखां को निकालकर अपना अधिकार जमा लिया। लार्ड लारेन्स ने अपने अन्तिम राजपत्र में जो ४ जनवरी १८६९ को लिखा था— भारत मन्त्री से यह प्रार्थना की कि इङ्गलैंड के वैदेशिक विभाग द्वारा रूस सरकार को यह सूचना दे दी जाय कि हम उसे अफ़गानिस्तान अथवा भारत के सीमास्थित किसी देश में भी हस्तक्षेप नहीं करने देंगे तथा भारत सरकार को अधिकार दिया जाय कि अवसर पड़ने पर काबुल के राजा को धन, अस्त्र शस्त्र तथा गोला बारूद आदि से वह सहायता पहुंचावे। इसके नौ दिन बाद लार्ड मेयो ने चार्ज लिया। दो ही मास पश्चात् अमीर काबुल भारतवर्ष में आये और अम्बाले में वाइसराय से मुलाकात की। उनकी बड़ी तड़क भड़क से आवभगत की गई पर उनकी एक भी हार्दिक आकांक्षा सिद्ध नहीं हुई। वह चाहते थे कि भारत सरकार से सन्धि कर लें, एक निश्चित संख्या धन की बराबर लिया करें, जब चाहें तब सेना तथा अस्त्र शस्त्र से सहायता लें, भारत सरकार अपने को उन्हें और उनकी सन्तान को अफ़गानिस्तान में सहायता देने के लिए बाध्य कर ले और उनका उत्तराधिकारी कनिष्ठ पुत्र अब्दुल्लाजान हो न कि ज्येष्ठ पुत्र याकूब खां। इनमें से किसी बात को भी मेयो ने स्वीकार नहीं किया परन्तु उन्होंने इन्कार भी इस ढंग से किया कि अमीर भारत सरकार से सन्तुष्ट रहे और उन्हें इस बात का विश्वास हो गया कि उसकी मैत्री ही में उनका भला है। लार्ड मेयो ने उन पर यह स्पष्ट कर दिया कि यद्यपि प्रजा पर अत्याचार करने में उनकी सहायता करने के लिए कभी भी कोई भारत का सैनिक उनके देश में नहीं भेजा जायगा तथापि जब यह सरकार आवश्यकता समझेगी तब धन इत्यादि से उनकी सहायता करेगी और स्पष्ट रूप से उन्हें अफ़गानिस्तान का बादशाह मानकर उनकी नैतिक रूप से सहायक रहेगी।

लार्ड मेयो ने अम्बाला दरबार के पश्चात् लिखा कि यदि इस देश के सब ओर स्वतन्त्र बलवान और मित्रभाव रखनेवाले राज्य हों जिनको कि यह निश्चय हो कि हमारे सम्बन्ध से उनको और सरकारों के सम्बन्ध की अपेक्षा अधिक लाभ है तो अंगरेज़ी राज्य सुरक्षित रहेगा।

रूस के राज्याधिकारियों से लिखा पढ़ी करके तथा गैर सरकारी (unofficial) रूप से दूत भेजकर अफ़गानिस्तान की सीमा जो चिरकाल से गड़बड़ थी आपने ठीक कर दी।

बिलोचिस्तान की आभ्यन्तर तथा बाह्य दशाएं दोनों ही इस समय असन्तोषजनक थीं। एक तो राजा जो खां था उसका अधिकार अपने सरदारों पर निश्चित नहीं था। वह कहते थे कि खां बादशाह नहीं केवल सरदार मात्र है। खां कहता था कि वह स्वाधीन राजा है। इसका निश्चय करना बड़ा कठिन था क्योंकि दोनों ही अपने पक्ष की सम्पुष्टि के प्रमाण दे सकते थे। सरदार लोग कहते थे कि उन्होंने खां को अपने सरदार (न कि राजा के समान) कार्य करने के लिए बाध्य किया है। खां कहते थे कि यद्यपि उन्हें कभी २ अपने सरदारों के विद्रोह से दबना पड़ा है तथापि वे उनके प्रतिरोध के लिए असफल प्रयत्न करने के पश्चात ही दबे थे और अवसर मिलते ही वे फिर बलवान होगये थे। लार्ड मेयो के उद्योग से दोनों प्रतिद्वन्दियों में चिरकाल तक शान्ति रही और इन्होंने एक बड़े अंगरेज़ अफ़सर को पंच बनाकर भेज दिया।

मध्य पशिया में एक मुसलमान याकूब कुशबेगी ने चीन से स्वतन्त्र होकर-पूर्वीय तुर्कि

स्तान में राज्य स्थापित किया था। उसने १८७० में लार्ड मेयो के पास एक दूत भेजा और इनसे कहा कि आप भी मित्रभाव से एक दूत भेजिये। वाइसराय ने फ़ार्सिथ साहब को भेजा उनको यह आज्ञा दी कि किसी राजनैतिक मामले में हस्तक्षेप न करना परन्तु पूर्वीय तुर्किस्तान तथा आसपास के राज्यों की सम्पत्ति, इतिहास, समकालीन राजनैतिक अवस्था, व्यापार सम्बन्धिनी शक्ति, भारतीय वस्तुओं की मांग और उनका वहां मूल्य तथा उन देशों से भारत में लाने योग्य वस्तुओं के पूरे और विश्वसनीय हाल का पता लगाते आना। फार्सिथ साहब ने वहां जाकर देखा कि याकूब मियां का अधिकार पूरा २ जमा नहीं था पर आपने किसी राजनैतिक मामले में हाथ नहीं डाला और आज्ञानुसार अपना सारा कार्य बड़ी योग्यता से कर के शीघ्र ही लौट आये और सारा वृतान्त वाइसराय को सुना दिया।

लार्ड मेयो का भारतवर्ष में सबसे अधिक महत्व का कार्य अर्थविभाग सम्बन्धी था। इस कारण से अर्थविभाग का कुछ कार्यक्रम बतलाना आवश्यक प्रतीत है। भारत का सरकारी साल १ अप्रैल से प्रारम्भ होकर ३१ मार्च को समाप्त होता है। हर वर्ष मार्च में आगामी वर्ष के आय तथा व्यय का एक बजट (अनुमान पत्र) बनाया जाता है। उस समय समाप्त होनेवाले वर्ष का पूरा २ हिसाब तैयार नहीं होता प्रायः अप्रैल से दिसम्बर तक ६ मास का हिसाब उपस्थित होता है। यदि अप्रैल सन् १९१४ से मार्च सन् १९१५ तक का बजट बनाना है (इसे सन् १९१४-१५ का बजट कहेंगे) तो उस समय (मार्च सन् १९१४ में) सन् १९१२-१३ का आय तथा व्यय पूर्णतया ज्ञात रहता है और १९१३-१४ का जो बजट मार्च १९१० में बना था वह भी उपस्थित रहता है। गत ६ मास के हिसाब देखने से मालूम होता है कि उसमें अमुक अमुक परिवर्तन की आवश्यकता है, तो बजट इस प्रकार बनाया जाता है।

नोन की आमदनी का १९१४–१५ का बजट।

१९१२-१३ की वास्तविक आय ५ करोड़।

१९१३-१४ की अनुमानित आय ५॥ करोड़।

१९१३-१४ की द्वितीय बार की (मार्च १९१४) अनुमानित आय ६ करोड़।

१९१४-१५ की अनुमानित आय ६॥ करोड़।

मार्च १९१३ में १९१३-१४ के लिए यद्यपि ५॥ करोड़ का अनुमान किया गया था तथापि ६ मास की वास्तविक आय से यह प्रतीत होता है कि आय ६ करोड़ होगी। अतः १९१४-१५ की आय का अनुमान इसी के आधार पर किया जायगा। ठीक इसी प्रकार व्यय का भी अनुमान किया जाता है और यथासम्भव व्यय अनुमान के अनुसार ही होता है।

सन् १९१४-१५ से १८६८-६९ तक (जबकि लार्ड मेयो भारतवर्ष में आये) ५५ वर्षों में से ३९ में व्यय आय से अधिक हुआ था और इस अधिक धन की संख्या ७५,५०,००,०००) रुपया थी। केवल १६ वर्षों में आय अधिक हुई थी और उसकी संख्या १२,५०,००,०००) रु० थी। इनके आने से ३ वर्ष पूर्व (सन् १८६६ से १८६९ तक) ही सरकारी कोष में ७,००,००,०००) रुपये का घाटा हुआ था। जैसे किसी व्यक्ति की आय ५०) मासिक हो और व्यय ५५) तो वह अपनी आर्थिक स्थिति बहुत दिन तक पुष्ट नहीं रख सकेगा वैसे ही जिस देश का व्यय आय से अधिक होता हो उसकी दशा किसी न किसी दिन अवश्य ही शोचनीय हो जायगी। यह कठिनाई और भी बढ़ जाती है यदि आय व्यय का अनुमान ठीक न हो सके। यही दशा उस समय भारतीय कोष की थी। यद्यपि वर्ष के आदि में अनुमान पत्र में बचत दिखाई जाती थी तथापि वर्षान्त में घाटा ही रहता था।

ईशप्रार्थना.

करुणासागर प्रभो! रक्तपात बन्द कीजिये.

Manoranjan Press,
Girgaon-Bombay.

युद्धक्षेत्रमें हमारे मराठा वीर.

साम्राज्य की सिरमौर सिक्ख सेना.

अतुलनीय धीरता और वीरता से जर्मन गोलोंकी परवाह
न कर सिक्ख वीर आगे बढ़ते जा रहे हैं.

१८६७ से १८६९ तक २ वर्षों में बजट के अनुसार ४६७००००० बचना चाहिये था पर वास्तव में इतना रुपया घट गया जिसका अर्थ यह हुआ कि २ वर्ष के बजट में ९३४००००० की भूल थी। अतः जो कार्य लार्ड मेयो को करना था उसके दो विभाग थे एक तो बजट का ठीक २ बनना जिसमें गवर्नमेंट को वास्तविक अवस्था ज्ञात रहे और दूसरे ऐसा प्रबन्ध करना जिससे कि साधारणतया घाटा न हो।

पाठकों को स्मरण होगा कि लार्ड मेयो ने १२ जनवरी १८६९ को चार्ज लिया था। मार्च में सन् १८६८-६९ का संशोधित बजट बना और यह अनुमान किया गया कि गत वर्ष में १ करोड़ के लगभग का घाटा होगा पर जब पूरे वर्ष का हिसाब तैयार हुआ तो ३ करोड़ से अधिक का घाटा रहा इससे और अन्य कारणों से भी लार्ड मेयो को सन्देह हुआ कि सन् १८६९-७० का बजट भी कहीं गलत न हो। उसकी आपने पहिले स्वयं जांच की और फिर आज्ञा दी कि १८६९-७० का बजट पुनः जांचा जाय। इस पड़ताल से ज्ञात हुआ कि वर्षान्त में २,२०,००,००० रु० का घाटा होगा यद्यपि गत मार्च में ६६०,००० की बचत की आशा थी।

लार्ड मेयो की इस विषय सम्बन्धी व्यग्रता के बढ़ने का इस समय एक और कारण उपस्थित हुआ। आपके अर्थविभाग के सदस्य सर रिचर्ड टेम्पेल को ६ मास की छुट्टी लेकर विलायत जाना पड़ा अतः उनके अनुभव और ज्ञान का लाभ इस अवसर पर प्राप्त न हुआ। (भारत सरकार को कैसी ही हानि सहनी पड़े पर अंगरेज़ अफसरों को छुट्टी दे ही दी जाती है कारण यह है कि यह लोग इतनी दूर से आकर नौकरी करते हैं। इसलिए इनकी सुविधाओं का विचार रखना पड़ता है) सर रिचर्ड के स्थान पर स्ट्रैची साहब कार्य करते थे उनसे इनको बड़ी सहायता मिली।

घाटे की पूर्ति के दो ही उपाय हैं, एक तो आय को बढ़ाना दूसरे व्यय को कम करना। यद्यपि वर्ष के मध्य में इन दोनों ही साधनों के अवलम्बन करने से गड़बड़ मचती है तथापि लार्ड मेयो ने बड़ी स्थिरता और हिम्मत से निश्चय किया कि कुछ भी हो चाहे सेना में चाहे सिविल विभाग (देश के शासन कार्यकर्ताओं) में न्यूनता करनी पड़े, चाहे बनते मकान इत्यादि रुकवाना पड़े परन्तु वह सरकारी कोष में घाटा न होने देंगे। आज इस प्रकार के भाव शासकों से सुनने को नहीं मिलते। १०७००,०००) आपने उस विभाग के व्यय में से कम कर दिया जिसके सुपुर्द पुल, सड़क, मकान, नहरें इत्यादि बनवाना था और ४६०००००) रु० आपने अन्य व्ययकारी विभागों में से कम कर दिया (ऊपर कह आये हैं कि वर्ष के मध्य में काट छांट करने से गड़बड़ मचती है यह पाठकों को अब स्पष्ट होगया होगा। जैसे मकान बनाने के लिये ईंटे, चूना, मट्टी इत्यादि मँगाकर ढेर किया और इंजीनियर नौकर रक्खे तत्पश्चात खबर आई कि धनाभाव से काम बन्द रहेगा बस सब नौकरों को छुड़ा देना पड़ा या और काम पर बदल देना पड़ा। मसाला बहुत कुछ खराब होगया। कुछ अंश बरसात में बह गया) व्यय में इस प्रकार कमी करने पर भी जब घाटा पूरा होते न दिखाई दिया तब वाइसराय ने आमदनी बढ़ाने के लिए कर बढ़ाना निश्चित किया। आय पर एक रुपया सैकड़ा कर था उसको आपने आधे वर्ष के लिए २॥) रु० सैकड़ा कर दिया जिससे ४३०००००) की अधिक आय हुई। आपने मद्रास तथा बम्बई में नोन पर भी कर बढ़ा दिया। इससे ३४०००००) रु० की अधिक आय हुई इस तरह से राम २ करके २२०००००) रु० का घाटा पूरा हुआ।

अब आपने सारे देश की वार्षिक-स्थिति की ओर ध्यान दिया। बजट सरकार बिना किसी आधार के नहीं बना सकती। यह

आधार उसे प्रान्तिक सरकार तथा भिन्न भिन्न विभागों से प्राप्त होता था और है क्योंकि वही यह जान सकते हैं कि आगामी वर्ष में किन २ विशेष घटनाओं की सम्भावना है और उनका देश के प्रति भाग पर क्या प्रभाव पड़ेगा। उस समय प्रान्तिक सरकारों इत्यादि के भेजे हुये लेखों पर जोकि बड़ी मेहनत से तैयार किये जाते थे कुछ विचार नहीं होता था और वह व्यर्थ पड़े रहते थे। लार्ड मेयो ने इस बात पर बड़ा ज़ोर दिया कि सब लेखों को एक चित्र में एकत्रित किया जाय और उनसे लाभ उठाया जाय। इसके लिए यह भी आवश्यक था कि वह लेखे प्रान्तिक सरकारों इत्यादि से समय पर प्राप्त हों, जब यह भी होने लगा तब प्रान्तिक सरकार तथा अन्य विभाग इस बात पर बाध्य किये गये कि वह अपने भेजे हुये लेखे के भीतर ही व्यय करें। इन सब बातों का फल यह हुआ कि बजट ठीक २ बनने लगा और यदि अनुमान से भिन्न कोई बात होनेवाली भी होती तो उसकी सूचना सरकार को फौरन ही मिल जाती जिससे उसके प्रतिकार इत्यादि का प्रबन्ध कर दिया जाता।

अब आपने किफायत की ओर ध्यान दिया। भारतवर्ष में आर्थिक कठिनता का एक बड़ा कारण यह है कि देश का शासन भिन्न २ प्रान्तिक सरकारों के द्वारा होता है जोकि यद्यपि इम्पीरियल (राष्ट्रीय = भारतवर्ष भर की) सरकार के आधीन हैं तथापि उससे अलग हैं। इनको लार्ड मेयो के पूर्व किसी प्रकार का आर्थिक स्वातन्त्र्य प्राप्त नहीं था। यह वर्ष के अन्त में अपने आगामी वर्ष के व्यय के अनुमान से भारतीय सरकार से रुपया मांगती थीं। भारतीय सरकार पूरे देश की आय का विचार करके हर एक को हिस्से से रुपया दे देती थी और वर्षान्त में यदि कुछ धन बच रहता था तो उसे लौटा लेती थी इसलिए कोई सरकार किफ़ायत की दृष्टि से व्यय नहीं करती थी क्योंकि उसको ज्ञात था कि बचत से उसका कुछ लाभ नहीं। अनुभव से यह मालूम हो चुका था कि जो प्रान्त जितना अधिक धन माँगता है उसको उतना ही अधिक मिलता है। अतः प्रत्येक प्रान्त खूब बढ़ाकर अपना बजट बनाता और मिला हुआ सारा धन येन केन प्रकारेण व्यय कर डालता। लार्ड मेयो ने सोचा कि प्रान्तीय सरकारों से किफायत कराने का एकमात्र उपाय उनको कुछ अंश में आर्थिक दशा का उत्तरदाता बनाना है। इस विषय पर पत्र-व्यवहार करके आपने पहिले खूब छानबीन की। तत्पश्चात् १४ दिसम्बर १८७० को एक निश्चय प्रकाशित कर आपने प्रान्तिक सरकारों के वार्षिक व्यय के लिए एक स्थिर संख्या नियत कर दी। यह सामान्यतया ५ वर्षों के लिए होता थी और इसमें न्यूनता विशेष अवस्थाओं ही में हो सकती थी जैसे युद्ध इत्यादि। इसकी बचत भारतीय सरकार लौटा नहीं लेती थी किन्तु वह प्रान्तीय सरकारों के पास ही आगामी वर्षों में व्यय के लिए रह जाती थी और रह जाती है। इस धन से जेलखाने, रजिस्टरी, पुलीस, शिक्षा, अस्पताल, छपाई, सड़क, मकान इत्यादि सम्बन्धीय व्यय प्रान्तीय सरकार को करना होता है। पर, किस २ कार्य में कितना २ व्यय करना चाहिये यह निश्चित करने के लिए प्रान्तीय सरकार स्वतन्त्र है। इसमें अब कुछ परिवर्तन होगया है पर नियम वही है जिसका प्रचार लार्ड मेयो ने किया था। अब किसी २ आमदनी का निश्चित भाग प्रान्तीय सरकारों को मिलता है और एकाध पूरी मिल जाती है। कोई २ बिलकुल नहीं मिलती। इसका ब्योरा हम नीचे देते हैं:—

बिलकुल भारतीय सरकार को।

नोन, देश की सीमा पर प्रान्त चुंगी, अफीम और देशी राजाओं के दिये हुये कर।

प्रान्तीय तथा भारतीय सरकारों में विभाजित ।

भूमि का लगान तथा मालगुज़ारी, सरकारी स्टाम्प (टिकट), नशीली वस्तुओं का कर, आमदनी इत्यादि पर कर, जंगल तथा रजिस्टरी ।

बिलकुल प्रान्तीय ।

• प्रान्तीय रेट (वह कर जो कि सड़कों की मरम्मत स्कूल, अस्पताल आदि के लिए विशेष रूप से लिये जाते हैं) ।

कोष में घटती न होने देने के लिए आपने अन्य उपाय भी किये । आपके आने के पूर्व ही भारत-सचिव ने आय पर कर लगाया जाना स्वीकृत कर लिया था अतः इस कर को लगा कर आपने कोष में आय की वृद्धि की । नोन पर भी आपने सब प्रान्तों में कर समान कर दिया तथा नोन की प्राप्ति में भी आधिक्य किया और उसके चालान का व्यय कम करके तत्सम्बन्धीय आय बढ़ाई । पर विशेष रूप से आपने किफ़ायत व्यय में की । हर विभाग को कड़ी दृष्टि से देख भाल करके यथासम्भव आपने व्यय में न्यूनता कर दी । इसका परिणाम यह हुआ कि देश के खर्चे में ५०००००००) रु० वार्षिक की बचत होगई । इस विषय को समाप्त करने के पूर्व एक बात कहे बिना हम नहीं रह सकते वह यह है कि आपने देश से बाहर जानेवाले नाज पर जो चुंगी पड़ती थी उसको हटा दिया ! इसका परिणाम भारतवासियों के लिए बड़ा ही बुरा हुआ । एक तो नाज के अधिक बाहर जाने से यहां सदा महँगी रहने लगी और देश के निवासी भूखों मरने लगे दूसरे भारत सरकार की आय घटने से उसे दूसरे प्रकार से अपनी आय बढ़ानी पड़ी जिससे यहां के रहनेवालों की हानि हुई या शिक्षा इत्यादि आवश्यक व्ययों में कमी करनी पड़ी । इससे भी भारतवासियों की ही हानि हुई ।

वास्तव में बात यह है कि एक्सपोर्ट ड्यूटी (देश से बाहर जानेवाली वस्तुओं पर कर) का भार बहुधा उस देश पर पड़ता है जहां कि वस्तुएं खर्च होती हैं क्योंकि वहां उनका मूल्य बढ़ जाता है-"बहुधा" इसलिए कि कभी २ इसका परिणाम बड़ा भयंकर भी हो सकता है । जैसे यदि विलायत से भेजे जानेवाले कपड़े पर विलायत ही में कर पड़े तो वह भारत में आकर महँगा बिकेगा और तब यह सम्भव है कि जापान अपना कपड़ा सस्ता बेंच कर विलायत की सौदागरी को हानि पहुंचावे । साधारण नियम यह है कि कच्चे माल पर इस ढंग के कर से लाभ है क्योंकि देश में उसकी अधिकता होने से वह सस्ता होगा और निवासियों को सुविधा होगी । बने हुए (मैन्यूफैक्चर्ड) माल पर कर से हानि है क्योंकि उससे सौदागरी की हानि होना सम्भव है । आशा है कि पाठक मेरे इस विषयत्याग को क्षमा करेंगे ।

लार्ड मेयो के प्रबन्ध से सन् १८६८-७० का आय व्यय करीब २ बराबर ही रहा और १८७०-७१ तथा १८७१-७२ में क्रमशः १४८००००० और ३१२००००० की बचत हुई ।

इन्डियन नेशनल कांग्रेस इस बात पर सदा से ज़ोर देती आई है कि भारतवर्ष में सेना विभाग का व्यय आवश्यकता से कहीं अधिक है । इस विषय में कांग्रेस को एक प्रकार से सफलता हुई भी और नहीं भी हुई । सफलता नहीं हुई इस विचार से कि इस व्यय में किसी वर्ष न्यूनता नहीं हुई और सफलता इस विचार से हुई कि यदि यह आन्दोलन न होता तो कदाचित् व्यय और भी अधिक बढ़ जाता । इस विभाग का व्यय १८५६-५७ में १२॥ करोड़ रुपया था जो लार्ड मेयो के समय सन् १८६८-६९ में बढ़कर १६ करोड़ होगया था । (सन् १९११-१२ में इस विभाग का व्यय २९३३७८००० था !) भारत-सचिव ने वाइसराय को इसमें

न्यूनतर करने को लिखा था। अतः आपने व्यय करने में कमी करने की ठानी और इस विभाग के प्रबन्ध सम्बन्धी व्यय में कमी की तथा कुछ विलायती सेना न्यून कर दी और थोड़ी सी भारतीय सेना घटा दी। इस विषय में आपके भाव कैसे उच्च थे यह निम्नोद्धृत वाक्य से ज्ञात हो जायगा। आपने भारतीय सरकार की ओर से भारत-सचिव को लिखा :—

"हमारे विचार में यह बड़ा अनुचित होगा यदि यहां की जनता देश की रक्षा के लिए आवश्यक धन से एक पैसा भी अधिक देने के लिए बाध्य की जाय।"

पर लिखते हुए दुःख होता है कि आपके ही समय से भारतवासियों को तोपें चलानेवालों की जगह मिलना बन्द होगया।

इस नीति का पूर्ण परिणाम कुछ काल पश्चात् दिखाई पड़ा। देश के निवासियों को हथियार रखने की प्रायः मनाही होगई।

देश में आन्तरिक सुधार करनेवाले वाइसरायों में भी आपका आसन बहुत ऊंचा है। आपने ऐसे कठिन समय में जब रेलें बहुत कम थीं बड़े परिश्रम से देश में भ्रमण करके अपनी आंखों से वास्तविक अवस्था देखी। भवन, सड़क, नहर इत्यादि निर्माणकारिणी विभाग [जिसे अंगरेज़ी में संक्षेप से पी० डब्लू० डी० (P. W. D. Public Works Department) कहते हैं] की उस समय दशा बड़ी शोचनीय थी। इसका व्यय धन उधार लेकर किया जाता था अतएव कोई किफ़ायत नहीं करता था। एक दफा आपने लिखा कि "कोई बुराई जोकि एक वृहत कार्य में हो सकती है बची नहीं। अनुमानित तथा वास्तविक व्यय में दूने का बल, नीचे की धरती देखे बिना ही बुनियाद डाल देना, कार्य होते समय अधिक व्यय की कोई जांच पड़ताल न करना"। अन्य स्थान पर आपने लिखा कि "बेपरवाही, अयोग्यता, तथा रिशवतखोरी का यह क्लेशद इतिहास मैंने बड़े दुःख से पढ़ा। हर एक उच्चपदाधिकारी जिसका कि सम्बन्ध इस मकान के आरम्भ से था बेपरवाही का अपराधी है, हर मातहत पर न्यूनाधिक अयोग्यता का दोषारोपण हो सकता है। ठेकेदार सब रिशवत देनेवाले हैं।" आपने यह परिणाम निकाला कि इस कुप्रबन्ध का मुख्य कारण उच्चपदाधिकारियों की न्यूनता है अतएव आपने उनकी संख्या में वृद्धि करके इस विभाग का सुधार किया। इसके अतिरिक्त आपने यह कड़ा नियम कर दिया कि साधारणतया छोटे निर्माणकार्यों का भार देश की साधारण वार्षिक आय पर ही रहे। आपके समय में भारतीय सरकार की रेल सम्बन्धिनी नीति में बड़ा परिवर्तन हुआ। सन् १८५३ में भारत भर में २१॥ मील रेल थी। यह सन् १८६९ अर्थात् लार्ड मेयो के इस देश में आने के समय तक बढ़कर ४ हज़ार मील होगई पर जिस प्रकार से रेलों का विस्तार हुआ वह इस देश के लिए बड़ा हानिकारक था। भारत-सचिव ड्यूक आफ़ आरगाइल के शब्दों में "गवर्नमेंट के अधिकार और विश्वास पर धन उधार लिया गया जिसपर ५) सैकड़ा लाभ की जमानत की गई। अतः धन देनेवालों को घाटे का कोई डर न रहा पर भारत सरकार को हर तरह से घाटा ही घाटा रहा और लाभ की कोई सूरत न रही।" इसका यह अर्थ था कि यदि वर्षान्त में रेल में लगे हुए धन पर ५) सैकड़े से कम लाभ हो तो बाक़ी सरकार दे और यदि अधिक हो तो धन देनेवालों का। तिसपर भी तुर्रा यह कि लागत पर ५) सैकड़े की आमदनी निश्चित होने के कारण रेल के बनाने के व्यय में किफ़ायत का विचार नहीं किया जाता था। इसलिए लार्ड मेयो ने यह ढंग निकाला कि ३-४ रुपये सैकड़े पर धन उधार लेकर सरकार स्वयं रेल बनवावे जिससे एक ओर तो हानि की सम्भावना कम होगई

और दूसरी ओर लाभ होने की आशा बंधी। लार्ड मेयो ने इस देश का यह बड़ा उपकार किया। आजकल भारत के राष्ट्रीय दलवाले इस बात पर ज़ोर देते हैं कि इस देश की सारी रेलें सरकार अपने अधिकार में कर ले; रेलवे कम्प-नियों और भारत सरकार के बीच किन्हीं शर्तों के अनुसार यथासमय ऐसा होना सम्भव भी है।

भारतवर्ष के अधिकांश निवासियों की जीविका प्रायः खेतो पर निर्भर है पर किसान लोग बिलकुल ही ईश्वराधीन हैं। वे आकाश की ओर टकटकी लगाये मेघ का आसरा देखा करते हैं। पश्चिम के उन्नत देशों में ऐसा नहीं है। वहां की सरकारों ने कृत्रिम नहरें इत्यादि बनवाकर इस प्रकार का प्रबन्ध कर दिया है कि यदि जल वृष्टि न भी हो तो भी खेत सींचे जा सकते हैं और अनाज पैदा हो सकता है। इसलिए वहां के किसानों को वह दुःख नहीं सहने पड़ते जो कि भारतीय कृषकों के प्रायः द्वार ही पर खड़े रहते हैं। लार्ड मेयो ने कई नहरों की बुनियाद डाली।

प्रारम्भिक शिक्षा के विस्तार के भी यह बड़े पक्षपाती थे। उन्होंने इस बात पर बड़ा ज़ोर दिया कि केवल कुछ बंगालियों की उच्च शिक्षा पर ही ध्यान न दिया जाय जैसा कि उस समय होता था वरन् देहातियों को भी कुछ सिखाने का उद्योग किया जाय। आपका विश्वास था कि भारतवर्ष में शिक्षा का प्रचार देहाती स्कूल और देशीभाषाओं द्वारा ही हो सकता है। आपके समय में उन स्कूलों को भी जिनमें कि केवल गोरों के लड़के ही पढ़ते हैं बड़ी सहायता मिली।

इन्होंने केवल प्रजा ही की शिक्षा का प्रबन्ध नहीं किया वरन् राजा की ज्ञान वृद्धि का भी उद्योग किया। उस समय सरकार को बंगाल के सर्वोन्नत ज़िले तक के निवासियों की संख्या ज्ञात न थी। उस समय के किसी साधन द्वारा अकाल आदि आपत्ति से होनेवाली हानि का पता नहीं चल सकता था इसलिए आपने सारे भारतवर्ष की मनुष्यगणना कराई तथा हर ज़िले, नगर और गाँव की जनता के स्थानिक अन्वेषण के पश्चात् आर्थिक और सामाजिक अवस्था का हाल लिखवाया।

लार्ड मेयो को दृढ़ विश्वास था (और इसकी सत्यता में कभी किसी विचारशील मनुष्य को सन्देह नहीं हो सकता) कि भारतवासियों की स्थायी उन्नति उन्हीं के निज पुरुषार्थ पर निर्भर है। आप उस समय की प्रत्याशा करते थे जबकि म्युनिसिपलिटियां सरकारी पदाधिका-रियों को भलीभांति सहायता करेंगी। आपने पंजाब के छोटे लाट की म्युनिसिपलिटियों की उन्नति करने के लिए बड़ी प्रशंसा की थी। आपने लिखा कि इन संस्थाओं में देशी और विलायती सज्जन मिलकर कार्य करें और इस प्रकार से अधिकांश लोग सुशासनपद्धति की शिक्षा ग्रहण करें।

कारागार सम्बन्धी प्रबन्ध के सुधार की भी आपने चेष्टा की। पाठकों को ज्ञात है कि भारतवर्ष के निर्वासित घोर अपराधी अंडमन द्वीप में जिसे कालापानी भी कहते हैं भेजे जाते हैं। उस समय कुप्रबन्ध के कारण वहां की मृत्यु-संख्या बहुत बढ़ी हुई थी तथा उस द्वीप का व्यय भार भारत-कोष पर बहुत पड़ता था। इन दोषों को दूर करने के लिए आपने सेनाविभाग के एक उच्च पदाधिकारी को इस द्वीप का शासक नियुक्त किया। उसने कुछ सुधार किये पर यह इच्छा प्रगट की कि वाइसराय स्वयं इस उपनिवेश का निरीक्षण करें। लार्ड मेयो ने यह स्वीकार कर फर-वरी सन् १८७२ को उक्त स्थान पर पदार्पण किया। दिन भर देखभाल करते रहे यह कार्य

सायंकाल के ५ बजे समाप्त हुआ। अंधेरा होने में अभी १ घंटा बाकी था इसलिए लार्ड मेयो ने इरादा किया कि हैरियट नाम के पहाड़ को भी जिसपर कि ज्वर से पीड़ित लोगों के आरोग्य लाभ करने के लिए एक मकान बनवाने का विचार था देख आवें। वहां पर कोई ऐसे अपराधी नहीं रहते थे जिनसे कि कुछ भय हो केवल ऐसे लोग रहते थे जिनका अच्छा चाल-चलन प्रायः दृढ़ हो चुका था। आपने खूब निरीक्षण किया और सायंकाल होने पर लौट पड़े। जल के किनारे पर पहुंचने के पूर्व ही अंधेरा अधिक होगया था इसलिए दो आदमी जलती हुई मशालें लिए हुये आगे २ चलते थे। इनके पीछे प्राइवेट सेक्रेटरी और द्वीप के शासक के बीच में लार्ड मेयो चलते थे। पीछे दो अफ़सर और सशस्त्र पुलीस थी। शासक महाशय वाइसराय की आज्ञा लेकर दूसरे दिन का प्रबन्ध करने के लिए कुछ हटे और वाइसराय आगे बढ़े इतने ही में पत्थरों के पीछे से किसी पशु की तरह दौड़ने का शब्द सुनाई दिया और एक दो आदमियों ने मशाल के प्रकाश में चाकू पकड़े एक हाथ को चलते हुए देखा। प्राइवेट सेक्रेटरी ने धमाके का शब्द सुना और पीछे फिरकर देखा कि वाइसराय की पीठपर एक मनुष्य चीते के समान चिपटा हुआ है। एकदम १२ आदमी उस हत्यारे पर टूट पड़े और यदि अफ़सर उसकी प्राण-रक्षा न करते तो उसे मार ही डाला होता। अस्तु वह पकड़ लिया गया। घायल वाइसराय पानी में गिर पड़े थे। इनको प्राइवेट सेक्रेटरी ने उठाया और एक देशी गाड़ी पर बिठाल दिया। इनकी पीठ से रक्त बह रहा था। आप पल दो पल बैठे फिर पीछे गिर पड़े, धीरे से कहा 'मेरा सिर उठा दो' और बस। अग्नि-बोट पर चढ़ाकर अफ़सर उन्हें जहाज़ पर ले गये। जिस समय इनको जहाज़ में खाट पर लिटाने के लिए उठाया गया सब ने देखा कि इनकी आत्मा ने इस नश्वर शरीर को त्याग दिया था।

हत्यारा पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त की ओर का एक मुसलमान था जिसने कि पंजाब की घोड़-सवार पुलीस में नौकरी कर ली थी। इसने अपने एक पुरातन शत्रु को मरवा डाला था। इस अपराध के कारण इसे फांसी हो जानी चाहिये थी पर इसपर दया की गई और आजन्म द्वीपान्तरवास का दंड मिला। इस ने उसी समय यह निश्चित कर लिया था कि किसी बड़े अंगरेज़ को मार कर सरकार से बदला लूंगा। अतः अंडमन द्वीप में इसने सच्चरित्रता से रहकर इधर उधर घूमने की स्वतंत्रता प्राप्त कर ली थी। वाइसराय के वहां जाने पर इसको अपने पूर्व निश्चित घोर दुष्कर्म करने का अवसर प्राप्त हुआ। कहने की आवश्यकता नहीं कि ११ मार्च सन् १८७२ को इसे फांसी दी गई। पुस्तकरचयिता ने लिखा है कि उसका, उसकी जाति का तथा उसके गाँव का नाम इस पुस्तक में अंकित नहीं किये जावेंगे। यह उचित ही किया गया है। ऐसे नरपिशाच की किसी प्रकार की भी ख्याति न होनी चाहिये।

वाइसराय का शव पहिले कलकत्ते लाया गया और फिर इनकी जन्मभूमि आयरलैंड को लेजाया गया जहां यह सदा के लिए धराशायी हुये। इनकी मृत्यु पर आयरलैंडनिवासी और विलायत की राष्ट्रीय सरकार दोनों ने अत्यन्त शोक प्रगट किया। समाचारपत्रों ने लिखा कि यह संयुक्त आदर बड़ा दुष्प्राप्य है। गवर्नमेंट जिसका आदर करती है बहुधा उसका मान प्रजा के हृदय में नहीं होता और जिसमें प्रजा की प्रेम और पूज्य बुद्धि होती है उसका सरकार यथोचित सम्मान नहीं करती। धन्य है वे पुरुष और सार्थक है उनका जीवन जिनके मरने पर राजा और प्रजा दोनों ही आंसू बहावें।

परमात्मन्! आप इस प्यारी प्राचीन भारत-भूमि पर कृपा करें और इस घोर अविद्या अन्धकार के गढ़े से निकालकर ज्ञान और उन्नति के शिखर पर पहुंचानेवाले सपूत सन्तानों को उत्पन्न करें जिससे कि यह फिर अपना शिर ऊंचा कर सकें और सारा संसार इसका वैसाही आदर करे जैसा कि किसी समय इसको प्राप्त था। भगवन् यह सब आपकी कृपा ही से हो सकेगा।

युद्ध-क्षेत्र की सैर।

पाठक तथा पाठिकागण आजकल आप नित्य ही युद्ध की खबरें पढ़ती होंगी। आप पढ़ती होंगी कि आज फलाने स्थान पर फलानी सेना ने शत्रुओं को पीछे हटाया, आज फला शहर पर अंगरेज़ों ने कब्ज़ा कर लिया, आज जर्मनों ने विजय लाभ की किन्तु इन सब खबरों को पढ़कर आपको खून को सफेद करनेवाली युद्ध की भीषणता का पता न लगता होगा, आपको यह पता न होगा कि युद्ध की वास्तविकता या हकीकत क्या है और यह कि उसमें दिल दहलानेवाली बातें कौनसी होती हैं?

आप भोजन कर विश्राम करने को बैठी हैं, थोड़ी देर के लिए गृहस्थी के कामों को छोड़ कर आइये, हमारे साथ चलिये, हम आपको युद्धक्षेत्र की सैर करा लावें। हम यह नहीं कहतीं कि इससे आपका मन बहलेगा, सम्भव है युद्ध की भीषणता, गोलों की गररररडम, बन्दूकों की बिजली कीसी तड़प, गोलियों की सनसनाहट, घायल सिपाहियों का पानी के लिए चीतकार और मुर्दों के ढेर देखकर आपका कोमल कलेजा काँप जाय किन्तु याद रहे कुछ ही दिन पहिले हमारे ही भाई और हमारी ही बहिनें स्वयं घोड़े पर सवार हो रणक्षेत्र में शत्रुओं का मान मर्दन करती थीं। उन्हीं का खून हम में बह रहा है। आज हमारी दशा हीन अवश्य है किन्तु संसार से रणबाँकुरो और वीर ललनाओं का नाम अब भी नहीं मिट गया है। आज इस यूरोपीय महाभारत में भी कितनी ही ललनाएं अस्त्र शस्त्र ले स्त्री जाति का मुख उज्वल कर रही हैं। अभी कल ही यह खबर आई थी कि एक रूसी को सेना में जाने की आज्ञा हुई। वह भीरु था, कायर था, रण में न जाकर वह घर में छिप रहा। उसकी स्त्री को यह बात मालूम होगई। वह पति का वेश धारण कर अस्त्रशस्त्र से सुसज्जित हो मैदान में जा पहुंची। कितने ही वीर शत्रुओं को उसने नीचा दिखाया आखीर में वह घायल हुई, उसके कई गोलियां लगीं। सिपाही उसे सेवा सुश्रूषा के लिए उठाकर ले गये। उसका हाल खुल गया। कारण पूछा जाने पर उसने यह बताया कि "मैं यह नहीं चाहती थी कि मेरे कुल में यह दाग लगे कि उसमें कोई भीरु पैदा हुआ था।" हमने इस बात को इसीलिए सुना देना अच्छा समझा जिसमें आप रणक्षेत्र की सैर करने के नाम से विचलित न हो जाँय।

अच्छा तो अब देर न करिये, आपको घर लौटने की भी जल्दी होगी।

* * * *

वह देखिये, समुद्र के किनारे एक भीषण मैदान खँडहरसा पड़ा हुआ है। युद्ध के ही कारण इसकी ऐसी दशा हो गई है, नहीं तो ४ दिन पहिले इसका एक ज़माना था, दूर दूर से यात्री इसकी सैर करने आते थे। यह जो खंड-

हर दिखाई देते हैं वे चार दिन पहिले ऊंचे २ महल थे, कभी २ रात्रि में सन्देह हो जाता था कि ये चन्द्रमा को चूम रहे हैं, नक्षत्रों से येबातें कर रहे हैं किन्तु आज ये धराशायी (ज़मींदोज़) हो गये हैं, इनके निवासी घर छोड़ जर्मनों के भय से भाग गये हैं। इस प्रदेश का नाम बेलजियम है। आज यहीं की आपको सैर करनी है। दूर से आप चलकर आई हैं, स्वस्थ हो लीजिये और सावधानी से देखती चलिये।

* * * *

देखिये २ वह एक पैदल सेना आती हुई दिखाई देती है। इनकी खाकी रंग की पोशाक कैसी धुंधली दिखाई देती है। आइये बढ़कर देखें ये कौन हैं। आहा, इनके साथ तो यूनियन जैक का झंडा फहरा रहा है, यह तो ब्रिटिश सरकार की ही सेना है। यह अच्छा हुआ। यह मित्र ही निकले। आइये इन्हीं के साथ हम लोग भी होलें। देखिये वह दूर से कौन सवार तेज़ी से चला आरहा है? अरे यह तो रुख के आगे आपहुंचा। यह सैनिक कैसे एक साथ हाथ उठा रहे हैं, अरे ये तो सब एकदम रुक भी गये। मालूम होता है यह कोई इनका अफसर है। बस अब इसी के साथ हम सब लोग भी होलें। युद्ध का तमाशा इसीके साथ रहने से अच्छा दिखाई देगा। देखिये उसके हुक्म के साथ ही ये सब पश्चिम की ओर मुड़ गये। पचास कदम चलकर कप्तान खड़ा होकर कुछ कह रहा है। कितने ही सैनिक कुदाली ले यह ज़मीन क्यों खोदने लगे ये तो बड़े बड़े ऊंचे राजप्रासादों की नेह सी कुछ खोदी जा रही है। क्या अपने ठहरने को ये महल तैयार करेंगे क्या? नहीं नहीं यह नहीं हो सकता। देखिये कप्तान से मैं इसका मर्म पूँछ आती हूँ।

* * * *

हम लोग धोखे में थे। कप्तान कहता है कि "ये महल नहीं खोद रहे हैं, वरन अपने रहने को वे ज़मीन के भीतर गड्ढे खोद रहे हैं। ये गड्ढे २४ हाथ गहरे खोदे जाते हैं। कारण यह है कि गोले फूटने पर १०, १२ हाथ ज़मीन में घुस जाते हैं इसी कारण से बचाव के निमित्त गहराई गड्ढों की २४ हाथ रक्खी जाती है। इन्हीं खड्डों में ये सैनिक छिपे रहते हैं। मैदान में रहने से शत्रुओं के गोलों से बचना कठिन है, इस लिए शरण ज़मीन के अन्दर ही मिल सकती है। इन्हीं खड्डों में सब सैनिक और सेना का सराजाम रहता है"

* * * *

गररररडम-गररररडम।

यह गोले की आवाज़ कहां से आई। अरे यह तो हम लोगों के कानों के पास ही से निकल गया। देखिये! देखिये पचास हाथ के फासले पर वह फूट गया। आंखें चौंधियां गई। वहां पर वे दस आदमी देखिये कैसे हो गये? वह देखिये एक हाथ उड़ गया। वह किसी का सर चकनाचूर हो गया। हैं, यह कप्तान ने बिगुल कैसी बजाई। ये सिपाही खड्डों में कैसे घुसे जाते हैं? अरे ये तो सब भीतर चले गये, कप्तान भी भीतर घुसना चाहता है, आइये हम लोग भी इसी के साथ खड्डु में चले चलें। मालूम होता है शत्रु आरहे हैं।

* * * *

चारो तरफ भीषण गोलों की वर्षा हो रही है। सिपाही खड्डों में बैठे हैं, कितनों ही की मुखश्री चिन्ताशून्य है, कितनों ही के चेहरे पर हवाइयां उड़ रही हैं। प्रत्येक दूसरे मिनट पर गोले इधर उधर गिर रहे हैं, संध्या होने को आई किन्तु गोलों की वर्षा में कमी नहीं हुई है। अरे वह देखो "कप्तान वाला घर ढेर हो गया। कप्तान साहब भाग कर इस खड्डु में चले गये। अरे यहां तो बहुत कुछ भरा हुआ है। वह देखिये शराब की बोतलें ढेरों इकट्ठा हैं, खाने

का भी कुछ सामान दिखाई देता है। चलिये दिन भर बाद कुछ भोजन का सहारा हो जायगा। तोपों की अररररडम भी कम होती दिखाई देती है। अँधेरा भी हो गया है, सैनिक रोशनी के इन्तज़ाम में लग गये हैं। अब संध्या भी होगई चलिये कुछ पेट पूजा कर लीजिये।

देखिये सैनिकों की दशा कैसी है? दिन भर इन्हें चलते और काम करते ही बीता है अभी तक विश्राम करने की नौबत नहीं आई है। ये भी भोजन पर कैसे टूटे हैं, किसी प्रकार पेट की ज्वाला को कम कर ये ज़मीन पर ही पड़ कर मुर्दों से बाज़ी लगायेंगे। देखिये वह कप्तान भी आगया, अब भोजन में देर नहीं।

सुनिये वह क्या कह रहा है "भाइयो आज ७ दिन और ७ रात हम लोगों को लड़ते और भागते बीता, कितने ही भाई हमारे वीरगति को प्राप्त हुए, ईश्वर की दया से हम लोग प्रसन्न हैं। जगदीश्वर को जय मनाओ और भोजन आरम्भ करो।"

कप्तान की बात खतम भी न हो पाई थी कि गोलों की आवाज़ सुनाई देने लगी। अरे क्या शत्रु फिर आगये। सब भोजन ज्यों का त्यों रह गया। सब सिपाही फिर वैसे ही अस्त्र शस्त्र ले तैयार होगये। देखिये वह एक सिपाही खड्ड के बाहर गर्दन निकाले क्या देख रहा है? अरे वह तो वहीं उलट गया। यह क्या? लोग दौड़े। कप्तान ने सब को रोक दिया। शत्रु की गोलियों की सनसनाहट से कान उड़े जाते हैं। आइये कप्तान से पूछें मामला क्या है?

* * * *

देखिये कप्तान कहता है कि जब से वह आया है उसे बराबर शत्रु की अग्निवर्षा का ही सामना करना पड़ा है, तीन दिन खाली उसकी सेना केवल अग्निवर्षा से दूर रही किन्तु उन तीन दिनों में उसे बिना रात में एक मिनट भी सोये सेना सहित बराबर चलना पड़ा है। उसके कितने ही आदमी मर गये हैं। उसे नये और बहुसंख्यक सैनिकों की आवश्यकता है। वह कहता है कि जितने अधिक सैनिक उसके पास रहेंगे उतनी ही कम उसे हानि उठानी पड़ेगी और उतनी ही जल्दी वह शत्रुओं का दमन कर सकेगा। देखिये उसने भी सैनिकों को तोप छोड़ने की आज्ञा दे दी। आह ये तो कान के पर्दे फटते से मालूम होते हैं। देखिये वह जर्मनों के गोले ने फटकर ज़मीन में प्रायः १६ फीट ८ इञ्च का कैसा गढ़ा कर दिया है। चारो ओर अग्नि ही प्रज्वलित दिखाई देती है। आकाश में उड़ते हुए लाल २ अग्नि के स्फुलिङ्ग अंधेरी रात में कैसे भयावने मालूम होते हैं। कान के पास से गुजरते हुये गोलों की सनसनाहट से शरीर का रक्त ठंढा सा हो जाता है। गोले से निकले हुये तेज़ धारवाले लोहे के टुकड़े चारो ओर नाचते से दिखाई देते हैं। बड़ा ही रोमांचकारी दृश्य है। मालूम होता है यम ने सभी नारकीय राक्षसों को आज उत्सव मनाने की छुट्टी दे दी है या भैरव के पिशाच और भूत संहारकारिणी मातृ दुर्गा के लिए रुन्ड मुन्ड की माला बनाने का आयोजन कर रहे हैं।

रात्रि के ११ बज चुके किन्तु युद्ध की भीषणता में कमी नहीं। लीजिये अब १२ पर सुई भी आपहुंची। ईश्वर को धन्यवाद है गररररडम में भी कमी होती दिखाई देती है। वह कप्तान भी आगे आगया है। चौथाई सैनिकों को उसने आराम करने की आज्ञा दे दी। आज ७ दिन और रात्रि के बाद इन्हें सोना नसीब होरहा है।

युद्ध भी हलका हो गया है मालूम पड़ता है जर्मन चल दिये हैं।

* * * *

हमारा अनुमान ठीक निकला। जर्मन चल दिये हैं किन्तु वे यों ही नहीं चले गये। देखिये कप्तान के पास वह जासूस क्या खबर दे रहा

है। वह कहता है "कि पास ही दक्षिण की ओर फ्रेंच सिपाही खड्डों में भरे पड़े थे उन्हें जर्मनों ने त्रस्त कर बाहर निकलने पर बाध्य किया। खुले मैदान में विचारों की बहुत बुरी गति हुई। सब मुर्दे मैदान में पड़े हैं। उनमें कुछ जीवित भी होंगे किन्तु उनके पास जाना कठिन है क्योंकि जर्मनों की गोलियां बराबर चली आरही हैं। उनमें जो जीवित हैं वे सब थोड़ी देर में मर जायँगे क्योंकि भीषण ठंढी हवा बह रही है। ब्रिटिश सिपाहियों की खड्डों के आस पास जो घर थे उनका पता नहीं है, किसी की छत गायब है, कोई औंधा पड़ा ज़मीन से बातें कर रहा है, ईंटें और खपड़े इस तरह चारों ओर फैले हैं मानों उनकी वर्षा हुई हो।

अच्छा अब चलिये रात्रि बहुत बीत चुकी हम लोग भी तनिक विश्राम कर लें।

* * * *

लीजिये थकान भी दूर नहीं हुई थी कि सबेरा हो गया, किन्तु यहां कौओं की काँव २ नहीं है, कहीं चिड़ियों की चहचहाहट भी नहीं सुनाई देती। आकाश मेघाच्छन्न है, सर्दी से हाथ पैर ठुठरे जाते हैं, बदन पाला हुआ जाता है, पानी छूना तो दूर रहा उसकी ओर देखने की भी हिम्मत नहीं होती। चलिये रात्रि के लीला-क्षेत्र का दर्शन कर आवें।

* * * *

भूमि की रंगत देखकर मालूम होता है यहां वरसाने का फाग रचा गया था। चारों ओर रक्त ही रक्त दिखाई देता है। इनमें कितने ही फ्रेंच और कितने ही अंगरेज़ सैनिक हैं। चलिये देखें वह खड्ड के पास हिलता क्या दिखाई देता है? अरे यह तो आहत सैनिक है। पहिनावे से फ्रेंच मालूम होता है। अभी इसमें जान बाकी है। देखिये यह इसका झोला भी पास ही पड़ा है। इसमें यह बोतल भी है। दो चार बूंद इसके मुख में डालिये शायद बच जाय, अरे इसने तो आँखें खोल दीं। तनिक शराब इसे और देनी चाहिये। इससे युद्ध गाथा कदाचित् कुछ मालूम हो जाय। देखिये वह कुछ कह रहा है "हम...लोगों को...जर्मनों ने...व अड़ा...... धोखा दिया। हम लो...इधर से जा आ...थे पास ही ख... में ...झंडा लिए प...जर्मन सैनि...थे। वे हाथ उठा दोहाई सी दे रहे थे। कप्तान के हु... से हम लोग उन्हें गिरफ्तार करने गये। जब हम लोग खड्ड में पहुँचे ...तो हाथ उठानेवालों के पीछे जो छि...हुए जर्मन सि...थे उन्होंने गोलों की वर्षा शुरू कर दी। जो झंडा उठाये थे वे भी गोला चलाने लगे। हम सब धोखे में मारे गये"

अरे बोलते २ इसकी तो आंखें पथरा गईं। बेचारे का कोई साथी भी पास नहीं! यदि हम लोगों के पहिले किसी ने पहुंच कर इसकी फिक्र की होती तो यह बच जाता। किन्तु लड़ाई में कौन किस को पूछता है कितने ही जिन्दा कुचल जाते हैं, घोड़े और तोपगाड़ियां उनपर दौड़ जाती हैं।

* * * *

अब दिन चढ़ता दिखाई देता है गृहस्थी का कामकाज सब पड़ा होगा, चलिए लौट चलें। यदि यह सैर आपको पसन्द आई होगी तो फिर किसी दिन रणक्षेत्र की सैर कराने ले चलूंगी। अच्छा अब बिदा होती हूं।

उमा नेहरू।

सम्पादकीय टिप्पणियां।

आसाम की विचित्र अवस्था।

आसाम की व्यवस्थापक कौंसिल में हाल में मान० मि० कामिनीकुमार चांदा ने राजधानी शिलांग के शासन के विषय में जो आश्चर्य-जनक कथा सुनाई है उससे मालूम पड़ता है कि वहां के निवासियों के भाग्य अन्य भारतवासियों की तरह साधारण नहीं वरन् असाधारण हैं। देश में सर्वत्र जो क़ानून प्रचलित है उसकी वहां पहुंच नहीं। ३० वर्ष पहिले एक जंगली जाति के शासन के उपयुक्त जो नियम बना लिये गये थे वे ही आज भी वहां पर क़ानून का काम देरहे हैं। हाईकोर्ट का वहां कोई अधिकार नहीं। चीफ कमिश्नर, कमिश्नर और डिप्टी कमिश्नर ही वहां के न्यायालय स्वरूप हैं और उन्हीं पुराने नियमों के आधार पर श्रीमुख से जो आज्ञा सुना देते हैं वही 'न्याय' माना जाता है। बिना विशेष आज्ञापत्र पाये वकीलों की कचेहरियों में पैठ नहीं। मान० सर एस० पी० सिंह सरीखे जनप्रिय महाशय ने कुछ समय हुआ एक मुकद्दमे में बोलने की इजाज़त चाही थी मगर प्रभुओं ने साफ़ नाहीं कर दी। जबतक सज़ा ३ वर्ष की कैद से अधिक की न हो तबतक किसी भी व्यक्ति को अपील करने का अधिकार नहीं। परन्तु कथा यहीं समाप्त नहीं है। पाठक यदि अधीर हो गये हों तो अपने धैर्य की मात्रा कुछ और बढ़ालें। हां, इतना अवश्य है कि वहां 'सब धान बाइस पसेरी नहीं है।' बुद्धिमान शासकों ने विवेक से काम लिया है। केवल तुच्छ काले चमड़ेवाले ही उपर्युक्त नियमों के शिकंजे में कसे गये हैं; उस प्रान्त में रहनेवाले गोरे चमड़ेवालों के लिए, उदाहरणतः जर्मनों के लिए, वे नियम हर्गिज़ लागू नहीं हैं। शायद मान० मि० चांदा इस विवेकपूर्ण नीति का सूक्ष्म महत्व नहीं समझ सके इसीलिए उन्होंने आसाम की कौंसिल में यह मन्तव्य उपस्थित कर डाला कि वहां भी अंगरेज़ी राज के साधारण क़ानून प्रचलित किये जायँ और अन्य प्रान्तों की तरह वहां के प्रजाजनों के मुकद्दमों का भी फैसला हुआ करे। अधिक आश्चर्य की बात यह है कि कौंसिल का कोई भी हिन्दुस्थानी मेम्बर इस बारीक मामले की भीतरी तह पर नहीं पहुंच सका, न प्रभुओं ही की प्रसन्नता अप्रसन्नता की पर्वाह की, सब के सब वर्तमान प्रबन्ध के विरुद्ध खड्गहस्त हो गये और आठो ही मेम्बरों ने मि० चांदा की हां में हां मिलादी! मगर हिन्दुस्थानी मेम्बरों की वक्त बेवक्त की इन्हीं नासमझियों और ज़ियादतियों को रोकने के लिए तो हमारे उदार शासकों ने कौंसिल में उन्हें अधिक अधिकार नहीं दिया है। कौंसिल के अधिकारियों ने झट मि० चांदा की बात दबा दी और स्वाभाविक दूरदर्शिता से इस प्रकार होनेवाले अनर्थ को रोक दिया।

बजबज के दंगे की रिपोर्ट।

समाचारपत्र-पाठकों को मालूम होगा कि 'कोमागाटामारू' नाम के जापानी जहाज़ पर सवार होकर कई सौ अभागे भारतसन्तान, अधिकांशतः सिक्ख, गत मई १९१४ में कैनेडा के तटपर गये थे परन्तु नियमविरुद्ध यात्रा करने के कारण उन्हें वहां की ज़मीन पर पैर रखने की आज्ञा नहीं मिली। कैनेडा से जहाज़ जापान को लौट आया जहां से उसको भारतसरकार ने जापान सरकार से लिखापढ़ी करके अपने खर्च से भारत को बुलवा लिया। इसके बाद २९ सितम्बर १९१४ को कलकत्ते के पास बजबज में पुलीस के साथ उनका जिस तरह बखेड़ा होगया और जिसमें कई सिक्खों की जानें गईं उसका वृत्तान्त यहाँ लिखने की आवश्यकता नहीं। इस दंगे के सम्बन्ध में जाँच करने के लिए सरकार

ने सर विलियम विसेंट की अध्यक्षता में एक कमेटी नियुक्त की थी जिसकी रिपोर्ट सरकारी मन्तव्य सहित हाल ही में प्रकाशित हुई है। उससे विदित होता है कि पुलीस ने इस दंगे के अभियोग में जिन बहुतसे सिक्खों को गिरफ़ार किया था उनपर मुकदमा चलाने का विचार सरकार ने अब त्याग दिया है। परन्तु साथही उसमें कहा गया है कि "पकड़े हुए मनुष्यों में से ६० पहिले ही छोड़े जा चुके हैं और ८१ और मुक्त कर दिये जायँगे परन्तु शेष व्यक्तियों के सम्बन्ध में अभी कुछ और विचार करने की आवश्यकता है"! रिपोर्ट भी यह अन्तिम नहीं है क्योंकि "दंगे के सम्बन्ध में कुछ बातें ऐसी हैं जिनकी और जांच होगी।" एक दंगे के सम्बन्ध में गिरफ़ार व्यक्तियों में से कुछ को छोड़ देने और कुछ को जेलखाने में बंद रखने की नीति में कौनसा लाभ सरकार ने सोचा है यह तो उसीको मालूम होगा। कम से कम यह स्पष्ट है कि पंजाब के देशी अख़बार सरकार की इस नीति से सन्तुष्ट नहीं। जब सरकार ने उनके अधिकांश साथियों को छोड़ दिया है और उदारतापूर्वक उनपर मुकदमा चलाने का विचार भी त्याग दिया है तब साधारण बुद्धि के आदमी को तो यही उचित मालूम पड़ेगा कि शेष व्यक्ति भी तुरन्त मुक्त कर दिये जायँ और यथासम्भव शीघ्र ही इस अप्रिय कांड की इति श्री हो।

जर्मन भूत।

लड़ाई तो यूरोप में होरही है परन्तु जान पड़ता है कि जर्मन भूत कई हज़ार मील की छलांग मारकर हिन्दुस्थान के कुछ एंग्लो-इंडियन पत्रों के सिरों पर नाचने लगे हैं। इनका यह मर्ज़ अगर बढ़ता गया तो हमें भय है कि भारत सरकार को इनके इलाज की फ़िक्र करनी पड़ेगी। जैसे सावन के अन्धे को सब चीज़ें हरी भरी और सब्ज़ ही जान पड़ती हैं वैसे ही कुछ एंग्लो-इंडियन पत्रों को संसार के सब प्रकार के कुचक्रों की रचनाओं में जर्मनों ही का हाथ नज़र आता है। उदाहरणतः प्रयाग के 'पायोनियर' के कार्यालय से एक पैम्फलेट प्रकाशित हुआ है जिसमें यह लिखा गया है कि "भारतवर्ष में असन्तोष अराजकता आदि फैलाने में जर्मनों का हाथ है। 'बर्लिन प्रेस ब्यूरो' ने मिस्र और भारत के देशी समाचार-पत्रों को अराजकता का प्रचार करने के लिए उत्तेजित किया। बर्लिन और ज्यूरिच-स्थित जर्मनी की गुप्त पुलीस के सभ्यों ने भारतीय युवकों को जूट और रुई में आग लगाना सिखलाया, बम फेंकना सिखलाया, और हत्या करने में उन्हें निपुण बना दिया। दिल्ली में जो बम फेंका गया था उसमें भी जर्मनी का हाथ था। जर्मनी ही के संकेतानुसार ढाके में १६ जुलाई १९१४ को हत्याएं की गई थीं ...! भारतवासियों की राजभक्ति पर कीच फेंकने के लिए मानो इतना काफ़ी न था, इसीलिए आगे चलकर पैम्फलेट में कहागया है कि जर्मनी ने रुपये से भारतीय कांग्रेस कमेटी की सहायता की, उसे स्वराज्य के निमित्त खड़े होने के लिए उत्तेजित किया...। इतना ही नहीं, यह भी कहागया है कि वङ्गविच्छेद और स्वदेशी आन्दोलन के लिए भी जर्मनी से सहायता मिली थी।" साधु साधु! शायद इससे अधिक दूर जाने में कल्पनाशक्ति असमर्थ थी।

* * *

इसी प्रकार कलकत्ते का 'स्टेट्समैन' बड़ी गम्भीरता के साथ अपने पाठकों को इसबात का विश्वास दिलाता है कि जर्मनों ही की साज़िश से सिक्खों ने 'कोमागाटामारू' द्वारा कैनेडा जाने की ठानी थी! सिक्खों के दंगे की जाँच करनेवाली कमेटी ने भी इस विषय पर विचार किया है परन्तु सुबूत न होने के कारण वह जर्मनों को दोषी नहीं ठहरा सकी है।

जर्मनों के लगाव का संदेह इस कारण किया जाता है कि मि० बून नाम के एक जर्मन एजेंट द्वारा इस जहाज़ का किराया ठहराया गया और यह कि सिक्खों के रवांना होने की खबर पहिले जर्मन अखबारों ने छापी थी। मगर स्वयं कमेटी के मतानुसार इतना ही कारण सन्तोषजनक नहीं है। उलटे इस बात के सुबूत मौजूद हैं कि जर्मन एजेंट ने अपनी दलाली लेली थी और सिक्खों के अगुआ गुरुदत्त सिंह को उसने या किसी और जर्मन ने इसके तथा दूसरे किसी काम के लिए एक कौड़ी भी नहीं दी थी। साथ ही यह भी मालूम होगया है कि जर्मन एजेंट ने गुरुदत्त सिंह को बहुत समझाया था कि कैनेडा जहाज़ न ले जाओ पर उन्होंने एक न सुनी।

ऐसी अवस्था में 'स्टेट्समैन' का प्रलाप कहांतक न्यायसङ्गत है इसके बतलाने की कोई आवश्यकता नहीं।

औद्योगिक उन्नति।

वर्तमान महायुद्ध ने अपनी बाल्यावस्था ही में जो बड़े बड़े परिवर्तन कर डाले हैं उनमें एक यह कम उल्लेखयोग्य नहीं है कि ब्रिटिश सरकार ने अपनी मुक्तद्वारा (निःशुल्क व्यापार की) नीति को ताक पर रख दिया है और अब अपने देशके व्यवसायियों और कारखानेवालों को प्रत्यक्ष रूप से सहायता देने लगी है। इंगलैंड (और फ्रांस में भी) आजकल उन वस्तुओं के बनाने का भगीरथ-प्रयत्न किया जा रहा है जो युद्ध के समय तक जर्मनी और आस्ट्रिया बनाकर भेजा करते थे। 'स्टेट्समैन' का संवाददाता लंदन से लिखता है कि जो विविध प्रकार के रंग अभीतक जर्मनी से आते थे उनको बनाने के लिए इंगलैंड में ४॥ करोड़ रु० की पूंजी से एक कम्पनी खड़ी की गई है और उसको ब्रिटिश सरकार ने २। करोड़ रु० २५ वर्ष की मियाद पर ऋण दिया है। इतना ही नहीं, वह अन्य कितने ही प्रकार से अपने व्यवसायियों को आर्थिक और नैतिक सहायता दे रही है। युद्ध के आरम्भ ही में वह खजाने से १,८०,००००० पौंड प्रजा के सुभीते के लिए कुल चीनी खरीद लेने में खर्च कर चुकी है। इधर भारत में भी देशी उद्योग-धन्धों की उन्नति के लिए आन्दोलन आरम्भ हुआ है और विशेषता यह है कि सरकार की भी 'सहानुभूति' उसके साथ है। मगर जिस प्रकार हम भारतवासी संसार में अपने ढंग के निराले ही हैं उसी प्रकार हमारा औद्योगिक आन्दोलन भी निरालाही है। हमारे इस आन्दोलन के अङ्ग प्रत्यङ्ग इस प्रकार हैं:—कानफरेंसें, कमेटियां, जांचें, रिपोर्टें, उनपर सरकारी मन्तव्य, और यहाँ तक कि प्रदर्शिनियाँ भी होने लगी हैं—मगर बस, इससे आगे बढ़ने का साहस दुःसाहस है। बंगाल की व्यवस्थापक कौंसिल में हाल में मान० बाबू सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने यह प्रश्न पूछा था कि रंग, चमड़ा, काँच, दियासलाई, रेशम, सूती कपड़ा, चीनी और कागज़ बनाने के कार्य में उत्तेजना देनेके लिए सरकार ने क्या किया है? सरकार की ओर से गम्भीरता के साथ उत्तर दिया गया कि ये सब विषय मि० स्वान की जाँच के विस्तीर्ण क्षेत्र में आगये हैं!

युद्ध की गति।

लोग समझते थे कि शीतकाल में युद्ध की गति मन्द हो जायगी परन्तु यह आशा दुराशा मात्र निकली। कई अंशों में युद्ध और भी भीषण रूप धारण कर रहा है। टर्की तो युद्धक्षेत्र में उतरा ही था; इधर मालूम पड़ता है कि बेचारे फारस को भी इस महायज्ञ में आहुति डालनी पड़ेगी। सम्भव है कि कुछ और राष्ट्र भी उसका अनुसरण करें।

* * * *

आक्रमणकारियों की आशाएं अभी तक तो स्वप्नवत् ही सिद्ध हो रही हैं। जर्मनी का अनुमान था कि इस समय तक भारत में अवश्य

अंगरेज़ों के विरुद्ध विद्रोह की अग्नि भड़क उठेगी परन्तु हुआ क्या है? श्रीमान् वाइसराय की बड़ी कौंसिल की हाल की बैठक में अपनी वक्तृता द्वारा भारत के सब जातियों और धर्मों के लोगों को उनकी सर्वव्यापिनी राजभक्ति के लिए धन्यवाद देने का अवसर मिला है! खास युद्ध-क्षेत्र में जर्मनों को लेने के देने पड़ गये हैं। पेरिस पहुंचने की आशा पर पानी-सा फिर गया है। इङ्गलैंड पर आक्रमण करने की अभिलाषा वे वहां के कुछ तटस्थ नगरों पर अपने हवाई जहाज़ों द्वारा कुछ गोले फेंकवाने का खेल कर के पूरी करना चाहते हैं। तुर्क लोग अभीतक मिस्र और स्वेज़ नहर पर अपना पैर नहीं बढ़ा सके हैं, वरन् समाचार आया है कि सीरिया में उनकी आक्रमणकारी सेना की अवस्था शोचनीय है।

* * * *

मिस्रवासियों और तुर्कों के परस्पर सम्बन्ध का जो हलका तागा शेष रह गया था उसे अङ्गरेज़ों ने अब एकदम तोड़ दिया है। ख़दीव अब्बास हिलमी तुर्कों से जाकर मिल गये इसलिए अंगरेज़ों ने उनके चाचा प्रिंस हुसेन को 'सुलतान' का ख़िताब देकर मिस्र का अधिकारी बना दिया है और मिस्र को अब अपने शासन-छत्र के नीचे ले लिया है। इस परिवर्तन के अवसर पर ब्रिटिश सरकार की ओर से जो महत्वपूर्ण सूचना मिस्र के नये सुलतान को दी गई है उसकी तुलना सहयोगी 'स्टेट्समैन' ने महराणी विक्टोरिया के १८५८ के हिन्दुस्थान-सम्बन्धी घोषणा-पत्र से की है। ब्रिटिश सरकार ने कहा है कि वह धार्मिक मामलों में कभी छेड़छाड़ नहीं करेगी, मिस्रवासियों की दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति के लिए प्रयत्न करेगी, प्रजा को शासन के कार्य में यथासम्भव भाग देगी और मिस्रवासियों को क्रमशः स्वराज्य की ओर ले जायगी!

* * * *

कुछ लोगों को आश्चर्य होता होगा कि तुर्कों ने अपने जातिभाई ईरानियों के देश फारस पर क्यों चढ़ाई कर दी और क्यों उनके एक प्रान्त अज़रबैजान और मुख्य नगर तब्रीज़ पर कब्ज़ा कर लिया। 'पायोनियर' कहता है कि फारस पर तुर्कों के आक्रमण करने की कोई आवश्यकता नहीं थी! एक दूसरा एंग्लो-इण्डियन पत्र इस सम्भावना पर विचार करता हुआ कहता है कि तुर्कों के आधुनिक और प्रभावशाली नेता अनवरपाशा का विचार सिकन्दर की तरह कहीं फारस के मार्ग से हिन्दुस्थान पर तो चढ़ाई करने का नहीं है। परन्तु उसी के कथनानुसार यह कपोलकल्पना केवल हास्यजनक है। यह कारण तो कुछ समझ में आता है कि तुर्कों ने ईसाइयों के विरुद्ध जहाद का झंडा उठाया था जिसमें ईरानी लोग शामिल नहीं हुए अथवा उत्तरीय फारस में, जहाँ रूसियों का आधिपत्य है, उन्हें अधिकार-च्युत करने के लिए ही तुर्कों ने यह चाल चली है। इस सम्बन्ध में एक यह भी समाचार आया है कि जर्मनों ने कुछ ईरानी अफ़सरों को अपनी ओर मिला लिया है। देखें, ईरानी लोग अब किस पक्ष की ओर लुढ़कते हैं।

* * * *

श्रीमान् वाइसराय ने अपनी कौंसिलवाली वक्तृता में यह भेद खोल दिया कि हिन्दुस्थान से २ लाख सेना युद्धक्षेत्र में लड़ने के लिए भेजी जाचुकी है, परन्तु फिर भी हिन्दुस्थान की सीमा पर की फौज तनिक भी नहीं घटाई गई है! आपने कहा कि सरकार इतने भारत-सन्तानों को साम्राज्य के निमित्त खून बहाने के लिए भेज सका यह इस बात की सूचना देता है कि उसको भारतवासियों की राजभक्ति में कितना पूर्ण विश्वास है। साथ ही आपने यह भी सम्मति दी कि हिन्दुस्थानी सेना ने जैसी वीरता प्रकट की है उससे अधिक और कोई सेना नहीं प्रकट कर सकती। आशा है कि 'पायोनियर' भविष्य में हिन्दुस्थानी सेना की

निन्दा करते समय वाइसराय की बात को तनिक याद करलेगा।

प्रिय-प्रवास।

श्रीयुत अयोध्यासिंह उपाध्याय जी ने अतुकान्त छन्दों में "प्रिय-प्रवास" नामक महाकाव्य रचकर हिन्दी का बहुत बड़ा उपकार किया है। इसकी कविता बहुत ही हृदय-ग्राहिणी और उच्चकोटि की है। कृष्ण के बृज से मथुरा चले जाने के बाद राधा-वियोग का इसमें वर्णन है। यद्यपि विषय पुराना है और उसपर छोटे बड़े अनेक कवियों ने अपनी प्रतिभा की छटा चमकाई है तोभी उपाध्याय जी की कथा और कविता में नवीनता और सरलता है। ग्रन्थ उत्तम है और हमें आशा है कि हमारे पाठक १॥) में खड्ग-विलास प्रेस, बांकीपुर से इस महाकाव्य की एक प्रति खरीद कर उसका रसास्वादन ज़रूर करेंगे।

सेवा-समिति।

पाठकों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि उत्तरीय भारत में अब समाजसेवा के भाव नवीन रूप धारण करने लगे हैं। बम्बई में सोशल-सर्विस-लीग गत चार वर्षों से सेवा के धर्म का अनुसरण कर रही है। उसने वहां पर गश्ती पुस्तकालय मुफ्त में खोल रक्खे हैं जिनसे सहस्रो स्त्री पुरुष मुफ्त में अच्छी २ पुस्तकें देख सकते हैं। पिछली साल २० हज़ार आदमियों ने इन गश्ती पुस्तकालयों से लाभ उठाये। ग़रीब और असमर्थ बालकों और युवकों के लिए उसने रात्रि-पाठशालाएं स्थापित करा दी हैं। ऐसे बहुत से उपयोगी और आवश्यक कामों को हाथ में लेकर बम्बई की लीग समाज-सेवा के द्वारा सामाजिक जीवन के आदर्श को जनता में फैला रही है। परन्तु हमारे प्रान्त में ऐसी संस्था की बड़ी ज़रूरत थी। प्रयाग की दीन-रक्षिणी-समिति ज़रूर अपने स्वयंसेवकों के द्वारा माघ मेले के अवसर पर यात्रियों की पूरी पूरी सहायता कई साल से करती चली आई है। इस वर्ष भी उसके २५० स्वयंसेवकों ने त्रिवेणी के तट पर यात्रियों की सेवा अप्रतिहत उत्साह और आत्म-त्याग से किया। और बंगाल-बाढ़ और अकाल के समय पर उसने चन्दा जमा किया था, लेकिन इस समिति का कार्य-क्षेत्र एक तो बहुत ही परिमित था दूसरे साल भर में वह एक या दो ही दफ़ा काम किया करती थी। इस माघ मेले में नवयुवकों के प्रशंसनीय सेवा-भाव को देखकर कुछ लोगों ने स्थायी रूप से इस काम को करना निश्चय कर लिया। हमें हर्ष है कि दीन-रक्षिणी-समिति सेवा-समिति के नाम से भविष्य में स्थायी ढंग से काम करेगी। सेवा-समिति का कार्य-क्रम भी अधिक विस्तृत होगा। माघ मेले में यात्रियों की सहायता और दिवाली तथा होली में जुए और अश्लीलता के ख़िलाफ़ आन्दोलन करना, गश्ती पुस्तकालय, स्वास्थ्य के आदर्श का प्रचार और सचित्र व्याख्यान आदिक कामों को समिति करेगी। हम सुनते हैं कि कानपुर में भी इसी तरह के गश्ती पुस्तकालय वगैरः शीघ्र खुलनेवाले हैं। यदि कार्यकर्ताओं ने उत्साह और दृढ़ संकल्प से इस सेवा में अपने को अर्पण किया तो उत्तरीय हिन्दुस्थान का शिक्षित समाज अनपढ़ों की सेवा के उत्तरदायित्व को पूरा करने की ओर धीरे धीरे बढ़ने लगेगा।

लार्ड हार्डिङ्ग।

श्रीमान् लार्ड हार्डिङ्ग के साथ इस समय किसे सहानुभूति न होगी। कुछ ही मास हुए उन्हें पत्नी-वियोग का दारुण दुःख सहना पड़ा था और उसके बाद उनपर एक दूसरा वज्राघात हुआ। समरभूमि पर उनके प्रिय पुत्र लेफ्टिनेन्ट हार्डिङ्ग आहत हुए; उनको बहादुरी

के लिए सम्राट् से एक प्रसिद्ध ख़िताब मिला, और लोग उनके अच्छे होने के सुसमाचार की आशा कर रहे थे कि खबर आई कि उनकी वीर-गति होगई। जो मुसीबतें लार्ड हार्डिंग पर आई हैं, वैसी किसी अन्य वाइसराय को नहीं भोगनी पड़ीं। लेकिन इस दुस्सह दुःख को वीरता से सहते हुए श्रीमान् ने अपने कर्तव्यपालन में असीम धीरता दिखलाई है। हम उनके साथ अपनी हार्दिक और विनम्र सहानुभूति प्रकाशित करते हैं।

गांधी का स्वागत।

श्रीमान् गांधी और श्रीमती गांधी का हम भारतवर्ष में हृदय से स्वागत करते हैं। गांधी से पाठक अपरिचित नहीं हैं। उनकी वीरता और अपूर्व आत्मसंयम तथा स्वदेशप्रेम की कथाओं से देश वर्षों तक गूंज चुका है। उनका विचार है कि वे देश ही में रहकर भारत-माता की सेवा में अपने बचे बचाये दिन लगा देंगे। उनके सम्पर्क से, हमें विश्वास है, हमारे बहुतेरे स्वार्थी देशभक्तों में कुछ कुछ सच्चाई और मान-मर्यादा की महिमा का अंश आजायगा।

कांग्रेस।

मद्रास में जो अधिवेशन गत मास हुआ, एक दृष्टि से उसको पूरी २ सफलता हुई। प्रतिनिधियों की उपस्थिति अच्छी थी। संसार व्यापी युद्ध के सम्बन्ध में कांग्रेस ने भारतीयों की राजभक्ति पर समुचित ज़ोर दिया और उसके रूप और रहस्य की ओर संसार की दृष्टि खींची। लेकिन उसने भीरुता और अकर्मण्यता से काम नहीं लिया। उसने अपने स्वत्वों के विस्तार और सुरक्षा के लिए उचित प्रस्ताव पास किये। तीसरे, मद्रास के गवर्नर ने एक दिन अधिवेशन में पधारकर उसे सुशोभित किया। यह भी एक मार्के की बात इस दफ़ा हुई। लेकिन कई बातों में वह और अधिवेशनों के सामने फीका पड़ता है। प्रतिनिधियों की संख्या तो काफ़ी थी परन्तु अन्य प्रान्तों के प्रतिनिधि बहुत ही थोड़े गये थे। पंजाब से एक भी सज्जन न उपस्थित था। हमारे सूबे से केवल ११! फिर मेल-मिलाप की बातचीत जो साल भर से लोगों को उत्सुक बना रही थी, अन्त में कोरी बात ही बात बनी रही; कोई फल न हुआ। राष्ट्रीय दल के दो अङ्ग अबतक तितर बितर हैं और संगठित कार्य के लक्षण अभीतक नज़र नहीं आते। बाबू भूपेन्द्रनाथ वसु सभापति थे और उनका सम्भाषण अच्छा था।

अभ्युदय-प्रेस, प्रयाग, में बद्रीप्रसाद पाण्डेय के प्रबन्ध से छपकर प्रकाशित हुई।

"बर्म्मन प्रेस" कलकत्ताकी सर्वोत्तम पुस्तकें।

कोहेनूर

सचित्र ऐतिहासिक उपन्यास।

यदि आपको राजपूतों और मुसलमानोंकी भयानक लड़ाईयोंका आनन्द लेना हो, यदि आप राठौर-वीर "दुर्गादास" और सम्राट "औरङ्गजेब"के इतिहास प्रसिद्ध भीषण संग्रामका रसास्वादन करना चाहते हों, यदि आप उदयपुरके युवराज "अमर-सिंह"की वीरता, धीरता और बुद्धि-मत्ताका पूर्णपरिचय पाया चाहते हों, यदि आप "अरावली-उपत्यका"में होने वाले लक्षाधिक क्षत्रिय वीरों और दुर्दान्त मुसलमानोंका घोर संग्राम देखा चाहते हों, यदि आप वीर शिरोमणि "कालापहाड़," राजकुमार "केशरी-सिंह" आदि मुट्ठी भर क्षत्रिय वीरोंका असंख्य मुसलमानोंके साथ आश्चर्य्य-जनक युद्ध दृष्टिगोचर किया चाहते हैं, यदि आप वीर कन्या और पत्नी "विलासकुमारी" की आदर्श पति-भक्तिका ज्वलन्त प्रमाण पाया चाहते हों, यदि आप अम्बरकी राजकुमारी स्वर्गीय सुन्दरी "अम्बालिका"का प्रकृत-प्रेम हृदयङ्गम किया चाहते हों, यदि आप क्षत्रिय राजकुमारोंके आश्चर्य्य-जनक रण-कौशल और अद्भुत स्वार्थ-त्यागका सच्चा हाल जानना चाहते हों, यदि आप औरङ्गजेबके न्याय-परायण वीरपुत्र शाहजादे "अकबर"की क्षत्रियोंके प्रति अपूर्व सहानुभूतिका विवरण पढ़ा चाहते हों, तो इस अनठे उपन्यासको अवश्य पढ़िये। इसमें सुन्दर सुन्दर ५ चित्र भी दिये गये हैं। मूल्य केवल १) रुपया। इसमें "विलासकुमारी"का एक अनूठा पंच रंगा चित्र भी दर्शनीय है।
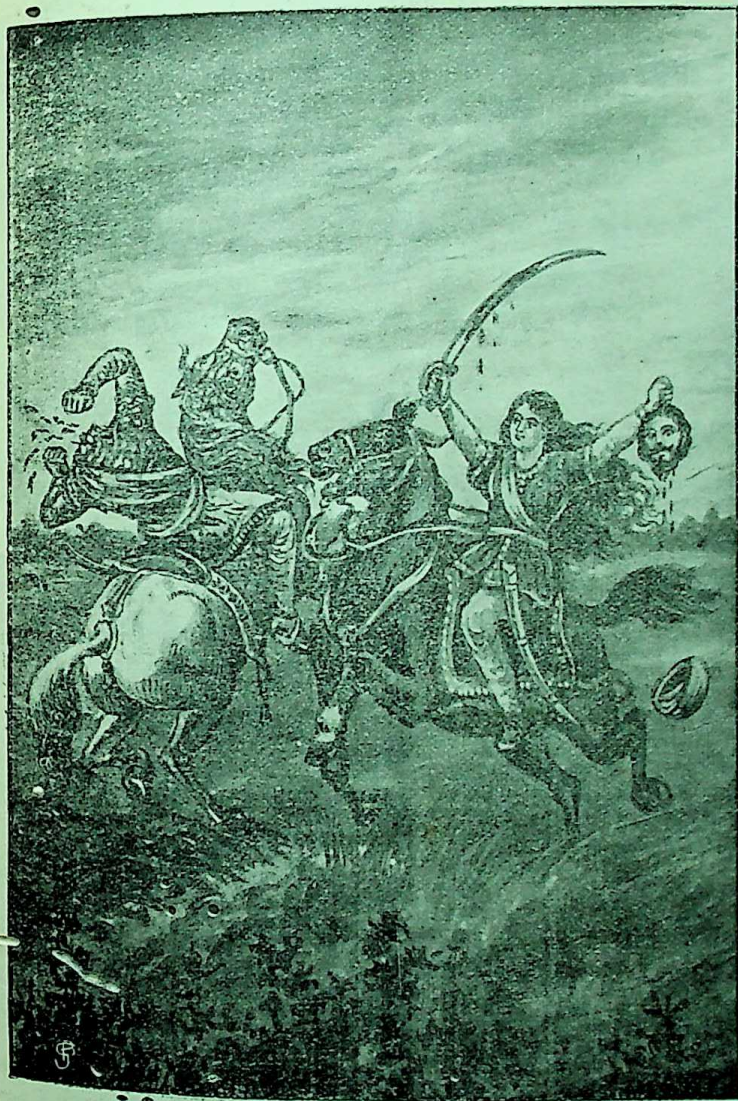
पता—आर० एल० बर्म्मन एण्ड को०, ४०१।२, अपर चीतपुर रोड, कलकत्ता।

शीशमहल

सचित्र ऐतिहासिक उपन्यास।

इस उपन्यासमें भारत-सम्राट "अकबर" के समयकी कितनी ही मनोरञ्जक घटनाओंका सचित्र वर्णन किया गया है। सम्राट अकबरकी आज्ञासे सेनापति "इस्कन्दर" का गुप्त भावसे "ईदलगढ़-दुर्ग" पर चढ़ाई करना, भयानक अँधेरी रातके समय चुपचाप दुर्गपर अधिकार जमाकर दुर्गाधिपति 'सोहानी' को कैद करनेकी चेष्टा करना, सुहानीकी वीर-पत्नी "गुलशना" के अपूर्व रूप-लावण्यपर मुग्ध हो कर्त्तव्य विमुख होना, पतिव्रता गुलशनाका इस्कन्दरको धोखा देकर पति सहित दुर्गसे निकल भागना, इस्कन्दरका पोछा करना, सोहानीका पहाड़से गिरकर प्राण देना, गुलशनाकी फरियाद पर अकबरके दरबारसे इस्कन्दरको फांसीका हुक्म मिलना, गुलशनाकी सहायतासे इस्कन्दरका कारागारसे निकल भागना, मालवाधिपति "बाजबहादुर" को गुप्तघातकके आक्रमणसे बचाना, बाजबहादुरका इस्कन्दरको सम्मान सहित घर ले जाना, बाजबहादुरको सुन्दरी कन्या "रूबिया" पर इस्कन्दरका मोहित होना, बहुत मुसीबतोंके बाद अन्तमें ए दयालु फकीरकी सहायतासे दोनोंमें विवाह होना आदि बहुत सी अपूर्व घटनायें हैं। साथ ही ५ चित्र भी दिये गये हैं। दाम बिना जिल्दका १॥) जिल्ददारका १॥।) रु०

पता—आर० एल० बर्म्मन एण्ड को०, ४०।२ अपर चीतपुर रोड, कलकत्ता

गदरका इतिहास—

शोणित-तर्पण

सचित्र ऐतिहासिक उपन्यास।

सन् १८५७ ई०के जिस भयानक "गदर" (बलवा) ने एक ही दिन, एक ही समय और एक ही लग्नमें सारे "भारतवर्ष" में प्रचण्ड विद्रोहाग्नि फैला दी थी, जिस गदरने अपनी भीषणतासे बड़े बड़े प्रतापी वीरोंके दिल दहला दिये थे, जिसने दिल्ली, कानपुर, बिठूर, मेरट, काशी और बक्सर आदिको सुविशाल 'समर-क्षेत्र' में परिणत कर दिया था, जिसने भारत सरकार की अधिकांश देशी फौजोंको विद्रोही बना दिया था, जिस भारतीय प्रचण्ड विद्रोहानलकी विकट हुंकारने सुदूर व्यापी "इङ्गलैण्ड" में भी भयानक हलचल मचा दी थी, जिस गदरके खूंखार नेता—नानाराव धुन्धुपन्त, फरासीसी डाकू रावर्ट मैकेयर तांतिया टोपी, कुंवरसिंह और करीम आदि दुष्टोंने हजारों निरीह अङ्गरेज आवालवृद्धवनिताओंके खून से अकलङ्क भारत-भूमिको सकलङ्क बना दिया था, उसी प्रसिद्ध "गदर" या "सिपाही विद्रोह" का पूरा पूरा हाल इस अपूर्व उपन्यासमें दिया गया है। साथ ही गदर सम्बन्धी सुन्दर सुन्दर ७ चित्र देकर इस उपन्यासकी सुन्दरता और भी बढ़ा दी गयी है। दाम वेजिल्द १।) और जिल्ददारका १॥) रुपया। इन चित्रोंसे विद्रोहियोंके अत्याचारका दृश्य आंखोंके सामने नाचने लगता है।

पता—आर० एल० बर्म्मन एण्ड को०, ४०१।२ अपर चीतपुर रोड, कलकत्ता।

भीषण डकैती

सचित्र जासूसी उपन्यास।

यह उपन्यास बङ्गसाहित्यके गौरवस्तम्भ, जासूसी उपन्यासोंके एक मात्र कर्णधार श्रीयुत 'बाबू पांचकौड़ी दे'
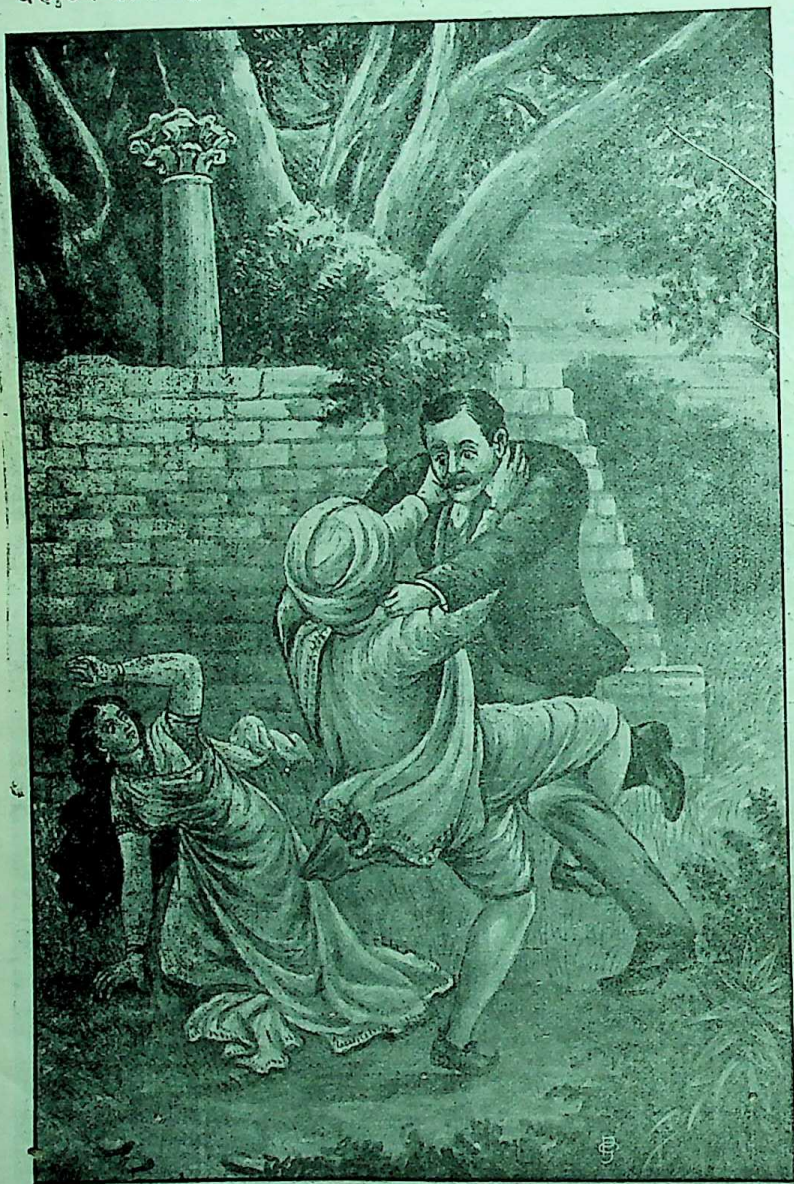
की विचित्र लेखनीका सजीव प्रतिविम्ब है। हमलोगोंने उनकी आज्ञा लेकर बड़े परिश्रमसे इसका अनुवाद हिन्दीमें प्रकाशित किया है। जब यह उपन्यास सुप्रसिद्ध समाचार पत्र "भारतमित्र" में "भीषण डकैती" के नामसे और "बड़ा बाजार गजट" में 'भयानक बदला' के नामसे क्रमश: प्रकाशित होता था, तब उक्त दोनों पत्रोंकी ग्राहक संख्या सिर्फ इसी उपन्यासके पढ़ने के लिये ही बेतौर बढ़ गयी थी, किन्तु पूरा उपन्यास किसीमें भी न छपा था, अब यह उपन्यास हमारे यहां पूरा छपकर तय्यार होगया है। इस उपन्यासमें "मिष्टर रौटलैण्ड" नामक अद्भुत जासूसकी अपूर्व कार्रवाईयोंका ऐसा सुन्दर चित्र खींचा गया है, कि पुस्तक एकबार उठाकर फिर छोड़नेकी इच्छा ही नहीं होती। इस उपन्यास के प्रत्येक परिच्छेद, प्रत्येक पृष्ठ, प्रत्येक पैराग्राफ, प्रत्येक पंक्ति और प्रत्येक शब्दमें दिलचस्पी और मनोरञ्जकता कूट कूटकर भर गयी है। साथ ही सुन्दर सुन्दर चित्र भी दिये गये हैं। इस उपन्यास की प्रधान नायिका 'मिसेस तीरा' का एक ऐसा अपूर्व तिनरङ्गा चित्र दिया गया है, कि देखते ही मन हाथसे निकल जाता है। दाम सिर्फ १)

घटनाचक्र

सचित्र जासूसी उपन्यास।

इस उपन्यासमें अङ्गरेज जातिकी पारस्परिक शत्रुताका बड़ा ही सुन्दर चित्र खींचा गया है।
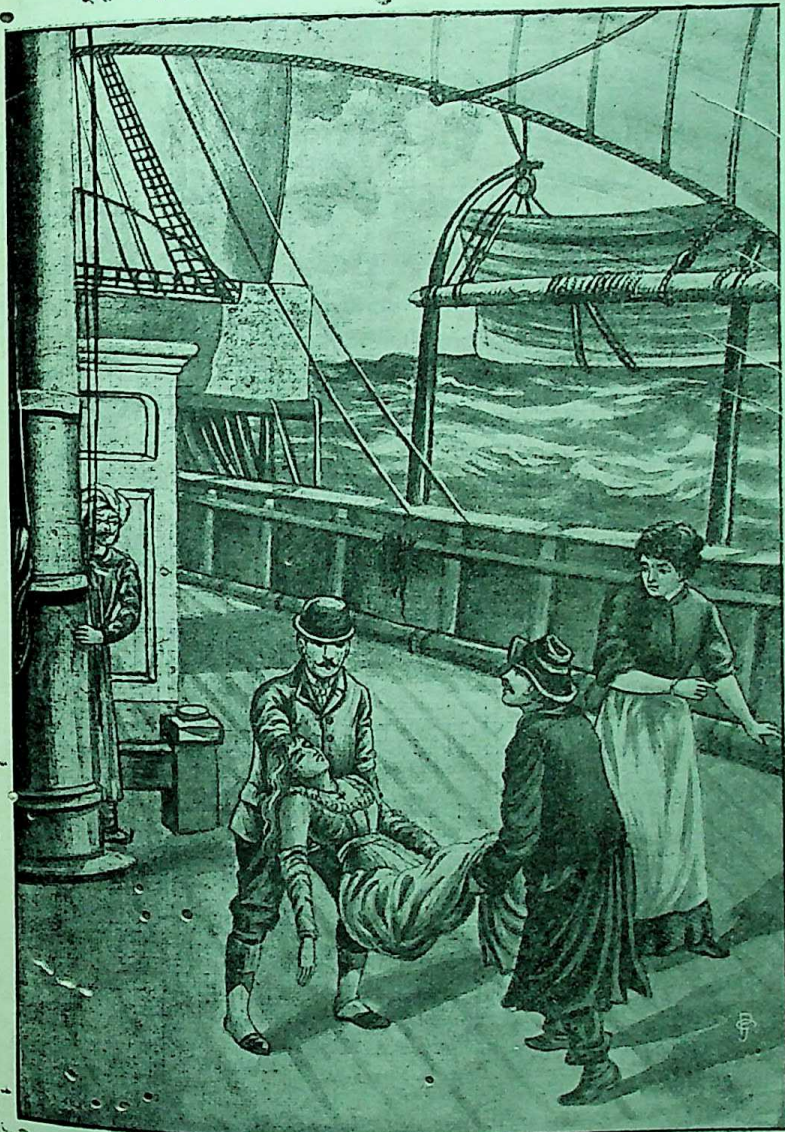
"लार्ड पेमब्रोक" नामी एक सम्भ्रान्त अङ्गरेज किस प्रकार शत्रुओंसे सताये जाकर अपनी अद्वितीय सुन्दरी स्त्री "क्लिओपेट्रा" सहित भारतवर्षमें भाग आये, किस प्रकार उनके शत्रुदलने भारतमें भी उनका पीछा न छोड़ा, किस प्रकार भारतके सर्कारी जासूस 'कृष्णाजी रघुपन्त' ने शत्रुओंके हाथसे बारम्बार उनकी रक्षा की, किस प्रकार शत्रुओंके जासूस लार्ड पेमब्रोकके दाई-नौकरों तकमें घुस गये, किस प्रकार दुष्टोंके षड़यन्त्रसे लार्ड पेमब्रोकको भयानक खूनी मामलेमें गिरफ्तार हो इङ्गलैण्ड जाना पड़ा, किस प्रकार रास्तेमें शत्रुओंके जहाजने उनपर आक्रमण किया, किस प्रकार उनकी स्त्री "क्लिओपेट्रा" समुद्रमें फेंक दी गयी, किस प्रकार जासूस रघुपन्तने समुद्रमें कूद कर उनकी स्त्रीका उद्धार किया, किस प्रकार बड़े बड़े जासूसोंकी मददसे "लार्ड पेमब्रोक" को अदालतसे रिहाई मिली, किस प्रकार उनके खूनके प्यासे शत्रु गिरफ्तार किये गये, आदि सैकड़ों दिलचस्प घटनाओंका इस उपन्यासमें समावेश किया गया है। यह पुस्तक बड़ी और तस्वीरदार है। दाम बेजिल्द १॥), सुनहरी जिल्द बँधीका २) रु०

जासूसी-चक्कर

सचित्र जासूसी उपन्यास।

लेखकने इस उपन्यासमें बम्बईकी पारसी समाजका बड़ा ही विचित्र रहस्य खोला है। कुछ दिन हुए बम्बईके 'हरमसजी' नामक एक धनाढ्य पारसी सज्जनके खजानेमें विचित्र ढंगसे एक लाखकी चोरी हो गई, साथही खुली सड़क पर भाड़ा-गाड़ीमें एक पारसी युवक जानसे मार डाला गया! इनदोनों घटनाओंको लेकर बम्बईमें बड़ी हलचल पड़ गयी। खून और चोरी के इल्जाममें "रुस्तमजी" नामक एक सचरित्र पारसी युवक गिरफ़ार हुआ इन दोनों घटनाओंकी जांचके लिये सर्कारकी ओरसे बड़े बड़े ४ जासूस छोड़े गये। जांच धमधामसे होने लगी, फिर कैसे चारों दक्ष जासूसोंने सुन्दरी 'रतनबाई' की सहायतासे पता लगाया, कैसे निरपराध रुस्तमजीने अदालतसे छुटकारा पाया, कैसे नकली विवाहके समय, भीषण व्यक्ति बर्जोरजी गिरफ़ार किया गया, आदि घटनायें इस खबीसे लिखी गयी हैं कि बिना समाप्त किये पुस्तक छोड़नेकी इच्छा ही नहीं होती। यह उपन्यास बड़ा ही दिलचस्प और हृदय ग्राही है। खून, चोरी, जाल, जआचोरी, प्रेम, फजीहत सभी बातें इसमें बड़ी खबीसे दिखलाई गयी हैं, साथ ही उत्तमोत्तम ५ चित्र देकर पुस्तककी शोभा चौगुनी कर दी गयी है। मूल्य सिर्फ़ १।)
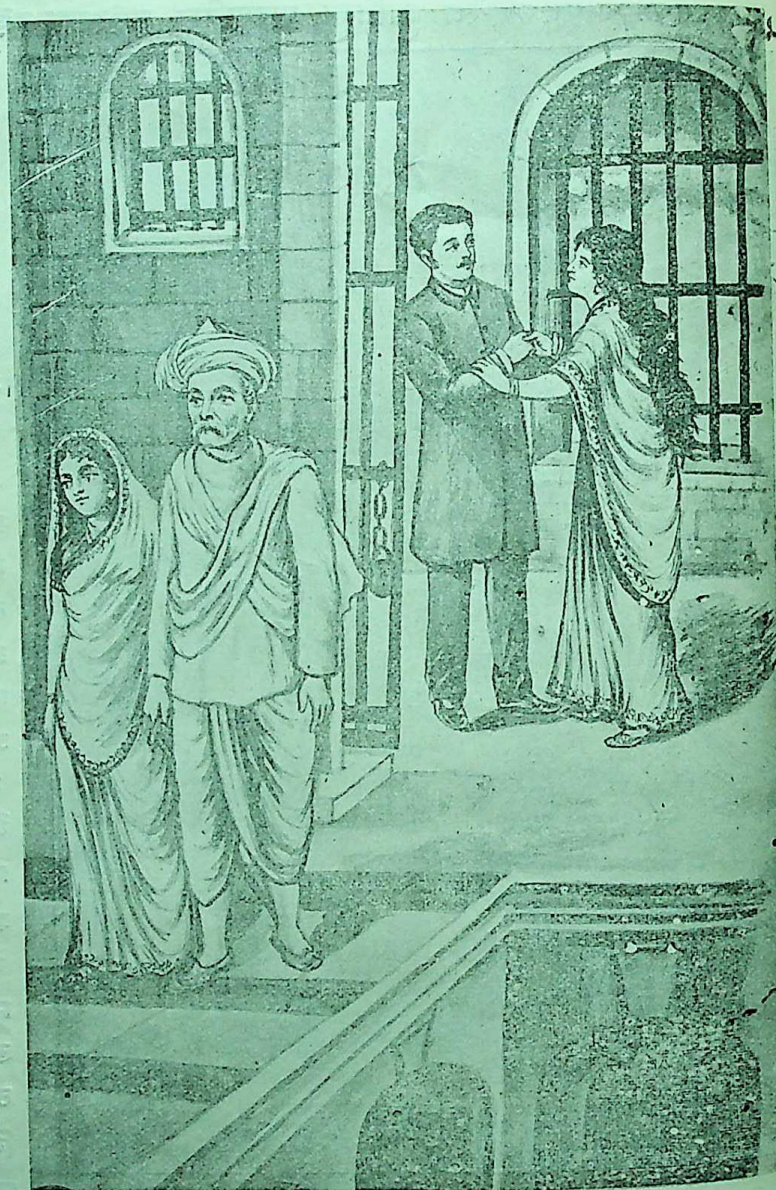
डबल जासूस

सचित्र जासूसी उपन्यास।

इसमें नरेन्द्र और सुरेन्द्र नामक एक ही सूरत-शक्लके दो नामी जासूसोंकी बड़ी ही आश्चर्य-जनक कार्रवाईयोंका वर्णन किया गया है, जिसके पढ़नेसे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। यह उपन्यास घटनाका समुद्र, आश्चर्यका खजाना, कौतुकका आगार और जासूसी करामतोंका भण्डार है। दोनों जासूसोंने किस बहादुरीसे चोरों, दगाबजों और खूनियोंकी गिरफ़ार कर "सुशीला" और "मनोरमा" नाम्नी दो सम्भ्रांत रमणियोंको बचाया है, कि मुँहसे 'वाह वाह' निकल पड़ती है। कलकतिया चोरोंके तिलिस्मी अड्डेका अद्भुत रहस्य, नावपर जासूस और चोरोंका भयानक संग्राम, कम्पनी बागमें भीषण तमञ्चेबाज़ी, एक वीरान खँड़हरमें दुष्टोंके दलकी विचित्र गिरफ़ारी, मुर्दाघरमें बेनामी लाशका अनूठे ढङ्गसे पहचाना जाना, नदीके किनारे दो असली और दो नकली जासूसोंका द्वन्द युद्ध,—आदि बातें पढ़कर आप दङ्ग न रह जायं तो फिर बात ही क्या है? जासूसी उपन्यासके शौकीनोंको यह उपन्यास जरूर पढ़ना चाहिये। इसमें "सुशीला" नाम्नी सुन्दरीका एक तिनरङ्गा चित्र ऐसा उत्तम दिया गया है, कि चित्र देखते ही तबियत लहालोट हो जाती है।
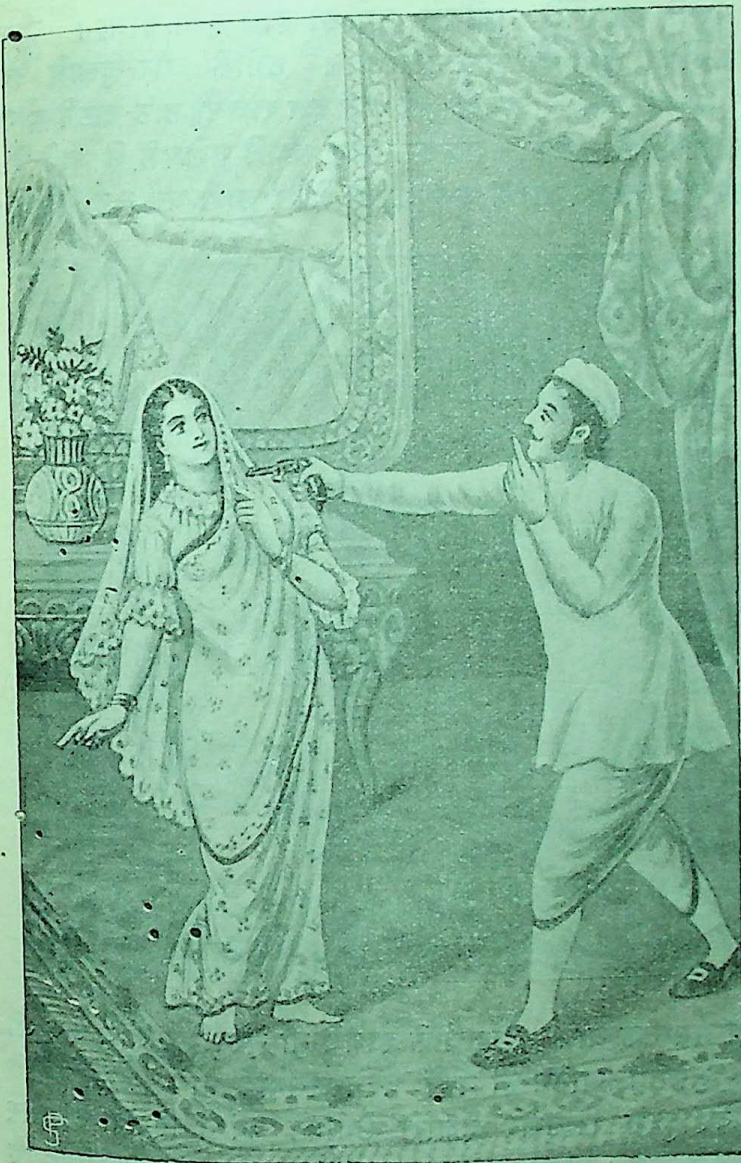
इसके अलावा और भी सुन्दर सुन्दर ३ चित्र दिये गये हैं। इतना कुछ होनेपर भी दाम सिर्फ १) रु०

पता—आर० एल० बर्म्मन एण्ड को०, ४०।२ अपर चीतपुर रोड, कलकत्ता।

अमीरअली ठग

सचित्र जासूसी उपन्यास।

पाठक महोदयो! आपने शायद पुराने जमानेके भयानक ठगोंका हाल सुना होगा। "ईस्ट इण्डिया कम्पनी"के राजत्वकालमें इन ठगोंका बड़ा ही दौर-दौरा था। ठगोंके जोर-जुल्मसे उस समय सर्कार और प्रजा दोनों ही तङ्ग आ गयी थीं। ठगोंके बड़े बड़े दल राजसी ठाठ-बाठसे दौरा करते फिरते थे और उनके गोइन्दे मुसाफिरोंको बर्गला (बहका) कर अपने गरोहमें ले आते थे। फिर ठग लोग विचित्र ढङ्गसे रूमालके झटकेसे बातकी बातमें उन्हें फांसी देकर सारा धन लूट लेते थे।

मुसाफिरोंके लिये वह समय बड़ा ही भयानक था। डाकुओंके हाथसे तो मुसाफिर लोग बच भी जाते थे, मगर ठगोंके चङ्गुलसे निकल भागना कठिन ही नहीं वरन असम्भव था। इन्हीं ठगोंके "अमीरअली" नामक सर्दारने कम्पनी बहादुरसे मिलकर हजारों ठगोंको फांसी दिलवा दी और तभीसे ठगोंकी जड़ भारतमें एक प्रकारसे कट गयी। यह उपन्यास बड़ा ही रोचक और शिक्षाप्रद है और हाफटोन फोटोकी बड़ी बड़ी कई तस्वीरें लगाकर सजा दिया गया है। दाम सिर्फ ॥) आना।

पता—आर० एल० बर्म्मन एण्ड को०, ४०१।२ अपर चीतपुर रोड; कलकत्ता।
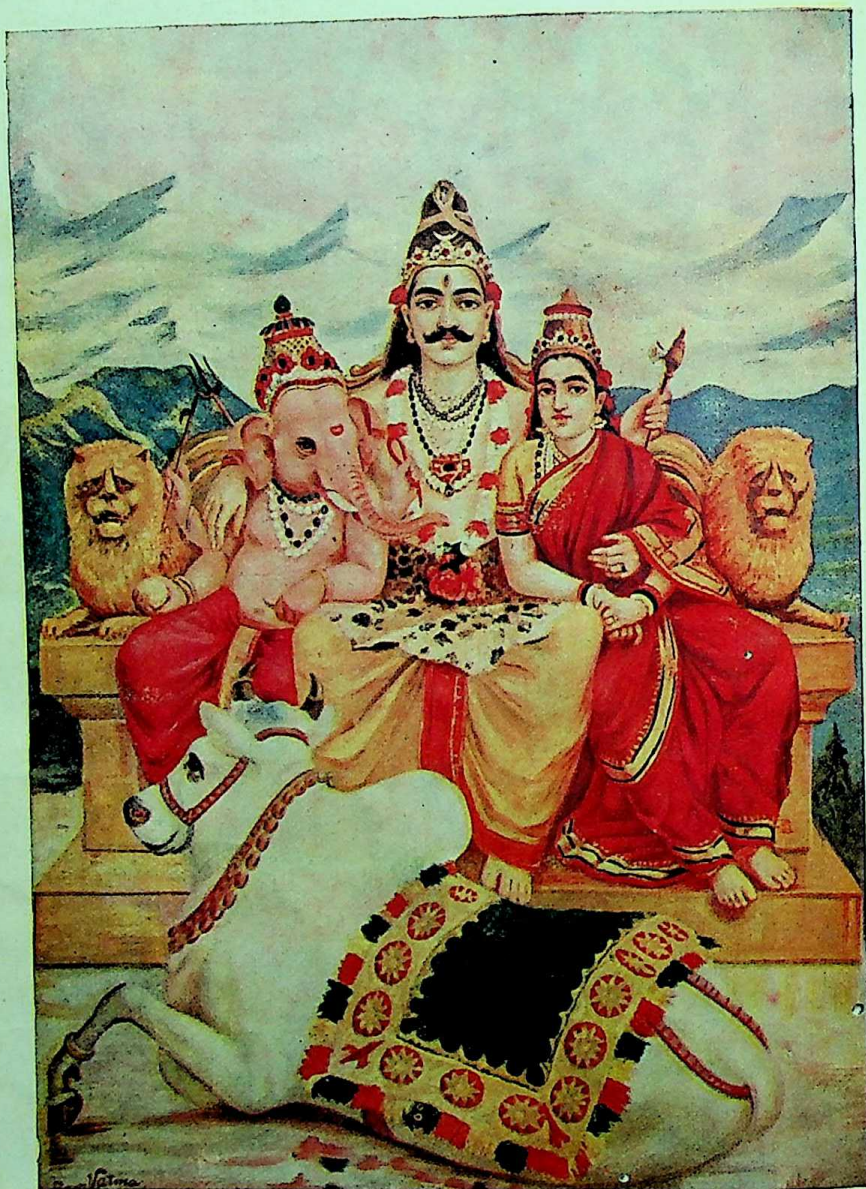
शङ्कर-पार्वती ।

बर्म्मन प्रेस, कलकत्ता ।

भाग ९] फरवरी सन् १९१५—फाल्गुन [संख्या २

प्राचीन भारत में प्रजातन्त्र।

[लेखक—श्रीयुत राधामोहन गोकुल जी।]

हमारे कानों में पाश्चात्य विद्वानों की यह ध्वनि बहुत दिनों से गूंजती चली आरही है कि भारत अनन्तकाल से यतेच्छाचारियों द्वारा शासित होते रहने के कारण ऐसी योग्यता नहीं रखता कि अपना शासन आप करे या उसे उसके शासन का कुछ भी अंश निश्शंक होकर सौंपा जाय। इस कथन की पुष्टि में लार्ड मार्ले प्रभृति अनेक अधिकारसम्पन्न विद्वानों ने भारत की अप्रजासत्तात्मक (undemocratic) प्रथाओं तथा सामाजिक भेदभावों को उद्धृत किया है, जैसे भिन्न जातियों और धर्मों का अस्तित्व।

यद्यपि यह कहना कि सृष्टि के आरम्भ काल से ही कोई देश एकमुखी यथेच्छाचारी-शासन-प्रणाली (Absolute Monarchy) के आधीन चला आता है सृष्टि के इतिहास, मानवी प्रकृति और विकाश के सिद्धान्तों की अवज्ञा करना है तथापि हमारे प्रतिद्वन्दी कह सकते हैं कि दार्शनिक तर्क और ऐतिहासिक प्रमाण में बड़ा अन्तर होता है। जब तक हमें यह सिद्ध न हो जाय कि भारत में कभी प्रजातन्त्र रहा है, हम केवल दार्शनिक तर्क के आधार पर ही इस बात को निर्विवाद रूप से मानने को तैयार नहीं हैं कि भारत में कभी प्रजातन्त्र शासन था।

सुतराम् हम उचित समझते हैं कि कुछ ऐसे प्रमाण दिये जायँ जिनसे हमारे प्रतिपक्षियों को निश्चय हो जाय कि भारत की प्राचीन शासनप्रणाली के सम्बन्ध में उनके विचार भ्रमात्मक हैं। इसी अभिप्राय से हम भारत के इतिहास को पाँच भागों में विभक्त करते हैं:—

(१) वैदिक काल; (२) उपनिषद् काल; (३) स्मृति काल; (४) पौराणिक काल; और (५) पूर्व मुसल्मानी काल। इस विभाग में आर्यावर्त

के समुन्नत काल से लेकर उसके पतन पर्यन्त का सारा समय आजाता है।

(१) वैदिक काल।

हमें ऋक् वेद मं० ३ सू० ३८ का छठा मंत्र बतलाता है कि—

त्रीणि राजाना विदथे पुरूणि परि विश्वानि भूषथः सदांसि ॥

अर्थात् शासकसमुदाय और साधारण प्रजा के लोग मिलकर अपने कल्याण के लिए तीन सभाएं बनावें*। कह सकते हैं कि हमने यहां 'राजाना' का अर्थ शासक समुदाय कैसे किया। इसके लिए इतना ही कहना बस होगा कि वैदिक काल में राजा सभापति (President) को कहते थे। क्योंकि-

तं सभा च समिति श्च सेना च...।

अथर्व० का० १५-अनु० २ व० ६-मं० २।

ऐसा यहां लिखा है कि उस राजधर्म को (तम्) तीनों सभाएं और उनसे बनी हुई समितियां (कमेटियां)† चलावें और संग्राम आदि सब बातों की व्यवस्था करें।

साथ ही निम्नलिखित वाक्य भी आता है-

सभ्यं सभां मे पाहि मे च सभ्याः सभासदः।

अथर्व का० १६ अनु० ७। वं०५५। मं० ६।

सभासद लोग सभा की व्यवस्था और पालन करें। यहां सभा शब्द में सभापति और राजा भी शामिल है। यदि एकमुखी यथेच्छाचारी शासन होता तो राजा को ही यह बात कही जाती कि "तू प्रजा और देश का और सब सभाओं का एक मात्र स्वामी बनकर इन्हें चला" पर ऐसा न कहने का प्रत्यक्ष अभिप्राय यही है कि उस समये एक व्यक्ति को अनियंत्रितशासन का अधिकार नहीं दिया जाता था। राजा (सभापति) और उसकी अधीनस्थ सभा इन्हीं दोनों से प्रधान शासनाधिकारसम्पन्न समुदाय संगठित होता था। इसके उपरान्त हम देखते हैं तो वेदों में ऐसे अनेक मन्त्र मिलते हैं जिनसे राजा के अर्थात् सभापति के गुणों का पता चलता है। उनमें यह भी लिखा है कि प्रजा उन्हीं गुणों से सम्पन्न व्यक्ति को अपना राजा चुने। इतना ही नहीं प्रजा को उस राजा को नाना प्रकार के दंड देने का भी अधिकार दिया गया था जो चुने जाने पर प्रजा की इच्छा के प्रतिकूल आचरण करे, पर हम कई कारणों से उन मंत्रों को यहां पर उद्धृत करना नहीं चाहते।*

(२) उपनिषद् काल।

इस काल का सुप्रसिद्ध ब्राह्मण ग्रन्थ शतपथ है। उसमें लिखा है कि:—

राष्ट्रमेव विश्याहन्ति तस्माद्राष्ट्रीविशं घातुकः। विशमेव राष्ट्रायाद्यां करोति तस्माद्राष्ट्री विशमत्ति न पुष्टं पशुं मन्यत इति॥ शत० का० १३। प्र० २। ब्रा० ३। कं० ७। ८

जो सभापतिसहित राजसभा स्वतंत्र होगी तो वह प्रजा को चाट जायगी। अतः किसी एक को स्वाधीन न करना चाहिये अर्थात् प्रजा न केवल राजा ही को बल्कि राजसभा

---

* शायद ये विभाग आधुनिक व्यवस्थापक (Legislative), शासक (Judicial) और कार्यकारिणी (Executive) समितियों से हों। सुपार्श्व।

† ये आजकल की कामन्स और लार्ड सभाओं की कमेटियों से मिलती जुलती हैं जिनका काम बिलों को सूक्ष्म रीति से निरीक्षण करना है। सुपार्श्व।

* यह शायद आधुनिक Impeachment प्रथा सी थी जिसमें U. S. A. (संयुक्तराज्यों) में कामन्स सभा तो Impeach करती है और सिनेट न्याय। फ्रेंच शासनप्रणाली में भी यही कानून देखा जाता है। (सुपार्श्व)।

को भी सदा अपने दबाव में रक्खे* तभी उसका कल्याण हो सकता है।

(३) स्मृति काल।

हमने उपर्युक्त दोनों कालों का अधिक विस्तार इसलिए नहीं किया कि स्मृतियों का तीसरा काल वैदिक काल के जरा भी विपरीत नहीं है। स्वयं मनु ने कहा है कि हम जो कुछ कहते हैं वह वेदानुकूल है पर यदि कोई बात वेदविरुद्ध हो तो वह प्रमाण नहीं। अतः जो कुछ हम मनु द्वारा सिद्ध करेंगे, उससे उपर्युक्त दोनों कालों का भी समर्थन होगा।

मनु भगवान् अध्याय ७ में १७ से ३१वें श्लोक पर्यन्त कहते हैं:—

स राजा पुरुषो दण्डः स नेता शासिता च सः।
चतुर्णामाश्रमाणां च धर्मस्य प्रतिभूः स्मृतः।

अर्थात् दण्ड ही राजा, दण्ड ही पुरुष, दण्ड ही नेता है। दण्ड ही चारो वर्ण, आश्रमों और धर्मों का प्रतिभू है। अर्थात् राजा (सभापति) और समस्त अधिकारी, सदस्य और समुदायों और सम्प्रदायों के नेता, सब ही दण्ड के आधीन हैं।

अब प्रश्न यह उठता है कि दण्ड क्या वस्तु है। इसके सम्बन्ध में मनु जी फिर कहते हैं:—

समीक्ष्य सधृतः स (दण्ड) धृतः सम्यक् सर्वारञ्जयति प्रजाः। असमीक्ष्य प्रणीतस्तु विनाशयति सर्वतः॥

यदि वह दण्ड समझ बूझकर धर्मानुकूल धारण किया जाय तो वह प्रजा के सुख का कारण होता है और यदि वह बिना विचारे व्यवहृत किया जाय तो सब ओर से राजा (सभापति व सभा) को ही विनाश कर देता है।

अस्यार्थे सर्वभूतानां गोप्तारं धर्ममात्मजम्।
ब्रह्मतेजो मयं दण्डमसृजत् पूर्वमीश्वरः॥

अर्थात् इस सभापति के लिए ही सर्व भूतों के रक्षक, धर्मात्मज और ब्रह्मतेजोमय, दण्ड को परमात्मा ने पहिले ही बनाया, जिससे मनुष्य इसके अनुसार चलें।

यह दंड वही शासनपद्धति या नियमसंग्रह है जिसके अनुसार राजा प्रजा, छोटे बड़े सब को चलना पड़ता है। जो नहीं चलता वही उस दंड से ताड़ित होता है। प्रजा में से जो कोई इस दंड की अवज्ञा करता है वह इसीके द्वारा राजा के हाथों से मारा जाता है। यदि राजा या उसका परिकर (सभा) इस दंड की अवहेलना करे तो वह दंडानुयायिनी प्रजा के हाथों मारा जाता है।

इसीका मनु ने कथन किया है।

इस दंड के प्रणेता एक नहीं, दो नहीं, बल्कि अनेक विद्वान् हुआ करते थे जो सब जातियों, धर्मों और सम्प्रदायों के प्रतिनिधि होते थे। इनके विषय में जनता का पूर्ण विश्वास होता था कि वे धर्मविरुद्ध स्वार्थ से प्रचलित होकर कोई अन्याय्य कार्य्य न करेंगे (यद्यपि उस समय आजकल का सा चुनाव (Election) नहीं होता था। इसी कारण से दंड का नाम ईश्वरदंड पड़ा क्योंकि आजकल भी कहा जाता है कि यह समस्त संसार ही विराट्रूप परमात्मा है (Vox Populi Vox deior या ज़बान ख़ल्क नक्कारे खुदा); इसी के वचन ईश्वर के वचन हैं।

इस समय भारत में मनु से लेकर वशिष्ठ पर्यन्त जितनी स्मृतियां हैं सब यद्यपि एक नाम से मेकाले के कोड (Code) की भांति प्रसिद्ध हैं तो भी इनमें से किसी का कर्ता एक न था। जो नियम प्रजा ने अपनी ओर से बनाये वे ही किसी साहित्यज्ञ विद्वान् द्वारा उत्तम शब्दों में सम्बद्ध होकर राजदंड बन गये।

---

* इस वाक्य से साफ झलकता है कि उन दिनों भी Public opinion को कितना महत्व दिया जाता था। यद्यपि आधुनिक प्रतिनिधिनिर्वाचन विधि उस समय नहीं थी तथापि वह भाव (spirit) पर्याप्त रूप से विद्यमान था।

इन २० स्मृतियों से, मनु से लेकर बहुत पीछे तक के शासन का पता हमें लग सकता है। दंड अर्थात् कानून के बनाने में किसी स्वार्थी का हाथ नहीं होता था। वे त्यागी मुनि, ऋषि जिन्हें प्रजा 'आप्त' नाम से सम्बोधन करती थी इसके निर्माता होते थे। इन विद्वानों में भी किसी एक जाति या धर्म के लोग न रहते थे। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चारो जातियों को आवश्यकतानुसार उस मंडली में स्थान दिया जाता था। सभी ऋषि श्रेणी में थे। इनमें से कोई भी यह विचार नहीं करता था कि वह तो अमुक वर्ण है और मैं अमुक वर्ण हूं। सभी अपने को मनुष्य समझते थे और मनुष्यमात्र के हित की चिन्तना किया करते थे।

इसीलिए कभी २ तीन विद्वानों की ही समिति न्यायधारा (दंड) निर्माण करती थी और कभी एक ही विद्वान् यह सम्पादन करता था; लेकिन इन तीनों या एक में राजवर्ग का कोई नहीं होता था।* ये त्यागी समस्त देश के विश्वास-पात्र होते थे। राजवर्ग के अन्यायी हो जाने से उसमें से किसी दुष्ट को दंड देने का अधिकार प्रजा को प्राप्त था। देखिये—

अरक्षितारं हन्तारं विनयेत्तारं अनायकम्।
ये वैः राजकुलं हन्युः प्रजः सन्नयनिघृणम्।

हम इस प्रकार के उत्कृष्ट दंडविधान के समर्थन में अनेक उदाहरण देकर लेख को बढ़ाना नहीं चाहते। कथन इतना ही है कि स्मृति काल तक भी हमें भारत में सिवा प्रजातन्त्र प्रणाली के कहीं स्वेच्छाचारियों का शासन नहीं मिलता।

(४) पौराणिक काल।

इस समय के प्रधान ग्रन्थों में महाभारत ही एक ग्रन्थ है जिसका प्रमाण देने से मानों समस्त पुराणों का प्रमाण दिया जाचुका। सुतरां हम महाभारत से दिखलाते हैं कि भारत का शासन कैसा था :—

वक्ष्यामि तु यथामात्यान् यादृशांश्च करिष्यति।
चतुरो ब्राह्मणान् वैद्यान् प्रगल्भान् स्नातकान् शुचीन्॥
क्षत्रियांश्च तत्र चाष्टौ बलिनः शस्त्रपाणयः।
वैश्यान् वित्तेन सम्पन्नान् एकविंशति संख्यया॥
त्रींश्च शूद्रान् विनीतांश्च शुचीन् कर्मणिपूर्वके।
अष्टाभिश्च गुणैर्युक्तं सूतं पौराणिकं तथा।
पञ्चाशद्वर्षवयसं प्रगल्भमनसूयकम्॥
श्रुतिस्मृतिसमायुक्तं विनीतं समदर्शिनम्।
कार्या विवदमानानां शक्तमर्थेष्वलोलुपम्॥
वर्जितश्चैवव्यसनैः सुघोरैः सप्तभिर्भृशम्।
अष्टानां मन्त्रिणां मध्ये मन्त्रं राजोपधारयेत्॥
ततः संप्रेषयेद्राष्ट्रे राष्ट्रीयाय च दर्शयेत्।
अनेन व्यवहारेण द्रष्टव्यास्ते प्रजाः सदा॥

(म० भा० शान्तिपर्व)

दंड (अर्थात् Code of Law) निर्माण करनेवाली सभा में चार वेदज्ञ (ईश्वर से भय करने वाले विद्वान्) ब्राह्मण, आठ राजपुत्र, इक्कीस वैश्य और तीन शूद्र होते थे। इन सदस्यों की अवस्था पचास वर्ष से कम न होती थी। इस मंत्रिमंडल के सिवा एक अन्तर समिति (Sub-Committee) बनाई जाती थी जिसमें इनमें से आठ व्यक्ति योग* दान करते और राजा सभापति होता था। इस समिति और अन्तरङ्ग समिति

---

* यह आधुनिक Separation of powers से मिलता है। यहां पर कार्यकारिणी और व्यवस्थापक का पृथक्करण इंगित होता है। जो भाव यूरोपवालों को १८वीं शताब्दी में Montesquieu (मौंटेस्क्यू) से प्राप्त हुआ वही भाव हमारे शास्त्रों में कितने समय पहिले दर्शाया गया था, इसकी किसी को खबर तक नहीं है पर फिर भी आज भारतवासी उसीके लिए रो रहे हैं। (सुपार्श्व)।

* यह प्रथा वर्तमान जर्मनी की प्रथा से बहुत कुछ मिलती जुलती है। (सुपार्श्व)।

में निश्चित प्रत्येक विचार की घोषणा प्रजा को कर दी जाती थी। इस दशा में यह कहना कि भारत के प्राचीन शासन में राजा को सब कुछ मनमानी करने का अधिकार था असत्य के सिवा और क्या कहा जा सकता है।

शूद्रों के प्रायः मूर्ख होने से उनमें से केवल ३ ही सदस्य निर्वाचित होते थे। यह केवल अपने स्वार्थों की रक्षा करते थे। ब्राह्मण लोगों का ऐहिक स्वार्थ अति अल्प था इसलिए केवल चार ही चुने जाते थे; सो भी अन्यों के हित के लिए। क्षत्रियों में से कुछ अधिक होते थे। इनमें से ८ व्यक्ति लिये जाते थे। वैश्यों के हाथ में व्यवसाय और देश का धन था; इसलिए उनके २१ व्यक्ति लिये जाते थे। इससे प्रकट है कि औसत से प्रतिनिधि निर्वाचन (Proportional representation) का भाव उस समय भी खूब प्रबल था। कौशल, वाणिज्य या व्यवसाय की रक्षा करना आज की भांति अन्य कामों सें अधिक आवश्यक समझा जाता था। राजकोषमें इन्हीं के जेब से अधिक धन जाता था। इसलिए इनके सदस्यों की संख्या सब से अधिक होती थी। इससे कोष का अपव्यय नहीं होता था। उस समय ऐसा न था कि सरकार की ओर से nominated (निर्दिष्ट) सदस्यों की संख्या प्रजा द्वारा चुने हुए सदस्यों की संख्या से अधिक हो जाय।

वैदिक काल से महाभारतकाल पर्यन्त समस्त देश का शासन तीन भागों में विभक्त रहा :—

(१) राजार्घ परिषद् (Political Department)

(२) धर्मार्घ परिषद् (Religious Department)

(३) विद्यार्घपरिषद् (Educational Department)

फिर इनमें से प्रत्येक के उपविभाग भी थे; उपविभागों के भी खंड थे।

(५) पूर्व मुहम्मदी काल।

इस समय आर्यावर्त के साम्राज्य का पतन हो चुका था। प्रान्त प्रान्तों में अलग २ राजा बन बैठे थे। इन्हीं राजाओं से भारत में यथेच्छाचार का संचार आरम्भ हुआ। तो भी इनमें से प्रजातन्त्र की वासना गई नहीं थी। आज अनुमान ३५० वर्ष ही हुए होंगे जब बीकानेर का राज्य स्थापित हुआ था। इस राज्य के संस्थापक थली के गोदारे जाट थे। इन जाटों में और पश्चिम के भाटियों में लगातार झगड़ा रहा करता था, जिसके कारण उन्हें एक स्थायी राजा चुनने की आवश्यकता हुई। इन्होंने जोधपुरनिवासी बीका जी को भी अपनी सहायता के लिए बुलाया था। इनके व्यवहार और वीरता से प्रसन्न होकर जाटों ने इनको अपना स्थायी सभापति बनाना चाहा। जब बीका जी ने सभापति होना स्वीकार कर लिया, तब सार्वजनिक सभा बैठी। इस सभा ने बीका जी को अनेक प्रतिबन्धों (शर्तों) से अपना सभापति चुना, जिनमें से मुख्य मुख्य नीचे दिये जाते हैं।

१—राजा को अधिकार न होगा कि वह किसी व्यक्ति को चाहे वह उसका वंशधर ही क्यों न हो, अपनी इच्छा से अपना उत्तराधिकारी चुने।

२—राजा को प्रत्येक घर से १) वार्षिक से अधिक कर लेने का अधिकार न होगा। यह कर धुआँ कहलावेगा और जितने अलग चूल्हे होंगे, उतने घर समझे जायँगे।

३—राजा की मृत्यु पर जाटों द्वारा जो योग्य समझा जायगा उसीको राजा बनाया जायगा।

४—राजा के अन्यायाचरण करने पर जाटों को अधिकार होगा कि वे अपराधी राजा को पदच्युत करके दूसरा राजा चुनें।

५—इसी प्रकार की और भी अनेक शर्तें हुईं। हमें यहां पर इतना ही कहना है कि बीकानेर के कुपढ़ जाटों तक की नसों में प्रजातन्त्र का रक्त सञ्चारित हो रहा था।

आज तक उपर्युक्त शर्तों में से दो-धुआं और तिलक-वर्तमान हैं। पर अब ये शर्त न रहकर रीति होगई हैं।

सच्चे यथेच्छाचार का आगमन मुसलमानों के साथ हुआ और दिनों दिन जड़ पकड़ता गया, जिसका विषमय फल आजतक देखने में आता है।

पर फिर भी धन्य है परमात्मा को कि अंगरेज़ों के आगमन से हमें सच्चा प्रजातंत्र नहीं मिला तो न सही पर नियन्त्रित (Limited) राज्य तो प्राप्त हुआ ही है। कौन कह सकता है कि वह दिन न आवेगा जब हम लोग वास्तविक सुव्यवस्थित शासन का उपभोग करेंगे क्योंकि इसी में शासक और शासित दोनों का यथार्थ कल्याण है।

युक्तप्रदेश में प्रारम्भिक शिक्षा।

[लेखक—श्रीयुत बालमुकुन्द बाजपेयी।]

मई १९१३ में संयुक्तप्रदेश की सरकार ने प्रारम्भिक शिक्षा पर विचार करने के लिए सरकारी और गैर सरकारी १२ सज्जनों की, जस्टिस पिगट की अध्यक्षता में एक समिति बनाई जिसने छोटे लाट के ग्रीष्मावास नैनीताल शैल पर जून में विचार किया और दो ही मास पीछे अपना निर्णय सरकार के पास भेज दिया। यथासमय यह विवरण प्रकाशित हुआ और हिन्दी पत्रों ने इस विवरण के हिन्दी-उर्दू-विवाद सम्बन्धीय अंशों और मीमांसा के विषय में जो कुछ आलोचना की थी, वह पत्रों के पाठकों को स्मरण होगी।

पिगट कमेटी के विवरण तथा और एक आध कमेटियों की "सिफारिशों" पर विचार कर युक्तप्रदेश के छोटे लाट ने गत २९ अगस्त के सरकारी गज़ट में प्रारम्भिक शिक्षाविषयक अपना निर्णय प्रकाशित किया है। यह निर्णय बड़े ही महत्व का है और यदि हमारे नेता इसका भाषानुवाद, केवल हिन्दी या उर्दू जाननेवाले हिन्दुओं के उपकारार्थ बटवा दें तो बहुत लाभ हो सकता है।

ब्रिटिश सरकार इन दिनों प्रबल शत्रु से युद्ध में व्यस्त है। राजभक्त भारतवासी आज सम्पूर्ण अभाव अभियोगों को भूल कर तन, मन, धन से साम्राज्य की रक्षा करने के लिए व्यग्र हो रहे हैं। लार्ड कर्जन से प्रारम्भ कर कनाडावासी पर्यन्त हमारी राजभक्ति के गीत गा रहे हैं। ऐसे अवसर पर विरोध का स्वर यथासाध्य न उठाना ही अच्छा है। परन्तु बात साधारण नहीं है। मौनावलम्बन कदापि उचित नहीं प्रतीत होता। हिन्दू भाइयो, हाथ पैर छोड़कर राजभक्ति के प्रवाह में बहने से किनारे लगना कठिन हो जायगा। कहां भँवर पड़ रहा है और कहां नांद पड़ रही है, इसका ध्यान रखना आवश्यक है। घड़ियाल और मगर राजभक्तिरूपी पवित्र सरिता में बहनेवालों पर भी चोट करने को तत्पर बैठे रहते हैं इसमें आश्चर्य ही क्या है। हाथ पैर छोड़कर बहनेवाले को शव समझकर काग आदि मांस नोच २ खायँ और तृप्त हों यही प्रकृति का नियम है।

यथासाध्य इस आपत्तिकाल में सरकार की सहायता करना हमारा परम धर्म है। ब्रिटिश सरकार ने दक्षिणी एफ्रिका और कनाडा में हमारी जैसी कुछ सहायता की थी, उसे भुला कर इस कुअवसर पर सम्पूर्ण रीत्या साम्राज्य की सेवा करना ही हमारा कर्तव्य है परन्तु अपने को बिलकुल भुला देने से भी काम न चलेगा। अस्तु।

युक्तप्रदेश के विद्वान् शासक ने प्रारम्भिक शिक्षा विषयक अपना निर्णय नौ भागों में विभक्त किया है:—

(१) प्रारम्भिक पाठशालाओं का सङ्गठन तथा स्थापन।
(२) प्रारम्भिक शिक्षकों का वेतन और विधान।
(३) प्रारम्भिक शालाओं का पाठ्यक्रम।
(४) विशेष जातियों या वर्गों की शिक्षा।
(५) पाठशाला-भवन तथा स्वास्थ्यविधान।
(६) सहायताप्राप्त तथा स्वतंत्र पठशालाएं।
(७) प्रारम्भिक बालिका-पाठशालाएं।
(८) निरीक्षण और नियंत्रण।
(९) आर्थिक तथा सर्वव्यापी।

इन नौ में तीसरे और चौथे मन्तव्य पर इस लेख में विचार करना है।

तीसरे मन्तव्य में पाठ्यक्रम का विचार किया गया है। प्रारम्भिक शिक्षा ही क्यों, शिक्षा मात्र का यही प्रधान अङ्ग है। क्या पढ़ाना, किस भाषा द्वारा पढ़ाना यही सर्वप्रथम विचारणीय है। यह मन्तव्य तीन भागों में विभक्त कर, विचार किया गया है। उपभाग ये हैं:—

(क) शिक्षणीय विषय और प्रणाली।
(ख) पाठ्यपुस्तकों की भाषा और लिपि।
(ग) नैतिक और धार्मिक उपदेश।

हम इस समय केवल उपभाग (ख) पर ही विचार करेंगे।

ईश्वर की कृपा से हमारे विपक्षियों ने अभी तक लिपि के सम्बन्ध में कोई आपत्ति नहीं उपस्थित की है। भाषा का ही झगड़ा चल रहा है और यह क्रमशः उग्र रूप धारण करता जा रहा है और जब तक सरकार पक्षविशेष के अनुचित हठ को प्रश्रय देती रहेगी तब तक यह विवाद निपटनेवाला नहीं है। झगड़ा मिटे कैसे, हिन्दू हिन्दी भाषा पढ़ने के लिए अपने लड़के प्रारम्भिक पाठशालाओं में भेजते हैं, वहां ईश्वर के बदले उन्हें खुदा पढ़ाया जाता है। यदि हिन्दू इसपर आपत्ति करते हैं तो किसी प्रकार से भी वे दोषी नहीं ठहराये जा सकते। परन्तु आर्य बालकों को "खुदा" पढ़ाने के लिए आकाश पाताल एक करना दुराग्रह नहीं तो क्या है? "इंडियन प्रेस रीडर" "पहली किताब" "पहला हिस्सा" मेरा एक पुत्र इन दिनों पढ़ता है और इसके छठे पन्ने में पांचवें पाठ "मेंह" के अन्त में लिखा हुआ है "मेंह हमारे लिए खुदा बरसाता है"। क्या एक भी हिन्दू ऐसा मिलेगा जो यह स्वीकार करने को तैयार हो कि, मेरी भाषा यही है? परन्तु युक्तप्रदेश के प्रधान शासक के विचार से शिक्षित हिन्दुओं की यही भाषा है और इसी भाषा की शिक्षा हिन्दू बालकों को दी जानी आवश्यक है। जिन युक्तियों के बल पर सर जेम्स मेस्टन महोदय सरीखे विचक्षण शासक इस भाषा की शिक्षा हिन्दू बालकों के लिए आवश्यक समझते हैं उनपर विचार करना नितान्त प्रयोजनीय है।

पिगट कमेटी में भी इस विषय पर बहुत खंडन मंडन हुआ था और अन्त में बहुमत से निर्णय हुआ कि:—

(क) "तीसरी और चौथी कक्षाओं की नागरी और फारसी लिपि की रीडरों में एक ही विषय और भाषा का प्रयोग होना उचित है परन्तु"

(ख) "आवश्यक स्थानों पर उसी भाव को सूचित करने के लिए भिन्न २ शब्दों का प्रयोग

किया जाय। नागरी रीडरों में हिन्दी शब्दों का पर्यायवाची उर्दू शब्द कोष्ठक में लिखा रहा करे और उर्दू रीडरों में इसी भांति नागरी शब्द कोष्ठक में रहा करें।"

(ग) "तीसरी और चौथी कक्षाओं की रीडरों में ६ गद्य पाठ के परिच्छेद हिन्दी और उर्दू भाषाओं के रहा करें, फारसी लिपि में छपी हुई रीडरों में अधिकतर उर्दू के पाठ और नागरी लिपि की रीडरों में अधिकतर हिन्दी के रहें"।

परन्तु सर जेम्स मेस्टन को यह निर्णय स्वीकार नहीं है। आपके मत से "प्रथम और द्वितीय कक्षाओं के लिए आजकल जिस प्रकार की रीडरें प्रचलित हैं वैसी ही प्रचलित रहनी चाहियें और इनसे ऊपर की कक्षाओं के लिए भी सामान्य भाषा की एक वरिष्ठ (Senior) रीडर की आवश्यकता है" परन्तु उर्दू और हिन्दी की विशेष योग्यता के लिए आपने चौथी कक्षा में परिशिष्ट स्वरूप एक शुद्ध हिन्दी या उर्दू रीडर के (Supplementary readers) पढ़ाये जाने की आवश्यकता भी स्वीकार की है। सर जेम्स मेस्टन की सम्मति में "जब कोई वर्ग वरिष्ठ (Senior) रीडर समाप्त कर ले तब उस वर्ग के विद्यार्थियों को तुरन्त दो में से एक परिशिष्ट पुस्तक का (Supplementary reader) पढ़ाना प्रारम्भ कर देना चाहिये और साधारणतः चौथी कक्षा के अन्तिम छ मास इस कार्य में लगाना सम्भवपर होगा।"

पिगट समिति का निर्णय लाट साहब को क्यों नहीं भाया यह बताना ज़रा टेढ़ी खीर है। हमने वारम्बार सरकारी मन्तव्य को ध्यानपूर्वक पढ़ा परन्तु एक वाक्य भी हमें ऐसा न मिला जिससे समिति का निश्चय अस्वीकृत किये जाने के कारणों का स्पष्टीकरण होता हो। अवश्य ही "उल्लिखित पाठ्यक्रम से सामान्य तथा सरल भाषा द्वारा प्रारम्भिक शिक्षा दी जाने के सिद्धान्त का पालन हो सकेगा" तथा "विरुद्धमतों का समाधान करने के प्रयास के कारण आपोषण (Compromise) ने जो स्वरूप धारण किया है वह व्यवहार में बहुत ही असुविधाजनक होगा" आदि अपने पक्ष का समर्थन और पिगट कमेटी के निर्णय का खंडन करनेवाले वाक्यों का अभाव नहीं है परन्तु इनसे पूर्ण प्रयोजन नहीं सिद्ध होता। पाठको, यदि आपको इतने से सन्तोष नहीं है तो धैर्य धरिये। राजकाजों के कारणों का पता सहज में नहीं लग जाया करता। यहां दाल न गलती देख अब हम उपर्युक्त प्रथम वाक्य में उल्लिखित "सामान्य तथा सरल भाषा द्वारा प्रारम्भिक शिक्षा दी जाने के सिद्धान्त" की परीक्षा करते हैं और मुख्य प्रयोजन भी हमारा यही है।

इस सिद्धान्त पर विचार करने के लिए सरकारी मन्तव्य में भाषा के प्रश्न का जो संक्षिप्त इतिहास दिया गया है उसका कुछ अंश हम पाठकों की सेवा में उपस्थित करना उचित समझते हैं :—

"भारतीय सरकार को लिखे गये युक्तप्रदेश सरकार के १३वीं जून १८७६ के एक पत्र में इस सिद्धान्त की ओर संकेत किया गया था कि "इस प्रान्त के शिक्षित वर्ग की भाषा एक हो है; चाहे वह नागरी लिपि में लिखी जाय चाहे फारसी लिपि में।"

"उत्तम प्रारम्भिक पाठ्य पुस्तक वही है जो बिना तोड़े मरोड़े लिपियों में लिखी जा सके।"

सर जेम्स मेस्टन यह भी स्वीकार करते हैं कि इस पत्र में कथित सिद्धान्तानुसार कार्य नहीं किया गया तथा "१६०२ में इस प्रश्न की पुनरालोचना हुई और १६ मई १६०३ के एक महत्वपूर्ण पत्र में तत्कालीन छोटे लाट ने स्थिर किया कि प्रारम्भिक पाठशालाओं की उर्दू और हिन्दी रीडरें नित्य बोलचाल की भाषा में

लिखी जाया करें न कि साहित्यिक भाषाओं में।" इन अवतरणों से स्पष्ट है कि १८७६ में तत्कालीन पश्चिमोत्तर प्रदेश के छोटे लाट ने निश्चित किया कि पश्चिमोत्तर प्रदेश के शिक्षित अधिवासियों की भाषा, चाहे नागरी लिपि में लिखी जाय चाहे फारसी में एक ही है और उसी नित्य व्यवहृत भाषा में ही प्रारम्भिक पाठ्य पुस्तकों का लिखा जाना उचित है परन्तु १९०३ तक यह निश्चय कार्य में परिणत नहीं हुआ। परवर्ती ईसवी संवत् से इस सिद्धान्त का प्रयोग प्रारम्भ हुआ। सिद्धान्त स्थिर हो जाने पर भी २७ वर्ष तक बिना उसका प्रयोग किये ही कार्य सानन्द चलता रहा परन्तु १९०३ में अधिकारियों ने करवट बदली और प्रारम्भिक पाठ्य पुस्तकें संयुक्तप्रदेश के "शिक्षित वर्ग की नित्य बोल चाल की और सरल भाषा में" लिखी जाने लगीं। १९०३ से तीन वर्ष पूर्व घोर आन्दोलन के पश्चात् अदालतों में नागरी लिपि का प्रवेशाधिकार स्वीकार कर सर (अब लार्ड) मैकडानेल्ड ने जो पुण्य या पाप किया था सम्भवतः उसीका प्रायश्चित्त करने के लिए यह उपाय रचा गया। अस्तु।

देखना यह है कि यह सिद्धान्त कहां तक युक्तिसंगत है। पहले यह जान लेना आवश्यक है कि यह सरल और सामान्य भाषा जिसे अधिकारीवर्ग संयुक्तप्रदेश के शिक्षित हिन्दू मुसलमानों की नित्य बोल चाल की भाषा समझता है, कौन सी है। प्रारम्भिक पाठ्य पुस्तकों के देखने से जान पड़ता है कि उर्दू को ही अधिकारियों ने ऐसी भाषा स्वीकार किया है। "सरस्वती" में प्रकाशित पं० कामताप्रसाद गुरु के लेखों से भी हिन्दी रसिकों को सरकारी "सरल और नित्य बोल चाल की भाषा" का अच्छा परिचय हो चुका है। हमारे शासक जिस भाषा को सरल, सामान्य तथा नित्य बोल-चाल की भाषा बतलाते हैं, क्या वास्तव में उसमें ये गुण हैं ?

यहां पर यह बता देना भी आवश्यक है कि भाषा की दृष्टि से उर्दू और हिन्दी के सम्बन्ध में सरकारी मत क्या है सन् १८७६ के जिस पत्र की सर जेम्स मेस्टन ने दुहाई दी है उसी में लिखा है "सुशिक्षितों की नित्य बोल चाल की भाषा एक होने पर भी उभय समाजों की (हिन्दू मुसलमानों की) साहित्यिक भाषाएं सर्वथा भिन्न २ हैं।" "इनमें केवल अक्षरों का ही भेद नहीं है, शब्दावली भी सर्वथा भिन्न है............नित्य के सांसारिक उपयोगी विषयों की शिक्षा देने के लिए तो यही (नित्यबोल चाल की) भाषा उपयुक्त है.........माध्यमिक शिक्षा की अवस्था अवश्य भिन्न है क्योंकि तब भाषा, भाषा और साहित्य के महत्व की दृष्टि से पढ़ी जाने लगती है।"

सन् १९०८ में प्रादेशिक सरकार ने टेक्स्ट-बुक कमेटी (पाठ्य पुस्तक समिति) के निम्न-लिखित दो मन्तव्य स्वीकार किये, उन्हें भी हम यहां पर उद्धृत करना आवश्यक समझते हैं:—

(क) इस समिति के मत से निम्न प्रारम्भिक पुस्तकें तो उर्दू और हिन्दी उभय भाषाभाषी विद्यार्थियों के लिए उपयुक्त हैं परन्तु उच्च प्रारम्भिक रीडरों की भाषा विद्यार्थियों को साहित्यिक शिक्षा प्राप्त करने के योग्य बनाने में असमर्थ है।

(ख) इस समिति की सम्मति में उच्च प्रारम्भिक रीडरों द्वारा विद्यार्थियों को उच्चतर साहित्यिक भाषा की शिक्षा दी जानी चाहिये और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उच्च-प्रारम्भिक (upper primary) काल में हिन्दी और उर्दू रीडरों की भाषाओं में पार्थक्य होना अनिवार्य है।

उर्दू और हिन्दी भाषाओं की भिन्नता का सिद्धान्त आज सर जेम्स मेस्टन को भी वैसा ही मान्य है जैसा सन् १८७६ में तत्कालीन शासक ... १९०८ में प्रान्तीय पाठ्य-पुस्तक-समिति

को था। पिगट कमेटी ने भी बहुमत से इस सिद्धान्त को स्वीकार किया है। इस विषय में सर जेम्स मेस्टन की उक्ति यह है:—

"साहित्यिक शिक्षा में पार्थक्य होना अवश्यम्भावी है यह कौन अस्वीकार करता है......" "साधारण पाठकों के पढ़ने के योग्य पुस्तकों तथा क्षणस्थायी समाचारपत्र-साहित्य में भी सरल हिन्दुस्थानी को त्याग करने की प्रचंड प्रवृत्ति दृष्टिगत हो रही है तथा महत्वपूर्ण साहित्यिक ग्रन्थों में तो यह प्रवृत्ति उग्रतर रूप से दर्शन देती है।"

प्रवीण पाठकगण इन अवतरणों के लिए क्षमा करें; परन्तु इनसे यह निर्णय हो जाता है कि, विवाद केवल प्रारम्भिक पुस्तकों की ही भाषा के लिए है। साहित्यिक हिन्दी और उर्दू में सर्वथा भिन्नता है, साधारण पुस्तकों तथा क्षणस्थायी समाचार-पत्र-साहित्य तक में भी विभिन्न भाषाओं का प्रयोग करने की ओर अधिकाधिक लोगों का झुकाव है, साहित्यिक महत्व के ग्रन्थों में तो वह पार्थक्य-प्रवृत्ति बड़ा ही उग्र रूप धारण करती है; यह सब स्वीकार है परन्तु फिर भी प्रारम्भिक-पाठशालाओं में बलपूर्वक हिन्दी-भाषी बालकों को उर्दू की शिक्षा देनेकी क्या आवश्यकता है यह समझ में नहीं आता। बड़ी माथापच्ची करने पर भी केवल एक पंगु कारण दिखाया जा सका है। अवश्य, शब्दाडम्बर की सहायता से उसी एक बात को कई भिन्न स्वरूप देने की चेष्टा की गई है परन्तु उसमें अधिक सफलता नहीं हुई; यह निस्सङ्कोच कहा जा सकता है। और वह एक मात्र निर्बल कारण यही है कि, संयुक्त प्रदेश के (उभय जातीय) शिक्षित समाज की नित्य बोलचाल की भाषा हिन्दुस्थानी (अर्थात् उर्दू) है जो बहुत सरल है। बस, इसी लिए प्रारम्भिक पाठ्यपुस्तकों की भाषा हिन्दुस्थानी या उर्दू होना उचित है।

क्या वास्तव में नित्य बोलचाल की भाषा शिक्षित हिन्दू और मुसलमानों की एक है? उर्दू से प्रेम रखनेवाले कुछ कायस्थ और थोड़े से कश्मीरी हिन्दू भाइयों की नित्य बोलचाल की भाषा कदाचित् उर्दू हो परन्तु अधिकांश शिक्षित हिन्दुओं की नित्य बोलचाल की भाषा भी मुसलमान भाइयों की नित्य बोलचाल की भाषा से उतनी ही भिन्न है जितनी साहित्यिक हिन्दी से उर्दू। जिन थोड़े से कायस्थ और कश्मीरी हिन्दुओं की बोलचाल की भाषा उर्दू मानी जा सकती है वे भी इतने नहीं बह गये हैं कि भगवान व ईश्वर के स्थान में वे खुदा बोलने लग गये हों और जिस दिन ईश्वर का स्थान खुदा ग्रहण कर लेगा उस दिन हिन्दू समाज में उनका भी मान न रहेगा। नित्य बोलचाल की भाषा से क्या प्रयोजन है? शिक्षित हिन्दू या विशेषतः कुछ कायस्थ और कश्मीरी भाई अपने मुसलमान बन्धुओं से उर्दू भाषा में वार्तालाप करते हैं इससे यह कदापि नहीं सिद्ध होता कि उनकी नित्य बोलचाल की भाषा उर्दू ही है। यदि इसी नीति अथवा तर्क के अनुसार शिक्षित हिन्दुओं की भाषा उर्दू मानी जा सकती है तो शीघ्रही शिक्षित हिन्दू और मुसलमानों की भाषा अंगरेज़ी मानी जा सकेगी और कोई आपत्ति न उठ सकेगी, क्योंकि शिक्षित हिन्दू और मुसलमान सज्जन अपने अंगरेज़ बन्धुओं से या राजकीय कार्यालयों में अंगरेज़ी भाषा में ही अधिकतर वार्तालाप करते हैं। यदि गवर्नमेंट शिक्षित हिन्दू और मुसलमान भाइयों की भाषा अंगरेज़ी मानने का साहस नहीं कर सकती है तो शिक्षित हिन्दुओं की भाषा उर्दू वह किस बल पर मानती है?

यह भी विचारणीय है कि केवल संस्कृतज्ञ हिन्दुओं की गणना शिक्षितों में हो सकती है या नहीं? यदि हो सकती है तो क्या इन संस्कृतज्ञों की नित्य बोलचाल की भाषा भी उर्दू

है ? प्रकृत स्थिति यह है कि बहुतेरे शिक्षित हिन्दू अपने मुसलमान बन्धुओं से तथा कभी २ परस्पर में भी उर्दू में वार्तालाप अवश्य करते हैं परन्तु उर्दू उनकी भाषा कदापि नहीं स्वीकार की जा सकती क्योंकि दिन रात अपने घर में तथा सजातियों, कुटुम्बियों और सम्बन्धियों से वे जिस भाषा में बातचीत करते हैं वह हिन्दी है और यही उनकी नित्य बोलचाल की भाषा है।

इस प्रश्न की मीमांसा करने के लिये एक और भी महत्वपूर्ण प्रश्न से बहुत कुछ सहायता मिलती है और वह यह है कि शिक्षित हिन्दुओं की महिलाओं या कन्याओं की नित्य बोलचाल की कौनसी भाषा है। इसका उत्तर देने के लिए हमें अधिक काग़ज़ काले करने की आवश्यकता नहीं है। अधिकारियों ने स्वयम् इस प्रश्न का उत्तर हमारे पक्षमें दे रक्खा है अन्यथा बालिकाओं के लिए प्रारम्भिक पाठ्यपुस्तकों के विषय में भी वही विवाद खड़ा हो जाता। अस्तु ?

अब वाद के लिए यदि यह काल्पनिक सिद्धान्त स्वीकार भी करलें कि शिक्षित हिन्दुओं की भाषा उर्दू है तो भी यह सिद्ध करना कठिन हो जाता है कि प्रारम्भिक नागरी पाठ्यपुस्तकें उर्दू में या "नित्य बोलचाल की सरल भाषा" में ही लिखी जाया करें। यदि इने गिने शिक्षित हिन्दुओं की भाषा हिन्दुस्थानी या उर्दू है तो आलोच्य मन्तव्य में ही स्वीकार किया गया है कि "विशेषतः पूर्वीय ज़िलों में बहुतेरे मुसलमान भी हिन्दी लिखने पढ़ने के अभ्यासी हैं" ? इन हिन्दी लिखने पढ़ने के अभ्यासी शिक्षित मुसलमानों की भी नित्य बोलचाल की भाषा उसी भांति उर्दू है जिस प्रकार शिक्षित हिन्दुओं की भाषा उर्दू है। इन तर्कों को छोड़कर हमारा पक्ष यह है कि मुट्ठी भर शिक्षितों की (केवल नित्य बोलचाल की, साहित्य की नहीं) भाषा कई गुने अधिक हिन्दी भाषी अशिक्षितों पर क्यों लादी जाय जब यह मान लिया गया है कि शिक्षितों की बोलचाल की भाषा से हिन्दी साहित्य पढ़नेवालों को किसी प्रकार की सहायता नहीं प्राप्त होती। अधिकारियों का कथन है कि यह नित्य बोलचाल की भाषा सरल है और हिन्दीभाषियों की समझ में भली भांति आती है। ऐसी अवस्था में इस भाषा के पढ़ाने से क्या लाभ विचारा गया है यह हमारी कुण्ठित बुद्धि में नहीं आता। प्रारम्भिक शिक्षा का उद्देश्य यदि बालकों को शिक्षितों की नित्य बोलचाल की भाषा की शिक्षा देना ही हो तो हमें कुछ कहना नहीं है। यदि यह लक्ष नहीं है तो प्रारम्भिक पाठ्यपुस्तकों के द्वारा हिन्दीभाषी बालकों पर उर्दू लादने के प्रयत्न का अवश्य कोई गूढ़ कारण है।

ऊपर साहित्यिक हिन्दी और उर्दू के सम्बन्ध में सरकारी मत हम पाठकों के समक्ष उद्धृत कर चुके हैं। हिन्दू और मुसलमानों की नित्य बोलचाल की भाषा में भी आकाश पाताल का अन्तर हमने बताया है; इसका प्रमाण भी हम आपकी सेवा में सरकारी वाक्यों में ही उपस्थित करेंगे। यह लीजियेः—

"बोलचाल की भाषा एक है सही परन्तु यह एकता भी सीमाबद्ध है क्योंकि कुछ विषय ऐसे हैं जिनका बारम्बार काम पड़ता है; यथा धर्म, नीति, कहावतें, साहित्यिक उदाहरण इत्यादि और इन विषयों के लिए हिन्दू और मुसलमान भिन्न शब्दों का उपयोग करते हैं"।

इस उद्धृतांश से यह स्पष्ट हो जाता है कि शिक्षित हिन्दू और मुसलमानों को नित्य बोलचाल की भाषा में भी भेद है, यह अधिकारियों से छिपा नहीं है। परन्तु अब भी यदि वह हठ किया जाय कि शिक्षितों की भाषा में भेद नहीं है तो भी "नित्य बोल चालकी सरल भाषा" की शिक्षा देने में समय खोना व्यर्थ है। नित्य के संसर्ग

से नित्य व्यावहारिक बोलचाल की भाषा आप ही आप आजाती है इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं विशेषतः जब यह भाषा सरल है तब तो इसके समझाने में अधिक दिनों की अपेक्षा नहीं हो सकती।

विपक्षियों का बड़ा प्रबल अस्त्र "सरलता" है परन्तु तर्क की कसौटी पर यह ब्रह्मास्त्र भी कुंठित हो जाता है। अधिक से अधिक यही कहा गया है कि यह शिक्षितों की नित्य बोलचाल की भाषा है, अशिक्षितों की नहीं। इस अवस्था में अधिकांश अशिक्षितों के बालकों के लिए इस भाषा में लिखित पाठ्यपुस्तकें सरलता गुणसम्पन्न कैसे स्वीकार की जा सकती है। उलट पुलट के चाहे जिस दृष्टि से विचार किया जाय परन्तु नागरी लिपि की प्रारम्भिक पाठ्यपुस्तकों में "शिक्षितों की नित्य बोलचाल की सरल भाषा" का उपयोग कदापि सिद्ध नहीं हो सकता।

अब हम प्रारम्भिक शिक्षा के लक्ष्य तथा नागरी लिपि की पाठ्यपुस्तकों की भाषा उस लक्ष्य के कहां तक अनुकूल है इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर विचार करेंगे। यथासाध्य समस्त प्रश्नों या उपप्रश्नों की व्याख्या के लिए हमने सर जेम्स मेस्टन के मन्तव्यों से ही सहायता लेने का विचार किया है और इस स्थान पर भी हम उसी नीति को बरतेंगे। सर जेम्स महोदय प्रारम्भिक शिक्षा का लक्ष्य यह समझते हैं:—

"प्रथम स्पष्ट सिद्धान्त यही है कि विद्यार्थी की भलाई का ध्यान रक्खा जाय। भाषा विषयक सिद्धान्तों और विवादों से बालकों की शिक्षा जटिल बना देना अनुचित है। शिक्षा की प्रारम्भिक अवस्था में बालकों पर दो भाषाएं किम्वा दो वर्णमालाओं का बोझ लादना अनुचित है।......... प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त होने पर विद्यार्थी को चिट्ठी पत्री लिखने की तथा साधारण पुस्तक "या समाचारपत्र समझने की योग्यता अवश्य होनी चाहिये.........बालकों को ऐसी शिक्षा देना उचित है जो उन्हें सांसारिक कर्तव्य पालन करने के लिए विशिष्टतया सुसज्जित कर सके और जिससे उनकी मेधाशक्ति पर स्थायी प्रभाव पड़े।"

हम इन उद्देश्यों के साथ २ प्रारम्भिक शिक्षा के और भी कुछ उद्देश्य समझते हैं--जो इनसे कम महत्व के नहीं हैं--परन्तु हम उन प्रश्नों का उत्थापन कर लेख को विस्तृत नहीं करना चाहते। हम स्वीकार करते हैं कि प्रारम्भिक शिक्षा के येही उद्देश्य हैं परन्तु जिस प्रणाली का अनुसरण किया जा रहा है क्या उससे ये उद्देश्य सिद्ध हो सकते हैं? भाषा विषयक "विवादों द्वारा बालकों की शिक्षा जटिल बनाना" तथा "प्रारम्भिक शिक्षाकाल में बालकों पर दो भाषाओं अथवा वर्णमालाओं का बोझ लादना" अनुचित समझा गया है। यथार्थ बिलकुल यथार्थ। सर जेम्स मेस्टन तथा उनके सहकारियों को हम इन वाक्यों के लिए साधुवाद देते हैं। अब प्रश्न उठता है कि नागरी लिपि द्वारा उर्दू भाषा की शिक्षा देना किस कोटि में समझा जाय। हम कोटि निर्देश करने में असमर्थ हैं और हमें खेद है कि मन्तव्यों से हमें इस अवसर पर कोई सहायता नहीं मिलती। पाठक स्वयं विचार लें। इतना अवश्य निर्विवाद कहा जा सकता है कि इस रीति से हिन्दी पढ़नेवाले विद्यार्थी को न हिन्दी आती है और न उर्दू ही। प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त कर पढ़ना छोड़ देनेवाला हिन्दी पढ़नेवाला विद्यार्थी "धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का" बन जाता है, इसमें आश्चर्य ही क्या हो सकता है। सर जेम्स मेस्टन महोदय भी एक भाषा के अक्षरों द्वारा अन्य भाषा की शिक्षा दी जाने का उद्योग वैसाही हास्यास्पद समझते हैं जैसा हम समझते हैं। आप

कहते हैं "जिस १८७६ के पत्र से ऊपर सहायता ली जा चुकी है उसके शब्दों में विजातीय शब्दों को प्रगट करने की जटिलता के कारण दोनों लिपियों के अक्षर शब्दों पर प्रतिघात करते हैं और भेद बढ़ाते हैं।" प्रारम्भिक शिक्षा का प्रथम मान्य सिद्धान्त नागरी अक्षरों द्वारा हिन्दी पढ़नेवाले विद्यार्थियों पर उर्दू लादने से कहां तक सफल हो सकता है यह समझना कुछ कठिन बात नहीं है।

प्रारम्भिक शिक्षा का दूसरा उद्देश्य "चिट्ठी पत्री लिखने तथा साधारण पुस्तक और समाचारपत्रों के समझने की योग्यता हो जाना" स्वीकार किया गया है। उद्देश्य में मतभेद नहीं हो सकता परन्तु जिस प्रणाली का अनुसरण किया जाता है और भविष्य में करने का संकल्प किया गया है उससे इष्ट सिद्धि असम्भव है। यहां भी स्वयं छोटे लाट महोदय को ही हम अपना साक्षी बनावेंगे :—

"वर्तमान समय में सैकड़ा पीछे ८०, ६० लड़के "निम्न प्रारम्भिक अवस्था" में ही पाठशाला छोड़ जाते हैं..........लड़कों का यह बड़ा भारी समूह ऐसी कोई शिक्षा लेकर नहीं जाता........जिसका कुछ स्थायी मूल्य हो ....इससे धन और उद्योग का केवल खेदजनक अपव्यय हुआ है; तथा ग्रामीण जनता के चित्त में शिक्षा के प्रति दुर्भाव उत्पन्न हो गया है......................................"

"श्रीमान् लाट साहब ने ध्यानपूर्वक "उच्च प्रारम्भिक सामान्य पुस्तक" का (Upper Primary General Reader) अवलोकन किया है और वे स्वीकार करने को बाध्य हैं कि "इससे बालक को भाषा का कोई भी समाचारपत्र जिससे वे (छोटे लाट साहेब) परिचित हैं-- अथवा अलकोपयोगी कहानियों की पुस्तक से उच्चश्रेणी की किसी भी पुस्तक के पढ़ने की योग्यता नहीं हो सकती................"

"चौथी कक्षा के अन्ततक व्यवहार की जानेवाली सामान्य भाषा की रीडरों को पढ़कर प्रारम्भिक पाठशाला छोड़नेवाले बालक में वह मानसिक योग्यता नहीं हो सकती जिसकी अभिलाषा की जाती है।"

इन अंशों को उद्धृत करने के पश्चात् किसी प्रकार की टीका टिप्पणी करना व्यर्थ है। केवल इतना ही पूछना यथेष्ट होगा कि हम प्रारम्भिक पुस्तकों की भाषासम्बन्धी वर्तमान नीति को क्या समझें ?

साहित्यिक भाषा में भेद है, नित्य बोलचाल की भाषा में भेद है, उच्चप्रारम्भिक सामान्य रीडर पढ़कर विद्यार्थियों को साधारण समाचारपत्र सरलतापूर्वक पढ़ने की योग्यता नहीं प्राप्त होती, प्रारम्भिक शिक्षा का उद्देश्य भी किसी अंश में नहीं प्राप्त हो रहा है, स्वाभाविक जातीय साहित्याभिमान तथा संस्कृत एवम् फारसी भाषाओं से (हिन्दी और उर्दू शब्दावली की) उत्पत्ति होने के कारण बोलचाल की भाषा की अपेक्षा लिखित भाषा में भेद प्रबल रूप धारण करता है। आदर्श शिक्षा की दृष्टि से यह प्रबल भेद दुर्भाग्य की बात न हो, उन्नति में इससे कोई बाधा न पड़ सकती हो आदि सब बातें स्वीकार हैं परन्तु फिर भी "श्रीमान् लाट साहब सामान्य भाषा की शिक्षा देने की नीति स्वीकार करते हैं।" किमाश्चर्यमतःपरम्।

यह तो स्पष्ट ही हो गया कि भ्रमवश सामान्य भाषा द्वारा प्रारम्भिक शिक्षा दी जाने का यत्न नहीं किया जा रहा है। हमारी समझ में "श्रीमान लाट साहब सामान्य भाषा की शिक्षा देने की नीति स्वीकार करते हैं" इस वाक्य में प्रयुक्त "नीति" शब्द ही सब कारणों का मूल है। तर्क एक ओर ले जाता है, नीति दूसरे मार्गकी ओर संकेत करतो है। हिन्दुओं की भाषा ही ...

अब हम पूर्वोक्त पिगट कमेटी के सदस्य और एक मुसलमान सज्जन मि० असगर-अली खां के एक वाक्य से हिन्दी के प्रति हमारे मुसलमान भाइयों की घृणा पता लग जाता है। मि० असगरअली खां साहेब फरमाते हैं "प्राचीन भाषा जो संस्कृत के समान मृत भाषा है और जिसे केवल "संस्कृत के ज्ञाता ही समझ सकते हैं हिन्दी के नामसे राष्ट्रभाषा उर्दू या हिन्दुस्थानी को हानि पहुंचाने के लिए पुनर्जीवित की जा रही है"। कुछ सज्जन तो खां साहब के भी इस विषय में कान काटते हैं। उनका कथन है "उर्दू या हिन्दुस्थानी ही संयुक्त प्रान्त के शिक्षित समुदाय की सर्वमान्य भाषा है.........पुस्तकों या समाचारपत्रों की हिन्दी भाषा का इस प्रदेश में बोली जानेवाली भाषा से कोई सम्पर्क नहीं है; तथा राजनैतिक उद्देश्य से जिस अपरिपक्व साहित्य का प्रचार किया जा रहा है उसके द्वारा संयुक्त प्रदेश की प्रकृत भाषा की उन्नति के मार्ग में कांटे बोना कदापि वाञ्छनीय नहीं है"। वाध्य होकर हमें यह कहना पड़ता है कि एक ओर तो हमारे मुसलमान भाइयों का यह भाव है जिससे हमारा हृदय क्षुब्ध रहता ही है पर सरकार की ओर से भी हमें सान्त्वना न मिलने से हम कुछ कुछ निराश हो जाते हैं। इस अवस्था में परवर्ती अवतरण में "राजनैतिक उद्देश्य" की जो दुहाई दी गई है हिन्दुओं की ओर से उसी "राजनैतिक उद्देश्य" की पुकार अधिक पुष्ट प्रमाणों सहित मचायी जा सकती है। सरकारी मन्तव्य में भी यह बात स्वीकार होते देख हमें बड़ा खेद हुआ है कि, "सामान्य भाषा के सिद्धान्त से इस नाममात्र के विचलन पर भी मुसलमान सदस्यों ने आपत्ति उठाई थी"।

अन्त में इस प्रकरण को समाप्त करते हुए हम अपने मुसलमान बन्धुओं को विजय प्राप्ति के हेतु बधाई देते हैं और साथही यह कह देना भी उचित समझते हैं कि भाषा सम्बन्धीय आलोच्य निर्णय को हिन्दीभाषी समाज कदापि भ्रमशून्य निर्णय स्वीकार करने को प्रस्तुत नहीं है।

शिवाजी की योग्यता।

[लेखक—श्रीयुत तरुण भारत।]

किसी पुरुष की योग्यता समझ लेना उसका शारीरिक, मानसिक और नैतिक बल जानना है और ये बातें तभी ज्ञात हो सकती हैं जब हम यह जानें कि उस पुरुष ने क्या क्या किया अर्थात् उसका चरित्र हमें ज्ञात हो। सारांश किसी की योग्यता समझने के लिए उसके पूर्ण चरित्र की छोटी बड़ी सभी घटनायें जानना आवश्यक है। जब हम किसी पुरुष का चरित्र पढ़ते हैं तब हम कुछ न कुछ उसकी योग्यता समझने ही लगते हैं। हां इतना कहीं कहीं रह जाता है कि उसके चरित्र में जो कहीं प्रत्यक्ष असंबद्ध बातें होती हैं, उनका पूर्ण अर्थ हमारे लक्ष्य में नहीं आता परन्तु हम चरित्र पढ़ने में ये बातें भूल जाते हैं अथवा जो वह महान् पुरुष हो तो अपने मन को समझा लेते हैं कि सत्पुरुषों का प्रत्येक काम करने में कुछ न कुछ अर्थ होता ही है, वे कभी कोई काम निरर्थक अथवा असंबद्ध नहीं करते। साधारण जन चरित्र पढ़ने में ही संतोष प्राप्त लेते हैं, उसका मनन करने में अर्थात् उसकी योग्यता समझ लेने में उन्हें उत्साह नहीं होता और

इस कारण चरित्रवाचन से जितना लाभ होना चाहिये उतना नहीं होता । जब हम किसी की कृति का मनन करते रहते हैं तो उसके गुणदोष समझने का प्रयत्न साथ ही होता रहता है और जो प्रभावशाली पुरुष हों उनके गुणों का-विशेषतया उनके नैतिक गुणों का-परिचय अपने मन पर हुए बिना नहीं रहता । यदि गुणों का प्रभाव पड़ा तो उस प्रकार का व्यवहार थोड़ा बहुत कृति में अवश्य रूपान्तरित हो जाता है और यही सत्पुरुषों के चरित्रों के पठन का लाभ है । शिवाजी महाराज के चरित्र हिन्दी में छोटे बड़े अनेक लिखे गए हैं और हिन्दी की आज की अवस्था में कोई सविस्तर चरित्र छापना शक्य नहीं है, परन्तु इतने महान् सत्पुरुष की योग्यता समझने का प्रयत्न करना हमें नितांत आवश्यक है, इसलिए आज यह अल्प-स्वल्प प्रयत्न करने पर हम उद्यत हुए हैं ।

आज तक शिवाजी का स्मरण लुटेरा, डाकू, बागी इत्यादि शब्दों से किया जाता है । हमें अंगरेज़ी में जितनी किताबें पढ़ाई जाती हैं उनमें उस महान् पुरुष को येही विशेषण लगाये जाते हैं । कितने अफसोस की बात है कि जिस पुरुष के चरित्र में भौतिक और पारलौकिक, राजकीय और नैतिक उन्नति के स्रोत बह रहे हैं और जहां हम सब को स्नान करना उचित है, उसी को डाकू, लुटेरा, बागी इत्यादि कहें और इस प्रकार उस पुरुष के विषय में कपोल कल्पना करने का अनावश्यक प्रयत्न किया जावे । हम देखते हैं कि स्कूलों और कालेजों में जो पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं उसमें मराठी इतिहास का हाल बहुत थोड़ा रहता है, मानो सब हिन्दुस्थान का इतिहास मुसलमानों के राज्य बर्णन में और अंगरेज़ों की लड़ाइयों की तफसील में समाप्त हो जाता है । जिस पुरुष ने इतिहास की दिशाही बदल दी और एक नया ही राष्ट्र बना दिया, उसका चरित्र जानना हमारे शिक्षणदाता क्या पाप समझते हैं ? शायद ऐसा ही होगा इस कारण हमें नेलसन और वेलिंगटन प्रभृति परद्वीपस्थ वीरों के उद्गारों से हमारी स्मरण शक्ति लादी जाती है परन्तु शिवाजी का एक भी उद्गार किंवा एक भी उत्तेजक घटना का वर्णन हमें नहीं बतलाया जाता । ऐसी अवस्था में शिवाजी की योग्यता हमारी समझ में कैसे आसकती है ? ऐसी अवस्था में हमारे नाममात्र के शिक्षित हिन्दू भाई शिवाजी को इसी प्रकार समझें, इसमें कोई आश्चर्य नहीं । हमें हिन्दुस्थान का इतिहास पढ़ाया जाता है परन्तु शिवाजी का इतिहास नहीं, मानो शिवाजी हिन्दवासी थे ही नहीं । अंगरेज़ों का इतिहास ही क्या पूर्णतया इस हिन्द का इतिहास है? शायद ऐसाही होगा क्योंकि हिन्दुस्थान के इतिहास में मराठे, राजपूत, और सिक्ख इनके बारे में बहुत ही कम रहता है । जिस इतिहास में उत्तेजक जीवन भरा है उसके बारे में तो हम नितान्त अज्ञानान्धकार में रहें परन्तु अंगरेज़ों की एक एक लड़ाई के वर्णन में शिरोत्राण से लेकर पादत्राण और ढाल तलवार तक की बातें हैं । हमारे इतिहास की ऐसी दशा देखकर किस सच्चे पुरुष को दुःख न होगा ? परन्तु हाय हम कर ही क्या सकते हैं ? शिवाजी को डाकू कहो तब भी हम पढ़ेंगे और लुटेरा कहो तब भी हम पढ़ेंगे ! हमारा इतिहास हमें जिस रंग में भी दिखलाया जावे वैसे ही हम देखने को तैयार हैं !!! परन्तु हमें तो इस महान् पुरुष की योग्यता समझ लेना आवश्यक है और इसलिए रागद्वेष इत्यादि मनोविकार दूर कर उसके चरित्र का मनन करना उचित है ।

ऊपर कह ही चुके हैं कि शिवाजी की योग्यता उसके चरित्र के पढ़ने के विनोद और उसके मनन के बिना नहीं जानी जा सकती क्योंकि दुनिया के इतिहास में इस महान् पुरुष का चरित्र इतिहास से बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध रखता है । जहां पहिले स्वातंत्र्य के बदले परतंत्रता, स्वधर्म के बदले परधर्म, शान्ति के

बदले अशान्ति, स्वजाति के बदले परजाति, न्याय के बदले ज़ुल्म ऐसी हज़ारों बातें थीं उन सबको बदलकर उनकी जगह स्वातंत्र्य, स्वधर्म, शान्ति, स्वजाति, न्याय, इत्यादि प्रस्थापित किये गये, वहां का इतिहास कितने अधिक महत्व का न होना चहिये? और जिस पुरुष ने यह महान् कार्य्य किया उसकी योग्यता कितनी अधिक न होनी चाहिये? वाटरलू की लड़ाई केवल दैववशात् वेलिंगटन ने जीत ली पर वेलिंगटन का आज कितना महत्व है! सिकंदर ने क्षणभर परजातियों पर विजय प्राप्तकर राज्य किया भी नहीं था कि जल्द पूर्व दशा ज्यों की त्यों आगई परन्तु सिकंदर उतने ही से महान् हो गया। क्षण भर युरोप में ढोल पीट कर सेंट हेलिना में शत्रु के जेलखाने में प्राण दे देने से नेपोलियन का चरित्र आश्चर्य-कारक होगया पर जिस पुरुष ने नवीन 'इतिहास' रचा, जिस पुरुष ने नवीन देश बनाया, जिस पुरुष ने नवीन राष्ट्र बनाया, जिस पुरुष ने नवीन जोश पैदा किया, जिस पुरुष ने स्वधर्म का उद्धार किया, जिस पुरुष ने निःसीम स्वार्थत्याग का उदाहरण सामने रक्खा, उसका महत्व हमें हमारे सहृदय परद्वोपस्थ भाई लुटेरा, डाकू इत्यादि, शब्दों से वतलाना चाहते हैं। यह देख कर इनकी सहृदयता के विषय हमें शंका होने लगती है!!! हमारे इस मराठी इतिहास का महत्व स्वयं प्रकाशमान है पर हमारी शिक्षा के अधिकारी इस रूप में हमें उसे दिखलाते हैं कि हमें इस इतिहास में कुछ जीव ही नहीं दीखता। शिवाजी ने हमारे महाराष्ट्र में जो नवीन राष्ट्रीय जोश भर दिया, उसकी हमें कल्पना भी नहीं करने दी जाती! उस जोश के कारण प्रत्येक महाराष्ट्रीय एक एक शिवाजी ही होगया था इस बात का हमें बोध भी नहीं होने दिया ज़ाता। शिवाजी और उनके अनुयायियों के स्वदेशाभिमान की बात भी नहीं सुनाई पड़ती! औरंगजेब के समान भूरव्याघ्र अपने दल समेत दक्षिण में आ पहुंचा यह हमें ज्ञात कराया जाता हैं परन्तु मुट्ठीभर मराठों ने उसके दांत कैसे खट्टे किये इसका कुछ भी परिचय हमें नहीं कराया जाता। नाना फडनवीस के समय कैसे स्वदेशाभिमान से बीर भाइयों ने अंगरेज़ों को शरण दी थी, इसपर वेतरह परदा डाल दिया जाता है, और समय समय पर महाराष्ट्र वीरों ने शिवाजी महाराज का स्मरण कर जो स्वदेशाभिमान की ज्योति दिखलाई थी उसका प्रकाश हम तक नहीं आने दिया जाता! परन्तु इन सब में मराठी इतिहास का महत्व और शिवाजी महराज की योग्यता ठूंस ठूंस कर भरी है। जिस किसी को यह जानना हो, उसे मराठी इतिहास का विशेष रूप से अवलोकन और मनन करना चाहिये।

उनकी आखों की ज्योति नष्ट हो गई है, कानों में मैल भर गई है, हृदय के परदे बन्द हैं और मन विचारहीन हो गया है इसलिए मराठी इतिहास के निर्माता को लुटेरा, डाकू कहने के सिवा, और कुछ नहीं आता! नहीं तो यह स्पष्ट है कि लुटेरे कभी ऐसा दीर्घकालीन राज्य नहीं कर सकते कि जिससे देश का नक्शा तमाम बदल जावे। शिवा जी कुछ हैदर, टिप्पू, अलीवर्दीखां किंवा निज़ामुलमुल्क नहीं थे। ऐसे होते तो उनका भी राज्य कल ही रसातल को चला जाता। महाराष्ट्र पर हिन्दुस्थान के एक छत्रधारी बादशाह की फौज ने बारंबार आक्रमण किया पर मरहठों ने हमेशा उन्हें हतवीर्य कर पीछे लौटा दिया! आखिरकार बादशाह स्वतः अपनी तमाम सेना ले दक्षिण में आया और बराबर पच्चीस साल तक मुट्ठीभर मरहठों से लड़ता रहा पर उसने क्या किया? मुश्किल से मृत्यु के समय अपने अजीत बैरियों के हाथ फँसते २ बचा और यह उद्गार निकाला कि, "मैंने अपने जन्म में कुछ न किया!" क्या यह लुटेरों का काम हो सकता है अथवा इसमें कुछ और तथ्य है? अलीवर्दी खां, टिप्पू, आदि तो सचमुच लुटेरे थे और जब तक वे स्वतः

योग्य रहे और जबतक उनके हाथ में बल रहा तब तक ही उनका राज्य रहा! उनके शरीरपात के साथ उनके राज्य का भी पतन हुआ! पर शिवाजी के अनन्तर कठिन २ कठिनाइयों से बचते हुए वह राष्ट्र स्वतन्त्र ही रहा है और अंगरेज़ों को भी कहना पड़ता है कि यदि यह राष्ट्र सब से पहले ही स्थापित हुआ होता तो शायद हिन्दुस्थान का इतिहास ही बदल जाता और अंगरेज़ों की क्या दशा होती यह वे नहीं कह सकते! जिसने ऐसा राष्ट्र बनाया उसकी योग्यता का विचार करना ज़रूरी है। मुसलमानों के आक्रमणों से इस राष्ट्र में कमज़ोरी न आई नित्य नवीन जोश ही आता रहा। क्षण में मालूम होता था कि मुट्ठी भर मरहठे अब जाते हैं पर क्या? दाबी हुई हवा के समान वे दुगने वेग से उठते थे और उस वेग के सामने कितनों ही को सिर नीचा करना पड़ता था। तार पर के खेल करनेवालों के समान उनकी ओर जो देखता वह यह ही कहता कि अब गिरता ही है पर क्या? सारा खेल कुशलता से दिखाकर उन लोगों ने औरंगजेब सरीखे कट्टर वैरियों से भी तारीफ करवाई!

क्या यह लुटेरों का काम हो सकता है?

अंगरेज़ इतिहासकार कहा करते हैं कि दैववशात् उसे यश मिलता गया और मुसलमानों ने बारंबार मूर्खता दिखलाई इस कारण वह राज्य स्थापित करने पाया। ऐसा दैव सब को ही फलीभूत होता तो क्या न होता? दैववशात् द्रव्य मिल गया, दैववशात परीक्षा पास करली यदि ऐसा कहें तो साधारण लोग विश्वास भी करलेंगे पर दैववशात् राज्य का उद्धार कर लिया ऐसा कहें तो अनपढ़ भी तुरन्त मूर्ख की संज्ञा से हमें बोध करेंगे। यही बात इन इतिहासकारों की है। अफ़ज़लखां के समान कट्टर वीरों को जिसने मृत्यु के मुख में भेज दिया उसकी योग्यता समझना हो तो अफ़ज़लखां की ही योग्यता जानना ज़रूर है। इस कट्टर मुसलमान को आदिलशाही के दरबार ने भेजा था। किस लिए? शिवाजी को पकड़कर लाने के लिए और उसने प्रतिज्ञा की थी कि मैं शिवाजी को जैसे होगा पकड़ कर ज़रूर लाऊंगा। उसका शारीरिक बल, मुसलमान होने के कारण उसका पक्का जोश, हिन्दू ने बलवा किया इस कारण उसका अप्रतिम क्रोध, आदिलशाही दरबार का वह पहला सेनापति इत्यादि बातें देखने से यही मालूम होता है कि शिवाजी उससे जीत न सकते थे। परन्तु शिवाजी ने अफ़ज़लखां को ज़मीन दिखा दी और उसकी सेना खदेड़ते २ बीजापूर भेज दी। हिन्दू का मुसलमान से लड़ने को और झगड़ा करने को तैयार होना और वह काम यशःपूर्वक बीजापूर के राज्य के विरुद्ध करना, यह बात हर मुसलमान के लिए बड़े क्रोध और द्वेष की बात थी। परन्तु शिवाजी का जोश जब तक मरहठों में भरा है तब तक मुसलमान उनसे किस प्रकार जीत सकते हैं? इस विजय में शिवाजी की पूर्ण योग्यता दीखती है।

पुनरपि शिवाजी की योग्यता इतनी ही बात से स्पष्ट है कि जब वे दिल्ली से लौटे, तो उनके राज्य में कुछ हेरफेर न हुआ, कहीं भी यह न मालूम पड़ता था कि उनकी गैरहाज़िरी में कुछ गड़बड़ हुई। सब काम ऐसा हो रहा था मानो वे स्वतः वहाँ राज्य कर रहे थे। इस समय शिवाजी ने संधि क्यों की इसका निर्णय करना कठिन है। जिसने अफजल खां और शाइस्ता खाँ के समान सेनापतियों को मार भगाया, जिसके मुसरवा जी समान स्वार्थत्यागी वीर ने केवल तीन सौ मावले लेकर दिलेर खां को उसके हजारों सैनिकों सहित मार भगाया था, वही सन्धि करने को तैयार हो यह आश्चर्य तो अवश्य मालूम होता है परन्तु हमें तो इसमें शिवाजी की पारदर्शी बुद्धि दिखाई देती है। एक तो जयसिंह और दिलेरखाँ ये बड़ी भारी तैयारी से आये, कहीं न जीत हुई तो "समूलंचै विनश्यति", दूसरी

बात यह थी कि जयसिंह का हिन्दू राजा के सामने रणमें खड़ा होना ठीक न था। शिवाजी को हिन्दुओं से हिन्दुस्थान लेना नहीं था, लेना था मुसलमानों से, इसलिए अगर जयसिंह से वे लड़ते तो शायद इतनाही होता कि और हिन्दू राजा शिवाजी के गर्व से सहानुभूति न रखते। शिवाजी के अबतक के कार्य्य से कई हिन्दू राजाओं को यह आशा उत्पन्न हो गई थी कि शायद यह हिन्दुस्थान का मुसलमानों से उद्धार करें। इसकारण शिवाजी को वे प्रेम की दृष्टि से ही देखते थे, जयसिंह से लड़ने से यह प्रेम दूर होने का डर था। परन्तु सब हिन्दुओं को अपनी ओर कर लेने की उनकी पूर्ण इच्छा थी और जयसिंह जैसे पराक्रमी और बली राजा को अपने विरुद्ध करलेना वे कभी ठीक नहीं समझते थे। संधि कर युक्ति और अन्य उपायों से अपनी ओर उसे कर लेने का भी शायद शिवाजी का विचार हो। तीसरी बात यह है कि संधि करने से उन्हें दिल्ली जाने का अवसर मिलता था। वहां जाकर राजपूत राजाओं को अपनी ओर मिला लेना और औरंगजेब के राज्य के बल की कुछ कल्पना कर लेना भी शायद उनका विचार हो सकता है। ये तीनों बातें ऐसी हैं कि इस संधि के कारण विचारवान पुरुष शिवाजी को दोष न देंगे। परन्तु यह स्पष्ट है कि शिवाजी के दिल्ली जाने से केवल उन्हीं पर ही नहीं वरन् सारे महाराष्ट्र की आशा पर वज्राघात हुआ था। यदि औरंगजेब उन्हें कत्ल करने पर उतारू हो जाता, तो कोई क्या कर सकता था। उस समय महाराष्ट्रों में इतनी शक्ति उत्पन्न नहीं हुई थी कि वे औरंगजेब की महती सेना से टक्कर लेते। राजपूतों में भी इतना ज़ोर न था कि औरंगजेब से किसी प्रकार बदला लेते। औरंगजेब ने शिवाजी को क्यों जीता रक्खा, इस बात का निर्णय करना कठिन है। परन्तु ऐसे समय में शिवाजी की बुद्धि, उनका अप्रतिम धैर्य और उनकी अगाध कल्पना आदि गुण देखकर मन आश्चर्यरूपी समुद्र में गोता खाने लगता है। और देखिये जाने के पहिले राज्य की व्यवस्था भी उन्होंने कितनी उत्तम कर दी थी कि स्वयं उनके न रहने पर भी राज्य का काम ज्यों का त्यों चलता रहा। हेरफेर हमें कहीं नहीं मालूम होता है। उस समय उन्होंने राज्य की व्यवस्था इसी विचार से की होगी कि हमारा कहीं दिल्ली में कुछ हो भी जाय तो भी महाराष्ट्र के स्वतंत्र राज्य की पताका ज्यों की त्यों फहराती ही रहै। इस विषय का पूर्ण मनन करने पर इस महापुरुष पर श्रद्धा उत्पन्न हुए बिना रह नहीं सकती।

महाराष्ट्र राज्य पर सब से बड़ा भारी संकट शिवाजी की मृत्यु के अनन्तर आया और इस असाधारण पुरुष की सच्ची योग्यता तभी दिखाई पड़ी। औरंगजेब ने जब देखा कि शाही सेनापतियों के भेजने से मरहठे हाथ नहीं आते तो आखिरकार स्वयं अपनी तमाम शाही सेना समेत दक्षिण में आपहुंचा और एक एक करके सब किले लेने लगा। धीरे धीरे महाराष्ट्र का बहुतसा भाग उसने जीत लिया पर तब भी मराठे हाथ न आये। संभाजी पकड़े गये और उनका औरंगजेब ने बड़ी क्रूरता से खून किया, शाहू और ताराबाई उनके पास कैद थे। सारे महाराष्ट्रीय राज्य भ्रष्ट हो गये थे, पैसा मिलना असंभव हो हो गया था, मराठी सेना अव्यवस्थित हो इधर उधर भटकने लगी थी। ऐसे समय में भी मराठे थोड़े भी न दबे, उलटे जब कभी यह मालूम हो कि अब सर्वनाश होगया, तभी वे फौलाद की स्प्रिंग की तरह दुगने वेग से उठते थे और शाही सेना को मार भगाते थे। आखिर राजाराम अपने प्रधानों सहित जिंजी के किले में जा रहे और वहां से महाराष्ट्र का राज्य करने लगे। देश छोड़ परदेश में मरहठों के राजा जा रहे, पर परतंत्रता स्वीकार न की। इस समय की तुलना अन्यत्र किसी इतिहास में मिलना दुर्लभ है। हाँ और लोगों के इतिहास में ऐसा उदाः

उदाहरण है पर वह इस महाराष्ट्रीय कर्तव्यपालन की समता नहीं कर सकता। सोलहवीं सदी में स्पेन के राजा फिलिप ने डच लोगों को जबर नरेमान कैथोलिक धर्म का अनुयायी करना चाहा। ये प्रोटस्टैंट धर्माभिमानी थे इसलिए इस जुल्मी राजा का जुल्म सहन न कर उन्होंने उसके विरुद्ध बलवा मचाया और स्वतंत्र बन बैठे। किसी को भी मालूम होगा डच लोगों का देश बहुत छोटा है, पर उसपर सेना के बाद सेना आने लगी। यह झगड़ा धर्म के कारण था इसलिए जोश में वह हिन्दू मुसलमानों का लड़ाइयों से कम न था। इनके युद्ध होते रहे स्पेन का राजा बड़ा बलिष्ठ था, उसका राज्य बड़ाभारी था। उसकी सेना कमर कसे हुए तैयार थी, उसके पास कुशल सेनापति थे, और डच लोग सर्वथा हीन थे फिरभी उनके स्वतंत्र मन पर विजय प्राप्त करना कठिन था। इतिहास में ये लोग प्रवीण नाविक के नाम से प्रसिद्ध हैं। अपने टापू से वे समुद्र की लड़ाइयां लड़ते रहे और स्पेन की प्रचंड सेनाएँ उनका आगे कुछ न कर सकीं। आखिर तीस चालिस वर्ष के युद्ध के बाद सन् १६०९ में उनकी स्वाधीनता स्पेन के राजा ने स्वीकार कर ली। यहां यह ख्याल रखना चाहिये कि इंगलैंड की रानी एलिज़बेथ से उन्हें बराबर सहायता मिलती रही। इतिहासकारों का मत है कि अगर यह सहायता न मिलती तो डच लोगों का सर्वनाश कभी का हो जाता। दूसरी बार सत्रहवीं शताब्दी में जब फ्रांस के राजा लुई (चौदहवें) ने उनके देश पर आक्रमण किया तब डच लोगों ने अप्रतिम धैर्य दिखलाया। उनके पास न देश था, न सेना थी, न पैसा था और न सेनापति। ऐसी स्थिति में वे बराबर इस बली राजा की प्रचंड सेना से टक्कर लेते रहे इस बार उन्हें समस्त यूरोप से सहायता मिली क्योंकि उनके विजय पराजय में यूरोप के बहुत से देशों का स्वार्थ सम्मिलित था और उनका स्वतन्त्र रहना उन्हें लाभकारी था। ऐसा ही महान् संकट महाराष्ट्र पर आया था। पर उन्हें किसी प्रकार की सहायता भी मिलनी असंभव थी। महाराष्ट्र के पास के दो राज्य बिजापुर और गोलकुंडा मुगलों ने कभी के निगल लिये थे। और बाकी तमाम देश में मुगलों का राज्य इतना ही नहीं था, खास महाराष्ट्र में मुगलसेना चारों ओर फैल गई थी और मरहठों को अपना देश छोड़ जाना पड़ा था। पर स्वातंत्र्य कायम रखने के लिए वे जिंजी के किले से नाममात्र का राज्य कर रहे थे। इतना भी होकर मरहठे क्या मुगलों के हाथ आये? उलटे मुगल सेना पर ही वे बार-बार आक्रमण किया करते और समय पाकर उनकी फौज़ कत्ल करते और उनका द्रव्य लूट लाते थे। जिंजी के किले के पास जुलफिकर खां के सामने बली और कुशल सेनापति को सात वर्ष घेरा डालकर पड़े रहना पड़ा और अन्त में किले पर अधिकार मिलना भी न मिलने के बराबर होगया। सब खाली! महाराष्ट्र की गवर्नमेंट पर अधिकार हुआ ही नहीं। पच्चीस वर्ष तक औरंगजेब मरहठों का पीछा जगह जगह पर करता रहा पर कुछ हाथ न आया। मरहठों को वह जीत सका ही नहीं कि उसकी आयु पूरी हो गई और शरीर छोड़ने की इच्छा से अहमदनगर जाने समय वह मरहठों के हाथ आते आते जरा ही बच गया नहीं तो इतनी प्रचंड सेना रहते भी उसकी कैद में ही मृत्यु हुई होती। उसके मृत्यु के बाद क्षणभर में महाराष्ट्र मरहठों का हो गया। मराठी इतिहास बड़ा मनोरंजक और बोधपूर्ण है। इतिहास का निर्माणकर्ता कौन है? वह हो महापुरुष शिवाजी! यह जो घटना ऊपर लिखी है, उस घटना के अजीत वीर सब शिवाजी के साथी थे। शिवाजी का जोश ही कुछ ऐसा था कि उनसे जो मिलता वह शिवाजी ही हो जाता था। उनकी मृत्यु के बाद उनका स्मरण मात्र ही पर्याप्त था। केवल स्मरण से ही प्रत्येक महाराष्ट्रीय के

शरीर में ऐसी विलक्षण शक्ति संचार कर जाती थी कि उससे जीते जी जीतना किसी की शक्ति नहीं थी। इस घटना के समाप्त होते तक शिवाजी के साथ के कई वीर मर चुके थे पर शिवाजी का उत्पन्न किया हुआ वह जोश जबतक महाराष्ट्र में मौजूद था तबतक शिवाजी किंवा उनके साथी रहे या मरे तो भी कोई ज़्यादा अन्तर नहीं होता था। उस महाव्यक्ति की योग्यता न जानें कितनी अधिक होनी चाहिये जिसका केवल स्मरणमात्र सब ऐहिक बिकारों से दूरकर प्रत्येक महाराष्ट्रीय को वीरयोगी बना देता था? वह महापुरुष न जाने कैसा होना चाहिये जो मरकर भी अपने अनुयायियों से अपना कार्य करा रहा था? उस महाराष्ट्रीय में कौनसी शक्ति रही होगी जिसने केवल ३२ वर्ष ही में मुसलमानों के समान बलिष्ठ शत्रु से अपना देश मुक्त कर स्वराज्य की स्थापना की?

महापुरुष।

[लेखक—श्रीयुत नारायणप्रसाद अरोड़ा।]

जिस समय हम इस गहन विषय पर विचार करते हैं, उस समय हमारे मन में ये प्रश्न उठते हैं कि महापुरुष किसे कहते हैं? उन्होंने हमारे सांसारिक व्यवहार में क्या परिवर्तन किया है? उन्होंने संसार के इतिहास में क्या भाग लिया है? लोगों ने उनके विषय में क्या विचार निश्चित किया? उन्होंने क्या विशेष कार्य किया? इत्यादि, इत्यादि। यह विषय बड़ा गम्भीर है और हम इन प्रश्नों का यथार्थ उत्तर देने में असमर्थ हैं। परन्तु तो भी अपनी शक्ति के अनुसार हम इन प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयत्न करेंगे। यह विषय उतना ही बड़ा है जितना सारे विश्व का इतिहास। विश्व के इतिहास में वे ही बातें हैं जो मनुष्यों ने की हैं और महापुरुषों का इतिहास ही संसार के कार्यों का मूल है। महापुरुष ही लोगों के अगुआ रहे हैं। उन्होंने संसार को उसके वर्तमान रूप में ढाला है। उन्हीं ने उसे ऐसा बनाया है। साधारण लोगों ने जो काम किये हैं उनके बनाने तथा बिगाड़नेवाले वे ही रहे हैं। जो कुछ संसार में प्रगट रूप से दिखाई देता है वह महापुरुषों के उन विचारों का मूर्तिमान स्वरूप है जो उन्होंने संसार में प्रकाशित किये हैं। यदि सच पूछो तो इन लोगों के कार्यों का इतिहास ही सारे संसार के इतिहास की जान है। मनुष्य जाति का इतिहास, वास्तव में संसार के महापुरुषों तथा उनके बड़े बड़े कार्यों का इतिहास है। महापुरुष ही मनुष्य जाति के उदार और सच्चे नेता हैं। ऐसे ही लोग अंधकारमय संसार को सूर्य के समान प्रकाश देनेवाले हैं। वे ही मनुष्यजाति की आत्मा हैं। उनके बिना मनुष्यजाति निर्जीव है। वे ही संसार के स्रष्टा हैं। वे ही संसार के बड़े बड़े कार्यों का सूत्रपात करनेवाले और उदाहरणरूप होते हैं। संसार में जो कुछ मनुष्यकृत या मनुष्य की कल्पनाशक्ति के अन्तर्गत है वह सब वास्तव में महान पुरुषों के विचार का निदर्शन या आदर्शमात्र है। महान् पुरुष संसार में बिजली की तरह चमक कर जड़ों में भी जान

डाल देते हैं। वे अपनी विद्युच्छक्ति से मनुष्य की मुर्दादिली में उसी बिजली की आग में उसे जला कर ऐसी गरमी पैदा कर देते हैं जिससे जनसमुदाय तेजस्विता से चमक उठता है।

प्रत्येक महापुरुष संसार में कोई न कोई उद्देश्य पूरा करने के लिए ही आता है। महापुरुषों के साथ हम किसी प्रकार का भी सम्बन्ध करें, हमें अवश्य लाभ होगा। चाहे हम उनके साथ रहें, चाहे हम उनके वाक्यों को पढ़ें और चाहे हम उनके जीवन-चरित्र की ओर अपनी दृष्टि डाल। महापुरुष प्रकाश का एक जीता जागता स्रोत है जिसके समीप रहने में बड़ा आनन्द मिलता है। उससे संसार प्रकाशित होता है और अन्धकार दूर होता है। यह प्रकाश दीपक के प्रकाश के अनुसार नहीं होता किन्तु आकाशमंडल के सूर्य के सदृश होता है। उससे नवीनतारूपी प्रकाश का स्रोत सदैव बहता रहता है। उसकी उपस्थिति में सब लोगों को बड़ा आनन्द मिलता है। कोई भी उसके समीप रहने से अप्रसन्न नहीं रहता। उसके संसर्ग में जो समय व्यतीत होता है कभी उसका पछतावा नहीं होता।

जो मनुष्य पदार्थों की सुन्दरता को जानता है उसी को हम कवि, चित्रकार या प्रतिभाशाली कहते हैं। जो मनुष्य स्वतन्त्र विचार करने की शक्ति रखता है उसे हम विलक्षण बुद्धि का आदमी कहते हैं। ये महापुरुष संसार के विविध विषयों को हमारे सामने प्रकाशित करने के लिए आते हैं। इस विचार को सामने रख कर हम उनकी भिन्न २ श्रेणियां बना सकते हैं। कहीं महापुरुष देवता समझा जाता है और कहीं पैगम्बर, कहीं वह कवि माना जाता है और कहीं पुजारी, कहीं लोग उसे विद्वान् मान कर पूजते हैं और कहीं राजा। परन्तु सब से पुराना प्रथा महापुरुषों को देवता मानने की है। कुछ लोगों का ख़याल है कि महापुरुषों को देवता की पदवी देना केवल पुरोहितों की चालबाज़ी है, परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। जब किसी मनुष्य में कोई असाधारण बात होती है तब लोग कहते हैं कि यह मनुष्य सब से बड़ा अर्थात् महान् है। यही विचार हर जगह और हर समय महापुरुषों के सम्बन्ध में अप्रत्यक्ष रूप से रहता आया है। जब किसी पुरुष को हम अपने से बड़ा मान लेते हैं तब यह स्वाभाविक है कि हम उसकी आज्ञा का पालन करें। हां, यह सम्भव है कि हम किसी अयोग्य ही आदमी को बड़ा मान बैठें। इसे मानने और न मानने में भूल हो सकती है परन्तु आज्ञापालन तो करना ही पड़ता है।

वर्तमान समय में महापुरुषों को देवता मानने की प्रथा उठ गई है। परन्तु महापुरुष की पूजा अवश्य होती है और भविष्यत् में भी होती रहेगी। पूजा का रूप सदैव बदलता रहता है। जब हम किसी महापुरुष की प्रतिष्ठा करते हैं तब हमारे मन में भी तुरन्त ही यह विचार उत्पन्न होता है कि हम भी कुछ ऊपर की ओर जा रहे हैं। यह सम्भव नहीं है कि हम लोगों के हृदयों से यह बात बिलकुल निकाल दें कि वे अपने से श्रेष्ठ लोगों की मानमर्यादा करना छोड़ दें। अपने से बड़े का मान करने का गुण मनुष्य में स्वाभाविक रूप से विद्यमान है। ग़लती केवल बड़ों के चुनने में होती है। एक दुनियादार आदमी अपने से अधिक धनी को श्रेष्ठ समझता है। परन्तु वास्तव में श्रेष्ठ कौन है यह जानना कठिन है।

कुछ लोगों का ख़याल है कि समय महापुरुष बना लेता है। परन्तु यदि ऐसा होता तो कोई समय नाश न हुआ होता। यदि समय में इतनी शक्ति होती कि वह ऐसे महापुरुष पैदा कर सके जो अपनी बुद्धिमत्ता से समय को ठीक रास्ते पर ले आवें तो आज हमें संसार

की ऐसी शोचनीय अवस्था न दिखलाई पड़ती। मेरा ख़याल तो यह है कि समय तो सूखा हुआ ईंधन है और महापुरुष एक स्वर्गीय चिनगारी है। समय प्रतीक्षा करता रहता है कि कब महापुरुषरूपी चिनगारी आवे और संसार में प्रकाश फैले। सूखी लकड़ियों को उस चिनगारी की ज़रूरत तो होती है परन्तु वे उसे पैदा नहीं कर सकतीं।

औरंगज़ेब के पत्र।

[लेखक—पं० शिवनारायण द्विवेदी।]

भारतवर्ष की सोलहवीं शताब्दी के इतिहास में औरङ्गजेब का नाम दिल हिला देनेवाली क़लम से लिखा गया है। इसके राज्य में हिन्दू और मुसलमानों के जो निर्दोष खून हुए हैं वे इतिहास जाननेवालों से छिपे नहीं हैं। इसने राज्यासन प्राप्त करने के लिए जो प्रपञ्च रचा, भाइयों को धोका दिया, बाप को क़ैद किया और मुल्लाओं को क़तल किया यह सब एक क्रूर मायावी का खेल सा है। जब औरंगजेब का प्रताप अस्त हुआ तब उसके बेटे ने उसे क़ैद करके सिंहासन ले लिया। उस समय इसकी अवस्था अस्सी से अधिक थी। कारागार से जो पत्र इसने अपने पुत्रों के नाम भेजे, उनकी नक़ल हम यहां देते हैं:—

पहिला पत्र।

"शाहजादे कामबख़्श! मेरे गले के हार, जब ईश्वर की आज्ञा और उसकी इच्छा के अनुसार मुझ में शक्ति थी तब मैंने तुम्हें ज्ञान और विचार के उपदेश दिये थे किन्तु तुम ने बुद्धि के परिपक्व न होने के कारण उनपर जितना ध्यान देना चाहिये नहीं दिया; और तुम्हें जितनी शिक्षा प्राप्त कर लेनी आवश्यक थी न की। इस समय मेरे जाने का नक्कारा बज रहा है। मैंने अपने जीवन को व्यर्थ खोया है, इसीलिए अब हृदय दग्ध हो रहा है; पर अब पछताने से क्या होता है? अब मुझे मेरे विचार-शून्य कृत्य और पापों का फल मिलना ही चाहिये। मैंने पैदा होके कुछ नहीं किया इसलिए ईश्वर चकित होगा, मैं व्यर्थ आया और व्यर्थ जाता हूं। मेरे पापकर्मों पर पछताने से कुछ न होगा क्योंकि हज़ारों बुरे कामों से मैंने अपनी आत्मा को मलिन कर लिया है। मुझे चार दिन से ज्वर आता था पर अब वह नहीं है। मैं जिधर दृष्टि करता हूं, ईश्वर का साक्षात् होता है, उसके सिवा दूसरा कुछ नहीं दीखता। मेरे सेवक नफ़र और परिवार का क्या होगा, इस चिन्ता से इस समय कोई फल नहीं है। धिक्कार है इस लोभ और मायाजाल को जिसके कारण मैं न समझ सका कि मेरी क्या गति होगी। मेरी कमर टूट गई है, पांव अशक्त होगये हैं, मुझ में हिलने डुलने और बोलने की शक्ति नहीं है। केवल साँस लेता दिन पूरे कर रहा हूं। मैंने घोर पाप किये हैं जिनके लिए ईश्वर क्या दण्ड देगा यह वही जाने। मेरे मरने के बाद मेरी सेना की व्यवस्था मेरे लड़कों को करनी है—मैं ईश्वर को साक्षी समझ के सब योग्य अधिकार अपने वारिसों को देता हूं। अज़ीमशाह मेरे पास है और इससे मेरा बड़ा प्रेम था। इसके प्राणों का नाश मैंने नहीं किया और इसीलिए इसका अपयश मुझ पर नहीं है। मैं संसार को छोड़े जाता हूं और तुझे, तेरे शाहजादे और तेरी मा

को ईश्वर की रक्षा में छोड़े जाता हूं। वही तुम्हारी रक्षा करे। मृत्युसमय की यातना और दुःख अब एक से एक बढ़कर मालूम हो रहे हैं। बहादुरशाह जहां था वहीं है पर उसका पुत्र हिन्दुस्थान में आया है, बेदारबख़्त गुजरात में है, हेतउलनिशा पर आजतक कोई दुःख न आया था इसीलिए वह दुःखों में डूब गई है। उदयपुरी बेगम ने बहुत काम किया है और वह मेरे दुःख से दुःखी है और उसकी इच्छा मेरे ही साथ जाने की है, पर जो भावी है वही होगी। जो तुम्हारे साथ कुटुम्बी या दरबारी लोग बुरा बर्ताव करें तो उनके साथ बुरी तरह पेश न आना किन्तु अपना काम निकालने के लिए उनके साथ सभ्यता का बर्ताव करना— इस गुण की सदा आवश्यकता होगी। समय देख के बातें करना। अपनी शक्ति के अनुसार सब कामों में हाथ लगाना। सिपाहियों का वेतन चढ़ गया है इसे ध्यान में रखना। दारा ने जो उनके बैठे २ वेतन देने की बान डाल दी थी और हमारे यहां थोड़ा मिलता है इसीलिए वे अप्रसन्न हैं। अब मैं जाता हूं। मुझसे जो कुछ बुरा काम हुआ है वह तेरे ही लिए हुआ है, इसलिए मेरे प्रति अपने चित्त में घृणा न करना और मैंने कभी तुम्हें कड़ी शिक्षा दी हो या और कोई दुःख पहुंचाया हो तो उसे भूल जाना क्योंकि उससे अब कोई लाभ नहीं है। अब उसके लिए प्राण दे देने से भी कुछ न होगा। अब मैं अनुभव कर रहा हूं कि मेरे प्राण इस शरीर से निकल रहे हैं। हाय!"

दूसरा पत्र।

"शाहज़ादे शाह अज़ीमशाह! तुम्हारा कल्याण हो। मेरा मन तुम्हीं में है। अब मैं वृद्ध होगया, और कमज़ोरी ने मुझे घेर लिया है। मेरे शरीर की सारी शक्ति नष्ट होगई है। इस संसार में जैसे ख़ाली हाथ आया था वैसे ही ख़ाली हाथ जानेवाला हूं। मैं पैदा क्यों हुआ और मुझ से क्या अच्छा काम बना यह मैं नहीं जानता, पर जो क्षण सुख में बीता उसके पीछे दुःख होना अवश्यम्भावी था। मैंने अपने राज्य की रक्षा नहीं की और प्रजा का पालन नहीं किया। मेरा बहुमूल्य जीवन व्यर्थ ही गया। मेरी बुद्धि ने मुझे जैसी प्रेरणा की मैंने वैसाही किया। मुझ में भले बुरे सोचने की बुद्धि है पर मेरे अविवेक ने उसे नहीं देखा। मैंने यह कभी नहीं सोचा था कि जीवन क्षणिक है, परन्तु बाहर निकला हुआ साँस वापिस नहीं लिया जाता, इसलिए मेरे कल्याण की मुझे आशा नहीं है। यद्यपि शारीरिक ताप अब शान्त है पर शरीर में केवल अस्थिचर्म मात्र शेष है। प्यारा शाहज़ादा कामबक्स बीजापुर गया है किन्तु मैं उसे अपने पास ही समझ रहा हूं। मेरा प्यारा पौत्र ईश्वर की कृपा से हिन्दुस्थान में आया है। जीवन पानी के बुदबुदे और काँच की कलई के समान है। शहन्शाह के मरने के बाद भी कोई उसका स्वामी होगा, यह सदा याद रखना। इस संसार में मैंने अपने कर्तव्य को अच्छी तरह से पूरा नहीं किया, किन्तु संसार की असारता से मैं अपने को अनभिज्ञ नहीं समझता। अब मुझे यही भय है कि मेरा छुटकारा कैसे होगा और न्यायपरायण ईश्वर के सामने मेरी क्या गति होगी? यद्यपि मैं यह जानता हूं कि ईश्वर दयालु है और उस पर मेरी बहुत श्रद्धा है; परन्तु मेरे घोर और अक्षम्य पापों के बदले वह दयालु अपनी दयादृष्टि कैसे करेगा यह नहीं जानता? इसी भय से मैं कांप उठता हूं। मेरे मरने के बाद मेरी छाया भी न रहेगी। चाहे कुछ भी हो, अब मैंने अपनी जीवननौका मृत्यु के अगाध समुद्र में छोड़ दी है; अब वह चाहे किसी प्रकार की यातना, विपत्ति या भय की ऊंची लहरों से टकरावे, उछले या टूट जावे, इसकी मुझे चिन्ता नहीं। मेरे पीछे मेरे पुत्रों को विजयी बनानेवाला सर्वशक्तिमान ईश्वर है, किन्तु उन्हें अपने

कर्तव्यपालन से कभी विमुख न रहना चाहिये। मेरे प्यारे पोते बेदारबख़्त पर दैवी कृपा बनी रहने के लिए मैं प्रार्थना करता हूं। यद्यपि बेदारबख़्त से मैं अब न मिल सकूंगा पर मिलने की इच्छा बहुत थी। मेरी तरह शाहज़ादी बेग़म साहबा बहुत व्याकुल हैं, किन्तु उनके चित्त में क्या २ भरा है, यह परमात्मा ही जाने। स्त्रियों के मूर्ख और अस्थिर विचारों में सिवा निराशा के और है ही क्या? ये सब मेरी अंतिम शिक्षाएं हैं। सलाम! सलाम!! सलाम!!!"

तीसरा पत्र।

"शाहज़ादे अज़ीम! तुम्हें और तुम्हारे प्यारों को शान्ति मिले। मैं बहुत निर्बल होगया हूं, सब अङ्ग शिथिल होगये हैं। जब मैं पैदा हुआ था तब मेरे आस पास बहुत लोग थे; पर अब मैं अकेला जाता हूं। मैं यह नहीं जानता कि इस दुनिया में मेरा आना क्यों और कैसे हुआ? मेरा जितना समय परमात्मा की सेवा के बिना गया है उसके लिए मैं पछताता हूं। मैं इस देश और लोगों में रह के अपना ज़रा भी कल्याण न कर सका। मेरा जीवन व्यर्थ गया। परमात्मा मेरे ही भीतर है परन्तु मेरी अन्धी आंखों ने उसकी अगाध शक्ति का विकाश न पाया। जीवन क्षणिक है और बीता हुआ समय फिर नहीं आता। मुझे परलोक में भी अपनी भलाई की आशा नहीं है। शरीर की विभूति चली गई, अब केवल अस्थिचर्म मात्र शेष है......... घबराई हुई सेना की जो अवस्था होती है वही मेरी है। मेरा हृदय ईश्वर से विरक्त और अशान्ति का स्थल है। उसका राज्य कुछ है या नहीं मेरा हृदय यह नहीं जानता। इस दुनिया में आते समय मैं अपने साथ कुछ भी नहीं लाया था पर अब अपने साथ पाप की गठड़ी ले जाता हूं। मैं नहीं जानता कि मुझे क्या दंड भोगना पड़ेगा। चाहे मुझे परमात्मा की दया और कृपा पर कुछ विश्वास होता हो किन्तु मैं अपने पापों के लिए पछता रहा हूं और जब स्वयं मैंने बहुतों की आशाएं निष्फल कीं तब मैं दूसरे से अपनी आशाएं पूरी होने का कैसे विश्वास करूं? जो कुछ होना है वह हो, मैंने अपनी जीवन नौका मृत्यु के समुद्र में छोड़ दी है............सलाम! सलाम!!"

चौथा पत्र।

"कामबख़्श! मेरे हिये के हार!......अब मैं अकेला जाता हूं। तुम्हारी निराधार स्थिति के लिए मैं चिन्तित हूं पर इस चिन्ता से अब क्या होगा? मैंने संसार को जो २ दुःख दिये हैं, जो २ पाप किये हैं, जो २ खोटे काम किये हैं इन सब का परिणाम अपने साथ ले जाता हूं। आश्चर्य है कि मैं जब संसार में आया था तब मेरे साथ कुछ भी न था किन्तु अब पाप का पहाड़ ले जारहा हूं!.........मैं जहां जाता हूं केवल ईश्वर का भान होता है...... मैंने बहुत पाप किये हैं किन्तु मुझे क्या दण्ड देना सोचा गया है यह मैं नहीं जानता...... मुसलमानों के निर्दोष खून के छींटे मेरे सिर पर पड़े हैं। मैं तुम्हें और तुम्हारे पुत्र को ईश्वर की छाया में छोड़ता हूं और यह अन्त में सलाम करता हूं। मुझे बहुत दुःख होता है तेरी बीमार मा उदयपुरी बेग़म मेरे साथ जायगी......शान्ति।.........हाय दुःख......!"*

---

* श्रीयुत इच्छाराम सूर्यराम देसाई के अनुवाद किये हुए पत्रों के आधार पर लिखित। लेखक।

बेलजियम की रानी।

[लेखक—श्रीयुत चन्द्रलाल गुप्त बी० ए०, एल० एल० बी० ।]

यूरोप के महायुद्ध के सम्बन्ध में कौन नहीं जानता कि बेलजियम सरीखे छोटे से शान्तिप्रिय तथा स्वाधीन राज्य पर निष्पक्षता प्रकट करने पर भी जर्मनों ने दल-बल सहित चढ़ाई कर नादिरशाही दिखा ही दी। जो राज्य आज से पांच महीने पहिले सुखी, सम्पन्न और स्वतंत्र था उसे एक ही महीने के बीच में जर्मनों के अधीन होना पड़ा है। यहां के नगरों और ग्रामों को नष्ट भ्रष्टकर और निस्सहाय बालक, बालिका और स्त्रियों पर शस्त्र प्रहार कर जो जो अत्याचार जर्मनों ने उस देश में किये हैं, उनसे जर्मन सभ्यता पर ऐसा कलङ्क लगा है कि यह सहस्र वर्ष के प्रत्युपकार और पश्चात्ताप से भी दूर न होगा। जो हो, वीर बेलजियनों ने भी उस बीच अकेले ही शत्रुओं का सामना किया और विश्वासघाती जर्मनों के दांत खूब खट्टे किये। भला एक वीर जाति कैसे अपने को दुष्टों के पैरों तले कुचली जाने देती। यदि क्रूर जर्मनों की संख्या पराक्रमी बेलजियनों से अतिशय अधिक न होती अथवा उनको अपने मित्रों से समय पर सहायता मिल जाती तो इस वीर जाति को पराजित करना सहज न होता। घर द्वार छिनने पर भी ये वीर अभीतक शत्रुओं का सामना कर रहे हैं और अपने पराक्रम से संसार को चकित कर रहे हैं। आत्मगौरव की पराकाष्टा, स्वदेश-प्रेम और उसके प्रति आत्मत्याग की महिमा, अल्पशक्तिसम्पन्न होने पर भी अधिक बली शत्रु का साथ न देकर उसके विपरीत हो उसका सामना करने में पराक्रम दिखलाना और अपनी स्थिति का तनिक ध्यान न रखना, इन सब बातों ने इन वीरों की उज्ज्वल कीर्ति को संसार में फैला दिया है और निस्सन्देह यह कीर्ति अटल रहेगी।

इसी वीर जाति के नृप श्रीमान् एल्बर्ट हैं और उनकी धर्मपत्नी श्रीमती एलिज़ेबेथ हैं। इन दोनों ही ने जो आत्मत्याग और धैर्य देश की रक्षा करने में दिखाया है वह सुवर्ण के अक्षरों में लिखे जाने योग्य है। ये वीर नृपति अभी तक स्वयं अपने सिपाहियों के साथ शत्रु का सामना कर रहे हैं। इन्होंने निराशा को अपने पास फटकने तक नहीं दिया। ये युद्ध के असीम कष्टों की ज़रा भी परवा न कर अपने मुट्ठी भर बचे हुए योद्धाओं के साथ खाइयों में रात दिन रहते हैं, उन्हें ढाढस देते हैं, घायल होने पर उनकी सेवा करते हैं, और गोले गोलियों की ज़रा परवा न कर स्वयं युद्ध में अभिमुख होते हैं। उनकी रानी भी उनका साथ दे रही हैं और पाठकों को आगे चलकर मालूम होगा कि ये भी स्वयम् युद्धक्षेत्र में जाकर अपने पति का साथ दे युद्ध में जो कुछ एक अबला से बन सकता है कर रही हैं। इन्हीं रानी के जीवन की कुछ घटनाओं को हम यहां उद्धृत करेंगे।

रानी एलीज़ेबेथ का जन्मस्थान बवेरिया देश है। इनके पिता ड्यूक थियोडार और इनकी माता पुर्तगाल देश की डचेज़ ब्रिगेन्जो इनफेन्टा हैं। बाल्यावस्था से ही इनका स्वभाव अति सरल था। बड़ी होने पर इनको राजघराने की कुमारियों के उपयुक्त शिक्षा दी गई। पढ़ने लिखने के अतिरिक्त इनको गानविद्या, चित्रविद्या आदि ललित कलाओं का भी अच्छा ज्ञान कराया गया। २४ वर्ष की अवस्था में इनका विवाह बेलजियम देश के नृप श्रीमान् एल्बर्ट से ठहरा और सन् १९०० में इनका विवाह होगया। तदनन्तर ये

पति की प्रेमपरायणा और सहयोगिनी हो राजा के साथ प्रजा के सुख में सुखी रहकर आनन्द से दिन बिताने लगीं। इन्होंने पति-सेवा और प्रजापालन का व्रत धारण कर लिया। अनाथालय और चिकित्सालयों में जाकर वे दुःखियों को सान्त्वना देतीं और उनकी सहायता करतीं थीं। वे सब लोकोपकारी संस्थाओं में योग दिया करतीं थीं। राजमहल में ये पति को प्रसन्न रखने के लिए दत्तचित्त हो पतिव्रता स्त्रियों की भांति गृहकार्यों का स्वयं निरीक्षण करतीं थीं। इस बीच में इनके दो राजकुमार और एक राजकुमारी उत्पन्न हुइ। ये अबतक राजगृह के आनन्द में ही रहीं थीं कि सहसा उनपर जर्मन-आक्रमण रूपी वज्राघात हुआ। एकाएक गत जुलाई महीने के अन्त में जर्मन सेना बड़े वेग से उनके देश की सीमा पर टूट पड़ी। दो सप्ताहों के समाप्त होते न होते जर्मन दैत्यों ने इनकी विख्यात राजधानी ब्रूशल्स पर अधिकार कर लिया। तब राजधानी ब्रूशल्स से उठकर एन्टवर्प चली गई। राजगृह के सब लोगों को भी वहीं प्रस्थान करना पड़ा। जब नृपति ने देखा कि उनके सेनानायेकों के लिए शत्रु को रोकना कठिन होगया है उन्होंने अपने सचिव से कहा "अब क्या है, हम स्वयं अस्त्रशस्त्र लेकर अपने वीर सिपाहियों के साथ देश की रक्षा करेंगे" यह सुन रानी बोलीं "प्राणनाथ, देश पर आपत्ति आने पर प्रत्येक देशवासी का धर्म है कि वह देशरक्षा के लिए प्राण देने को तैयार रहे। यदि आपने युद्धक्षेत्र में जाकर देशरक्षा करने की ठानी है तो मेरा भी आपके साथ जाना धर्म है और मैं भी शस्त्र ग्रहण करूंगी"। यह सुन राजा विस्मित हुए तथा प्रसन्न और पुलकित हो कुछ न बोले। तदनन्तर जर्मन सेना ब्रूशल्स पर अधिकार कर एन्टवर्प घेरने की फ़िक्र करने लगी। रही सही बेलजियम सेना भी एन्टवर्प की रक्षा के लिये तैयार होगई। नृपति ने रानी को राजकुमार और राजकुमारी सहित इङ्गलैंड जाने का उचित परामर्श दिया और स्वयं सेना के साथ युद्ध में योग देने का निश्चय किया। रानी ने नपृति का परामर्श मान लिया पर साथ रहने के लिए उनके मन की अभिलाषा बनी ही रही। वे राजकुमारों को ले विलायत चली गईं और राजा युद्धकर्म में प्रवृत्त हो गये। अन्त में शत्रु ने एन्टवर्प भी लेलिया और बची बचाई बेलजियम सेना को समुद्रतट से होकर पीछे हटना पड़ा। फिर भी वीर नृपति और पराक्रमी सेना ने शत्रु को पीठ नहीं दिखाई। इस बीच में बेलजियम के मित्र अंगरेज़ और फरासीसी युद्ध के लिए तैयार हो गये थे। इनके साथ ही आज तक बची हुई बेलजियन सेना अपने नृपति के नायकत्व में जर्मनों से बड़ी बहादुरी से लड़ रही है। इस बीच में रानी ने विलायत में अंगरेज़ों का आतिथ्य स्वीकार कर वहां राजकुमारों के रहने का सुप्रबन्ध कर दिया और फिर उन्हें छोड़ स्वयं राजा का साथ देने के लिए युद्धक्षेत्र में आगई हैं। कहां उन राजभवनों का सुख और कहां दिन रात अग्निवर्षामय युद्धक्षेत्र के महाकष्ट। परन्तु प्रेम और धर्म न जाने किन किन शक्तियों को उत्पन्न करते हैं और अबलाओं से भी दुष्कर से दुष्कर कर्म कराकर असम्भव को सम्भव कर दिखलाते हैं। क्या हम स्वनामधन्य सीता सती सावित्री, कुन्ती, द्रौपदी आदि को कभी भूल सकते हैं? आज फिर रानी एलीज़ेबेथ ने उसी धर्म व सच्चे प्रेम का सहारा ले अपने पति के साथ युद्धक्षेत्र में सच्ची सहधर्मिणी कहलाने का सौभाग्य प्राप्त कर अपने को देशसेवा और देशरक्षा के लिए न्योछावर कर दिया है। वे युद्धक्षेत्र में पति को धैर्य देती हैं, उनकी सहायता करती हैं और दूर रहकर स्वामी की आज्ञा शिरोधार्य कर घायल वीर बेलजियन योद्धाओं की चिकित्सा में लगी रहती हैं। कहा जाता है कि एक बार राजा और रानी आगे बढ़ी हुई सेना से पीछे रह गये,

एक मोटरपर सवार हो व अकेले सेना से मिलने आगे बढ़े पर सेना दूर निकल गई थी । जाते जाते रास्ते में मोटर खराब हो गई । वे आगे न बढ़ सके । चारों ओर उजाड़ मैदान पड़ा था, कोई झोंपड़ी भी न बची था कि जहां सहारा लेते । इधर उधर से शत्रुओं के आने का भय था । परन्तु निर्भीक युगलमूर्ति हतोत्साह न हुई । राजा और रानी दोनों मोटर से उतर पड़े । क्षण भर भी विश्राम न लेकर साधारण कारीगरों की भांति मोटर को ठीक करने में लगगये । विधाता ने उनके उद्योग को सफल किया और शीघ्र ही मोटर ठीक हो गई और वे उसपर सवार हो कुछ ही काल में अपनी सेना से जामिले । पाठक समझ सकते हैं कि इनको नित्यप्रति कितनी ही ऐसी घटनाओं का सामना करना पड़ता होगा । क्षण क्षण पर उनके प्राण संशय में रहते होंगे । इनको समय पर भोजन न मिलता होगा और बड़ा परिश्रम करना पड़ता होगा । परन्तु यह सब इनके लिए कोई बात नहीं । प्रश्न होगा क्यों ? उत्तर पाठक पाठिका स्वयं दें । यह धैर्य और साहस की मूर्तियां देश रक्षा के व्रत में दीक्षित हैं । जब तक ये अपनी प्रजा को स्वाधीन न बना सकेंगे, जब तक ये पुनः अपने देश में शान्ति और सुख स्थापित न कर लेंगे, जबतक ये शत्रु का मस्तक न नीचा कर देंगे अथवा स्वयं ही रणक्षेत्र में वीरगति को प्राप्त न हो जायँगे तब तक इनके लिए इस भूलोक में न शान्ति है और न सुख । भगवान् इनको विजय करे । कहा है "यतो धर्मस्ततोजयः" ।

नवीन स्वाधीनता ।

[लेखक—एक भारतवासी ।]

डाक्टर वुडरो विलसन के नाम से मर्यादा के पाठक अवश्य परिचित होंगे क्योंकि उनका थोड़ा सा हाल और चित्र मर्यादा की किसी पिछली संख्या में निकल चुका है । आप इस समय एमेरिका के संयुक्त राज्य के प्रेसीडेंट हैं और इस पद के ग्रहण करते ही आपने अपनी प्रतिभा और स्वतन्त्र विचारों का जो परिचय दिया है उससे आपका बहुत कुछ नाम हुआ है ।

आपने हाल में एक पुस्तक लिखी है । इसे लंडन की हाल और चैपमैन कम्पनी ने प्रकाशित किया है । वास्तव में यह इनके कुछ व्याख्यानों का संग्रह है । इसका नाम है New Freedom अर्थात् "नवीन स्वाधीनता" । उनके जो विचार-रत्न इस पुस्तक में संगृहीत हैं उनमें बड़े २ उपदेश भरे हैं । इस पुस्तक के लिए उन्होंने स्वयं प्रस्तावना में लिखा है :—"स्वाधीनता चाहनेवालों और देशभक्तों के लिए यह पुस्तक एक निमन्त्रण स्वरूप है ।"

एमेरीका प्रजातन्त्र देश है । किन्तु उसका उद्देश्य क्या है ? डा० वुडरो विलसन अपनी ओजस्विनी भाषा में कहते हैं कि "एमेरिका इस लिए बना है कि वह व्यापार का प्रत्येक प्रकार का विशेष स्वत्व नाश कर दे और मनुष्यों को ऐसी स्वतन्त्रता दे कि सब के साथ समता का व्यवहार हो और सब को अपनी योग्यता और परिश्रम के अनुकूल उन्नति करने का अवसर मिले ।"

जिस देश की गवर्नमेंट का ऐसा शुभ उद्देश्य होगा उसके निवासियों के विचार अवश्य अमूल्य

होंगे, इसमें सन्देह नहीं। इसी आशा से मैंने यह लेख लिखा है। मैं यहां पर यह भी कह देना चाहता हूं कि मैंने उस पुस्तक को हिन्दुस्थानी पहलू से पढ़ा है और उसके सिद्धान्तों को अपने देश के प्रश्नों पर ढाला है। अस्तु।

उन्नति क्या है ?

आजकल हिन्दुस्थान भर में उन्नति की पुकार मच रही है। यह सब कहते हैं कि हम लोग पीछे पड़ गये हैं किन्तु आगे बढ़ने का मार्ग भी हर एक नया ही बतलाता है। कुछ मनुष्यों का मत है कि चाहे कोई भी मार्ग हो आगे बढ़ने से कुछ न कुछ लाभ अवश्य होगा। यदि आगे बढ़ने से कोई मनुष्य आग में गिरता हो तो इसे कदापि उन्नति नहीं कह सकते। हां आगे वह अवश्य बढ़ता है, परन्तु बिना सोचे समझे वर्तमान दशा के परिवर्तन में और उन्नति में बहुत भेद है। किन्तु बहुत से मनुष्य इसको ध्यान में नहीं लाते। वे कार्य जल्दी में कर डालते हैं और फिर बहुत दिनों तक पछताते हैं।

डाक्टर विलसन कहते हैं—"बहुत से मनुष्यों का कहना है कि परिवर्तन हमेशा अच्छा ही होता है। यदि और किसी उद्देश्य से नहीं तो नवीनता के लिये ही वे इसे अच्छा समझते हैं। यह सिद्धान्त बिलकुल ग़लत है क्योंकि उन्नति तभी हो सकती है जब परिवर्तन से कुछ लाभ हो।" हमारे देश में कुछ ऐसे भी लोग हैं जो यह कहते हैं कि भारत की उन्नति तभी हो सकती है जब हमारी पुरानी सब संस्थाएं नष्ट हो जायँ। उनका यह ख्याल है कि जबतक हम में हिन्दुस्थानीपन है तबतक कुछ नहीं हो सकता। इन विद्वानों के मतानुसार नवीन संस्था की रचना सहज है और पुरानी संस्थाओं में सुधार करना कठिन है। इस विषय में डाक्टर वुडरो विलसन का यह कथन है :—

"मेरा विश्वास है कि किसी जाति की प्राचीन और परम्परागत प्रथाएँ उस जाति के लिए वही काम देती हैं जैसे जहाज़ को सीधा रखने के लिए उसकी पेंदी का बोझा काम देता है। तुम एक नये कागज़ के टुकड़े पर यह नहीं लिख सकते कि कल से तुम्हारा जीवन किस प्रकार का होगा। तुम्हें सुधार ऐसा करना चाहिये कि नये और पुराने का भेद न मालूम पड़े और दोनों एक दूसरे से अच्छी तरह मिल जायँ। यदि मैं इस बात को न मानता कि अपनी संस्थाओं की प्रधान और आवश्यक बातें बनाये रखना ही उन्नतिशील होना है, तो मैं सुधारक न हो सकता।"

पाठकगण! इन शब्दों पर ध्यान दीजिये। भारत की उन्नति होगी, किन्तु यदि हिन्दुस्थानीपन को रखते हुए हुई तो उसी को वास्तविक उन्नति मानना चाहिये। जब हमारी भारतीयता ही नष्ट होगई तो फिर यह देश भारत न रह जायगा और न हम भारतवासी ही रह जायँगे।

गवर्नमेंट क्या है ?

बहुत से लोग ईश्वर की सृष्टि से गवर्नमेंट की तुलना करते हैं। आकाश के अनन्त तारे जैसे उगते और छिपते हैं, और जिस भांति वे नियमबद्ध होते हैं उसी प्रकार उन मनुष्यों के मतानुसार गवर्नमेंट के अंग भी हैं। न्यूटन का सृष्टि सम्बन्धी सिद्धान्त (Universe Theory) है कि सब तारे अपने २ नियम से घूमते हैं और कालान्तर में इस नियम में कुछ भी भेद नहीं पड़ता। फ्राँस में मांटस्क्यू (Montesquieu) नाम का एक विद्वान् हो गया है। उसी ने सब से प्रथम एक गवर्नमेंट के विषय में कहा था कि यह सृष्टि की हूबहू नकल है किन्तु यह सिद्धान्त निर्मूल है क्योंकि गवर्नमेंट कोई मशीन नहीं है बल्कि एक जीवित संस्था है।

"The trouble with the theory is that Government is not a machine but a living thing. It falls not under the theory of universe but under the theory of organic life. It is accountable to Darwin and not to Newton. It is modified by its environment, necessiated by its tasks, shaped to its functions by the sheer pressure of life." P. 43.

स्वतन्त्र मनुष्यों के लिए निरीक्षकों की आवश्यकता नहीं।

पराधीनता बड़ी बुरी वस्तु है। किसी भी चीज़ के लिए दूसरों का मुंह ताकना बुरा है। स्वतन्त्र देशों में भी गवर्नमेंट प्रायः एक मुट्ठी भर मनुष्यों ही के हाथ में होती है, किन्तु जिस देश की अधिकांश प्रजा को अपनी गवर्नमेंट में अधिकार प्राप्त हो वही देश भाग्यशाली है। एमेरिका प्रजातन्त्र है किन्तु वहां भी अधिक विकाश की आवश्यकता है। डा० वुडरो विलसन का विचार है कि एक मुट्ठी भर आदमी चाहे जैसे देशभक्त क्यों न हों कदापि इस योग्य नहीं हो सकते कि एक जाति के भाग्य की डोर उनके हाथ में सौंप दी जाय।

डा० विलसन कहते हैं "एमेरिका के अधिकांश मनुष्यों को छोड़कर और किसी को अधिकार नहीं कि मुझसे यह कहे कि 'तुमको अमुक प्रकार से रहना पड़ेगा'।" उनका यह भी कहना है कि जो जाति किसी की संरक्षता में रहती है उसका पुरुषत्व नष्ट हो जाता है। प्रजातन्त्र और वह भी विस्तृत रूप में जब कि प्रजा और शासक प्रायः एक ही हों-सब से अच्छी शासनप्रणाली है।

"प्रजातन्त्र की यही खूबी है कि जब तुम गुस्से में आकर अथवा बदला लेने के लिए कोई काम अपनी गवर्नमेंट के विरुद्ध करते हो तो अपना ही नुकसान करते हो क्योंकि तुम्हारे और गवर्नमेन्ट के मनोरथों में विभिन्नता नहीं है।"

धन्य है वह देश जहां के प्रेसीडेंट के ऐसे विचार हों। अब इस लेख को समाप्त करते हुए हम डा० विलसन के शब्दों में अपने भाइयों को सावधान किये देते हैं:—

"The procession is under way. The standpatter (sic) does'nt know there is a procession. He does'nt know that the road is resounding with the tramp of men going to the front. And when he wakes up, the country will be empty. He will be deserted, and he will wonder what has happened.

इसका सारांश यह है 'जो सोया सो खोया, जो जागा सो पाया।'

सङ्कलित संख्या।

[लेखक—श्रीयुत अम्बिकाप्रसाद पाण्डेय एम० एस० सी०]

निम्नलिखित संख्याएं सङ्कलित संख्या कहलाती हैं:—

१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०......

१, ३, ६, १०, १५, २१, २८, ३६, ४५, ५५......

१, ४, १०, २०, ३५, ५६, ८४, १२०, १६५, २२०......

१, ५, १५, ३५, ७०, १२६, २१०, ३३०, ४९५, ७१५......

१, ६, २१, ५६, इत्यादि ... ...

... ...

इनकी रचना इस प्रकार होती है :—

पहिली श्रेणी में एकद्वित्र्यादि संख्या प्राकृतिक क्रम से एक दूसरे के बाद लिखी जाती हैं। दूसरी श्रेणी, १, (एक) से आरम्भ होती है, और इसकी दूसरी संख्या, ३, इसकी प्रथम संख्या, १, में प्रथम श्रेणी की दूसरी संख्या, २, के जोड़ने से बनती है। इसी प्रकार इसकी तीसरी संख्या, ६, इसकी दूसरी संख्या, ३, में प्रथम श्रेणी की तीसरी संख्या, ३, के जोड़ने से बनती है इत्यादि। इसी नियम के अनुसार और सब श्रेणियां भी बनती हैं—अर्थात् जिस प्रकार पहिली श्रेणी की संख्याओं से दूसरी श्रेणी की संख्याएं बनती हैं उसी प्रकार दूसरी श्रेणी की संख्याओं की सहायता से तीसरी श्रेणी की संख्याएं भी बनती हैं। दूसरी श्रेणी की संख्याएं "त्रिभुजाकार संख्याएं" (triangular numbers) कहलाती हैं और तीसरी श्रेणी की संख्याएं सूची-आकार (pyramidal) संख्या के नाम से प्रसिद्ध हैं। शेष श्रेणियों की संख्याओं की कोई विशेष संज्ञा नहीं होती वरन् सभी 'सङ्कलित संख्याएँ' (Figurate numbers) के नाम से विख्यात हैं।

जिस रीति से ये संख्याएं रची जाती हैं, उससे स्पष्ट है कि किसी श्रेणी की कोई संख्या उसकी पूर्व श्रेणी का, उस विशेष संख्या के ऊपर तक की, संख्याओं के योग फल के बराबर होती है। उदाहरणार्थ-दूसरी श्रेणी की छठी संख्या '२१' प्रथम श्रेणी की पहिली ६ संख्याओं अर्थात् १,२,३,४,५,६, का योगफल है और तीसरी श्रेणी की छठी संख्या "५६" दूसरी श्रेणी की प्रथम ६ संख्याओं अर्थात १,३,६,१०,१५,२१, का सङ्कलन है।

यदि त्रिभुजाकार संख्याएं विन्दु द्वारा लिखी जायँ तो उन विन्दुओं की रचना निम्नलिखित चित्रों के अनुसार की जा सकती है—

पहिले चित्र में एक विन्दु है, दूसरे चित्र में तीन। तीसरा चित्र दूसरे चित्र के नीचे तीन विन्दुओं के बढ़ाने से बनता है और चौथा चित्र तीसरे चित्र में चार विन्दुओं के बढ़ाने से इत्यादि। इस प्रकार इन विन्दुओं से बने हुए सब चित्र त्रिभुजाकार दीखते हैं और इसी कारण इन संख्याओं का नाम 'त्रिभुजाकार संख्या' (triangular numbers) रक्खा गया है। सङ्कलित संख्याओं के जानने वा बनाने की एक दूसरी सरल रीति और है जिसमें 'अनुक्रमिक सङ्कलन' (Successive addition) की आवश्यकता नहीं पड़ती। सातवीं त्रिभुजाकार संख्या परिभाषा के अनुसार पहिली सात प्राकृतिक संख्याओं का योग है। एकद्वित्र्यादि संख्या सात तक दो श्रेणियों में यों लिखी जाती हैं:—

१, २, ३, ४, ५, ६, ७,
७, ६, ५, ४, ३, २, १,

८, ८, ८, ८, ८, ८, ८,

अतएव '१' से '७' तक प्राकृतिक संख्याओं के योगफल का दुना '७' और '८' के गुणनफल के बराबर है अथवा सातवीं त्रिभुजाकार सख्या '७' और '८' के गुणनफल के आधे के बराबर होती है। इसी प्रकार नवीं त्रिभुजाकार संख्या '९' और '१०' के गुणनफल की आधी होती है इत्यादि!

यही सिद्धान्त दूसरी रीति से साबित किया जा सकता है। अ, व, स, द, ई, फ़, ज, ह, ये आठ अक्षर हैं, इनके दो २ अक्षरों का एकादिभेद लिखा जाता है। पहिले वे एकादिभेद (Combinations) लिखे जाते हैं जिनमें 'अ' है तब वे जिसमें 'व' है इत्यादि:—

अव, अस, अद, अई, अफ़, अज, अह।
बस, वद, वई, वफ़, वज, वह।
सद, सई, सफ़, सज, सह।
दई, दफ़, दज, दह।
ईफ़, इज, ईह।
फ़ज, फ़ह।
जह।

'अ' के साथ सात एकादिभेद बन सकते हैं, क्योंकि शेष '७' अक्षरों में 'अ' के साथ कोई भी अक्षर रह सकता है। 'व' भी "स, द, ई, फ़, ज, ह" अक्षरों में से किसी अक्षर के साथ रह कर ६ नवीन एकादिभेद बना सकता है। 'अव' वा 'वअ' के एक होने के कारण कोई नया एकादिभेद नहीं होता। 'स' के पांच, 'द' के चार, 'ई' के तीन, 'फ़' के दो, 'ज' का एक, एकादिभेद होता है। अतएव इन सब एकादिभेदों का संख्या पहिली सात प्राकृतिक संख्याओं का योगफल है अथवा यों कहिये कि सातवीं त्रिभुजाकार संख्या हो है। पर यह मालूम है कि आठ चीज़ों के एकादिभेद की संख्या, दो २ चीज़ों के एकत्रित लेने पर, २८ होती है जो कि सात और आठ के आधे गुणनफल के बराबर है। अतएव सातवीं त्रिभुजाकार संख्या सात और आठ के गुणनफल के आधे के बराबर होती है।

इस रीति से दूसरी सङ्कलित संख्याएं भी जानी जा सकती हैं। सातवीं सूच्याकार संख्या जो कि प्रथम सात त्रिभुजाकर संख्याओं का योगफल है, वह इस प्रकार जानी जा सकती है। अ, व, स, द, ई, फ़, ज, ह, क, ये ९ अक्षर हैं, इनके तीन अक्षरों के एकादिभेद लिखे जाते हैं। पहिले वे एकादिभेद लिखे जिनमें 'अ' हो। यदि शेष आठ अक्षरों के दो २ अक्षरों के एकादिभेद के पहिले 'अ' लिख दिया जाब, तो हमें तीन २ अक्षरों के वे एकादिभेद मिलेंगे जिनमें 'अ' है। पर ऊपर बतलाया जा चुका है कि आठ अक्षरों के, दो २ अक्षर के एकादिभेद की संख्या ७ और आठ के गुणनफल की आधी होती है या स्वयं सातवीं त्रिभुजाकार संख्या होती है। अतएव इन एकादिभेदों की संख्या जिनमें 'अ' है सातवीं त्रिभुजाकार संख्या के बराबर होती है। इसी प्रकार उन एकादिभेदों की संख्या जिनमें 'व' है छठी त्रिभुजाकार संख्या के बराबर होती है। अतएव सब एकादिभेदों की सङ्कलित संख्या

सात त्रिभुजाकार संख्याओं के योगफल के बराबर होती है। परन्तु ९ वस्तुओं के, तीन वस्तुओं को एकत्रित लेने पर, एकादिभेद की संख्या ९×८×७÷१×२×३ के बराबर होती है। अतएव प्रथम सात त्रिभुजाकार संख्याओं का योग वा सातवीं सूच्याकार संख्या '७×८×९÷१×२×३' के बराबर होती है। इसी प्रकार यह साबित किया जासकता है कि दसवीं सूच्याकार संख्या '१०×११×१२÷१×२×३' के बराबर होती है और चौथी सूच्याकार संख्या '४×५×६÷१×२×३' के बराबर होती है।

ऊपर लिखे नियम के अनुसार दूसरी श्रेणियों की संख्याएं भी जानी जा सकती हैं।

ऊपर लिखे अनुसार यह स्पष्ट है कि त्रिभुजाकार संख्याएं '१, २, ३, ४, इत्यादि' प्राकृतिक संख्याओं के जोड़ने से बनती हैं और इस श्रेणी की प्रति दो संख्याओं में '१' का अन्तर है। और फिर '१, ३, ५, ७, ९ इत्यादि' श्रेणी की संख्याओं के जोड़ने से वर्ग संख्याएं बनती हैं और इस श्रेणी की प्रति दो संख्याओं में '२' का अन्तर है। इसी प्रकार यदि निम्नलिखित श्रेणी की संख्याएं जोड़ी जांयः—

१, ४, ७, १०, १३, १६ इत्यादि

जिसकी संख्याओं में ३ का अन्तर है, तो १, ५, १२, २१ इत्यादि संख्याएं मिलती हैं और ये 'पञ्चभुजाकार' संख्याओं (pentagonal) के नाम से प्रसिद्ध हैं। फिर १, ५, ९, १३, १७, २१ इत्यादि संख्याओं के जोड़ने से १, ६, १५ इत्यादि संख्याएं मिलती हैं जो 'षट्भुजाकार' (hexagonal) संख्याएं कहलाती हैं। इसी प्रकार और भी श्रेणियां बनाई जा सकती हैं जिनकी संख्याएं 'बहुभुजाकार' (polygonal) संख्याओं के नाम से प्रसिद्ध है। सम्भवतः 'पाइथोगोरस' ने त्रिभुजाकार संख्याओं का आविष्कार किया था। बहुत से ग्रीक गणितज्ञों ने सङ्कलित संख्याओं के विषय में लिखा है। ग्रीक गणितज्ञों में 'हिपलाइकिल' जिनका जन्म ईसा से २०० वर्ष पहिले हुआ था और जिराला के 'निकोमेकस' बहुत प्रसिद्ध हैं। 'बहुभुजाकार संख्या' के सम्बन्ध में महात्मा 'डाओफेंटस' ने एक अत्युत्तम ग्रन्थ, लिखा है। इन्हें मरे लगभग डेढ़ हज़ार वर्ष हो गये।

भारतवर्ष में शिक्षा का आधुनिक क्रम।*

[लेखक—श्रीयुत विशेश्वरप्रसाद।]

भारतवर्ष के सामाजिक और धार्मिक जीवन पर पश्चिमीय शिक्षा का बुरा प्रभाव पड़ा है या अच्छा इसके सम्बन्ध में लोग विपक्ष वर्षों से विचार कर रहे हैं और संवाद-पत्रों दोनों ओर के लेख में बराबर पक्ष और निकल रहे हैं। इससे मुझे विश्वास है कि अब इस पश्चिमीय शिक्षा का प्रश्न एक निष्पक्ष विचार द्वारा हल हो जायगा। हम पश्चिमीय शिक्षा के उन लाभों पर जो हमें मिल चुके हैं और मिल रहे हैं विचार करेंगे। यह मुझे निश्चय है कि कुछ सज्जनों को यह विचार उच्छृङ्खल प्रतीत होगा। वे कहेंगे कि मैंने इन लाभों का आवश्यकता से अधिक गुण गान किया है पर यह बात नहीं है। परन्तु इन सज्जनों को यह बताने के लिए ही कि मेरा

* श्रीयुत सी० एन० जुतशी के जून १३ के "हिन्दुस्थान रिव्यू" में प्रकाशित "The present system of Education in India." नामक लेख का सम्पादक की आज्ञा से अनुवाद"।

यह मत सच्चे और निष्पक्ष विचार का फल है । जातीयता और युक्ति की दृष्टि से भी यही ठीक है और इस शिक्षा ने जो कार्य हम लोगों के लिए किया है और कर रही है उसको कदापि तुच्छ न समझना चाहिये ।

इस देश में आधुनिक शिक्षा-क्रम की नींव पड़ने का पता सन् १८५४ में लगता है । १८५४ के स्मरणीय राजपत्र के बाद १८५६ में वर्तमान शिक्षा-विभाग स्थापित हुआ था । पश्चिमीय शिक्षा की आधुनिक व्यवस्था मद्रास, बम्बई, कलकत्ता, पञ्जाब और इलाहाबाद विश्वविद्यालयों द्वारा जो सन् १८८७ तक मिस्टर केमरन के बराबर प्रयत्न करने से स्थापित हो चुके थे हो रही है । इन विश्वविद्यालयों का कार्य विद्यार्थियों के लिए भिन्न भिन्न विषयों और पुस्तकों को निश्चित करके अपने अपने कालेज और स्कूलों के छात्रों की परीक्षा लेना है । आजकल जो शिक्षा दी जाती है वह और समयों की शिक्षा से कहीं विस्तृत और दृढ़ है । देशभर की संस्थाओं में साहित्य, विज्ञान और पूर्वदेशीय भाषाओं के पढ़ने के प्रबन्ध के अतिरिक्त कानून, इञ्जीनियरी, खेती और आयुर्वेद इत्यादि व्यवसायिक बातों के सीखने का भी प्रबन्ध है । इनका ज्ञान हमारी सांसारिक उन्नति के लिए सब से अधिक आवश्यक है ।

मुझे भारतवर्ष की आधुनिक शिक्षा के इतिहास पर अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं पर उसके लाभों पर कुछ कहने की इच्छा है । जो लाभ पश्चिमीय शिक्षा से लोगों को हुए हैं उनका उल्लेख १८५४ के राजपत्र में ऐसी उत्तम रीति से किया गया था कि उसका कुछ अंश यहां उद्धृत किये बिना मैं नहीं रह सकता । उस प्रसिद्ध राजपत्र में डाइरेक्टरों की मंडली ने लिखा है:—

"जहां तक हो सके भारतवासियों पर उन महान् नैतिक अथवा सांसारिक उपकारों का करना हमारा परम और पवित्र कर्तव्य है जिन को वे ईश्वर की कृपा से इंगलैंड से सम्बन्ध होने के कारण प्राप्त कर सकते हैं और जो उपकार लाभदायक ज्ञान के प्रचार से प्राप्त होते हैं । इसके अतिरिक्त हम लोगों ने शिक्षा की उन्नति पर विशेष रूप से ध्यान दिया है जिससे न केवल मानसिक योग्यता बढ़े परन्तु उसके प्राप्त करनेवाले ऐसे चरित्र सम्पन्न हों कि आप भारतवर्ष में उनको विश्वस्त पदों पर नियत कर सकें । शिक्षा के प्रचार में सफल होना इंगलैंडवासियों पर बहुत निर्भर है और भारतवर्ष की सांसारिक उन्नति यूरोपीय विज्ञान के अधिक प्रचार से बहुत कुछ संबन्ध रखती है । इससे भारतवासियों को द्रव्य और परिश्रम के उपयोग के आश्चर्यजनक लाभ प्राप्त होंगे । इससे भारतवासी अपने देश के महान् वैभव की उन्नति करने में हम लोगों का अनुकरण करने के लिए जागृत होंगे । इससे वे अपने कार्य को उचित रीति से कर सकेंगे, धीरे धीरे परन्तु अवश्य ही उनको वे लाभ जो धन और वाणिज्य की वृद्धि से होते हैं प्राप्त होंगे और साथ ही साथ हम लोगों को वे बहुतसी वस्तुएं जिनकी हमें अन्य वस्तुओं के बनाने में आवश्यकता पड़ती है और जो हमारे देश के निवासियों में अधिक व्यय होती हैं मिला करेंगी । इससे ब्रिटिश मज़दूरों द्वारा बनी हुई वस्तुओं के लिए एक बहुत बड़ा निकास भी होजायगा ।"

इतने पर भी शिक्षापद्धति के मुख्य मुख्य अवगुण यहां बतलाए जा सकते हैं । इससे लोगों की श्रद्धा परीक्षाओं पर बहुत हो गई है और वे उच्च शिक्षा केवल सर्कारी नौकरी के लिए ही प्राप्त करते हैं जिससे शिक्षा का फल बहुत ही संकुचित हो जाता है और रटने की प्रथा बढ़ती जाती है जिससे विद्यार्थियों में उनके सर्टिफिकेटों के अनुसार पूर्ण ज्ञान नहीं होता । तथापि यहां पश्चिमी शिक्षा की ओर झुकाव अधिक हो रहा है । हमारा सम्बन्ध

यहां तो अपने सामाजिक और धार्मिक जीवन पर उसके प्रभाव से है ।

अब हमको इसकी परीक्षा करनी चाहिये कि पश्चिमी शिक्षा का प्रभाव हमारी इन दो बातों पर अच्छा पड़ रहा है या बुरा । मैं उन लोगों से सहमत हूं जो यह कहते हैं कि सामाजिक और धार्मिक जीवन में परिवर्तनों का झुकाव बुरी ओर की अपेक्षा अच्छी ओर अधिक है ।

लोगों के धार्मिक जीवन पर प्रभाव ।

यद्यपि उन लोगों की हँसी उड़ाई जाती है जो निडर होकर यह कहते हैं कि इस देश के धर्म में अच्छा परिवर्तन हो रहा है तोभी मैं यह ज़ोर के साथ कहूंगा कि हिन्दुस्थानी धार्मिक विचारों में पश्चिमी शिक्षा के प्रभाव से जिसका वैज्ञानिक दृष्टि से बहुत मूल्य है स्पष्ट उन्नति हुई है । यह इसी शिक्षा का फल है कि लोग अब धीरे धीरे किन्तु निश्चय ही उन मूढ़ विश्वासों और निराधार धार्मिक श्रद्धा के बन्धनों से छुटकारा पा रहे हैं जिनमें वे इतने दिनों से बँधे थे । प्राणविद्या और ऐसी ही दूसरी अनेक विद्याओं जैसे शरीरविज्ञान (Physiology) (Histology) रोग-विद्या (Pathology) इत्यादि के आश्चर्य-जनक प्रयोगों ने जीवन-मरण के उन रहस्यों को हम लोगों को बता दिया है जो इन विद्याओं की अनुन्नत अवस्था में प्राचीन धार्मिक मूढ़विश्वासों ही में दिये रहते थे । इस सम्बन्ध में इन विद्याओं से विलक्षण रहस्यों का पता लगा है और यह भली प्रकार प्रमाणित हो गया है कि जीवन की नित्यता का विश्वास और यह बात कि कुछ नियमों के पालन करने से ही हम स्वर्ग को जा सकते हैं अथवा उनके न करने से हमें नर्क में जाना होगा बिलकुल गप्प है । अब लोग उस सच्चे धर्म को समझने लगे हैं जो बुद्धि और तर्क के विरुद्ध नहीं है ।

लोगों के सामाजिक जीवन पर प्रभाव ।

पश्चिमी शिक्षा ने जो सामाजिक परिवर्तन हम लोगों के जीवनों में किया है और कर रही है उसपर विचार करने से मुझे यही प्रतीत होता है कि वे धार्मिक जीवन के परिवर्तनों की अपेक्षा अधिक स्पष्ट हैं । भारतवर्ष में अथवा बाहर रहनेवालों को इनका पूर्ण ज्ञान है इससे मैं इसके विषय में संक्षेप ही में लिखूंगा । वह कौनसी बात है जिसने लोगों को विधवाओं के पुनर्विवाह और भिन्न वर्णों में परस्पर विवाह की वकालत करने को और बालविवाह और पर्दे की प्रथा को जिनसे हिन्दुस्थानी समाज में एक रुकावट सी हो रही है हटाने के लिए सामाजिक सुधार-सभाएं करने पर आरूढ़ किया है? इस शिक्षा के बिना हम लोग वैसे ही रहते जैसे कि असंख्य काल में थे और जिसका पता आधुनिक सामाजिक दशा और प्राचीन सामाजिक दशा के इतिहास के मिलान से लगता है । कुछ संकीर्ण हृदय के लोग अभीतक हिन्दुस्थानी विचारों में इस परिवर्तन का कारण यही बताते हैं कि यह कोई आश्चर्य्य की बात नहीं है यदि हमारे समाज में प्राचीन बातों की जगह नई बातें होगई हैं यह तो स्वाभाविक ही है। यह बात ठीक हो या नहीं मैं कुछ नहीं कहूंगा। मैं केवल इतना ही कहूंगा कि बिना अच्छे कारण के पुरानी बातों के स्थान में अच्छी नई बातें नहीं आ सकतीं । निवेदन यह है कि इसी शिक्षा के कारण हमारा उन बातों पर ध्यान गया है जिनपर हमारी सामाजिक उन्नति निर्भर है।

इन सब के लिए हमको लार्ड विलियम बेंटिंक और लार्ड मेकाले को धन्यवाद देना चाहिये जिन्होंने इस शिक्षा का बीज भारत भूमि में बोया । अब यह बीज एक अच्छा वृक्ष होकर अनगिनती अच्छे फल दे रहा है। इसमें तो कहने की आवश्यकता ही नहीं कि यदि आज हम लोगों के बीच अपने कार्य को परि

एक रूप में देखते तो इससे उन लोगों को भी वैसा ही आनन्द प्राप्त हुआ होता जैसा हमको हो रहा है।

अब मैं इतना कहकर कि अब भी दो दल हैं, एक तो वह जो इन परिवर्तनों को अच्छा समझता है, दूसरा वह जो अभीतक प्राचीन मूढ़ विश्वासों के जादू में फँसा है इस लेख को समाप्त करता हूँ। मैं साफ २ कहता हूं कि मैं उस दल का हूं जो सदा मूढ़विश्वासों और पुरोहितों की शिक्षाओं को कुछ न समझता हुआ अपनी उन्नति पर ध्यान रखता है और जो यह विश्वास करता है कि भारतवर्ष इस मरी हुई दशा से केवल पश्चिमी शिक्षा और विद्या के सहारे उच्च सामाजिक और धार्मिक दशा को प्राप्त होगा।

सम्मिलित कुटुम्बप्रणाली।

[लेखक—श्रीयुत नेमधर शर्मा ।]

आजकल भारत के बुरे दिन हैं, इससे उसके सन्तानों को उसकी पतित दशा देख दुःख होता है। ये लोग उसकी दुर्गति के कारण ढूँढ़ २ उनके दूर करने की निरन्तर चेष्टा किया करते हैं। यह बड़े आनन्द की बात है।

जब से भारत में पाश्चात्य सभ्यता की छाया पड़ी है, तब से यहां की सारी संस्थाएँ चञ्चल हो उठी हैं। सहस्रों वर्षों से अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए भारत सदा प्राणपण से लगा हुआ है। आज वर्तमान शासन के शान्ति राज्य में वह अपनी गिरी हुई दशा के सुधारने को सचेष्ट हुआ है। यह बात इसीसे सिद्ध है कि देश के विचारवान पुरुष आत्मबल धारण कर देशसेवा का बीड़ा उठाये हुए दिखलाई पड़ रहे हैं। जहां देखो वहां, विज्ञजन सब प्रकार से भारत को सर्वोत्कृष्ट करने को आतुर हो रहे हैं। कोई उपदेशों द्वारा, कोई अपनी लेखनी के बल से अपना २ कर्तव्य पालन कर रहे हैं। यह सब भारत के सौभाग्य के लक्षण हैं। हिन्दी समाचारपत्रों की बदौलत हिन्दी जाननेवालों को भी भारत के हितेच्छुओं के सद्विचार ग्रहण करने को मौका मिल जाता है। एक महोदय का कथन है कि भारतीय सम्मिलित कुटुम्ब प्रणाली अब उपादेय नहीं मानी जा सकती अतएव आप सम्मति देते हैं कि हम लोगों को पाश्चात्य कुटुम्ब-प्रणाली की शरण लेनी चाहिये। आपने अपनी सम्मति की पुष्टि में दो तीन दलीलें भी पेश की हैं। सचमुच आपकी दलीलें क्या हैं, आप के मार्मिक दुःख के उद्गार हैं और प्रत्येक भारतवासी आप के विचारों से सहमत होने में अचकचा नहीं सकता।

परन्तु जिन दुःखों के दूर करने को और जिन अभावों की पूर्ति के लिए जो उपाय आपने दबी ज़बान से बतलाया है, उससे बहुत लोग नहीं सहमत हो सकते हैं। आप की दलीलों पर बहुत से तर्क किये जा सकते हैं परन्तु यहां उन पर वादविवाद करना उचित नहीं समझ पड़ता।

आपके कथनानुसार हिन्दू कुटुम्ब अवश्य अनेक रोगों से ग्रसित है। आज यहां सुख और

शान्ति तक के भी चिह्न दृष्टिगोचर नहीं होते हैं, परन्तु क्या पाश्चात्य कुटुम्ब-पद्धति धारण कर लेने पर हिन्दू समाज चिरशान्ति लाभ कर सकेगा, जब कि यूरोपीय समाज में भी अशान्ति का बाज़ार खूब गर्म है।

अवश्य पाश्चात्य सभ्यता की सहायता बिना वर्तमान समय में हम लोग अपना अस्तित्व स्थायी नहीं रख सकते; निस्सन्देह बिना उसका अनुकरण किये हमारा निर्वाह दिन प्रति दिन कठिनतर होता जाता है। अतएव, बहुत बातों के लिए हम लोगों को पाश्चात्यों का मुख ताकना पड़ता है और ताकना पड़ेगा। यह बहुत अंशों में ठीक भी है। परन्तु यदि हम लोग पाश्चात्य सभ्यता का मोहिनी रूप निरख और उसके वशीभूत होकर अपनी आत्मगत भारतीय सभ्यता का तिरस्कार करने को उतारू हो जायँ, तो पहले यह विचार कर लेना चाहिये कि ऐसा करना कहां तक उपादेय हो सकता है। आज जो हम अपने देश में सर्वत्र प्रतिक्रिया की धूम पा रहे हैं, सब पाश्चात्य सभ्यता के साथ हमारी बाबा आदम की सभ्यता के संघर्षण का फल है और निस्सन्देह इस समय हम लोग जो कुछ देख रहे हैं वह ऐसे बीज पैदा करेगा जिनके ही अंकुरित होने पर भारत का भविष्य गौरव अवलम्बित है! इसी प्रतिक्रिया के कारण आज भारत की नई पीढ़ी कुलबुलाती हुई दिखलाई पड़ती है, उसकी दशा इस समय उस आदमी कीसी है जो अँधेरी कोठरी में पड़ा हुआ एकाएक रोशनी की झलक देख उजाले में तुरन्त आजाने को अकुला उठे। ऐसी अवस्था में वर्तमान पीढ़ी को सुपथ में लेजाना सरल कार्य नहीं है।

भारत सन्तान सच्चे उपदेश के लिए आज जिज्ञासु बन चुके हैं; उनकी प्रवृत्ति अपनी दुर्गति दूर करने को दिन रात ज़ोर पकड़ रही है। देश या विदेश के आत्मसंयमी उदारचेता महानुभाव भारतसन्तानों को अपना शिष्य बनाने के लिए भी उदासीन नहीं हैं और ऐसी अवस्था में महापुरुषों की ही आवश्यकता है। भारत को ऐसे उपदेशकों की आवश्यकता नहीं है जो उसके जातीय भावों का रूप तक भी बदल देना चाहते हों।

भारतीय लोगों के तो वे दिन अब दूर गये, जब पश्चिमीय सभ्यता ही भारत के कल्याण साधन के लिए उपयोगी समझी जाती थी। एक दिन भारत में अवश्य ऐसा उपस्थित हुआ था जब कुछ लोगों ने शिखासूत्र त्याग करना अपनी सच्ची उन्नति समझा था। अब तो लोगों की भक्ति अपनी ही बची खुची चीज़ों पर एकाएक ढल पड़ी है। वे लोग अब अपनी भद्दी वस्तुओं को अपनाने लगे हैं; भले ही कोई उन्हें देख २ हंसे। इस बात का प्रमाण विहारियों का हिन्दुस्थानी जूतेवाला आन्दोलन है। जब देशवासियों के चित्त में स्वदेशी भाव जागृत हो चुका है तब ऐसी अवस्था में उक्त महोदय ने सम्मिलित कुटुम्बप्रणाली के विरुद्ध जो विचार प्रगट किये हैं वे विचार कैसे लोकप्रिय हो सकेंगे?

अच्छा मान लीजिये कि आपकी दलीलों से क़ायल हो, नवयुवक पाश्चात्य कुटुम्बप्रणाली का अनुकरण करने लगे; उस अवस्था में तब क्या एक प्रकार की सामाजिक क्रान्ति न उठ खड़ी होगी। एक तो भारत आप ही आप दलादली के कारण पीड़ित हो रहा है, तब क्या वह एक नई व्याधि न उत्पन्न हो उठेगी जिससे जातीयता को भारी आघात पहुंचने का भय है। प्रत्येक मनुष्य अपने विचार प्रगट करने को स्वतंत्र हैं परन्तु इसके साथ २ उसको देश काल भी देख लेना चाहिये। देश में अब नये २ दल खड़े करने से विशेष लाभ नहीं दिखलाई पड़ता है और शायद लोग ऐसा करने को तैयार भी नहीं हैं। सहृदय लोगों के मत में अब तो यही जँचने लगा है कि वही आन्दोलन, वही सुधार, बहुत

है, श्रेय है जिससे जातीयता का लोप न होने पावे।

भारतीय कुटुम्बप्रणाली की इज़्ज़त लोग भले ही न करें। उनके मतानुयायी उसके आध्यात्मिक गौरव को मानना भले ही अपना कर्तव्य न समझें तथा वे लोग, इस सिद्धान्त की ओर कि भारतीय गार्हस्थ धर्म स्वर्गीय है, इहलौकिक नहीं है, खुशी से कटाक्ष करें परन्तु जातीयता के इस ज़माने में उनके विचार मान्य नहीं हो सकते हैं। हां, यदि भारतीय कुटुम्बप्रणाली के दोषों को दिखला २ जातीय भित्ति पर सुधार के उपाय बतलाये जाँय तो सब लोग प्रसन्नतापूर्वक बातें सुन और समझ सकते हैं।

भारतीय युवकों ने अब जातीयता के महत्व का पाठ सीखना आरम्भ कर दिया है और आगे की पीढ़ी जापानियों की भांति पाश्चात्य रंग ढंग में परिप्लुत हो जाने से घृणा ही न करेगी किन्तु नूतन संस्कारों द्वारा अपने सदा बहुकाल से मान्य आदर्श सिद्धान्तों और संस्थाओं के दोषों को दूर करते हुए देशसेवा करेगी।

शान्ति का दुरुपयोग।

[लेखक—अमेरिकाप्रवासी श्रीयुत शिवप्रसाद गुप्त।]

आजकल वास्तविक ज्ञान के अभाव से हमारे देश में अनेक प्रकार के उपद्रव हो रहे हैं। शब्दों का ठीक अर्थ में, ठीक समय पर, ठीक प्रसंग में उचित व्यवहार न होने से वैसी ही हानि होती है जैसी किसी औषधि के दुरुपयोग से होती है। किसी ने ठीक कहा है कि "अच्छे शिक्षित वैद्य की चिकित्सा से मरना अधूरे वैद्य की दवा से अच्छे होने से अच्छा है।"

देखिये, अब इसी 'शान्ति' शब्द को ले लीजिये। यह एक महान् शब्द है किन्तु इसका इतना दुरुपयोग आजकल हुआ है कि इसने देश में मृत्यु ही उत्पन्न कर दी है।

शान्ति किसको कहते हैं, इसका वास्तविक अर्थ क्या है, इसका प्रयोग कब किसके लिए किस समय होना चाहिये यह सब हम भूल गये। बस केवल शब्दमात्र ही याद रहा और उसका दुरुपयोग यहां तक बढ़ा कि हमारा जीवन ही शान्त होगया।

संसार में, प्रकृति में, सृष्टि के रहस्य में सभी जगह आन्दोलन विराजमान है। हिन्दू लोग अपने ज्ञान स्रोत से तथा वैज्ञानिक लोग अपनी खोज से यह जानते हैं कि इस सृष्टि के वर्तमान रूप के पूर्व सारे जगत का मूल बीज शान्ति की अगाध निद्रा में सो रहा था। प्राचीन धार्मिकों के अनुसार ब्रह्मा की रात्रि बीतने पर अर्थात् उनके पुनः जागने पर अर्थात् उनकी शान्ति भंग होने पर सृष्टि का आरम्भ हुआ और वैज्ञानिकों के मत के अनुसार उस ब्रह्माण्ड विराट् गोले में सृष्टि-बीज-समूह में जो शान्ति थी उसके किसी प्रकार से (प्रकार का पता अभी वैज्ञानिकों को नहीं चला है) भंग होने पर अर्थात् उसमें आन्दोलन उपस्थित हो जाने से सृष्टि का चक्र फिर चल पड़ा।

जिसका चक्र सदा चलता हो, जिसमें अहर्निशि परिवर्तन होता रहे वहां शान्ति कैसे आ सकती है। यदि शान्ति आवेगी तो चक्र का चलना रुक जावेगा, परिवर्तन होना बन्द हो

जावेगा। बहाव रुकने से जिस प्रकार जल में दुर्गंधि आजाती है, दिल का धड़कना बन्द होने से जैसे शरीर ठंढा होजाता है उसी प्रकार सृष्टि का अन्त भी शान्ति से हो जाता है।

शान्ति मृत्यु का चिह्न है। वह सड़ान व बदबू का नाम है, चलते हुए पहिये का रुक जाना है, बढ़ते हुए पौधे का सूख जाना है, पानी का तालाब में रुक कर सड़ जाना है, जीवित शरीर का मृतक हो जाना है। इसी प्रकार यह शान्ति जीती जागती जाति के लिए भी मृत्यु का संदेशा है।

यदि हम प्रकृति ही से शिक्षा ग्रहण करें तो हमें क्या दिखलाई पड़ता है? हमें संसार में कहीं भी शान्ति नहीं दिखाई देती। पौधे को लीजिये तो क्या देखने में आता है? वह जल वायु दूसरे पौधे और कभी २ जीवजन्तुओं को भी खाकर अपने जीवन पर्यन्त बढ़ता ही जाता है उससे शान्ति की शिक्षा नहीं मिलती। फिर लीजिये कीड़े मकोड़ों को। कभी उन्हें किसी ने शान्त अवस्था में नहीं देखा है। दुर्बीन में जो सूक्ष्म से सूक्ष्म जन्तु देखे जाते हैं या जन्तु होने के पूर्व अवस्था में जो जीव का स्वरूप होता है उसमें भी अशान्ति ही मिलती है। वह भी सदा हिला डुला करता है।

अब इनसे बढ़कर बड़े जीवों को देखिये तो आपको मालूम होगा कि जन्म की घड़ी से लेकर मृत्यु तक उन्हें एक क्षण भी शान्ति नहीं मिलती। मिले भी कैसे क्योंकि जीवन तो अशान्ति का नाम है। उजाले में अंधेरा कहां से आसकता है।

अब और प्रकृति की वस्तुओं को लीजिये तो क्या देखने में आता है? यदि हवा एक क्षण के लिए शान्त हो जावे तो लाखों जीव सांस लिए बगैर मर जावें, सूर्य यदि शान्त हो जावे तो दिन, रात्रि, महीना, मौसम की बदलना बन्द हो जावे, पानी यदि न बहे तो सड़कर दुर्गंधि देने लगे। मनुष्य यदि हाथ, पैर न हिलावे तो उसे लोग समझेंगे कि लकवा मार गया है। सांस न ले तो दम भर में मर जावे। तो फिर यह शान्ति शान्ति का बखेड़ा कहां से आ उपस्थित हुआ जो हमारे राष्ट्रीय जीवन में घुन सा लग गया है।

धार्मिक विचार के अनुसार भी एक मनुष्य को कठिन परिश्रम करके ब्रह्मचर्य अवस्था में विद्या लाभ करना होता है। गृहस्थ अवस्था में घरबार के झंझट में रहना होता है। वाणप्रस्थ अवस्था में भी शान्ति नहीं खोजी जाती किन्तु कठिन तपस्या ही करना परम धर्म होता है, यहां पर तपस्या का भी अर्थ जरा विचार लेना प्रसंगविरुद्ध न होगा। तपस्या आंख बन्द कर के चुपचाप बैठने का नाम नहीं है किन्तु किसी ज्ञानान्वेषण में निमग्न हो उसी में लिप्त हो जाने को तपस्या कहते हैं। कठिन मानसिक चिन्ता और विचार के बाद मस्तिष्क में जो आन्दोलन होता है उसे अशान्ति कहते हैं। चौथेपन सन्यास में भी शान्ति नहीं, वहां भी सेवा ही धर्म है, अपनी सेवा नहीं, जैसा कि आजकल देखा जाता है, किन्तु दूसरों की सेवा करना। फिर यह शान्ति कहां से कूद पड़ी? सुनिये यह अन्तिम अवस्था है। अर्थात् जब मनुष्य का शरीर जर्जर हो जाता है, कोई काम करने योग्य नहीं रहता तब मनुष्य शान्ति की इच्छा करता है अर्थात् मृत्यु चाहता है।

उपर्युक्त कथन के उपरान्त मैं यह प्रश्न भारतीयों से करना चाहता हूं कि इसपर विचार के उपरान्त आप मुझे बताइये कि हम लोग जो दिन रात्रि अहर्निश शान्ति शान्ति का पाठ किया करते हैं उसका क्या अर्थ है? क्या हम अपने अस्तित्व से दुःखी हैं और शान्ति की निद्रा में मृत्यु चाहते हैं? क्या हम भीरु हैं कि संसार के युद्धस्थल से पलायन कर मृत्यु के पीछे छिपना चाहते हैं। यदि नहीं तो इस

भ्रममूलक शब्द को त्यागिये, संसार में यदि केवल जीना ही है तो भी अशान्ति का पाठ पढ़िये, यदि मुख ऊँचा कर संसार में रहना है तो अधिक अशान्ति के लिए कटिबद्ध रहिये। अशान्ति कोई बुरी वस्तु नहीं है, वह जातीय जीवन है, नदी का मीठा सुस्वादयुक्त बहता हुआ पानी है। प्राणाधार चलती हुई वायु का ही नाम अशान्ति है। ब्रह्माण्ड के जयगोले में आन्दोलन उत्पन्न करनेवाली आदि शक्ति का नाम भी अशान्ति ही है. जीती जागती जाति में सदा अशान्ति ही का राज्य रहता है, विना अशान्ति के कोई कार्य इस संसार में नहीं हो सकता, जीना हो, उठना हो तो अशान्ति के मार्ग में पदार्पण करो नहीं तो शान्ति के गढ़े में सदा के लिए मृत्युनिद्रा में विश्राम करो। अशान्ति से हमारा यह तात्पर्य नहीं कि आप आपे से बाहर हो जायँ, आप उद्दंड हो जायँ। शान्ति त्यागने से हमारा एकमात्र तात्पर्य यह है कि कर्मयोग की विद्युत शक्ति आपकी रगों में दौड़ने लगे, आप कर्मशील हो जायँ और शान्ति की चादर ओढ़े हुए आप मृत्यु को न प्राप्त हों।

जलचर जीव।*

[लेखक—श्रीयुत दशरथ बलवंत जादव।]

अन्यजीवों के समान जलचर जीवों की भी शारीरिक गठन जुदी२ होती है। जलचर जीव केवल जल के समान द्रव पदार्थ से ही अपना निर्वाह करते हैं। हमारा मानवी खाद्य उदर में जाने के बाद परिपाक करने के लिए उसका रस बनता है। और इस रस के द्वारा खाद्य, शरीर के अंग प्रत्यंग में समाकर रक्त मांसादिक का सृजन करता है। उपर्युक्त जीव तरल पदार्थ खाते हैं और शिकार के खाते समय जीर्ण करनेवाला रस छोड़ देते हैं। इस प्रकार जब शिकार का शरीर गलकर द्रव रूप होजाता है, वे उसे चूसने लगते हैं। चूसते२ केवल पकड़े हुए जीव का सूखा चमड़ा बाकी रह जाता है। हेनरी कोपिन नामक एक फ़रासीसी वैज्ञानिक ने "ला नेचर" नामक सामयिक पत्र में लिखा है कि, उपर्युक्त जीवों की संख्या कम नहीं है। उनमें "डाइटिस्कस" नामक एक जलचर जीव की आहारप्रणाली की कथा इस प्रकार वर्णित है। इस जीव का निवास-स्थान जल है। हमारे देश में भी जलाशयों की कमी नहीं है।

इस जीव के मुंह नहीं होता है। इसके दाढ होती हैं। इनके द्वारा यह जीव शिकार को पकड़ता है, उसके शरीर में हजमी रस को प्रवेश कर देता है और जब तक कि पकड़े हुए जन्तु का शरीर जीर्ण होकर नहीं गल जाता तब तक दाढ़ के अग्रभागस्थित सूक्ष्म छिद्र द्वारा जलमिश्रित आहार चूस डालता है। यह जीव पहिले शिकार के रक्त को चूसता है उपरान्त ऊपर लिखे अनुसार प्रथम शरीर को हजम कर के पीछे भोजन करता है।

---

* प्रवासी से अनुवादित।

मि० पोर्टियर ने उपर्युक्त जीव के सामने एक छोटी मछली फेंककर उसकी समस्त भोजन-प्रणाली देखी है। यह जीव पहिले मछली के शरीर को दाढ़ों के द्वारा पकड़कर उसमें विष प्रवेश कर उसे मूर्छित कर देता है। कुछ काल के उपरान्त काला हजमी रस उसके शरीर में छोड़ता है। दुरबीन से यह बात स्पष्ट दिखाई पड़ती है कि यह जीव अपनी रस-शक्ति द्वारा मछली के अंग-प्रत्यंग को तरल कर देता है। थोड़ी देर पश्चात् मछली के शरीर में एक स्रोत लक्षित होता है। इस स्रोत के द्वारा शरीर का सम्पूर्ण द्रव पदार्थ उस जीव की दाढ़ के पास पहुंचता है और दाढ़ के अग्रभागी सूक्ष्म छिद्र द्वारा उदर में प्रवेश करता है। इस प्रकार मछली अथवा अन्य शिकार के शरीर से समस्त द्रव पदार्थ चूस डालता है। प्रायः आध मिनिट तक शरीर शुष्क रहता है। तदुपरान्त उक्त जीव शिकार के शरीर में हजमी रस प्रवेश करता है। इस कारण शिकार का शरीर फिर से द्रव रूप हो जाता है। 'डाइटिस्कस' अपनी शोषण क्रिया फिर से प्रारम्भ कर देता है। इस प्रकार बारंबार इस क्रिया के करने से शिकार केवल अस्थि-पंजर मात्र रहजाता है।

हमारे देश में भी इस तरह के जीवधारी होते हैं। परंतु हम उनका नाम नहीं जानते; यह जीव मिट्टी के तेल की बोतल में तेल डालने के चोंगे के समान ऊपर से चौड़ा और फिर नीचे क्रमशः सकड़ा गड्ढा करके उसमें रहता है। उस गड्ढे में कोई पिपड़ा व उसी के सदृश छोटे जीव के गिरने पर उसे पकड़कर वह खा जाता है। जब वह जीव भागने की चेष्टा करता है तब उसके शरीर पर धूल डाल कर घबरा देता है। इस प्रकार उसका भागना बंद कर देता है। इस जीवधारी को अंगरेज़ी में पिपीलिका सिंह (Ant Lion) कहते हैं। इस जीवधारी की भोजन-प्रणाली उल्लिखित जलचर जीव के सदृश है।

इन बातों की ओर हमारे देशवासियों ने ध्यान नहीं दिया है। परन्तु अब मालूम पड़ता है कि लोगों का मन इस ओर अवश्य आकर्षित हो रहा है।

होली का हुल्लड़।*

[लेखक—श्रीयुत नाथूराम शंकर शर्मा।]

(दोहा)

होली का हुल्लड़ मचा, उलें उजबक ऊत।
भूखे भारत पै चढ़ा, भद्दक-भ्रम का भूत॥१॥

होलिकाष्टक।

(सुभद्रा-छन्द)

(१)

उद्यम को कर अन्ध, आंख अवनति ने खोली है।
धन की धूलि उड़ाय, अकिञ्चनता हँस बोली है॥
ठसक भीतर से पोली है।
खुल २ खेलो फाग, भड़क भारत की होली है॥

(२)

गर्व—गुलाल लपेट, रङ्ग रिस का बरसाया है।
खाय वैर-फल फूट, फड़कता फगुआ पाया है॥
भरी अनबन से झोली है।
खुल २ खेलो फाग, भड़क भारत की होली है॥

(३)

शोणित लाल सुखाय, लटे तन पीले करवाये।

* "अनुराग-रत्न से उद्धृत।"

पट पट पीटें पेट, सांग भुक्खड़ भी भरलाये ॥
अधोगति सब की रोली है ।
खुल २ खेलो फाग, भड़क भारत की होली है ॥

(४)

गोरी-धन पर आज धनी की चाह टपकती है ।
श्यामा लगन लगाय, पिया की ओर लपकती है॥
चढ़ी चञ्चल पर भोली है ।
खुल २ खेलो फाग, भड़क भारत की होली है ॥

(५)

लोक-लाज पर लात, मार कर बात बिगाड़ी है ।
ऊल रहा हुरदङ्ग, सुमति की फरिया फाड़ी है ॥
अकड़ की चमकी चोली है ।
खुल २ खेलो फाग, भड़क भारत की होली है ॥

(६)

ऊल ऊल कर ऊन, ढमाढम ढोल बजाते हैं ।
थिरकें थकें न थोक, गितक्कड़, तुक्कड़ गाते हैं ॥
ठना ठन ठनी ठठोली है ।
खुल २ खेलो फाग, भड़क भारत की होली है ॥

(७)

सब के मस्तक लाल, न किस का मुखड़ा काला है ।
भङ्गड़ भस्म—रमाय, रहे हुल्लड़ मतवाला है ॥
न इसमें कएटक-टोली है ।
खुल २ खेलो फाग, भड़क भारत की होली है ॥

(८)

चढ़े न भ्रम की भङ्ग, कहीं पौराणिक-शङ्कर को ।
समझें अपने भूत, न ऐसे यूथ भयंकर को ॥
निरन्तर-समता होली है ।
खुल २ खेलो फाग, भड़क भारत की होली है ॥

भारतवर्ष के विश्वविद्यालयों में हिन्दी का स्थान ।

[लेखक-श्रीयुत राजेन्द्रप्रसाद एम० ए० बी० एल० ।]

इस विषय पर लेख लिखने की आवश्यकता बहुतों के देखने में नहीं आवेगी ।

यदि किसी अन्य देशवासी के सामने जो भारतवर्ष की वर्तमान अवस्था से परिचित न हो इस लेख को रक्खा जाय तो वह शीर्षक देखकर घबड़ा जायगा और वह लेख लिखनेवाले को पागल समझने लग जाय तो आश्चर्य की कोई बात नहीं है, क्योंकि ऐसे विषय पर विचार करने की आवश्यकता होना ही उस देश अथवा जाति के अधःपतन का बहुत बड़ा प्रमाण है । पर आज हमें इस विषय पर विचार करने की आवश्यकता है-आवश्यकता नहीं यह हमारा कर्त्तव्य है ; क्योंकि काल की गति से आज हम सब कुछ पढ़लेते हैं, पंडित बन जाते हैं, वैज्ञानिक बनाने का दम भरने लग जाते हैं, अङ्गरेज़ी के महाविद्वान् होने का दावा करने लग जाते हैं ; पर अपनी मातृभाषा से बिलकुल ही कोरे रह जाते हैं, उसमें एक पत्र भी शुद्ध शुद्ध नहीं लिख सकते, उसमें पढ़ने योग्य साहित्य भी है इसका तो हमें पताही नहीं चलता । इसके अक्षरों तक से हमें परिचय नहीं होता । आज भारतवर्ष में पांच विश्वविद्यालय विद्यमान हैं और अब नये नये विश्वविद्यालयों के बनाने की तैयारी हो रही है, पर भारतवर्ष के विश्वविद्यालय होने पर भी उनमें भारत की भाषा हिन्दी को स्थान नहीं है,—यदि कहीं स्थान है भी तो बहुत ही संकुचित । मैं इस लेख में यही दिखलाने का यत्न करूंगा कि हिन्दी के साथ यह बर्ताव अत्यन्त अन्याय का है

और इसी अन्याय के पाप से शिक्षा का प्रचार उतनी तेजी से नहीं हो सकता जितनी हम चाहते हैं।

जिन लोगों को भारत के किसी विश्वविद्यालय से किसी प्रकार का सम्बन्ध हुआ है वे जानते हैं कि कुछ दिन पहले हिन्दी क्या किसी भी देशी भाषा को (जिसे विश्वविद्यालयों के कर्मचारी Vernacular कहते हैं) पाठ्य विषयों में गिनती नहीं होती थी। आज इतना अवश्य हुआ है कि प्रत्येक विद्यार्थी को अपनी देशी भाषा में लिखने पढ़ने की योग्यता का प्रमाण देना पड़ता है-अर्थात् मैट्रिक्युलेशन परीक्षा के विषयों में देशी भाषा भी एक विषय है। इसके लिए भाषा का अथवा उसके व्याकरण और साहित्य का उस प्रकार का ज्ञान आवश्यक नहीं है जैसा कि अंगरेज़ी अथवा किसी दूसरी भाषा के साहित्य और व्याकरण का। यदि कोई विद्यार्थी संस्कृत, अथवा फारसी, लेटिन, अथवा ग्रीक, फ्रेंच अथवा जर्मन, हेब्रू अथवा अर्बी को अपना पाठ्य विषय चुनले तो उसे एम० ए० परीक्षा तक उस विषय को पढ़ने का अधिकार हो जाता है और वह एम० ए० की उपाधि भी उसी भाषा में प्राप्त कर सकता है।

पर हमारी हिन्दी की क्या दशा है? कलकत्ते के विश्वविद्यालय में हिन्दी का पठन बी० ए० परीक्षा तक अनिवार्य है पर हिन्दी साहित्य पढ़ना अनिवार्य नहीं-अर्थात् परीक्षा में ऐसे प्रश्न किये जाते हैं जिनसे केवल इस बात की जांच होती है कि विद्यार्थी कुछ हिन्दी में लिख पढ़ ले सकता है अथवा नहीं। उसे ग्रन्थ पढ़ना आवश्यक नहीं। यदि वह शुद्ध हिन्दी लिख सके तो उसे व्याकरण पढ़ने को भी आवश्यकता नहीं। उसे साहित्य से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं होने पाता। इसका फल यह होता है कि यद्यपि आज कल के विद्यार्थी हिन्दी में कुछ लिखने पढ़ने का अभ्यास कर लेते हैं पर उसके मधुर साहित्य के सरोवर का आनन्द उन्हें नहीं मिलता और जिसको साहित्य से आनन्द नहीं मिला वह फिर उस साहित्य की ओर क्यों ध्यान देने लगेगा? यही कारण है कि आज भाषा को जानते रहने पर भी लोग उसके रत्नों को नहीं जानते। यदि बी० ए० श्रेणी तक शिक्षा पाये हुए किसी विद्यार्थी से बातें कीजिए तो आपको स्पष्ट देख पड़ेगा कि अंगरेज़ी कवियों और ग्रन्थकारों से वह एक प्रकार परिचित तो है पर हिन्दी में तुलसीदास के अतिरिक्त और किसी भी कवि का नाम उसे मालूम नहीं। यदि हिन्दी और अंगरेज़ी दोनों भाषाओं को समान स्थान मिला रहता तो वही विद्यार्थी केवल शेक्सपीयर, मिल्टन और टेनिसन से ही नहीं किन्तु सूर, तुलसी और हरिश्चन्द्र के ग्रन्थों से भी परिचित रहता। इतना ही नहीं प्रत्युत् इन्हीं के ग्रन्थों को अधिक प्रेम से पाठ करता और इन्हों से अपना और देश का गौरव मानता और दुःख सुख में इन्हीं की पुस्तकों का आश्रय लेता।

खेद का विषय है कि देशी भाषा की शिक्षा के अभाव से, अपने साहित्य के रत्नों से अनभिज्ञ रहने से, हिन्दी भाषा की परीक्षा के लिए अनिवार्य विषय न रहने के कारण आज हमको वह देशप्रेम नहीं होता, मातृभाषा पर वह ममता नहीं होती। मैं तो यहां तक कहने को प्रस्तुत हूं कि यदि किसी जाति का जीवन नष्ट करना अभीष्ट हो तो उसकी भाषा का नाश कर देना ही उसके नष्ट करने का सबसे सुगम उपाय है, क्योंकि भाषा जीवित रहने पर और सब कुछ नष्ट हो जाने पर भी फिर वह मृतप्राय जाति जीवितावस्था को प्राप्त हो सकती है पर भाषा के नष्ट होजाने पर वह कदापि उठ नहीं सकती। इस लिए आज हमें अपनी भाषा को बचाये रखना हमारा परम धर्म है। और यह बहुत बड़ा पाप है कि हम अपनी भाषा से अलग रक्खे जायँ और अन्य २ भाषाओं द्वारा हमारी शिक्षा हो। यह ठीक उसी प्रकार का पाप है जैसे माता के

स्तनों से दूध टपकते रहने पर भी बच्चे को भूखा रक्खा जाय अथवा किसी अन्य जानवर का हानिकारक दूध पिलाया जाय।

अब प्रश्न यह रहा कि क्या हिन्दी में ऐसे ग्रन्थ हैं जो बी० ए०, एम० ए० श्रेणी के विद्यार्थी पढ़ सकते हों? मैं समझता हूं कि यह कहना कि हिन्दी में ऐसे ग्रन्थ नहीं हैं, केवल हिन्दी-भाषियों पर ही नहीं पर समस्त भारतवर्ष पर कलंक लगाना है। यह अवश्य स्वीकार करना होगा कि नई प्रथा की बहुत उत्तम पुस्तकें नहीं बनी हैं। बङ्गाल के हेमचन्द्र, बङ्किमचन्द्र, रमेशचन्द्र, मधुसूदनदत्त और रवीन्द्रनाथ जैसे लेखक और कवि हिन्दी में इधर बहुत नहीं हुए हैं। इसका कारण यह है कि बँगला में अंगरेज़ी पढ़कर के भी बंगभाषी महाशयों ने बंगभाषा का तिरस्कार नहीं किया। अपनी माता को माता समझते रहे और अन्य देशों से सुन्दर सुन्दर फूलों के गुच्छे लाकर उसके चरणों पर चढ़ाते रहे। पर हमारे हिन्दीभाषी अंगरेज़ी पढ़नेवालों का इस ओर ध्यान ही नहीं गया। फल यह हुआ है कि आजकल के नवशिक्षित युवक ऐसा समझने लग गये हैं कि हिन्दी में पढ़ने योग्य कोई पुस्तक ही नहीं है। इसके लिए हम उनको दोषी नहीं ठहराते, क्योंकि जिसकी शिक्षा बचपन ही से इस प्रकार की हुई है कि उसको अंगरेज़ो ग्रन्थों के अतिरिक्त और कोई ग्रन्थ देखने का अवसर ही नहीं मिला, जिसके भाव बचपन ही से अंगरेज़ी रंग में रँगे गये, जिसको अंगरेज़ो बोलना, पढ़ना, अंगरेज़ो चाल चलना और अंगरेज़ी की नकल सब कामों में करना बचपन ही से सिखाया गया, यहां तक कि जिसको अपने पवित्र धर्म की दीक्षा तक भी नहीं दी गई, वह यदि अपने देश के भावों को अपने कवियों के विचारों को न समझे तो आश्चर्य ही क्या है? ऐसे मनुष्य को यदि शेक्सपीयर के सोनिट (Sonnet) अच्छे लगें और बिहारी के दोहों से आनन्द न मिले तो आश्चर्य ही क्या है? ऐसे मनुष्य को यदि मिल्टन की कविता से, जिसमें ईसाई धर्म की बातें कूट कूट कर भरी हुई हैं, आनन्द मिले और तुलसीदास की रामायण रूखी, पुराने जमाने के मूर्खों की कहानी सी जचे जिसमें बहुत ऐसी बातें भरी हैं (Superstition) जिन पर कोई सभ्य (Civilized) मनुष्य विश्वास नहीं कर सकता तो यह खेद की बात अवश्य है पर इसमें आश्चर्य नहीं। इस प्रकार की शिक्षा पाये हुए मनुष्य को यदि हर्बर्ट की कविता पसन्द आवे और सूरदास भद्दा जँचे तो इसमें भी आश्चर्य नहीं। वह यदि कबीर की "उलटी बानी" और रहीम की सीधी बातें समझने में असमर्थ हो तो उसका कोई दोष नहीं है। यह हमारी शिक्षा का दोष है, हमारा नहीं। इसीलिए मैं कहता हूं कि हिन्दी को वही स्थान मिलना चाहिये जो अंगरेज़ी, संस्कृत, फारसी अर्बी, हिब्रू तथा अन्य देशीय और भाषाओं को विश्वविद्यालयों में मिला है। जब तक ऐसा नहीं किया जायगा, यह घोर अन्याय जो हम पर, हमारी सभ्यता पर, हमारे देश पर और हमारी मातृभाषा पर हो रहा है दूर नहीं होगा।

एक बात विचार करने की है कि क्या यह सचमुच दोष की बात है कि आज हिन्दी में अंगरेज़ी ढर्रे की बहुत पुस्तकें नहीं हैं? नकलबाजी बहुत सहज काम है, दूसरों के भाव लेकर ग्रन्थ रच देना उतना कठिन नहीं, अन्य भाषा और अन्य सभ्यता के विचारों को लेकर अपने घरों में फैलाना सुगम तो अवश्य है पर यह कहां तक लाभदायक है इसमें मतभेद हो सकता है।

इसलिए मैं यह कहता हूं कि यदि आज हिन्दी में अंगरेज़ी ढर्रे की अच्छी पुस्तकें, (मैं अच्छी पुस्तकों का ही उल्लेख करता हूं क्योंकि बुरी पुस्तकें बहुत बन चुकी हैं और बन रही हैं यहां तक कि Mysteries of London का भी अनुवाद "लंडन रहस्य" छपही रहा है) जो आज-

कल के अच्छे विचारवाले शिक्षित मनुष्य पढ़ सकें, नहीं बनी है तो यह एक प्रकार से हिन्दी का सौभाग्य ही समझना चाहिये, क्योंकि अभी तक वह निर्मल प्रवाह जो चन्दबरदाई से लेकर सूर, तुलसीदास आदि तक बहता आरहा है बाहरी वस्तुओं से गन्दा नहीं किया गया है। यदि मुसलमान कवियों ने हिन्दी में ग्रंथ लिखे तो वे भी हिन्दी और हिन्दू भाव ही को प्रधानता देते गये। यही एक सबूत है कि हमारी सभ्यता में कितना अधिक बल था, और आज यदि हम अपने भावों को प्रगट करने में लज्जा मानते हैं, अपने पूर्वजों के विचारों से घृणा करते हैं तो यह समझना चाहिये कि हमारा अधःपतन इससे और अधिक नहीं हो सकता। इसलिए यह समझना कि हिन्दी में अंगरेज़ी ढर्रे के ग्रंथ अर्थात् अपनी चाल छोड़ नकलबाजी के ग्रन्थ बहुत नहीं हैं यह एक बार ही दुःख की बात नहीं है। जिस जाति का साहित्य अन्य सभ्यता के विचारों को प्रकट करने की चेष्टा करता है और अपने भावों से संसार को वंचित रखता है वह ठीक उस प्रकार की चेष्टा करता है जैसा कि कौवा अपनी चाल छोड़ हंस की चाल चलने लगता है और फल यह होता है कि वह अपनी चाल भूल जाता है और हंस की भी चाल नहीं चल सकता।

हमारे विश्वविद्यालयो में अंगरेज़ी साहित्य का स्थान बहुत ऊंचा है। जिसे अंगरेज़ी सभ्यता के भावों को जानना है उनके लिए वह साहित्य खुला है। वह उसे पढ़ सकते हैं, उससे लाभ उठा सकते हैं। यहां तक कि इच्छा नहीं रहने पर भी सभी विद्यार्थियों के लिए कुछ कालतक अङ्गरेज़ी साहित्य का अध्ययन अनिवार्य है। तो फिर हिन्दी भाषा में अथवा किसी अन्य देशी भाषा में नकली अंगरेज़ी साहित्य पढ़ने का क्या आवश्यकता है ? हिन्दीसाहित्य द्वारा हिन्दी-भाषियों के भाव—विचार जानने ही की चेष्टा श्लाघनीय है। यदि यह मान लिया जाय कि हिन्दी साहित्य में अंगरेज़ी भावों का अभाव दोष नहीं वरन् इसके गौरव का कारण है तो कोई कारण ऐसा नहीं है जिससे हिन्दी को वही स्थान विश्वविद्यालयों में नहीं दिया जाय जो अन्य भाषाओं को दिया गया है।

आजकल जो अंगरेज़ी की पुस्तकें बी० ए० एम० ए० परीक्षा के लिए पढ़ाई जाती हैं वह प्रायः इस प्रकार की होती हैं (१) कुछ पुस्तकें शेक्सपियर, मिल्टन आदि के समय की (२) कुछ उनके भी पहले की जैसे चौसर आदि के ग्रन्थ (३) कुछ और भी पुरानी जैसे विउल्फ इत्यादि अथवा एलफ्रेड के समय की (४) कुछ पुस्तकें अर्वाचीन ग्रन्थ-कर्ताओं की लिखी हुई रहती हैं जैसे पद्य में टेनिसन, वर्डस्वर्थ, ब्राउनिंग, शैली इत्यादि का और गद्य में कारलाइल, डिकेन्स, थाकरी इत्यादि की। यदि इन ग्रंथों का समय और भाषा के विचार से विभक्त किया जाय तो यह स्पष्ट हो जायगा कि चतुर्थ श्रेणी की पुस्तकों को छोड़कर और सब प्रायः ३०० वर्ष के पूर्व की हैं और अधिकांश का भाषा ऐसो है जो आज की अंगरेज़ी भाषा से बिलकुल मिलता जुलता नहीं है। शेक्सपियर की भाषा और आज की अंगरेज़ी भाषा में इतना अन्तर है (शायद इससे अधिक ही होगा कम नहीं) जितना तुलसीदास सूरदास की भाषा और वर्त्तमान हिन्दी में। चौसर की भाषा तो मानो एक दूसरी ही भाषा है जैसे चन्दबरदाई की भाषा वर्त्तमान हिन्दी जाननेवालों के लिए बिलकुल ही एक नई भाषा है। फिर विउल्फ और एलफ्रेड की भाषा को तो अंगरेज़ी कहते ही नहीं, उसे एंग्लो सेक्सन कहते हैं। उसका मुकाबला शायद प्राकृत से हो। भेद यह होगा कि प्राकृत को संस्कृत ग्रन्थों में भी जहां तहां स्थान मिला है, पर इस एंग्लो सेक्सन को और कहीं स्थान नहीं मिला। आज यदि हमें अंगरेज़ी साहित्य में पाण्डित्य लाभ करने के लिए उस भाषा और साहित्य का ऐतिहासिक ज्ञान प्राप्त

करने के लिए कैसे ग्रन्थ पढ़ने की आवश्यकता होती है जिनसे न तो ऐहिक न पारलौकिक कोई भी लाभ नहीं होता तो हमें अपने देश की भाषा का ऐतिहासिक ज्ञान प्राप्त न करने देने का क्या कारण हो सकता है ? तेरहवीं शताब्दी के अंगरेज़ किस प्रकार से रहते थे, किस प्रकार से तीर्थाटन किया करते थे, भिन्न भिन्न श्रेणी के लोग आपस में किस प्रकार एक-दूसरे के साथ बर्ताव किया करते थे, पार्सन (पुरोहित) की क्या शकल होती थी और मिलर (चक्की चलानेवाला) कैसा होता था। इन सब बातों को जानने के लिए, और उस समय के अंगरेज़ी के व्याकरण का क्या रूप था यह जानने के लिए हमें चौसर और पियर्स प्लाउमैन पढ़ना आवश्यक है। पर हमारे पूर्वज कैसे वीर थे, उन्होंने किस प्रकार मुसलमानों के साथ युद्ध किया और उस समय के लोगों के जीवन का हाल जानने के लिए चन्द बरदाई का पाठ अनावश्यक है! १६वीं और १७वीं शताब्दी में इंगलैंड और यूरोप के अन्य देशों में किस प्रकार का धर्म विप्लव हुआ था इसके जानने के लिए मिल्टन की पुस्तकें पाठ्य हैं, पर भारतवर्ष का वही धर्म विप्लव जानने के लिए सूर, तुलसीदास, कबीर, नाभाजी, दादूदयाल, तथा रामदास की पुस्तक पाठ्य नहीं है! यह हमारे दुर्भाग्य की बात है। अब भी यदि हम अपने देश के सच्चे इतिहास से परिचित होना चाहते हैं तो देश के साहित्य का सञ्चय करें, अध्ययन करें और अपना गौरव अपने साहित्य में समझें। नहीं तो दूसरे के पर लगाकर जो उड़ने की चेष्टा करता है वह औंधे मुंह गिरता है। यही नहीं यह भारतवर्ष के विश्वविद्यालयों का धर्म है कि वे भारत के जातीय साहित्य की उन्नति नहीं तो उसका सञ्चय अवश्य करें। यदि उसके सञ्चय का प्रबन्ध हो जाय तो इसमें सन्देह नहीं कि उसकी उन्नति भी अवश्य होगी। भावी ढाका विश्वविद्यालय की समिति ने अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि अंगरेज़ी राज्य के समय बंगला का बहुत उन्नति हुई है और ढाका विश्वविद्यालय का यह कर्तव्य है कि उसकी और भी उन्नति का उपाय करे। खेद है बिहार के भावी विश्वविद्यालय के अविभावकों को यह बात न सूझी। सूझती कैसे उनमें हिन्दी का प्रेमी कोई भी नहीं था ? सभी अंगरेज़ी के रंग में रँगे हुए थे और हिन्दी को बिना जाने हुए भी बहुत तुच्छ दृष्टि से देखनेवाले थे। इसका खेद और लज्जा हम लोगों को होना चाहिये। पर केवल इसीसे काम नहीं चलेगा। बम्बई प्रान्त में मराठी भाषा एम० ए० उपाधि परीक्षा के लिए भी पाठ्यविषयों में है। कुछ ही दिन हुए कि कलकत्ता विश्वविद्यालय के वाइस चान्सलर माननीय डाक्टर देवप्रसाद सर्वाधिकारी महोदय ने कहा था कि वह दिन अब दूर नहीं है जब बँगला को भी वही स्थान दिया जावेगा जो अंगरेज़ी और अन्य दूसरी भाषाओं को मिला है। इससे आशा की ज़ाती है कि बंगला भी शीघ्र ही एम० ए० के लिए स्वतन्त्र पाठ्य विषय हो जायगी। पर बेचारी हिन्दी के लिए अभी तक किसी ने ज़बान नहीं खोली। यहां तक कि जो अपने को हिन्दीभाषी कहने का दम भरते हैं और उसी के भरोसे बँगला से अलग होने का दावा करते हैं वे भी अवसर पाने पर इसे भूल गये। जो हुआ सो हुआ अब हिन्दीभाषाभाषियो, कमर कस कर तैयार हो जाइये, जिसमें हिन्दी को भी वही उच्चस्थान कम से कम हिन्दीभाषी प्रान्तों के विश्वविद्यालयों में मिल जाय जो बंगाल में बँगला को और महाराष्ट्र में मराठी को मिला है।

मैं तो यह कहूंगा कि हिन्दी को भारत के सभी विश्वविद्यालयों में स्थान मिलना चाहिये। क्योंकि यदि यह मान भी लिया जाय कि संस्कृत, अर्बी फारसी और अंगरेज़ी को उच्च स्थान विशेष कारणों से सभी विश्वविद्यालयों में दिया गया है तो वही स्थान लैटिन, ग्रीक, हिब्रू आदि

को देने का क्या कारण हो सकता है ? केवल उनके साहित्य की उच्चता और भाषा विज्ञान में उनका स्थान। मैं समझता हूं कि हिन्दी देशभक्ति और देशगौरव के विचार से नहीं तो उसके साहित्य और भाषाविज्ञान द्वारा उससे सहायता मिलने की आशा से, एम० ए० श्रेणी तक पढ़ाई जाय। हिन्दीभाषियों के लिए यह कम लज्जा की बात नहीं है कि मराठी, बँगला जैसी प्रान्तिक भाषाएँ तथा अन्य देशीय भाषाएँ इस स्थान को प्राप्त कर सकें पर हिन्दी उससे वञ्चित रक्खी जाय। क्या हिन्दीभाषी इस ओर ध्यान देंगे? यदि वह अपना इसमें गौरव समझेंगे और तन, मन, धन, से चेष्टा करेंगे तो अवश्य सफल होंगे।

सर्वोत्तम लेख।*

[लेखक—श्रीयुत कृष्णाराम झा।]

फिलिप मार्स्टन पच्चीस वर्ष का भी नहीं हुआ था कि उसने संदर कविता, छोटी २ कहानियां तथा लेख लिखना आरम्भ कर दिया था। भविष्य में उन्नति करने के लिए उसे कोई आशा नहीं थी। उसका संसार में कोई निकट सम्बन्धी न था। वह दुःख सुख से किसी प्रकार एक छोटे से भाड़े के घर में रहता था और उसी घर में रहती हुई एक युवती से उसका प्रेम था। उस युवती का नाम मोली पन्डूस था। वह छोटे २ बालकों को संगीत शिक्षा देती और उसी से अपना निर्वाह करती थी। फिलिप जिस घर में रहता था उसी घर में उस युवती ने एक कमरा भाड़े का लिया था और उसी स्थान में वह बालकों को पढ़ाती थी। उसके माँ बाप नहीं थे और उसके सम्बन्धी भी कोई न था और यदि कोई रहा भी होगा तो उसे वह नहीं जानती थी। फिलिप और मोली को स्वाभाविक ही एक दूसरे पर दया आती थी। वह दया पहिले मित्र रूप में थी किन्तु कुछ काल के उपरान्त वह प्रेम में परिणत हो गई। जब फिलिप को मालुम हुआ कि मोली के प्रति उसका शुद्ध और दृढ़ प्रेम है तो उसने एक दिन मोली के सन्मुख अपना प्रेम प्रगट किया और मोली से सन्तोषजनक उत्तर मिलने पर दोनों प्रेम से रहने लगे।

मोली बड़ा कठिन परिश्रम करने लगी। जिससे उन दोनों का विवाह शीघ्र ही हो जाय इससे फिलिप उत्साह और उमंग से कविता और चुटकले लिखने लगा। दो तीन नाटक भी उसने लिखने शुरू कर दिये। इससे मासिक पत्रिकाओं में उसका नाम छपने लगा और उसीसे उसको कुछ द्रव्य मिलना आरम्भ हुआ। थोड़े ही काल में प्रसिद्ध 'मेट्रोपोलिटन' पत्र में उसका लिखा हुआ एक बड़ा उपन्यास छपने लगा।

फिलिप के लिए तो वास्तव में वह बड़ा सौभाग्य का दिन था जब उसका लिखा हुआ उपन्यास पत्र में छपना प्रारम्भ हुआ। उसदिन वह घमंड में अपना लेख मोली को दिखलाने के लिए शीघ्र ही आया और मोली ने भी बड़ी प्रसन्नता से लेखक का नाम पढ़ा।

उस लेख की सफलता के जोश में फिलिप ने एक नया टाईपराईटर मोल ले लिया और फिलिप और मोली फिर कुछ सुखस्वप्न देखने लगे। पर हाय! उनका यह आनन्द शीघ्र ही

* गुजराती के एक लेख से अनुवादित।

समाप्त हो गया—प्रकाश जाता रहा और सर्वत्र अन्धकार हो गया।

बहुत दिनों से जब फिलिप रात्रि में दीपक के सामने काम करता था तब उसकी आँख के सामने अँधेरा आजाता था पर उसका कुछ ख्याल न कर वह काम करता जाता। धीरे २ उसकी आँखें कमज़ोर होने लगीं और अन्त में उसकी आँखों की ज्योति एकदम नष्ट हो गई। उसने आँख के डाक्टरों को अपनी आँखें दिखलाईं परन्तु उसको हर डाक्टर ने निराशाजनक उत्तर दिया। डाक्टर लोग फिलिप के हृदय में एक आशा की किरण फेंकते थे। वह यह थी कि चीरा लगाने से सम्भव है कि आँख ठीक हो जाय और उसके सिवा और कोई उपाय नहीं है।

चीरा लगाया गया पर वह किसी काम न आया। फिलिप अब आशाहीन अन्धा था। अब फिलिप मार्स्टन बेचारा अन्धा हो गया। वह टेबिल के सामने बैठा था—उसके सन्मुख बिना खाया हुआ भोजन रक्खा हुआ था—उसको अब किसके लिये खाय? क्या जीवन धारण करने के लिए? जीवन—अन्धकारमय जीवन—अब उसके किस काम का था? इतने में मोली का स्नेहभरा हाथ उसके कन्धे पर पड़ा और वह प्रेम से बातें करने लगी, "प्यारे फिलिप! तुम्हारे बदले मैं लिखूंगी और मुझसे जितना बनेगा उतना मैं तुम्हारी सहायता करूंगी। अभी आप बहुत कुछ कर सकेंगे; निराश होने का क्या कारण है?"

फिलिप ने शान्तिपूर्वक उत्तर दिया, "नहीं मोली, अंधा हो तुझे मैं अपने पास कदापि बांध न रक्खूगा।" मोली ने अपना मस्तक उसकी गोद में रख दिया और बोली "फिलिप! क्या हम लोगों को एक दूसरे की सहायता न करनी चाहिये? आपकी आँख नष्ट हो गई तो क्या मैं आपको छोड़ दूंगी? ऐसा आप विश्वास कर सकते हैं? कदापि नहीं इसके तो मैं आपको पहिले की अपेक्षा अधिक प्यार करूंगी और मेरी आँखें हम दोनों की आँखों का काम देंगी।"

फिलिप, "परमात्मा तुझको प्रसन्न रक्खे, मोली! "तेरे सिवा मेरा और कोई नहीं है। विश्व में मेरा सर्वस्व तूही है प्यारी मोली"

मोली आनन्द से बोल उठी "अच्छा तो यह बात ठीक हो गई।" और उसके नेत्रों से प्रेमाश्रु बह निकले। वह फिलिप के सामने 'टाईपराइटर' ले आई और बोली इसपर अपने हाथ धरिये और मुझ को टाईपराइटर चलाना सिखलाइये।"

फिलिप ने धीरे २ उसपर उंगलियां फेरनी आरम्भ कीं और वह सहसा चौंक उठा। वह हर्ष से बोल उठा "मोली, थोड़े समय में तो मैं स्वयं ही इसपर काम कर सकूंगा अक्षरों को ध्यान में रखना ही मेरे लिए आवश्यक है और फिर तो हे सुन्दरी! मैं बड़ी सरलता से लिख सकूंगा।"

उसका चेहरा विचार और उत्साह से गंभीर होगया और चाहे कितनाही परिश्रम क्यों न करने पड़े पर स्वतंत्र काम करनाही उसे उचित जचने लगा। अक्षरों को धीरे२ पहचानने के लिए वे दोनों उसपर हाथ फेरने लगे और थोड़े ही समय में फिलिप स्वतंत्रता से 'टाईपराईटर' से काम लेने लगा। प्रत्येक कागज़ को यंत्र पर धर के पूर्व वह गिन कर रखता और लिखे हुए पत्रों को वह अपने पैर के पास रक्खी हुई टोकरी में डालता जाता था। मोली संध्या समय अपने काम से छुट्टी पाकर वहां आती और सब कागज़ों को ठीक २ लगाकर समाचार पत्रों के सम्पादकों को भेज देती थी। लेख छप जाते थे और उनसे रुपया जो मिलता था वह बैंक में जमा हो जाने से बहुत कुछ हो गया था।

मोली उसी की है तो अन्धकार में भी उस का जीवन सुखमय आनन्दमय हो जायगा। फिलिप बिचारता था कि यदि उसके पास सौ पाउन्ड और आ जायँ तो वह अपना विवाह मोली से कर ले। एक दिन सायंकाल को मोली फिलिप के पास कुछ शीघ्र आई और उसके हाथ में 'मेट्रोपालिटन' पत्र का नवीन अंक था। इसमें एक नई खबर छपी हुई थी। कितने ही टीकाकारा का यह मत था कि उपन्यास लिखनेवालों में तरुण की अपेक्षा वृद्ध अधिक अच्छा लिखते हैं और उसमें छोटे चुटकले तो वृद्ध तरुण की अपेक्षा कहीं अधिक अच्छे लिखते हैं। इस पत्र का सम्पादक इस मत के विरुद्ध था और उस का मत था कि कितनेही अच्छे युवक लेखक वर्तमान हैं। अपने मत को सिद्ध करने के लिए २७ वर्ष की आयु तक के लेखकों को उसने लेख लिखने के लिए उत्तेजित किया था और 'सर्वोत्तम' लेख के लिखनेवाले को सौ पाउन्ड का इनाम रक्खा था। शर्त यह थी कि लेख दस हजार शब्दों से अधिक बड़ा न हो और वह आगामी मास की आखिरी तारीख तक पहुंच जाय।

मोली जब पढ़ रही थी तो फिलिप बोल उठा "मोली मैं यह सौ पाउन्ड उपहार पाने की चेष्टा करूंगा और यदि वह उपहार मुझको मिलगया तो हम लोग अपने विवाह के दिन कहां बितावेंगे!" मोली का हृदय भी प्रेम से गद्गद हो गया। उसी दिन से उस उपहार के योग्य लेख लिखने के लिए वह मनन करने लगा। दस बारह लेख उसने लिख डाले किन्तु उसमें कुछ न कुछ न्यूनता रह ही जाती थी और उन्हें वह उपहार पाने के योग्य नहीं समझता था। लेख भेजने का दिन निकट आता जाता था। दो सप्ताह बाकी रह गये और अंत में तो एक ही सप्ताह रह गया तथापि भेजने लायक संतोषजनक लेख उससे नहीं लिखा गया।

तीसवीं तारीख भी आपहुंची और लेख इकतीसवीं तारीख को मध्याह्न के बारह बजे तक पहुंच जाना चाहिये। रात्रि में फिलिप देर कर के सोने गया। बड़ी २ कल्पनाओं और विचारों से उसका सिर दर्द कर रहा था। उसने लेख के पीछे बहुत परिश्रम किया था और वह सर्वोत्तम लेख लिखने में समर्थ नहीं हुआ। सौ पाउन्ड क्या उसका भला कर देते? उसने कई घंटे जागृत अवस्था में काटे और बारह बजने का घंटा उसने सुना!—एक बजा—दो बजे और फिर तीन बजे—और फिर उसको निद्रा आगई और उपहार का स्वप्न उसको आने लगा। उसको स्वप्न आया कि उसने एक लेख भेज दिया, उपहार उसको मिल गया और फिर सुन्दरी मोली से उसका विवाह हो गया। फिलिप एकदम जाग उठा। उसके कमरे में धूप पहुंच गई थी।

उसकी बुद्धि शान्त थी, स्वप्नावस्था में जो लेख लिखा था वह जागृत अवस्था में सत्य ही प्रतीत होता था। वह स्वप्न न था किन्तु ईश्वरीय प्रेरणा थी। वह बिछौने से उठ पड़ा और पास के कमरे में जाकर एक कागज़ का पुलन्दा ले आया और 'टाइपराईटर' के सामने बैठ गया। स्वप्न में लिखा हुआ लेख धीरे २ स्पष्ट होता गया और हर एक शब्द उसके अन्धे नेत्रों के सामने आने लगे और वह एकदम लिखता ही गया और बड़े उत्साह और उमंग में वह पेज पर पेज लिखता ही गया। उन सब कागज़ों को वह टोकरी में डालता गया। यही उसका 'सर्वोत्तम लेख था।

इस लेख पर उसको उपहार अवश्य मिलेगा यह उसका पूरा विश्वास था और इस लेख के सदृश और कोई नहीं लिख सकता यह वह मानता था। वह बराबर लिखता ही गया और अन्त में संतोषजनक निश्वास छोड़कर उसने आखिरी पत्र टोकरी में डाला।

"नौ बजे हैं साहब" उसकी मज़दूरिन ने किवाड़ खटखटाकर कहा। "बहुत अच्छा मैं अभी आता हूं" फिलिप ने जवाब दिया। थोड़े समय में वह हाथ मुंह धोकर भोजन के लिए तैयार हो गया और खूब पेट भर कर उसने आनन्द से भोजन किया।

फिलिप ने मज़दूरिन से कहा "मिस पेन्ड्स को बहुत जल्दी यहां बुला ला" "मोली! भीतर आना" वह मोली के पैर की आवाज़ सुनकर बोल उठा और वह भीतर आई और फिलिप की आनन्दभरी वाणी सुनकर आश्चर्य करने लगी। "मेरा उपहारवाला लेख पढ़ना तो" फिलिप ने टोकरी की तरफ हाथ बढ़ाकर कहा मोली ने इसमें कागज़ों का ढेर देखा। "मोली! प्यारी मोली!! अन्त में मैं इस लेख को एक आश्चर्यजनक स्वप्न की सहायता से लिख सका हूं और इसका पूरा हाल फिर बतलाऊंगा। वास्तव में लेख बहुत ही उत्तम लिखा गया है और उपहार मुझको अवश्य मिलेगा। इसके कागज़ों को नम्बरवार तू लगा देगी? अभी हम लोगों को समय है। दस ही तो बजे हैं। चलो हम लोग इस लेख को 'मेट्रोपोलिटन' आफिस में दे आवें। सौभाग्य से बारह बजने तक तो हम लोग वहां पहुंच जायँगे।"

प्यारे फिलिप!! मुझको कितना आनन्द हुआ है?" मोली कागज़ की टोकरी खाली करते समय बोली।

फिलिप ने कागज़ों को टेबिल पर गिरते हुए और फिर मोली को शोकपूर्ण सांस छोड़ते हुए सुना। कागज़ों पर एक भी अक्षर नहीं लिखा गया था, वे एकदम कोरे थे!!

"क्या है मोली? मैंने पंक्तियां तो बराबर सीधी लिखीं हैं कि नहीं? तुझको लगाने में परिश्रम न पड़े इस हेतु मैंने हमेशा की तरह उनपर पृष्ठ के नम्बर तो दे दिये हैं।"

मोली ने मेज़ पर हाथ रख कर उस पर अपना सिर टेक दिया और बिना कुछ बोले वह उन कोरे कागज़ों को शोक से देखने लगी।

"क्या कुछ भूल हुई है?" फिलिप ने आतुरता से पूछा। मोली ने उसकी तरफ़ देखकर फिर कागज़ों को देखा और धीरे से वह टाइपराईटर के पास गई और वह उसको देखने लगी। टाईपराईटर लिखनेवाली पट्टी से जोड़नेवाला रिबन (फीता जिस पर अक्षर पड़ने से कागज़ पर छप जाते हैं) न था।

अगले दिन टाइपराईटर से दिन भर काम लेने से वह "रिबन" टूट गया होगा। जब फिलिप वहाँ से उठा होगा तो उसने सोचा होगा कि फिर काम करने के समय रिबन बदल दूंगा। इस लेख लिखते समय वह रिबन लगाना भूल गया। परिणाम यह हुआ कि उसके सर्वोत्तम लेख का एक अक्षर भी नहीं छपा था। और कोरे कागज़ों का ढेर लगा गया था।

उस लेख को अब फिर लिखने के लिए बहुत देर हो गई थी। मोली यह सब देखकर रोपड़ी और फिलिप को अपने पास बुलाकर सब हाल कह सुनाया।

* * *

प्रभात होने के पूर्व सब से अधिक अन्धकार हो जाता है यह वास्तव में सत्य है।

"मोली! गिरे हुए दूध पर अब व्यर्थ शोक करने से क्या लाभ है?" फिलिप ने उसको धीरज देते हुए कहा "सौ पाउन्ड जाने को थे वे तो गये पर यदि मैं चेष्टा करूंगा तो फिर अक्षर २ लिख लूंगा इससे परिश्रम एकदम निष्फल तो नहीं जायगा।"

मोली के नेत्र आनन्द से चमकने लगे। वह बोली "क्या वास्तव में आप फिर से लिख सकेंगे?" "हम लोग उसको और दूसरे पत्र में भेज देंगे" "हां, पर उसके लिए अब मुझको वह उपहार नहीं मिलेगा" फिलिप ने मुसकरा कर कहा।

मोली उसको धीरज देकर संगीत सिख-लाने गई और फिलिप उस गंभीर लेख को फिर से लिखने के लिए बैठा।

दोनों हाथों पर उसने अपना मस्तक टेका और उस आश्चर्यजनक स्वप्न को याद करने लगा। थोड़ी देर में उसको सब याद आने लगा। पहले तो धीरे २ स्मरण होने लगा और फिर लिखना प्रारम्भ करते ही सब दृश्य उसके सामने जल्दी २ आने लगा। अपने विचारों को वह कागज़ों पर लिखने लगा और फिर पेज पर पेज टोकरी में डालने लगा। अन्तिम पृष्ठ और अन्तिम वाक्य लिखने के बाद उसने एक दीर्घ श्वास खींची और कुरसी पर आराम करने लगा।

इतने में ही दरवाजा खटकता हुआ उसने सुना।

फिलिप ने कहा "भीतर आओ"। आगन्तुक मोली थी। एक पत्र उसके हाथ में था और दौड़ कर आने से उसका दम फूल रहा था।

"अरे, फिलिप" !! वह साँस को छोड़ते हुए बोली।

"मोली ! क्या है ? क्या हुआ ?"

"सुनिये, फिलिप सुनिये" वह बोली आज मेट्रोपोलिटन पत्र का नया अंक प्रकाशित हुआ है।

"मैं पढ़ती हूं उसको आप बराबर ध्यान देकर सुनते जाइये।" उसने सम्पादकीय टिप्पणियाँ पढ़नी प्रारम्भ कीं।

"सौ प्राउन्ड के उपहार का समाचारः—कितने ही लेखकों के आग्रह से हमने पहले की तारीख बदल दी है और इस महीने की २० तारीख रक्खी है। लेखकों के लिए अब लेख भेजने की अन्तिम तारीख २०वीं रक्खो गई है।"

"मोली ! प्यारी मोली !! यह बहुत आनन्द-दायक समाचार है" फिलिप बोल उठा और लिखे हुए कागज़ों की तरफ़ उसने अपना हाथ बढ़ाया। मोली ने बड़ी आतुरता से उधर देखा। वह एकदम वहां गई और वहां सब परिपूर्ण था। कागज़ों को उसने नम्बरवार लगा दिया और उसको उसके लेखक को सुनाने लगी। पढ़ते २ वह उसकी बड़ी प्रशंसा करने लगती थी।

"अरे ! बहुत ही उत्तम लेख है" पढ़ने के बाद मोली ने कहा—"खराब तो नहीं है?" उसके लेखक ने पूंछा।

दूसरे दिन फिलिप और मोली उस लेख को पत्र के आफिस में पहुंचा आये और अन्त में परिणाम का दिवस आही पहुंचा।

मोली धड़कते हुए कलेजे से उस पत्र का एक अंक फिलिप के पास लाई। बिना फिलिप के उसे पत्र खोलने का साहस न हुआ। उसने सम्पादक के लेख की तरफ दृष्टि डाली और उसके सामने अक्षर नाचने लगे और फिलिप मार्स्टन का नाम बड़े २ अक्षरों में लिखा हुआ उसको दिखलाई पड़ा। उसके लेख की प्रशंसा बहुत कुछ लिखी थी और अन्त में सौ पाउन्ड का जीतनेवाला, वही है यह छपा था।

मोली यह समाचार गद्गद कंठ से पढ़ रही थी और फिलिप बड़े ध्यान से उसको सुन रहा था। उसका मुखारबिन्द आनन्द से खिल उठा और उसने दोनों हाथ मोली के कन्धे पर रख दिये।

जिस समय वह पढ़ रही थी उस समय वहां एक दम शान्ति फैल रही थी।

वह उपकार से भरे हृदय से बोल उठा "भक्तवत्सल परमात्मन्", मोली धीरे से बोली "हे मेरे प्यारे फिलिप मैं कितनी प्रसन्न हुई हूं यह क्या तुम जान सकते हो।"

हतभागिनी हिन्दी ।

[लेखक—श्रीयुत भागवतसिंह शर्मा ।]

दयामय जगदीश ईश्वर
दीनरक्षक हे प्रभो ।
दीन होकर विलपती हूं
खोयकर सारा विभो ॥
मेरे बहुत से पुत्र हैं
पर सब बड़े अज्ञान हैं ।
मातृभाषा की भलाई
का तनिक न ध्यान है ॥ १ ॥

भाषण लिखत निज मातृभाषा
में निरा अपमान है ।
मानदायिनि म्लेच्छ भाषा
बस यही अनुमान है ॥
मित्र के शुभ आगमन में
बन्दगी करते सप्रेम ।
शृगाल सी आकृति बना
गुडमार्निं करना है नेम ॥ २ ॥

नेह अवगुण गेह भाषा
से लगा है नाथ अब ।
कर्कशा ठगनी हुई है
प्रेम भाजन वेसबब ॥
छोड़कर अमृत कलश को
विष पर इनकी चाह है ।
क्या होयगा परिनाम इसका
तनिक नहिं परवाह है ॥ ३ ॥

मरि व्यर्थ झूठी झलक में
घर का गवांते हे प्रभो ।
असिल तजि कर नकल गहते
लोभ में पड़कर विभो ॥
अपना बदलते कर्म पर वो
मर्म कुछ पाते नहीं ।
हैट कालर के सिवा कुछ
हाथ बस आते नहीं ॥ ४ ॥

अपना बचा है शेष जो
उसको सम्हालो धैर्य धर ।
उन्नति करो जी तोड़ कर
पावोगे सब कुछ मित्रवर ॥
निज मातृभाषा देश की
उन्नत करो नित रूप में ।
गुण छोड़ि अवगुण ग्रहण करि
नाहक पड़ो मत कूप में ॥ ५ ॥

हिन्दी तुम्हारी आर्यभाषा
सर्व भाषों से भली ।
परचार इसका हिन्द में हो
ना बचे कोई गली ॥
सरकार में शुभ थान पावे
मान सब दरबार में ।
हो प्रयोगित भारतीयों
के सकल शुभ कार में ॥ ६ ॥

व्यास पाणिनि अंगिरा से
सुत इसे फिर प्राप्त हों ।
सतयुग यहां फिर लौट आवे
दूर सब परिताप हों ॥
सत्य का आतंक भारतवर्ष में
फिर जाय जुट ।
झूठ टट्टी धोखे की
फन्दा यहां से जाव फुट ॥ ७ ॥

भारत-भारती ।

[लेखक-श्रीयुत उद्भट ।]

हिन्दी में आजकल समालोचनाएँ होती हैं उनमें से बहुतों की यदि समालोचना कीजाये तो जान पड़ेगा कि वे आँखवालों के लिए नहीं अंधों के लिए की जाती हैं। समालोचक यह मान लेते हैं कि उनके लोचनों की परीक्षा करनेवाले कहीं नहीं हैं। वे उनपर चाहे जिस प्रकार का चश्मा चढ़ाकर चाहे जिसको छोटा, बड़ा, श्वेत, कृष्ण कह सकते हैं। वे अपने या अपने भक्तों के लिए अन्योन्याश्रय धर्म का पालन करते हुए समाज में एक कृत्रिम रुचि की स्थापना तक करने का उद्योग करते हैं और अपने झंडे के नीचे ऐसे लोगों की एक टोली बसाना चाहते हैं जो किसी विषय में अपना निज का कोई विचार नहीं रखते। ऐसे समालोचकों की समालोचना की जो परवा करें वे असमर्थ, जो गर्व करें वे अहंकारी और जो कुछ मूल्य समझें वे अंधे हैं।

भद्दी कविता की चर्चा जिस प्रकार इधर बहुत दिनों से सुनाई पड़ती है उसी प्रकार इस चर्चा को बन्द करने का प्रयत्न भी बहुत कुछ देखने में आता है। पर जब तक भद्दापन है तब तक यह चर्चा बंद होने की नहीं। यद्यपि यह चर्चा तभी से उठी है जब से 'त्वदीय, मदीय, यथा, तथा,' ऐसे पदों की निःसार भावशून्य योजना कविता के नाम से आरम्भ हुई, पर बा० मैथिलीशरणगुप्त के पद्यात्मक पद्य आकस्य के साथ इसका प्रवाह भी बढ़ा और इसके रोकने का अर्थात् लोक की मार्मिकता को नष्ट करने का—प्रयत्न था। इस नाशकारी प्रयत्न को व्यर्थ करना प्रत्येक काव्य-मर्मज्ञ का कर्त्तव्य है! अपनी रुचि का कोई जहाँ तक चाहे वहां तक भ्रष्ट करे पर आदर्श भ्रष्ट करने का अधिकार किसी को नहीं है।

आज "भारत-भारती" हमारे सामने है। यदि इसके पहले भी वही भूमिका लगी होती जो "पद्यप्रबन्ध" के आदि में है तो कुछ कहने सुनने की बात न थी, पर जब पुस्तक छपने के बाद ही लेखक महाशय ने उसकी उच्चता की घोषणा अपने मुह से एक गद्य-लेख द्वारा सरस्वती में की (ध्यान रखना चाहिये कि इसके पहले गुप्त जी को गद्य-लेख द्वारा कविता के आदर्श बतलाने की आवश्यकता नहीं पड़ी थी क्योंकि इस विषय पर बहुत से गंभीर और विचारपूर्ण लेख मासिक पत्रिकाओं में निकल चुके हैं) और उनके एक पूज्यवर उसे उच्चभावपूर्ण तथा काव्य में एक नया युग तक उपस्थित करनेवाली कहने लगे तब आदर्श पर लाञ्छन लगते देख कुछ लिखना ही पड़ता है। काव्य के एक बार आदर्श भ्रष्ट हो जाने पर पीछे उसे सँभालना बहुत कठिन हो जाता है।

'भारत-भारती' पर विचार करते हुए पहिले तो हम यह देखेंगे कि उसमें काव्यत्व कहां तक आया है, फिर उसकी वाक्यरचना आदि पर विचार करते हुए प्रसंगवश यह भी विवेचित करेंगे कि उच्चभावपूर्ण कविता किसे कहते हैं। हमारे यहां के आचार्यों ने काव्य के मुख्य अंग तीन माने हैं—रस, ध्वनि और अलंकार।

रस।

रस द्वारा वह सम्बन्ध पुष्ट किया जाता है जो भिन्न भिन्न वस्तुओं और व्यापारों के साथ मनोवेगों का होना चाहिये अर्थात् उसके द्वारा मनोवेग तीव्र और परिष्कृत किए जाते हैं। जिस प्रकार चेष्टा मंद होने पर चन्द्रोदय आदि रस दिए जाते हैं उसी प्रकार मनोवृत्तियों को उभाड़ने के लिए वीर, करुण आदि रसों के छींटे दिए जाते हैं। अब 'भारत-भारती' के

किसी पद्य को उठा लीजिए और देखिए तो उसमें मनोवेगों को उभाड़ने की कितनी शक्ति है। शिक्षित समाज में बहुत दिनों से प्रचलित, तथा पढ़े लिखे लोगों के मुंह से नित्यप्रति सुनाई पड़नेवाली साधारण बातों का उसमें सूखा उल्लेखमात्र मिलेगा। अतीत खंड में इतिहास की बातों की खतिऔनी भर की गई है। हमारे यहां "कलाकौशल्य था, चित्रकारी थी, "ज्ञान था, विज्ञान था" स्थूल रूप से इतना ही देखना हो तो अतीत खंड का कोई पृष्ठ खोल लीजिये और इसी प्रकार के पद्य पढ़ चलिये।

निज चित्रकारी के विषय में
क्या कहें क्या क्रम रहा।
प्रत्यक्ष है या चित्र है
यों दर्शकों को भ्रम रहा ॥
इतिहास, काव्य, पुराण नाटक,
ग्रंथ जितने दीखते।
सब से विदित है चित्र रचना
थे यहां सब सीखते ॥

अब इसका अन्वय कीजिए--निज चित्रकारी के विषय में क्या कहें कि क्या क्रम रहा, दर्शकों को भ्रम रहा कि प्रत्यक्ष है या चित्र है। इतिहास, काव्य, पुराण, नाटक, जितने ग्रन्थ दीखते हैं सब से विदित है कि यहां सब चित्र-रचना सीखते थे।

अब पाठक ही बतलावें कि अन्वय करने पर बचा क्या जिसे कोई कविता कहे। पद्य का क्रम तोड़ देने से जो कुछ शेष रहता है वह भावपूर्ण अच्छा गद्य भी नहीं कहा जा सकता, कविता की तो बात ही जुदी है। अब वर्त्तमान् खंड के भी दो एक पद्य देखिये

(६२)

था समय वह भी एक जो
अब स्वप्न जा सकता कहा।
घी तीस सेर विशुद्ध रुपये
में हमें मिलता रहा॥
देहात में भी सेर भर से
अब अधिक मिलता नहीं।
दुर्बल हुए हम आज यों
तनु भार भी झिलता नहीं ॥

(११५)

दुर्विध प्रजा का द्रव्य हर
फूंकते हैं व्यर्थ वे।
सत्कार्य करने के लिए हैं
सर्वथा असमर्थ वे ॥
चाहे अपव्यय में उड़े
लाखों करोड़ों भी अभी।
पर देशहित में वे न देंगे
एक कौड़ी भी कभी ॥

इन दोनों को भी ज़रा अन्वय कर डालिये (६२) एक समय वह भी था जो अब स्वप्न कहा जा सकता है (जब) रुपये में तीस सेर विशुद्ध घी हमें मिलता रहा। अब देहात में भी सेर भर से अधिक नहीं मिलता। हम आज यों दुर्बल हुये कि तन का भार भी नहीं झिलता। (११५) वे प्रजा का द्रव्य दुर्विध हर कर फूंकते हैं, वे सत्कार्य करने के लिए सर्वथा असमर्थ हैं। अपव्यय में चाहे लाखों करोड़ों अभी उड़े पर देशहित में वे कभी एक कौड़ी भी न देंगे।

इतनी बातें तो जिनका कविता से कुछ भी सम्पर्क नहीं है वे भी जब चाहें तब कह सकते हैं। घी का भाव बताना कवियों का काम नहीं है अढ़तिए बनियों का काम है। ऐसे पद्यों को कविता नहीं कह सकते। कहां तक दिखावें, सारी पुस्तक ऐसे ही पद्यों से भरी है एकआध जगह जहां कुछ चमत्कार देख पड़ता है वहां इसारों से लिये हुये भाव हैं, जैसे—.

इस लोक में उस लोक से
वे अलग सुख पाते न थे।
हँसते हुए आते न थे
रोते हुए जाते न थे॥

यह भाव फारसी के इस शेर का है:—

याद दारी कि वक्ते ज़ादने तो।
हमः खंदां बुवंद तू गिरियां ॥ इत्यादि।

पर इस भाव को भी खूबसूरती के साथ निबहते न बना। और देखिये—

ऋण भार दिन दिन बढ़ रहा है
दब रहे हैं हम यहां।
देना जिन्हें हो कुछ नहीं
भी पास उनके है कहां ॥

यह "कुछ नहीं" शेक्सपियर के I have less than nothing का भाव है जो आपने Merchant of Venice के किसी हिन्दी अनुवाद से लिया है पर शेक्सपियर के "कुछ नहीं से कम" में जो भाव था उसे "कुछ नहीं भी नहीं है" करके आपने निरर्थक कर दिया। इसी प्रकार "होंगे न दोनों नेत्र प्यारे एक से किस को भला?" सरसैयद अहमद की प्रसिद्ध उक्ति है। रईसों के वर्णन में आपने जो "धिक धिक पुकार मृदंग भी देता उन्हें धिक्कार है" लिखा है वह "धिक् तान् धिक् तान् धिगेतान्कथयति सततं कीर्त्तिनखो मृदंगः" का भाव है।*

पर गुप्त जी ने दूसरों के भाव जहाँ जहाँ चुपचाप उड़ाये हैं वहां उन्हें इतना अंगभंग कर डाला है कि वे किसी काम के नहीं रह गये हैं। पहला ही पद्य लीजिये—

हां लेखनी! हृत्पत्र पर लिखनी तुझे है यह कथा।
दृक्कालिमा में डूबकर तैयार होकर सर्वथा ॥

वह दृक्कालिमा फ़ारसी के इस सुन्दर शेर में मिली है—

ख़्वादे दीदः हल करदम
नविश्तम नामः सूए तो।
कि वक्ते ख़्वांद दीदन
चश्मे मन उफ़्तद बरूए तो ॥

फ़ारसी के कवि ने तो आँख की पुतली की स्याही से ख़त लिख कर प्रिय के पास भेजा है जिसमें ख़त पढ़ते समय उसकी आँख प्रिय के सामने हो जाय पर आपकी इस दृक्कालिमा से क्या भाव निकलता है, क्या अर्थ सिद्ध होता है, आप ही जानें। कहीं कहीं भावों का लेना गुप्त जी ने स्वीकार भी किया है जैसे "देते प्रजा-हित ही बढ़ा, कर प्राप्त कर वे सर्वथा। ले भूमि से जल रवि उसे देता सहस्रगुना यथा" में।

जिन स्थलों और अवसरों पर साधारण-जनों के हृदय में भी लीन करनेवाले भावों का प्रादुर्भाव हो सकता है उन स्थलों और अवसरों पर भारत-भारती में एक भी ऐसे भाव का उदय नहीं देख पड़ता जिसे सुन आँखों में आँसू आजायँ या चित्त किसी उद्वेग में हो जाय। 'प्राचीन भारत की झलक' के अन्तर्गत "भारतभूमि" की कुछ झलक दिखाने का आयोजन तो आप करते हैं पर उसके नगर, वन, शैल आदि के विषय में केवल इतने ही सूखे वाक्य कहकर रह जाते हैं—

वे ही नगर, वन, शैल नदियाँ
जोकि पहले थीं यहां।
हैं आज भी, पर आज वैसी
जान पड़ती हैं कहाँ?

भावुकता का अन्त होगया! यदि कोई सहृदय मनुष्य इन पर्वत, नदियों का स्वदेशप्रेम से गद्गद होकर, नाम लेने बैठता तो वह उनके और अपने पूर्वजों के जीवन के सम्बन्ध का ऐसा चित्र खींचता कि चित्त तन्मय हो जाता। ऐसे स्थलों के उपयुक्त वर्णन आदर्श रूप से हिन्दी ही में कई दिखाये जा सकते हैं जिनके अनुसार यदि गुप्त जी चल नहीं सकते थे तो चलने का प्रयत्न तो कर सकते थे।

प्राचीन भारत की वायु के गुण का गुप्त जी, देखिये, कैसा डाक्टरी वर्णन करते हैं—

* हम समालोचना की इस उक्ति के क़ायल नहीं हैं। बड़े से बड़े कवियों की कृतियों में भी अन्य कवियों के भावों की झलक आजाती है। [illegible]

उत्साह-पूर्वक दे रहा जो
स्वास्थ्य वा दीर्घायु है।
कैसे कहें कैसा मनोरम
उस समय का वायु है॥

दूसरी पंक्ति के १९ अक्षर या २८ मात्राएं किस लिए ख़र्च की गईं यह समझ ही में न आया। यह बीच की भरती है इस प्रकार की भरती पुस्तक में स्थान स्थान पर मिलेगी जिसका उल्लेख आगे चल कर होगा। अब दो पद्यों में समाप्त प्रभात का वर्णन भी ज़रा देखिये—

क्या ही पुनीत प्रभात है
कैसी चमकती है मही।
अनुरागिणी ऊषा सभी को
कर्म में रत कर रही॥
यद्यपि जगाती है हमें भी
देर तक प्रति दिन वही।
पर हम अविध निद्रा निकट
सुनते कहां उसकी कही॥
गंगादि नदियों के किनारे
भीड़ छवि पाने लगी।
मिलकर जलध्वनि में गलध्वनि
अमृत बरसाने लगी।
सस्वर इधर श्रुति-मंत्र-लहरी
उधर जल-लहरी अहा!
तिस पर उमंगों की तरंगें,
स्वर्ग में अब क्या रहा?

"क्या ही" और "कैसी" के द्वारा 'प्रभात की पुनीतता' और मही के चमकने का सारा रस निचोड़ कर पाठकों को पिला दिया गया। गंगा के तीर पर मंत्रलहरी, जललहरी और उमंग लहरी दिखाकर आपने किसी और ऐसी बात की आवश्यकता ही नहीं समझी जिसके लिए स्वर्ग तक जाने का कष्ट उठाना पड़े। जब यह तरंग-त्रय मिल गया तब स्वर्ग में रहा क्या? पर इस तरंगत्रय का मेल भी आपकी भावना या कल्पना ने नहीं किया, 'स्वरलहरी' और 'उमंग की तरंग' इन दो लोकप्रसिद्ध वाक्यों की स्मृति द्वारा ही यह अङ्गम सम्पादित हुआ है। इसी प्रकार जहां जहां वस्तु और व्यापार-वर्णन हैं वहां वहां अपूर्णता पाई जाती है—दृष्टि-विस्तार का अभाव झलकता है। उदाहरण-स्वरूप इस पद्य को लीजिये—

मस्तिष्क उनका ज्ञान का
विज्ञान का भांडार है।
है सूक्ष्म बुद्धि-विचार उनका
विपुल बल विस्तार है॥
नव नव कलाओं का कभी
लोकार्थ आविष्कार है।

इस पद्य में पुरुषों की बुद्धि और बल का वर्णन है। बुद्धि का दृष्टान्त तो तीसरी पंक्ति में दिया गया, अब चौथी में पाठक सोचते होंगे कि बल का कोई दृष्टान्त होगा पर नहीं वहां तो अध्यातम तत्वों का कभी उद्गार और प्रचार है।

आप कोई पृष्ठ निकालिये इस प्रकार के अशक्त और भावशून्य पद्य ही अधिक मिलेंगे—

कविवर्य शेक्सपियर तथा
होमर सदा सम्मान्य हैं।
विख्यात फ़िरदौसी सदृश
कवि और भी अन्यान्य हैं॥
पर कौन उनमें मनुजमन को
मुग्ध इतना कर सके।
बाल्मीकि, वेदव्यास,
कालीदास जितना कर सके॥

अर्थात् इतना भर कोई कह दे कि "स्पेंसर, कांट, हेगल आदि दार्शनिक विख्यात हैं पर इनमें से कौन इतना विचार कर सके हैं जितना गौतम, कपिल, कणाद कर सके हैं" बस कविता होगई। हां एक बात भूल गये; 'बुधवर्य', 'वदान्यता', 'कौशल्य' ऐसे दो चार शब्द भी ठूस दे। लेखक की भाव-रंकता का अंदाज़ा इसीसे कर लीजिए कि "गागर में सागर" वाली लोकोक्ति को वे ८८वें पद्य में लाये—

उन सूत्र-ग्रन्थों का अहा !
कैसा अपूर्व महत्व है।
अत्यल्प शब्दों में वहां
सम्पूर्ण शिक्षा तत्व है॥

उन ऋषिगणों ने सूक्ष्मता से
काम कितना है लिया।
आश्चर्य है घट में उन्होंने
सिन्धु को है भर दिया॥

फिर 'अंधे के हाथ बटेरवाली' बात सच करते हुए उसे ६४ पद्य में फिर ले आये—

चाणक्य से नीतिज्ञ थे हम
और निश्चल निश्चयी।
जिनके विपक्षी राज-कुल
की भी इतिश्री होगई॥

है विष्णु शर्मा ने घड़े में
सिन्धु सचमुच भर दिया।
कहकर कहानी हीजड़ों को
पूर्ण पंडित कर दिया॥

ऊपर जितने पद्य उद्धृत हो चुके हैं वे इसका पता दे रहे हैं कि रस के परिपाक से इस पुस्तक का बहुत कम सम्बन्ध है—इसकी शब्दावली में मनोवेगों पर प्रभाव डालने की क्षमता नाम को नहीं है। कुछ वस्तुओं और व्यापारों का साधारणतः नाम ले जाना ही कविता नहीं है। कवि अपनी कल्पना की सूक्ष्म क्रिया द्वारा इन वस्तुओं और व्यापारों के ऐसे रूपों वा अंशों को छांट छांट कर सामने रखता है जिन्हें मनोवेगों को अपने विषय करके ग्रहण करने में क्षणभर की भी देर नहीं लगती। सामान्य-वाचक शब्द मनोवेगों पर बहुत कम प्रभाव डालते हैं क्योंकि उनका कोई रूप निर्दिष्ट नहीं होता जिसके साक्षात्कार का स्पष्ट अनुभव अन्तःकरण में हो। यदि कोई केवल इतना ही कहे कि "अमुक मनुष्य वहां बहुत अत्याचार कर रहा है" तो किसी पर उतना प्रभाव न पड़ेगा क्योंकि 'अत्याचार' शब्द के अन्तर्गत बहुत से व्यापार आ सकते हैं। अतः किसी निर्दिष्ट व्यापार का चित्र हमारे सामने नहीं खड़ा होता। पर वही मनुष्य यदि कहे कि "अमुक मनुष्य लोगों के घर में आग लगाकर रोती चिल्लाती माताओं की गोद से अनजान बालकों को लेकर आग में झोंकता है" तो बहुत से लोग क्रोध से नाच उठेंगे। इसी से कविता सामान्यवाचक शब्दों पर सन्तोष नहीं करती है। वह वस्तु या व्यापार के एक एक ऐसे अंग को जिससे मनोवेगों का सम्बन्ध होता है दृष्टि गड़ाकर देखने के लिए कहती है। कवि वही है जो ऐसे अंगों को छाँट सके जिनका मनोवेगों से नित्य सम्बन्ध है। "हा स्वार्थवश हमको अनेकों घोर कष्ट दिये गये" कहने से कविता का काम नहीं चलता है क्योंकि यह एक सामान्य कथन है, इसमें मूर्तिमत्ता नहीं है। पर 'भारत भारती' में ऐसे ही वाक्य अधिक मिलेंगे।

इस अतीत खंड के स्थान पर तो गुप्त जी यदि भारतवर्ष के किसी छोटे मोटे इतिहास को लेकर पद्यरूप में पूरी तुकबन्दी के साथ ढाल देते तो स्कूली लड़कों का बड़ा काम चलता। पर इसके लिए शायद उन्हे 'दौरात्म्य', 'विषयोत्कृष्टता' ऐसे शब्द बचाने का अभ्यास करना पड़ता तथा म० रामदेव के इतिहास (?) और हरविलास शारदा के Hindu Superiority ऐसे कल्पनामूलक ग्रन्थों की सहायता से वञ्चित रहना पड़ता। यह गुरुकुली इतिहास का प्रसाद है कि वर्तमानकाल में जो २ बातें अपेक्षित हैं पूर्वकाल में उनकी पूर्णता का पूरा आरोप करके भारत-भारती में प्राचीन (शायद वैदिक) युग की स्त्रियों के विषय में कहा गया—

घर का हिसाब किताब है
सारा उन्हीं के हाथ में।
हैं पाकशास्त्र विशारदा वे
और वैद्यक (midwifery?) जानतीं।

सीना पिरोना (मोज़े बुनना नहीं ?)
चित्रकारी जानती हैं वे सभी ।

गुप्त जी ने आरम्भ में अपनी लेखनी को सँभल जाने की सूचना तो बड़ी धूम से दी, पर उससे कहा केवल प्रस्ताव करने के लिए। कविता प्रस्ताव नहीं करती, वह श्रोताओं के अन्तःकरण की स्थिति ऐसी कर देती है कि वे किसी ओर आप से आप आकर्षित होते जाते हैं। इस 'प्रस्ताव' शब्द से आपने अपनी लेखनी की दौड़ की यथार्थ सीमा बतलाकर भी "जग जायँ तेरी नोक से सोये हुए हों भाव जो" कहकर उसे अनधिकृत भूमि में प्रवेश करने के लिए कहा । पर यह हो कैसे सकता था ? आपकी लेखनी की नोक कानों को बेध कर ही रह गई, हृदय के मर्म को स्पर्श तक न कर सकी, क्योंकि वह रस में नहीं 'इकालिमा' में डूबी थी ।

ध्वनि ।

ध्वनि कविता का वह गुण है जिससे वह एक व्यापार को प्रत्यक्ष करती हुई अन्तःकरण को ऐसा संकेत दे देती है कि वह वाच्यार्थ द्वारा उपस्थित व्यापार के अतिरिक्त और और व्यापार आप से आप उपस्थित कर लेता है। हमारे यहां के आचार्यों ने इसे अत्यन्त उत्कृष्ट गुण माना है। यूरोप में भी एक प्रकार की लाक्षणिक वा ध्वन्यात्मक काव्यप्रणाली Symbolism के नाम से प्रसिद्ध है जिसमें निपुण कई भारी कवि वहां विद्यमान हैं । डा० रवीन्द्रनाथ की कविता इसी ध्वन्यात्मकता के बल से यूरोप में इतनी आद्दत हुई है। इसी काव्यप्रणाली को लक्ष्य करके कवि रवीन्द्रनाथ ने कहा है—

आमीर मनेर भावे आमि एक गेये जाइ ।
तोमार मनेर मत तुमि बूझि जावे आर ॥

इस विषय पर विशेष विवेचना यहां न करके हम आगे बढ़ते हैं, और कहते हैं कि भारत-भारती में एक भी पद्य ऐसा नहीं जिसमें कोई ध्वनि हो, जो भावगर्भित हो । अस्तु, जिस बात का नितान्त अभाव है उसके विषय में अधिक कहा ही क्या जा सकता है ।

अलंकार ।

यद्यपि चन्द्रालोककार का यह कहना कि "अङ्गीकरोति यः काव्यं शब्दार्थौ वनलंकृती । असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलंकृती" असंगत है पर अलंकार से काव्य का चमत्कार अवश्य बढ़ जाता है। यद्यपि 'भारत-भारती' के प्रस्ताव-रूप वाक्यों में अलंकारों की आवश्यकता ही क्या है; पर स्थान स्थान पर वे लाये गये हैं-किन्तु अत्यंत अंगभंग करके । इस पद्य में आपने परिसंख्यालंकार लाने की चेष्टा की है—

पांडित्य का इस देश में
सब ओर पूर्ण विकास था ।
बस दुर्गुणों के ग्रहण में ही
अज्ञता का वास था ॥

पर अलंकार तो बना नहीं वाच्यार्थ दूषित हो गया । लेखक का अभिप्राय है कि लोग दुर्गुणों को ग्रहण करना नहीं जानते; पर इस शब्दाडंबर से यह अर्थ निकलता है कि लोगों की अज्ञता दुर्गुणों को ग्रहण करने में थी । परिसंख्यालंकार के यदि उदाहरण देखने हों तो गुणवान कवि के नैषध के आरम्भ में देख सकते हैं, बहुत से हैं।

इसी प्रकार प्रायः जहां जहां उपमा, रूपक आदि लाने का प्रयत्न किया गया है वहां वहां गुप्त जी मुंह के बल गिरे हैं। देखिये इस पद्य में रूपक की कितनी भारी तैयारी देख पड़ती है--

संसार भर के ग्रंथगिरि पर
चित्त से पहिले चढ़ो ।

पर इसके आगे की पंक्ति में टायँ टायँ फिस हो जाता है--

उपरान्त रामायण तथा
गीता-ग्रथित भारत पढ़ो ॥

ग्रंथों का अटाला लगाकर उसपर चढ़े तो पर भूपाल से, पर वहाँ से जीभ लड़खड़ाई

और "रामायण पढ़ो" बस यही मुंह से निकल सका। इसी को तो कवित्व-शक्ति कहते हैं कि एक साधारण रूपक का निर्वाह तक न हो सके। अब 'धर्मधनु' की बहार देखिये--

हम धर्म-धनु से भक्ति-शर भी
छोड़ने में सिद्ध थे।
अतएव अक्षर लक्ष्य भी
करते निरन्तर बिद्ध थे॥

न जाने धर्म में आपने धनु का कौन सा धर्म पाया, शायद लचीलापन।

अब सन्देहालंकार की मिट्टी ख़राबी देखिये---

ऊषा-गमन से जाग वे भी
ईश गुण गाने लगे।
या कंज फूले देख बन्दी
भृङ्ग उड़ जाने लगे॥

ऊषागमन से बालकों का जागना (मुंह खोलना या आँख खोलना ? मालूम नहीं) तो कंज फूलना हुआ, उनके मुंह से निकले गान बंदी भौंरे हुये। पहिली बात तो यह है कि जागने का लक्षण आँख खुलना है मुंह खुलना नहीं। दूसरी बात यह है कि जब कमल खिल ही गये तब भी भौंरे बंदी कैसे बने रहे, देखने के समय उनकी अवस्था बंदी की कैसे रही। गोस्वामी तुलसीदास जी ने इसी भाव को किस पूर्णता के साथ रूपक में बाँधा है--"गिरा अलिन मुख पंकज रोकी। प्रगट न लाज-निशा अवलोकी। अपने से नवीन भावों की उद्भावना करना तो दूर रहा गुप्त जी से दूसरों का भाव भी लेते नहीं बनता। दूसरों के भावों की ओर आप झपटते हैं। पर हाथ में टुकड़ा ही आता है जिसे आप कहीं न कहीं ऊपर से चिपका देते हैं। इस प्रकार जहां जहां आपने पट्टी चिपकाई है वहां वहां जो सीधी सादी बात कहने चले थे वह भी बिगड़ गई है।

वेदों पर आपकी एक उत्प्रेक्षा देखिये--

प्रभु ने दिया यह ज्ञान हमको
सृष्टि के आरम्भ में।
है मूल चित्र पवित्रता का
सभ्यता के स्तम्भ में॥

कहिये तो इस उत्प्रेक्षा का विषय वा आश्रय क्या है ? अनुक्तविषया सही, पर विषय तो कुछ चाहिये। खैर आगे चलिये--

ऋषि-मुनि मुदित मन से यथाविधि
हवन क्या करने लगे।
उपकार-मूलक पुण्य के
भांडार से भरने लगे॥

इसे शब्दों की भर्ती के सिवा और क्या कहा जाय ? अग्निकुंड ही शायद आपको पुण्य के भांडार की तरह दिखाई पड़े हैं (राम राम! दिखाई पड़ने का नाम नाहक लिया, आपको शब्द जोड़ने से मतलब, देखने दिखाने से क्या काम ?) जिनमें से जब जितना चाहें उतना पुण्य आप हाथ डालकर निकाल सकते हैं। जहां पुराण-पाठ होता था वहां गीदड़ बोलते देख आप फरमाते हैं—"आकाश के बहुरंग जैसे भूमि के भी ढंग हैं।" कहां तक दिखावें आगे बहुत बढ़ाने की आवश्यकता नहीं है। इतने ही उदाहरणों से लेखक की शक्ति का अनुमान कर लीजिये।

(क्रमशः)

होली।*

[लेखक—श्रीयुत अयोध्यासिंह उपाध्याय।]

षटपद।

(१)

चाव में डूबे उमंगों में भरे भावों ढले।
गान के वर गौरवों की भू बना अपने गले॥
कौतुकों की मूर्तियां बनकर वितानों के तले।
भूति न्यारी भावुकों की भाल पर अपने मले॥
जो परब त्योहार अपने हैं मनाते हो मगन।
हैं बड़े वे भागवाले हैं धरा वे धन्य जन॥

(२)

हैं उठाते देश नभ के अंक वे आनन्द घन।
वे प्रफुल्लित हैं बनाते जाति जीवन का बदन॥
वे खिलाते हैं परस्पर प्यार के सुन्दर सुमन।
हैं दिखाते खोलकर वे सभ्यता संचित रतन॥
हैं बड़ी ही बुद्धि से त्योहार वसुधा में रचित।
चारुता से वह विभव जातीय करते हैं विदित॥

(३)

जब सजा नव पल्लवों के पुंज से विटपावली।
जब रसालों में लसा कर मंजरी सोने ढली॥
जब बना छोटी बड़ी सब डालियां फूली फली।
हाथ में ले जब अनूठे रंग की नाना कली॥
दिहँसता ऋतुराज आता है महा मोदों सना।
रंजिता आमोदिता आनन्दिता वसुधा बना॥

(४)

मत्त हो होकर निकुंजों गूंजता है जब भ्रमर।
है सुनाती कूक कर जब कोकिला स्वर्गीय स्वर॥
बोल करके बोलियां मीठी रसीली मुग्ध कर।
जब बिहंगगन हैं दिशाओं को बनाते मंजुतर॥
जब मलय मारुत बड़ी ही चारुता के साथ चल।
है बहा देता उरों में मत्तता धारा प्रबल॥

(५)

देख करके खेत को अपने सुअन्नों से भरा।
जब किसानों का हृदय तल है बहुत होता हरा॥
की गई थी जो कमाई पत्थरों का पो बरा।
जब सुफल उसका उन्हें है मुग्ध हो देती धरा॥
झोंपड़ी से राजभवनों तक सुआशायें फलीं।
है विलसती दीखती सम्पन्नता की जब कला॥

(६)

तब उठेगी क्यों नहीं उर में विनोदों की लहर।
क्यों न जावेगा रुधिर में प्राणियों के ओज भर॥
रंग लावेंगीं उमंगें क्यों नहीं बन चारु तर।
चौगना हो चाव चित्तों में करेगा क्यों न घर॥
फल स्वरूप इन्हीं सबों का पर्व होली है बना।
जो बड़ा ही है मनोहर मुग्ध कर मनभावना॥

(७)

जिस दिवस को गात छू प्रहलाद का पावन परम।
होलिका का अग्निमय अंकम हुआ था पुष्प सम॥
है वही फागुन सुदी पूनो, दिवस वह मंजु तम।
है इसीसे होगया त्योहार यह अधिकानुपम॥
जिस दिवस को पुण्यजन की बात वसुधा में रही।
जाति जीती उस दिवस को मान देगी क्यों नहीं॥

(८)

धान्य कटने के समय सब देश का है यह चलन।
लोग करते हैं विविध उत्सव बना उत्फुल्ल मन॥
मान देते हैं बरस के आदि दिन को सर्वजन।
है हुआ इस सूत्र से भी पर्व होली का सृजन॥
हैं बड़े उत्साह से उसको मनाते निम्न जन।
हैं उसे कहते इसीसे पर्व उनका विज्ञ गन॥

---

* इस कविता के आदि के १० पद्य किसी समय मर्यादा में प्रकाशित हो चुके हैं पर आगे का सिलसिला मिलाने के लिए वे भी फिर प्रकाशित किए जाते हैं। सं०।

(९)

वृद्धि पाती है शिथिलता शीत की जब नित्य प्रति।
पेड़ तक को है सरस करती किरण जब बार पति॥
तब इधर है ओजमय होता रुधिर जो क्षिप्र गति।
व्याधियां उत्पन्न होकर हैं उधर लाती बिपत्ति॥
है इसीसे यह व्यवस्था लोग हो उत्सव निरत।
चित रखें उत्फुल्ल, पैन्हें वर बसन, हों मोद रत॥

(१०)

यह बड़ा ही भावमय त्योहार है जैसा मधुर।
वैसही है देशव्यापी औ विमोहक लोक उर॥
दीखती है इस परब में मत्तता इतनी प्रचुर।
है उमग पड़ता परम उससे नगर गृह ग्रामपुर॥
इन दिनों उठती है उस आनन्द की उर में लहर।
वैरिता जो है बरस दिन की मिटाता अंक भर॥

(११)

आज दिन रोते हुओं को लोग देते हैं हँसा।
मोद देते हैं व्यथामय मानसों में भी लसा॥
जिन कुचालों में समाज विमोहवश है जा फँसा।
हैं बिमूढ़ों को जगा देते उन्हें आँखों बसा॥
स्वांग लाकर सैकड़ों नाना स्वरूपों को बना।
भावमय गीतादि से जातीय दोषों को जना॥

(१२)

रँग उड़ाकर रंग देते हैं न केवल तन बसन।
हैं डुबा देते परम अनुराग में भी मत्त मन॥
कुमकुमों को मार मंजु गुलाल को मलकर बदन।
हैं सुरंजित सा बनाते भव्य भावुकता भवन॥
जा घरों पर या खिला आमोद से मिलकर गले।
मुग्ध होते हैं परम पा प्रेम के पादप फले॥

(१३)

इन दिनों जैसा गमकता है मुरज बजता पनव।
वेणु वीणा आदि जैसा हैं सुनाते मंजु रव॥
कंठ जैसा है दिखाता ओज, या, माधुर्य नव।
है स्वरों जैसा विलसता चारुतर स्वारस्य जव॥
साल भर ऐसा मनोहर रंग दरसाता नहीं।
है गगन रसला बरसता मोद [illegible] मही॥

(१४)

हैं सरव होतीं रसीले कंठ से सड़कें सकल।
चौहटों चौपाल में है नित्य होता गान कल॥
है गली कूंचों विचरता गायकों का मत्त दल।
झोपड़े होते ध्वनित हैं गूंज उठते हैं महल॥
स्वर सरसता है बड़ी सुकुमारता से सब समय।
पेड़ तक की डालियां होती हैं मंजुल नाद मय॥

(१५)

अंग बंग कलिंग होते हैं प्रमोदों में निरत।
नाच उठता है सकल पंजाब हो आमोद रत॥
यह हमारा युक्तप्रान्त प्रमत्त होता है महत।
है मनाता मोद राजस्थान हो उन्मत्तवत॥
डूब जाती है विनोदों बीच भारत की धरा।
ब्रज उमग पड़ता है हो जाता है हरियाना हरा॥

(१६)

काल पाकर यह रुचिर त्योहार भी कलुषित हुआ।
कसबियों का नाचना गाना अधिक प्रचलित हुआ।
गालियां बकना बहँकना मद्यपान विहित हुआ।
डाल देना कीच कालिख पोतना समुचित हुआ॥
ओज औ माधुर्य में बीभत्स आकर के मिला।
पाटलों के पुंज बीच प्रसून बिस्वा का खिला॥

(१७)

किन्तु इस त्योहार में तो भी दिखाती थी झलक।
उस परस्पर प्यार की जिसमें रहे सबी ललक।
नव उमंगों के सहित आमोद उठता था छलक।
खोगई जातीयता भी खोल देती थी पलक॥
भूल करके भेद और विरोध की बातें अखिल।
एक ही रँग बीच रँग जाती थीं सारी जाति मिल॥

(१८)

किन्तु अब इस पर्व का है हो रहा जैसा पतन।
किस विबुध का देखकर उसका व्यथित होगा न मन।
प्रति बरस है म्लान होता कंज सा इसका बदन।
है बिगड़ती जारही इसकी बड़ी सुन्दर गठन।
धूल में है मिल रही इसकी सभी मधु मानता।
[illegible] आमोद मंजुलता उमंग महानता।

(१६)

विश्व में जिस पर्व से जो जाति है गौरव मई।
है सदा जिसने मिटाई कालिमा जिसकी कई॥
है जिसे जिससे मिली बहु जीवनी धारा नई।
कीर्ति जिसके व्याज से जिसकी दिगन्तों में गई॥
आह! भ्रान्त अतीव बन उस जाति के ही वंशधर।
नाश करते हैं इसे नहिं देख सकते आँख भर॥

(२०)

रंग पड़ता देख उनका रंग जाता है बदल।
लाल हो जाते हैं मूंह गुलाल जो जाती है चल॥
कुमकुमों की मार उनको है बना देती विकल।
है उन्हें चंचल बनाता गायकों का मत्त दल॥
मुख रँगों को देख वे मुख तक उठा सकते नहीं।
धूल उड़ती देख उनकी धूल उड़ती है वहीं॥

(२१)

किन्तु उनकी औगुनों की ओर ही आँखें अड़ीं।
वे नहीं इसके गुनों पर भूल करके भी पड़ीं॥
वे कभी बारीकियों में भी नहीं इसकी गड़ीं।
वे नहीं रुचि साथ ऊंची आँख से इसकी लड़ीं॥
वे सकीं नहिं देख इसकी रीतियां न्यारी रची।
है बहुत कुछ आज तक जातीयता जिन से बची॥

(२२)

कौन कहता है कुचालें हैं घुसी इस में नहीं।
मानता हूं हैं बुरी धारें कई इसमें बहीं॥
किन्तु है सच्ची सपूती काम करने में वहीं।
लोक हित के वास्ते बुध ने जहां आँचें सहीं॥
मुख बनाना चुटकियों लेना बहकना है मना।
जो बिगड़ती बात अपनी हम नहीं सकते बना॥

(२३)

क्यों कुचालों पर न होंगी धर्म की मुहरें लगी।
क्यों अजानों की सभी बातें न होवेंगी रँगी॥
दिन दहाड़े जो उन्हीं के सामने होगी ठगी।
ज्ञान की वर ज्योति है जिनके विमल उर में जगी॥
क्यों न हो सब जायगी तम पुंज की धारा सबल।
जो दमकती भानु की किरणें न आयेंगी निकल॥

(२४)

दल अजानों का कुचालों में इधर उलझा रहे।
दल सुबोधों का उधर निज गौरवों में ही बहे॥
तो बता दो जाति किस से निज व्यथाओं को कहे।
वह कुअवसर में लपककर किस के दामन को गहे॥
निज परब त्योहार में जिनकी नहीं ममता रही।
वे मरम जातीयता का जानते कुछ भी नहीं॥

(२५)

मण्डली नवशिक्षितों की है नए रंगों ढली।
है पुराने ढंगवालों के लिये सब ही भली॥
वे नये ढँग से खिलाना चाहते हैं सब कली।
प उसे तजते नहीं जो बात है अब तक चली॥
द्वंद्व में पड़कर इसी, अब वह नहीं नाता रहा।
सब परब त्योहार का वह रंग ही जाता रहा॥

(२६)

तीस चालिस साल पहले सामने जो था समा।
जो अनूठापन, परस्पर प्यार. था आँखों रमा।
रंग जैसा उन दिनों आमोद का देखा जमा।
जिस तरह से नव उरों में चाव रहता था थमा॥
आह! हमको आज दिन वह बात दिखलाती नहीं।
वह उमंगें बादलों सी झूमती आती नहीं॥

(२७)

उन दिनों थी जोति फैली ज्ञान की इतनी नहीं।
उन दिनों भी सब कुचालें आज दिन की सी रहीं॥
किन्तु अपनापन रहा आज से बढ़कर कहीं।
इन दिनों सी तब न थीं जातीयता भीतें ढहीं॥
एक दिल हो उन दिनों जैसे मिले लगते नहीं
लोग वैसे आज दिन यक रंग में रँगते नहीं॥

(२८)

किन्तु हमको है बहुत नवशिक्षितों से ही गिला।
प्यार से क्या वे अजानों को नहीं सकते मिला॥
क्या मनोमालिन्य की जड़ वे नहीं सकते हिला।
वे पुनः जातीयता को क्या नहीं सकते जिला॥
हैं न ए बातें असंभव जो हृदय में त्याग हो।
जाति का अपने परब त्योहार का अनुराग हो॥

(२९)

क्या हुआ लिक्खे पढ़े जो चित्त में समता न हो।
निज परब त्योहार की औ जाति की ममता न हो॥
औ परस्पर प्यार में सद्भाव में रमता न हो।
थामने से भी हृदय का वेग जो थमता न हो॥
वह बड़प्पन सभ्यता गौरव धरातल में धँसे।
रंग जिसपर लोकहित की लालसा का नहिं लसे॥

(३०)

जो परब त्योहार अपने हम मनावेंगे नहीं।
जो बुरी परिपाटियों को हम मिटावेंगे नहीं॥
जो बहकते भाइयों को पथ दिखावेंगे नहीं।
जोति जो घिरते तिमिर में हम जगावेंगे नहीं॥
तो भला किसको पड़ी है और की जो ले बला।
जाति ही सकती है कर निज जाति का सच्चा भला॥

(३१)

आज भी वह बात इन में है कि जिस से हो भला।
हम सुमति के साथ सकते हैं सुफल जिस से फला॥
हम तिनक कर भूल इनका घोंट सकते हैं गला।
पर कहां फिर पा सकेंगे देशव्यापी बहु कला॥
जाति जो नहिं पर्व उत्सव प्रेम धारा में बही।
वह रही तो नाम को संसार में जीती रही॥

(३२)

ऐ नई पौधें करो मत जाति हित में आतुरी।
फूंक दो अनुराग निजता धुन भरी बर बाँसुरी॥
ऐ पुराने ढंगवालो छोड़ दो चालें बुरी।
आँख खोलो फेर लो अपने गले पर मत छुरी॥
प्यार से मिल, गोद में निज उत्सवों को लो लिटा।
जाति जीती कब रही निज कीर्ति चिन्हों को मिटा॥

सम्पादकीय टिप्पणियां।

भाग्य फूटा!

आज भारत का भाग्य फूट गया। बिना मेघ के विद्युत का पात हुआ। जिसकी स्वप्न में आशा न थी आज वही अघटनीय घटना घट गई। कहते हृदय विदीर्ण होता है, कलेजा मुँह को आता है और सहसा सत्य बात को भी ज़बान पर लाने का साहस नहीं होता। सोचते हैं कैसे कहें और क्या कहें? पाठक, क्षमा करिये, हम कुछ भी कहने में असमर्थ हैं, आप सुन ही लेंगे फिर वृथा उस बात को हम ज़बान पर क्यों लावें? सत्य होते हुए भी जिस पर विश्वास करने को तबीयत नहीं होती या जिसपर विश्वास करने से तबीयत घबराती है और कलेजे में कुछ समझ में न आनेवाली एक अजीब हर्कत होती है। मालूम होता है हृदय पर विषधर बिच्छू डंक मार रहे हैं, और हृदय चारों ओर से भीषण दहकती हुई अग्नि में दहन हो रहा है।

यह सब कुछ है किन्तु हमारा काम बुरा है। खबर सुनाना हमारा काम है, उस खबर के सुनाने से हमें कितनी पीड़ा होगी इसपर हम विचार नहीं कर सकते, सुननेवालों की उसे सुनकर क्या दशा होगी, वे मूर्च्छित होंगे या पागल हो जायँगे इसकी चिन्ता करने का हमें अधिकार नहीं आज तक हम इस काम को सर्वोपरि मानते थे। हम समझते थे दुनिया में इससे परे कोई चीज़ नहीं और बादशाहत भी इसके सामने हेच है किन्तु आज इस समय हम समझते हैं हमारा काम सबसे हीन है। ज़बान हिलती नहीं, कलम बढ़ती नहीं, हृदय साथ छोड़ता है, हाथ पीछे हटता है किन्तु सबको रुष्ट कर, सबों की इच्छा के विरुद्ध काम करना हमारा कर्तव्य है। इसीसे विवश हो कहना पड़ता है कि देश का सूर्य आज अस्त हो गया, वह ज़बान जो कल तक हमारे कानों में गूँजती थी, जो हमारी थी, जो हमें आगे बढ़ाती थी, जो हमारे और हमारे भाइयों के हितों की दुन्दुभी

संसार में बजाती थी, जो हमारे लिए युद्ध करती थी वह ज़बान शुक्रवार की रात्रि को १०-२५ बजे सदा के लिए बन्द हो गई। जो मानसिक शक्ति हमारे लिए चिन्ता करती थी, हमारी ही चिन्ता के कारण जो क्षीण हो गई थी, वह अब महाशक्ति में विलीन हो गई। जो शरीर रुग्ण होते हुए भी अपनी परवा न कर हमारे लिए दूर देशों में दौड़ा जाता था आज वह शरीर शान्त हो गया। जो हृदय हमारे लिए धड़का करता था, हमारे ही लिए धड़कते धड़कते जिसे धड़कने की बीमारी हो गई थी आज वह हृदय हमसे नाता तोड़, दुःख के अथाह समुद्र में हमें निमग्न कर तथा हमारे रोने कलपने की चिन्ता न कर हमसे मुख मोड़ हमसे बिदा हो गया। आज भारत से उसका सुपूत, उसका एकमात्र राजनीतिज्ञ और कूटनीतिज्ञ सदा के लिए बिलग हो गया। अब न बम्बई में, न मद्रास में, न संयुक्तप्रान्त में, न बङ्गाल में, न बिहार में, न पंजाब में, न कौंसिल चेम्बर्स में और न गिल्डहाल में कहीं गोपाल कृष्ण की सुमधुर वंशीध्वनि सुनाई देगी, अब शत्रुओं के हृदय में हूक पैदा करनेवाली कोकिलकंठ गोखले की कूक कहीं न सुनाई देगी। अब कर्ज़न को मुँहतोड़ जवाब देनेवाला इस संसार में न रहा, आज अधिकारियों की ज़बान बन्द करनेवाला हमें छोड़कर चल बसा।

यह हमारा अभाग्य है, हमारे आश्रितों, बाल-बच्चों का अभाग्य है; हिन्दुओं का अभाग्य है, मुसलमानों का अभाग्य और भारतमाता का अभाग्य है। आज इस अभागे देश का छत्र टूट गया, आज हमारी बदकिस्मती से हमारा सरताज हम से अलग हो गया, आज हमारा भाग्य फूट गया। अब रोने के सिवा हमारे हाथ कुछ नहीं रहा किन्तु रोने से भी अब क्या हाथ आवेगा? जो होना था सो हो गया, कराल काल ने हमसे हमारा सर्वस्व अपहरण कर लिया, जिस समय हम निश्चिन्त निद्रा में निमग्न थे, उसने अँधेरे में हमपर वार किया। इस समय उसने बाज़ी मार ली है, अब हमारा बदला लेना यही है कि हमारा शत्रु विजय पर खुशी न मना सके। गोपाल कृष्ण का भौतिक शरीर हमारे मध्य में नहीं किन्तु उनकी आत्मा अब तक जीवित है, उनका यशसौरभ अब भी मुर्दों के जिलाने के लिए संजीवन बूटी का काम दे सकता है। आओ भाइयो, आओ! एक बार गले मिलकर रोलें, और हृदय की प्रलयकाल सदृश उमड़ती हुई दुःख की लहरों को किञ्चित् समय के लिए शान्त करलें और यह प्रण करलें कि गोखले की आत्मा को हम अपने से विलग न होने देंगे। गोखले की शिक्षा, गोखले के वचन हमारे पथप्रदर्शक होंगे। गोखले के लिए हम स्मारक बनायेंगे और उन्हींका पदानुसरण कर, उनके सदृश बनने का प्रयत्न करेंगे। काल पर विजय पाने का यही सबसे उत्तम उपाय है। दुःख के भार को कम करने के लिए इससे श्रेष्ठ और कुछ नहीं किया जा सकता। गोखले मरे नहीं, जिसका वास प्रत्येक भारतवासी के हृदय में है उसे मरा समझना भूल है। हृदय को संतुष्ट करने के लिए इतना इस समय अलम् होगा।

युद्धक्षेत्र।

युद्धक्षेत्र से कोई महत्वपूर्ण खबरें नहीं आ रही हैं। पोलैंड में रूसी और जर्मन प्रायः जैसे के तैसे बने हुए हैं। पूर्वीय जर्मनी में जर्मन सेना के अधिक शक्तिशालिनी होने के कारण रूसियों को विवश हो पीछे हटना पड़ा है। कहा जाता है कि यहां पर तैयारियां भी खूब हो रही हैं और इस होनेवाली लड़ाई पर ही भविष्य निर्भर है। पश्चिमीय रणाङ्गण में में व्यवस्था वैसी ही है. जर्मन अबतक अधिकतर बेलजियम और फ्रांस की सीमा पर कब्ज़ा किये बैठे हैं। छुट्टा लड़ाइयों में कभी मित्रदल

और कभी जर्मन दो चार पग आगे पीछे हट जाते हैं। बर्फ और पानी के कारण कोई विशेष महत्व की मारकाट नहीं हो रही है। उत्तरीय समुद्र में ब्रिटिश जहाज़ कुछ डूबे हैं, जर्मनों ने तटस्थ शहरों पर भी गोलाबारी की थी किन्तु उससे कोई विशेष परिवर्तन युद्ध की दशा में न हुआ। आस्ट्रियनों को रूसी बराबर दबाते चले जा रहे हैं। साथही साथ ४ लाख की आस्ट्रियन सेना सर्वियन सीमा की ओर बढ़ रही है। तुर्कों की दशा शोचनीय है, रूसी उन्हें पीटते चले जाते हैं। तुर्कों ने फारस में तबरेज़ पर कब्ज़ा कर लिया था किन्तु रूसियों ने वहां से उन्हें फिर मार भगाया। इधर तुर्क सिनाई प्रायद्वीप में पहुंच कर स्वेज़ नहर पर अधिकार जमाना चाहते थे। इसमें भी उन्हें कोई सफलता प्राप्त नहीं हुई। लोग कहते हैं कि अन्त में मित्रदल की सर्वथा जय होगी। कहा जाता है रूमानिया यूनान भी मौसम बदलते ही मित्रदल का पक्ष ले रणक्षेत्र में उतरेंगे। इटली और बलगेरिया के पेट की थाह नहीं मिल रही है।

प्रान्तीय कान्फरेंस।

प्रान्तीय कान्फरेंस की बैठक ईस्टर की छुट्टियों में गोरखपुर में होगी। राजनैतिक कान्फरेंस की अधिनेत्री होंगी मि० बीसेन्ट। राष्ट्रीय दल के लोग इस चुनाव से असन्तुष्ट हैं। उनका कहना है कि भारतीय कान्फरेंस में अधिनायक या सभानेत्री भी भारतीय होनी चाहिये। विदेशियों को उस आसन पर बैठाना इस बात का ढिंढोरा पीटना है कि हम लोगों में उस आसन को सुशोभित करने योग्य पुरुष नहीं है। इसके सिवा एक विदेशी को सभानेत्री बनाने का अर्थ यह है कि मातृभाषा में वहां पर कार्यवाही होना असंभव हो जाय। बिना मातृभाषा की सहायता के जनता में राष्ट्रीयता के भाव कैसे फैलेंगे इसपर कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। सामाजिक कान्फरेंस के लिए पहिले महामहोपाध्याय डा० गंगानाथ झा सभापति चुने गये थे किन्तु किन्हीं कारणों से उन्होंने इस पद को स्वीकार नहीं किया अब आशा है पं० मोहनलाल ज़ुतसी सभा के नायक चुने जायँगे। औद्योगिक कान्फरेंस के सभापतित्व का भार रायबहादुर प्रयागनारायण भार्गव पर रक्खा गया है। यह उपयुक्त ही हुआ है।

भारत-भारती।

भारत-भारती की समालोचना प्रकाशित करने का हमारा विचार नहीं था। किन्तु एक पूज्य और प्रतिष्ठित सज्जन के आग्रह से हम अपने स्तम्भों में भारत-भारती की समालोचना प्रकाशित करने पर विवश हुए हैं। इसके पहिले भी हमारे पास भारत-भारती की समालोचनाएं आई थीं। उनमें से एक बड़े ही परिश्रम से लिखी हुई प्रतीत होती थी। उसमें समालोचक होने की "हम" रखनेवालों से सर्टीफिकट प्राप्त इस हिन्दी में नवयुग करनेवाली भारत-भारती की एक एक पंक्ति पर विचार किया गया था, छपने में वह समालोचना मूलग्रंथ की अठगुनी दसगुनी होती। जो समालोचना इस अङ्क में प्रकाशित हो रही है उसके सम्बन्ध में हम कुछ कहना उचित नहीं समझते। किन्तु हम इतना कह देना कि सम्पादक समालोचक की सम्मतियों के लिए ज़िम्मेदार नहीं, आवश्यक समझते हैं। "मर्यादा" सब तरह के विचारों को स्वतंत्रता से छापने के लिए तैयार है और यदि इस समालोचना की आलोचना कोई सज्जन हमें भेजेंगे और यदि वह हमारे विचार में छपने के योग्य होगी तो हम उसे भी सहर्ष प्रकाशित कर देंगे।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग, में कृष्णाराम पाण्डेय के प्रबन्ध से छपकर प्रकाशित हुई।

मातृभूमीका उद्धारक

स्वर्गवासी गोपाल कृष्ण गोखले.

Block, by Courtesy of Navyug.

The Bombay Art Printing Works, Fort.

भाग ९] मार्च सन् १९१५—चैत्र [संख्या ३

मनुष्यतत्व।

[लेखक—श्रीयुत शारदाचरण पाण्डेय।]

पतङ्ग उड़ानेवाले सब इस बात को जानते हैं कि नीचे की बन्द हवा में पतङ्ग बढ़ाकर ऊपर की चलती हुई हवा तक पहुंचाना ही कुछ कठिन है। कितने ही कनकौए कच्ची डोर होने से बढ़कर टूट जाते हैं। जैसे पहलवान को कुश्ती मार कर "वह मारा!" कहने में आनन्द आता है वैसे ही किसी का पतङ्ग काट कर "वह काटा!" कहने में बड़ा सुख होता है। बालकों को बढ़े हुए पतङ्ग के सड़ाके और डोर की सरसराहट से साश्चर्य सुख होता है। जब कोई सब कनकौए काटकर धीरे धीरे अपना कनकौआ उतारता है तब उसको बहिर्जगत् में सम्भवतः उसी सुख का अनुभव होता है जिसका रसास्वाद पूर्ण रूप से उसी को हो सकता है जिसने नाना प्रकार की आपत्ति पड़ने पर बड़े २ कष्ट सहकर मनुष्योचित जीवन के सारे कार्य सुन्दरता से समाप्त करने के अनन्तर स्वर्ग में प्रवेश करने के निमित्त संसार से अपने आप को समेटा हो। ऐसा मनुष्य मरता नहीं किन्तु सिमट कर भगवान् में समा जाता है। माता के गर्भ से उत्पन्न होनेवाले और कुछ काल जीकर मर जानेवाले इस सादि मध्य-निधन मनुष्य के पिण्ड की केन्द्र-स्थली अनादिमध्यान्त सर्वतो-भद्र-चक्र-बिन्दु-स्वरूपिणी विश्वनाभि है जो अनन्त-कला-कुशल "क्षणक्षण विलक्षणोल्लसित सद्यशीलक्षण" अपार गुणागार भगवान् की त्रैलोक्य-मोहन-लीला भूमि है। मनुष्य का मन एक फूलने और पटकनेवाला अर्थात् घटकर सिमटने और बढ़कर फैलनेवाला पदार्थ है। "फलाने मारे खुशी के फूलकर कुप्पा होगये!" ऐसा कहने में आता है। यह मन बहुत ही महीन और बहुत ही मोटा है, बहुत ही हलका और बहुत ही भारी

है। सिद्ध पुरुषों का मन किसी निर्वात स्थान में ठहरे हुए एक गोल मटोल पर्जन्य पिण्ड के समान होता है जिसका सङ्कोच प्रसार उनके अधीन ठीक उसी तरह होता है जैसे रबर की थैलीवाले पपैये को बजाना न बजाना लड़कों की इच्छा के अधीन होता है। और जिस प्रकार जबतक कोई लड़का पपैये की थैली को अपनी फूंक से फुलाकर उसका मुंह अँगूठे से बन्द रखता है तबतक वह थैली फूली हुई रही आती है इसी प्रकार सिद्ध पुरुष जबतक इच्छा हो तबतक निःस्पन्द दशा में रखकर अपने मन के संकोच-प्रसार को रोक सकता है। तथा जैसे ठहर ठहर कर कई बार थोड़ी २ फूंक भरने से पपैये की लाल हरी अथवा नीली रबर की कुप्पी फूल फूल कर और फूक निकलने से पटक पटक कर रह जाती है और ज्यों ज्यों फूलती जाती है त्यों त्यों रङ्ग खिलता जाता और धीरे धीरे पटकने पर फीका पड़ता जाता है वैसे ही योगीजन अपने एक श्वास को थोड़ा थोड़ा करके जै बार चाहैं तै बार रोक कर उस रुकाव की दशा में जितनी देर तक चाहैं उतनी देर तक ठहरे रहकर भीतर ले सकते और बाहर निकाल सकते हैं और जैसे जैसे श्वास लेते अथवा निकालते जायँ वैसे वैसे अपने शक्तिवैभव को प्रादुर्भूत और तिरोहित कर सकते हैं। जगदाधार आदि कारण में स्थित रह कर योगी अपने पिण्ड में सारे ब्रह्माण्ड की शक्ति का समावेश कर सकता है। भगवद्भक्त कुछ अपने बल से नहीं किन्तु अपने भगवान् के बल से बलवान् होकर उनके प्रिय कार्यों का साधन बन जाता है। इसीलिए सामान्य पुरुषों को सदा से भक्तों के जीवन में भगवान् के दिव्य-रूप दिव्य गुण दिव्य कर्म और दिव्य स्वभाव का दर्शन होता चला आता है।

एक मुसलमान फ़क़ीर ने किसी वेश्यागामी हिन्दू से यों कहा था :—

"जो मिला भी तो इनसे बोसा
और उनसे पान ये क्या मिला!
तू मिलै तो ऐसे किसी से मिल
कि मिले से जिसके खुदा मिलै।"

जिस प्रकार सूर्य की किरण पड़ने से कमल खिलता है उसीप्रकार दयार्द्रचित्त भगवद्भक्त की कोमल दृष्टि पड़ने से सामान्य मनुष्य के हृदय में भक्तिकलिका प्रस्फुटित होती है सुगन्ध खिले हुए पुष्प से निकलती है। मनुष्य बड़ों की आँखें देखकर बड़ा बनता है। धन्य हैं वे जिनके हृदय पर किसी महानुभाव की दृष्टि पड़ती है! किसी महात्मा का वचन है:-

"चलत चलत जब चल (पड़ै)
थकत थकत थक जाय (परै)
लखत लखत जब लख (पड़ै)
आनँद उर न समाय!" (परै)

जो मारे आनन्द के फूले अङ्ग नहीं समाते जिनके रोम रोम से आनन्द चू रहा हो ऐसे अमृतनिर्झर महात्माओं के कर्पूरकुन्दोज्वल और दुग्धफेनोपम शरीरों के सौकुमार्य तथा प्रेमसम्पुटीभूत उनके मुखारविन्द के सौन्दर्य को पूर्ण रूप से चित्रित करने की योग्यता का तो कहना ही क्या ध्यान तक में लाना मेरे लिये असम्भव है! जो सामान्य पुरुषों के लिये असम्भव है वह यदि भक्तों के लिए सम्भव न होता तो किसी भक्तशिरोमणि गोपी ने अपनी सखी से यों कहा यह बात उस कवि के चित्त में न आती जिसने लिखा है: —

"शृणु सखि कौतुकमेकं
नन्दनिकेतनाङ्गणे मयादृष्टं।
गोधूलिधूसराङ्गो
नृत्यति वेदान्तसिद्धान्तः!"

देखो! भक्तों ने नन्द के आँगन में वेदान्त सिद्धान्त को सशरीर होकर खेलते हुए देखा

बहुत दिन हुए अलवर के जयदेव कवि ने एक शेर यह कहा था:—

"लेही आती है उन्हें अपनी मोहब्बत की कशिश,
वर्ना आते वो तसव्वुर में भी घबराते हैं!"

जो किसी महात्मा का दर्शन पाकर महात्मा बना उसका दर्शन पाकर ही किसी साधु ने कहा है:—

"नैन छके वैना छके, छके गात बरसात।
छके नैन जापर (पड़ें) रोम रोम छक जात (परैं)

जिस मनुष्य को केवल एक बार सचमुच किसी प्रज्ञात्मा महापुरुष का दर्शन हो जाता है उस मनुष्य का सारा जीवन पलटा खा जाता है। महात्मा धर्ममूर्ति का दर्शन करने से बड़े बड़े "परच्छिद्रान्वेषी धर्मद्वेषी" धर्माचरण को धारते हैं। महात्मा-प्रेममूर्ति का दर्शन पाने से बड़े बड़े वियोगप्रियलम्पट और परद्रोही झगडालू पुरुषों के हृदय का ऊसर प्रेमपीयूषधारा से प्लावित होकर दिव्य भाव और विचारों का उपजाऊ खेत बन जाता है! महात्मा-कारुण्यमूर्ति को दर्शन होने से बड़े बड़े क्रूर शिकारियों ने शिकार खेलना छोड़ दिया! क्योंकि जिसके रोम रोम सें दया टपक रही हो ऐसे का साक्षात्कार होने पर बड़े बड़े विकट बहेलिये और वधिक अपने अपने जाल और शस्त्रशस्त्र क्यों न फेंक देते!

मुक्ति बतावन अति कठिन
रे पण्डित मतिमन्द।
प्यारी पैनी दीठि सों
सहज कटत भव फन्द॥

महात्मा-आनन्दमूर्ति के मधुर दर्शन से कोई कैसा ही शोक-सन्ताप-तप्त और आधि-व्याधि-पीड़ित क्यों न हो उसको भी शान्ति देवी की गोद में आकर सुख होगा!

महात्मा ज्ञानमूर्ति का जिसे दर्शन होजाय वह कैसाही अज्ञानी क्यों न हो तत्काल ज्ञानी हो जायगा! ज्ञानी मनुष्य के दर्शन से यदि शीघ्र ही अज्ञानी का अज्ञान दूर न भी हो तब भी ज्ञानी बनने की उसको लालसा अवश्य उठ खड़ी होगी और कालान्तर में पूरी भी होगी। अज्ञानावृत्त सांसारिक मनुष्य जो केवल विषय-सुखाभिलाषी हैं यह नहीं जानते कि जिसकी हम इच्छा करते हैं और जिसके निमित्त नाना प्रकार का परपीड़न और प्रपञ्च करते हैं वह उस पदार्थ का अग्रभाग और पूर्वार्ध मात्र है जिसके पृष्ठभाग और उत्तरार्ध का नाम दुःख है जिसके सामने की झलक देखकर हम सुख के बहकाए में आकर उसके सगे भाई दुःख के कठिन जाल में फँसे फड़फड़ाते हैं। विषय-सुख को त्याग देने से ही मनुष्य नाना रोग शोक विषाद आदि क्लेशपाशों से मुक्त होकर भगवद्भजन में मग्न हो सकता और क्रमशः परम गति का अधिकारी बन सकता है। तृष्णा की तरङ्गों में अब तब होनेवाले का कल्याण सन्तोषी मनुष्य के दर्शन से अवश्य होगा। उदार मनुष्य के दर्शन से बड़े बड़े कर्कश कंजूस पसीजने लगते हैं! किसी धीर वीर गम्भीर पुरुष के दर्शन से लोगों के हृदय में धैर्य शौर्य गम्भीर्यादि गुणों का न्यूनाधिक समावेश अपने अपने चित्त के अनुसार अवश्य होता है। यह भगवान का अटल नियम है कि जिसमें जो गुण हो वह गुण उसके द्वारा दूसरे में आजाय। और न केवल आजाय किन्तु आकर दिन दूना रात चौगुना बढ़ता चला जाय! जो भी गुरु-भक्त होगा सो गुरुओं के आशीर्वाद से किसी न किसी दिन गुरुसम समाराध्य अवश्य होगा। इसीलिए सौम्यप्रकृति सनातनधर्मावलम्बी सज्जनों का समुदाय स्वभावसिद्ध साधुसेवी है। भगवान् के बड़े बड़े सोहावने रूप का दर्शन साधुओं में हो जाता है। प्रोफेसर राममूर्ति को अपने शरीर की गठरी जितना चाहै उतना कस कर बाँधने की क्रिया किसी साधु ने बताई है। कितने ही ढीले आदमी अपने

अस्थिपञ्जर पर ऐसे लटकते हैं जैसे खूंटी पर कपड़े ! कितने ही भारी आदमी जब किसी स्थान में आकर बैठते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है जैसे कहीं से किसी ने बोझा या घास का गट्ठा लाकर पटक दिया ! कोई कोई आदमी उस चूहे के समान होता है जिसने बिल्ली देख ली हो ! और कोई ऐन मैन बिलरबग्घा ! संसार में बहुत से सूँघू आदमी हैं और बहुत से घुन्ने और गायबगुल्ला !

मेरी समझ में कितने ही आदमियों को नये नामों से पुकारकर उनका उपकार करना चाहिये। कुपथ्य के कारण सदा रोगी रहनेवालों को रोगमित्र कह कर पुकारना योग्य है। झूठ बोलनेवाले ब्राह्मण कुलाङ्गार को पण्डित मिथ्याप्रसाद के नाम से तबतक पुकारना योग्य है जबतक वह झूंठ का सर्वथा परित्याग न कर दे। इसी प्रकार अज्ञानपाल दुर्गुणदत्त दोषदास दीनमर्दन सन्तोषनिकन्दन भ्रष्टभूषण कष्टकारण दयादूषण आदि नामों से पुकारे जाने योग्य सैकड़ों मनुष्य हैं। कहो ! ऐसों के उद्धार की बड़ी आवश्यकता है न ? पर करे कौन इनका उद्धार ? इनका उद्धार वही कर सकता है जो इनके बीच में पलकर बड़ा हुआ हो और इनकी सारी लीलाओं को और उनके परिणामों को भगवान् के भेजे हुए जासूस के समान देख रहा हो और जो धर्मराज के इजलास में साक्षी बनेगा ! मनुष्य का मनुष्य के साथ ऐसा व्यवहार होना चाहिये जो सर्वभूतान्तरात्मा जगदीश्वर को प्यारा लगे। मनुष्य को कुछ मनुष्य का प्यारा नहीं किन्तु मनुष्य के हृदय में बढ़ते हुए ज्ञान और प्रेम के प्रकाश को प्यार करनेवाले परमात्मा का प्यारा बनना चाहिये।

प्रत्येक मनुष्य के भीतर एक ऐसा स्थान है जहां अपनी वृत्ति को टिकाने से यदि वह चाहे तो अपने शरीर में श्वास की गैस ठूस ठूंस कर ठीक उसी रीति से भर सकता है जैसे हवा की पिचकारी से बाइसिकिल के पहिये पर चढ़ी हुई भीतर से पोलो रबर की हाल में हवा भरते हैं। प्रत्येक मनुष्य अनन्त-शक्ति-भंडार से अपना सम्बन्ध ठीक उसी प्रकार जोड़ और तोड़ सकता है जैसे बिजली की मञ्जूषा से तार का सम्बन्ध आवश्यकतानुसार जोड़ते और तोड़ते हैं। और जैसे जहां बिजली की ट्रामगाड़ी दौड़ती है और बिजली का प्रकाश होता और उसी से पङ्खे चलते तथा और भी अनेक काम होते हैं तहां एक विद्युच्छक्ति-भण्डार (Power House) होता है जिससे सम्बन्ध टूट जाने पर सब काम बन्द हो जाते हैं वैसे ही समूचे विश्व का परिचालन करनेवाले उस अनन्तशक्तिभण्डार अपने उपास्य परमात्मा से विमुख होते ही मनुष्य के सब काम बन्द हो जाते हैं। भगवद्विमुख लोगों के चलते हुए काम भी ऐसे हैं जैसे पागलों के मन और शरीर ! और जैसे उच्छृङ्खल पागलों से लोगों को हानि पहुंचने के सन्देह से उनकी इच्छा के प्रतिकूल पागलखानों में रक्खा जाता है और उनसे ऐसे ऐसे काम लिये जाते हैं जिनका प्रयोजन उन्हें विदित नहीं होता वैसे ही मिथ्यापूजक सांसारिक जीवों का अपने ही स्वार्थ के पागलखने में रखकर उनसे वह काम लेलिया जाता है जो अन्त में दूसरों के लिए लाभदायक ठहरता है। सूमड़े की सम्पत्ति का स्वामी वही होगा जो उदार और दयालु होगा। बहुतेरे सूम अपनी औलाद को उड़ाऊ खाऊ देखकर कैसा कैसा कुढ़ते हैं ! करें क्या ? कुछ वश तो चलता नहीं अन्यथा न जाने क्या करते ! इनकी मन चीती इस लिए नहीं होती कि ये लोग धन के प्रयोजन से नहीं किन्तु धन से प्रयोजन रखते हैं। ऐसों की दशा का उदाहरणस्वरूप जयपुर के राज्य में रहनेवाली एक बुढ़िया थी जिसके आगे पीछे कोई न था और पीसकूट कर अपना पेट पालती थी। उसके पास कुछ मोहरें थीं पर यह बात कोई जानता न था। जब वह मरने को हुई तब एक एक करके उस कूढ़ बुढ़िया ने सारी

अशर्फियां गटक लीं ! वही अशर्फियां पीछे उस खुरांट की राख में लोगों को मिलीं। सांप हो कर अपने गड़े धन पर बैठनेवालों को क्या कहा जाय ? जिस प्रकार विकार होने से सूर्य के सन्मुख होने पर मनुष्य के नेत्र चौंधियाने लगते हैं वैसे ही पापग्रस्त पुरुष की दृष्टि सत्यसेवी के समक्ष नहीं ठहरती। दृष्टि के ठहरे बिना मनुष्य का कल्याण हो ही नहीं सकता। सारा खेल दृष्टि का है। जिसकी दृष्टि सत्य पर जमी हुई रही आवे उस का ही कल्याण समझना !

प्रतिभा का विकाश।*

[लेखक-श्रीयुत जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी।]

प्रतिभा के विकाश पर कुछ लिखने के पहिले प्रतिभा क्या है, यह बतलाना आवश्यक है। पर इसके लिए जगद्वाल की आवश्यकता नहीं। रुद्र कवि की उक्ति ही अलम् होगी। वह कहते हैं—"प्रज्ञा नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा" अर्थात् जिस बुद्धि से अथवा शक्ति से मनुष्यों को नये २ विचार सूझते हैं उसका नाम प्रतिभा है। इसी प्रतिभा के विकाश का वर्णन यहां करना है।

अंगरेज़ी में एक कहावत है कि—'A poet is born, not made' अर्थात् मनुष्य जन्म से ही कवि होता है, बनता नहीं। कवि अपनी प्रतिभा के साथ जन्म लेता है। उसके सिवा और कोई सच्चे कवि के गौरवयुक्त पदवी को ग्रहण नहीं करता है। पर 'not made' से यह भी ध्वनि निकलती है कि, शिक्षा या और कोई अभावनीय अनुकूल अवस्था भी मनुष्य को कवि नहीं बना सकती है। कवित्वशक्ति वास्तव में दुर्लभ है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। पर इस शक्ति का विकाश क्या अनुकूल अवस्था पाकर नहीं होता है ? भिन्न २ देशों के साहित्य के इतिहास की पर्यालोचना करने से देखा जाता है कि, देश काल पात्र तथा अन्यान्य कारणों से कवि की प्रतिभा बहुधा नियन्त्रित रहती है। राष्ट्रीय अथवा सामाजिक अवस्था और प्रतिभा के विकाश में साधारणतः कार्यकारण सम्बंध दिखाई देता है।

प्रतिभा कभी २ अलक्षित रूप से इस तरह अकस्मात् अपना विकाश कर बैठती है कि आश्चर्य होता है। जल में मिली हुई चीनी या और कोई द्रवमान पदार्थ सर्दी गर्मी के संयोग से भी कभी क्रिस्टल (crystal) नहीं बनता है पर कभी जरा सा आघात पहुंचते ही तुरन्त बनने लगता है। ठीक यही दशा प्रतिभा की भी है। मनुष्य पेट से प्रतिभा लिए ही पैदा होता है पर उसके अस्तित्व का कुछ भी लक्षण दिखाई नहीं देता है। परन्तु किसी सामयिक घटना से आन्दोलित होकर वह अकस्मात् विकसित हो उठती है। इस प्रकार के प्रतिभा-विकाश के उदाहरण अनेक हैं।

महर्षि वाल्मीकि के मुख से क्रौंच पक्षी की जोड़ी टूटते देख अकस्मात् "मा निषाद" आदि निकलना उनकी प्रतिभा के विकाश का प्रथम दृश्य है। युवक शेक्सपियर का अपनी जन्मभूमि Stratsford-On-Avon, स्त्री पुत्रादि

---

* यह निबन्ध कलकत्ते की हिन्दी-साहित्य परिषद में पढ़ा जा चुका है।

ऊन का व्यापार छोड़कर रुपये कमाने के लिए लंडन आना तथा रंगामञ्च पर अभिनय करना ही उसकी प्रतिभा के विकाश का कारण है इसमें सन्देह नहीं। फ्रान्स का सुप्रसिद्ध नाटककार मोलियर (Moliere) भी जवानी में शेक्सपियर की तरह मनमाजी था। उसका दादा थियेटर देखना बहुत पसन्द करता था। वह मोलियर को भी अपने संग थियेटर ले जाया करता था! इस पर मोलियर का बाप एक रोज बोला "मेरा लड़का क्या अभिनेता होगा?" वृद्ध ने उत्तर में कहा—"भगवान करे मोलियर मनरोज़ का अभिनेता हो।" मनरोज़ (Monrose) उस समय फ्रान्स का सब से अच्छा अभिनय करनेवाला था। दादे का यह वचन मोलियर के हृदय में चुभ गया। उसी समय से उसके जीवन का पथ निर्दिष्ट हो गया। इस सामान्य घटना से वह दुर्वृत्त युवक फ्रांस का हास्यरस का सर्वप्रधान कवि होगया। रंगभूमि में प्रवेश करने के पहिले शेक्सपियर ऊन का और मोलियर कारपेट का व्यापार करता था! और एक फरासीसी कवि कार्नेई (corneille) जवानी में वकालत करता था। उस समय वह कविता का नाम भी नहीं जानता था। पर अकस्मात् एक रोज़ इश्क का भूत उसके सिर पर चढ़ बैठा। बस उसकी वकालत तो काफूर होगई और वह अपनी माशूका के लिये कविता रचने लगा। वही कविता उसके महत्व का कारण होगई। अंगरेज़ी कवि कौली (Cowley) भी घटनाक्रम से सरस्वती देवी का कृपापात्र हुआ था। वह लड़कपन में एक रोज अपनी माता के घर में स्पेन्सर की Fairy Queen नाम की कविता पढ़ने लगा। पढ़ते २ वह ऐसा तन्मय होगया कि उसके मुख से कविता की धारा निकलने लगी। जब वह केवल तेरह वर्ष का था तब उसकी कविता की पहिली किताब निकली थी। अंगरेज़ी साहित्य जाननेवाले सब जानते हैं कि, घटनाचक्र से ही बायरन की प्रतिभा भी विकसित हुई थी "एडिनबरा रिविउ" के आक्रमण करने पर उसने British Bards and Scotch Reviewers नाम की व्यङ्ग कविता बनाई थी। यही उसकी प्रतिभा के विकाश का पहिला नमूना था। अपनी चरित्रहीनता के कारण जब वह स्वदेश परित्याग करने को विवश हुआ तब फिर उसकी प्रतिभा जाग उठी। उस समय उसने फिर Childe Harold नाम की कविता रची। देशविदेश में इसका बड़ा आदर हुआ। जो लोग पहिले उसे घृणा की दृष्टि से देखते थे वह उसका फिर सम्मान करने लगे। वह अपने देश वापिस आया और बड़े आदमी लोग उससे मिलकर अपने को धन्य समझने लगे। पर अफसोस यह सम्मान वह बहुत रोज न भोग सका। जिस चरित्र हीनता के कारण उसे पहले देश छोड़ना पड़ा था वही फिर आ उपस्थित हुई। अन्त में वह एक रोज सदा के लिये देश से निकल गया। Childe Harold के अन्तिम दो सर्ग और Don Juan यह दोनों कविताएं उसके स्वदेशत्याग के फल हैं।

विदेश में ही नहीं अपने यहां भी इसके बहुतेरे उदाहरण मिलते हैं। कालिदास, जगन्नाथ त्रिशूली, जयदेव, सूर, तुलसी, भूषण, भारतेन्दु, प्रतापनारायण मिश्र आदि कवियों की प्रतिभा भी घटनाक्रम से विकसित हुई है। विस्तारभय से केवल नामोल्लेख ही कर दिया है।

केवल काव्यजगत में ही आकस्मिक घटना विशेष प्रतिभा के विकाश में सहायता करती है यह नहीं, वह साहित्य के अन्यान्य विभागों में भी अपना चमत्कार दिखाती है। इसके भी अनेक उदाहरण हैं। नमूने के लिये दो चार यहां दिये जाते हैं। Fielding फीलडिंग अंगरेज़ी उपन्यासलेखक है। उसने अर्थाभाव दूर करने के लिये पन्द्रह साल तक बहुतेरे नाटकादि रचे पर सुलेखकों में उसका नाम नहीं हुआ। फिर उसने सामयिक औपन्यासिक Richardson

के Pamela नामक उपन्यास की Parodz (अनुकृति) लिखने में हाथ लगाया। बस हाथ लगाते ही उसे अपनी प्रतिभा का पता लग गया। यह Joseph Andrews ही उसकी भविष्यदुन्नति की पहली सीढ़ी है। स्वदेशीय साहित्य में भी ऐसे दो चार उदाहरण पाये जाते हैं। बंकिम बाबू की सिर्फ एक बात की चोट से रमेशचन्द्र दत्त बँगला साहित्य में अपनी प्रतिभा दिखा गये हैं। रवीन्द्रनाथ ठाकुर की छोटीमोटी कहानियां बड़ी सुन्दर होती हैं। उनकी उत्पत्ति का कारण बड़ा विचित्र है। रवीन्द्र बाबू अपने गावों की सैर अकसर नाव पर ही किया करते थे। एक बार उनकी नाव एक गाँव में खड़ी थी। उन्होंने देखा कि कई आदमी एक औरत को जबरदस्ती सुसराल भेजने के लिये नाव पर चढ़ा रहे हैं। यह घटना ही उनके कहानी लिखने का कारण हुई। माइकेल मधुसुदनदत्त और कालीप्रसन्नसिंह के बारे में भी ऐसी ही बातें सुनने में आती हैं। शिवलिङ्ग पर चढ़े हुए चावल चूहों को चाटते देखकर आर्यसमाज के प्रतिष्ठाता स्वामी दयानन्द के भाव का परिवर्तन हुआ था। पं० दीनदयालु शर्मा भी घटनाक्रम से व्याख्यानवाचस्पति हो गये। "भारतमित्र" के भूतपूर्व सम्पादक स्वर्गवासी बाबू बालमुकुन्द गुप्त की प्रतिभा का विकाश "हिन्दीबङ्गवासी" छोड़कर "भारतमित्र" में आने पर हुआ। ....
हिन्दीबङ्गवासी के सम्पादकों को पत्र के स्वामी ने एक निरपराध ब्राह्मण की खबर लेने के लिये हुक्म दिया। और सम्पादकों ने क्या कहा मालूम नहीं पर गुप्त जी ने उसी समय लेखनी रख दी और कहा कि, निरपराध ब्राह्मण की निन्दा मुझ से न होगी। बङ्गवासी से सम्बन्ध छोड़ वह "भारतमित्र" में चले आये और उसी दिन से उनकी प्रतिभा का परिचय मिलने लगा। उनके चुटीले लेख और टिप्पणियों ने हिन्दी संसार की काया पलट दी और नये उत्साह से लोग हिन्दी की सेवा करने लगे। अच्छे सम्पादकों में उनकी गिनती होगई।

प्रसिद्ध इतिहास-लेखक जिबन (Gibbon) के मन में रोमके इतिहास लिखने की बात जिस तरह पहिले पहिल उठी वह सुनने के लायक है। रोमके प्राचीन गौरव (Capital) खंडहरमें एक दिन सांझ को वह बैठा था। ज्युपिटर के मन्दिर में सन्यासीलोग नंगे पैर सन्ध्यावन्दन कर रहे थे। उसी समय रोम के अभ्युदय और पतन का इतिहास लिखना उसने विचारा।

न्यूटन के मध्याकर्षण का नियम और वालटा की प्रवाहमान विद्युदुत्पादन-प्रणाली किस प्रकार तुच्छ घटनाओं से आविष्कृत हुई सब को मालूम है। एक सामान्य घटना से Flamsteed सुप्रसिद्ध ज्योतिर्विद् होगया। सदा रोगग्रस्त रहने के कारण लड़कपन में ही उसे पाठशाला छोड़नी पड़ी थी। पीछे संयोग से Sacrobosco प्रणीत Sphaera नामक ज्योतिष विद्या का ग्रन्थ उसके हाथ लग गया। वह उसी समय से उस की आलोचना में लगा। पीछे उसका बड़ा नाम हुआ।

इसप्रकार और भी बहुतेरे उदाहरणों से दिखाया जासकता है कि प्रतिभा के सहित जन्मग्रहण करने पर भी प्रतिभा अलक्षित रहती है। पर पीछे साधारण घटना से उसका विकास होजाता है।

मैं समझता हूं, मेरा तात्पर्य अब पाठक भली भांति समझ गये होंगे। यह स्वीकार करना पड़ता है कि, कवि उत्पन्न ही नहीं होते बनाये भी जाते हैं। प्रतिभा होनी चाहिये, फिर कविता ही क्यों सब बातें आपही हो जाती हैं। कभी कभी प्रतिभा की प्रेरणा स्वतः अनुभूत नहीं होती है। मालूम होता है, इसके स्वभाविक विकाश के पथ पर परदा पड़ा रहता है परन्तु परमात्मा अकस्मात् किसी समय साधारण आघात से वह परदा हटा देता है और उसी समय उस रुद्ध प्रतिभा की उज्ज्वल ज्योति से दिग्मण्डल प्रकाशित हो जाता है।

युद्ध सम्बन्धी गप्पें ।

[लेखक—श्रीयुत रामनारायण मिश्र ।]

इस समय यूरोप में महाभारत हो रहा है । इसका प्रभाव संसार के सब महाद्वीपों पर पड़ रहा है । संसार के प्रत्येक हिस्से में थोड़ा बहुत अंगरेज़ी राज्य है । अंगरेज़ों के अस्त्र शस्त्र जर्मन राज्य के विरुद्ध उठे हुए हैं । इसी अवस्था में अंगरेज़ी राज्य में कोलाहल मचाने के अनेक उपाय विरोधी लोग कर रहे हैं । विरोधियों की पहुंच भारतवर्ष तक नहीं है परन्तु इस देश में विद्या का अभाव है । किसी झूंठी बात का यहां फैल जाना कठिन नहीं है । जिन लोगों ने इस रामराज्य में शिक्षा पाने का सौभाग्य प्राप्त किया है उन लोगों का धर्म है कि लड़ाईसम्बन्धी ऐसी गप्पें बढ़ने न दें । उनमें से कुछ गप्पों का यहां उल्लेख किया जाता है जिनके जानने से मालूम हो जायगा कि वे किस प्रकार निर्मूल और हानिकारक हैं । हानि भी भारतवासियों ही की है, सरकार को उनसे अधिक कष्ट नहीं पहुंच सकता । इस प्रकार की गप्पें इसी देश में नहीं फैलतीं हैं अन्य देशों की भी यही दशा है परन्तु भारत एक विशाल देश है, यहां शिक्षित लोगों की संख्या कम है और लाखों स्त्रीपुरुष इस देश में भोलेभाले हैं इसलिए यहां फैली हुई बात फैलती ही जाती है ।

किस प्रकार से कभी २ गप्पें फैलती हैं उसका भी एक उदाहरण देना आवश्यक है—

बनारस के एक अंगरेज़ी स्कूल में एक फौजी हवलदार कसरत सिखाने के लिए रक्खा गया, उसने ऐसे लड़कों की एक सूची बनाई कि जो कसरत में अच्छे थे । एक लड़के के घरवालों ने यह समझ लिया कि जिन लड़कों का नाम लिखा गया है वे फौज में भेजे जायँगे । उस लड़के का स्कूल आना बन्द कर दिया गया । यहां तक कि स्कूल से उसका नाम कट वाने के लिए उसके घर के लोग तैयार होगये ।

बहुधा लोग कहते हैं कि जर्मन लोग संस्कृत के पंडित हैं इसलिए गोमांस नहीं खाते ।

यह बात सच नहीं है कि प्रत्येक जर्मन संस्कृत का पंडित है । हां यह अवश्य है कि यूरोप में जितने संस्कृत के विद्वान हैं उनमें जर्मन विद्वानों की संख्या अधिक है पर ऐसे लोग लाखों में एक हैं । उनके कारण समस्त जर्मन जाति को संस्कृत के अनुराग का गौरव नहीं दिया जा सकता ।

रहा गोमांस का खाना इस बात को भूगोल के विद्यार्थी जानते हैं कि एक देश से दूसरे देश में खाने की वस्तुएं जाया करती हैं । दक्षिण एमेरिका में Argentine Republic से मनों गोमांस प्रति वर्ष जर्मन देश को भेजा जाता है यदि वहां के लोग गोभक्त होते तो गोमांस की बिक्री क्यों होती ।

इसके अतिरिक्त जिस प्रकार इस देश में जर्मनवालों को संस्कृतज्ञ और गोमांस न खाने वाले कहकर लोग बहकाए जाते हैं उसी प्रकार टर्की देश में यह बात प्रसिद्ध की जाती है कि जर्मन सम्राट् मुसलमानी धर्म को उत्तम समझते हैं और मुसलमानों के सहायक हैं । असल बात तो यह है कि लोगों की जान मारनेवालों का कोई धर्म नहीं होता । जर्मन लोगों ने ईसाई मतावलम्बी होकर भी लोवेन, टरमौन्ड, रीम्स इत्यादि स्थानों में युद्ध के समय गिरजों में आग लगादी या उनको तोप से ढहा दिया या उन को नष्ट भ्रष्ट कर दिया ।

एक गप्प यह भी फैली हुई है कि एक जर्मन हवाई जहाज़ हिन्दुस्तान में आया था। संयुक्त प्रान्त के लोग कहते हैं कि गाज़ीपुर में लोगों ने दिन के समय उसको देखा था, पंजाब के लोग कहते हैं कि गुरदासपुर के पास एक गांव में वह पानी पीने के लिए उतरा था और जिन लोगों ने उसको पानी पिलाया उन्हें रुपया अशर्फियां दे गया। प्रत्येक प्रान्त में इसी तरह कोई न कोई जगह बतला दी जाती है और स्थान भी ऐसा बतलाया जाता है कि जो प्रसिद्ध न हो, जहां विद्वानों की बस्ती न हो और जो रस्ते से हटकर हो ऐसी गप्पें सुनकर लोग चमकीले तारों को देखकर हवाई जहाज़ समझ लेते हैं और मनमानी कल्पना करने लगते हैं। अंगरेज़ी सरकार की ओर से फौज को हवाई जहाज़ पर चढ़ना सिखलाने का सीतापुर में प्रबन्ध है। सम्भव है कि वहीं का कोई जहाज़ कभी इधर उधर दिखलाई भी दे गया हो। जर्मन देश से वायुमण्डल पर सहस्रों कोस से हवाई जहाज़ का आना असंभव है।

कहीं कहीं गँवार लोग कहते हैं कि हमारे सम्राट् जार्ज महोदय स्वदेश छोड़कर भारत में आगए हैं। कोई कहता है प्रयाग के क़िले में ठहरे हैं, कोई कहता है दिल्ली के क़िले में हैं और कोई कहता है कि नैपाल में हैं। भला ऐसी गप्पों का भी कहीं ठिकाना है। अभी थोड़े ही दिन हुए कि वे रणक्षेत्र में स्वयं पधारे थे और वहां अन्य योद्धाओं के अतिरिक्त भारतवासी सेना से विशेष प्रेम और कृपापूर्वक उन्होंने बात चीत की थी और फ्रांस के प्रेसिडेन्ट और बेलजियम के सम्राट् के साथ भोज में सम्मिलित हुए थे हमारे सम्राट् को बाल्यावस्था ही में सैनिक शिक्षा मिली थी। उनके युवराज रणक्षेत्र में उपस्थित हैं। अंग्रेज़ जाति कायर नहीं है। इस युद्ध में बड़े बड़े लोगों के सम्बन्धियों का देहान्त हो गया है परन्तु किसी ने भी अपने कर्तव्य पालन करने से मुंह नहीं मोड़ा। हमारे बड़े लाट के सुपुत्र अनरेबिल लेफ्टिनेन्ट हार्डिङ्ग युद्ध में ज़ख़मी होकर मृत्यु को प्राप्त हुए, हमारे भारतीय मंत्री लार्ड क्रू के जामाता का देहान्त भी लड़ाई में हुआ, हमारे सैनिक लाट H. E. Sir Beauchamp Duff का पुत्र भी इसी प्रकार असार संसार को छोड़ गया। सर डंकन बेली जो थोड़े दिनों तक इस प्रान्त में लेफ्टिनेन्ट गवर्नर थे उनका भी एक पुत्र रणक्षेत्र में मरकर यश को प्राप्त हुआ परन्तु इनमें से किसी महानुभाव ने भी अपने इस असह्य दुःख के कारण अपने कार्य को नहीं छोड़ा। कारण यह है कि सम्राट् से लेकर प्रत्येक इङ्लैंडनिवासी इस समय अपने देश के लिए अपना जीवन प्रदान करने के लिए प्रस्तुत है।

इसी प्रकार की सैकड़ों गप्पें प्रसिद्ध हैं। कोई कहता है इङ्गलैंड की राजधानी लंडन से बेलफास्ट बदल गई, कोई कहता है शहरों में कचहरियों के भवन और सरकारी बाटिकाएं नीलाम हो रही हैं, कोई तो यहां तक कहता है कि धनाभाव से स्कूल बन्द हो रहे हैं इत्यादि इत्यादि। इन सब का फल यह है कि लोग बंकों से अपना रुपया निकाल कर ज़मीन में गाड़ रहे हैं। जब वे जान लेंगे कि ये सब कहानियां निर्मूल हैं तब वे ऐसा नहीं करेंगे। डाकख़ाने की बंकों में रुपया रखने से अच्छा कोई दूसरा उपाय इस समय नहीं है यह युद्ध चाहे कितने भी दिनों तक रहे पर अंगरेज़ी राज्य भारतवर्ष में बना ही रहेगा। जिस प्रकार भारतीय सेना इस समय अंगरेज़ी राज्य के लिए लड़ रही है और जिस प्रकार लोग धन दे रहे हैं उससे भारतीय प्रजा को आगे चलकर बड़ा सुख मिलेगा।

हर्ष का विषय है कि लड़ाई की गप्पें अब कम होती जाती हैं और लोग अब उनका सच्चा रहस्य समझते जाते हैं।

चीन की गुप्तसभायें।*

[लेखक—श्रीयुत नारायणप्रसाद अरोड़ा।]

हमारे देश के बहुत ही कम लोग चीन की गुप्त सभाओं का हाल जानते हैं। किन्तु सन १९०८ में जो गदर चीन में हुआ था उस के सम्बन्ध में बाक्सर लोगों का नाम मशहूर है। इस बाक्सर विप्लव की फौज में ज़्यादातर आदमी इन गुप्त सभाओं के थे। परन्तु यह कहना ठीक नहीं है कि फौज के सभी लोग इन गुप्त सभाओं के थे। यह एक राष्ट्रीय आन्दोलन था। वह आन्दोलन चीन के विदेशी लोगों के विरुद्ध था। इसमें राजवंश के भी कुछ लोग सम्मिलित थे। उनमें प्रिन्स "टुअन" (Tuan) एक ख़ास आदमियों में से समझे जाते थे। इन राजे, महाराजों के अतिरिक्त कुछ बड़े २ अफ़सर भी शामिल थे। अब प्रश्न यह होता है कि क्या कारण है कि चीन के राजे महाराजे और बड़े २ अफसर इन गुप्त सभाओं में सम्मिलित हो गये? इसका उत्तर भी बहुत ही सीधा सादा है। चीनी सरकार और वहां के लोग विदेशी मंत्रियों से तंग आगये थे। उनमें से कोई तो चाहता था कि मुझे कुछ ज़मीन पर अधिकार मिलजाये। कोई चाहता था कि व्यापार में हमारे साथ खास रियायत की जाय और हमको विशेष अधिकार प्राप्त हों। कुछ लोग चाहते थे कि चीन के बड़े बड़े अफसरों को फांसी की सज़ा मिलनी चाहिये क्योंकि चीन के कुछ गुमनाम लोगों ने कुछ विदेशियों को मार डाला था। इस के सिवा झमेले में और ग्रंथियां इस वजह से पड़ गईं कि जो चीनी ईसाई हो गये थे उन्हें भी चीन के अन्य अपराधियों की तरह दण्ड दिया जाता था परन्तु यह बात विदेशी पादरियों को अच्छी न लगती थी और वे न्याय के मार्ग में बाधक होते थे। इस प्रकार की अवस्था वर्षों से चली आती थी परन्तु बहुत दिक करने से तो गाय भी सींग हिला देती है। बस इन्हीं बेजा हस्तक्षेपों के कारण बेचारे सीधे और सन्तोषी चीनी बिगड़ खड़े हुए। लेकिन चीन सरकार दुरंगी चाल चल रही थी। एक ओर तो वह विद्रोही दल को बाहरी डांटडपट बताती थी और दूसरी ओर वह उनसे हार्दिक सहानुभूति रखती थी। चीनी सरकार बहाना यह करती थी कि हम असमर्थ हैं और इस विद्रोह का मुकाबिला नहीं कर सकते परन्तु भीतर २ वह इस विद्रोह को हर प्रकार का सुभीता देती थी। सच बात तो यह है कि सरकारी फौज के बहुत से सिपाही विद्रोही फौज में शामिल थे। विदेशी लोग सारा दोष महारानी "हेज़ोशी" के माथे मढ़ते हैं। कोई तो उन्हें 'खून की प्यासी' कहता है, कोई उन्हें शेरनी कहता है और कोई कहता है कि "वह स्त्री नहीं स्त्री के शरीर में शेरनी की आत्मा है" लेकिन कुछ निष्पक्ष विदेशियों का मत है कि इस बात का प्रमाण नहीं मिलता है कि इस विद्रोह में महारानी का हाथ था। वे असमर्थ थीं, उनका प्रभाव केवल महल ही भर में था। इस आन्दोलन के नेताओं से मिलने का उन्हें कोई मौक़ा ही न था। जो आज्ञा वे जारी करती थीं वह उन्हीं अफसरों के द्वारा लोगों तक जा सकती थी जो विदेशियों के ख़िलाफ़ थे। कभी वे लोग उन आज्ञाओं में मनमाना हेर फेर कर देते थे और जो आज्ञा उनके आन्दोलन के विरुद्ध होती थी उसे रोक लेते थे और लोगों तक पहुंचने ही न देते थे। हां, यह बात तो अवश्य सत्य है कि

* "माडर्न रिव्यू" के एक लेख के आधार पर लिखित।

उस गड़बड़ी के ज़माने में महारानी ने लोगों की कुछ बातें मानलीं। पर वे क्या करतीं? अगर वे उनकी बातें कुछ भी न मानतीं तो वे उनके हाथ से बिलकुल निकल जाते। इससे यह सिद्ध होता है कि उन्होंने लोगों की कुछ बातों को केवल इसी लिए मंजूर किया कि वे उनके अधीन रहें।

मतवाले बाक्सर लोगों ने पेकिन पर धावा करके विदेशी राजदूतों को घेर लिया। उन्होंने सब से पहले जर्मन राजदूत 'शेन केटलर' को मार डाला और मारा भी बड़ी बेरहमी से। इसके बाद उन्होंने बहुत से लोगों को मारा। उनकी निर्दयता की कहानी अगर न कही जाय तो अच्छा है।

पाठक एक ही बात से उनकी निर्दयता का पता लगा सकते हैं। एक पादरी तीन रोज़ तक सूली पर लटका रहा तब उसकी जान निकली और दूसरे के हाथ पैर काट कर आग में डाल दिये गये। इस ख़तरनाक मौके पर महारानी पेकिन में पहुंचीं और अपनी सामर्थ्य भर उन्होंने प्रयत्न किया कि विदेशी राजदूत मारे न जायँ। इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं है कि यदि महारानी कोशिश न करतीं तो विदेशी लोगों में से एक भी न बचता क्योंकि जहां विदेशी लोग रहते थे वह स्थान बिलकुल अरक्षित था। एक अंगरेज़ का कथन है कि यदि बाक्सर लोग चाहते तो प्रत्येक विदेशी का मार डालते।

चीन के प्रत्येक शहर और प्रत्येक गांव में एक आध गुप्त सभा ज़रूर होती है। किसी किसी बड़े शहर में तो छः सात तक गुप्त सभाएँ होती हैं। इन गुप्त सभाओं के सभासद चुने हुए और ऊँचे हुए आदमी होते हैं। जहांतक हो सकता है समाज के प्रभावशाली आदमी इनमें अवश्यही शामिल किये जाते हैं। इन सभाओं की बैठक बहुधा रात को किसी मन्दिर में होती है। जितनी कार्यवाही होती है वह सब गुप्त रक्खी जाती है। सारे सभासदों को आज्ञा है कि सभा की बातें प्रकाशित न करें। यदि किसी मेम्बर पर सन्देह होता है कि उसने सभा के भेदों को प्रकाशित कर दिया तो दूसरे मेम्बर उसे मार डालते हैं। एक युरोपियन पुलीस इन्सपेक्टर का कथन है कि उसने मानों नगर की सड़क पर क़तल की बहुत सी रिपोर्ट सुनी और अपनी शक्ति भर उनके पता लगाने का प्रयत्न भी किया परन्तु एक का भी पता न लगा। पुलीस को खुफिया तौर से रिपोर्ट मिलती थी और जो लोग मारे जाते थे उनकी बर्मी स्त्रियों के द्वारा ये रिपोर्टें होती थीं। परन्तु वे बेचारी खुल्लमखुल्ला अपने को मुखबिर नहीं कह सकतीं थीं नहीं तो उनकी भी वही गति होती थी जो उनके पतियों की हुई थी।

इन सभाओं का उद्देश सभासदों में ऐक्य, मित्रता और एक दूसरे को आर्थिक तथा शारीरिक सहायता पहुंचाने के भावों को उत्पन्न करने का है। जब कभी आवश्यकता होती है तब ये सभाएँ राजनैतिक रूप धारण करलेती हैं। प्रत्येक सम्प्रदाय में अच्छे और बुरे लोग होते हैं। उस प्रकार इन सभाओं में भी कुछ ऐसे नासमझ लोग होते हैं जिनकी नासमझी से कभी कभी इन सभाओं की भी बदनामी हो जाया करती है। इन्हीं नासमझ लोगों की बुद्धिहीनता के कारण अब कुछ अफसर इन सभाओं की वृद्धि के बाधक हो गये हैं। किन्तु जिन सभाओं के नेता अच्छे, सच्चे और देशभक्त हैं वे सभाएँ अब भी जीती जागती हैं।

जो मनुष्य किसी सभा का सभासद होना चाहता है, उसे सभा के मुखिया के पास चीनी भाषा में जिसे "थाकू" कहते हैं अपना प्रार्थनापत्र भेजना पड़ता है। फिर "थाकू" सब मेम्बरों को नोटिस देता है और किसी मन्दिर में सभा करता है। जब रात के समय सब पुराने मेम्बर जमा हो जाते हैं तब

"थाकू" एक छोटी सी वक्तृता देकर उस नये आदमी का परिचय कराता है। सारी सभा के सामने वह उम्मेदवार तुरन्त खड़ा हो जाता है और अपनी मुट्ठी बन्द करके तीन बार प्रणाम करता है। इसको चीनी भाषा में "शा-टिओ" कहते हैं। इस "शाटिओ" के उत्तर में सब लोग खड़े हो जाते हैं और उस आगन्तुक से वही शब्द कहते हैं। इसके बाद वे एक दूसरे से "चीनचा, चीनचा" कहते हैं अर्थात् एक दूसरे से अपने २ स्थान पर बैठने को कहते हैं क्योंकि चीन में दूसरों के बैठने के पहिले अपनी जगह पर बैठ जाने को सभ्यता के विरुद्ध समझते हैं। इस तरह "चीनचा चीनचा" कहने में दस पांच मिनट गुज़र जाते हैं। हर एक आदमी थोड़ा २ झुकता जाता है और दूसरों को देखता जाता है कि वे बैठते हैं कि नहीं। जब सब बैठ जाते हैं तब "थाकू" नये सभासद को चीनी हुक्का देता है। वह हुक्के को अपने दहिने हाथ में पकड़े रहता है और दूसरे हाथ में एक कागज़ की बत्ती लिए रहता है। उसीसे हुक्का पिया जाता है। ये हुक्का और बत्ती इस प्रकार से दिये जाते हैं कि देनेवाले के हाथ आड़े हो जाते हैं। हुक्के की भेंट स्वीकार करने के पहले नया सभासद अपने दोनों हाथों की पहिली उँगलियों को दिखाकर एक दूसरे से मिलाता है और फिर उन्हें बड़े ज़ोर से अलग करता है। यह इस बात का संकेत है कि वह सभा के साथ रहने की दृढ़ प्रतिज्ञा करता है। तब वह हुक्के को लेकर खूब आनन्द से पीता है और सब मेम्बर अपने दोनों हाथों की मुठ्ठियां बन्द करके और अँगूठे को खड़ा करके उसके सामने लाते हैं। यह संकेत महान् प्रशंसावाचक है।

इसके बाद 'थाकू' एक पुस्तक से सभा के नियम और उपनियम पढ़ना आरम्भ करता है। हर एक नियम को नये सभासद को पूरी तौर से स्वीकार करना पड़ता है। कुछ नियम इस प्रकार हैं:—

१—आज से मैं इस पारस्परिक भ्रातृभाव की सभा का सभासद होता हूं।

२—मैं गम्भीरता के साथ और सच्चे हृदय से प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं सभा का कोई भी रहस्य प्रकाशित नहीं करूंगा। यदि मैं ऐसा करूं तो थाकू की जो इच्छा हो मुझे सज़ा दे।

३—आज से मैं सभा के प्रत्येक सभासद को उसकी उम्र, विद्या और दरजे के अनुसार अपना बड़ा या छोटा भाई समझूंगा।

४—आज से मैं थाकू को अपना सबसे बड़ा भाई समझूंगा और उसे अपना आध्यात्मिक पथप्रदर्शक भी मानूंगा। मैं प्रण करता हूं कि मैं उसकी आज्ञा का पालन करूंगा और उसके आदेशानुसार कार्य करूंगा।

५—जिस समय सभा के किसी सभासद को आर्थिक या शारीरिक सहायता की आवश्यकता होगी, उस समय मैं उसकी सहायता करने का प्रयत्न करूंगा। इस प्रकार की सहायता करने में यदि मुझे अपने प्राण भी देने पड़ेंगे तो भी मैं कुछ संकोच न करूंगा।

६—यदि सभा के किसी सभासद पर अदालत में कोई सच्चा या झूठा मुकदमा चलेगा तो मैं अपनी सामर्थ्य भर उसके छुड़ाने का प्रयत्न करूंगा। या तो मैं स्वयं उसका गवाह बन जाऊंगा या दूसरों को उसका गवाह बनने के लिए उत्साहित करूंगा।

७—मैं गम्भीरता के साथ प्रण करता हूं कि मैं देश के शत्रुओं का जड़मूल से सफाया कर दूंगा। इस काम को मैं या तो अन्य सभासदों के साथ मिलकर अथवा अकेला ही करूंगा।

८—यदि अपना कर्तव्य पालन करने में किसी सभासद की मृत्यु हो जायगी तो मैं धन और तन से उसके कुटुम्ब की सहायता करूंगा।

९—यदि मेरे सामने सभा के किसी सभासद पर कोई अन्य आदमी हमला करेगा तो मैं तुरन्त उस शत्रु के मुकाबिले में अपने भाई का साथ दूंगा और अगर आवश्यकता होगी तो अपने शत्रु का सिर भी काट लूंगा।

१०—यदि कोई मनुष्य मुझ पर या सभा के किसी सभासद पर चोट करेगा तो जबतक उसका पूरी तौर से बदला न ले लूंगा तबतक मैं चैन से न बैठूंगा।

११—यदि सभा के नियमों के अनुसार मैं अपना कर्तव्य न करूं तो 'थाक' तथा अन्य सभासद मुझे मुनासिब सज़ा दें।

इसके पश्चात् ये सारी बातें एक कागज़ पर लिख दी जाती हैं। फिर वह कागज़ जला दिया जाता है और उसकी राख लेकर शराब के एक प्याले में डाल दी जाती है और वह प्याला उस नये सभासद को पीने के लिए दिया जाता है। वह अपने वचनों के प्रमाण स्वरूप उसे पी जाता है।

अपनी दृढ़ता और गम्भीरता का दूसरा प्रमाण देने के लिए वह यह करता है कि अपनी उंगली को एक सुई से छेदता है और उसमें से दस पांच बूंद खून के निकालकर चाय में मिला देता है। उस चाय को वह स्वयं पीता है और दूसरों को पीने के लिए देता है।

तीन चार भारी भारी तलवारें बहुत महीन डोरों से लटकी रहती हैं। तलवारों की नोक नीचे की तरफ होती है। वे वर्तमान समय की तलवारों के मुआफ़िक नहीं होतीं। वे हमारे यहां की भुजाली के अनुसार होती हैं किन्तु उनकी बेंट दो तीन हाथ लम्बी होती है। प्राचीन समय में चीनी लोग इन्हीं तलवारों को दोनों हाथों से पकड़कर लड़ते थे।

नये सभासद को आज्ञा होती है कि वह इन तलवारों के नीचे खड़ा हो। तलवारों की नोकें उसकी गर्दन से छू जाती हैं। थाकू अपने हाथ में एक मुट्ठी चावल लेकर किसी पुस्तक से कुछ मन्त्र पढ़ता है। फिर उन चावलों को बड़े ज़ोर से तलवारों की ओर फेंकता है। इससे वे बड़े ज़ोर २ से हिलने लगती हैं। यदि वह सभासद डर जाता या घबड़ा जाता है तो सब के सब यह समझ लेते हैं कि जो प्रतिज्ञाएँ इसने अभी की हैं उन्हें वह पालन न कर सकेगा। इसलिए उसे भरती करने से इन्कार कर देते हैं।

कभी २ ऐसा होता है कि एकआध डोरा टूट जाता है और तलवार उस आदमी की पीठ पर गिर पड़ती है। इससे उसको बहुत चोट लग जाती है और कभी २ वह मर भी जाता है। परन्तु उपस्थित सज्जन उस अभागे मनुष्य के प्रति सहानुभूति दिखाने के बदले उसपर बहुत क्रुद्ध होते हैं और कहने लगते हैं कि इसका हृदय शुद्ध नहीं है। उनका विश्वास है कि सच्चे आदमी पर ऐसी विपत्ति नहीं पड़ती। केवल मलिन हृदय के लोगों ही का परिणाम ऐसा होता है। इसलिए सब लोग उसकी सेवा करने के बजाय, उसे तुरन्त वहां से निकाल बाहर करते हैं। किन्तु जब कोई मनुष्य इस तलवार की परीक्षा में भलीभांति उत्तीर्ण होता है, तब एक भोज होता है। इसके पश्चात 'थाकू' उसका एक नया नाम रखता है और सभा के कुछ गुप्त संकेत उसे बताता है और इसके बाद सभा विसर्जित हुई।

इस प्रकार की दो सभाएं 'टेन युइ' में हैं। एक का नाम है 'टंग-चीन-कंग' और दूसरी का 'चीन ची-कंग'।

सम्भव है कि भिन्न २ प्रान्तों में या भिन्न २ सभाओं में जुदे २ नियम और उपनियम हों।

हा गोखले !

[लेखक—श्रीयुत बसन्तलाल चौबे ।]

(ग़ज़ल सोहनी)

हा शोक है भारत का प्यारा
चन्द्रमा जाता रहा ।
छाया अँधेरा, देश का हा
प्राण सा जाता रहा ॥
हा ईश तेरे सामने कुछ
जोर चल सकता नहीं ।
उद्धारकर्ता देश का
संसार से जाता रहा ॥
वह उठ गया सब छोड़कर
हम देखते ही रह गये ।
हा प्राण से प्यारा हमारा
गोखले जाता रहा ॥
उसके विरह का शोक क्योंकर
भूल सकता हिन्द है ।
हा दाहिनी जिसकी भुजा का
जोर सब जाता रहा ॥
अब स्वर्ग में जाकर के बैठे
गोखले आराम से ।
हतभाग्य भारत रो रहा है
सुख सभी जाता रहा ॥

माधवराव सिन्धिया ।

[लेखक—श्रीयुत गंगाशंकर मिश्र ।]

स ङ्कीर्णहृदय मुग़ल सम्राट् आलमगीर के मरने के पश्चात् ही जगद्विख्यात मुग़ल साम्राज्य का वास्तविक अधःपतन प्रारंभ हुआ। वही देश, जो कभी दयालु सम्राट् अकबर के प्रबल प्रताप से शान्ति-सुख भोग रहा था, सौ ही डेढ़ सौ वर्ष बाद अन्याय, अशान्ति और अत्याचार का रङ्गस्थल बन बैठा। अठारवीं शताब्दी का भारत, अकबर के समय के भारत से कहीं भिन्न है। इसी समय की दशा वर्णन करते हुए एक इतिहासकार लिखता है कि "देश परस्पर के झगड़ों से छिन्नभिन्न हो रहा था, घर २ में अशान्ति का राज्य था, चारों ओर दुष्टता का बाज़ार गरम था। धार्मिक और राजनैतिक नियम पददलित हो चुके थे। शासन, समाज और परस्पर प्रीति को दृढ़ करनेवाले बन्धन टूट रहे थे। प्रत्येक व्यक्ति को भयानक जन्तुओं से घिरे हुये जङ्गल के मध्य में फँसे हुए के समान रक्षा के लिए केवल अपने बाहुबल का सहारा लेना पड़ता था।"

मुग़ल साम्राज्य के सर्वोच्च सिंहासन पर केवल नाममात्र के लिए एक विषयी मदान्ध सम्राट् विराजमान था। तीन चार सौ वर्ष के कठिन परिश्रम से बनी हुई मुग़ल साम्राज्य की इमारत धीरे २ ढह रही थी। एक एक कर के अधीनस्थ रियासतें स्वतन्त्र हो चली थीं। मुग़ल सम्राटों के दहने हाथ राजपूत आज उसी साम्राज्य की जिसे स्वयं उन्होंने बनाया था, सहायता करने के लिए उद्यत न थे। राजधानी दिल्ली के पड़ोस ही पंजाब में "वाहगुरु की फ़तेह" की दीक्षा प्रारम्भ हो चली थी। बंगाल, अवध और हैदराबाद के सूबेदार जो

मुग़ल साम्राज्य के आधारस्तम्भ थे, मुग़ल सम्राट् से अपने को स्वतन्त्र मानने लगे थे। भारत के राजनैतिक गगन में अराजकता के बादल गरज रहे थे। जिनके हाथों में शासन की बागडोर थी, उन्हें कभी शराब और क़बाब से छुट्टी पाकर प्रजा का ध्यान भी न आता था। परन्तु इस अराजकता के समय में भी वह अग्नि, जिसकी स्थापना दक्षिण देश में एक मराठा युवक ने की थी बराबर सुलग रही थी। आलमगीर बहुत कुछ मनुजरक्त बहाकर भी जिस अग्नि को शान्त न कर सका, था वह इस शताब्दी में यहां तक प्रज्वलित हो उठी कि उसकी विकराल लपटें मुग़ल साम्राज्य को भस्म करने के लिए दिल्ली तक पहुंचने लगीं।

छत्रपति शिवाजी महाराज की मृत्यु के पश्चात् महाराष्ट्र राज्य की रक्षा का भार पूना के पेशवाओं के हाथ में आया। इन पेशवाओं के हृदय में मुसलमानों को नीचा दिखलाने की प्रबल आकांक्षा सदा जागृत रहती थी। उनके सौभाग्य से अब वह समय आपहुंचा था कि उनकी परम्परागत अभिलाषा पूर्ण हो। तत्कालीन पेशवा बालाजी की दृष्टि दिल्ली के सिंहासन पर लगी थी। वह देख रहा था कि मुग़ल साम्राज्य की नाड़ी धीरे २ गिर रही है और केवल "हरी" बोलना शेष है।

मालवा प्राप्ति के पश्चात् दक्षिण में मराठों का आतङ्क पूर्ण रूप से बैठ चुका था। पेशवा का चचेरा भाई—सदाशिव राव भाऊ, निज़ाम को नीचा दिखाकर अपने बाहुबल के गर्व में मस्त मनही मन प्रफुल्लित हो रहा था। पेशवा ने भी देखा कि अब दिल्ली को हड़प करने के लिए शुभ अवसर आपहुंचा। फिर क्या था सन् १७५८ ई० के सितम्बर महीने में पेशवा के पुत्र विश्वास राव को साथ लेकर भाऊ की अध्यक्षता में उत्तरीय भारत में महाराष्ट्र विजयपताका फहराने के लिए मरहठा दल बड़ी धूमधाम से दिल्ली की ओर बढ़ा।

मरहठा सैन्य का यह दृश्य महाराष्ट्र के इतिहास में बिलकुल नया था। इसके पूर्व वे कभी इस शान के साथ अपने देश से बाहर न निकले थे। मालवा से हुलकर और सिन्धिया, गुजरात से गायकवाड़, बुन्देलखंड से गोविन्द पन्थ और भरतपुर से सूरजमल अपने २०,००० जाट योद्धाओं को लिए हुए इस दल में आ मिले थे। पाश्चात्य रण शिक्षा पाये हुए फ्रेंच जेनरल बुसी (Bussy) का शिष्य वीरवर इब्राहीम खां गार्दी भी इसी दल के साथ था। जिस समय यह तूफ़ान दिल्ली की ओर बढ़ रहा था, उत्तरीय भारत में एक और ही गुल खिल रहा था। दिल्ली दरबार में इस समय अमीरों के दो दल हो रहे थे एक ईरानी और दूसरा तूरानी। ईरानी दल के नेता अवध के नवाब सफ़दरजंग थे और तूरानी दल निज़ाम के भतीजे ग़ाज़ीउद्दीन के आधीन था। कुछ काल तक तूरानी दल की विजय हुई। ग़ाज़ीउद्दीन ने तत्कालीन सम्राट् को पदच्युत कर "आलमगीर द्वितीय" को सिंहासन पर बैठाया। दिल्ली दरबार की यह दशा प्रसिद्ध लुटेरे नादिर शाह का उत्तराधिकारी अहमदशाह अब्दाली देखता रहा, इसी समय वह नाजिब खां नामक एक पठान सरदार से निमन्त्रण पाकर सन् १७५७ ई० में भारतवर्ष आया। ग़ाज़ीउद्दीन की पराजय हुई। अब्दाली ने नाजिबखाँ को "अमीरुलउमरा" की पदवी देकर मुग़ल सम्राट् का संरक्षक नियत किया और जो कुछ "नरकुठार" नादिर की निर्दयता से दिल्ली में बच रहा था उसे लूट कर वह अपने देश को लौट गया। इधर ज्यों ही अब्दाली की पीठ फिरी, ग़ाज़ीउद्दीन ने मरहठों की सहायता से फिर दरबार में दबदबा जमा लिया। नाजिब खां ने रुहेलखण्ड में आकर शरण ली। ग़ाज़ी ने दिल्ली में बड़ा उधम मचाया और उसने निर्बल-

सम्राट् का वध कर डाला । बेचारे युवराज अली गौहर ने भागकर अवध के नवाब शुजा-उद्दौला के यहां शरण ली । परन्तु गाज़ी के दिन अब पूरे हो चुके थे । अब्दाली अफ़गानिस्तान से फिर लौटा, उसने अनूपशहर को अपनी छावनी बनाया । इधर शाहजादे अलीगौहर ने सम्राट् पद को ग्रहण किया । अवध के नवाब शुजा और नजीब दोनों मिलकर मरहठों से मुग़ल सम्राट् की रक्षा करने के लिए उद्यत हुये । गाज़ीउद्दीन ने अपनी दाल गलना कठिन देखकर दिल्ली छोड़ दिया और भरतपुर में जाकर जाटों की शरण में रहने लगा ।

संक्षेप में जब भाऊ अपने दलबल सहित वहां पहुंचे तो दिल्ली की यह दशा थी । यहां हुलकर और सूरजमल ने भाऊ को बहुत कुछ समझाया कि सैन्य को किसी सुरक्षित दुर्ग में रखना चाहिये और वहीं से शत्रुओं की रसद लूटकर उन्हें प्रथम निर्बल बना कर फिर आक्रमण करना चाहिये । सदा से मरहठों की यही युद्धनीति रही है । सहसा आक्रमण करना उचित नहीं । पर भला निज़ाम पर विजय पाने-वाले अपने दर्प में चूर भाऊ को यह सम्मति क्योंकर अच्छी लगती । उसने गर्व में आकर इस समयोचित अमूल्य सम्मति को गड़रियों की सम्मति कहकर हँसी में उड़ा दिया । इस मतभेदरूपी "प्रथमग्रासे मक्षिकापातः" होने के पश्चात् दिसम्बर मास में भाऊ दिल्ली पहुंचे । थोड़ी सी गोलाबारी के बाद दिल्ली के क़िले पर मरहठों का अधिकार होगया । इतनी बार लूटे जा चुकने पर भी अभी तक दिल्ली सोने चाँदी से भरी हुई थी । मरहठों ने केवल दीवानखाने की दीवालों से १२५००००) रु० की चाँदी का सामान लूटा था । कुछ इतिहासकारों के मतानुसार विश्वासराव दिल्ली के राजसिंहासन पर आरूढ़ हुए और इस प्रकार मरहठों की मनोकामना पूर्ण हुई ।

पर यह दशा बहुत दिन तक न चल सकी, भारत के मुसलमान इस अपमान को सहन न कर सके । अन्त में वे सब परस्पर मिलकर अब्दाली की अध्यक्षता में युद्ध के लिए कटिबद्ध हुए । प्रसिद्ध पानीपत के रणक्षेत्र में मरहठों और मुसलमानों की सेनाएँ भारतभाग्य का निपटारा करने के लिए एक बार फिर आ डटीं । कुछ दिन तक दोनों सैन्य एक दूसरे की ताक में लगी रहीं । इस अवसर में भाऊ के उद्दण्ड स्वभाव के कारण मरहठा दल में आपस में फूट फैल गई, जाट सूरजमल अपनी सेना ले भरतपूर लौट गया । मुसलमानों को यह अच्छा अवसर हाथ लगा । उन्होंने मरहठों की खूब रसद लूटी । अन्त में दोनों दल तंग आकर सन् १७६१ ई० की जनवरी को अस्त्र शस्त्र लेकर एक दूसरे पर टूट पड़े । पानीपत का मैदान "हर हर महादेव" और "दीन ! दीन !!" के तुमुल शब्दों से गूंज उठा । पानीपत के मैदान ने अपनी कला दिखा ही तो दी । मरहठों की पराजय हुई, विश्वास मैदान में काम आया, मरहठे रणक्षेत्र छोड़कर भाग निकले । इस भागाभूगी में एक मरहठा युवक एक घोड़े पर जारहा था और उसका पीछा कुछ मुसलमान बड़ी तेज़ी से कर रहे थे । थोड़ी ही देर में घोड़ा ठोकर खा गिरता है । मुसलमान लोग आकर आक्रमण करते हैं, उसके अमूल्य वस्त्र आदिक लेकर उसे वहीं घायल छोड़कर अपना रास्ता लेते हैं । पर भाग्यवश एक भिश्ती ने आकर इस युवक की प्राण-रक्षा की । बस पाठकगण ! यह ही युवक भारत के इतिहास में विख्यात, उस समय के राजनैतिक नाटक का मुख्यपात्र मदारुल महाम आलीजाह बहादुर सिंधिया माधवराव था ।

इस समय माधव राव की अवस्था कोई ३० वर्ष के लगभग थी । सुना जाता है कि यह रानोजी सिन्धिया के जारज पुत्र थे । रानोजी का जन्म एक अच्छे कुल में हुआ था, पर समय

के फेर से इनके पिता को पेशवा के यहां जूती उठाने का काम करना पड़ता था। एक दिन पेशवा बालाजी विश्वनाथ रानो जी के पिता की स्वामिभक्ति से कुछ ऐसे प्रसन्न हुए कि उन्हों-ने उनको उत्तरी मालवे की जागीर देडाली। बस यहीं से सिन्धिया राज्य की नींव पड़ी। रानो जी के पिता ने विक्रमादित्य की प्रसिद्ध प्राचीन उज्जैन नगरी को अपनी राजधानी बनाया। पानीपत के युद्ध के पश्चात् माधवराव के अतिरिक्त इस जागीर का कोई अन्य उत्तरा-धिकारी जीवित न था। इसलिए माधव राव ने युद्ध से छुट्टी पाकर अपने बाप की गद्दी पर बैठने का प्रयत्न प्रारम्भ किया। प्रथम तो सर-दारों ने बहुत कुछ झगड़े लगाये पर अन्त में सब को इस वीर युवक के सन्मुख शिर नीचा करना पड़ा।

पानीपत के युद्ध के कुछ ही दिनबाद पूना के पेशवा और इन्दौर के मल्हारराव हुलकर की मृत्यु हुई इसलिए इस समय इन्दौर के शासन की बागडोर महारानी अहिल्याबाई के हाथ में थी, और इधर पूना में कुलाङ्गार रघुवा अपने कुचालों में लगा था। अब्दाली अपने देश को लौट चुका था, और दिल्ली नजीब के अधीन थी।

अभी पानीपत के भीषण संग्राम को हुए पूरे १० वर्ष भी व्यतीत न होने पाये थे कि माधव अब्दाली की पीठ फिरते ही, इन्दौर के सेना-ध्यक्ष ताकू जी को साथ लेकर दिल्ली में फिर जा डटा। नजीव इससमय बुड्ढा हो चुका था, इस-लिए उसने मरहठों से मेल करलेने ही में भलाई देखी। अपने पुत्र जाब्ताखां को लेकर वह तुरन्त मरहठा शिविर में पहुंचा। वहां उसने तुका जी के हाथ में जाब्ता का हाथ दे दिया और सदैव जाबता की रक्षा करने के लिये प्रार्थना की। नजीव ने सिन्धिया को भी अपने पक्ष में लाने का प्रयत्न किया पर उसके हृदय में तो बदला लेने की प्रचण्ड अग्नि दहक रही थी, वह भला कब माननेवाला था। उसने बड़े दर्प से उत्तर दिया "मुझे तो अपने मृत भाई भतीजों और अपने घोर अपमान का बदला लेना है। यद्यपि मेरे मित्र तुका जी ने मुसलमान ज़विता को अपना भाई मानना स्वीकार कर लिया है पर इस कार्य से मैं सन्तुष्ट नहीं तथापि मैं पेशवा का सेवक हूं। इस सन्धि के विषय में जो कुछ उनकी आज्ञा होगी वह शिरोधार्य है।"

इस सन्धि के पश्चात् वृद्ध नजीव जाब्ता खां को मरहठों के हाथ में छोड़कर अपने अन्तिम दिन व्यतीत करने के लिए नजीबाबाद चला गया पर बहुत शीघ्र ही रुहेला सरदारों का अत्या-चार और नीच जाब्ता का कुटिल व्यवहार दिल्लीवासियों को असह्य हो उठा। मरहठे इस अवसर की ताकही में थे। फल यह हुआ कि अंगरेज़ों के हाथ में बन्दी मुग़ल सम्राट् शाह आलम को फिर दिल्ली के सिंहासन पर बैठाने की सोची गई। अंगरेज़ों ने इसका बहुत कुछ विरोध किया। भला घर आई हुई लक्ष्मी को भी कोई ठुकराता है। शाह आलम कब चूकने वाला था। अनुकूल अवसर पाकर वह भी फतेहगढ़ तक आपहुंचा। सिन्धिया ने भी दल-बल सहित बढ़कर ता० २५ दिसम्बर सन् १७७१ ईसवी को मुग़ल सम्राट् का स्वागत किया।

शाह आलम केवल नाम के लिए सम्राट् था। राज्य का कुल कारबार मरहठों के हाथ में था। एक साल बराबर सिन्धिया और होलकर की सेनाएं रुहेलों को सर करने में लगी रहीं पर इसी समय पूना से जो समाचार आये उससे सारे मराठा कैंप में खलबली मच गई। पूना में पेशवा की मृत्यु हुई और रघुवा रक्षक नियुक्त हुआ। रघुवा बड़ा कुटिल मनुष्य था, वह स्वयं पेशवा बनने का स्वप्न देख रहा था। शीघ्र ही उसने पेशवा के छोटे भाई को भी इस संसार से बिदा किया और स्वयं पेशवा बन बैठा। इससे सारे महाराष्ट्र देश में अशान्ति

फैल गई। सिन्धिया और होलकर को भी दिल्ली से अपनी २ जागीरों में आना पड़ा।

पहिले तो सिन्धिया ने रघुवा की सहायता की पर इसी अवसर में एक ऐसी घटना हुई जिससे उसे अपनी नीति बदलनी पड़ी। पेशवा की विधवा रानी किसी न किसी तरह से रघुवा के क्रूर पंजों से निकल भागी थी। वह गर्भवती थी। अब उसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। न्यायानुसार पेशवा की गद्दी का अधिकारी यह बालक था। इसका पक्ष प्रसिद्ध नाना फड़नवीस ने लिया। इस तरह से इस समय पूना में दो दल हो रहे थे, एक के नेता नाना फड़नवीस थे और दूसरे का रघुवा। इस बार सिन्धिया ने भी नाना के दल का पक्ष लिया। अतः रघुवा को पूना छोड़ना पड़ा। उसने भागकर बम्बई में अंगरेज़ सरकार की शरण ली। उस समय बंगाल और मद्रास प्रान्त की अंगरेज़ी कम्पनी तत्कालीन राजनैतिक झगड़ों में पूरा भाग ले ही रही थी। केवल बम्बई कम्पनी ही चुपचाप थी। उसने देखा कि अब तो शिकार आप ही आप आफँसा है, अवसर हाथ से जाने देना बुद्धिमानी का कार्य न होगा। बंगाल सरकार और विलायत में कम्पनी के डाइरेक्टरों से बहुत कुछ लड़झगड़ कर, बम्बई के गवर्नर ने ४००० सेना के साथ रघुवा को पूना पर अधिकार प्राप्त करने के लिये भेजा। सिन्धिया इस छेड़-छाड़ को सहन न कर सका। आख़िर को उसने सन् १७७७ ईस्वी के जनवरी मास में बम्बई अंगरेज़ी सेना के भी बाड़ गांव में छक्के छुड़ा दिये।

कलकत्ते में बंगाल के गवर्नर 'नीतिधुरंधर' वारेन हेस्टिंगस्, इस अपमान को कब सहन करनेवाले थे। उन्होंने शीघ्र गोडार्ड की अध्यक्षता में बम्बई सरकार की सहायता के लिए बंगाल की सेना भेजी। इधर राजपूतों और जाटों ने भी सिन्धिया से अपना बदला लेने के लिए अंगरेज़ों का साथ दिया। गोहद के राणा ने हेस्टिंगस् के कहने से पोपहम नाम के एक विदेशी अफ़सर को नौकर रक्खा। यह अफ़सर और कप्तान ब्रूस षड्यन्त्र रच कर एक रात को ग्वालियर दुर्ग के अन्दर जापहुंचे और वहां के सैनिकों को सहज ही में कैद कर लिया। इस दुर्ग के छिन जाने से सिन्धिया को बहुत भारी क्षति पहुंची। अब दोनों दल लड़ते २ थक चुके थे, इसलिए सन्धि की बातचीत प्रारम्भ हुई। अंगरेज़ों और पूना वालों में सन्धि करा देने पर सिन्धिया को उसके जीते हुए राज्य लौटाने के लिए हेस्टिंग्ज़ उद्यत थे। सिन्धिया ने भी ऐसे समय सन्धि करना उचित देखा। अतः १७ मई सन् १७८२ ईस्वी को अंगरेज़ों और मरहठों में एक सन्धि हुई जो 'साल्बाई की सन्धि' के नाम से विख्यात है।

भारत के इतिहास में यह सन्धि बड़े महत्व की है। इसमें दोनों ओर से बड़ी २ राजनैतिक चालें चली गई हैं। माधव मन ही मन दिल्ली साम्राज्य का स्वप्न देख रहा था। वह हेस्टिंग्ज़ और पूना के झगड़ों से पिण्ड छुड़ाकर दिल्ली पहुंचने के लिए उत्सुक हो रहा था। उधर हेस्टिंगस् अच्छी तरह से जानता था कि अभी कल के लगे हुए पौधे के समान बंगाल की अंगरेज़ सरकार दक्षिण से उठती हुई आँधियों को सहन करने के लिए सर्वथा असमर्थ है। जिस दिन ये सब के सब मराठे तथा अन्य दक्षिणी मुसलमानी रियासतें बिगड़ेंगी उस दिन अंगरेज़ों के दांत भी खट्टे हो जायँगे। इसलिए ऐसे अवसर में नीति यही बतलाती है कि सब से बैर अच्छा नहीं, किसी एक के होकर रहना चाहिये। इस लिए उसने सिन्धिया का आश्रय लेना उचित और आवश्यक समझा। वह इस बात से भी अनभिज्ञ न था कि सिन्धिया के अतिरिक्त अन्य मराठा सरदार इस सन्धि के पक्ष में नहीं हैं। इसका फल यह होगा कि मराठों में फूट फैलेगी। वह यह भी जानता था कि सिन्धिया

अपने वचन का सच्चा है। वह निज जीवन पर्यन्त अपनी बात पर दृढ़ रहेगा और हुआ भी ऐसा ही। सिन्धिया ने अन्तिम घड़ी तक अपनी बात निबाही और अंगरेज़ों की रक्षा की। हेस्टिंग्ज़ को टट्टी की ओट से शिकार खेलने का अच्छा अवसर हाथ लगा। नाना फड़नवीस हेस्टिंगस् की इस दूरदर्शिता और उसके आभ्यन्तरिक भावों को अच्छी तरह से जानता था। वह यह भी देख रहा था कि सिन्धिया निज स्वार्थ से अंगरेज़ी नीति के पंजे में पड़ रहा है उसे यह ध्यान भी नहीं कि उसका यह कार्य अन्त में मरहठों को छिन्नभिन्न करने के लिए कुठार तुल्य होगा। यही सोच विचार कर उसने बहुत दिनों तक हस्ताक्षर करने में आना-कानी की पर उसकी कब तक चलती। अन्त में उसे हस्ताक्षर करने ही पड़े। इस सन्धि का जो कुछ फल हुआ वह प्रत्यक्ष ही है। सिन्धिया के 'मन के मनसूबे मन ही में रहे' मराठा राज्य छिन्नभिन्न हुआ, हेस्टिंग्ज़ का मनोरथ सफल हुआ। अंगरेज़ी राज्य के पौधे ने बढ़ते २ सारे भारत को आच्छादित कर लिया।

पूना के झगड़ों से छुट्टी पाते ही सिन्धिया की निगाह दिल्ली की ओर फिर गई। उसकी अनुपस्थिति में दिल्ली की बड़ी दुर्दशा होती रही। सम्राट् केवल नाममात्र के थे, यह तो पहले ही कहा जा चुका है, इसलिए शासन वज़ीरों के हाथ में रहता था। वज़ीरों के चुनाव के लिए, "जिसकी लाठी उसकी भैंस" यही नियम था। इस अराजकता को शान्त करने के लिए सन् १७८४ ई० में सिन्धिया फिर दिल्ली जा पहुंचा। सम्राट् ने बहुत कुछ सोच विचार के अनन्तर उसका स्वागत किया और पेशवा को अपना राजप्रतिनिध (Viceroy) और सिन्धिया को सेना का अध्यक्ष बनाया। सेना का खर्च चलाने के लिये दिल्ली और आगरे के सूबे भी सिन्धिया ही के हवाले कर दिये।

सिन्धिया की आशाएं अब पूर्ण होती हुई दिखाई देने लगीं। शाही फ़रमान और परवानों पर उसके भी हस्ताक्षर होने लगे। सम्राट् के भी दिन शाहजहांवाले शाही महल में चैन से कटने लगे। सिन्धिया ने अपना निवासस्थान मथुरा बनाया और वहीं से राज्य में शान्ति स्थापन करने की चेष्टा प्रारम्भ की। साथ ही साथ उसने शासन और सेना में भी सुधार करने की सोची। उसका उद्देश्य जागीरदारी प्रणाली को तोड़कर सेना को स्थायी बनाने का था, पर इसे सरदार और जागीरदार पसन्द न करते थे। फल यह हुआ कि सरदार लोग बिगड़ खड़े हुए। पर सिन्धिया ने डी० बोयन (De Boigne) जो सिन्धिया का एक बड़ा चतुर और वीर विदेशी अफसर था, उसकी अध्यक्षता में सेना का सुधार जारी ही रक्खा? उसने शाह की ओर से अंगरेज़ों और राजपूत रियासतों से राजकर भी मांगा। अंगरेज़ों ने बिल्कुल न्याय के विरुद्ध करदेना अस्वीकार किया। पर सिंधिया का ध्यान अधिकतर पड़ोसी राजपूतों की ओर था। इसलिए अंगरेज़ों के साथ छेड़खानी करने का उसे अवसर न मिल सका। राजपूत लोग मराठों से सदैव चिढ़े रहे हैं, उन्होंने कर देने के बजाय युद्ध की तैयारी करना प्रारम्भ की। जयपुर, उदयपुर, जोधपुर, तथा अन्य राजपूत रियासतों ने मिलकर एक लाख सेना एकत्रित की। मुसलमान अमीर और स्वयं सम्राट् भी इस समय 'काफ़िर पटेल' के गौरव को देखकर मन ही मन कुढ़ रहे थे। उन्होंने भी देखा कि सिन्धिया को अब नीचा दिखाने का समय निकट आगया है। पंजाब से सिक्खों ने भी दबाना प्रारम्भ किया। सिन्धिया चारों ओर से घिर गया और उसके लिए बहुत ही कठिन समय उपस्थित हुआ।

सिक्खों को परास्त करने के लिए कुछ थोड़ी सी सेना भेजकर वह स्वयं मुहम्मद बेग, राना खां भग्गा खान्डो और डी० बोयन तथा

अन्य सरदारों को साथ लेकर राजपूताने रवाना हुआ। जयपुर से ४० मील की दूरी पर लालसोत नाम के गांव में उसने डेरा डाला। ऊपर यह कहा ही जाचुका है कि मुसलमान अमीर सिन्धिया के अभ्युदय को घृणा की दृष्टि से देखते थे। ठीक मौके पर उन्होंने धोखा दिया। मोहम्मद और इस्माइल दोनों निज २ सैन्यसहित शत्रुओं से जा मिले। तीन दिन तक युद्ध होता रहा। सिन्धिया की बहुत कुछ हानि हुई, और उसे पीछे लौटना पड़ा। उसने अपनी बहुत कुछ युद्धसामग्री भरतपुर में छोड़ कर ग्वालियर का रास्ता लिया और वहां से सहायता भेजने के लिए नाना फड़नवीस को लिखा।

राजपूतों ने तो अपनी इस विजय से कुछ अधिक लाभ न उठाया पर एक दूसरा ही शिकारी बैठे २ परस्पर की खटपट को देखता रहा। यह शिकारी था जाब्ता खाँ का पुत्र निर्दयी गुलाम कादिर। अवसर पाते ही वह दिल्ली आपहुंचा और बलात् प्रधान मंत्री बन बैठा। अलीगढ़ का किला, जो सिन्धिया के अधिकार में था, छीन लिया, और आगरे की ओर जहां मराठा फौज पड़ी हुई थी, बढ़ा। पर यहां उसे सिक्खों की बगावत के समाचार मिले, अतः उसको पंजाब की तरफ लौटना पड़ा।

इधर ग्वालियर में पूना से सहायता भी आ पहुंची थी, सिन्धिया ने अच्छा अवसर हाथ आया जानकर आगरे की ओर कूच किया। रास्ते में उसे कई बार राजपूतों से लड़ना पड़ा, पर ज्यों त्यों करके फ़तेहपुर सीकरी के प्रसिद्ध मैदान में उसने एक बार भगवाँ झंडा फहराया। मुसलमानी अफ़सर इस्माइल रणक्षेत्र से भाग निकला। उसने अपना घोड़ा जमना में डाल दिया। पर जब वह नदी पार पहुंचा, उसने वहां गुलाम क़ादिर को देखा। गुलाम क़ादिर सिक्खविद्रोह दमन करके उसी ओर आरहा था। यहां से दोनों ने दिल्ली का रास्ता लिया। इस अवसर में डी० बोयन जो लड़ते २ थक गया था सिन्धिया की नौकरी छोड़कर लखनऊ चला गया। इस अमूल्य सेनानायक की हानि से खिन्न होकर सिन्धिया भी दीन सम्राट् को निर्दयी गुलाम के हाथ में निज कर्मों का फल भोगने के लिए छोड़, कुछ काल के लिए मथुरा चला गया।

इसके बाद दिल्ली में जो तीन महीने तक दशा हुई है, उसके वर्णन करते हुए रोंगटे खड़े होते हैं। गुलाम ने वृद्ध सम्राट् की आंखें तलवार से निकाल लीं और कुटुम्ब सहित उसे कैद कर दिया ! यहां पर प्रश्न यह होता है कि मथुरा में पड़े २ सिन्धिया यह अत्याचार कैसे देखता रहा। कुछ लोगों का अनुमान है कि उस समय सिन्धिया इस योग्य न था कि वह दीन मुगल सम्राट् की रक्षा करता, और कुछ लोगों का कहना है कि सिन्धिया मुगल सम्राट को यह दिखाना चाहता था कि सम्राट् के सिर से मराठों का हाथ उठा लेने से उसकी क्या दशा होगी। जान भी यही पड़ता है कि सिन्धिया मुगल सम्राट् को कुछ दिन निज कृत्यों का मज़ा चखने के लिए छोड़ देना उचित समझता था। पर गुलाम की कठोरता और नीचता इस हद तक पहुंचेगी यह, कभी उसे ध्यान न था।

शाह आलम फ़ारसी का कवि भी था। उसने इस समय की कविता में अपनी दीनता दिखलाते हुए, सिन्धिया को अपना पुत्र कहकर रक्षा के लिए प्रार्थना की है। गुलाम के पापों का प्याला अब पूर्ण हो चुका था। सिन्धिया की सेना आ पहुंची। गुलाम भाग निकला, पर [illegible] में पकड़ा गया, और मथुरा भेज दिया गया। वह ऐसा नीच प्रकृति था कि मराठा ही में-सिपाहियों ने क्रोधित होकर उसकी भी आंखें निकाल लीं और अङ्गभङ्ग करके फांसी लटका दिया। सिन्धिया ने उसका सिर और धड़ अन्धे सम्राट के पास दिल्ली भेजवा दिया। अब सम्राट [illegible]

ज्ञात हुआ कि जिसे वह शत्रु समझे बैठा था केवल वही एक उसका सच्चा मित्र है। सम्राट् ने भी प्रसन्न होकर "मदारुलमहाम आलीजाह बहादुर" के पद से सिन्धिया को विभूषित किया।

राजधानी दिल्ली में शान्ति स्थापित करके सिन्धिया ने फिर राजपूताने की ओर दृष्टि फेरी। वह अपनी पराजय अभी तक भूला न था। वह बदला लेने के लिए उत्सुक हो रहा था। बस अब किसी का भय न था, डी० बोयन दलबल सहित राजपूत विजय के लिए चल दिया। कई मास तक मराठा और राजपूतों में घनघोर युद्ध होता रहा। अन्त में बोयन की रणचातुरी से एक २ करके सब राजपूत रियासतों को हार माननी पड़ी। सिन्धिया की विजय हुई। और वही पेशवा का दास पटेल, जिसने ४० वर्ष पूर्व पानीपत के मैदान से भाग कर एक भिश्ती की सहायता से अपनी प्राणरक्षा की थी, आज अपने ही प्रबल पराक्रम से सारे मध्य देश और उत्तरी भारत के बड़े भारी अंश का राजा बन बैठा।

राजपूतों पर विजय पाकर अब पटेल को अपने घर की याद आई। पूना में नाना और ताकू जी होलकर दोनों सिन्धिया की इतनी शीघ्र उन्नति को देखकर मन ही मन जलने लगे। इधर सिन्धिया ने भी यह सोचा की उत्तरी भारत में तो रोब जम चुका, अब ज़रा पूना की दशा भी देखनी चाहिये। यही सोच विचार कर सन् १७९२ में उसने मथुरा से पूना की ओर प्रयाण किया और धीरे २ मध्यदेश होते हुए ता० ११ जून को वह पूना पहुंचा और ब्रिटिश रेज़ीडेन्सी के निकट उसने अपना डेरा डाला।

पूना पहुंचने के दस दिन बाद वह बहुतसी अमूल्य वस्तुओं की भेंट लेकर अपने स्वामी पेशवा से मिलने को गया। मुग़ल सम्राट् को दिल्ली के सिंहासन पर बिठलानेवाले सिन्धिया, माधवराव ने हाथी, घोड़े, चोबदार, सिपाही पियादेइत्यादि सब साज सामान को छोड़कर पैदल ही अपने स्वामी की सेवा में उपस्थित होना उचित समझा। दरबार में पहुंचने पर सिन्धिया ने सब सरदारों से जो आसन नीचा था उसी को ग्रहण किया और जब स्वयं पेशवा आउपस्थित हुए, तो बड़े भक्तिभाव से झुक कर प्रणाम किया और बगल में दबी हुई पोटली से एक नया जूते का जोड़ा निकाला और पेशवा के पैरों के पास रखकर कहा "महाराज! यह मेरे बाप का पेशा था इसलिए मेरा भी अवश्य होना चाहिये।" तत्पश्चात् उसने निज हाथों से पेशवा का पुराना जूता पैरों से उतार कर अपनी बगल में दबा लिया और नया जोड़ा पांव में पहना दिया। इसके बाद पेशवा के बहुत कुछ कहने पर उसने जूतों को बगल में दबाये हुए ही आसन ग्रहण किया।

दूसरे दिन इससे बढ़कर धूमधाम से दरबार हुआ। आज सिंधिया ने शाह की ओर से पेशवा को शाही खिलत पहनाई। इस खुशी के उपलक्ष में शाही पर्वाने से गोवध रोक दिया गया। महाराष्ट्र जाति पर सिन्धिया की इस स्वामिभक्ति और विनय का बहुत कुछ प्रभाव पड़ा। निस्सन्देह मालकम साहब ने बहुत ठीक लिखा है कि "सिन्धिया अपने आप को सेवक ही कहते २ स्वामी बन गया।"

सिन्धिया का स्वभाव बहुत ही सरल और दयालु था। उसने कभी किसी क्रूर और कुटिल कार्य से अपने नाम को कलङ्कित नहीं किया था। वह सदैव सादे कपड़े पहनता था और तड़क भड़क की ओर अधिक ध्यान न देता था। फ़ारसी और उर्दू का उसे अच्छा ज्ञान था। अपने नौकरों पर उसकी बहुत कृपा रहती थी। पर कायरों को सदैव घृणा की दृष्टि से देखता था। उसक

हृदय उदार और उसके विचार उच्च और स्वतंत्र थे। शत्रु, मित्र, देशी तथा विदेशी सभी ने उसके व्यवहार और उसकी नीति की प्रशंसा की है। अंगरेज़ों के साथ जो उसने व्यवहार किया है उसके लिए उन्हें सदैव कृतज्ञ रहना पड़ेगा। यदि सालबाई की सन्धि न होती तो आज का इतिहास कुछ और ही होता।

जिस समय सिंधिया पूना लौटा था उसकी अवस्था ६० वर्ष से भी अधिक थी। पूने में उसका उद्देश्य सफल न हुआ। हुलकर और नाना ये दोनों पूना दरबार में सिन्धिया की ख्याति को सहन न कर सके। फल यह हुआ कि पूना दरबार में नित्यप्रति नये झगड़े उत्पन्न होने प्रारम्भ हुए। पेशवा निर्बल होने के कारण शान्ति स्थापित करने के लिए बिलकुल अयोग्य था। पूना दरबार षडयन्त्रों का रंगस्थल बन रहा था, ऐसे अवसर में ता० १२ फरवरी सन् १७९४ ई० को पूना के समीप ही वनौली गाँव से सिन्धिया माधवराव के सहसा देहान्त का शोकसमाचार आया। कुछ इतिहासकारों होने का अनुमान है कि सिन्धिया की मृत्यु नाना की करतूत थी। ख़ैर उसकी मृत्यु का कारण कुछ भी हो वह सब को मानना पड़ेगा कि उस पटेल के साथ ही साथ मराठा साम्राज्य का स्वप्न सदैव के लिए विलीन हो गया।

हमारा स्वप्न।

जहां में हाय अभी धूम यों मचा के चले।
जो फितना सोता था नाहक उसे जगा के चले॥
ये जान लीजो न भूलेंगे हम कयामत तक।
तुम्हीं थे ऐसे जो दिल से हमें भुला के चले॥
बिचारे हिन्द का क्या हाल होगा अब अफसोस।
बताओ इसका ठिकाना भी कुछ लगा के चले॥
नसीब किसको हुआ था कभी ये भारत में।
जो चार दिन का तमाशा हमें दिखा के चले॥
"रसा" की गरचे रसाई हुई है जन्नत में।
हज़ारों ही को मगर दह में रुला के चले॥

क्या कहें, किससे कहें, जो देखा वह भूलना चाहते हैं किन्तु वह भूलता भी नहीं। आँख के सामने वही दृश्य नाच रहा है. आँख बन्द करते हैं तो दृश्य और ज़ोर से सामने आता है। हृदय घबरा जाता है और आंख और मुंह दोनों ही खुल जाते हैं। हृदय में श्वास समाती नहीं। चुप रहने से हृदय के फटने का भय होता है। व्यथा कुछ ऐसी होती है जिसका सहना सहनशक्ति की शक्ति से बाहर है। लोग कहते हैं, कहने सुनने से दुःख कम होता है. हृदय का वेग आँख और मुंह के द्वारा बाहर निकल कर कम हो जाता है। इसीलिए आज हम भी कुछ कहना चाहते हैं। स्वप्न क्या था उसमें मार्मिकता कितनी थी, कलेजे को पानी करनेवाली शक्ति उसमें कौन सी थी, पाठक स्वयं देख लें हम इतना ही कहेंगे, सावधान हो जाइये, हृदय पर पत्थर रख लीजिये, कलेजे को काबू में रखिये वह बाहर न निकल पड़े, आंखों को बाँध रखिये कहीं अश्रुधार में वे बह न जायँ। अब सुनिये। रात्रि अँधेरी थी, बादलों की घनघोर चित्त को डरवानेवाली घटा चारों ओर से उमड़ी हुई थी। भीषण निस्तब्धता का साम्राज्य था। न कहीं बिजली की चमक थी और न कहीं बूँदाबाँदी ही होती थी। कहीं झींगुर की झन-

कार भी न सुनाई देती थी । मालूम होता था । समस्त सृष्टि मर गई है, और किसी में किसी प्रकार की भी जीवनशक्ति नहीं । इसी प्रलय की अँधेरी में एक निर्जन वन की हाथ को हाथ न सूझने देनेवाली अँधियारी में मालूम नहीं कहाँ चले जाते थे । चले तो जाते थे किन्तु पैर ठिठकते थे, आगे बढ़ने की हिम्मत नहीं होती थी, रह रहकर चित्त पूर्वाभास से सहम जाता था और यही कहता था कि कोई भीषण अघटनीय घटना घटनेवाली है । चित्त को हज़ार समझाते थे किन्तु उसे शान्ति नहीं मिलती थी । इतने ही में बड़े ज़ोर का धड़ाका सुनाई दिया । मालूम हुआ ब्रह्माण्ड फट गया, वह टुकड़े टुकड़े हो ज़मीन पर गिर पड़ा । संसार में एक तहलका मच गया किन्तु हज़ार आँख फाड़ फाड़ कर देखने पर भी यह न दिखाई दिया कि बादल कहीं से फटा हो । अँधियारी भी वैसी ही बनी थी, बादल भी ज्यों के त्यों अपने स्थान पर थे, वृक्ष भी जैसे के तैसे खड़े थे । बुद्धि मारी गई, कोई बात समझ में न आई, कलेजा और भी काँपने लगा किन्तु कोई चारा नहीं दिखाई दिया । पैर जो रुक गये थे आगे बढ़े । चित्त इस चिन्ता में निमग्न हुआ कि धड़ाका

कैसा और क्या था ?

धड़ाके की आवाज़ ज्यों की त्यों कानों में गूँजती थी । हृदय कहता था चलकर देखो । बुद्धि कहती थी मन का भ्रम है । किन्तु प्रतिध्वनि वैसे ही गूँज रही थी । ज्यों ज्यों पैर आगे पड़ते थे प्रतिध्वनि अधिक ज़ोर से सुनाई देती थी । चित्त सहम जाता था, पैर रुक जाते थे किन्तु साहस कहता था बढ़े चलो । धीरे धीरे जंगल खतम होता दिखाई दिया । कहीं दूर से सूर्यरश्मि की लाली नज़र आने लगी, भीषण अँधियारी भी छिन्न भिन्न होने लगी । मालूम हुआ पौफट होरहा है । इतने ही में एक विशाल शहर का फाटक दिखाई दिया । डूबते हुए को तिनके का सहारा मिला, पैर जल्दी बढ़ने लगे और कुछ ही मिनटों में हम भी फाटक पर दिखाई दिये । फाटक देखकर शहर की विशालता और उसके धन-वैभव का चित्र सामने आ जाता था । मालूम होता था कि हम इन्द्रपुरी के बाहर खड़े हैं । यह सब कुछ था किन्तु शान्ति का राज्य जमा दिखाई देता था, चिड़ियों की चहचहाहट भी नहीं सुनाई देती थी, दर्बान और जो दो एक मनुष्य इधर उधर चलते फिरते दिखाई देते थे वे प्रस्तर की मूर्ति से थे । उसपर मुर्दनी सी छाई हुई थी, कोई किसीसे कुछ बोलता तक नहीं था । हमारी भी किसीसे कुछ बोलने की हिम्मत न पड़ी, फाटक के अन्दर घुस हम आगे बढ़े, सोचा आगे चलकर किसीसे कुछ बातें करेंगे किन्तु इधर उधर जो दो चार आदमी भी दिखाई दिये वे भी बड़े उद्विग्न । सोचा बाज़ार में चलने पर इस दिल को दहलानेवाली शान्ति का पता चल जायगा । किन्तु बज़ार क्या इस शहर में तो बाज़ार की चहल-पहल कहीं दिखाई ही नहीं देती । दूकानें चारों तरफ बन्द, चारों ओर शोक ही शोक दिखाई देता था । हां, एक सड़क की ओर बेतरह मनुष्यों की भीड़ जाती देखाई देती थी, किन्तु भीड़ भी केवल मूर्तियों की भीड़ सी थी । सबों के चेहरों पर उदासी छाई हुई थी, बिना एक शब्द भी बोले सब लोग एक ओर चले जाते थे । मालूम होता था इनमें शक्ति ही नहीं । हम भी इन्हींके पीछे हो लिये । जाते जाते हम लोग एक स्थान पर पहुंचे जिसे मनुष्यों का जंगल कहा जाय तो अत्युक्त नहीं । मनुष्य ही मनुष्य वहां दिखाई देते थे किन्तु वहां भी पूरी शान्ति । वहीं पर एक आदमी से पूछने पर मालूम हुआ कि आज देश के राजा का स्वर्गवास हो गया है । इसीलिए देश के बाज़ार बन्द हैं, स्कूल बन्द हैं और चारों ओर भीषण सन्नटा छाया हुआ है । राजा राजा ही नहीं था, वह आत्मीय था, लोगों की

आशा का मूर्तिमान् स्वरूप था, वह उनका पिता था, वह उनका पुत्र था, वह उन्हें उनकी माता का काम देता था, उन्हें जीवन दान देता था, उन्हें आशान्वित करता था, उनका पोषण करता था और उनका सर्वस्व था। उसीके बिछोह से आज इस देश के तीस कोटि निवासी हाहाकार कर रुदन कर रहे हैं। यह सुन आगे बढ़ा ही था कि हाहाकार क्रन्दन सुनाई दिया, रात को सुनी हुई धड़ाके की प्रतिध्वनि फिर कान में गूँजने लगी, भ्रम होने लगा कि रात्रि में इसी क्रन्दन के हाहाकार ने तो नहीं विचलित किया था। धीरे धीरे कर समुद्र की लहरों की भांति यह मजमा हिलने डोलने लगा। लोग आगे बढ़ते नज़र आये। हम भी वहीं एक कोने में दूर पर एक वृक्ष की छाया में ठहरकर देखने लगे। हज़ारों आदमी अश्रुधारा से पृथ्वी को सींचते और उर्वरा करते चले जा रहे थे, आदमियों में सभी जाति के मनुष्य थे, हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई, अंगरेज़ सभी रोते बिलखते चले जाते थे। कोई नंगे पैर था, कोई नंगे सिर, किसी के बदन पर कोई कोई कपड़ा था किसी के बदन पर कुछ। सब एक ही दुःख में दुःखी थे और किसी को किसी प्रकार की सुधबुध न थी। मालुम नहीं कितनी देर यह मनुष्य की लहर आगे बढ़ती रही, कुछ समय बाद दूर से रथी दिखाई दी। लोग उसके साथ दुःख से पागल हो रहे थे, उनका रुदन सुनकर हृदय फटता था। इसी भीड़ में सब के पीछे एक बुड्ढा बाल सफेद, आँख पथराई हुई, कमर टूटी, लाठी के सहारे विह्वल चला आता था। वह ज़मीन पर गिर पड़ता था, उसके शरीर से रक्त कितने ही स्थानों से बह रहा था। वह पागल सा हो रहा था, रोने की आवाज़ उसके गले से नहीं निकलती थी, न अश्रुधारा ही उसके नेत्रों से बह रही थी। रह रह कर वह चीत्कार कर उठता था। उसकी दशा देख हमसे न रहा गया, हम दौड़ कर उसके पांवों पर गिर पड़े, कितने ही देर पड़े रहे पता नहीं। कुछ होश होने पर हमने उससे पूछा आप कौन है मालूम नहीं इस प्रश्न में क्या था। इसके सुनते ही उसके शरीर से रक्त सूखता सा मालूम हुआ, उसकी आँखें डबडबा आईं, वह विह्वल हो रोने लगा। कुछ देर बाद एक जंगल को झुलसा देनेवाली आह को छोड़ते हुए उसने कहा :—

"जो खिज़ा हुई वो बहार हूं।
जो उतर गया वो खुमार हूं॥
जो उजड़ गया वो नसीब हूं।
जो बिगड़ गया वो सिंगार हूं॥
मेरा हाल काबिले दीद है।
कि न यास है न उम्मीद है॥
न गिला गुज़ारे खिज़ा हूं मैं।
न सिपास संजे बहार हूं॥
कोई ज़िन्दगी है ये ज़िन्दगी।
न हँसी रही न खुशी रही॥
मेरी घुट के हसरतें मर गईं।
मैं उन हसरतों का मज़ार हूं॥
वो हँसी के दिन वो खुशी के दिन।
गये हस्र याद सी रह गई॥
कभी जामे बादये नाब था।
मगर अब मैं उसका उतार हूं"॥

वृद्ध की इस सदा को सुन कर मालूम होता था कि आकाश फट जायगा और विधाता का आसन डिग जायगा। उसकी दशा कैसी थी इसका वर्णन हमारी शक्ति के बाहर है। कुछ समय तक श्वास लेने के बाद उस वृद्ध ने हमसे कहना शुरू किया "आज काल ने हमसे हमारा सर्वस्व अपहरण कर लिया। सदियों से उसी के वारों का मैं शिकार था कितने ही हमारे बच्चों को उसने हमसे छीना किन्तु लहलहाती आशा के सम्बोधन से मैं अपने प्राणपखेरुओं को पालता रहा। इस सपूत पर मैं अपना तनमन धन वारे किये था, यह अन्धे की आँख, वृद्ध की लाठी

मि० गोखले के अन्तिम दर्शन करने के लिये सर्वेंट्स् आफ् इंडिया सोसाइटी के सामने लोगोंकी भीड.

मि० गोखले को श्मशानभूमि लेजाते समयका दृश्य.
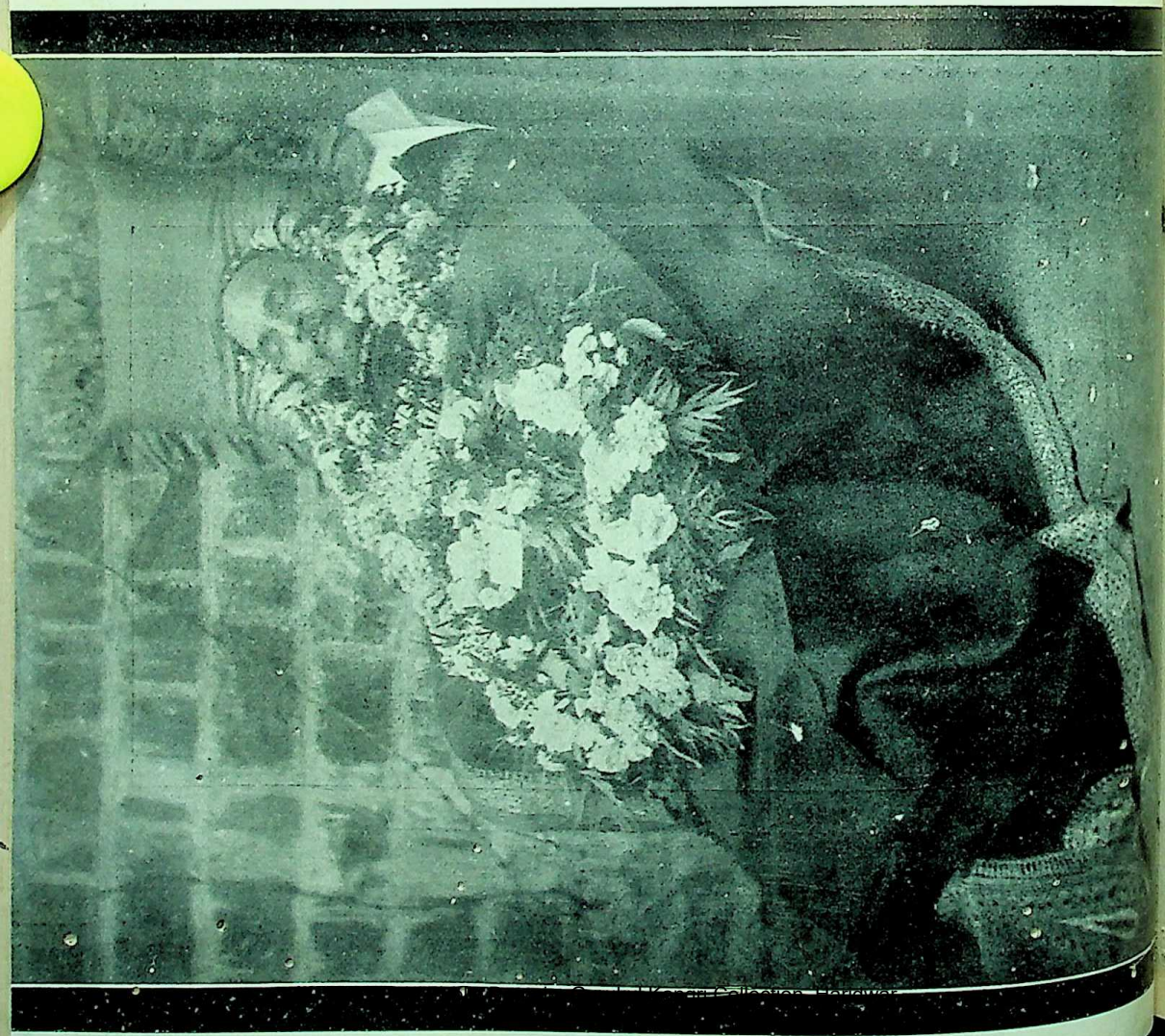
The Bombay Art Printing Works, Fort.

आराम कुरसी पर मि० गोखले.

हमारी बृद्धावस्था का सहारा था। यह हमारा मूर्तिमान् भाग्य था और इसीपर हमारी सब आशालताएं निर्भर थीं किन्तु आज यह भी हमें छोड़ हमसे बिदा हुआ। अब हमें कोई आशा नहीं। संसार में अब हमारा पुर्साहाल कोई नहीं. हमारी आरामों की फिक्र करनेवाला अब कोई नहीं, न अब हमारे अधिकारों के लिए कोई हमारे शत्रुओं या हितचिन्तकों को समझाने वाला ही है। आज हमारी तमाम उम्मीदों पर पानी फिर गया और अब मैं कहीं का न रहा।" बूढ़े की बातें सुनकर बरबस कलेजा मुँह को आता था। जब वह गोपाल, कृष्ण, गोखले चिल्ला चिल्ला कर ज़मीन पर पछाड़ें खाता, "मेरे प्यारे, मेरे बच्चे, मेरे प्राण" कहकर चीत्कार करता और "कहां हो, कहां गये, मैंने क्या बिगाड़ा था, बोलो, जवाब दो. अब क्यों नहीं बोलते, क्या आज के दिन रुलाने के लिए ही तुमने हमारी अस्थि और मज्जा को रक्तरस से सिंचन किया था, क्या यही दिन दिखाने के लिए तुम ने हमें जिला रक्खा था, क्या छोड़कर एक दिन भागने के लिए ही तुम हमारे लिए कष्ट उठाते थे, दूर दूर जाते थे, क्या तुम ने जो हमारे लिए कष्ट जीवन भर उठाये थे उसका इसी प्रकार बदला लेना सोच रक्खा था?" इतना कहते कहते बूढ़ा गिरकर बेहोश होगया। कुछ समय बाद होश आने पर वह खड़ा होने लगा। मैं सहारा दे उसे उसी ओर ले चला जिधर सब मनुष्य गये थे। धीरे धीरे मैं दरिया के किनारे पहुंचा। विचित्र दृश्य था। कितने मनुष्य तत्पर थे कहना कठिन है। मालूम होता था कालरूप वैरी को मारने के लिए इतने लोग एकत्र हैं। किन्तु बेबसी सब के चेहरों से टपक रही थी। धीरे धीरे अर्थी ठीक की गई। दाह का समय निकट हुआ। बूढ़ा चीत्कार कर गिर पड़ा। एकत्रित मनुष्यों ने भीषण हाहाकार करना आरम्भ किया। इतने ही में आकाश के एक कोने में उजेला दिखाई दिया। श्वेत हंस पर सुशोभित एक देवी उतरती दिखाई दीं। अर्थी के पास जाकर उन्होंने सफेद चन्दन से उसे सजा और मालूम नहीं होठ हिलाकर क्या कहने लगीं। कुछ ही मिनटों के बाद वे उस बूढ़े के पास आईं। बूढ़े को होश में लाकर वे इस प्रकार बोलीं "क्यों दुःख करते हो? ढाढस धरो! जिसके लिए तुम रोते हो वह मेरा भी पुत्र था, उसे मैंने अपनी कितनी ही विभूतियां दे रक्खी थीं। वह हमारा वर पुत्र था। संसार में कोई सदा के लिए नहीं आता, अपना काम वह कर चुका था, इसी हेतु मैंने उसे बुला लिया। अब वह मेरी अन्य कितनी ही विभूतियों से विभूषित हो फिर जन्म लेगा। उसके लिए रोना कैसा? अपने लिए भी अब तुम्हारा रोना व्यर्थ है, भौतिक रूप से नहीं वरन् शक्तिरूप से, बीजरूप से, तुम उसे अपने पास रक्खो, अपने हृदय में उसका स्मारक बना लो, इसी के आदेशानुसार काम करो। जबतक वह फिर न आवे, उसके मार्ग से विचलित मत हो, तुम्हारे लिए यही श्रेय है।" इतना कहकर वे हंस की ओर बढ़ीं और वह उन्हें लेकर आकाश में लीन हो गया। लोग सब चित्रखचित से अवाक् रह गये। लोग इसी अचम्भे में थे कि भीषण घननाद हुआ और एक देव अंग में भभूत रमाये नांदिया पर सवार आते दिखाई दिये। देखनेवालों में एकदम भक्ति और श्रद्धा का उद्रेक हुआ। उनके मुंह से शान्ति टपकती थी। इधर उधर देखकर वह देव भी अर्थी के पास पहुंचे। कुछ कहकर देव ने रमाई हुई विभूति से कुछ अंश अर्थी पर छोड़ दिया। बाद में वे भी वृद्ध के पास आकर यों कहने लगे:—"अवाक् क्यों हो? अपनी दो शक्तियों में से मैंने इसे शान्ति ही प्रदान की थी, यही इसमें प्रधान थी अब इसे अन्य शक्तियों से भी विभूषित करता है। कुछ समय बाद यह फिर तुझसे आ मिलेगा अब रोने का काम नहीं। जाओ इसी को शान्ति प्रदान

करो।" इतना कह ये जाने ही को थे कि आकाश से एक बड़ा पक्षी उड़ता हुआ आता दिखाई दिया। चारों ओर एक अवर्णनीय प्रकाश फैल गया। वह पक्षी गरुड़ था। इसके पहुंचते ही देव उतरकर अर्थी के पास पहुंचे। गले से उतारकर उन्होंने एक पुष्पहार अर्थी पर रख दिया। एक अनिर्वचनीय सुगंध से दिगन्त व्याप्त हो गया। इतने ही में वृद्ध को अर्थी के पास बुलाकर उन्होंने कहा "समानता की शिक्षा के लिए मैंने इसे भेजा था। इसने उसका प्रचार किया। मेरे पुष्पहार की भांति इसका यशसौरभ चारों दिगन्त में व्याप्त है, यह जाता है किन्तु यशसौरभ यहीं छोड़े जाता है। उसी के तुम भ्रमर हो जाओ। समानता की शिक्षा उसने हमारे आज्ञानुसार तुम्हें दी है, समानता ही तुम्हारा मूलमंत्र होना चाहिये, यदि तुमने समानता प्राप्त कर ली तो इसके लिए तुम्हारा तड़पना सफल हो जायगा।" देव अपनी बात पूरी भी न कर पाये थे कि मनमोहनी "आशा" देवी स्थान पर आकर प्रकट हुई। सभी के चेहरे विचित्र छटा से दीप्त हो गये। शोक का चिह्न जाता रहा, लहलहाती आशालता हृदय में अंकुरित होने लगी। देवी ने अर्थी पर एक सुन्दर गुलाब रख दिया। कुछ देर तक मन ही मन न मालूम वे क्या सोचने लगीं बाद में वृद्ध को सम्बोधित कर वे यों बोलीं "वृद्ध भारत! दुःख उठाते तुम्हें कितनी ही शताब्दियां बीत चुकीं। आज सा दिन तुमने पहिले भी देखा है किन्तु उस समय तुम्हारे शरीर में बल था, तुममें शक्ति थी और तुम सहन कर सकते थे। अब तुम्हारे शरीर में कुछ नहीं है। मेरा प्रकाश जो तुम्हारे हृदय में है वही अब तक तुम्हें जिलाये हुए हैं। तुम्हीं नहीं संसार के समस्त प्राणी हमारी कृपा से अपने असह्नीय दुःखों को सहज में वहन करते हैं। इस गुलाब के पुष्प को देखो, कितने सहस्र कांटों के बाद एक पुष्प दिखाई देता है। संसार की समस्त बातों में देखने से यही दृश्य दिखाई देगा। जाओ इस आशा की मूर्ति को अब हम सब देवी देवता ले जांयगे। अब यह तुम्हारे काम की नहीं रही। इस "आशा की मूर्ति" की छटा से अपने हृदय को व्याप्त कर लो, आशा को हृदय में धारण करो, जो काम यह छोड़े जाता है उसे पूरा करो। हम जानती हैं इस अशान्ति के समय तुम्हें इसकी ज़रूरत अधिक थी। तुम से अधिक इसकी आवश्यकता तुम्हारे सम्राट् को थी किन्तु ईश्वर जो कुछ करता है सोच समझकर करता है, मनुष्य समझें या न समझें किन्तु वह उनकी भलाई के लिए ही चेष्टा करता रहता है। जाओ, जाओ!" इतना कहते ही एक धड़ाका हुआ, एक विमान आकाश से उतरता दिखाई दिया उसी पर मि० गोखले को बैठाकर सब देव चलते दिखाई दिये। मि० गोखले ने विमान से नीचे खड़े मनुष्यों को सम्बोधित कर कहा "तुम लोग हमें नहीं देख सकते किन्तु मैं तुम लोगों को देखता हूं और देखता रहूंगा। हमारी आवाज़ तुम सुन सकते हो, यदि उसे सुनकर काम करोगे तो तुम विजयी होगे इसमें सन्देह नहीं।"

गोपाल कृष्ण की यह आवाज़ सुनते ही एकदम आंखें खुल गईं। बहुत चेष्टा की कि आंख बन्दकर फिर कुछ सुनें किन्तु व्यर्थ हुआ हम स्वप्न देख रहे थे।

"अभ्युदय"।

पति-पत्नी-संवाद ।*

[लेखक—श्रीयुत लक्ष्मणसिंह वर्मा ।]

हे हे सुशीले ध्यान दो,
निज कार्य को विश्राम दो ।
तव पति पधारो द्वार पै
जंजीर ध्वनि पर ध्यान दो ॥
आभरण झंकारित न हों;
विचलित न हो सन्मान में ।
निज कार्य को विश्राम दो
लखि पति सुढिवस अवसान में ॥१॥

कुछ भूत प्रत न है यहां
मति ग्रसित हो भय-पाश में ।
शुभ शरदपूर्ण "मयंक" है
उदित पूर्वाकाश में ॥
ऊपर प्रभामय गगन है
प्रतिविम्बपति निकुंज में ।
करलो प्रभम्पित मुख कमल
निज नील अंचल पुंज में ॥

ले दीप जाओ द्वार पैं
यदि हो ग्रसित कछु त्रास में ।
कुछ भूत प्रेत न है यहां
मति फँस प्रिये भय पाश में ॥२॥

यदि हो शुभे लज्जावती
तो प्रश्न का उत्तर न दो ।
शुभ मिलन में द्वार पै
प्रिये मौन का आश्रय गहो ॥

प्रश्नादि यदि प्रीतम करे
इच्छा तुम्हारी हो तथा ।
करलो विलोचन नमित तो
करि मौन धारण सर्वथा ॥

कङ्कनादिक ध्वनित हों
नहिं, दीप लै स्वागत करो ।
प्रश्न का उत्तर न दो
शुचि शील युत लज्जा धरो ॥३॥

कर चुकीं अब भी न क्या
तुम कार्य निज अविशेष हो ।
प्रीतम पधारो द्वार पै
मिलनार्थ उत्कण्ठित लखो ॥
सुप्रदीप दीप्त न कर सकीं
क्या गोधनालय में अभी ।
दिवसान्तकालिक हो न
सामग्री न प्रस्तुत हो सकी ॥

सौभाग्य चिन्ह न मांग में
सिन्दूर रेख विराज ही ।
मङ्गलमयी शुभरात्रि के हित
क्या शृङ्गार किया नहीं ॥

होकर रही क्या श्रवणगोचर
पति पधारो द्वार पै ।
निज कार्य को विश्राम दो
न विलम्ब का अब है समै ॥४॥

---

* यह पद्य जगतप्रसिद्ध कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर के "गार्डनर" नामक ग्रन्थ की दशम लाइरिक अर्थात् शृङ्गाररसप्रधान कविता का अनुवाद है । कवि ने शृङ्गार-रस-प्रधान कविता लिखते हुए भी अपने अपूर्व धार्मिक मास्तिष्क का पूर्ण परिचय दिया है । इसमें यदि "अन्तरात्मा" को "दुलहिन" तथा "मृत्यु" को "पति" माना जावे तो अत्युक्त न होगा । अनुवादक

युक्तप्रदेश में प्रारम्भिक शिक्षा।

[लेखक श्रीयुत बालमुकुन्द बाजपेयी।]

(गताङ्क की पूर्ति।)

इस लेखके पूर्वार्द्ध में हिन्दू-उर्दू विवाद के विवेचन की चेष्टा की गई है। परन्तु यह झगड़ा अब पुराना हो चला है और विचाराधीन मन्तव्यों द्वारा कलह के एक नवीन बीज का बपन किया गया है; इस अंशमें उसी पर विचार करना है। साथही यह अन्याय इतना स्पष्ट है कि, अधिक ऊहापोह करने का प्रयोजन नहीं। बिना किसी तर्क-वितर्क के ही पाठक भली भांति समझ लेंगे, दूरकी कौड़ी लानेका कष्ट न उठाना पड़ेगा। अस्तु।

चौथे मन्तव्यमें कहा गया है कि, "उपस्थित दशा में साधारण बोर्ड स्कूलों द्वारा समाज के कुछ दलों का काम भली भांति नहीं चल सकता।" क्यों नहीं चल सकता, इससे कुछ प्रयोजन नहीं। इन दलों के लाभके लिये जिन उपायों पर विचार किया गया है वे तीन भागोंमें विभक्त किये गये हैं (१) आधे समय वाले या रात्रि स्कूल। (२) विशेष जातियों या व्यापारों के लिये स्कूल। (३) मुसलमानों के लिये विशेष स्कूल। पूर्ववर्ती दोनों भागों के लिये हमें कुछ कहना नहीं है और न सरकारी मन्तव्य में ही उनके लिये विशेष चिन्ता दिखलाई गई है या प्रबन्ध करनेका सङ्कल्प किया गया है। अन्तिम ही सर्व प्रधान है।

सरकार कहती है कि सन १८८२-८३ के शिक्षा कमीशन ने मुसलमानों की शिक्षा के लिए विशेष रूपसे अनुरोध किया था परन्तु उनकी संख्या के विचार से सार्वजनिक स्कूलों और कालेजों में उनकी दशा सन्तोषजनक समझी जाती रही और कमीशन के अनुरोध पर ध्यान नहीं दिया गया। उच्च श्रेणियों में अब भी उनकी स्थिति दृढ़ है परन्तु प्रारम्भिक स्कूलों में हिन्दुओं की तुलना में उनकी उन्नति शोचनीय है और इसका कारण चाहे जो हो सरकार उत्तेजन देने को बाध्य है। क्या हम यह पूछ सकते हैं कि समाजविशेष को किसी कार्य के लिये विशेष रूपसे उत्तेजन देनेके लिये सरकार क्यों बाध्य है? क्या युक्त प्रदेश की सरकार का यही अभीष्ट है कि, मुसलमानों की संख्या भले ही हिन्दुओं की चतुर्थांश या उससे भी कम हो परन्तु प्रारम्भिक स्कूलों से उतने ही मुसलमान बालक लाभ उठावें जितने हिन्दू बालक उठाते हैं! सार्वजनिक प्रारम्भिक शालाओं में केवल मुसलमान बालक ही दिखाई पड़ें इसमें किसी को आपत्ति नहीं है। ईश्वर करे मुसलमान बालकों में विद्याभिरुचि इतना बढ़े कि एक भी मुसलमान बालक "डिबिया दियासलाई" की आवाज़ लगाता हुआ राह घाट न दिखाई पड़े परन्तु सरकार उनके लिये अधिक सुविधा करे इसका उसे कोई अधिकार नहीं है। साधारण स्कूलों में ही मुसलमान विद्यार्थियों के लिये जो अधिक सुविधाएं कर दी गई हैं क्या वे यथेष्ट नहीं हैं? सरकार ने स्वयं स्वीकार किया है कि "सर्वव्यापी व्यवस्थामें मुसलमान समाज के लिये अनेक रक्षणोपायों का (Safeguards) समावेश किया गया है। शिक्षक और निरीक्षक वर्गों में मुसलमानों के उचित सन्निवेश के लिये सुविधाए की जांयगी। बोर्डों से कहा जाता है कि, जिन स्कूलों में हिन्दुओं की संख्या अधिक है उन में मुसलमान विद्यार्थी सुगमता पूर्वक प्रवेश कर सकें और उनके साथ उचित व्यवहार किया जाय"। वाद के लिये हम यह स्वीकार किये लेते हैं कि, मुसलमान

विद्यार्थी बड़े ही साधु स्वभाव के होते हैं और इसलिए यह अवश्यक था कि जैसा सरकारी मन्तव्य में कहा गया है। उनका अपमान न हो इसका विशेष ध्यान रक्खा जाय और ऊपर जिन सुविधाओं की व्यवस्था की जानेका उल्लेख हुआ है वे सब आवश्यक थीं। फिर भी प्रश्न यह उठता है कि सर्वव्यापी व्यवस्थामें सब भांति की सुविधाएं कर देने पर भी सरकार को निम्नलिखित उपाय करने की क्यों सूझी ?

"जिस किसी गांव या नगर में यथेष्ट मुसलमान नागरिक अन्ततः २० लड़कों की उपस्थितिका ज़िम्मा लें वहीं बोर्ड को विशेष इस्लामिया स्कूल खोल देना चाहिये और उसमें मुसलमान शिक्षक नियत किया जाय"। सार्वजनिक धनसे समाज विशेष के बालकों की शिक्षा के लिये ये विशेष उपाय करने का सरकार को क्या अधिकार है ? किस देश की रीति अथवा किस नीति के आधार पर यह व्यवस्था की गई है ? क्या यह सार्वजनिक द्रव्य का दुरुपयोग नहीं है ? सरकार इससे भी अधिक कुछ करना चाहती थी परन्तु "सम्पूर्ण व्यय जब सार्वजनिक कोषसे लिया जायगा तो इससे अधिक सहन न होगा" इस चिन्ता ने बाधा उपस्थित कर दी। इस वाक्यसे यह भी स्पष्ट है कि, सरकार स्वयं समझती है कि, यह सार्वजनिक धनका अनधिकार तथा नीतिविरुद्ध प्रयोग है परन्तु फिर भी किया वही गया है।

हिन्दू समाज यदि ऐसे कार्यों का अर्थ यह लगावे कि, कर्तृपक्ष उर्दू का अधिक प्रचार करना चाहता है, मुसलमान समाज का पक्ष करता है, यथासाध्य हिन्दुओं के हित का बातों की उपेक्षा की जाती है तो उनका क्या दोष है ? राजकर्मचारियों का आन्तरिक अभीष्ट कुछ भी हो परन्तु ऐसे कार्यों से सिद्ध क्या होता है ? यदि यह भी स्वीकार कर लिया जाय कि समाजविशेष में शिक्षा प्रचार बढ़ाने के लिये ऐसे उपायों का अवलम्बन करना देश के हित की दृष्टि से, विचारशील शासक का कर्त्तव्य है तो भी शंका का समाधान नहीं होता और प्रश्न यह उठता है कि प्रान्त के जिन अन्य समाजों में प्रारम्भिक शिक्षाका सन्तोषजनक अथवा बिलकुल ही प्रचार नहीं है उन सब के लिये भी ऐसी ही कोई व्यवस्था क्यों नहीं की गई ? क्या मुसलमानों में अन्त्यज जातियों से भी कम प्रारम्भिक शिक्षाका प्रचार है ? यदि यह बात नहीं है तो उनके लाभके लिये कोई उत्तेजनात्मक प्रबन्ध क्यों नहीं किया गया ? उन्हों ने ऐसा कौनसा अक्षम्य अपराध किया था कि "अस्पृश्य जातियों की शिक्षा का भार परोपकारपरायण सज्जनों और ईसाई-धर्म-प्रचारिणी संस्थाओं" पर छोड़ दिया गया ? इन बातों पर विचार करने से सर्वसाधारण का धारणा केवल यही हो सकती है कि सरकार का मुसलमान भाइयों की उन्नति की तथा उर्दू के प्रचार की विशेष चिन्ता उत्पन्न हो गई है और येन केन प्रकारेण वह अपना अभीष्ट सिद्ध करना चाहती है। ऐसे कार्योंके पश्चात् भी हिन्दू और मुसलमानों के बर्द्धमान वैमनस्य के कारणों को ढूँढते फिरना अनावश्यक है।

यह तो हुई विशेष इस्लामिया स्कूलों की सृष्टि की बात। परन्तु महामना सुचतुर सर जेम्स मेस्टन महोदय को इतनेही से संतोष नहीं हुआ क्योंकि "गवर्नमेंट मुसलमानों की अवनति रोकने को बाध्य है"; दूसरे शब्दों में जिसे हम कह सकते हैं कि गवर्नमेंट मुसलमानों की विशेष उन्नति करने को दृढ़प्रतिज्ञ है। यदि कोई यह पूछे कि, मुसलमान भाइयों की विशेष उन्नति करने को गवर्नमेंट क्यों दृढ़प्रतिज्ञ है तो उससे हमारा निवेदन है कि राजनीतिक कारणों का स्पष्टीकरण करने को हम यह लेख नहीं लिख रहे हैं अस्तु छठे मन्तव्य द्वारा वर्तमान मकतबों को तथा नवीन मकतबों के

स्थापन में विशेष सहायता देनेका सङ्कल्प किया गया है। इस सम्बन्ध में जो कुछ निश्चित हुआ है वह हम पाठकों की सेवा में उपस्थित करते हैं।

"शिक्षा विभाग के डाइरेक्टर महोदय मुसलमान सज्जनों की "एक प्रान्तीय मखतब-समिति का सङ्गठन करें जिसमें ११ से अधिक सदस्य न हों और उसका अध्यक्ष कोई मुसलमान स्कूल इन्सपेक्टर हो या शिक्षाविभाग के डायरेक्टर महोदय अपने विभाग के अन्य किसी अनुभवी पदाधिकारी को नियुक्त करें (अवश्य ही मुसलमान)। यह प्रान्तीय समिति परामर्शदातृ संस्था होगी जो शिक्षाविभाग की पाठ्य प्रणाली में किसी सारगर्भित परिवर्तन या प्रबन्ध विषयक उपायों के सम्बन्ध में सम्मति देगी तथा जिससे (प्रन्तीय मखतब-समिति से) उक्त विभाग एवं गवर्नमेंट मुसलमान समाज में प्रारम्भिक शिक्षाके अधिक प्रचार तथा उनके हितों से सम्बन्ध रखनेवाले किसी भी विषय पर सम्मति पाने की आशा रक्खेगी। एक मखतब मुख्य पाठ्य पुस्तक (text book) समितिका सङ्गठन किया जाय जिसके नौ सदस्य हों, चार प्रान्तीय मखतब-समिति द्वारा और शेष (अध्यक्ष सहित) शिक्षा विभाग के डाइरेक्टर द्वारा मनोनीत किये जांय। प्रत्येक ज़िले में एक "ज़िला मखतब-समिति" बनाई जाय। एतदर्थ जिला बोर्ड पाँच मुसलमान सज्जनों को मनोनीत करे अथवा बोर्ड का निर्वाचक नामावली के मुसलमान निर्वाचकों द्वारा उनके निर्वाचित किये जाने का प्रबन्ध कर दिया करे और जिलाधीश अर्थात् कलेक्टर साहब किसी मुसलमान पदाधिकारी को अध्यक्ष मनोनीत किया करें तथा—यदि गैरसरकारी सदस्यों की इच्छा हो तो—वे राजकर्मचारियों को समिति का सदस्य बना सकेंगे। ज़िला समितियों का कर्तव्य होगा कि वे वर्तमान मखतबों का गणना कर बोर्ड तथा निरीक्षणकारी अधिकारियों का ध्यान उनकी ओर आकृष्ट करें; मखतबों के स्थापन और उनके समुचित सञ्जीकरण को प्रोत्साहन दें; मौलवियों के चुनाव और उनकी प्रवीणता का (training) प्रबन्ध करें तथा मखतबी शिक्षा सम्बन्धी प्रत्येक विषय पर सम्मति दें। आर्थिक सहायताभिलाषी मखतबों को प्रान्तीय मखतब-समिति की सम्मति से शिक्षाविभाग के डायरेक्टर द्वारा निश्चित पाठ्यक्रम की शिक्षा देनी होगी। विशेष निरीक्षक वर्ग जिस मखतब को भलीभांति कार्य करनेवाला बतलावेंगे ज़िला बोर्ड उसे आर्थिक सहायता प्रदान करेगा। किन्तु यह सहायता मखतब के व्यावहारिक शिक्षकों के वेतनों को तीन चौथाई भाग से अधिक न होगी। कम से कम दो वर्ष की शिक्षा के पश्चात् बोर्ड की किसी प्रारम्भिक शाला की तीसरी या चौथी कक्षा में प्रवेश "कराये जाने वाले प्रत्येक विद्यार्थी के लिए बोर्ड जो उचित समझे किसी मखतब के कोष की वृद्धि कर सकता है। यदि गवर्नमेंट को स्पष्ट आवश्यकता प्रतीत होगी तो मखतबों के व्यावहारिक शिक्षकों के लिये एक "विशेष" नार्मलस्कूल भी खोल दिया जायगा। प्रवेशनियम, मासिकवृत्त, पाठ्यक्रम आदि समय आने पर प्रान्तीय मखतब समिति की सम्मति से निश्चित हो जाँयगे।"

मखतबों पर कर्तृपक्ष की इस विशेष कृपा के कारणों का भी जान लेना चाहिये। मन्तव्य में कहा गया है कि, (मखतबों की) यद्यपि धार्मिक शिक्षा मूलभित्ति है और गणित, व्याकरण तथा भूगोल की उपेक्षा की जाती है तथापि धार्मिक के साथ २ सांसारिक शिक्षा भी किसी अंश में सम्मिलित रहती है। परम्परा और व्यवहार के कारण विशेष मुसलमानी देशों में वे बड़े सम्मान की दृष्टि से देखे जाते हैं। दो कारणों से उनकी विशेष आवश्यकता है। एक तो नैतिक और धार्मिक शिक्षा उनमें दी जाती है। दूसरे धार्मिक शिक्षा न दी जाने या स्थानाभाव

कारण बोर्ड स्कूलों में न जानेवालों की प्रारम्भिक शिक्षा के लिये शिक्षा दी जाती है। कट्टर मुसलमान मखतबों का काल्पनिक से अधिक उपयोग समझते हैं"। वर्तमान मखतबों को विशेष सहायता देने तथा नवीन मखतबों के स्थापन को उत्तेजन देने के हेतु अनेक अंशों में उपर्युक्त सर्वाङ्गसुन्दर व्यवस्था कर देने के लिये ये कारण कहां तक यथेष्ट हैं इस पर बिना विचार कियेही हम केवल यही कहेंगे कि इन्हीं कारणों के उपस्थित रहते हुए भी हिन्दू बालकों के लिये भी ऐसी ही कोई व्यवस्था क्यों नहीं की गई ? इस व्यवस्था को देख कर सरलचित्त हिन्दूभाइयों की धारणा अवश्यमेव होगी कि, हमारी पाठशालाओं के लिये भी ऐसा ही कोई प्रबन्ध अवश्य किया गया होगा । परन्तु वे वज्रहृदय होकर सुनें कि प्रान्तीय पाठशाला-समिति, ज़िला पाठशाला-समिति आदि सुन्दर उपाय तो दूर रहे, पाठशालाओं को आर्थिक सहायता देना भी अनावश्यक समझा गया है । मखतबों को एक प्रकार से उनका तीन-चौथाई व्यय दिया जायगा । मौलवियों को प्रवीण बनाने के लिये नारमल स्कूल खोले जांयगे, दो वर्ष तक शिक्षा देकर साधारण प्रारम्भिक स्कूलों की तीसरी या चौथी कक्षा में प्रवेश कराये जानेवाले प्रत्येक विद्यार्थी के हिसाब से मखतबों के कोष की वृद्धि की जायगी और दीन हीन पाठशालाओं के लिये एक मधुर शब्द भी नहीं । जो कुछ भी हो, अब यह देखना चाहिये कि जिन कारणों से मखतबों की श्रीवृद्धि करने का निश्चय किया गया है वे ही कारण पाठशालाओं के पक्ष में भी उपस्थित है या नहीं ?

कर्तृपक्ष का कथन है कि धार्मिक शिक्षा न दी जाने तथा स्थानाभाव के कारण बोर्ड स्कूलों में न जानेवाले मुसलमान बालकों की शिक्षा के लिये मखतबों की बड़ी आवश्यकता है। परन्तु बोर्ड स्कूलों में स्थान तथा धार्मिक शिक्षा के अभाव के कारण केवल मुसलमान बालकों ही को हानि पहुंच रही है.. । इसका क्या प्रमाण है अथवा हिन्दू बालकों की धार्मिक शिक्षाका बोर्ड स्कूलों में कोई विशेष प्रबन्ध है और उनके लिये स्थानका अभाव नहीं होता ? यदि ऐसा नहीं है और ये कारण हिन्दू और मुसलमान उभय समाज के लिये समान रूप से वर्तमान हैं तो एक समाज व सुभीते के लिये मखतबों की विशेष रीतिपर सहायता करना क्यों उचित समझा गया है ? धार्मिक और नैतिक शिक्षा देने के कारण से भी मखतबों की आवश्यकता समझी गई है । वास्तव में धार्मिक और नैतिक शिक्षा की बड़ी ही आवश्यकता है । हिन्दुओं ने इस अभाव के लिये कम पुकार नहीं मचाई है । धार्मिक शिक्षा का सार्वजनिक स्कूलों में प्रबन्ध न होना हिन्दुओं को भी यदि अधिक नहीं तो उतनाही खटक रहा है जितना मुसलमानों को, बाल्यकाल से पाठशालाओं में धार्मिक शिक्षा न मिलने ही के कारण हमारे युवक इतने उच्छृङ्खल हो जाते हैं कि वे स्वधर्मको उपेक्षा की वस्तु समझने लगते हैं । मुसलमान विद्यार्थियों की अपेक्षा हिन्दू विद्यार्थियों में यह दोष अधिक देखा जाता है । इस अवस्था में इससे अधिक आक्षेपार्ह और क्या हो सकता है कि मुसलमान विद्यार्थियों की धार्मिक और नैतिक शिक्षा के ध्यान से मखतब तो अपनाये जाँय परन्तु जिन हिन्दू विद्यार्थियों के लिये उक्त शिक्षाओं की अपेक्षाकृत अधिक आवश्यकता है उनके लिये कोई प्रबन्ध न किया जाय । यह सब देख कर यही मुख से निकलता है कि "जिसको पिय चाहे वही सुहागिल" । हमारे मुसलमान भाइयों पर सरकार की दयादृष्टि है, उनका राजनीतिक महत्व राजपुरुषों को भी समझ में आगया है, इसलिए उनकी पाँचों अंगुलियां घी में हैं और भाग्यदोष से हम उच्छिष्ट भाग से भी वञ्चित रक्खे जाते हैं ।

अब यह विचारणीय है कि हिन्दू पाठशालाएं किन कारणों से दयापात्र नहीं समझी गईं ।

कहा गया है कि "हिन्दुओं की यह पुरानी संस्था यद्यपि साधारणतः मुसलमानी मखतब का प्रतिरूप समझी जाती है परन्तु दोनों में बहुत ही अल्प समानता है" पाठशालाओं की "धार्मिक शिक्षा स्वमताभिमानिनी की अपेक्षा साहित्यिक (dogmatic) अधिक होती है और मखतबों में मुसलमानी अध्यात्मविद्या की जितनी चर्चा होती है पाठशालाओं में हिन्दू अध्यात्मविद्या की उतनी नहीं होती। उसके स्थान में बही-खाता, महाजनी, चिट्ठीपत्री आदि व्यापार सम्बन्धी विशेष विषयों पर ही अधिक ध्यान दिया जाता है। शिक्षा हिन्दी में दी जाती है और साधारणतः थोड़ी संस्कृत भी पढ़ाई जाती है। साधारण बोर्ड स्कूलों के पाठ्यक्रम का अनुसरण किसी अंश में भी नहीं किया जाता। अतएव ज़िला या प्रान्तीय सङ्गठन की कोई आवश्यकता नहीं। हां, जिन पाठशालाओं में मखतबों की भांति व्यापक सिद्धान्तों के अनुसार हिन्दू धर्म की वास्तविक शिक्षा दी जाती हो उन्हें आर्थिक सहायता देना बोर्डों की विवेक-बुद्धि पर निर्भर है।"

अस्तु, पाठशालाओं के लिये विशेष सङ्गठन की तथा उन्हें आर्थिक सहायता देने की आवश्यकता इसीलिए नहीं समझी गई कि पाठशालाओं में हिन्दू धर्म के व्यापक सिद्धान्तों की शिक्षा पर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता, बहीखाता, महाजनी, चिट्ठीपत्री आदि सांसारिक विषयों में अधिक समय लगाया जाता है, बोर्ड स्कूलों के पाठ्यक्रम का अनुसरण नहीं किया जाता। इन कारणों से पाठशालाओं को सहायता न देने के सङ्कल्प पर हंसी आती है। एक ओर तो मन्तव्यों में स्थान २ पर सांसारिक विषयों की शिक्षा का रोना रोया गया है परन्तु पाठशालाएँ इसीलिए अपात्र ठहराई गई हैं कि उनमें सांसारिक उपयोग के विषयों पर अधिक अधिक ध्यान दिया जाता है। मखतबों को विशेष सहायता देने के कारणों का वर्णन करते हुए यह इङ्गित किया गया है कि उनमें गणित आदि सांसारिक विषयों की शिक्षा पर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता यह त्रुटि है परन्तु पाठशालाओं के समय यही अत्रुटि त्रुटि में परिणत हो गई। कहा गया है कि पाठशालाओं में धार्मिक शिक्षा का स्वरूप साहित्यिक (dogmatic) नहीं होता और जिन पाठशालाओं में मखतबों की भाँति व्यापक सिद्धान्तों के अनुसार हिन्दू धर्म की प्रकृत शिक्षा दी जाती हो उन्हें बोर्ड यदि उचित समझें तो सहायता दे सकते हैं। यदि पाठशालाओं में धार्मिक शिक्षा दी जाती है तो वह हिन्दू धर्म के व्यापक सिद्धान्तों की नहीं तो किस धर्म के सिद्धान्तों की दी जाती है। यह एक नवीन समस्या है। क्या पाठशालाओं में शिक्षा पानेवाले हिन्दू बालक ईसाई या महम्मदी धर्म के सिद्धान्तों की शिक्षा पाते हैं। Dogmatic Character से यहां क्या अर्थ रक्खा गया है यह हमारी समझ में नहीं आया। दो ही बातें हो सकती हैं। या तो पाठशालाओं में धार्मिक शिक्षा दी ही नहीं जाती और यदि दी जाती है तो वह हिन्दू धर्म के सिद्धान्तों की नहीं केवल नैतिक शिक्षा दी जाती है, या यह कहा जा सकता है कि साम्प्रदायिक सिद्धान्तों की शिक्षा नहीं दी जाती। हम यह जानते हैं और हमें इसकी प्रसन्नता है कि पाठशालाओं में साम्प्रदायिक शिक्षा नहीं दी जाती। परन्तु यह कदापि स्वीकार नहीं किया जा सकता कि पाठशालाओं में जो धार्मिक शिक्षा दी जाती है—उसका स्वरूप भले ही साहित्यिक हो - वह हिन्दू बालकों में स्वधर्माभिमान नहीं उत्पन्न करती। हां, हिन्दू धर्म दुराग्रह नहीं, उदारता का पोषक अवश्य है। स्पष्ट तो यह है कि मखतबों को विशेष सहायता देने का सङ्कल्प करने के साथ ही अधिकारियों को यह चिन्ता हुई कि कहीं हिन्दू समाज यह न चिल्लाने लगे कि पाठशालाओं की उपेक्षा क्यों की गई, इसीलिए शब्दजाल के विकट अस्त्र से पाठशालाओं के भावी द

भरनेवालों को निरस्त्र करने का उपहास्य प्रयत्न किया गया है ।

यदि वास्तव में पाठशालाओं को भी मक्तबों की भाँति सहायता देने की इच्छा होती तो हिन्दू धर्म की Dogmatic character की शिक्षा का सहज में प्रबन्ध हो सकता था और हिन्दू समाज इस आदेश का सहर्ष स्वागत करता तथा सर जेम्स मेस्टन की जयजयकार से आकाश कम्पित कर देता । जिस प्रकार प्रान्तीय "मक्तब टेक्स्ट-बुक-समिति" मक्तबों के लिये पाठ्य पुस्तकें निर्धारित करेगी, उसी भांति पाठशाला धर्म-शिक्षा-समिति का सहज ही सङ्गठन किया जा सकता था और वह पाठशालाओं के लिये धार्मिक शिक्षा की सुशैली नियत कर देती । न जाने इसमें कौन सी भयानक कठिनाई समझी गई । "इच्छा होने से उपाय निकल आता है" इस अंगरेज़ी प्रवाद के अनुसार सब कुछ किया जा सकता था परन्तु जब ऐसा करने की इच्छा हो तब न ?

मुसलमानों की प्रारम्भिक शिक्षा और उनके मक्तबों के लिये जो विशेष प्रबन्ध किया गया है वह पाठकों की सेवा में भेंट किया जा चुका। परन्तु इतने बड़े सौदे में घाटे की भी आवश्यकता है । दान की आकाङ्क्षा के लिये कुछ व्याज स्वरूप भी देना उचित है । यह विचारकर पूर्ण फलप्राप्ति के हेतु कर्तृपक्ष ने निश्चय किया है कि "साधारण निरीक्षकवर्ग में तो शनैः २ अधिकसंख्यक मुसलमानों के प्रवेश का प्रबन्ध किया ही जायगा तो भी मुसलमानों को प्रारम्भिक शिक्षा के लिये जो विशेष प्रबन्ध किया गया है, तदनुसार निरीक्षकवर्ग में भी वृद्धि सापेक्ष है ।" यह वृद्धि इस प्रकार से होगी । विविध मनोनीत उपायों में सहायता और सम्मति देने के लिये एक अधिक निरीक्षक नियत किया जायगा । उसका मुसलमान होना आवश्यक समझा गया है । वह "प्रान्तीय मक्तब-समिति" तथा "मक्तब मूल-पुस्तक-समिति" का भी सदस्य होगा । विशेष इस्लामिया स्कूलों के स्थापन के उद्योगों में सहायता देना तथा लोगों के निजी (Private) स्कूलों को सहायता के योग्य ठहराना भी उसका कर्तव्य होगा । इसके अतिरिक्त प्रत्येक खण्ड में (Division) एक मुसलमान डिप्टी इन्सपेक्टर ज़िलों की मुसलमानी पाठशालाओं के विषय में सम्मति देने और निरीक्षण करने के विशेष कार्य के लिये नियत किया जायगा । सम्भवतः साधारण निरीक्षकों से यह कार्य सन्तोषजनक रीति से न होता इसीलिए यह व्यवस्था करनी पड़ी । बोर्ड के स्कूलों के निरीक्षण का कार्य हिन्दू अथवा अन्य जातीय निरीक्षक द्वारा भलीभांति भले ही चल जाता हो परन्तु विशेष इस्लामिया स्कूलों का निरीक्षण करने की योग्यता केवल मुसलमान निरीक्षक में ही होना सम्भव है । यह बिलकुल ठीक है । जनसाधारण स्कूलों से मुसलमानों का काम नहीं चलता और विशेष प्रबन्ध की आवश्यकता पड़ी तो विशेष प्रबन्ध को सुन्दर रीति से सम्पादित करने के लिये विशेष पुरुषों की आवश्यकता भी अनिवार्य है ; यह स्वीकार करने में किसी को भी आपत्ति न होनी चाहिये ।

बुद्धिमानों का कोई भी कार्य विशेषता से खाली नहीं होता । प्रवीण धनुर्धर की चतुरता यही है कि यदि अधिक नहीं तो एक बाण से दो पक्षी तो अवश्य बिद्ध हों । इसी अनुसार राजनीति-निपुण कर्तृपक्ष ने विशेष निरीक्षक को जो अधिकार दिये हैं उनमें कुछ रहस्य निहित है और वह रहस्य यही है कि लोगों के निजी (Private) स्कूलों को सहायता देने का उसे अधिकार होगा । इसका अर्थ यह हुआ कि कदाचित् ही हिन्दुओं द्वारा सञ्चालित कोई प्राइवेट स्कूल सहायता पाने के योग्य समझा जाय । इस प्रकार से हिन्दू पाठशालाओं को सहायता मिलने का मार्ग भी अवरुद्ध सा कर दिया गया । हमें क्षमा किया जाय यदि हिन्दू या

अन्य जातीय निरीक्षक द्वारा विशेष इस्लामिया स्कूलों और मक्तबों का समुचित निरीक्षण न हो सकने की आशंका करने का कर्तृपक्ष को अधिकार है तो हमारे समक्ष यह विचार स्वतः उपस्थित हो जाता है कि मुसलमान निरीक्षक महोदय हिन्दुओं द्वारा सञ्चालित किसी भी प्राइवेट स्कूल को बोर्ड से सहायता पाने के योग्य न समझेंगे। ऐसा विचारने में हमारा कोई अपराध नहीं है। स्वयं सरकार हमारी पथ-प्रदर्शक है। बड़ों की ही परिपाटी सर्वसाधारण की दृष्टि में अनुकरणीय हुआ करती है।

विशेष इस्लामियां स्कूलों में एक और भी विशेषता होगी। बोर्डों को अधिकार होगा कि उक्त स्कूलों के आधे विद्यार्थियों से वे फीस न लें। बड़ों की यही बड़ाई है कि जिसकी बांह पकड़ते हैं उसका पक्ष सब भांति से समर्थन करते हैं। कल्पवृक्ष तक पहुंचना अवश्य कठिन है परन्तु पहुंच जाने वाले के निकट दरिद्रता का क्या काम। सुविधाओं की भरमार देखकर चकित होने का कोई कारण नहीं है। गवर्नमेंट समाजविशेष के साथ भिन्न प्रकार का व्यवहार करने को जब उद्यत होगई तो फिर क्या नहीं हो सकता। "सैंया भये कोतवाल अब डर काहे का" के अनुसार मुसलमान बन्धुओं के लिये दुष्प्राप्य अब कुछ भी नहीं है। जिसमें उनकी बात बनती हो वह सब सहज ही हो सकता है। विचारे फुलर ने सहज स्वभाव से जो कुछ स्पष्ट कह डाला था वही इन दिनों कर्तृपक्ष की नीति है, इसमें सन्देह करने का कोई कारण नहीं जान पड़ता। परन्तु इस नीति का परिणाम मङ्गलजनक कदापि नहीं हो सकता। दो पुत्रों में एक को युवराज और दूसरे को उसकी मृत्यु नियुक्त करना कदापि बुद्धिमत्ता का द्योतक नहीं समझा जा सकता। अब हम दो शब्द अपने नेताओं और भाइयों से कह कर इस रामकहानी को समाप्त करेंगे।

इन मन्तव्यों के प्रकाशित होते ही हमारे नेताओं को उचित था कि वे तीव्र प्रतिवाद करते। परन्तु खेद के साथ लिखना पड़ता है कि भारतीय राष्ट्र के सङ्गठन की धुन में वे ऐसे मस्त हैं कि हिन्दुओं के दुर्दिनों का प्रमाण इस से अधिक और क्या हो सकता है। नेता होने का दम भरनेवालों से हमारा विनीत निवेदन है कि मृगतृष्णा के जल को तिलाञ्जलि देकर जाति और देशसेवा का व्रत ग्रहण करना उचित है। ताली एक हाथ से नहीं बजती। यदि यह नहीं समझ में आता तो सरलचित्त हिन्दुओं का भ्रम दूर कर देना चाहिये। स्मरण रहे कि हिंदू जाति को क्षति पहुंचने से भारतीय राष्ट्र का कल्याण नहीं हो सकता। जिन कार्यों से हिन्दू और मुसलमान भारत के उभय मुख्य समाजों का हित होना सम्भव है वही कार्य राष्ट्रीय दृष्टि से हितकर माने जा सकते हैं और जिन कार्यों से एक समाज को हानि और दूसरे को लाभ पहुंचना निश्चित है वे राष्ट्रीय दृष्टि से कल्याणकारक कदापि नहीं हो सकते। हम राष्ट्रीयता के विरोधी नहीं हैं। राष्ट्रोन्नति हमारा परम ध्येय है परन्तु हिन्दू जाति के रसातल पहुंचने का मार्ग परिष्कृत कर हम राष्ट्रपन्थी होने का गौरव नहीं चाहते। हिन्दू नेताओं को ऐसे विचारों को हृदय में स्थान भी न देना चाहिये जिनसे राष्ट्रीयता के मूल में कुठाराघात होने की सम्भावना हो परन्तु साथ ही अपर समाज किम्वा गवर्नमेंट द्वारा जब ऐसा कोई कार्य किया जाय जिससे हिन्दुओं के हित की हानि होना निश्चित हो तो हिन्दू नेताओं को निस्सङ्कोच होकर अपने जातीय हित के लिये प्रयत्नशील होना उचित है। यही हमारा वारम्बार निवेदन है। राजनीतिक क्षेत्र में सहनशीलता से काम चलने के दिन समाप्त होगये। अब तो सदैव घूंसे के बदले लाठी मारने के लिए प्रस्तुत रहने की ही नीति श्रेयस्कर है। जो लोग केवल सम्मानवृद्धि या उन्नति

का पथ उन्मुक्त करने के लिये देशभक्ति का जामा पहिनते हैं उनसे हमारा यही कहना है कि इससे बढ़कर महापातक या नीचता का परिचायक और कोई कार्य नहीं हो सकता! सम्पूर्ण जाति को क्षतिग्रस्त करने के उद्योग से अब उन्हें विरत होना चाहिये।

हिन्दू भाइयो, अब मनही मन बुदबुदाने से काम न चलेगा। यदि तुम्हारे नेता जिनके हाथों में तुम ने अपना सर्वस्व छोड़ दिया है, कर्तव्य-परायणनहीं हैं तो तुम्हें उचित है कि तुम स्वयं अपने भावों को, अपने हित की बतों को सरकार के कानों तक पहुंचाओ। मानना या न मानना दूसरे के हाथ में है। परन्तु अपने ऊपर होनेवाले अन्यायों का प्रतिवाद अवश्य करना चाहिये। आवश्यकता से अधिक सुशीलता और सरलता भी हानिकर हुआ करती है। विचार करने की बात है कि केवल मुसलमान बालकों की प्रारम्भिक शिक्षा और उनके मखतबों के लिये इस प्रकार से सार्वजनिक धन का व्यय करने का संकल्प युक्तप्रदेश की सरकार ने कर डाला और हमारे नेताओं के मुख से प्रतिवादसूचक एक शब्द भी न निकला!! हिन्दीज्ञाता के नाते प्रयागीय विश्वविद्यालय के "फेलो" बनने के अभिलाषी एक सज्जन ने तो बात जहां की तहां दबा देने के लिये आकाश पाताल एक कर दिया परन्तु भला हो हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का जिसने उपर्युक्त मन्तव्यों द्वारा उर्दू भाषियों के लिये जो सुविधाएँ कर देने की सरकार से प्रार्थना तो की। प्यारे भाइयो, उठो, जागो, चेतो अपना भला बुरा समझो। तुम्हारी दशा बड़ी ही शोचनीय हो रही है, अब सोने का समय नहीं। तन, मन, धन से उद्योग करो, ईश्वर सहायक होगा।

मातृभाषा का प्रेम।

[लेखक—श्रीयुत जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी।]

भैरवी।

मन हिन्दी हिन्दी कहु रे।
अंगरेज़ो उरदू कों तजि, के
अपनी भाषा गहु रे॥

दीन हीन हिन्दी भाषा है
यह कलंक मत सहु रे।
निज भाषा की सेवा करि के
जगन्नाथ यश लहु रे॥

नवीन सम्पत्ति शास्त्र।*

[लेखक—पं० सोमेश्वरदत्त शुक्ल बी० ए० ।]

३ "जो पृथ्वी का निर्णय करें।"

आज से प्रायः दो हज़ार वर्ष पहिले एक बड़ा मालदार यहूदी व्यापारी हुआ था। सुकृत ही के धन को कमा कर उसने अपने को करोड़पती बनाया था। वह पाप की कमाई से एकदम अलग रहता था। उसकी लिखी हुई कुछ कहावतें, उसके कागज़ों में मिली हैं. इस समय भी वे बड़े मार्के की हैं और ध्यान में रखने के योग्य हैं। उसकी कुछ मुख्य उक्तियाँ ये हैं:—

(१) "झूठ बोल कर रुपया पैदा करने के मद में वे ही लोग चूर रहते हैं जो मौत के पीछे दौड़ा करते हैं।"

(२) पाप की कमाई किसी अर्थ की नहीं होती है, परन्तु पुण्य मृत्यु से बचाता है।"

इनका यह प्रयोजन है कि जब कभी अन्याय के साथ धन पैदा करने का यत्न किया जायगा, तब सर्वनाश ही उसका अन्तिम परिणाम होगा।

(३) जो मनुष्य धनी बनने के लिये निर्धनों को सताता है उसे एक न एक दिन ज़रूर कौड़ी कौड़ी तक के लिये तरसना पड़ेगा।

(४) निर्धन को निर्धन जानकर कभी न लूटो और न व्यापार के बहाने से दूसरे लोगों को ही पीड़ित करो, कारण कि जो मनुष्य औरों को कष्ट देते हैं उनकी आत्माओं को परमेश्वर दुःखी करता है।"

डकैत लोग धनी को धनी जानकर लूटते हैं, परन्तु आजकल के व्यवसायी दरिद्री मनुष्यों की दरिद्रता से लाभ उठाकर और बहुत थोड़ी मज़दूरी देकर उन्हें ज्यादा काम करने को बाध्य करते हैं—उन्हें जितना रुपया अपनी मेहनत के लिये मिलना चाहिए उसका कुछ हिस्सा वे अपने ही पास दबा रखते हैं। इधर मज़दूर लोग जो कुछ पाते हैं उसीसे अपना पेट पालते हैं और लाचार होकर थोड़े वेतन पर कठिन परिश्रम करते हैं।

(५) "धनी और निर्धन आमिले हैं। परमेश्वर इनका बनानेवाला है।"

(६) धनी और निर्धन आमिले हैं। परमेश्वर इनकी ज्योति है।

यहाँ पर "आमिले हैं" इसका अर्थ यह है कि ये एक दूसरे का विरोध कर रहे हैं। धन और निर्धनता में बड़ी पुरानी शत्रुता है। इन दोनों की प्रतिस्पर्धा प्राकृतिक है, क्योंकि "परमेश्वर इनका बनानेवाला है।" जैसे पहाड़ से निकल कर नदी का समुद्र में गिरना एक नैसर्गिक घटना है, वैसेही धनी और निर्धनों का एक स्थान में होना और उनमें खींचा-तानी का बना रहना भी आवश्यक है, परन्तु इस दशा का भला या बुरा उपयोग करके ये दोनों अपना कल्याण या सर्वनाश कर सकते हैं। जब

* इङ्गलैंड के प्रसिद्ध विद्वान् जान रस्किन की "पोलिटिकल इकानोमी आफ़ आर्ट", "अंटू दिस लास्ट" और "म्यूनेरा पल्वेरिस" के आधार पर। इसके पहिले तीन लेख "चित्रविद्या का सम्पत्ति शास्त्र", "गौरव का मूल कारण" और "सम्पत्ति की नसें" मर्यादा की गत संख्याओं में छप चुके हैं। यह पुस्तक शीघ्र ही अभ्युदय प्रेस से छपकर प्रकाशित होगी।

लक्ष्मीवान् और दरिद्री मनुष्य दोनों ही यह याद रखते हैं कि "परमेश्वर हमारी ज्योति है" तथा आपस में सहानुभूति और एक दूसरे से न्यायपूर्ण बर्ताव करते हैं, तब ये सुखी रहते हैं और देश की सम्पत्ति को बढ़ाते हैं, वैसे ही यदि एक ने दूसरे को सताया और दूसरे ने पहिले का अपमान किया, तो दोनों ही का हित नहीं हो सकता है। अन्याय का व्यवहार हुआ नहीं कि दोनों के नेत्रों की ज्योति जाती रहती है और तब ये न तो अपने को और न दूसरे ही को पहिचान पाते हैं तथा दिनों दिन अत्याचार और अपकर्ष के समुद्र में डूबते जाते हैं।

अर्वाचीन अर्थशास्त्रियों का एक नियम यह भी है कि जहाँ पर जिस चीज़ की खपत होगी वहीं पर उसकी आमदनी होगी। उनका कहना है कि क़ानून इस बात को नहीं रोक सकता है। ठीक उसी तरह से संसार की नदियाँ वहीं बह कर जाती हैं जहाँ उनकी चाह होती है। जहाँ ज़मीन नीची होगी उसी ओर को पानी झुकेगा, हम इसको भी क़ानून से अपने वश में नहीं कर सकते हैं, परन्तु हमें उसको इस प्रकार से नियंत्रित करना चाहिए कि वह न्यायी और उदार मनुष्यों के पास पहुंचकर देश का और जाति का कल्याण करे। इस समय के अर्थशास्त्री सम्पत्ति के उचित नियन्त्रण और वितरण के नियमों की उपेक्षा करते हैं। वे कहते हैं कि हमारा शास्त्र धनाढ्य बनने का शास्त्र है। सच पूछिए तो इस प्रकार से जुवा खेलना, चोरी करना और डाका मारना भी धनी बनने के शास्त्र हो सकते हैं।

हम वर्तमान अर्थशास्त्र को ऐसी अनुदार दृष्टि से नहीं देखना चाहते हैं, इस कारण से हमें यह समझना चाहिए कि यह हमें न्यायपूर्ण और उचित रीतियों से रुपया पैदा करने के नियम बतलाता है। अब यहाँ पर यह आपत्ति होती है कि कुछ काम ऐसे हैं जो, यद्यपि क़ानून के देखते हुए ठीक जँचते हैं, तथापि वे वास्तव में अन्याय से भरे हुए होते हैं, इसलिए हम केवल न्याय के साथ कमाये हुए धन को ही अर्थशास्त्र का उचित उद्देश्य मानेंगे। इस दशा में यह सबको स्वीकार करना पड़ेगा कि अर्वाचीन अर्थशास्त्र के अनुकूल धनी होने के लिये हम को न्यायपूर्ण उपायों से ही धनी बनना चाहिये। जो लोग किसी के साथ कभी अन्याय नहीं करते हैं उन्हीं की आत्माएँ नक्षत्रों के समान ज्योतिर्मय, पवित्र और प्रभावशाली होती हैं। इसी प्रकार के मनुष्यों के नेत्रों में स्वर्गीय प्रकाश होता है और ये ही दूसरे लोगों के सच्चे नेता होते हैं। ये स्वयं उचित मार्ग पर चलते और दूसरों को भी उस पर चलाते हैं। इन्हीं को देख कर यह कहा गया है—"जो पृथ्वी का निर्णय करें उन्हें चाहिए कि वे न्याय के साथ निरन्तर प्रेम रक्खें।"* येही किसी बात की चिन्ता न करके सदा न्याय के साथ प्रेम करते हैं। यह ज़रूरी नहीं है कि जब कोई मनुष्य राजा, ऋषि या न्यायाधीश हो, तभी वह इस काम को अपने हाथ में ले; प्रत्येक पुरुष जो उचित शासन करता है राजा है, जो दूसरों की रक्षा करता है ऋषि है, और जो सब के साथ न्यायपूर्ण व्यवहार करता है न्यायाधीश है।

अब हमें यह जानना है कि किसी के परिश्रम के मूल्य को चुकाने का क्या न्याय है और उसके क्या नियम हैं। जैसा हम इससे पहिले वाले निबन्ध में दिखा चुके हैं कि यदि हम किसी मनुष्य से काम लें, तो उसका पूरा बदला तभी होता है, जब ज़रूरत पड़ने पर उतनेही समय तक हम उसका काम कर दें, या यदि ऐसा न हो सके तो हम उसकी मेहनत के बदले में उसे इतने रुपये दें कि वह जब कभी आगे चलकर उसे आवश्यकता हो किसी और आदमी

* "Diligite Justitiam Qui Judicatis Terram."

से उन्हें देकर उतने समय तक अपना काम करवा ले। यदि किसी को एक ही मज़दूर की ज़रूरत हो और दो आदमी उस काम के लिये आपहुंचे तो उस समय ये दोनों आपस में चढ़ा-ऊपरी लगाकर मज़दूरी को कम कर देंगे। इस प्रकार से जो मनुष्य कम मूल्य लेकर अपना परिश्रम बेंचेगा वह घाटे में रहेगा। यदि दो आदमियों को एक एक मज़दूर की ज़रूरत हो और वहां पर एक ही मनुष्य हो तो उनमें से जो कोई उसको ज्यादा मज़दूरी देगा उसी का यह काम करेगा। इस प्रकार से थोड़े परिश्रम के बदले में इसे ज्यादा मूल्य मिलेगा।

यहां पर यह उचित है कि परिश्रम के मोल लेने वाले और बेंचने वाले में पूरा पूरा बदला हो—समय के साथ समय का, शक्ति के साथ कौशल का। इतना ही नहीं बरन यदि न्याय की दृष्टि से देखिये तो काम लेनेवाले को दूसरे के परिश्रम के उपलक्ष्य में थोड़ा बहुत ज्यादा ही मूल्य देना चाहिये जिसमें समय आने पर उसे स्वयं अपने लिये उतनीही मेहनत कराने में किसी प्रकार की अड़चन न हो। जब किसी को यह बदला रुपये के रूप में चुकाया जाय तब यह आवश्यक है कि हम उसे उचित से भी कुछ ज्यादा वेतन दें। जैसे यदि आज किसी ने एक घंटे तक हमारा काम किया तो हमें उससे यह वादा कर लेना चाहिए कि आवश्यकता होने पर हम एक घंटा और पाँच मिनट तक तुम्हारा काम करेंगे। साधारणतया एक घंटा काम करनेवाले से कम से कम एक ही घंटे तक काम करने की प्रतिज्ञा करना सभी प्रकार से योग्य है। यदि इसमें कमी हुई तो वह एक का दूसरे पर केवल अत्याचार करना है। इस सम्बन्ध में हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि हिसाब चुकाते समय हम किसी को जो कुछ दें वह उचित रीति से अवश्यमेव उसके परिश्रम के अनुरूप—बराबर हो। जब किसी वेतन-विशेष का पानेवाला काम पड़ने पर उसी मूल्य को देकर अपने लिये ठीक उतना ही परिश्रम किसी और से करवा सके, केवल तभी यह व्यवहार न्यायपूर्ण कहा जा सकेगा। परिश्रमजीवियों की संख्या के कम या ज्यादा होने से इस नियम में कुछ भी हेरफेर न होना चाहिये। यदि हमें एक तसबीर तैयार करानी हो और हम उसके लिए २०००) देने का निश्चय कर चुके हों तो चाहे एक चित्रकार हो चाहे १०० हों और चाहे १००० हों परन्तु उनमें प्रतिस्पर्धा उत्पन्न करके हमें अपने निश्चित मूल्य २०००) को ५००) ही कर डालने का यत्न कभी न करना चाहिये। ऐसी दशाओं में वास्तविक लाभ की आशा करना व्यर्थ है, बरन जो रुपया हाथ से जाता है वह भी मिट्टी में मिल जाता है, क्योंकि जो चित्रकार या शिल्पी गुणी है वह हज़ार बार मत्था पटकने पर भी अपने परिश्रम का मूल्य न कम करेगा। अपना मूल्य वे ही कम करेंगे जो लोग घटिया दर्जे के हैं तथा जो हमारा रुपया उड़ा जायँगे और उसके साथ ही काम को भी सत्यानाश कर देंगे।

आजकल साधारणतया शिल्पियों और परिश्रमजीवियों के काम का मूल्य रुपयों ही में दिया जाता है और उनके बदले में हम उनसे सभी तरह की मेहनत लेते हैं। इस प्रकार से परिश्रम विशिष्ट हो जाता है और उसका मूल्य साधारण—रुपये के रूप में-बना रहता है, क्योंकि यह समय के बदले समय और निपुणता के बदले में निपुणता नहीं है, बरन समय और निपुणता दोनों के बदले में रुपया मात्र है। यह द्रव्य देश के या अपनी जाति के नाम एक आशा या प्रमाण मात्र है, जिससे कोई मनुष्य, जब चाहे तब अपना उतना ही काम दूसरे मनुष्य से करा ले, अथवा उतने ही परिश्रम से पैदा की हुई या बनी हुई चीज़ ज़रूरत पड़ने पर मोल ले सके। परिश्रम के परिवर्तन में रुपया देते समय हमें बड़ी सावधानता

करनी चाहिए जिसमें काम करनेवाले के ऊपर किसी प्रकार का अन्याय न हो। हमें यह दृढ़ नियम बना लेना चाहिये कि हम सदा प्रत्येक मनुष्य के परिश्रम का पूरा पूरा बदला चुका दिया करेंगे। कुछ समय तक ऐसा करने पर हम मनुष्यों के कामों के मूल्य का रुपये के रूप में अनुमान कर लेने में चतुर हो जावेंगे और तब हम दूसरों के ऊपर अत्याचार करने से अपना हाथ खींच सकेंगे।

यदि कोई व्यवसायी दो कारीगरों में स्पर्धा पैदा करे और उनमें से एक को आधे ही वेतन पर काम करने के लिये राज़ी कर ले तो इस बात का पहिला फल यह होगा कि दूसरा आदमी भूखों मरेगा या बेकार रह जायगा, कारण कि उचित रीति से उसे दो को दूने दाम देने चाहिये थे। जो काम वह १) प्रति दिन देकर एक से कराता उसे अब वह ॥) ही में ले रहा है और शेष ॥) में वह दूसरा आदमी भी रख सकता है, वैसे उसको दो मनुष्यों को २) प्रति दिन देने पड़ते। इस प्रकार से पूरा १) उस अन्यायी व्यापारी के हाथ में रह जाता है जो वास्तव में दोनों कारीगरों के पास जाना चाहिए था। इस व्यतिक्रम से कारीगरों के परिश्रम का उचित मूल्य उन्हें नहीं मिलता है।

यदि इसके विरुद्ध उचित वेतन दिया जाय तो पूरा १) प्रतिदिन पहिले ही कारीगर को मिलना चाहिए। जब काम लेनेवाले को आधे आधे वेतनों पर दो मनुष्य न मिल सकेंगे तब उनको नौकर रखने के लिए उसे १) और अपनी जेब से निकालना पड़ेगा, वैसे वह दूसरे कारीगर से काम नहीं ले सकता है, इसलिए यह यथार्थ परिवर्तन इधर उस व्यापारी की अन्याय करने की शक्ति को परिमित करता है और उधर कारीगर के परिश्रम का उचित मूल्य देता है। इस प्रकार से यह शिल्पी ॥) अथवा पाकर दूसरे आदमी से अपना काम करा सकता है या ज़रूरी चीज़ें मोल ले सकता है। यहां पर इस अन्तर को भलीभांति समझ लेना चाहिये कि उचित नियम से काम लेनेवाले मनुष्य के पास एक वेतन में एक कारीगर और अनुचित रीति से उसके लिये उतने ही में दो कारीगर काम करते हैं। न्यायपूर्ण वेतन एक ओर तो केवल एकही मनुष्य के हाथ में धन की शक्ति को कम करता और उसके लिये बहुत लोगों पर अपना रोब जमाने के अवसरों को दिनों दिन घटाता रहता है तथा दूसरी ओर वही रुपया कई आदमियों में उचित रीति से फैलता और उन सब की दशाओं को सुधारता रहता है। इस प्रकार से अपने २ परिश्रम के हिसाब से सभी लोगों में सम्पत्ति का आवश्यक वितरण होता है। इसके विपरीत अन्याय एक ही पुरुष के हाथ में असीम बल देकर उतने ही रुपयों में कई एक मनुष्यों को उसके वश कर देता है और वह उनके परिश्रम को मनमानी रीति से नियन्त्रित करता है।

जब न्याय सम्पत्ति के बल को परिमित करता है, तब वह बड़े २ व्यापारियों के विलासप्रिय बनने और उनके अपने नौकरों पर अत्याचार करने के अवसरों को भी कम करेगा। इसके साथ ही वह शिल्पियों को उन्नति करने का अवसर देगा क्योंकि कम वेतन पाकर और एक ही मनुष्य के अधीन होकर ये अपना सिर ऊपर को नहीं उठा पाते हैं तथा दिनों दिन नीचे दबते जाते हैं। जब ऊपर से लेकर नीचे तक प्रत्येक मनुष्य को अपने परिश्रम का पूरा मूल्य मिलेगा तब वह बुद्धिमानी के साथ अपनी दशा को सुधार सकेगा। थोड़े शब्दों में उचित वेतन धन की अनुचित शक्ति को रोकने के साथ ही निर्धनता की असमर्थता, असहायता, दुर्दशा और उसके दुःखों को दूर करेगा।

हमारे विचारों को पढ़कर यह कभी न समझना चाहिए कि हम समष्टिवादी* हैं। सच पूछिए तो हम इस सिद्धान्त के विरुद्ध हैं। सब लोगों के लिये पूरी समानता और सम्पत्ति के समान वितरण का प्रतिपादन करना दूर रहा, हम यह ज़ोर देकर कहते हैं कि संसार के सभी मनुष्यों का धन में तथा और सब बातों में बराबर हो जाना असम्भव है। जिस आवश्यक विचार को हम सबके हृदयों पर अंकित करना चाहते हैं वह यह है कि पूंजीवाले और व्यापारियों को निर्धन मनुष्यों से काम लेकर उन्हें उस परिश्रम का सच्चा, उचित और यथार्थ बदला चाहे रुपयों में या और स्वरूप में ज़रूर चुका देना चाहिए। जो लोग योग्य और बुद्धिमान् हैं वे दूसरों के नेता अवश्य बनें और उन पर शासन करें परन्तु उन्हें न्याय को किसी दशा में भी न छोड़ना चाहिए।

यह कहा जाता है कि निर्धन मनुष्य धनाढ्यों की पूंजी के लिये लालच न करें। यह सच है परन्तु लक्ष्मीवान् मनुष्यों का निर्धनों के पेट और उनकी जेब को काटकर रुपया पैदा करना कहाँ का न्याय है? जैसे एक को दूसरे के धन को बिना परिश्रम के पाने के लिये कोई स्वत्व नहीं है, वैसेही दूसरे को भी पहिले के उचित वेतन में लूट मचाने का कुछ भी अधिकार नहीं है। अपना पसीना निकाल कर सम्पत्ति इकट्ठा करने और उसका उचित उपभोग करने के लिये जितना स्वाम्य धनी लोगों का है ठीक उतना ही निर्धनों का भी। "हल के सैनिक और खड्ग के सैनिक"† इन्हीं थोड़े से शब्दों में हमारे सम्पत्ति शास्त्र का सारांश आजाता है। इनमें से कोई भी एक दूसरे से कम नहीं है। ये दोनों ही समान आदर के पात्र हैं और इन्हें अपने परिश्रम का यथार्थ परिवर्तन मिलना चाहिये। इस सम्बन्ध में हमें यह कभी न भूलना चाहिए कि प्रत्येक काम और बात में "शासन और सहोद्योग जीवन के नियम हैं; अराजकता और प्रतिस्पर्धा मृत्यु के नियम हैं।"‡ हम यह चाहते हैं कि मनुष्यों को व्यर्थ और अनावश्यक—न कि उचित और प्रासंगिक—रूप से विलासप्रिय बनाने का और संसार के परिश्रम पर अन्यायपूर्ण अधिकार करने का लक्ष्मी का बल यथेष्ट परिणाम में घट जाय तथा वर्तमान समय के समान यह मिथ्या सुख की देवी और परिश्रम की एकमात्र अधिष्ठात्री न रहे। जब तक व्यापार की व्यवस्था में आवश्यक परिवर्तन करके हम उपर्युक्त उद्देश्य को सिद्ध न करलेंगे तब तक सर्वसाधारण मनुष्यों की दशा का सुधारना केवल कठिन ही नहीं बरन असम्भव है।

---

* Socialist. (उस मत-विशेष के माननेवाले जिसके अनुसार संसार की सब सम्पत्ति धनी और निर्धन मनुष्यों में समान रूप से बँटनी चाहिए।)

† हल चलानेवाले और लड़ाई लड़नेवाले—किसान और सिपाही।

‡ Government and Co-operation in all things are the Laws of Life; Anarchy and Competition the Laws of Death.

दीन की आह।

[लेखक—श्रीयुत अयोध्यासिंह उपाध्याय।]

(१)

न तो हिलाती गगन न तो हरि हृदय कँपाती।
न तो निपीड़क उर को है भयभीत बनाती॥
निपट निराशा भरी निकल चुपचाप बदन से।
दीन आह दुख साथ वायु में है मिल जाती॥

(२)

उसकी वेधकता का परिचय पानेवाला।
उसकी दुख मयता को जी में लानेवाला॥
देखा जाता नहीं, कहीं कोई होता है।
दीन आह में अपनी आह मिलानेवाला॥

(३)

बार बार अपने उर को मथकर अकुलाती।
अमित ताप परिताप भरी होठों पर आती॥
फिर सहती अपमान शून्य में लय होती है।
दीन जनों की आह नहीं कुछ भी कर पाती॥

(४)

सुनते हैं उससे है पाहन भी भय पाता।
उससे है ईश्वर का आसन भी डिग जाता॥
किन्तु बात यह सब कहने सुनने ही की है।
दीन आह का एक विफलता से है नाता॥

(५)

वीर आह के तुल्य नहीं वह लहू बहाती।
सबल आह के सदृश नहीं वह लोथ ढहाती॥
आशंकित-कर घोर आह के सम नहिं होती।
वह अपना ही हृदय मथन कर है रह जाती॥

(६)

वैसी ही उससे होती दिन रात ठगी है।
वही दीनता अब भी उसकी बनी सगी है॥
कौशल है, अतिगूढ़ चातुरी है, यह कहना।
दीन आह पर हरि स्वीकृति की छाप लगी है॥

(७)

पवि कठोर को धूल बनाकर धर सकती है।
लोकप दाहक दुसह अँगारे भर सकती है॥
किसी दयालु हृदय से निकली हैं यह बातें।
आह दीन की भला नहीं क्या कर सकती है।

(८)

सभी सतानेवाले निज कर मलते होते।
पड़ विपत्तियों में दिन रात विचलते होते॥
जो दीनों की आह में जलन कुछ भी होती।
ऊँचे ऊँचे महल आज तो जलते होते॥

(९)

चहल पहल है जहाँ वहाँ मातम छा जाता।
स्वर्ग छटा है जहाँ वहाँ रौरव उठ आता॥
दीन आह की ध्वनि यदि हरि कानों में जाती।
नन्दन बन है जहाँ आज मरु वहाँ दिखाता॥

(१०)

किया लोकहित बिबुध जनों ने धर्म कमाया।
जो बनको सब काल प्रभावमयी बतलाया॥
किन्तु जानकर मरम दीन जन की आहों का।
भला कलेजा किसका है मुँह को नहिं आया॥

शिवाजी की योग्यता ।

[लेखक-श्रीयुत तरुण भारत ।]

(गताङ्क की पूर्ति ।)

२-पूर्व-परिस्थिति ।*

किसी भी मनुष्य पर उसकी परिस्थिति का बड़ा भारी प्रभाव पड़ता है और इसलिए उस पुरुष की योग्यता जानने के लिये उसकी परिस्थिति का ज्ञान होना आवश्यक है। इस लेख में हम ने शिवा जी के जन्म की पूर्वस्थिति का विचार करने का संकल्प किया है। इस पूर्व-परिस्थिति के मोटी तरह तीन विभाग किये जा सकते हैं—(क) भौगोलिक (ख) राजकीय और (ग) धार्मिक। इस अन्तिमविभाग में सामाजिक परिस्थिति भी सम्मिलित है ? बहुधा धर्म का सामाजिक बन्धनों पर सब देशों में बड़ा प्रभाव पड़ता है और इन दोनों का घनिष्ठ सम्बन्ध सब जगह दिखाई देता है और हिन्दुस्थान में तो शरीर और जीव के सम्बन्ध के बराबर ही घनिष्ठ सम्बन्ध है और जिस काल का हम विचार कर रहे हैं, उस समय सामाजिक बन्धन और धार्मिक बन्धन में किसी तरह का अन्तर समझना अत्यन्त कठिन था। इस कारण सामाजिक प्रश्नों का हम अलग विचार न करेंगे।

(क) भौगोलिक परिस्थिति ।

प्रकृति ने महाराष्ट्र देश पर बड़ी कृपा की है। यहां पर जल, वायु और सुपरिस्थित स्थान के सब लाभ विद्यमान हैं जो हिन्दुस्थान में अन्यत्र नहीं हैं। दोनों ओर पर्वतश्रेणियां स्थित हैं, उत्तर-दक्षिण सह्याद्रि पर्वत है और पूर्व-पश्चिम सतपुरा और विंध्याचल पर्वत है और फिर छोटी मोटी बहुत सी पर्वतश्रेणियां हैं, जिनके कारण यहां की भूमि विषम और ऊंची नीची बन गई है। भूगोल की दृष्टि से देखा जाय तो महाराष्ट्र में कोंकन, जो समुद्र और सह्याद्रि के बीच की पट्टी है और वह देश जो कृष्णा और गोदावरी की तराई है, ये दोनों भाग सम्मिलित हैं। इस कारण यह देश स्वाभाविक ही सुरक्षित है और इन पर्वतों पर जो किले हैं उनके कारण और भी सुरक्षित हो गया है। ये किले इस देश के एक मुख्य स्वरूप हैं और राजकीय इतिहास में इनका बड़ा भारी महत्व है। इस स्वाभाविक बनावट के कारण उत्तर की अत्युष्ण किंवा अति शीतल जलवायु की जगह यहां सम और आरोग्यवर्धक वायुमान है। ज़मीन पहाड़ी होने के कारण बहुत उपजाऊ नहीं है और लोग कट्टर होकर भी सादे हैं।

लोगों के शील का भी इस देश पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ा है, उत्तर हिन्दुस्थान में आर्य लोगों की प्रधानता होने के कारण मूल निवासियों का कोई महत्व नहीं रहा है और नितान्त दक्षिण में द्रविण लोगों की भिन्नता पूर्णतया बनी रही है और उन पर आर्य लोगों का कोई प्रभाव नहीं पड़ने पाया है। पर महाराष्ट्र में भौगोलिक स्थिति के कारण आर्य और द्रविड़ लोगों का ऐसा योग्य संमिश्रण हुआ है कि दुष्परिणाम न बढ़ कर सब सुपरिणाम ही दिखाई देते हैं। इस संमिश्रण का योग्य परिणाम भाषा की विचित्रताओं में भी दीख पड़ता है, जिसका मूलाधार तो द्राविणी है पर उसकी वृद्धि और रचना आर्य-परिणामों

*इस लेख में रानडेकृत "Rise of the Maratha Power" and सर देसाईकृत "हिन्दुस्थान चा इतिहास-मराठी रियासत" न पुस्तकों से बहुत सहायता मिली है। लेखक.।

से बनी है। स्वरूप में भी वे न तो उत्तर के लोगों की तरह गोरे, नाज़ुक और सुडोल हैं, न द्रविड़ लोगों की तरह बिलकुल काले और रूखे हैं, और फिर इनमें सीदीयन लोगों का भी योग्य मिश्रण होगया है।

इन कारणों से यहां की संस्थाओं में और धर्म में कुछ ऐसी समता है जो इस हिन्दुस्थान में अन्यत्र नहीं पाई जाती; इनमें ग्राम जनों की संस्थाएँ ही मुख्य हैं जिनकी इतनी वृद्धि हो गई थी कि वे अनेक विदेशीय आक्रमणों के बाद भी बनी हुई हैं। पंचायत पद्धति के समान ग्राम संस्थाएँ अभीतक मौजूद हैं और राज्य प्रबन्ध के बड़े बड़े उद्देश्य उनसे सिद्ध होते हैं। वे आजकल की शासनप्रणाली के एक मुख्य अंग हैं और सिंध और गुजरात में जहां वे मुसलमानी प्रभाव के कारण नष्ट होगईं थीं, फिर भी वहाँ उनका प्रचार किया गया है। साथ ही इनके रैयतवारी बन्दोबस्त से किसानों को ज़मीन की पूर्ण मालकियत प्राप्त है और उससे उन्हें एक तरह की स्वाधीनता मालूम होती रहती है, जो अन्यत्र किसी प्रान्त में नहीं दीखती।

इन संस्थाओं के साथ ही एक बात और है। न तो यहां द्रविड़ के समान धर्मपन्थों की प्रतिनिविष्टता है न उत्तर की तरह जातियों की उपजातियाँ और फिर उनके भी अनेक उपभेद हैं। यहां पर भिन्न २ भेदों में इतनी सहिष्णुता है कि उनकी ओर वे बेपरवाह ही हैं ऐसा कह सकते हैं। यहां पर ब्राह्मण और अब्राह्मण समानता से मिलते जुलते हैं। सच बात यह है कि वैष्णव साधुओं के प्रभाव से नीची सामाजिक दशा से यहां के शूद्र भी क्षत्रिय या वैश्य के समान जिस प्रकार जो धंधे करते थे उसी प्रकार ऊंची दशा को प्राप्त हो गये हैं. यहां तक कि यहां मुसलमानों का अत्यन्त धार्मिक कट्टर स्वभाव इस प्रभावशील दशा में नरम पड़ गया है। सहिष्णुता और नेमस्ता (?) स्वभाव ये दो गुण महाराष्ट्रीय शील के प्रधान और चिरस्थायी तत्त्व हैं।

इन ऊपर लिखी हुई बातों के कारण यहां पर स्थानीय स्वराज्य और स्वाधीनता का विचार ऐसा कुछ बढ़ गया है कि हिन्दू या मुसलमान किन्हीं भी राजाओं के समय यह देश एक सत्ता में बहुत काल तक नहीं बना रहा। उत्तर हिन्दुस्थान में बड़े बड़े राज्य हुए, पर महाराष्ट्र में राजकीय सत्ता का केन्द्रीकरण न होने पाया। जुदे जुदे राज्यों के कारण ही ऐसा होता था और वे सब शत्रु की चढ़ाई के समय मिल कर काम करते थे। समय समय पर जो चढ़ाइयां हुईं, उन्हें उन्होंने विफल कर दिया। प्राचीन इतिहास से ज्ञात होता है कि यहां छोटे छोटे बहुत से राज्य थे और राजकीय सत्ता सदा एक के हाथ से दूसरे के हाथ में बदलती ही रहती थी।

महाराष्ट्र की भौगोलिक स्थिति ऐसी है और इसके परिणाम ये हैं। अन्य देशों के इतिहास पढ़ने से यही ज्ञात होता है कि ऐसे देश के लोग स्वराज्यप्रिय और स्वाधीनताप्रिय होते हैं। ऐसे लोगों को कोई बलाढ्य राजा भले ही कुछ दिन तक तलवार के ज़ोर से दबा ले पर बहुत काल तक उसकी अनियंत्रित सत्ता चल नहीं सकती। यह इसी का परिणाम है कि महाराष्ट्र हर प्रयत्न करने पर भी मुसलमानों के पूर्ण आधीन कभी नहीं हुआ और औरंगजेब के समान बलाढ्य और दृढ़चेता बादशाह को भी पचीस वर्ष तक लड़ने के बाद हार खाकर जाना पड़ा।

(ख) राजकीय परिस्थिति।

ऊपर लिखे कारणों से मुसलमानी सत्ता की शिवाजी के पहले क्या दशा थी, इसका संक्षेप में विचार करना आवश्यक है।

ईस्वी सन् १३१८ में दक्षिण के यादववंश का नाश हुआ और मुसलमानों की सत्ता आरम्भ हुई। सन् १३४७ तक महाराष्ट्र पर दिल्ली के सुलतानों का प्रभुत्व जारी था। जब दिल्ली में मुहम्मद तुगलक राज्य कर रहा था, उस समय दक्षिण में अनेक गदर हुए और आखिर बहमनी राज्य की स्थापना हुई। सन् १५२६ के लगभग बहमनी राज्य के पाँच टुकड़े होगये थे और आगे उनमें से तीन प्रधान हुए। छत्रपति शिवाजी का जन्म हुआ, उस समय इन तीन मुसलमानी राज्यों का महाराष्ट्र पर प्रभुत्व था।

इस देश के बहुत प्राचीन इतिहास की ओर दृष्टि डालें तो यह दीख पड़ेगा कि इस देश में अनेक राज्यक्रांतियां हुई हैं। पहले आर्यलोग हिन्दुस्थान में आये और उनकी सत्ता स्थापित हुई। पीछे मुसलमान आये, और उनकी सत्ता स्थापित हुई। यह साधारण नियम है कि विजयी लोगों की उच्च सभ्यता का प्रभाव जीते हुए लोगों की नीच सभ्यता पर पड़ता है। यूरोप का प्राचीन इतिहास देखें तो यह मालूम होगा कि ग्रीक और रोमन जैसे सभ्य राष्ट्रों ने आस पास के हीनावस्थ राष्ट्रों को जीत कर उन्हें अपनी सभ्यता से सभ्य और शिक्षित किया। आर्यराज्यक्रांति का यही परिणाम हुआ पर मुसलमानी राज्यक्रांति का यह परिणाम नहीं हुआ क्योंकि हिन्दुओं से मुसलमान अधिक सभ्य न थे, बल्कि कई बातों में हीन ही थे। मुसलमान पूर्व परम्परागत हिन्दू संस्थाओं का नाश न कर सके, हिन्दुओं की मदद बिना मुसलमानों का कुछ काम चल नहीं सकता था। विद्या, कला और अनेक सांसारिक बातों में हिन्दुओं का मुसलमानों पर प्रभाव पड़ा। राज्य की चिरस्थायिता के प्रश्न का विचार करना हो तो विजयी लोगों ने जीते हुए लोगों का स्वत्व कितना नष्ट कर डाला है, इसका विचार करना चाहिये। विजयी लोगों के विशेष गुणों से जीते हुए लोग जब तक दब नहीं जाते, अर्थात् जब तक जीते हुए लोगों का अधिकार कायम है तब तक इन दोनों वर्गों को जेता और जित कहना पूर्णतया ठीक नहीं मालूम होता।

महाराष्ट्र पर मुसलमानों ने अपना अधिकार जमाया पर महाराष्ट्रों के बिना उनका कुछ काम नहीं चलता था। हजारों वर्षों तक महाराष्ट्रों की स्वाधीनता बनी रही। जगह २ पर शूर मराठे सरदार फौजबंद रहते थे। उन सबों को नष्ट करने के लिये मुसलमानों का मन रहते भी आवश्यक फौज और कहीं से आ नहीं सकती थी। यानी उन सरदारों के प्रसन्न रखने के सिवा कोई दूसरा उपाय नहीं था। राजपूताने में भी मुसलमानी सत्ता को येही विघ्न थे, पर राजपूताने और महाराष्ट्र में अन्तर यह हुआ कि महाराष्ट्र में मुसलमानी सत्ता को फिर नीचा देखना पड़ा पर राजपूताने में यह बात नहीं हुई। वहाँ केवल वह थोड़ा बहुत स्वतंत्रता किसी प्रकार बनी रही। महाराष्ट्र पर मुसलमानी सत्ता पूर्णतया स्थापित न हो सकी, इसके अनेक कारण थे जिनका वर्णन हम ऊपर करही चुके हैं। महाराष्ट्रों में ग्रामसंस्थाओं का महत्व बहुत अधिक था। प्रत्येक गांव अपनी अपनी हद्द के भीतर एक प्रजासत्ताक राज्य ही था। इन ग्रामसंस्थाओं का ऐसा प्रबन्ध था कि सरकार के कर देने के बाद ग्राम की भीतरी बातों में सरकार को हाथ डालने की अवश्यकता न पड़ती थी, इस कारण उनका नाश मुसलमानों से न हो सका। लगान वगैरः वसूल करने के काम में उस देश के लोगों की सहायता आवश्यक थी ही। उत्तर हिन्दुस्थान में अफगानिस्तान और ईरान से जैसे नये २ असली मुसलमान आया करते थे, उस प्रकार महाराष्ट्र में नहीं आ सकते थे। उत्तर में फारसी और उर्दू भाषाओं का उपयोग सब सरकारी कामों में होता था, पर दक्षिण में इन कामों में भी मराठी भाषा जारी थी। पास में ही विजयानगर का प्रबल राज्य था, इस कारण मुसलमानों

की क्रूरता यहां उतनी प्रगट नहीं हुई। सारांश दक्षिण में मुसलमानी राज्य में भी हिन्दुओं का स्वत्व बना हुआ था।

उस समय अनेक मराठे सरदार अच्छे बलवान थे। कमरसेन, मुरारपंत, मुरारराव, मदनपंत, जगदेवराव, रायराव, कदमराव, मोरे, शिर्के, घाटगे, घोरपड़े आधवराव, भोंसले, इत्यादि उस समय के मुख्य मराठे सरदार थे। शिवाजी का पिता शहाजी भोंसले वंश में उत्पन्न हुआ था, उसने अपनी योग्यता से बहुत जागीर कमाई। शहाजी पहले अहमदनगर के दरबार में था। उसने इस राज्य को बचाने के अनेक उपाय किये और उसीके कारण इस राज्य की स्वतन्त्रता कुछ दिन तक बनी रही और मुगलों की कुछ न चल सकी। मलिक अम्बर को उससे बड़ी भारी सहायता मिलती रही। आखिर १६३७ में अहमदनगर की निज़ामशाही का नाश हुआ और शहाजी बीजापुर की नौकरी करने लगा। वहां भी उसका बड़ा प्रभाव पड़ता था।

इस प्रकार मराठे सरदारों का आदर दिनों दिन बढ़ता रहा, स्वतंत्रतापूर्वक अपनी योग्यता और पराक्रम दिखलाने के लिये उन्हें सब दिशाएँ खुली हुई थीं। बहामनी राज्य में उन्हें राज्यशासन और युद्धकला का अनुभव प्राप्त होता गया। मुगल बादशाहों ने दक्षिण को विजय करने के जो नाना प्रयत्न किये वे भी मराठों को लाभकारी हुए। बिना लड़ाई झगड़े के ही मुसलमानी सत्ता का नाश होते देख उनकी आशाएँ और बढ़ गईं। अकबर, जहांगीर, शाहजहां इन तीन बादशाहों ने दक्षिण के विजय करने का प्रयत्न किया, पर वे अपना अधिकार बनाये न रह सके। जिस प्रकार मुगलों ने राजपूतों पर पूरी तरह कभी विजय प्राप्त नहीं की उसी प्रकार मराठों पर भी विजय प्राप्त नहीं की। राजधानी निकट और राजपूताना खाली रहने के कारण राजपूतों पर मुगलों का रोब पड़ गया था। पर दक्षिण में ऐसा नहीं हो सका, प्रत्युत इस देश पर अधिकार करने के लिये मुगलों ने जो लड़ाइयाँ कीं, उससे महाराष्ट्रों को नाना तरह के अनुभव प्राप्त होते गये।

स्वराज्य स्थापन होते समय उसके लिये नाना लोगों के हृदय में स्फूर्ति होनी चाहिये। एक ही व्यक्ति के मन में यह बात आने से कुछ नहीं होता, क्योंकि वह जो प्रयत्न करेगा उसे दूसरों की सहायता अवश्य चाहिये। इतना ही नहीं पर यदि उसका प्रयत्न सफल हुआ तो उसकी कल्पनायें समझकर उन्हें पूर्ण करना और उसकी पद्धति टलने न देना इन कामों के लिये भी अनेक लोगों की सहायता की आवश्यकता रहती है। इसी प्रकार अकेले शिवाजी से स्वराज्य स्थापन होना कठिन था, उस समय मराठे अलग अलग थे, उनमें एका न था। उनमें जोश था, स्वदेशभिमान था, उन्हें शिवाजी ने एक कर मानसिक शक्तियों का संगठन किया। उन्होंने धर्म का एक आदर्श अपने सामने रक्खा और उन्होंने देश, काल और पात्र के अनुसार स्वयं शक्ति, योग्यता और बुद्धि सम्पादन की। इतना ही नहीं वे उच्चतम आदर्श और उच्चतम आकांक्षा के मूर्तिमान रूप थे और मराठों को मिलकर काम करने में वे उनके हृदयों को बड़ा उकसाते रहते थे। महाराष्ट्र-शक्ति उन्होंने उत्पन्न नहीं की, वह तो वहां थी ही। उन्होंने बिखरी हुई शक्तियों को एकत्र और उच्चतम उद्देश्य के साधन में उनका उपयोग किया। यही उनका आद्य गुण था और यही उन्होंने देश की श्रेष्ठ सेवा की और इसी कारण हमें उनका हृदय से कृतज्ञ होना चाहिये। लोग उन्हें ईश्वरीय नायक की दृष्टि से देखते थे। यह बात अकारण न थी। उन्हें ही अपने अंतःकरण में जोश मालूम होता था और वही जोश उन्होंने दूसरों में पैदा किया।

(ग) धार्मिक परिस्थिति।

१३,१४,१५, और १६ शताब्दियों में पृथ्वी पर जगह जगह बड़ा भारी धार्मिक आन्दोलन हुआ और यह आन्दोलन सब देशों में अत्यन्त स्मरणीय हो गया है, क्योंकि उनका इन देशों के इतिहास पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ा। आश्चर्य की बात है कि जिस समय यूरोप में धर्मसुधार के लिये बड़े भयंकर युद्ध हो रहे थे उसी समय हिन्दुस्थान में भी धर्म-सुधार की बड़ी भारी प्रेरणा उत्पन्न हुई थी। परन्तु यहां पर कोई भारी रक्तपात नहीं हुआ। महाराष्ट्रों का राज्य अस्त हो जाने पर मुसलमानों के राज्य में बहुत कष्ट होने लगे। इन कष्टों से बचने के लिये प्रयत्न करने में महाराष्ट्र जब मग्न थे उस समय उन्हें सहायता देने वाले अनेक साधुसंत उत्पन्न हुए। धर्म सुधार के बिना राष्ट्रोन्नति हो नहीं सकती, धर्म राष्ट्रोन्नति का मुख्य अंग है, यह तत्व उस समय सर्वमान्य था। शंकराचार्य द्वारा स्थापित धर्म अवनति को प्राप्त हो रहा था, और लोगों में धर्म के नाम से एक ढोंग उत्पन्न हो गया था। दांभिक मूर्तिपूजा के नाम से मनमाने दुराचार हो रहे थे, पारमार्थिक सुखप्राप्ति की इच्छा से लोग अपने संसारिक कर्त्तव्य भूल गये थे, जातिभेद संस्था का विपर्यास हो गया था, विचार, उच्चार, आचार, इस संसारावश्यक त्रयी का स्वातंत्र्य नष्ट हो गया था, और ये निरर्थक सामाजिक बंधनों से जकड़ गये थे। महाराष्ट्र देश के संत कवियों ने इस अनिष्ट निवारण के लिये जो प्रयत्न किये उनका ऐतिहासिक दृष्टि से बड़ा भारी महत्व है।

यह ख्याल रखने की बात है कि सब संत कवि थे। चांगदेव, मुकुंदराज, बहिरंभट्ट, निवृत्तिनाथ, ज्ञानदेव, सोपानदेव, मुक्ताबाई, नामदेव, गोराकुम्हार, उद्धवचिद्धन, चोखामेला, रोहिदास, एकनाथ, तुकाराम, नरहरिसोनार, सावतामाली, संतोनापवार, शेखमहम्मद, रामदास, इत्यादि संत प्रमुख थे। इन नामों में सब जाति के, सब वर्णके, सब धंधे के लोग शामिल हैं। ऐसा मालूम होता है कि पुरुषों के समान स्त्रियां भी सन्मार्ग दिखलाकर स्वदेशसेवा करने में अग्रसर हुई थीं। इनमें ब्राह्मणेतर भी शामिल हैं। इन लोगों ने लोगों को विद्या और ज्ञान देकर उनकी स्थिति किस प्रकार सुधारी इसका विवेचन आगे करेंगे। हिन्दूतत्वज्ञानभांडार संस्कृत भाषा रूपी पेटी में बन्द था, उसे इन्होंने देशी भाषा द्वारा सब को प्रदान किया। इनमें से सभी विद्वान थे ऐसा न समझना चाहिये, परन्तु लोगों के दोष दिखलाकर उन्हें सदुपदेश देने की ओर स्वाभाविक ही इनकी प्रवृत्ति थी। बहुत विद्वान न रहने पर भी इनकी भी सरल और सरस बातों का बहुत प्रभाव पड़ा, मनसा वाचा कर्मणा वे एक थे, इस कारण उनका बड़ा भारी प्रभाव पड़ा। इन संत लोगों ने जो बड़ा भारी काम किया, वह यह था कि यज्ञ योगादि करनेवाले ब्राह्मणों का जो जनसमूह पर बड़ा भारी दबाव था उसे दूर कर लोगों को स्वतंत्र विचार करने की ओर लगाया और यह काम विशेषतः ब्राह्मणों ने किया। यह स्मरण रखने के योग्य है कि विचारवान पुरुषों की एक बार खातरी हो जाने पर वे तात्कालिक स्वहित से अपनी दृष्टि संकीर्ण नहीं होने देते और अपने कर्त्तव्य से पराङ्मुख नहीं होते। इससे यह ज्ञात होता है कि समाज को विचारवान पुरुषों की ही ज्यादा आवश्यकता है। ईश्वर के आगे सब लोग समान हैं यह सिखलाने के लिये ब्राह्मण ही अग्रसर हुए, यह योग्य ही हुआ।

ज्ञानेश्वर के अनुयायी बहुधा १३वीं शताब्दी में हुए। अपने धर्म की अवनति हुई है, समाज सुधार के लिये यह अवनति दूर कर अपना धर्म शुद्ध करना चाहिये, यह कल्पना इन्हीं के मन में उठी और उन्हीं ने इस धर्म

कार्य के करने में प्रयत्न भी किया। जातिभेद के कारण उत्पन्न होनेवाले उच्चनीचत्व के भाव दूर करने में इन्होंने जितने प्रयत्न किये, उतने शायद ही और कभी हुए होंगे। भगवद्गीता देशी भाषा द्वारा समझने वाला ज्ञानेश्वर और लैटिन बाईबिल का अंगरेज़ी में भाषांतर करने वाला जान विकलिफ (Morning star) इन दोनों में बहुत कुछ समानता है।

एकनाथ के अनुयायियों का विकाश सोलहवीं शताब्दी में हुआ। महाराष्ट्र में स्वराज्य स्थापना की ओर इन्हीं लोगों के मुख्य प्रयत्न हुए। ये शिवाजी के समकालीन थे। पुराना स्वराज्य भ्रष्ट होने पर इधर उधर मुसलमानी प्रभुत्व आरम्भ हुआ और उसके कारण जो क्लेश होने लगे इसका ज्ञान इन लोगों को जितना हुआ उतना ज्ञानेश्वरानुयायियों को नहीं हुआ था। उसी प्रकार साधुत्व और कवित्व इन दो गुणों का वर्चस्व इनमें ज्यादा था। संस्कृत ग्रन्थों के मराठी में तर्जुमे कर लोगों में ज्ञान की वृद्धि करनी चाहिये यह कल्पना प्रथम ही प्रथम इन्हीं के हृदय में उत्पन्न हुई और इस ओर इन्होंने उद्योग आरम्भ किया। स्वधर्म की अवनति होने के कारण लोगों को नीतिमार्ग दिखलाने की उत्कंठा इन लोगों में विशेष थी। रामदास इसी पन्थ के थे पर उनका काम कुछ और था इस कारण इस विषय में स्वतन्त्र रूप से विचार करेंगे।

संत लोगों के उपदेशों में से कुछ उदात्त तत्व और उन लोगों ने धर्मसुधार का ओर कौन कौन से कार्य किये, यह समझ लेना आवश्यक है। पाश्चात्य देशों की धर्मजागृति का इतिहास जिसने पढ़ा हो, उसे यह ज्ञात हो जायगा कि इन दोनों स्थानों की जागृति में बहुत कुछ समानता है।

(१) धर्मशिक्षण और धर्मसंरक्षण ये काम आचार्य कहलानेवाले ब्राह्मणों के हाथ में थे। ये ब्राह्मण बहुधा यज्ञयोगादि करने में निमग्न रहते थे और इसीसे उनका दूसरी जातियों पर प्रभाव पड़ता था। ब्राह्मण जन्म से ही वरिष्ठ माने जाने के कारण उनके बतलाये हुए कर्म मार्ग को छोड़ दूसरे साधनों से भी ईश्वरप्राप्ति हो सकती है, यह लोगों को मालुम नहीं था। यह स्थिति दूर करने का संतजनों ने बड़ा भारी प्रयत्न किया। इन्होंने लोगों को ऐसे उदात्त विचार सिखलाये कि भक्ति और सच्चे मन से ईश्वरोपासना करने ही से हर किसी को ईश्वर प्राप्त होता है, एक विशेष मार्ग के सिवा अन्य मार्गों से भी ईश्वरप्राप्ति हो सकती है, किसी विशेष कुल में जन्म लेने से श्रेष्ठत्व नहीं मिलता, ईश्वर को सब प्राणी समान प्रिय हैं और निज उदाहरणों से उन्होंने ये बातें लोगों के मन में घुसा दीं। पाश्चात्य देशों में ईसाई धर्म के गुरु पोप और उसके अनुयायियों ने यह क्रम चलाया था कि हम जनता और परमेश्वर के बीच मध्यस्थ हैं, वे ऐसा ढोंग करके लोगों से धन लेकर पापमोचन की रसीद लिख देते थे। ऐसी स्थिति में लूथर प्रभृति अनेक धर्मसुधारक उत्पन्न हुए और उन्होंने पोप का भंडा फोर कर दिया। महाराष्ट्र की और यूरोप की इन दोनों बातों में बहुत कुछ बराबरी है।

(२) जातिव्यवहार को धर्म के बन्धनों से दूर करना धर्मसुधार का बड़ा भारी काम है। साधुओं में सब जाति के लोग शामिल थे और वे अबतक सबको समान पूज्य हैं। इससे ही उनके मार्ग का श्रेष्ठत्व स्थापित होता है। इन सज्जनों ने लोगों को ऐसे विचार सिखलाये कि ग़रीब और धनवान, छोटा और बड़ा, ब्राह्मण और अब्राह्मण, ये भेद परमेश्वर को पसन्द नहीं हैं, सच्चा बड़प्पन नीति और ज्ञान से प्राप्त होता है, फिर कोई मनुष्य किसी भी जाति का और चाहे जो धंधा क्यों न करे, उसे समान है और अपने शुद्ध व्यवहार और निष्ठा से उनका लोगों पर प्रभाव पड़ा।

(३) सन्तों ने लोगों को ये बातें जंचा दी कि इसी प्रकार योगसाधन, संन्यासधारण, मठवास इत्यादि ईश्वर प्राप्ति के प्रचलित मार्ग निन्दनीय हैं और संसार के सब काम करते हुए भी ईश्वरप्राप्ति हो सकती है। योगसाधन के नाम से संन्यासवृत्ति का आवरण पहिन अथवा मठवास का ढोंग रच कर नीच लोग अत्याचार करते थे।* इस स्थिति को दूर करने का श्रेय इन्हीं सन्तों को है।

(४) इन्होंने एक बड़ा भारी और लोकोपकारी काम किया है। संस्कृत ग्रन्थों का भाषान्तर कर उसमें का ज्ञान सब को प्राप्त कर दिया। इस प्रकार ज्ञान प्राप्त हो जाने से लोगों में स्वतन्त्र विचार करने की शक्ति आगई। यूरोप में ग्रीक और लैटिन भाषाओं से वहां की देशी भाषाओं में सोलहवीं शताब्दी में बहुत उलथे हुए। इन दो बातों में भी बराबरी है।

(५) परमेश्वर के विषय में उदात्त और योग्य कल्पना लोगों के मन में भर देने का श्रेय भी इन्हीं संतजनों को है। परमेश्वर के विषय में ईसाइयों और आर्य लोगों की कल्पना में बड़ा अन्तर है। वह ईश्वर प्रमादियों को दंड देने वाला है, यह ईसाइयों की कल्पना है पर हमारे यहां उसका स्वरूप मा बाप, भाई बन्धु इत्यादि और न्याय और दंड करने के समय भी इन्हीं सम्बन्धों की दृष्टि से प्रीति रखनेवाला समझा जाता है। इन सन्तजनों के उपदेशों में यही कल्पना है और लोगों के अनुभव में जगह २ पर दिखाई देता है। कि ईश्वर दयालु है, वह प्रेमशील है, वह भक्तों के संकट दूर करने को दौड़कर आता है, उनके साथ खाता है, बोलता है। कर्मोपासक ब्राह्मणों की कल्पना में भी परमेश्वर का स्वरूप इतना स्नेहमय नहीं है।

(६) ईश्वरप्राप्ति के अनेक मार्ग थे और हैं पर भक्तिमार्ग के समान सुलभ दूसरा मार्ग नहीं है। इससे लोगों में एक तरह की एकता उत्पन्न होती है। इस भक्ति के जोर पर महाराष्ट्र संतों ने लोगों को सन्मार्ग दिखलाया। संसार से कष्ट और चिन्ताओं से लोगों की रक्षा करने के लिए एकान्तवास सेवन करने से राष्ट्र को जो दुर्बलता प्राप्त होती है उसे दूर करने के लिये संसार का सब काम करते हुए भी परमार्थसाधन का सच्चा मार्ग इन सन्तों ने लोगों को दिखलाया और इस प्रकार राष्ट्र को लाभ पहुंचा।

(७) यूरोप में जिस प्रकार मूर्तिपूजा की पद्धति नष्ट हुई, उसी प्रकार थोड़ा बहुत यहां भी हुआ पर यहां पर मूर्तियां भंग नहीं हुई। किसी भी देवता को भजने से काम चल सकता है क्योंकि वह एक ही परमेश्वर के रूप है, ऐसा समझ प्रत्येक अपने उपास्य देवता की भक्ति करता था। मूर्तिपूजा का आजकल जो निन्दनीय अर्थ होता है, उस अर्थ में वे मूर्तिपूजक नहीं थे। धर्म के नाम से बलि आदि देने की बातों का उन सन्तों ने अत्यन्त निषेध किया है। सब देवता एक ही परमेश्वर के स्वरूप हैं इस कारण किसी की भी निन्दा करना वे अयोग्य समझते थे। परन्तु किसी भी देवता में दृढ़ श्रद्धा रहने से ही महत्कृत्य हो सकते हैं, इस लिए मूर्ति में विश्वास रखना ईश्वरप्राप्ति का एक मार्ग है, इसी अर्थ से वे मूर्तिपूजक कहला सकते हैं।

संतजनों के उद्योगों का परिणाम यहां दिखाई जाता है। इस प्रकार सन्तजनों ने ऐसी शिक्षा देकर राष्ट्रोन्नति का एक मुख्य अंग तैयार किया। परस्पर जातियों का तीव्रद्वेष शान्त हुआ। ब्राह्मणों के समान शूद्रों को भी सामाजिक उन्नति करने और तत्वज्ञान प्राप्त करने के लिये अवसर प्राप्त हुआ। सांसारिक कर्तव्य में स्त्रियों को

---

* आजकल सारे हिन्दुस्थान में यह स्थिति हो गई है। लेखक।

श्मशानभूमिमें मि० गोखले.
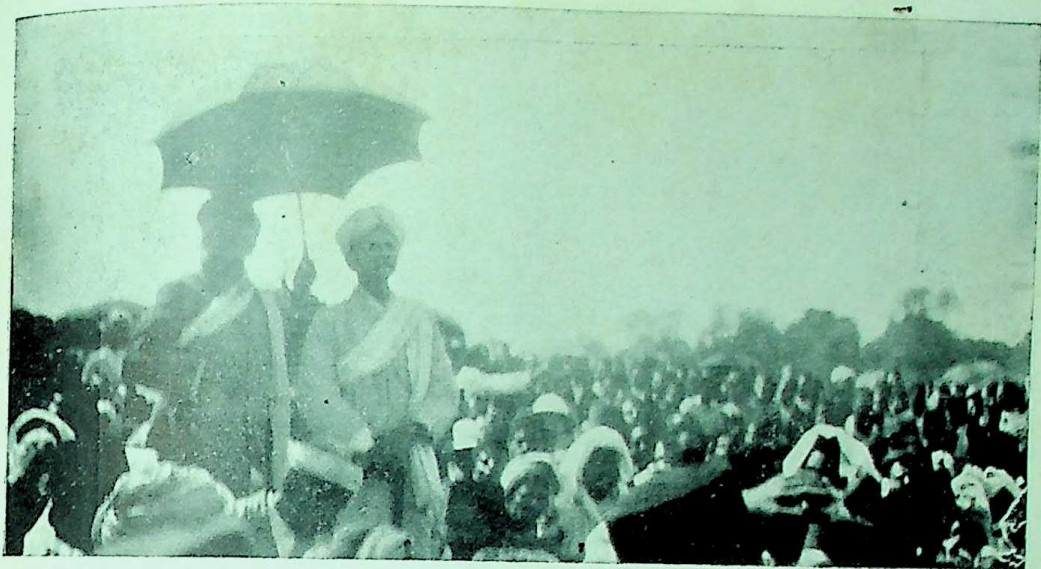
डाक्टर भांडारकर उनकी देशसेवाओंका गुणगान कर रहे है.
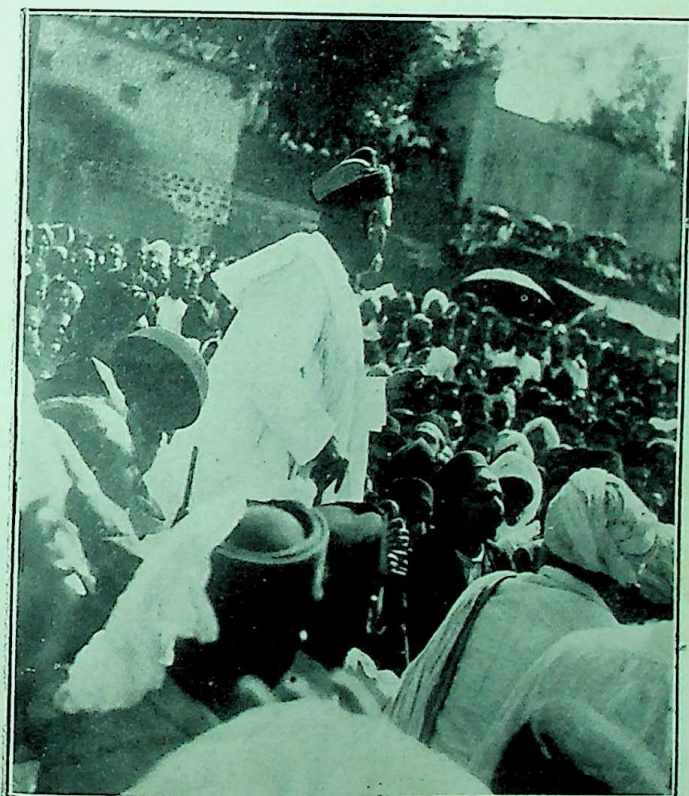
मि० तिलक लोगोंसे मि० गोखलेका अनुकरण करो ऐसा कह रहे हैं.

The Bombay Art Printing Works, Fort.

मि० गोखले की सर्वेंटस ऑफ इंडिया सोसाइटीका भवन पूना.

The Bombay Art Printing Works, Fort.
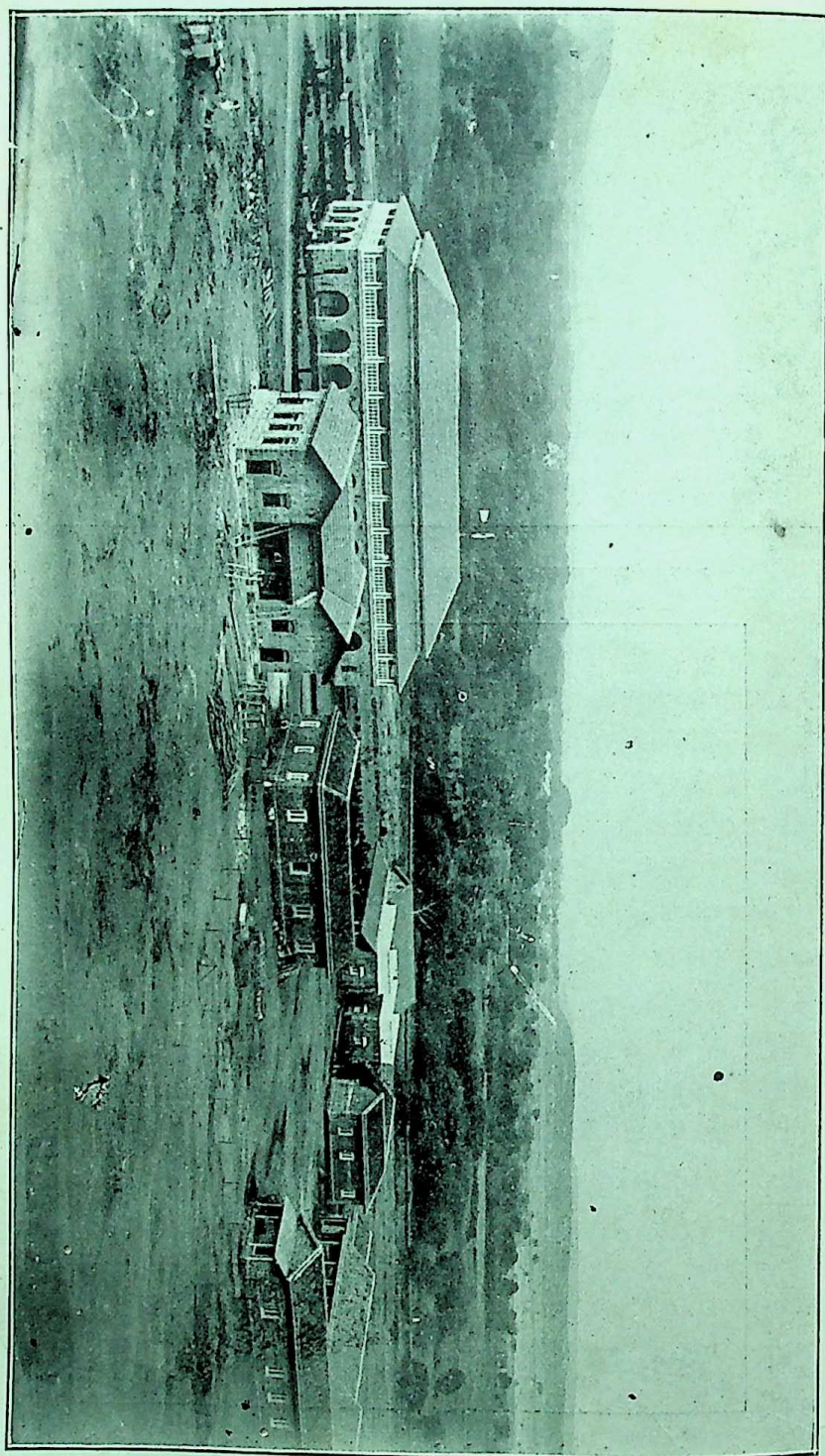
प्रधानता प्राप्त हुई और कौटुम्बिक व्यवहार पवित्र होने लगा। यह राष्ट्र परोपकारशील, सहनशील और आपस में मेल करने के योग्य बन चला। जप, तप, यज्ञ, योग योगाभ्यास आदि बातों में लोगों के समय और शक्ति का जो व्यय होता था वह बन्द होने लगा। विचार और आचार का विरोध कम होने लगा। संन्यासवृत्ति धारण करने के समान लोग अपने सांसारिक कर्तव्यों की ओर पूर्ण ध्यान न देते थे और ऐहिक सुख के विषय में बेपरवाह होते चले गये। यह दोष इन सन्तों के उपदेशों से दूर होगया। सांसारिक कर्तव्य करते हुए भी अपना और दूसरे का हित साधना यही उत्तम धर्म, यही पुरुषार्थ और यही जन्म की सार्थकता है ऐसी लोगों की प्रवृत्ति हो चली और इस कारण स्वाभिमान उत्पन्न होने लगा। वे विद्या का और पांडित्य का जो निरर्थक शोर मचाया था इसका प्रतीकार हुआ। सारांश स्त्री, पुरुष, सब जाति और श्रेणी के लोग एक दिल से काम करने लगे, इस कारण स्वराज्य प्राप्त करने की तैयारी धड़ाके से होने लगी। इसी कारण शिवाजी को स्वराज्य स्थापन करने की शक्ति प्राप्त हुई। एक ही मनुष्य कोई काम करने योग्य हो और उसके साथ काम करने के लायक दूसरे न हों तो उसकी असामान्य शक्ति का कुछ उपयोग नहीं होता। बल्कि सब साधन ठीक होने पर उनका उपयोग करने वाला कोई न कोई जन्म ही जाता है। यह कहावत बहुत कुछ सत्य है कि महाराष्ट्रों के उदय के समय अगर शिवाजी न जन्मे होते तो कोई अन्य इस बात के लिये आगे आही जाता। परन्तु शिवाजी ने इन साधनों का पूरा उपयोग किया, यह बात ध्यान रखने योग्य है।

यह सब पढ़ कर यदि कोई पूछे कि इस धार्मिक उन्नति का मतलब क्या था तो उन्हें हम यही उत्तर देंगे कि इतिहास क्या वस्तु है, यह आप नहीं समझते। सामाजिक और राजकीय उन्नति का धार्मिक उन्नति से बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। शरीर की जब उन्नति होती है तब केवल हाथ किंवा केवल पांव किंवा केवल छाती किंवा केवल गले या किसी एक अवयव की पुष्टि नहीं हो सकती। शरीर की उन्नति का यही अर्थ है कि सब अंग समान उन्नत हों। अगर एक ही अंग किसी कारण से अधिक बलवान हो तो यही कहना होगा कि शरीर पुष्ट होने के बदले दुर्बल हुआ क्योंकि एक अंग अधिक बलिष्ट होने से दूसरे अंग शिथिल पड़ जाते हैं और वे रोगी हो जाते हैं। उनके रोगी होने से शरीर रोगी हो जाता है और उन्नत अंग भी कमज़ोर पड़ जाता है ठीक यही बात सामाजिक, राजकीय और धार्मिक उन्नतियों के पक्ष में है। जहां तक हमें इतिहास से ज्ञात हुआ है, हमें यही पता लगता है कि धार्मिक उन्नति का राजकीय उन्नति से बड़ा भारी सम्बन्ध रहा है। यह एक ऐतिहासिक बात है और तात्विक दृष्टि से प्रमाणित है, इसलिए इसमें सन्देह करने का कोई कारण नहीं है।

कुछ लोग कहते हैं कि शिवाजी के कार्य से इस धार्मिक उन्नति का कार्य कारण का कोई सम्बन्ध नहीं था। इन लोगों के कहने का यही सारांश है कि शिवाजी ने अपना कार्य आप ही किया, उसने किसी से न सहायता मिली, न उसने ली। इस विषय का विचार हम आगे चलकर विशेष रूप से करेंगे। यहां पर इतना बतला देना आवश्यक है कि इन सन्तों के द्वारा और उनके उपदेशों और कविताओं से उस समय उन्नति हुई और आज भी हो रही है। यदि उनकी कविताओं से, आदर्श से, उपदेशों से केवल धार्मिक और नैतिक ही उन्नति हुई हो यह मान लिया जाय तो भी बहुत है क्योंकि ऊपर जैसा बतला चुके हैं मनुष्य स्वतन्त्र रूप से विचार करने लग गये, उनका आचरण शुद्ध होने लगा और वे सच्चे धर्म का निष्ठापूर्वक

पालन करने लगे। ऐसा करना कोई साधारण बात नहीं है। वही शुद्ध आचरण सब जगह मिलेगा और वही निष्ठा की शक्ति सब जगह बनी रहेगी। यह बात ही दूसरी है कि ये शक्तियां चाहे जिस मार्ग से प्राप्त हुई हों। इस शक्ति का आप चाहे जिस जगह उपयोग कर लीजिये। यह शक्ति इन सन्तों ने उत्पन्न की और उसका उपयोग शिवा जी ने राजकीय उन्नति की ओर किया इतना भी मान लिया जाय तो भी बहुत है। ऐसा अगर न मानें तो यही कहना पड़ेगा कि शिवाजी एक बागी था, और उसने लोगों को बागी बनाया, और चार दिन धूमधाम कर चला गया। पर यह बात ऐतिहासिक दृष्टि से असत्य है, और इसी कारण हम आज शिवाजी को अद्वितीय योग्य पुरुष मानते हैं। बिना इस धार्मिक उन्नति के महाराष्ट्र के इतिहास का कोई अर्थ ही नहीं है। इसलिए जो ऊपर लिखे हुए आक्षेप करें उन्हें चाहिये कि वे दुनियां का पुराने और नये सब इतिहासों का अध्ययन करें और फिर कुछ कहने की कृपा करें।

अब यदि कोई कहे कि "यह बात तो ठीक है पर शिवाजी की योग्यता का इससे क्या सम्बन्ध है तो इस प्रवाद का भी समाधान किया जायगा।"

नौहये१ वफ़ात२ मि० गोपाल कृष्ण गोखले।

[लेखक–श्रीयुत ब्रजनारायण चकबस्त।]

(१)

लरज़ रहा था वतन जिस ख़याल के डर से।
व आज ख़ून रुलाता है दीदए तर३ से॥
सदायें४ आती हैं फल फूल और पत्थर से।
ज़मीं पै ताज गिरा क़ौमे हिन्द के सर से॥
हबीब५ क़ौम का दुनिया से यों रवाना हुआ।
ज़मीं उलट गई क्या मुनक़लिब६ ज़माना हुआ॥

(२)

बढ़ी हुई थी नहूसत ज़वाले फहम७ की।
तेरे ज़हूर से तक़दीर क़ौम की चमकी॥
नज़र हक़ीर थी हिन्दोस्तां पै आलम की।
अजीब शय थी मगर रोशनी तेरे दम की॥
तुझी को मुल्क में रौशन दमाग़ समझे थे।
तुझे ग़रीब के घर का चिराग़ समझे थे॥

(३)

वतन को तूने सम्हारा किस आबो ताब के साथ।
सहर८ का नूर बढ़े जैसे आफ़ताब के साथ॥
चुने रिफाह९ के गुल हुस्ने१० इन्तिख़ाब११ के साथ
शबाब१२ क़ौम का चमका तेरे शबाब के साथ॥
जो आज नश्वोनुमा१३ का नया ज़माना है।
ये इनक़िलाब तेरी उम्र का फिसाना१४ है॥

(४)

रहा मिज़ाज में सौदाए क़ौम ख़ू१५ होकर।
वतन का इश्क रहा दिल की आरज़ू होकर॥
बदन में जान रही वक़्फ़े आबरू होकर।
रगों में अश्क़े मुहब्बत रहे लहू होकर॥
ख़ुदा के हुक्म से जब आब ओ१६ गिल१७ बना तेरा।
किसी शहीद की मिट्टी से दिल बना तेरा॥

---

१ गुणावली। २ मृत्यु। ३ तर आंखों से। ४ आवाज। ५ दोस्त। ६ उलट पलट। ७ समझ। ८ सुबह। ९ भलाई। १० खूबसूरती से। ११ चुनना। १२ यौवन। १३ उन्नति। १४ किस्सा। १५ आदत। १६ पानी। १७ मिट्टी।

(५)

वतन की जान पै क्या २ तबाहियां आई।
उमड़ उमड़ के जहालत की बदलियां आई ॥
चिराग़े अम्न बुझाने को आँधियां आई।
दिलों में आग लगाने को बिजलियां आई ॥
इस इन्तिसार१८ में जिस नूर का सहारा था।
उफ़क१९ पै क़ौम के वो एकही सितारा था ॥

(६)

हदोसे२० क़ौम बनी थी तेरे ज़बां के लिये।
ज़बां मिली थी मुहब्बत की दास्तां के लिये ॥
खुदा ने तुझको पयम्बर२१ किया यहां के लिये।
कि तेरे हाथ में न कूस२२ था अज़ां२३ के लिये ॥
वतन की ख़ाक तेरी बारगाह२४ आला है।
हमें यही नया मसज़िद नया शिवाला है ॥

(७)

ग़रीब हिन्द ने तनहा नहीं ये दाग़ सहा।
वतन से दूर भी तूफ़ाने रंज ग़म का उठा ॥
हबीब क्या हैं हरीफ़ों ने ये ज़बां से कहा।
सफ़ीरे२५ क़ौम जिगरबन्दे२६ सल्तनत न रहा ॥
पयाम२७ शह२८ ने दिया रस्मे ताजियत२९ के लिये
के तू सितून था ऐवान३० सल्तनत के लिये ॥

(८)

दिलों पै नक्श हैं अब तक तेरे ज़बां के सख़ुन३१।
हमारी राह में गोया चिराग़ हैं रौशन ॥
फ़क़ीर थे जो तेरे दर के ख़ादिमाने वतन।
उन्हें नसीब कहां होगा अब तेरा दामन ॥
तेरे आलम३२ में वो इस तरह जान खोते हैं।
कि जैसे बाप से छुटकर यतीम३३ रोते हैं ॥

(९)

अजल३४ के दाम में आना है यों तो आलम को।
मगर ये दिल नहीं तैयार तेरे मातम को ॥
पहाड़ कहते हैं दुनिया में ऐसे ही ग़म को।
मिटा के तुझको अजल ने मिटा दिया हमको ॥
जनाज़ा हिन्द का दर से तेरे निकलता है।
सुहाग क़ौम का तेरी चिता में जलता है ॥

(१०)

रहैगा रंज ज़माने में यादगार तेरा।
व कौन दिल है कि जिसमें नहीं मज़ार३५ तेरा ॥
जो कल रक़ीब३६ था है आज सोगवार तेरा।
खुदा के सामने है मुल्क शर्मसार तेरा ॥
पली है क़ौम तेरे साया ए करम३७ के तले।
हमें नसीब थी जन्नत३८ तेरे क़दम के तले ॥

"हिन्दुस्तानी"

---

१८ उम्मेद। १९ आसमान का किनारा। २० पवित्र पुस्तक। २१ पथप्रदर्शक। २२ शंख। २३ मुनादी। २४ पूजा का स्थान। २५ नेता। २६ हृदय को धैर्य देनेवाला। २७ संदेश। २८ बादशाह। २९ स्वागत। ३० महल। ३१ बात। ३२ शोक। ३३ अनाथ। ३४ मौत। ३५ समाधिस्थान। ३६ दुश्मन। ३७ कृपा। ३८ स्वर्ग।

भारत-भारती ।

[लेखक-श्रीयुत उद्भट ।]

गताङ्क की पूर्ति ।

भाषा-दोष ।

दुष्ट और निरर्थक प्रयोग ।

वाक्य रचना कहीं कहीं बिल्कुल बेढंगी और बेमुहावरे है। अतीत खंड की बातों को आपने वर्त्तमान् कालिक क्रियाओं द्वारा वर्णन किया है और ऐसा करना ठीक भी है। पर सर्वनामों के प्रयोग में वर्त्तमान् का कुछ भी ध्यान नहीं रक्खा गया है, जैसे—

(१५१) दानी बहुत हैं किन्तु याचक
अल्प हैं उस काल में ।

(१५६) देखो न, उनको देख कर
होती सुरों की भ्रान्ति है ।

इन उदाहरणों में 'उस' और 'उनको' के स्थान पर 'इस' और 'इनको' होना चाहिये । ऐसा न होने से दृश्य की उपस्थिति में अन्तर पड़ता है ।

कुछ और भी नमूने नीचे दिये जाते हैं—

(१४) यद्यपि हमें इतिहास अपना
प्राप्त पूरा है नहीं ।

हम कौन थे इस ज्ञान को
फिर भी अधूरा है नहीं ॥

(२६) पहुंचे जहां वे अज्ञता का
द्वार मानो रुक गया ।

(१८५) मरते नहीं वह मौत वे .
जो फिर उन्हें मरना पड़े ।

करते नहीं वह काम उनको
नाम जो धरना पड़े ॥

(६३) कहना हमारा बस यही था
विघ्न और विराम से ।

करके हटेंगे हम कि अब
मर के हटेंगे काम से ॥

(१६१) पतिदेव में मति, गति, तथा
दृढ़ हो हमारी रति सदा ।

(१६२) हैं गेह में वे शक्तिरूपा
देह में सुकुमारियाँ ।

(१८२) हमने बिगड़ कर भी बनाए,
जन्म के बिगड़े हुए ।

मरते हुए भी हैं जगाए
मृतक तुल्य पड़े हुए ॥

गिरते हुए भी दूसरों को
हम चढ़ाते ही रहे ।

घटते हुए भी दूसरों को
हम बढ़ाते ही रहे ॥

(१६७) जो सर्वदा करते द्दगों की
भांति उनका त्राण हैं ।

(८७) मस्तक न लेवेंडर बिना
अब मस्त होता है अहो ।

(४५) गोबर उठाती, थापती हैं
भोगती आयाश वे ।

(५१) है वायु कैसा चल रहा
इसका न कुछ भी ध्यान है ।

(६२) दुर्बल हुए हम आज यों
तनु-भार भी झिलता नहीं ।

(५४) पर चित्त को वे दोष जन
किस भाँति बहलाया करें ।

क्या आँसुओं से ही उसे
वे नित्य नहलाया करें॥

(७७) सब ओर क्रन्दन हो रहा है,
क्लेश को भी क्लेश है।

(८६) पर हाय! काले भाल पर
लाली कभी चढ़ती नहीं।

(११८) कल कंठियां गुंजारतीं
उनके अतुल आवास हैं।

(१४) 'ज्ञान को' के स्थान पर 'ज्ञान के लिए' चाहिये। क्रियापद के आगे तो 'को' इस अर्थ में लगता है पर संज्ञा के आगे नहीं। (२६) द्वार बंद होता है, कोई प्रवाह नहीं है कि रुके। 'द्वार रुकना' किससे आपने सुना? (१८५) 'उनको'? किनको? अपने आप कोई अपना नाम नहीं धरता, नाम धरते हैं दूसरे। दोनों चरणों में 'जो' का प्रयोग अशुद्ध है। यदि पहले में यह कहा जाय कि 'मौत' के साथ 'मरना' का सकर्मकवत प्रयोग है (जैसा 'कुत्ते की मौत मरना' में) तो भी 'मरनी पड़े' होना चाहिये था। पर दूसरे चरण के "नाम जो धरना पड़े" में भी 'जो' को रख कर सदोषता अच्छी तरह स्पष्ट कर दी गई है यदि 'जो' को संयोजक 'कि' के स्थान पर मानों तो 'वह' के स्थान पर 'ऐसा' चाहिये। 'जो' के स्थान पर 'जिससे' होता तो ठीक होता (६३) 'विराम' शब्द का प्रयोग रुकावट के अर्थ में बिलकुल ग़लत है। 'विराम' इच्छापूर्वक लिया जाता है और रुकावट न चाहने पर भी आ पड़ती है। (१६१) 'गतिदृढ़' होना कैसा? (१६२) 'देह में सुकुमारियों' क्या? जिस प्रकार 'शरीर से अशक्त वा बलवान्' बोला जाता है उसी प्रकार 'देह से सुकुमार' यदि कहा जाता तो किसी प्रकार खप भी सकता था। वे "देह में सुकुमार हैं" कोई मुहाविरा नहीं। (१६९) 'मरते हुए', 'गिरते हुए', 'घटते हुए' में से किसी एक के पहले भी 'आप' न आने से यह अर्थ हो जाता है कि 'गिरते हुए' 'मरते हुए' 'घटते हुए' वाक्य भी दूसरों ही के लिए कहे गए हैं। (१६७) यहां पर 'रक्षा' के स्थान पर 'त्राण' शब्द का व्यवहार अनुपयुक्त है। 'त्राण' शब्द हिन्दी भाषा में आपत्ति व कष्ट की उपस्थिति के सम्बन्ध में ही बोला जाता है, पर 'रक्षा' शब्द का प्रयोग आपत्ति वा कष्ट के अभाव में भी केवल संभावना के विचार से किया जाता है। 'वे दिन रात हमारा त्राण करते हैं। ऐसा कोई नहीं बोलता' पर 'इस आपत्ति से त्राण करो' सब बोलते हैं। रोग दूर करना दूसरी बात है और रोग न होने देना दूसरी बात। संस्कृत के 'पादत्राण' और 'अंगुलित्राण' आदि को देख हिन्दी में 'त्राण' का दुरुपयोग करना ठीक नहीं। (८७) 'मस्तक मस्त होना' कोई मुहाविरा नहीं। मन मस्त होता है। माथा ऊंचा और नीचा हो सकता है मस्त नहीं हो सकता। (४४) 'आयास भोगना' नहीं 'करना' या उठाना बोला जाता है। (५१) 'कैसा समय वा ज़माना है' के लिए 'कैसी हवा चली है' बोला जाता है। पूरब में बयार भी बोलते हैं (जैसी बहै बयार पीठ तब तैसी दीजै, 'हवा' के स्थान पर उसके और पर्याय रखने से यह अभिप्राय नहीं निकल सकता। "जब जैसा प्रभंजन चले, पवन चले, मारुत चले," कहकर "जब जैसा समय हो" का अर्थ नहीं निकल सकता। (६२) 'भार भी झिलता नहीं'। 'झेला जाना' बोला जाता है 'झिलना' नहीं। (५४) आँसुओं से शरीर नहलाया जाता है चित्त नहीं, चित्त के उद्वेग से जो आँसू बाहर निकलते हैं वे फिर घुसकर चित्त में नहीं जाते। (७७) 'क्लेश को भी क्लेश है! वाह क्या बात है। 'लज्जा को भी लज्जा आती है' यद्यपि भद्दी उक्ति है पर उर्दू कवियों की कृपा से बोलचाल में आ गई है, पर उसे देख यदि कहा जाय कि 'क्रोध को भी क्रोध आता है', 'भय को भी भय होता है' तो उपहास ही होगा। नई उक्तियों के सामर्थ्य के अभाव में आप पुरानी उक्तियों का पिष्टपेषण करने चलते हैं सो भी नहीं बनता। सोचने की बात है कि यदि क्लेश

को भी क्लेश होगा तो वह रहेगा क्यों कर। पर जिसे केवल शब्दों का जोड़ मिलाना है उसको ऐसे सोच विचार से क्या सम्बन्ध? (८६) 'काले भाल पर लाली' नहीं चढ़ती यह आपही के मुंह से सुना है। 'काले मुंह' पर 'लाली नहीं चढ़ती काले भाल पर बराबर चढ़ती है, 'गंगा के घाटों पर जाकर देख आइए काले मस्तकों पर रोली कैसी चढ़ती है। 'काले मुंह पर लाली नहीं चढ़ती' इस उक्ति में जो चमत्कार है वह मुहाविरे का है। पर मुहाविरे का चमत्कार तो आपने समझा नहीं उक्ति को लेने के लिए लपक पड़े (११८) 'आवास गुंजारती हैं'। 'घर' शब्द के आगे कभी कभी विभक्ति का लोप करते देख आपने 'आवास' के आगे भी उसका लोप कर दिया। पर जिस प्रकार 'उनके घर गए थे' कहा जा सकता है इसी प्रकार 'उनके आवास गए थे' या 'उनके निवास गए थे' नहीं कहा जा सकता।

विस्तार-भय से मैंने थोड़े से ही उदाहरण ऊपर दिखलाए हैं। इतने से पुस्तक की भाषा के गुण दोष का पता अच्छी तरह चल सकता है।

व्याकरण-दोष।

यद्यपि भाषादोष के अन्तर्गत व्याकरण के दोष भी बहुत से आगए हैं पर स्पष्टता के लिए थोड़े से अलग भी दिखा दिए जाते हैं—

(५४) थी दूसरों की आपदा-
हरणार्थ उनकी सम्पदा।

(१५५) निर्मल पवन जिसकी शिखा को
तनिक चञ्चल कर उठी।

होमाग्नि जल कर द्विज गृहों में
पुण्य परिमल भर उठी॥

(६३ अती) था जो असम्भव भी इसे
सम्भव हुआ दिखला दिया॥

(७५) घृत और दुग्धाभाव से
दुर्बल हुए हम रो रहे॥

(७६) भारत न ऐसा है कि अब वह
और भी दुख सह सके।

(१२८) जीवन सफल-करुणार्थ अब
उनमें अपव्यय बढ़ गया।

(२३२) कम कीर्ति अकबर की नहीं
सत्शासकों की ख्याति में।

वर्त० (२६) वह उर्वरा-बल भूमि का
कम हो गया है, क्यों न हो।

(क) क्या न विषयोत्कृष्टता
करती विचारोत्कृष्टता।

(ख) हम सामगान किया करे

(५४) समास के कारण 'की' के स्थान पर 'के' चाहिये। (१५५) 'कर उठी' क्या? 'करना' के साथ संयुक्त क्रिया के रूप में 'उठना' का प्रयोग नहीं होता। 'करना' ही क्या 'कहना', 'बोलना' आदि दो चार क्रियाओं को छोड़ और किसी सकर्मक क्रिया के साथ 'उठना' का प्रयोग संयुक्त रूप में नहीं होता। 'भरउठी' का प्रयोग तो और विलक्षण है। यदि 'भरना' को सकर्मक मानिये तो उसके साथ 'उठना' नहीं आसकता 'देना' आना चाहिये। 'उसने दवात में स्याही भर दी' के स्थान पर कोई कहे कि 'वह दवात स्याही भर उठी' तो लोग उसे क्या कहेंगे? यदि 'भर उठी' को अकर्मक मानें तो दो अशुद्धियां एक साथ होती हैं। एक तो वाक्य (जुमला) ही अधूरा रहता है क्योंकि 'होमाग्नि' कर्ता की कोई पूर्ण क्रिया ही नहीं रह जाती दूसरी अशुद्धि लिंग की होती है; 'परिमल' शब्द पुल्लिंग है, उसकी क्रिया 'भर उठी' कभी नहीं होगी 'भर उठा' होगी। सारांश यह कि ये दोनों प्रयोग नितान्त अशुद्ध हैं। (६३ अती) (७५ वर्त) 'सम्भव हुआ दिखला दिया', 'दुर्बल

हुए हम रो रहे' ये दोनों वाक्य अशुद्ध हैं। इस प्रकार के कृदंत बनाने में जो 'हुआ' लगाया जाता है वह क्रियापद के आगे लगाया जाता है संज्ञा व विशेषण के आगे नहीं, जैसे, होता हुआ, आता हुआ, जाता हुआ, मारता हुआ इत्यादि। कृदंत बनाने के लिए संज्ञा वा विशेषण के साथ 'हुआ' लगाना व्याकरण-विरुद्ध है। (७९) 'न' के स्थान पर 'नहीं' चाहिये। (१२८) सफलकरणार्थ अशुद्ध है सफलीकरणार्थ चाहिये। (२१२) 'सत्शासकों' के स्थान पर 'सच्छासकों' होना चाहिये। 'सत्शासक' सन्धि के नियमों के विरुद्ध है। (२९) 'उर्वरा बल' में कैसा समास है? (क) 'न' के स्थान पर नहीं चाहिये। (ख) 'किया करे' कहां की बोली है। "किया करते थे" होना चाहिये था।

अर्थासंगति।

असंगति दोष स्थान २ पर मिलता है। दो एक उदाहरण उसके भी देख लीजिये —

हँसते प्रथम जो पद्म हैं
तम-पंक में फँसते वही।
मुरझे पड़े रहते कुमुद
जो अन्त में हसते वही॥

'प्रथम' और 'अन्त' शब्दों का प्रयोग करके लेखक ने इन दोनों पंक्तियों का अर्थ चौपट कर दिया। 'प्रथम' शब्द अपने से पूर्ववर्तीकाल में अवस्थान्तर का निषेध करता है और 'अन्त' शब्द अपने से परवर्ती आगामी काल में अवस्थान्तर का निषेध करता है। "हँसते प्रथम जो पद्म हैं" से यह सूचित होता है कि हँसने के पहले कमल अँधेरे में कभी नहीं पड़े थे और "कुमुद अन्त में हँसते हैं" से यह व्यंजित होता है कि हँसने के उपरान्त फिर कुमुद कभी न मुरझायँगे। 'प्रथम' और 'अन्त' के स्थान पर 'कभी' शब्द यदि होता तो अर्थ की यह दुर्दशा न होती। 'मुरझे' शब्द से भी अर्थ की हानि होती है 'सकुचे' होता तो अच्छा था।

कहीं कहीं वाक्यों का सम्बन्ध कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता, जैसे—

(७) होता समुन्नति के अनन्तर
सोच अवनति का नहीं।
हाँ सोच तो है जो किसी की
फिर न हो उन्नति कहीं॥
चिन्ता नहीं जो व्योम-विस्तृत
चन्द्रिका का ह्रास हो।
चिन्ता तभी है जब न उसका
फिर नवीन विकास हो॥

(८) है ठीक ऐसी ही दशा
हत-भाग्य भारतवर्ष की।
कब से इतिश्री हो चुकी
इसके अखिल उत्कर्ष की॥

"ठीक ऐसी ही दशा"। कैसी दशा? ऊपर ७वें पद्य में तो आपने किसी दशा का वर्णन नहीं किया है, एक साधारण सिद्धान्त कहा है। पुस्तक उलटने से असंगति का कई रूपों में दर्शन मिलता है। एक और उदाहरण देकर हम बस करते हैं—

आलस्य में अवकाश को
वे व्यर्थ ही खोतीं नहीं।
दिन क्या, निशा में भी कभी
पति से प्रथम सोतीं नहीं॥

इस "दिन क्या?" और "निशा में भी" का क्या मतलब? यही न कि दिन में सोना तो एक बहुत साधारण बात है, हाँ रात में सोना अलबत्ता बड़ी असाधारण बात है।

शब्दाडंबर वा पोलापन।

काव्य-रचना में जिन २ स्थलों पर ऐसे शब्द अधिकता से भरे मिलते हैं जिनसे भावों

की प्राप्ति, वृद्धि आदि कुछ भी नहीं होती वे स्थल भावुकों को पोले जान पड़ते हैं ऐसे शब्द यदि निकाल कर फेंक भी दिये जायँ तो भाव में कुछ अन्तर न पड़ेगा और यदि कुछ अन्तर भी पड़ेगा तो उसकी पूर्ति इतने थोड़े वा ऐसे छोटे शब्दों से हो जायगी जो बहुत कम स्थान छेकेंगे। इस दृष्टि से यदि पाठक देखेंगे तो गुप्त जी की रचनाओं में बहुत से पोले स्थान मिलेंगे; बहुत कम पद्य ऐसे ठोस वा चुस्त मिलेंगे जिनके एक शब्द को हटा देने से भाव खंडित हो जाय। यहाँ पर यह कह देना आवश्यक है कि गुप्त जी की और रचनाओं की अपेक्षा भारत-भारती में पोलापन कम है जो कि शायद हाली की मँजी हुई भाषा की उद्धरणी का प्रसाद है। पर यह कम भी औरों के लिए बहुत ज़्यादा है। कुछ थोड़े से उदाहरण नीचे दिये जाते हैं जिनके रेखांकित शब्द आडंबर मात्र हैं। ऐसे शब्दों को निकाल कर या तो स्थान ख़ाली रक्खा जा सकता है अथवा उसमें छोटे या थोड़े शब्द रक्खे जा सकते हैं।

(१०) अनुकूल शोभाभूल सुरभित
फूल वे कुम्हला गये।

(३०) सत्कार्यभूषण आर्यगण
जितने यहां पर हैं हुये।

(३५) जो धीरता के, वीरता के
प्रौढ़तम पालक हुये।

(८६) वे ज्ञानगरिमागार हैं
विज्ञान के भांडार हैं।

(१०२) है आजकल की डाकृरी
जिससे महामहिमामयी।

(११८) कलकंठियाँ गुंजारतीं
उनके अतुल आवास हैं।

(१४८) उत्साहपूर्वक दे रहा जो
स्वास्थ्य वा दीर्घायु है।
कैसे कहें कैसा मनोरम
उस समय का वायु है॥

(११८) दर्शन-विलम्बाकुल दृगों को
हाय ले जाते कहाँ।

(२४०) साद्यन्तसर्व सतीत्व-शिक्षा
विश्व में मिलती यहीं।

उपसर्गों की भरमार से बहुत से शब्दों का हिन्दीपन निकल गया है। प्रपूर्ण, समुज्वल, समुन्नति, विनिर्मित, परिपुष्टता ऐसे शब्द आवश्यकता से अधिक जगह छेके हुए हैं। प्रौढ़त्व, वृद्धत्व, दौरात्म्य, कौशल्य, सौख्य, विषयोत्कृष्टता, विचारोत्कृष्टता ऐसे भीमकाय शब्दों से पद्यों की भयंकरता और भी बढ़ गई है। 'सु' का पुछल्ला बहुत से शब्दों में लगा हुआ है, जैसे—

(१२१) आती सुचेतनता जिन्हें
सुन कर जड़ों में भी, अहो!

(१७५) पर यह सरस संगीत उसका
फिर यहाँ सुस्पष्ट हो।

(६१) जब के सुचिह्न अमेरिका में
हैं हमारे मिल रहे।

इसी प्रकार सुस्नान, सुस्थान, सुवसुधैव कुटुम्बकम्, 'सत्यप्रतिष्ठायाँ क्रिया सु फलाश्रयत्वं' आदि भी समझ लीजिये। 'अहो!' के मारे भी नाकों दम हो जाता है। 'सर्वथा' भी पादपूर्ति की एक ख़ासी सामग्री है।

भाषा पर अनधिकार।

जिस भाषा में कोई पुस्तक लिखने चलें उस पर उसका पूर्ण अधिकार होना चाहिये। भारत भारती के कर्त्ता के अधिकार का विस्तार कितना है इसका पता 'भाषा दोष' के अन्तर्गत दिए हुए

प्रयाग में स्वर्गवासी महात्मा गोखले का भस्मावसान ।
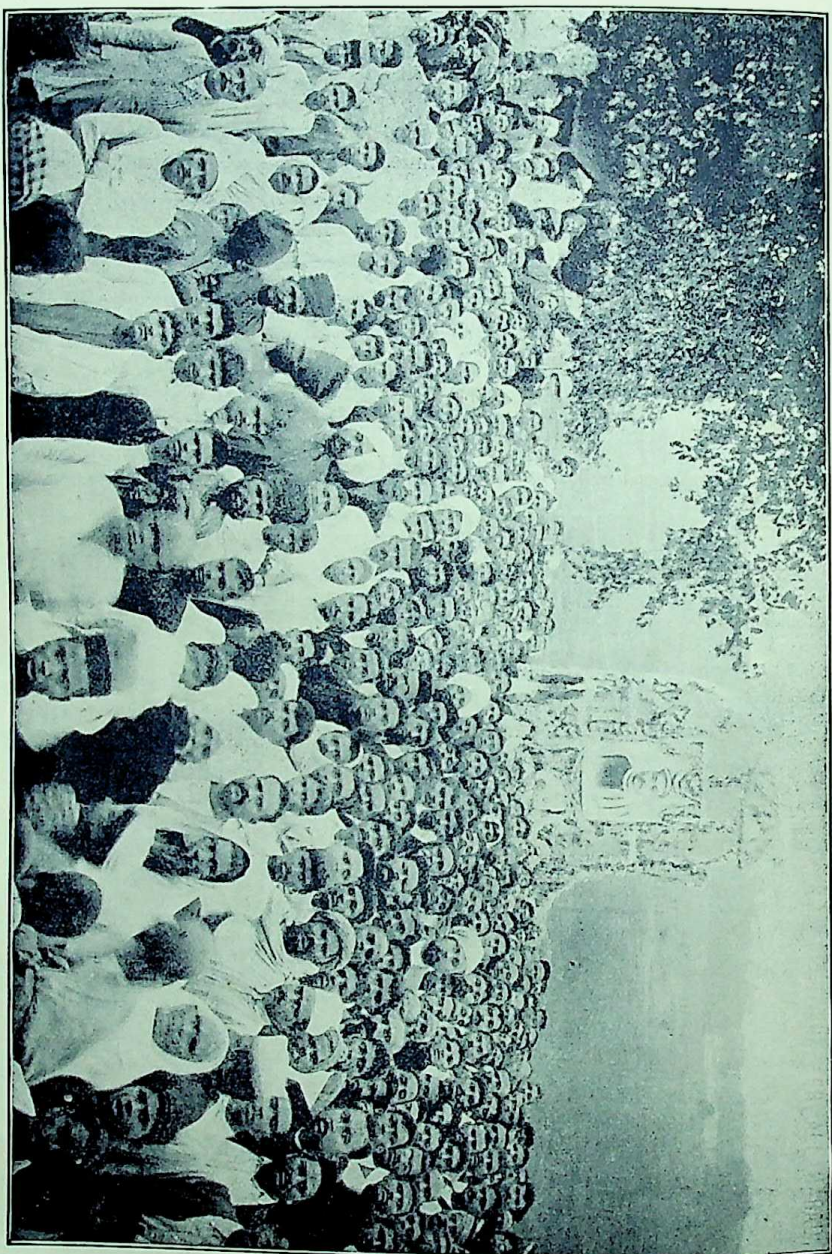
कहां है वह माता का लाल । कहां गया गोखले हमारा वह प्यारा गोपाल ॥
कहां शान्त अरविंद बदन वह, हा ! वह भाल विशाल । आशा पुष्प हमारा तोड़ा, हा ! हा !! निर्दय काल ॥

उदाहरणों से चल जाता है। पर थोड़ा यह भी तो देखिए कि ठेठ हिन्दी के शब्द उपयुक्त अवसरों पर गुप्त जी को उपस्थित हो सके हैं या नहीं यदि पद्यों को भाषा के विचार से देखिए तो बहुत से ऐसे अप्रचलित शब्द मिलेंगे जिनके स्थान पर हिन्दी के चलते हुए शब्द अधिक उपयुक्त होते पर आपको ऐसे शब्द नहीं मिले। यदि इसके उदाहरण देने चलें तो सारी पुस्तक ही उद्धृत करनी पड़े। एक नमूना देखिए।

(९०) हम दर्शनों का साम्य पहले
आज भी आगे धरो।

यहां 'साम्य' ऐसे घोर संस्कृत शब्द के स्थान पर हिन्दी का "जोड़" शब्द अच्छी तरह खप सकता था पर आपको न सूझा। "कृषि और कृषक" पर आपने कोई ३१ पद्य लिखे पर उन में 'कृषक' और 'कर्षक' को छोड़ 'किसान' शब्द भूलकर भी नहीं आया। जिसके पास स्वभावसिद्ध भाषा नहीं वह भला कविता कैसे लिख सकता है? कृत्रिमता से कहीं कविता का काम चलता है?

दूसरी बात यह है कि काव्य की पदावली गद्य की पदावली से कुछ भिन्न होती है। यह बात सभी भाषाओं में है। अंगरेज़ी भाषा में भी Poetic diction गद्य की शब्दावली से भिन्न होता है। यद्यपि "कोमलकान्त पदावली" से ही काव्यत्व की सिद्धि नहीं हो सकती पर साधन रूप में उसका ग्रहण आवश्यक है। गुप्त जी के सारे नाना छंदों में ढले हुए गद्य ही मालूम पड़ते हैं। कवि-सुलभ शब्दावली प्राचीन कवियों में तो पाई ही जाती है किन्तु उसका लोप नहीं हुआ है और वह आजकल भी पंडित श्रीधर पाठक और राय देवीप्रसाद पूर्ण की रचनाओं में पूर्ण रूपसे पाई जाती है। पर गुप्त जी के 'तथा, सर्वथा, किंवा, तदपि, तथैव, सर्वथैव' आदि को देख सचमुच यही धारणा होती है कि वे किसी सभा में पास किए हुए प्रस्ताव पढ़ रहे हैं।

विचारों की साधारणता।

'रस' के प्रसंग में हम दिखला चुके हैं कि 'भारत-भारती में उसी कोटि के विचार हैं जिस कोटि के साधारण बातचीत में नित्य प्रति आते हैं चिन्तन का सर्वथा अभाव पाया जाता है। चिन्तना के बिना भावों की उच्चता कहां से आ सकती है? यह चिन्तन कुछ तो उच्च कोटि की विचार-परम्परा के ग्रहण के अभ्यास पर और बहुत कुछ प्रतिभा पर निर्भर होता है। उच्च भाव उसे कहते हैं जो इतने ऊंचे पर रक्खा हो कि अन्तःकरण की सारी वृत्तियों को उसे पाने के लिए उचकना पड़े। सिद्धान्त-वाक्यों के सूखे कथन में भावों की उच्चता नहीं पाई जाती। "अपने अशिक्षित भाइयों का प्रेम पूर्वक हित करो," "सब से प्रथम कर्त्तव्य है शिक्षा बढ़ाना देश में," "सच्चे प्रयत्न कभी हमारे व्यर्थ हो सकते नहीं" आदि लोकप्रचलित वाक्य कह कर ही कोई मनुष्य उच्च भाव का प्रकट करनेवाला नहीं कहा जा सकता। ये बातें उच्च भावों के द्वारा चित्त में जमाई जा सकती हैं पर ये स्वयं उच्च भाव नहीं हैं। अच्छा विषय हाथ में लेकर ही कोई उसपर अच्छे विचार नहीं प्रकट कर सकता। जिस प्रकार आपने पुस्तकारम्भ में पूछा कि "क्या न विषयोत्कृष्टता करती विचारोत्कृष्टता?" उसी प्रकार उसका उत्तर भी आपको प्राप्त कर लेना था।

यदि सिद्धान्त-वाक्य ही उच्च भाव के काव्य समझे जाते तो सब नीतिग्रन्थ काव्य हो जाते। यदि 'चाणक्यनीति' उच्च भाव की कविता कही जा सकती हो तो 'भारत-भारती' भी है। जिन लोगों को 'भारत-भारती' में उच्च भाव दिखाई पड़े हैं वे उच्च भावों के परिचय से कोसों दूर हैं, उन्होंने मु... ...तुत ... क मर्म का नहीं

समझा है, वे शेक्सपियर, ब्राउनिंग और वर्ड्स-वर्थ के काव्यों तथा कार्लाइल, रस्किन और एमर्सन के भावों से अपरिचित हैं। सूर और तुलसी ही की इन दो दो पंक्तियों में उच्च भावों के नमूने देखिए।

(१) मोहन माँग्यो अपनो रूप।

यहि व्रज बसत अँचै तुम बैठी
ता बिनु तहां निरूप।—सूर

(गोपियों का वचन राधा प्रति उद्धव के समक्ष)

(२) रघुनाथ कृपा करि मोहू ओर चितैहौ।

....

जो लघुतहि न भितैहौ॥—तुलसी।

भारत-भारती के प्रकाशित होने से जिस प्रकार वर्त्तमान कवियों को ऐसे पद्यबद्ध वाक्य उदाहरण के लिए सुलभ हुए हैं जो काव्य नहीं कहे जा सकते उसी प्रकार भविष्य के कवियों को भी चेतावनी मिली है कि यदि वे ऐसी ही शब्दमाला गूंथ सकते हैं जैसी कि 'भारत-भारती' में है तो वे व्यर्थ कष्ट स्वीकार न करें।

मि० गोखले का गुण ग्रान।

[लेखिका—श्रीमती सरोजनी नायडू।]

प्रसिद्ध भारतीय कवि श्रीमती सरोजिनी नायडू ने मि० गोखले का 'बम्बई क्रानीकल' में जो गुणगान किया है, उसका अनुवाद नीचे दिया जाता है:—

"मैं चाहता हूं कि मैं इतने निकट होता कि मैं स्वयं आकर आप से मिलता।.........मुझे विश्वास है कि आपका शोक गीतों द्वारा प्रगट होगा और ये गीत बने रहेंगे।" मि० गोखले के ये सुन्दर शब्द १२ फरवरी को लिखे गये थे और इनमें प्रत्यक्ष रूप से इस बात का कोई आभास नहीं था कि उनका अन्तिम समय भी इतने निकट है। यह पत्र मुझे मेरे स्वर्गीय पिता के शोकमय श्राद्ध के दिन मिला। थोड़े ही दिन बाद गोपाल कृष्ण गोखले चलते हुए और सारे देश ने इस दारुण विपत्ति और असहनीय हानि के लिये हार्दिक शोक प्रकट किया।

भारतवर्ष की सेवा करने में उन्होंने प्राण-पण से जो उद्योग किया और जैसी वीरता दिखलाई उसके लिये अखबारों में बड़ी योग्यता पूर्वक, बड़े विस्तृत और सुन्दर रूप से उनका गुणगान हुआ है। जिसने भारतवर्ष के लिये ऐसा असीम स्वार्थत्याग किया, उसकी सेवा करने में जिसने इतना अधिक परिश्रम किया और उसकी सेवा करते हुए ही जिसकी ऐसी अकाल और दुःखदायक मृत्यु हुई, उस पुरुष को भारतवर्ष के हर नगर में और भारतवर्ष से सम्बन्ध रखनेवाले अत्यन्त दूर तक के स्थानों में सब श्रेणी और मतमतान्तर के लोगों ने और भिन्न भिन्न राजनैतिक पार्टियों ने एक होकर श्रद्धा और शोकप्रकाश का अन्तिम उपहार प्रदान किया है। उनके महत्वपूर्ण चरित्र की बातों को अधिक प्रकाशित करने या ऐसे देश-व्यापी शोक और कीर्ति के महत्व को बताने के

लिये मेरे तुच्छ शब्दों की आवश्यकता नहीं है। पर मेरा विश्वास है कि बड़े आदमी के कार्य और चरित्र का तबतक पूरा वर्णन नहीं हो सकता जब तक कि उसकी व्यक्तिगत बातों का चाहे वे छोटी और आकस्मिक ही क्यों न हों कुछ वर्णन न हो। इन व्यक्तिगत बातों से उसके हृदय के आन्तरिक गुणों का प्रकाश होता है। मि० गोखले ने राजनीतिज्ञ और समाज सुधारक के रूप में जो कार्य किया है उसका मैं इस संक्षिप्त वर्णन में उल्लेख नहीं करूँगी किन्तु गोखले ने साधारणतः मनुष्य के रूप में जैसा जीवन व्यतीत किया है और इन थोड़े से वर्षों में उन्हें जानने का मुझे जैसा विशेष अवसर मिला है मैं उसीका उल्लेख करूंगी।

घनिष्ठ मित्रता का आरम्भ।

मि० गोखले से मेरा व्यक्तिगत सम्बन्ध एक पत्र द्वारा स्थापित हुआ और एक पत्र द्वारा ही उसका अन्त हुआ। कलकत्ते में १९०६ की आल-इंडिया सोशल कानफरेन्स में स्त्रियों को शिक्षा देने का प्रस्ताव उपस्थित करने का भार मुझे दिया गया था और मेरी वक्तृता की कुछ बातों का उन पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उन्होंने शीघ्रता में मुझे बड़े प्रेम-पूर्ण वाक्य लिखे। मैं अपने को ऐसी उदार प्रशंसा के सर्वथा अयोग्य समझती हूं पर मैं उन्हें यहाँ इसलिए उद्धृत करने का साहस करती हूं कि इन्हीं से हमारे भविष्य सम्बन्ध का श्री गणेश हुआ। उन्होंने लिखा, "क्या मैं अत्यन्त सम्मान और सच्चे प्रेमपूर्वक आपको बधाई देने की स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकता हूं? आपकी वक्तृता में अत्यन्त ऊंची श्रेणी के बुद्धिमत्तापूर्ण विचार की अपेक्षा अधिक विशेषता थी।...... घड़ी भर के लिये हम सब यही समझते थे कि हम किसी उच्च लोक में हैं।"

इस प्रकार प्रेमपूर्ण परिचय होने के बाद हमारी उनकी घनिष्ठ मित्रता होगई और मैं इसे अपने जीवन के परम सौभाग्य की बातों में से समझने लगी और यद्यपि कभी २ थोड़े काल के लिये हमारा उनका गहरा मत-भेद हो जाता था पर हमारी मित्रता वैसेही सुन्दर बनी रही। कभी कभी किसी विषय पर बड़ी बुद्धिमत्ता के साथ हमारा उनका वादानुवाद होता था और परस्पर मतभेद भी होता था। सब से बढ़कर विशेष बात यह थी कि मातृभूमि के लिये हमारे सामान्य प्रेम का बन्धन बड़ा दृढ़ था और कुछ काल के लिये केवल प्रेमपूर्ण पराधीनता का बन्धन रह गया जो बड़ा ही मर्मस्पर्शी और मधुर था। उनके कई सप्ताह तक विदेश में पीड़ित और दुःखित रहने की अवस्था में मैं भी उनको बहुत कम आराम दे सकी क्योंकि मेरा भी स्वास्थ्य अच्छा न था।

सन् १९०७ और १९११ के बीच में विशेष कर जब कभी मैं बम्बई जाती थी और मदरास, पूना और देहली में भी कई अवसरों पर मुझे कई बार उनसे मिलने का सौभाग्य हुआ। हर बार मिलने के बाद उनके हृदय से निकले हुए प्रभावशाली और उपदेशपूर्ण शब्द मेरे हृदय पर इस प्रकार अंकित हो जाते थे कि मैं भी भारतवर्ष की सेवा करने में अपने जीवन को उत्सर्ग करूं। उन अत्यन्त कार्यपूर्ण स्मरणीय वर्षों में भी जब उन्हें मेरी कविता या वक्तृता या मेरे किसी कार्य से प्रसन्नता होती अथवा मेरे बिगड़ते हुए स्वास्थ्य की उन्हें चिन्ता होती तो मुझे जब तब मेरा उत्साह बढ़ाने के लिये उन्हें एकाध प्रेमपूर्ण सँदेशा भेजने के लिये अवसर मिल जाता था।

चरित्र की जटिलता।

सन् १९१२ के आरम्भ में जब कलकत्ते में कुछ सप्ताह तक मैं अपने पिता के पास रही उसी समय हम लोगों में सच्ची मित्रता हुई।

उन्होंने कहा, "अभी तक मैं सर्वदा पक्षी के पर पकड़ने के समान तुम्हारी बातों ही से मोहित था पर अब मैं तुम्हारे सच्चे भाव को ग्रहण करने के लिये बहुत काल तक हृदय रूपी पिंजड़े में तुम्हें बन्द रक्खूंगा। इसी समय उनसे मेरा बहुत देर तक अत्यन्त सुखदायक वार्तालाप हुआ। मैं उनके सच्चे और अचल महत्व को समझने लगी और आश्चर्य करने लगी कि वे कैसे दृढ़ और उपयोगी उपायों द्वारा अपने महत्वपूर्ण व्यक्तित्व के परस्पर विरुद्ध गुणों का देशभक्ति के महान् कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिये सामञ्जस्य और एकीकरण करते हैं। इस महान् और विलक्षण प्रकृति के रहस्य को मनन करना मेरे लिये एक बहुमूल्य पाठ था। सारा संसार उन्हें जानता था और यह समझ कर उनका आदर करता था कि उनकी बुद्धि बड़ी ही सुन्दर, कुशाग्र और कुशल थी, वे राजनैतिक विषयों के भिन्न २ अंगों पर विचार करते थे और जटिल बातों के सुलझाने का प्रयत्न करते थे, व्यावहारिक बातों और अर्थ शास्त्र के अंकों पर उनका पूर्ण अधिकार था और वे उनका बड़ी सुन्दर युक्तियों द्वारा पूर्ण उपयोग करते थे, मतभेद होने पर भी कैसी सज्जनता और दृढ़ स्पष्टवादिता का परिचय देते थे, मेल करने पर वे कैसी धीरता और साहस दिखाते थे, वे कैसे बड़े आत्मसंयमी थे, कैसे वीर, दृढ़ और दूरदर्शी राजनीतिज्ञ थे। वे अपने नित्य जीवन में सरलता से रहते थे और बड़ा स्वार्थ-त्याग करते थे और बहुत सी बातें जो उनके हृदय में थीं उन्हें जानकर मालूम होता था कि वास्तव में वे कैसे आदमी थे। यद्यपि वे जन्म से बड़ी २ ऊँची बातों का स्वप्न देखा करते थे और स्वप्न देखने में चिन्ता, सन्देह में कष्ट और विश्वास में प्रसन्नता होने पर भी वे सारे संसार से हृदय से प्रेम करना चाहते थे और इस माया-मय और निराशापूर्ण संसार में सदा वास्तविक सत्य का खोज करते थे। मुझे ऐसा मालूम होता था कि बहुत काल तक उनके ब्राह्मण पूर्वजों की अत्यन्त प्राचीन शिक्षाप्रणाली और परम्परा के कारण उनमें सच्चे और परिश्रमी कार्यकर्ता और ऊँचे से ऊँचे स्वप्न देखनेवालों के गुण मिल गये थे। उनके ब्राह्मण पूर्वजों की अत्यन्त प्राचीन शिक्षा ने भगवद्गीता के भाव को निर्माण किया था और बतलाया था कि कर्मयोग ही सच्चा योग है। पर वे भी अपने पूर्वजों की इस वंशीगत की हद के पार न जा सके। यद्यपि वे सब मनुष्यों के साथ समता का व्यवहार करने के पूर्ण पक्षपाती थे फिर भी शायद बे-मालूम थोड़ा सा ब्राह्मणत्व का कट्टर अभिमान जो इस प्रश्न के उठाते ही कि प्राचीनकाल में ब्राह्मणों ने सब बातों पर एकाधिपत्य कर रक्खा था स्वाभाविक फूट पड़ता है उनमें छिपा हुआ था। यदि दुर्बलता शब्द का प्रयोग करना अनुचित न हो तो उनकी इस दुर्बलता का एक उदाहरण मुझे याद आता है। आल इंडिया सोशल कान-फरेन्स के एक अधिवेशन में जो १९११ के अन्त में कलकत्ते में हुआ था मैंने पतित जातियों के विषय में एक व्याख्यान देते हुए कहा था कि उनके साथ भी बराबरी का व्यवहार न करने और उन्हें उन्नति का अवसर न देने का मुख्य कारण प्राचीन अभिमानी ब्राह्मणों का अत्याचार था। मेरे पिता ने भी जो उस सभा में उपस्थित थे यह बात नोट की और उक्त शब्द व्यवहार करने के लिये उन्होंने व्यंगपूर्वक मेरा समर्थन किया। उन्हें इससे प्रसन्नता भी हुई और अपने अधिकार का भी स्मरण आया। पर मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि मि० गोखले ने 'अभिमानी' (arrogant) शब्द के व्यवहार को प्रायः व्यक्तिगत आक्रमण समझा। उन्होंने निन्दा के भाव से कहा, 'निस्सन्देह यह एक वीरता-पूर्ण और सुन्दर वक्तृता थी पर कभी कभी आप बड़े कटु और साहसपूर्ण पद प्रयोग करती हो।" थोड़ी देर बाद एक ऐसे ही मिलते जुलते विषय पर वादानुवाद करते हुए उनके मुँह से

निकला "तुम में अपूर्व विशेषता होने पर भी मुख्यतः हिन्दू भाव भरा हुआ है। तुम माया से आरम्भ और मोक्ष पर समाप्त करती हो" मैंने जरा चौंक कर उत्तर दिया "मैं यह कब कहती हूं कि मैं हिन्दू नहीं हूं।" इन्हीं दिनों में देश के भविष्य के सम्बन्ध में भी उनसे विशेषरूप से बातें हुईं। एक दिन प्रातःकाल साधारणतः राष्ट्रीय बातों के सम्बन्ध में वे कुछ निराश और खिन्न थे और छूटते ही उन्होंने मुझ से पूछा, "भारतवर्ष के सम्बन्ध में तुम्हारी क्या सम्मति है?" मैंने उत्तर दिया कि "मुझे तो मङ्गल होने की आशा है।" फिर बोले, "सन्निकट भविष्य के सम्बन्ध में तुम्हारा क्या मत है?" मैंने विश्वास पूर्वक प्रसन्न होकर कहा, "पाँच वर्ष के भीतर २ हिन्दू मुसलमानों में एका हो जायगा।" उन्होंने उदास होकर कहा, "तुम लड़कों की सी बातें कहती हो। तुम कवि हो और बहुत अधिक आशा करती हो। तुम्हारे या मेरे जीवन में तो एका होगा नहीं। पर अपना विश्वास बनाये रक्खो और भर सक इसके लिये यत्न करो" सन् १९१२ के मार्च में बम्बई में सर फीरोजशाह मेहता ने रायल कमीशन के मेम्बरों को एक अच्छी दावत दी थी। वहां कुछ मिनट तक उनसे मेरी बातें हुईं। मैंने उसी समय एक काव्यग्रन्थ प्रकाशित किया था। मेरे सौभाग्य से उस पर लोगों का कुछ ध्यान आकर्षित हो रहा था और लोग उसकी प्रशंसा कर रहे थे। मि० गोखले से थोड़ी देर तक जो मेरी बातें हुईं उनसे उनका दुःख और अविश्वास का भाव प्रकट होता था और उन्होंने पूछा, "क्या लपट अब भी जोर से बल रही है?" मैंने उत्तर दिया, "पहले से भी अधिक जोर से बल रही है।" पर उन्होंने संदेह प्रकट करके और कुछ तेजी से सिर हिलाया और गुड़गुड़ा कर कहा, "मुझे आश्चर्य है कि कितने दिनों तक कि इस बेहद प्रसन्नता और सफलता के तूफान में यह लपट जलती रहेगी।"

भारतवर्ष की सेवा का सौभाग्य।

एक सप्ताह बाद २२ मार्च को लखनऊ में मुसलिम लीग के स्मरणीय अधिवेशन में मुझे उपस्थित होने और व्याख्यान देने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। यह अधिवेशन यह नया नियम स्वीकृत करने के लिये हुआ कि राष्ट्रीय हित और उन्नति की बातों में हिन्दू और मुसलमान दोनों मिलकर कार्य करें। इस नियम को पुराने और नये मुसलमान राजनीतिज्ञों ने एकमत होकर स्वीकार किया और इससे भारतवर्ष की आधुनिक राष्ट्रीय बातों के इतिहास में एक नया युगान्तर उपस्थित हुआ और एक नया आदर्श उत्पन्न हुआ।

लखनऊ से मैं प्रायः कहीं भी रुके बिना सीधी पूना रवाना हुई। वहाँ २५ ता० को पहुंची और २८ ता० के प्रातःकाल में फर्गुसन कालेज से माननीय मि० परांजपे के साथ सर्वेंट्स् आफ इंडिया सोसाइटी को गई। मैंने इंडियन नेशनल कांग्रेस के जगत्प्रसिद्ध नेता को दुर्बल और अपने उसी पुराने रोग से पीड़ित देखा पर वे उन अखबारों को देखने में व्यस्त थे जो मुसलिम लीग और उसके नये आदर्शों के सम्बन्ध में टीका टिप्पणियों से भरे हुए थे। जब उन्होंने मुझे देखा तो आगे हाथ बढ़ा कर जोर से कहा "वाह, क्या तुम मुझे यह कहने आई हो कि तुम्हारा मत ठीक था?"...और वे मुझ से बेर बेर बड़ी उत्सुकता और अधीरता के साथ पूछने लगे कि इस कानफरेन्स का आन्तरिक भाव क्या था। मैंने उन्हें विश्वास दिलाया कि जहाँ तक कम से कम जवान लोगों का सम्बन्ध है वहां तक राजनीतिज्ञ चाल ही की दृष्टि से नहीं किन्तु यह उनके सच्चे विश्वास और उच्चतर और महान् राष्ट्रीय उत्तरदायित्व के बढ़ते हुए ज्ञान का फल है कि वे ऐसे खुले मन और उदारता से हिन्दुओं से मेल करने के लिये कटिबद्ध हुए हैं। यह कह कर मैंने यह आशा

प्रकट की कि अगली कांग्रेस यदि अधिक नहीं तो कम से कम इतनी उदारता तो अवश्य दिखा-वेगी। मेरी बातें सुनकर उनका थका हुआ और कष्ट से कुम्हलाया हुआ चेहरा प्रसन्नता से दमदमा उठा। उन्होंने उत्तर दिया, "जहाँ तक मेरी शक्ति में है, ऐसा ही किया जायगा।" घंटे भर बाद मैंने देखा कि ऐसी दूर से आकर मैंने उन्हें जो हर्षसंवाद सुनाया उसके जोश से वे थक गये थे पर लौटते समय उन्होंने इस बात का आग्रह किया कि मैं सन्ध्या को फिर मिलूं। जब संध्या को मैं फिर सर्वेंट्स् आफ इंडिया सोसाइटी को गई तो मैंने मि० गोखले को विचित्र रूप से परिवर्तित पाया। वे गंभीर, हँसमुख और उनका चेहरा कुछ पीला था पर सुबह की तरह कोई चिन्ता या निराशा का चिन्ह दिखाई नहीं देता था। जब वे मुझे सीढ़ियों पर ऊपर लेजाने को उद्यत हुए तो मैं प्रायः काँप उठी और बोली, "यह क्या! निस्सन्देह आप इन सब सीढ़ियों पर नहीं चढ़ सकते। आप बहुत बीमार हैं।" वे हँसे और बोले, "तुमने मुझमें नई आशा का सञ्चार कर दिया है। अब जीवन संग्राम में लड़ने और काम करने के लिये मुझ में बल आ गया है।" थोड़ा देर बाद चौड़े बरामदे में जहाँ से सूर्यास्त के समय की पहा-ड़ियों और घाटियों का दृश्य शान्त मालूम होना था उनकी एक बहिन और दो सुन्दर कन्याएँ आगईं और हम लोगों ने आपस में सुन्दर बातें कीं। एकमात्र वही और पहली बार मुझे इस एकाकी और त्यागी देशभक्त के गार्हस्थ्य जीवन का दृश्य दिखाई पड़ा। उनके चले जाने के बाद हम छिटकी हुई चाँदनी में शान्तिपूर्वक बैठ गये। फिर मि० गोखले के स्वर्णमय स्वर ने आन्तरिक हृदय से निकल कर स्वर्णमय शब्दों द्वारा ऐसा महान्, ऐसा गम्भीर और ऐसा उत्साहवर्द्धक उपदेश दिया कि अबतक उसका प्रभाव मुझपर कम नहीं हुआ है। उन्होंने भारत-वर्ष की सेवा करने के असीम सौभाग्य और सुख और स्वत्वों की बात कही। उन्होंने कहा, "मेरे साथ खड़ी होजाओ। ये तारे और पहाड़ियां तुम्हारे साक्षी हैं। इनके सामने जन्मभूमि के लिये अपना जीवन और अपनी योग्यता, अपना संगीत और अपनी वक्तृता, अपने विचार और अपना स्वप्न उत्सर्ग करो। हे कवि, पहाड़ की चोटियों से देश की दशा देखो और घाटियों में परिश्रम करनेवाले किसानों और मज़दूरों में आशा का सँदेसा फैलाओ।" जब मैं उनसे बिदा हुई तो उन्होंने हर्षसंवाद लानेवाले इस विनीत हरकारे से कहा, "तुमने मुझे नई आशा, नया विश्वास और नया साहस प्रदान किया है। आज रात को मैं खूब चैन से सोऊँगा।"

सम्पादकीय टिप्पणियां।

नया एक्ट।

जितने एक्ट अबतक वर्तमान थे उनसे सर्वसाधारण की रक्षा का होना असंभव था। इस ख्याल से कानून रचनेवालों ने एक नया एक्ट पब्लिक से फटी बिल "सर्वसाधारण की रक्षा का बिल" बना दिया है। इसके संबन्ध में कहा गया है कि इङ्गलैंड में ऐसा ही एक कानून है और उसी के आधार पर यह बनाया गया है। हम जानते हैं कि इङ्गलैंड के बड़े बड़े पुरुष वहां जो एक्ट है उसका विरोध कर रहे हैं। और आज नहीं तो कल उसमें परिवर्तन होगा और वह रद्द होगा किन्तु भारत में ऐसा हो सकेगा यह सोचना ही कठिन मालूम होता है। एक बात और है, वहां कानून युद्ध तक ही कानून रहेगा किन्तु यहां पर युद्ध समाप्त होने के ६ मास बाद तक।

यह क्यों ?

इसका जवाब हम देना नहीं चाहते किन्तु इतना कह देना हम अवश्य चाहते हैं कि ऐसा कदाचित इसी कहावत को चरितार्थ करने के लिए किया गया है कि पूर्व पूर्व है और पश्चिम पश्चिम।

बिना मेघ के बिजली।

अमृत का प्याला होठों से लगने ही को था कि मदान्धों ने उसे छीन लिया। ६ वर्ष से जिस स्वाती की बूँद के लिए हम लोग लौ लगाये बैठे थे, पिछले मास में ही जिसे हम कंठगत समझ चुके थे वह कार्यकारणी कौंसिल कर्ज़न-मेकडानल दल की करतूत से हम लोगों को नहीं मिली।

क्यों ?

क्योंकि जो आजतक man on the spot स्थानीय मनुष्य" में विश्वास के सिद्धान्त वाले थे अपनी इच्छा के विरुद्ध काम होते देख अपने सिद्धान्त को छोड़ बैठे हैं। इनकी समझ में लार्ड हार्डिंज की अपेक्षा लार्ड कर्ज़न सर जेम्स मेस्टन की अपेक्षा ह्युएट और मेकडानल और लार्ड क्रू की अपेक्षा लार्ड लैन्डसडाउन भारत को और विशेष कर संयुक्तप्रान्त को अधिक समझते हैं और इसलिए इन लोगों की सम्मति अधिक आदरणीय है। यह भी विष के रूप में अमृत ही समझना चाहिये। युद्ध के समय किसी प्रकार के आन्दोलन के हम विरुद्ध थे। हम चाहते थे कि साम्राज्य की समस्त शक्ति युद्ध में लगी रहे, किसी प्रकार का वितंडाबाद न उठे किन्तु हमारे लार्डों को यह पसन्द नहीं, वे यह नहीं चाहते कि पिछड़े हुए संयुक्तप्रान्त के निवासी आन्दोलन से अलग रह कर उसकी शक्ति को भूल जांय। अच्छा है युक्तप्रान्त के निवासियों को उचित है कि वे घोर आन्दोलन आरंभ करें, साथ ही लार्ड क्रू और उनके दलवालों का काम यह होना चाहिये कि बिषैले सर्प के रहे सहे बिषदन्त को भी वह तोड़ दे। सुधार और उन्नति का विरोध करना इनके प्रकृतगत है, इनसे भलाई की आशा नहीं इसलिए इनके हाथ पैर बाँध इन्हें शक्तिहीन कर छोड़ना ही साम्राज्य के लिए हित है।

गेहूं की रवानगी।

गेहूं का एक प्रकार से देश में काल सा पड़ रहा है। मँहगी के कारण चारों ओर लोग दुःखी हैं। सरकार की दृष्टि से यह छिपा नहीं है और यह प्रसन्नता की बात है कि वह इस ओर ध्यान दे रही है। उसने अन्न का व्यापारियों द्वारा बाहर भेजा जाना बन्द कर दिया है और अब उसने इस काम को अपने हाँथ में ले लिया है। इससे हमारी समझ में इतना ही लाभ होगा कि व्यापारी जो मुनाफा उठाते

थे न उठा सकेंगे और उनके स्थान पर कुछ मुनाफा सरकार उठालेगी। यह अच्छी बात है और हम आशा करते हैं कि इस मुनाफे की रकम को सरकार कृषकों की सहायता में ही व्यय करेगी। इस सम्बन्ध में कुछ कहना व्यर्थ है किन्तु हम चाहते यह थे कि सरकार ऐसा प्रबन्ध करे कि जब तक देश के प्रत्येक निवासी को भोजन के लिए अन्न न मिल जाय तब तक उसका एक दाना भी बाहर न भेजा जाय।

अबकी बार व्यवस्थापक कौंसिल में सदा की भाँति कितने ही उपयोगी प्रस्ताव उपस्थित किये गये। श्रीमान् मालवीय जी ने कितने ही बड़े बड़े स्वप्न देखे। उन्होंने प्रस्ताव किया था कि सरकार देश की औद्योगिक उन्नति के लिए १२ लक्ष अलग कर दे। उन्होंने कहा था कि गेहूं तबतक बाहर न भेजा जाय जब तक देश में वह ६, १० सेर का न बिकने लगे और भी कितने ही प्रस्ताव उन्होंने किये किन्तु सब की दशा हुई वही जो परम्परा से होती आई है।

नेताओं का मतिभ्रम।

सब से मार्के की बात अब की बार कौंसिल में हमारे प्रतिनिधियों ने दिखलाई। माननीय रायनिगर ने यह प्रस्ताव उपस्थित किया था कि देश के समस्त उच्चकक्षा स्कूलों में शिक्षा का माध्यम देशीभाषाएं रखी जाँय। कहना नहीं होगा कि यदि यह प्रस्ताव स्वीकृत हो जाता तो देश का शीघ्र ही भाग्योदय हो जाता। यह किसी से छिपा नहीं है कि विदेशी भाषा के द्वारा शिक्षा देने से विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करने में वास्तविक उन्नति नहीं कर सकता। उसकी मानसिक शक्ति की वृद्धि की अपेक्षा उसके रटने और स्मरण करने की शक्ति पर अधिक दबाव पड़ता है और उसकी प्राकृतिक बुद्धि एक तरह से बिलकुल मर सी जाती है। संसार में एक भारतवर्ष ही ऐसा देश भी है जहां शिक्षा का यह विचित्र क्रम जारी है और सभी लोगों की दृष्टि में यह हानिकर है। हम समझे थे कि सब उपयोगी प्रस्तावों की भाँति इसका भी सरकारी सदस्यों की ओर से विरोध किया जायगा और रद्दी के टोकरे में इसे भी स्थान मिलेगा किन्तु पाठकों को सुनकर आश्चर्य होगा कि सरकारी मेम्बर मि० बटलर तो इसके पक्ष में थे और विरोध करनेवाले सब हमारे भाई ही थे और उनके नायक थे माननीय सुरेन्द्र बाबू। प्रस्ताव के पक्ष में तीन मनुष्य थे मि० बटलर, मा० मालवीय और राजा खुशालपाल सिंह।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग, में बद्रीप्रसाद पाण्डेय के प्रबन्ध से छपकर प्रकाशित हुई।

भाग ९] अप्रैल सन् १९१५-वैशाख [संख्या ४

चेतावनी।

[लेखक-श्रीयुत श्रीशंकर याज्ञिक ।]

(१)

धर्म कर्म का नाश हुआ है आर्यवर्त में।
वर्षों से हम पड़े हुए हैं दुःखगर्त में॥
खोकर जात्यभिमान आज हम भ्रष्ट हुए हैं।
इतनी ही है कसर नहीं हम नष्ट हुए हैं॥

(२)

कहां गया वह देश-प्रेम वह मेल कहां है।
कहां गया वह अचलनेम सुख बेल कहां है॥
कहां हमारा वीर्य हमारा मान कहां है।
कहां हमारी कला हमारा ज्ञान कहां है॥

(३)

जगत व्याप्त व्यापार कभी जो हम थे करते।
खोकर उसको हाय आज हम भूखे मरते॥
जिस भारत के वस्त्र कभी थे बाहर जाते।
वहीं विदेशी वस्त्र आज हैं पहने जाते॥

(४)

पराधीन हम बने हुए हैं सभी तरह से।
अंधकूप में गिरे हुए हैं सभी तरह से॥
खो बल-पौरुष आज हुए हैं शक्ति-हीन हम।
निज स्वत्वों को भूल बने हैं बलीवर्द सम॥

(५)

किन्तु उठो अब समय तुम्हारा फिर है आया।
यूरोप भर में भारत का है गौरव छाया॥
नया शक्ति-सञ्चार देश में हुआ आज है।
मानो इसने सजा आज उत्कर्ष साज है॥

(६)

हर्षित हो तुम, उठो बन्धु अब सोते क्या हो।
मिलो गले से करो ऐक्य अब रोते क्या हो॥
करो नित्य यह यत्न सभी तुम तन मन धन से।
हो भारत-उद्यान पूर्ण सद्भाव सुमन से॥

अमेरिका के विश्वविद्यालय ।

[लेखक—श्रीयुत शिवनारायण द्विवेदी ।]

प्रत्येक देश की उन्नति और अवनति का आधार विशेषकर उस देश की शिक्षा-पद्धति ही होती है। किसी देश की जब अन्य देशों के संसर्ग से उन्नति होने लगती है, तब उस देश की दृष्टि दूसरों की उन्नत शिक्षा, व्यवहार और व्यापार पर जाती है। यदि उस देश की उन्नति वास्तविक और योग्य है तो उसका अनुकरण धीरे २ सब करने लगेंगे। किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि अनुकरण सदा अच्छा ही होता है, क्योंकि बहुत बार अनुकरण अन्धश्रद्धा पर भी हुआ करता है। दूसरे ऐसे देशों की उन्नति इतनी धीरे २ होती है कि वह 'कुछ नहीं' सी मालूम हुआ करती है। जिस प्रकार आकाशस्थ हज़ारों तारों का किसी को पता नहीं है और उनका प्रकाश सैकड़ों वर्ष में पृथ्वी पर आकर पहुंचता है, उसी प्रकार किसी देश की 'उन्नति' का शब्द जब हमारे कानों में पहुंचता है उस समय उस देश की उन्नति में बहुत समय लग जाता है।

शिक्षापद्धति के विषय में भी यही बात कही जा सकती है। किसी विश्वविद्यालय की विशेष प्रसिद्धि ही उसकी उत्तम शिक्षा की सनद नहीं है। क्रिया और प्रसिद्धि का विशेष सम्बन्ध है, किन्तु क्रिया से ही प्रसिद्धि होती है। प्रसिद्ध विश्वविद्यालयों का अनुकरण जैसे का तैसा कर लेने से हमें लाभ नहीं पहुंच सकता, किन्तु उनकी आन्तरिक स्थिति और हानि-लाभ को देखकर अपने देश काल के अनुकूल बातों को छाँट लेना ही बुद्धिमत्ता है। इस समय केम्ब्रिज और आक्सफर्ड के विश्वविद्यालय बहुत प्रसिद्ध हैं। किन्तु उन्होंने जो उन्नति इस समय तक की है वह बहुत बड़े परिश्रम और देशभक्ति का फल है।

इस समय अमेरिका के विश्वविद्यालय संसार के सब विश्वविद्यालयों से उत्तम हैं। यह राय बहुत बारीक़ जाँच करनेवालों की है। किन्तु अबतक यह कीर्ति संसारव्यापिनी नहीं हुई, इसमें विश्वविद्यालयों का कोई दोष नहीं है। जिस प्रकार शिक्षा के लिए उन्नीसवीं शताब्दी में इङ्गलैंड और बीसवीं में जर्मनी सर्वश्रेष्ठ रहा, उसी प्रकार से इक्कीसवीं शताब्दी में अमेरिका सर्वश्रेष्ठ रहेगा। संसार भर के सब देशों में अमेरिका जवान देश है—वहां की सब प्रकार की उन्नति बहुत शीघ्रतापूर्वक हो रही है; और शिक्षा का भी यही हाल है।

संसार भर के विश्वविद्यालय अपने सामने जिन उद्देश्यों को रख कर काम करने लगे हैं वे चार भागों में बाँटे जा सकते हैं:—(१) केवल सत्य की खोज करना; (२) संसार में सदाचार और विद्वत्ता का प्रसार करना; (३) सभ्य, शिक्षित और संस्कृत (cultured man or gentleman) मनुष्य बनाना; (४) लोगों को उदरपूर्ति के मार्ग पर लगाना। प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्रज्ञ मि० थ्विग का कथन है कि पहिले भाग की शिक्षा जर्मन विश्वविद्यालयों में दी जाती है; अमेरिका के विश्वविद्यालय पहिले और दूसरे भाग की शिक्षा देते हैं; अंगरेज़ी विश्वविद्यालय तीसरे भाग की शिक्षा देते हैं और चौथे भाग की शिक्षा जापानी विश्वविद्यालयों में दी जाती है। प्रत्येक देश के विश्वविद्यालयों ने अपने २ उद्देश की पूर्ति के लिए शिक्षणपद्धति के विशेष २ तत्वों का अवलम्बन किया है।

अमेरिका की सरकार ने मि० थिंवग को संसार के सब विश्वविद्यालयों को देखने के लिए भेजा था। उन्होंने सब विश्वविद्यालयों का निरीक्षण करके "Universities of the world." नामक पुस्तक लिखी है। पुस्तक के प्रारम्भ में उन्होंने लिखा है कि—"सब देशों से जर्मनी के विश्वविद्यालय के उत्तम होने के कारण प्रतिवर्ष हज़ारों अमेरिका के विद्यार्थी जर्मनी जाते थे किन्तु आज अमेरिका के विश्वविद्यालय जर्मनी का मुक़ाबिला करते हैं, इसलिए अब अमेरिका के विद्यार्थियों को जर्मनी जाने की आवश्यकता नहीं है।" सम्पत्ति और प्रसिद्धि में आज भी जर्मनी का 'बर्लिन विश्वविद्यालय' और फ्रांस का 'पेरिस विश्वविद्यालय' अधिक सम्मानित है। किन्तु अमेरिका के विश्वविद्यालय सम्पत्ति, उपकरण और शिक्षा में अब अधिकाधिक उन्नति करते जाते हैं। अमेरिका के कई विश्वविद्यालय सम्पत्ति में पेरिस और बर्लिन के विश्वविद्यालयों से अधिक हैं।

अमेरिका के विश्वविद्यालयों की स्थापना जर्मन विश्वविद्यालयों के आधार पर की गई थी; किन्तु आवश्यक परिवर्तन होते रहने के कारण अब जर्मन और अमेरिकन विश्वविद्यालयों में बहुत कम सादृश्य है। जर्मन विश्वविद्यालयों की शिक्षा का मूल स्वेच्छाचरण पद्धति (Elective System) है। अंगरेज़ी विश्वविद्यालयों में अनिवार्य शिक्षा विशेष है, ये विश्वविद्यालय विशेष शिक्षा देने की अपेक्षा परीक्षा लेने का काम अधिक करते हैं। किन्तु जर्मन विश्वविद्यालय शिक्षा देना अपना कर्तव्य समझते हैं। अमेरिका के विश्वविद्यालय जर्मन विश्वविद्यालयों के समान शिक्षा देते हैं और उन्होंने स्वेच्छाचरण पद्धति की बहुत उन्नति की है। यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि यूरोप के अधिकांश विश्वविद्यालय श्रीमानों, धनवानों और राजाओं के लिए हैं। किन्तु अमेरिकन विश्वविद्यालय प्रजासत्तात्मक राज्यपद्धति के कारण ग़रीबों और प्रजा के लिए हैं। दूसरे देशों में शिक्षित बननेवाले विश्वविद्यालयों में जाते हैं, किन्तु अमेरिकन विश्वविद्यालय स्वयं लोगों के पास जाते हैं। दूसरे देशों के विश्वविद्यालयों का अपने देश की बातों की ओर अधिक लक्ष्य नहीं रहता किन्तु अमेरिकन विश्वविद्यालयों में अपने देश की बातों की ओर ही अधिक लक्ष्य रहता है।

अमेरिकन विश्वविद्यालयों के दरवाज़ों में पांव रखते ही एकता का साम्राज्य दृष्टिगोचर होता है। 'Campus' शब्द सुनते ही अमेरिका के विद्यार्थियों का मुख आनन्द से खिल उठता है। अपने विश्वविद्यालयों के चारों ओर का घेरा (Campus) विद्यार्थियों को अपने घरों से भी अधिक प्रिय जान पड़ता है। वहां विद्यार्थियों को प्रत्येक प्रकार का सुख पहुंचाने का पूरा यत्न किया जाता है। विद्यार्थियों के विश्राम-भवन, वाचनालय, क्रीडागृह, वस्तुसंग्रहालय आदि अनेक प्रकार के बने रहते हैं। केवल विश्वविद्यालय ही में शिक्षा पाकर विद्यार्थी का जीवन वास्तविक जीवन बन जाता है। बहुत से विद्यार्थी वहां प्रातःकाल आठ बजे जाते हैं और रात्रि के दस बजे घर लौटते हैं। सात आठ हज़ार विद्यार्थी एकत्रित होकर अपने समय को कैसे आनन्द में बिताते हैं, इसकी कल्पना भी भारत के विद्यार्थी नहीं कर सकते।

भारत के विश्वविद्यालयों में परीक्षा प्रधान किन्तु शिक्षा गौण है। भारत में कलकत्ता, मद्रास, प्रयाग, बम्बई और लाहौर में विश्वविद्यालय हैं और इनमें कई को स्थापित हुए भी पचास साठ वर्ष हो चुके। किन्तु अबतक किसी अध्यापक या विद्यार्थी ने कोई आविष्कार या खोज का काम नहीं किया है। यदि थोड़ी देर के लिए भारतवासियों को मूर्ख भी मान लें तो हमारे यहां अंगरेज़ अध्यापकों की भी कमी नहीं है। पर किसी अंगरेज़ अध्यापक ने सौ

कोई आविष्कार नहीं किया। इसका कारण यही है कि हमारे यहां परीक्षा का प्रमाणपत्र देखा जाता है, विद्या और योग्यता नहीं। किन्तु सत्यान्वेषण का त्याग करना विश्वविद्यालयों के नाम के विरुद्ध और निन्द्य है। अमेरिकन विश्वविद्यालयों में परिश्रमी, खोजी और विशेषज्ञ हुए बिना कोई प्रोफ़ेसर नहीं बन सकता। उनके नाम के पीछे पदवियों के अक्षरों की चाहे जितनी पंक्तियाँ हों किन्तु वे प्रथम शिक्षक (Instructor) और फिर अपनी शोध विद्या के अनुसार उपाध्याय और अनन्तर अध्यापक नियत होते हैं।

कालेजों के एकीकरण से अमेरिकन विश्वविद्यालय शक्ति के केन्द्र बन गये हैं। इस व्यवस्था में खर्च कम और लाभ अधिक है। हमारे देश में कालेजों के पृथक्करण के कारण अधिक विषयों की शिक्षा भी नहीं दी जासकती और ख़र्च भी अधिक होता है। हमारे यहां के विश्वविद्यालयों में चार पाँच विषयों की शिक्षा दी जाती है किन्तु अमेरिका के प्रत्येक विश्वविद्यालय में :—

1. College of Arts and Sciences 2. College of Education, 3. College of Social Sciences, 4. College of Engineering. 5. College of Mines, 6. College of Chemistry, 7. College of Agriculture, 8. College of Law, 9. College of Commerce, 10. College of Medicine, 11. College of Pharmacy, 12. College of Dentistry, 13. Graduate School, 14. University Extension Dept. 15. College of Forestry, 16. Dept. of Biology and Geology, 17. School of Politics, 18. College of Philosophy इन विषयों की शिक्षा दी जाती है। किन्तु हमारे यहां चार पाँच विषयों को छोड़कर अधिक विषयों की शिक्षा नहीं दी जाती।

अमेरिका के प्रत्येक कालेज से "University Studies नामक मासिक और त्रैमासिक पत्र निकलते हैं; किन्तु हमारे यहां के विश्वविद्यालयों से ऐसा नियमित कोई भी पत्र नहीं निकलता। इन पत्रों में वहां के विद्यार्थियों और अध्यापकों के आविष्कारों का वर्णन रहता है। ऐसे पत्रों के विषय ३० से ८० तक रहते हैं। इसके अलावा वहां विद्यार्थियों के सम्पादकत्व में कई मासिक, साप्ताहिक और दैनिक पत्र तक निकलते हैं। केवल विश्वविद्यालय के समाचारों के ही कई दैनिक पत्र निकलते हैं, इससे वहां के विश्वविद्यालयों के विस्तार की कल्पना की जा सकती है।

प्रत्येक विश्वविद्यालय के घेरे Campus में बीस से तीस तक इमारतें बनी होती हैं। उन में शिक्षक, उपाध्याय और विद्यार्थी रहते हैं। प्रत्येक विश्वविद्यालय में ६००० विद्यार्थियों के पढ़ाने के लिए ८०० अध्यापक होते हैं, अर्थात् नौ दस विद्यार्थियों पर एक शिक्षक होता है, इसीलिए अमेरिका के शिक्षक भारत के शिक्षकों से अधिक काम करते हैं और वहां के विद्यार्थी अच्छी तरह अध्ययन करते हैं। अमेरिका के सब प्रोफेसर सप्ताह भर में १६ से २४ घंटे तक पढ़ाते हैं और बाकी समय खोज, आविष्कार और विद्या की बृद्धि में लगाते हैं। भारत वर्ष के कालेजों के दरवाज़े बी० ए० और एम० ए० के विद्यार्थियों के लिए दो तीन घंटे से अधिक नहीं खुलते किन्तु उच्च शिक्षा वाले विद्यार्थियों के लिए अमेरिकन कालेजों के दरवाज़े प्रातःकाल आठ बजे से रात्रि के दस बजे तक खुले रहते हैं। विद्यार्थियों को भोजन बहुधा कालेजों में ही पहुंचा करता है। 'विद्या रुपये के बदले में बेची नहीं जा सकती, यह भारत का प्राचीन सूत्र है, किन्तु इस समय इसे अमेरिका ने सार्थक किया है। अमेरिका में अध्यापकों को वेतन नहीं बल्कि भेंट दी जाती है। अमेरिका के अध्यापकों के परिश्रम के अनुसार उन्हें बहुत

कम भेंट मिलती है। भारत और अमेरिका के खर्च में ज़मीन आसमान का फर्क है। भारत में एक विद्यार्थी साधारण तौर पर १५) रु० मासिक में अपना निर्वाह भलीभांति कर सकता है किन्तु अमेरिका में कम से कम ७०) रु० मासिक में निर्वाह किया जा सकता है। इतनी खर्च की अधिकता होने पर भी अध्यापकों को अधिक से अधिक १२५०) रु० मासिक मिल सकता है, किन्तु भारत में एक कालेज के प्रिन्सिपल का मासिक वेतन २०००) रु० तक हो सकता है। इससे जाना जा सकता है कि भारतीय विश्वविद्यालय खर्च अधिक करते हैं किन्तु काम वहां के अंशांश के बराबर भी नहीं होता।

अमेरिका में विश्वविद्यालयों को वार्षिक फ़ीस ६५) रुपये से अधिक नहीं होती किन्तु भारत में सरकारी कालेजों की फ़ीस वर्ष में सवा सौ रुपया होजाती है। अमेरिका में प्रति सैकड़े तीस, चालीस विद्यार्थियों की फ़ीस माफ हो जाती है और वे शिक्षा मुफ्त पाते हैं, किन्तु भारत में प्रति सैकड़े तीन गरीब विद्यार्थियों को भी फीस माफ करके शिक्षा नहीं दी जाती।

वर्ष में केवल ६५) रु० लेकर वहां के विश्वविद्यालय विद्यार्थियों को बहुत सुख देते हैं। प्रायः सभी विश्वविद्यालयों में विद्यार्थियों के के लिए एक 'Social Club House' नामक संस्था होती है। उसमें दोपहर को भोजन करने और अपने मित्रों के साथ बैठकर प्रत्येक विषय की चर्चा करने के लिए अलग अलग स्थान मिलता है। प्रत्येक मकान में पानी पीने के लिए आरोग्यनिर्झर (hygeieuic fouutains) शौचकूप, और हाथ धोने के लिए गरम पानी के नल लगे रहते हैं। प्रत्येक नल के पास साबुन और साफ तौलिया रक्खा रहता है। विद्यार्थियों के लिए पुस्तकों और सामयिक पत्रों का भी प्रबन्ध रहता है। हम जानते हैं कि अमेरिका जैसे व्ययप्रधान देश में विद्यार्थियों को इतना आराम पहुंचाने में वर्षभर की ६५) रु० की फीस पूरी होजाती होगी और इसहिसाब से शिक्षा मुफ्त के बराबर होगई। पर भारत में क्या है ?

अमेरिकन विश्वविद्यालयों के पुस्तकभाण्डार साधारण नहीं हैं। प्रत्येक पुस्तकालय की पुस्तकों की संख्या दो लाख से आठ लाख तक है। सामयिक पत्रों की संख्या प्रतिमास एक हज़ार से चार हज़ार तक रहती है। पुस्तकालय इस प्रकार सज्जित रहते हैं कि एक समय में सात सौ विद्यार्थी बैठकर शान्तिपूर्वक पुस्तकें पढ़ सकें। रात्रि के दस बजे तक बैठकर विद्यार्थी वहाँ अपनी ज्ञानपिपासा बुझा सकते हैं। इसके अलावा Seminor Room नामक भिन्न गृह भी बने होते हैं, जिनमें बैठकर दस पाँच विद्यार्थी किसी विशेष विषय पर विचार कर सकते हैं। इस प्रकार विद्यार्थी अपने पठन विषय का अभ्यास भी कर सकते हैं। प्रत्येक विश्वविद्यालय का डाकखाना अलग होता है और प्रत्येक विद्यार्थी को चिट्ठियों का लेटरबक्स भी जुदा २ होता है। उन लेटरबक्सों में विद्यार्थियों के पत्र और उन विद्यार्थियों के विषय में रजिस्ट्रार के पत्र डाल दिये जाते हैं। विद्यार्थी दोनों समय अपने बक्स खोलकर पत्र निकाल लाते हैं।

आधुनिक शिक्षणोपयोगी सामग्रियों से सजाया हुआ एक २ कमरा विद्यार्थियों को दिया जाता है। इसमें विद्यार्थी अपनी पुस्तकें और कालेज के कुछ कपड़े तथा थोड़ी सी और चीज़ें रखते हैं। शिक्षा के अनन्तर स्नान करने की भी प्रथा है, इसीलिए प्रत्येक कमरे के साथ स्नानागार बना होता है। एक समय में डेढ़ सौ विद्यार्थी स्नान कर सकते हैं। स्नानागार में ठंडे और गरम जल के नल, साबुन, तौलिया,

शीशा और कंघा आदि आवश्यक चीज़ें रक्खी रहती हैं। विश्वविद्यालयों में विद्यार्थियों का इलाज भी मुफ़ किया जाता है। ऐसे विश्व-विद्यालय होने पर क्या वे घर से अधिक प्रिय नहीं हो सकते?

अमेरिकन विश्वविद्यालयों में विद्यार्थियों की आरोग्यता पर जितना अधिक ध्यान दिया जाता है, उतना संसार के किसी विश्वविद्या-लय में शायद ही दिया जाता हो। विश्वविद्या-लय में प्रविष्ट होते ही सब से पहले विद्यार्थी की आरोग्यपरीक्षा (Medical examination) होती है। इस परीक्षा में उसके घर वालों की आरोग्य-विषयक बातें तक मालूम की जाती हैं, विशेष करके पैतृक रोगों की बहुत जाँच की जाती है। प्रत्येक अंग और अवयव की बहुत बारीक परीक्षा की जाती है। फेंफड़े, छाती, आँख आदि अवयवों की परीक्षा यन्त्रों की सहायता से की जाती है। इसके अनन्तर जो अवयव दूषित हों उन्हें सुधारने के लिए एक व्यवस्थापत्र और पुस्तक दी जाती है। इस परीक्षा के बाद विद्यार्थियों को आरोग्यता विषय पर कुछ व्याख्यान सुनने पड़ते हैं। व्याख्यान में प्रत्येक इन्द्रियों के गुण-दोष और उनका उपयोग और दुरुपयोग समझाया जाता है। प्रत्येक विद्यार्थी को व्यायाम अवश्य करना पड़ता है। अमेरिकन विद्यार्थियों को सैनिक शिक्षा भी दी जाती है, किन्तु विदेशी विद्या-र्थियों के लिए इसका कुछ नियम नहीं है। अमेरिका में भवन-सजाने की एक स्वतंत्र विद्या है; यह विद्या वहां जितनी उन्नति पर पहुंच गई है वह हम लोगों की कल्पना से भी दूर है। यदि किसी को सदेह स्वर्ग पहुंचना हो तो वह अमेरिका के शिक्षित विद्यार्थियों के सजाये हुए भवन देखे। भारत के विद्यार्थी स्कूलों और कालेजों में आते हुए समझते हैं कि अब हम 'जेलखाने' में जा रहे हैं और परीक्षा को यहाँ 'कतल की रात' कहते हैं। इसलिए अमेरिकन विद्यार्थियों को हँसते हुए मुर्दों की कल्पना करना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है।

पेरिस, बर्लिन, केम्ब्रिज आदि के अत्युच्च और प्रसिद्ध विश्वविद्यालयों में प्रसिद्ध पदवी-धारी प्रोफेसर विद्यार्थियों के प्रेमभाजन नहीं बनते। किन्तु अमेरिका नई दुनिया है, इसलिए इसके सब विचार नये हैं। अमेरिका के प्रोफे-सर विद्यार्थियों को अपने घर के बालकों और सगे भाइयों के समान समझते हैं। निरन्तर अध्यापक और विद्यार्थियों में ऐसी मित्रता बनी रहने के कारण विद्यार्थियों की विद्या चौगनी हो जाती है। किन्तु जिस भारत के विद्यार्थी अपने प्रोफेसरों के रोब दिखाने और नाक-भौंह चढ़ाने पर अपनी शंका तक प्रकट करने में हिचक जाते हैं, वे विद्वान् नहीं बन सकते।

मि० थिंग अमेरिकन विश्वविद्यालयों के विषय में कहते हैं:--

"No longer now students go to Germany for education. Though scholasticism as great as that of Germans is not yet attained, opportunities for research and instruction are equal though not more."

प्रसिद्ध प्रोफेसर फ्रेड्रिक पालसन ने अपनी पुस्तक 'युनिवर्सिटीज़ आव जर्मनी' में भी अमेरिकन विश्वविद्यालयों की ही प्रशंसा की है।

यहाँ तक अमेरिकन विश्वविद्यालयों का वाह्यतुलनात्मक वर्णन हुआ, अब वहाँ की आन्तरिक दशा अर्थात् शिक्षापद्धति का अवलो-कन कीजिए। अमेरिका में उद्दिष्ट कार्य हाई-स्कूल से ही प्रारम्भ हो जाता है। विश्वविद्या-लय में प्रविष्ट होने से पहिले ही विद्यार्थी को अपना उद्देश ग्रहण करना पड़ता है। उद्देश ग्रहण कर लेने से विद्यार्थियों का अधिक समय व्यर्थ नहीं जाता और वे अपना कार्य योग्यता-

पूर्वक सम्पादन कर सकते हैं। विश्वविद्यालयों में प्रविष्ट होते ही विद्यार्थी को अपने उद्देश्य के अनुसार एक कालेज में नाम लिखाना पड़ता है और अपने विषय के अनुकूल पढ़ाई आरम्भ करनी पड़ती है। जर्मन विश्वविद्यालयों के समान अमेरिका में भी बहुत से विषयों पर केवल व्याख्यान दिये जाते हैं। इन विषयों को 'कोर्सस' कहते हैं। अमेरिका में परीक्षा के नम्बरों को देखकर विद्यार्थी पास फेल नहीं किये जाते, बल्कि वहाँ यह देखा जाता है कि किस विद्यार्थी ने कितने समय अभ्यास किया है। निश्चित समय की जाँच के लिए वहां 'यूनिट' नियत हैं, अर्थात् अमुक विषय के विद्यार्थियों को इतने युनिट तक व्याख्यान सुनना आवश्यक है। यूनिट एक समय की माप है। उदाहरणार्थ आर्टस् कालेज में बी० ए० की पदवी प्राप्त करने के लिए १२४ यूनिट की आवश्यकता है। ये १२४ यूनिट विद्यार्थी चार वर्ष में पूरे कर सकते हैं, किन्तु बुद्धिमान् और योग्य विद्यार्थी तीन वर्ष में भी कर लेते हैं और बी० ए० बन जाते हैं। जो विद्यार्थी अधिक समय नहीं दे सकते उन्हें १२४ यूनिट पूरे करने में और भी अधिक समय लग जाता है। किन्तु अभ्यास पूरा होना चाहिए फिर पदवी मिलने में अधिक विलम्ब नहीं होता।

इस प्रकार की शिक्षापद्धति बहुत उपयोगिनी और लाभप्रद प्रमाणित हुई है। मान लीजिए कि पहिले साल परीक्षा में ग्रीक और रोमन इतिहास है। यह विषय पहिले और दूसरे वर्ष का होने पर भी पहिले ही वर्ष में पूरा हो सकता है, किन्तु बीजगणित और त्रिकोणमिति का एक वर्ष में पूरा होना अशक्य है, क्योंकि इनमें एक दूसरे से अधिक घनिष्ठता रहती है। जिन २ विषयों में एक दूसरे की अपेक्षा नहीं रहती वे जल्दी हो जाते हैं। इसके लिए विद्यार्थी दो तीन घंटे समय और लगा देते हैं—इसमें विश्वविद्यालय को भी लाभ रहता है। उदाहरण के लिए जो विद्यार्थी रसायनशास्त्र का आचार्य बनना चाहता है उसे दस यूनिट अभ्यास करने की आवश्यकता है, किन्तु वह अपने बचे हुए समय में दूसरे विषयों का भी अभ्यास करता है (जैसे—वनस्पतिशास्त्र, सम्पत्तिशास्त्र, रोम का इतिहास)। ऐसी उपयोगी पद्धति संसार में और कहीं नहीं है।

यह पद्धति दूसरे देशों के विद्यार्थियों के लिए और भी अधिक लाभदायक होती है। अमेरिका और भारत के पदवीधारियों में आकाश पाताल का अन्तर है। भारत का ज्यूनियर बी० ए० का विद्यार्थी अमेरिका के ज्यूनियर विद्यार्थी से बहुत पीछे रह जाता है। वहाँ विद्यार्थी विश्वविद्यालयों के आवश्यक विषयों के अलावा अनेक स्वतन्त्र विषयों का अभ्यास भी करते हैं। अमेरिका में शिक्षित और योग्य बनना बहुत सरल और सुलभ है। किन्तु यहाँ बम्बई के ज्यूनियर विद्यार्थी को कलकत्ता विश्वविद्यालय केवल एफ० ए० समझेगा और बम्बई के बी० ए० पास को केम्ब्रिज विश्वविद्यालय में फिर तीन वर्ष पढ़ाकर बी० ए० की उपाधि दी जायगी। किन्तु अमेरिका के विश्वविद्यालय इन बन्धनों से मुक्त हैं। वहाँ विद्यार्थी में जिन विषयों की कमी होती है वे पूरे करा दिये जाते हैं। उन विषयों की पूर्ति के लिए विद्यार्थी को स्वतन्त्र शिक्षक नहीं रखना पड़ता।

अमेरिकन विश्वविद्यालयों के शब्दकोष में "फेल होना" और "वर्ष व्यर्थ बिताना" ये शब्द ही नहीं है। वर्ष में पूरे समय जो अभ्यास कर सका है वही पास हो सकता है। वहां प्रति सैकड़े ९५ विद्यार्थी उत्तीर्ण होते हैं। इसका कारण यह है कि एक तो वहां अभ्यास उत्तम होता है, दूसरे विद्यार्थी पहिले वर्ष जिस विषय में फेल हुआ हो केवल उसी विषय में दूसरे वर्ष परीक्षा होती है। यह पद्धति इतनी उपयोगी है

कि इसके कारण जर्मनी और अमेरिका में बहुत जल्दी शिक्षितों की संख्या बढ़ गई।

अमेरिका के विश्वविद्यालय सच्चो सरलता की मूर्ति हैं। किन्तु इंगलैंड के विश्वविद्यालयों ने ऊपरी बनावट और टीमटाप में हद करदी है। अमेरिका में थोड़े ख़र्च से विद्यार्थी निर्वाह करके विद्वान बन जाते हैं किन्तु इंगलैंड के विश्वविद्यालय इतना ख़र्च एक माल में करा देते हैं जितना अमेरिका में विद्यार्थी दो वर्ष में करते होंगे। इंगलैंड के प्रसिद्ध विश्वविद्यालय केम्ब्रिज के ख़र्च की नक़ल देखिए:—

१-कमरे का सामान आदि... कम से कम ७५०)
२-प्रवेश शुल्क ... ... " ३०)
३-कालेज फीस ... ... साधारणतः ३१५)
४-कमरे का भाड़ा .... " ३७५)
५-भोजन-व्यय .... " २७०)
६-क्लब सोसाइटी आदि का ख़र्च " १५०)

किन्तु अमेरिका में प्रवेश शुल्क, कालेज फीस और भोजन-व्यय आदि सब कुछ मिलाकर ७५) रु० मासिक पड़ जाता है। इंगलैंड के विश्वविद्यालयों में विद्यार्थियों को अनेक प्रकार की पोशाकें बनानी पड़ती हैं और बहुत से व्यर्थ के नियमों से जकड़ा रहना पड़ता है। किन्तु अमेरिका में शिक्षा, स्वास्थ्य और सदाचार पर विशेष लक्ष्य रक्खा जाता है।

भारत में विद्यार्थी वर्ष भर सोया करते हैं पर परीक्षा से एक मास पूर्व रात दिन परिश्रम करके अपना स्वास्थ्य बिगाड़ लेते हैं। पर अमेरिका के विद्यार्थी ऐसा नहीं करते। वहां विशेष अभ्यास देखा जाता है पर यहाँ कोरी दिनों की हाजरी देखी जाती है। अमेरिका में विद्यार्थियों के अभ्यास पर बहुत कडी नज़र रक्खी जाती है। छोटी कक्षाओं में तो पढ़ाई पर नित्य प्रश्न किये जाते हैं, किन्तु उच्च कक्षाओं में साप्ताहिक प्रश्न होते हैं। प्रति मास एक घंटे की लिखित परीक्षा भी होती है। प्रत्येक मास की कापियों के नम्बर रजिस्ट्रार के पास भेजे जाते हैं। प्रत्येक विद्यार्थी की प्रति मास की रिपोर्ट भी भेजी जाती है। जिस विद्यार्थी का जिस विषय का अभ्यास कम होता है, उस की सूचना रजिस्ट्रार विद्यार्थी को दे देता है।

अध्यापक को केवल रिपोर्ट भेज देने का अधिकार है। बाकी सब कुछ रजिस्ट्रार करता है। इस प्रकार की व्यवस्था के कारण अमेरिकन विद्यार्थियों के लिए 'फेल' शब्द हंसी के सिवा और कुछ नहीं है। अमेरिका में भवभूति की उक्ति "वितरति गुरुः प्राज्ञे विद्यां यथैव तथा जड़े" लागू नहीं होती। ऐसे विश्वविद्यालय को अमेरिकन सच्चा विश्वविद्यालय नहीं समझते। ऐसी पद्धति संसार के और किसी विश्वविद्यालय में नहीं है।

अमेरिका के बी० ए० को सब विषयों का पूरा ज्ञान होता है और उसकी बी० ए० पदवी सार्थक होती है। किन्तु भारत में एक तो बी० ए० पास होते ही लोगों का स्वास्थ्य उन से बिदा होजाता है, दूसरे क्लर्की करने के अतिरिक्त वे और कुछ करने योग्य नहीं रहते।

अमेरिका में विद्यार्थी से यदि कोई अपराध हो जाय तो उसे अध्यापक दण्ड नहीं देते। उसका मामला Students Self-government "विद्यार्थी स्वराज्य" नामक संस्था को दे दिया जाता है। इस संस्था के सभासद सर्वसम्मति से चुने हुए होते हैं। इसके अलावा विद्यार्थियों के हित के लिए प्रत्येक विश्वविद्यालय में Students Council होती है जो विद्यार्थियों की ओर से विश्वविद्यालय को हित की बातें बताती रहती है।

एक दूकान होती है जिस में साझीदार बनकर विद्यार्थी व्यापार करते हैं। अमेरिका में विद्यार्थियों को स्वतंत्र रूप से धार्मिक शिक्षा

नहीं दी जाती पर वाई० एम० सी० ए० नाम की एक स्वतंत्र संस्था होती है जो विश्वविद्यालय से कोई सम्बन्ध न रखने पर भी प्रत्येक विद्यार्थी पर नजर रखती है। धार्मिक आचरण का भार इसी संस्था पर होता है। प्रत्येक विद्यार्थी को इस संस्था से बड़ी मदद मिलती है।

इसके अलावा विद्यार्थियों और दूसरे लोगों को पढ़ाई में सहायता पहुंचाने के लिए रात्रि-विद्यालय खुले रहते हैं, जिन में कुली, मजदूर, कारखानों में काम करनेवाले, मुर्दा ढोनेवाले—सब पढ़ते हैं। गर्मियों की छुट्टियों में ग्रीष्म विद्यालय Summer Schools खुल जाते हैं जिनमें पढ़ाई होती है।

इस प्रकार अनेक साधनों के द्वारा अमेरिका-वासियों ने अपने देश को विद्यामन्दिर बना लिया है। शिक्षा का प्रसार करना ही वहाँ के विश्वविद्यालयों का मुख्य ध्येय है। अमेरिका में जो विषय सर्वोत्कृष्ट हैं वे ये हैं:—

१-कृषिशास्त्र (Agriculture), २-फलशास्त्र (Horticulture), ३-वस्तुकला (Civil, Mechanical and Electrical Engineering), ४-खनिजशास्त्र (Mining Engineering), ५-इस्पातकला (Irrigation Engineering), ८-अरण्यशास्त्र (Forestry), ७-अर्थशास्त्र (Political Economy) तथा राजनीतिशास्त्र (Politics), ८-समाजशास्त्र (Social Science), ९-मानसशास्त्र (Experimental Psychology), १०-वैद्यकशास्त्र और शस्त्रक्रिया (Medicine & Surgery), ११-दन्तशास्त्र (Dentistry), १२-औषधिशास्त्र (Pharmacy), १३-भूगर्भशास्त्र और सांपत्तिक भूगर्भशास्त्र (Economic Geology) १४-शिक्षणशास्त्र (Education), १५-सृष्टिशास्त्र (Physics), १६-रसायनशास्त्र (Chemistry), १७-खगोलशास्त्र (Astronomy) आदि विषय बहुत अच्छी तरह से सिखाये जाते हैं। अमेरिका के कैलीफोरनिया और चिकागो विश्वविद्यालय में संसार की सब से बड़ी दो दुरबीने हैं जिनसे सब आकाशमंडल हथेली की सरसों के बराबर दीखता है।

भारत के विश्वविद्यालय जिस पद्धति पर चल पड़े हैं उसे वे छोड़ते ही नहीं, उसमें उपयोगी और आवश्यक परिवर्तन करते ही नहीं, इसीलिए भारत की शिक्षा अंगभंग और बिना हाथ पैर की है। वह दिन सोने के अक्षरों से लिखकर स्मरण रखने योग्य होगा जिस दिन भारतीय विश्वविद्यालय सुधार की ओर आँख फेरेंगे। *

---

* अमेरिकन विद्यार्थी श्रीयुत कोकटनूर, बी० एस० सी० के "Universities of U. S. A." के आश्रय से लिखित। अभी अमेरिकन सरकार ने कानूनी कौंसिल के सामने एक बिल उपस्थित किया है जिसके पास हो जाने पर दीन भारतीय छात्रों को अमेरिका जाकर पढ़ने में अनेक असुविधाएँ होंगी। इससे अपनी जातीय हानि है। भारतीयों को इसका विरोध करना चाहिये। ले०।

मनुष्य उन्मादक वस्तुओं का प्रयोग क्यों करते हैं।*

[लेखक—श्रीयुत नर्मदाप्रसाद वर्मा।]

इसका क्या कारण है कि मनुष्य उन वस्तुओं का प्रयोग इतनी अधिकता से करते हैं जो उपकार करने के स्थान में हर प्रकार से उनका अपकार करती हैं और उनको बेहोश करने में सहायक होती हैं ? शराब तम्बाकू, अफीम और और बहुत सी उन्मादक वस्तुएँ इतनी जनप्रिय क्यों हो रही हैं ? इनके प्रयोग की आदत का जन्म ही क्यों हुआ और यह आदत सभ्य और असभ्य जातियों में इतने वेग से क्यों फैली और क्यों अहर्निश फैलती जाती है ? इसका क्या कारण है कि जहां बीयर, शैम्पेन आदि का अस्तित्व नहीं है वहां का जनसमुदाय अफ़ीम या कोकेन व्यवहार करता है ? तम्बाकू का तो कुछ कहना ही नहीं। वह तो सर्वव्यापी और सर्वप्रिय है। मनुष्य इस प्रकार अपने चेतन को नष्ट करने की चेष्टा क्यों करते हैं ?

किसी मनुष्य से पूछो कि उसने मदिरापान क्यों आरम्भ किया और क्यों एक बार आरम्भ करके उसका परित्याग नहीं कर सकता ? उसका उत्तर होगा "मदिरापान बड़ा आनन्द-दायक होता है। एक बार मदिरा पीने से मनुष्य का मन लहलहा उठता है, उसका हृत्क-मल प्रफुल्लित हो जाता है और फिर सब कोई इसे पीते हैं।" वे लोग जिन्होंने यह विचार करने का कष्ट कभी नहीं किया है कि मद्यपान हानिकारक अथवा लाभदायक होता है यह कहेंगे कि मदिरा का प्रयोग मनुष्य के स्वास्थ्य को ठीक रखता है और उसके बल को बढ़ाता है। वे बहुत सी ऐसी ही बातें बकेंगे जो कि बिलकुल व्यर्थ साबित होचुकी हैं। एक तम्बाकू पीनेवाले से पूछिये कि उसने तम्बाकू पीना क्यों आरंभ किया और अब क्यों पीता है तो कदाचित वह यह उत्तर देगा कि "समय बिताने के लिये और सब कोई पीते हैं इसलिये भी।" अफ़ीम इत्यादि के प्रयोग करनेवालों से ऐसे ही उत्तर मिलने की संभावना है कि "समय बिताने के लिये, मनको प्रसन्न रखने के लिये, सब कोई पीते हैं इसलिये"। यही प्रायः सबके उत्तर होंगे कि 'चित्त को प्रसन्न रखने के लिये, समय बिताने के लिये' 'सब कोई करते हैं इसलिये'। हाथ का चलाना, सीटी का बजाना, सितार का बजाना यह सब बुरा नहीं है परन्तु प्रकृति के भाण्डार का इस प्रकार अपव्यय करना जिसको उत्पन्न करने में इतने धन, इतने परिश्रम का व्यय हुआ है उसका इस प्रकार से दुरुपयोग करना एक अत्यन्त गर्हित कर्म है। तम्बाकू, अफ़ीम इत्यादि को उत्पन्न करने के लिये लाखों मनुष्य दिन रात परिश्रम करते हैं, इतना पसीना बहाते हैं कि यदि वह एक बृहत्कुण्ड में एकत्रित किया जाय तो उसीसे सब खेतों का सिञ्चन हो सकता है। उपजाऊ भूमि के हज़ारों बीघे उनकी उत्पत्ति में लगा दिये जाते हैं। परन्तु ये सब बातें इनके संकुचित मस्तिष्क में नहीं समातीं और ये बड़ी निर्दयता के साथ उसी माल का अपव्यय करते हैं। यही नहीं, इन वस्तुओं का प्रयोग बड़ा हानिकारक है और मानवजाति के बड़े २ दुर्निवार्य दुःखों का उत्तरदाता है। बड़े २ संग्रामों से, संक्रामक रोगों से इतने अधिक मनुष्य नहीं मरते जितने इन वस्तुओं के प्रयोग से। सब आदमी इस बात को जानते और मानते हैं परंतु

* टाल्सटाय लिखित Why do men stupefy themselves शीर्षक निबन्ध का भावानुवाद। लेखक।

तब भी जब वे यह कहते हैं कि समय बिताने के लिए, मनको प्रसन्न रखने के लिए वे तम्बाकू इत्यादि का प्रयोग करते हैं तो उनकी बातें निष्प्रयोजन बकवाद के अतिरिक्त और क्या हो सकती है ?

इसका और ही कारण है। हम बहुत से ऐसे मनुष्यों से बराबर मिलते हैं जो अपनी सन्तान को प्राणों से भी अधिक प्यार करते हैं और उनके लिये किसी प्रकार की हानि उठाने से नहीं हिचकते परंतु वेही लोग शराब, तम्बाकू और अफ़ीम में इतना धन उड़ा देते हैं कि उनके दारिद्र्याभिभूत भूखे बच्चों के खाने के लिए एक पैसा तक नहीं बचता। परिणाम यह होता है कि दुःख के थपेड़े खा खाकर वे थोड़ी ही अवस्था में कराल काल के कवल बन जाते हैं। यदि एक मनुष्य जिसके अनुसरणार्थ दो मार्ग खुले हैं सीधे और उपयोगी मार्ग को छोड़कर टेढ़े और दुःखदायी मार्ग का अवलम्बन करे, अपने प्यारे परिवार के कष्ट निवारण का विचार न करके उन्मादक वस्तुओं का प्रयोग ही स्वीकृत करे, तो उसके ऐसा करने का कोई साधारण कारण नहीं हो सकता। वह इस विचार से यह नहीं करता कि उसको आनन्द मिलता है अथवा उसका चित्त प्रसन्न होता है, वह किसी बड़े कारण के प्रभाव में पड़कर ही ऐसा करता है।

टालस्टाय कहते हैं, "वह कारण जहां तक मैं इस विषय में अध्ययन, मनन करने से और दूसरे मनुष्यों के और अपने उस अवस्था के आचरणों को, जब मैं शराब इत्यादि का प्रयोग करता था, भली भाँति देखने से जान सका हूं वह है। जब मनुष्य अपने जीवन का अनुसन्धान करता है तो वह उसमें दो वृत्तियों को पाता है। एक तो अंधी (blind) और शारीरिक (Physical) वृत्ति और दूसरी दृष्टियुक्त (Seeing) और आत्मिक (Spritual) वृत्ति। एक कूकी हुई मशीन की भाँति अन्धी और पाशविक वृत्ति का काम खाना, पीना, सोना, आराम करना, चलना, फिरना है। दूसरी अर्थात् आत्मिक वृत्ति पाशविक वृत्ति पर निर्भर है। वह स्वयं कुछ नहीं कर सकती, वह पाशविक वृत्ति के आचरण को देखा करती है और जब उससे सहमत होती है तो उससे मिलकर कार्य करती है नहीं तो अलग हो जाती है।"

इस जीवनानुसन्धान की समता दिशानिरूपण यंत्र की सुई से की जा सकती है जिसका कि एक किनारा उत्तर और दूसरा दक्षिण की ओर रहता है। जब तक हम लोगों से किया हुआ अनुसन्धान और वह सुई एक ही दिशा का दिग्दर्शन कराते हैं तब तक यह सुई एक अनिर्वचनीय आच्छादन से आच्छादित रहती है परंतु मतिवैपरित्य होते ही भेद तुरंत ज्ञात हो जाता है।

इसी रीति से दृष्टियुक्त आत्मिक वृत्ति जिसको हम अन्तःकरण (concience) के नाम से सम्बोधित करते हैं एक किनारे से उचित और दूसरे से अनुचित का दिग्दर्शन कराती है और उसके अस्तित्व का ज्ञान हमें तब तक नहीं होता जब तक हम उसके दिखाये हुए मार्ग का अनुसरण करते हैं अर्थात् अनुचित को छोड़कर उचित का अवलम्बन करते हैं परंतु जैसे ही उसकी आज्ञा के विरुद्ध हम कोई कार्य करते हैं उसके अस्तित्व का ज्ञान हमें होने लगता है और यह भी मालुम हो जाता है कि किस भाँति पाशविक वृत्ति अन्तःकरण के विरुद्ध चली। एक नाविक जैसे उसे यह बात मालुम हो जाती है कि वह अपनी नाव को उल्टे रास्ते पर लिये जाता है और नाव को रोक देता है और जब तक या तो वह ठीक रास्ते को नहीं जान लेता या इस बात के ज्ञान ही को और विचारों में निमज्जित नहीं कर देता नाव को आगे नहीं बढ़ाता। इसी भाँति प्रत्येक मनुष्य जो पाशविक वृत्ति और अन्तःकरण दोनों के अस्तित्व से अभिज्ञ है तब तक कोई कार्य नहीं कर सकता

जब तक या तो उसमें अन्तःकरण के अनुकूल चलने का साहस या उसके आदेशों का तिरस्कार करने का धृष्टता न हो। या तो उसे अन्तःकरण दर्शित मार्ग पर चलना होगा या उसे अपने से उन चिन्हों को छिपाना पड़ेगा जिनका कि प्रादुर्भाव तब होता है जब अन्तःकरण अवलम्बित मार्ग के प्रतिकूल अपनी सम्मति प्रकट करता है।

सम्पूर्ण मानवीय जीवन इन दो बातों से भरा होता है (१) अपने कार्यों को अन्तःकरण के आदेशों के अनुकूल करना और (२) पूर्ववत् अर्थात् अनुचित का अवलम्बन करके रहने के लिये अन्तःकरण के आदेशों को अपने से छिपाना।

बहुत से पहिली बात करते हैं और बहुत से दूसरी। पहिली बात करने में समर्थ होने के लिये एक ही मार्ग है। वह है नैतिक उन्नति, अपने से अन्धकार को दूर करना और प्रकाश को बढ़ाना जिससे अन्तःकरण द्वारा दर्शित मार्ग अच्छी तरह दिखाई पड़े। अन्तःकरण के आदेशों को अपने से छिपाने के लिये दो मार्ग हैं-एक वाह्य और दूसरा आन्तरिक। वाह्य अवलम्बन में मनुष्य को अपने को कार्य में लगाये रहना पड़ता है जिससे कि अन्तःकरण की बात सुनाई न दे और आन्तरिक अवलम्बन में अन्तःकरण ही को चुप करना पड़ता है। मनुष्य यदि अपने सामने की वस्तु को देखना न चाहे तो दो ही बातें कर सकता है। या तो उधर न देखकर दूसरी ओर अधिकतर चित्ताकर्षक वस्तुओं को देखने लगे या अपना दृष्टि का ही किसी रीति से अवरोध कर ले। इसीभांति मनुष्य अन्तःकरण के आदेशों को अपने से दो तरह से छिपा सकता है (१) वाह्य अवलम्बन के द्वारा अर्थात् अपने मन को खेल में और विविध प्रकार के कार्यों में लगाने से (२) आन्तरिक अवलम्बन के द्वारा अर्थात् अन्तःकरण को चुप करने से। उन मनुष्यों के लिये, जिनकी कि सदसद्विचार की शक्ति इतनी तीव्र नहीं है, उन चिन्हों को छिपाने के लिये जिनके द्वारा अन्तःकरण उनके अनुचित जीवननिर्वाह की प्रणाली का प्रतिवाद करता है वाह्य अवलम्बन ही पर्याप्त है परन्तु उनके लिये जिनमें विवेक उस अवस्था को पहुंच गया है जब कि कोई अनुचित कार्य करना कठिन ही नहीं वरन् असम्भव हो जाता है तब किसी प्रकार वाह्य अवलम्बन के द्वारा अपने से अन्तःकरण के आदेशों का छिपाना पर्याप्त नहीं होता। जीवन-निर्वाह प्रथा और अन्तःकरण के संयोगाभाव के ज्ञान को छिपाने के लिये वाह्य अवलम्बन पर्याप्त नहीं है। यह ज्ञान मनुष्य को जीवन-निर्वाह करने में बड़ी बड़ी कठिनाइयों का सामना कराता है और मनुष्य पूर्ववत् अनुचित रीति से रहने के निमित्त आन्तरिक अवलम्बन द्वारा अन्तःकरण को चुप करने के लिये उन्मादक वस्तुओं के प्रयोग से अपने मस्तिष्क को निकम्मा करने की चेष्टा करता है।

एक मनुष्य अन्तःकरण के आदेशों को न मान कर अपनी इच्छानुसार जीवन निर्वाह करता है। वह यह जानता है कि वह अन्तःकरण के उपदेशों का तिरस्कार करता है परन्तु उसमें इतना मानसिक बल नहीं कि वह अपने जीवन का सुधार कर सके। वह अपने मन को खेल कूद में लगा कर अन्तःकरण के उपदेशों को भूलने की चेष्टा करता है। जब वह निष्फल प्रयत्न होता है तब वह शनैः शनैः उन्मादक वस्तुओं के प्रयोग से अपने सच्चे मित्र अन्तःकरण को नष्ट करने का प्रयत्न करता है। अन्तःकरण के देदीप्यमान उल्का के बुझजाने से निविड़ अन्धकार फैल जाता है और फिर वह मनुष्य निर्भय होकर कुमार्ग का अनुसरण करता है।

(२)

सम्पूर्ण संसार में उन्मादक वस्तुओं का जो इतना अधिक प्रयोग होता है उसका कारण न

स्वाद है न आनन्द आदि और न समय बिताना। उसका एक मात्र कारण अन्तःकरण के आदेशों को अपने से छिपाना है।

मैं एक दिन सड़क पर चला जा रहा था। बहुत से गाड़ीवान एक स्थान पर एकत्रित होकर कुछ वार्तालाप कर रहे थे। मैंने एक को कहते हुए सुना "यह सत्य है। जब मनुष्य शान्त होता है तो उसे लज्जावनत होना ही पड़ता है" जिस वस्तु के कारण शान्तावस्था में मनुष्य को लज्जित होना पड़ता था वही उन्मत्तावस्था में उसे अच्छी मालूम होती है। उन्मादक वस्तुओं के इतने विस्तृत प्रयोग का प्रधान कारण हमें इन शब्दों में मिलता है। जब मनुष्य अपने अन्तःकरण के प्रतिकूल कोई कार्य करता है तो उसे लज्जित होना पड़ता है; इस लज्जित होने से बचने ही के लिये शराब इत्यादि उन्माद जनक वस्तुओं का प्रयोग किया जाता है। या जब मनुष्य कोई ऐसा कार्य करने पर प्रस्तुत होता है जो उसके अन्तःकरण के विरुद्ध है परन्तु जिसको करने के लिये उसकी पाशविक वृत्ति बाधित करती है तो वह अन्तःकरण के प्रतिवाद को शान्त करने के लिये इन वस्तुओं का प्रयोग करता है।

मनुष्य जब शान्त अर्थात् अपने होश में होता है तो चोरी करने से, हत्या करने से, वेश्या के यहां जाने से शर्माता है परन्तु उन्मत्त अर्थात् नष्टचेतन मनुष्य इन बातों के करने में नहीं शर्माता। यही कारण है कि जब कोई मनुष्य ऐसा काम करना चाहता है जो उसके अन्तःकरण के विरुद्ध है तो वह पहिले शराब इत्यादि पीकर अपने को बेहोश कर लेता है।

टालसटाय कहते हैं कि "एक मनुष्य ने मेरे कुटुम्ब की एक वृद्धा स्त्री को मार डाला था। अदालत में न्यायाधीश के सामने जो उसने शहादत दी उसे सुन कर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने कहा कि जब नौकरानी चली गई और जब उसके हत्यात्मक कार्य करने का समय आया तब वह खड्ग लेकर अन्तःप्रकोष्ठ में जाने को प्रस्तुत हुआ। परन्तु उसको मालूम हुआ कि होश में वह यह कार्य नहीं कर सकता था। अतः वह लौट आया और दो ग्लास शराब के जो उसने पहिले से तैयार कर रक्खे थे पिये तब उसको कोई ग्लानि नहीं मालूम हुई और उसने स्वतन्त्रता से उस बेचारी वृद्धा को इस असार संसार से उठा दिया। संसार में ९० फीसदी पाप कर्म इसी रीति से किये जाते हैं। पापी लोग अपने साहस को जागृत रखने के लिये मद्यपान करते हैं।"

आधी से अधिक स्त्रियां जो पतित और कुत्सित कर्म करके अपना जीवन निर्वाह करती हैं मद्य ही के प्रभाव से ऐसा करने में समर्थ होती हैं। जितने संसार में बुरे कर्म होते हैं वे अधिकतर उन्मत्त ही मनुष्यों द्वारा किये जाते हैं। वे यह जानते हैं कि मद्य में इतनी सामर्थ्य है कि वह अन्तःकरण को चुप कर सके और इसलिये वे जान बूझ कर उसको प्रयोग में लाते हैं।

मनुष्य अपने ही अन्तःकरण को चुप करने के लिये मदिरादि का प्रयोग नहीं करते परन्तु यदि वे दूसरों से निन्द्य और उनके अन्तःकरण के विरुद्ध कार्य कराया चाहते हैं तब भी वे मद्यादि पिला कर उनको बेहोश और अन्तःकरण रहित कर देते हैं। घमासान लड़ाई होने के पहिले सैनिक लोगों को मदिरा पीने को दी जाती है ताकि वे अपने भाइयों का गला बिना किसी ग्लानि के अच्छी तरह काट सकें। सिवास्टोपूल (Sevastopol) को जिन सिपाहियों ने घेरा था प्रायः सभी मदिरा पिये हुए थे।

जब कोई सेना किसी सुरक्षित गढ़ पर विजय प्राप्त कर लेती है परन्तु लूट मार करने

और उसके अरक्षित निवासियों की हत्या करने से हिचकती है तो उसको मदिरा पीने को दी जाती है और तब वह बड़ी सुगमता से अपना हत्यारा काम करती हैं । वे ही सैनिक जो थोड़ी देर पहिले हत्या के नाम से डरते और हिचकते थे धरित्री को अपने असहाय अस्त्र-हीन भाइयों के रक्त से रञ्जित करने में कुछ भी आनाकानी नहीं करते ।

प्रत्येक मनुष्य को बहुत से ऐसे दृष्टान्त याद होंगे जिनमें मदिरापान किसी अनुचित आचरण की स्मृति को मिटाने के लिये प्रारम्भ किया गया था । इस बात को सभी मानते हैं कि वे ही लोग मदिरा की ओर अधिकतर आकर्षित होते हैं जिनका जीवन निन्दनीय कर्मों के करने में व्यतीत होता है । जब उनका जीवन संग्राम में सदसत् का ज्ञान करानेवाला मित्र अन्तःकरण उठकर उनके अनुचित आचरण का प्रतिवाद करता है तो अपने को लज्जा से और ग्लानि से बचाने के लिये वे उसको चुप करने को बाधित हो जाते हैं और तब वे मदिरा से उसकी जगमगाती ज्योति को शान्त करने की चेष्टा करते हैं । चोर, वेश्या, डाकू इत्यादि इसी कारण से उन्मादक वस्तुओं के प्रयोग के बिना रह ही नहीं सकते ।

इस बात को सब जानते और मानते हैं कि अन्तःकरण के धिक्कारने से बचने ही के लिये उन्मादक वस्तुओं का प्रयोग किया जाता है और जीवन में ऐसे अवसर अवश्य पड़ ही जाते हैं जब अन्तःकरण को चुप करना आवश्यक हो जाता है । इस बात का भी प्रतिवाद कोई नहीं करेगा कि मदिरादि के प्रयोग से अन्तःकरण शिथिल अवश्य हो जाता है । शराब पीने से बेहोश हुआ मनुष्य उन कार्यों के करने से नहीं हिचकेगा जिनको एक संयमी मनुष्य के लिये करना बड़ा कठिन है और जिनको वही उन्मत्त मनुष्य शान्त होने पर निन्द्य और कुत्सित समझेगा । इस से सब कोई सहमत हैं । परन्तु बड़े आश्चर्य की बात है कि जब मद्यपान का परिणाम बुरा नहीं होता, जब मदिरा पी कर मनुष्य चोरी, जीवहत्या विश्वासघात इत्यादि नहीं करते, जब मदिरादि उन्मादक वस्तुओं का प्रयोग किसी बड़े अपराध के बाद नहीं किया जाता जिससे यह बात प्रमाणित हो कि मदिरा-पान का मुख्य उद्देश्य अन्तःकरण को स्तम्भित करना ही है, जब तम्बाकू, अफ़ीम और अन्य उन्मादक वस्तुओं का प्रयोग अपराधियों द्वारा नहीं किया जाता परन्तु उन मनुष्यों द्वारा जो ऐसे मार्ग का अनुसरण करते हैं जो दंड्य नहीं कहा जा सकता और जब ये वस्तु अधिक मात्रा में नहीं परन्तु कभी कभी और थोड़ी मात्रा में प्रयुक्त की जाती हैं तो यह कहा जाता है कि ये अन्तःकरण को अवरुद्ध नहीं कर सकतीं । इसीके ज़ोर पर यह कहा जाता है कि भोजन के पश्चात् मदिरा का पीना, सिगरेट का पीना, अन्तःकरण को कण्ठावरुद्ध करने के लिये नहीं परन्तु आनन्दप्राप्ति के लिये होता है; इसका मनुष्य के अन्तःकरण पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता ।

यह कहा जाता है कि यदि मदिरादि उन्मादक वस्तुओं के प्रयोग के बाद कोई अपराध न किया जाय, न चोरी की जाय, न जीवहत्या की जाय परन्तु वेही मूर्खता के काम किये जांय जो प्रति दिवस किये जाने के कारण चित्त को आकर्षित नहीं करते अर्थात् कौतुकरहित हो गये हैं तो ये काम स्वयं होते हैं और करनेवाला इनको करने के लिये मदिरा से बाध्य नहीं किया जाता। यह कहा जाता है कि जब मनुष्य कोई दण्ड्य कार्य नहीं करता तो उसे अपने अन्तःकरण को कण्ठावरुद्ध करने की कोई आवश्यकता नहीं । यह भी कहा जाता है कि उन मनुष्यों को जीवन प्रणाली, जिनकी प्रकृति का उन्मादक वस्तुओं का प्रयोग करना एक अवियोज्य भाग हो गया है किसी प्रकार से निन्द्य नहीं होती और यदि मदिरा या तम्बाकू उनको पीने को न मिले, तो

भी वे उसी रीति से जीवन निर्वाह करेंगे। लोग इस बात को भी मान बैठे हैं कि उन्मादक वस्तुओं का प्रयोग उनके अन्तःकरण पर किसी भांति का प्रभाव नहीं डालता।

यद्यपि अपने अपने अनुभव से सब इस बात को जानते हैं कि मद्यपान उनके मानसिक भाव को परिवर्तित कर देता है, मद्य पीकर उस कार्य के, जिसका करना, बिना मदिरा पिये बिलकुल असम्भव हो जाता है, करने में ज़रा भी नहीं हिचकते। जब कभी उनका अन्तःकरण उनकी जीवन-निर्वाह प्रणाली की निन्दा करता है तो उसको चुप करने के लिये वे उन्मादक वस्तुओं का प्रयोग करते हैं, वे मदिरादि पीकर अपने जीवन का पक्षपातहीन अनुसाधन नहीं कर सकते और उन्मादक वस्तुओं के नियमित और थोड़ी मात्रा में प्रयोग का वैसा ही परिणाम होता है जैसा कि उनके कभी कभी और अधिक मात्रा में लेने का फल होता है। तब भी मदिरा पीने वाले इस बात को कहे बिना नहीं रहते कि वे उन्मादक वस्तुओं का प्रयोग अन्तःकरण को स्तम्भित करने के लिये नहीं किन्तु आनन्द प्राप्त करने और चित्त को प्रसन्न रखने के लिये करते हैं।

(१) यदि मदिरा के कभी कभी और अधिक मात्रा में प्रयोग का परिणाम अन्तःकरण का स्तम्भन होता है तो उसके नियमित प्रयोग का भी परिणाम वैसा ही होगा चाहे वह थोड़ी मात्रा में प्रयुक्त की जाय अथवा अधिक में (२) प्रत्येक उन्मादक वस्तु में अन्तःकरण को स्तम्भित करने की सामर्थ्य होती है और इस सामर्थ्य का अभास तब होता है जब मदिरादि के प्रभाव में पड़कर जीवहत्या करने से, डाकेज़नी और विश्वासघात करने से, मनुष्य ज़रा भी नहीं हिचकता, जब वह उन्मत्तावस्था में ऐसे कार्य कर बैठता है, ऐसी बातें कह डालता है जो शान्त होने पर उसे अरुचिकर ही नहीं वरन निन्द्य और निकृष्ट मालूम होती हैं।

(३) यदि मदिरादि उन्मादक वस्तुओं का प्रयोग चोरों और डाकुओं से अन्तःकरण को स्तम्भित करने के लिये किया जाता है तो उन मनुष्यों के द्वारा भी जो ऐसे मार्ग का अनुसरण करते हैं जो उनके अन्तःकरण के अनुकूल नहीं है परन्तु जिसको और लोग मान्य और अच्छा समझते हैं। उन्मादक वस्तुओं का प्रयोग इसलिये अर्थात् अन्तःकरण को कण्ठावरुद्ध करने के लिये किया जाता है। इन उपर्युक्त बातों को अच्छी तरह से समझने के लिये हम को निष्पक्षपात होकर विचार करना चाहिये।

इस बात का प्रतिवाद कोई नहीं कर सकता है कि उन्मादक वस्तुओं का प्रयोग थोड़ी मात्रा में या अधिक मात्रा में कभी कभी या रोज़ रोज़ गरीब या धनी मनुष्यों द्वारा अन्तःकरण को स्तम्भित करने के लिये नहीं किया जाता। मदिरापान का एक ही कारण हो सकता है और वह है अन्तःकरण को कण्ठावरुद्ध करना और अपने को छिपाना जिनके द्वारा अन्तःकरण अवलम्बित से उन चिह्नों मार्ग का प्रतिवाद करता है।

(३)

उन्मादक वस्तुओं के और विशेषतः तम्बाकू के इतने विस्तृत प्रयोग का यही एक कारण हो सकता है। यह कहा जाता है कि तम्बाकू मनुष्य को प्रसन्न रखती है, विचार करने में उसको सहायता देती है और बिना कोई बुरा परिणाम दिखलाये किसी सामन्य आदत की भांति चित्त को अपनी ओर आकर्षित करती है परन्तु जब कि तम्बाकू पीने की इच्छा हम में उत्पन्न होती है उस समय हम देखें तो यह बात हमें निश्चितरूप से ज्ञात हो जायगी कि तम्बाकू पीने का वही परिणाम होता है जो मदिरा पीने का और मनुष्य जानबूझ कर अपने अन्तःकरण को स्तम्भित करने के लिये तम्बाकू पीता है। यदि तम्बाकू में केवल चित्त को प्रसन्न रखने का सामर्थ्य होती तो उसकी चाह इतनी अधिक न होती जितनी

कि देखी जाती है और मनुष्य ख़ास ख़ास समय इसके प्रयोग की इच्छा न करते। मनुष्य यह कभी न कहते कि विना भोजन किये दो एक दिवस व्यतीत कर देंगे परन्तु तम्बाकू पीना नहीं छोड़ेंगे।

वह मनुष्य जिसने अपनी वृद्धा स्वामिनी को मार डाला था कहता था कि जब उसके गले पर उसने छुरी फेरी और जब वह बूढी स्त्री भूमिसात् होगई और उस के गले से खून बहने लगा उसमें इतनी शक्ति नहीं रही कि वह अपने हत्यात्मक कार्य को समाप्त कर सके। और कान में कहने लगा "मैं उसको समाप्त न कर सका, सोने के कमरे से बैठक में गया और वहां दो एक सिगरट पीने के पश्चात् मुझे में कुछ शक्ति आई।" जब तक उसने अपने अन्तःकरण को तम्बाकू से स्तम्भित नहीं किया तब तक वह इस निन्द्यकार्य को नहीं कर सका। तम्बाकू पीने पर जब उसका अंन्तःकरण मृतप्राय हो गया तब वह सोने के कमरे में गया और अपनी स्वामिनी उस बूढ़ी स्त्री का गला काटने में समर्थ हुआ।

उस समय तम्बाकू पीने की इच्छा उसमें इसलिए उत्पन्न नहीं हुई कि वह तम्बाकू पीकर अपने चित्त को प्रसन्न करे। वह अपने अन्तःकरण को जो कि उसके इस निन्द्य कार्य के सम्पादन में व्याघात स्वरूप हो रहा था स्तम्भित करना चाहता था और इसलिए उसने तम्बाकू का प्रयोग किया।

प्रत्येक मनुष्य जोकि मम्बाकू के ऐन्द्रजालिक जाल में फँस चुका है अपने जीवन का सूक्ष्मतया देखने पर ऐसे बहुत से अवसर देखेगा जब कि तम्बाकू पीने की इच्छा उसमें चित्त को प्रसन्न करने के लिये नहीं परन्तु बहुत से ऐसे विचारों पर विस्मृति का परदा छोड़ने के लिये उत्पन्न हुई जोकि श्यामवर्ण मेघों के समान एकत्रित होकर उसके मनःनभोमंडल को अन्धकारावृत करते थे। टाल्सटाय कहते हैं "मैं अब उस समय का ध्यान करता हूं जब मैं तम्बाकू पिया करता था तो यह बात मुझे अच्छी तरह से याद आती है कि तम्बाकू पीने की इच्छा मुझ में तब उत्पन्न होती थी जब मैं किसी बात पर कुछ विचार करना नहीं परन्तु उसे भूलजाना चाहता था। मैं यह जानता हूं कि मुझे बहुत सा कार्यकरना है परन्तु कार्य करने की इच्छा नहीं होती, अतः मैं तम्वाकू पीता हूं। मैंने किसी से मिलने का वादा किया था परन्तु कार्यवश अपनी प्रतिज्ञा को पूरा न कर सका। मैं इस बात को भूलने के लिये तम्बाकू का प्रयोग करता हूं। मैं क्रुद्ध होता हूं और क्रोध में लोगों से बहुत सी अनुचित बातें कह डालता हूं। मैं जानता हूं मुझे ऐसा न करना चाहिये परन्तु मैं अपने जी की बात कहना चाहता हूं अतः मैं तम्बाकू पीता हूं। मैं जुआ खेलने में बहुत सा रुपया हार जाता हूं इस बात को भूलने के लिये मैं तम्बाकू पीता हूं। मैंने कोई ग़लती की। मैं जानता हूं कि मैंने ग़लती की परन्तु उसे स्वीकार नहीं करना चाहता। अतः मैं तम्बाकू पीता हूं। मैं कोई ऐसी पुस्तक लिखता हूं जो कि प्रचलित मत के प्रतिकूल है परन्तु मैं लिखना छोड़ना नहीं चाहता इसलिये मैं तम्बाकू को पीता हूं।"

तम्बाकू अन्य उन्मादजनक वस्तुओं के सदृश मनुष्य को बड़ी सुगमता से नष्टचेतन तो नहीं हो देती है और इस पर भी सामान्य मनुष्य उसकी अनुपयोगिता और हानिकारकता को प्रमाणित नहीं कर सकते परन्तु उसमें एक विशेष गुण और है। उसे कितनी आसानी से लोग अपने साथ ले जा सकते हैं। शीत में सिगरट या सिगार अपनी जेब में रख लिया और जहाँ कहीं अवकाश मिला दम से निकाल कर मुंह में पलीता लगा लिया और उसी के साथ अपने अन्तःकरण को भी भस्मीभूत कर डाला। एक! दो! तीन! और अपने

मित्र अन्तःकरण के स्थान में एक भस्म का ढेर हो गया। फिर मनुष्य बे-नकेल के ऊँट की भाँति या बिना दिशानिरूपण यन्त्र की नौका की भाँति इधर उधर टकराता फिरता है। अफ़ीम के प्रयोग के लिये या शराब के प्रयोग के लिये किसी न किसी सामग्री की आवश्यकता अवश्य होती ही है और यह सामग्री हर समय अपने साथ रह नहीं सकती परन्तु तम्बाकू के प्रयोग के लिये किसी विशेष सामग्री की आवश्यकता नहीं होती। थोड़ी सी तम्बाकू और एक काग़ज़ का टुकड़ा ! बस बेड़ा पार है। और फिर अफ़ीम या शराब के प्रयोग करनेवालों को सब कोई घृणा की दृष्टि से देखते हैं परन्तु सिगरट पीने वालों को तो फैशनेबिल जेंटिलमैन का अनुज्ञापत्र मिल जाता है और फिर बिना किसी रोक टोक के वे सामाजिक अत्याचार किया करते हैं। तम्बाकू और अन्य उन्मादक वस्तुओं में इतना भेद और है। तम्बाकू पीकर मनुष्य केवल उसी बात को भूलता है जिसको वह भूलना चाहता है। शराब इत्यादि का जब तक प्रभाव रहता है तब तक मनुष्य कोई कार्य ठीक तरह से नहीं कर सकता। हम एक ऐसा काम करना चाहते हैं जो कि हमें नहीं करना चाहिये। हम सिगरेट पीकर अपने अन्तःकरण के प्रतिवाद को शान्त कर लेते हैं और कार्य होने के बाद फिर भले चंगे हो जाते हैं। हम ने कोई ऐसा कार्य किया है जिसकी स्मृति हमें कष्ट पहुंचाती है, बस एक सिगरेट या सिगार पिया और उस स्मृति पर विस्मृति का परदा पड़ गया।

इस बात को सभी जानते हैं कि मनुष्य तम्बाकू इत्यादि का प्रयोग आनन्द प्राप्त करने अथवा समय बिताने के लिये नहीं परन्तु अपने अन्तःकरण को जब वह किये हुए या किये जाने वाले किसी अनुचित कार्य का प्रतिवाद करता है कंठावरुद्ध करने के लिये करते हैं। यह तो है ही परन्तु मनुष्य की जीवननिर्वाह-प्रणाली और तम्बाकू पीने की आदत में भी घनिष्ट सम्बन्ध है। मनुष्य जैसे आदमियों की संगति में रहता है वैसा स्वयं भी हो जाता है। अंगरेज़ी किम्वदन्ती A man is known by the company he keeps अर्थात् "आदमी अपनी संगति के अनुसार जाना जाता है" तो सब पर विदित ही है।

बच्चे तम्बाकू पीना कब प्रारम्भ करते हैं? जब उनके बचपन की सरलता उनका साथ छोड़ देती है। इसका क्या कारण है कि अच्छी सङ्गति पाते ही मनुष्य तम्बाकू पीना छोड़ देते परन्तु बुरी सङ्गति में पड़ते ही फिर पीना प्रारम्भ कर देते हैं। करीब करीब सब जुआरी तम्बाकू क्यों पीते हैं? वे स्त्रियां जिनकी कि जीवनप्रणाली अच्छी और अनुकरणीय है सब से कम तम्बाकू का प्रयोग क्यों करती हैं? वेश्याएँ और पागल आदमी क्यों तम्बाकू से इतना प्रगाढ़ प्रेम रखते हैं? आदत तो आदत है ही परन्तु तम्बाकू पीने का प्रधान कारण अन्तःकरण के कण्ठावरुद्ध करने की इच्छा ही है और इस इच्छा की पूर्ति तम्बाकू के प्रयुक्त किये जाने पर हो भी जाती है।

यदि प्रत्येक तम्बाकू पीनेवाले की आदतों को हम सूक्ष्मतया देखें तो हमें यह बात अच्छी तरह ज्ञात हो जायगी कि तम्बाकू में, अन्तःकरण को कण्ठावरुद्ध करने की सामर्थ्य कहां तक है। प्रत्येक तम्बाकू पीनेवाला जब विवश होकर तम्बाकू पीने के लिए बाध्य होजाता है तो उन बातों को स्वयं पहिले नहीं भूल जाता है जिन बातों को वह दूसरों से कराना चाहता है और जिनको वह स्वयं तब तक करता है है जब तक तम्बाकू के संलग्न से उसकी बुद्धि कुण्ठित नहीं हो जाती और वह कर्तव्याकर्तव्य-विवेकशून्य नहीं हो जाता। कोई पढ़ा लिखा आदमी इस बात का अनुमोदन नहीं करेगा कि किसी के सुख या शान्ति को नष्ट करना उचित

है बल्कि सभी इसे अनुचित और निन्द्य समझेंगे। जिस कमरे में बहुत से लोग बैठे हैं उसे मैला कर देने से, शोर गुल करने से या और कोई काम करने से जिससे कि लोगों को दुःख हो सभी हिचकेंगे परन्तु हज़ार में से शायद ही एक ऐसा तम्बाकू पीनेवाला हो जो इस बात का बिचार करता हो कि जिस कमरे की वायु को मैं तम्बाकू की दुर्गन्ध से खराब कर रहा हूं उसमें बहुत सी ऐसी स्त्रियां और लड़के भी वर्तमान हैं जिन्होंने तम्बाकू के दिव्य रस का आस्वादन नहीं किया है और न सिगरेट की अग्नि में अपनी बुद्धि को भस्मीभूत ही किया है।

यदि तम्बाकू पीनेवाले अपने सन्निकटस्थ मनुष्यों से यह कहने का कष्ट करते भी हैं कि "आशा है हम लोगों का तम्बाकू पीना आपको अरुचिकर अथवा कष्टदायक न होगा।" तो सज्जनता और समाज के नियमों के अनुसार उनको यही उत्तर दिया जाता है कि "बिल्कुल नहीं। आप स्वतंत्रता से तम्बाकू का प्रयोग कीजिये।" ऐसे उत्तर के देनेवालों में बहुत से ऐसे भी होंगे जो विषैली वायु में श्वास लेना पसन्द न करते हों और तश्तरियों और अन्य अन्य जगहों में सिगार के टुकड़ों को पड़ा देखकर जिनका मन अवश्य विचलित हो उठता हो। यदि बूढ़े या जवान आदमी दूसरों के तम्बाकू पीने में कोई बाधा डालना नहीं चाहते तो बच्चों को उनका तम्बाकू पीना कदापि अरुचिकर नहीं हो सकता। बहुत से आदमी जो अहर्निश सज्जनता और लोकहितैषिता की हामी भरा करते हैं छोटे २ कमरों में तम्बाकू पीने से बिल्कुल नहीं हिचकते। बिना अन्तःकरण के आदेशों पर ध्यान दिये वे हवा को तम्बाकू के धुंएँ से विषैली कर डालते हैं।

बहुत से आदमी ऐसा कहते हैं और मैं भी कहा करता था कि तम्बाकू मानसिक कार्यों में बड़ी सहायता देती है और यह कहना वास्तव में सत्य प्रतीत होता है जब हम एक आदमी के केवल मानसिक कार्य के बाहुल्य पर ही ध्यान देते हैं। जो मनुष्य तम्बाकू का अनन्य उपासक है और जो अपने विचारों के औचित्य और अनौचित्य पर विशेष ध्यान नहीं देता उसे यह ज्ञात होता है कि वह सहसा बहुत से विचारों का स्वामी हो गया। उसको यह इस लिए नहीं मालूम होता कि वास्तव में उसके पास बहुत से विचार हैं बल्कि इसलिए कि वह अपने विचारों को अपने कब्जे में रख नहीं सकता।

जब कोई आदमी काम करता है तो उसमें दो वृत्तियां सदा वर्तमान रहती हैं और वह उन वृत्तियों के अस्तित्व से अभिज्ञ भी रहता है। एक वृत्ति जो काम करती है और दूसरी जो काम की प्रशंसा करती है। प्रशंसा जितनी कम और समझ बूझ कर की जाती है काम भी उतना ही कम और अच्छा होता है और प्रशंसा जितनी ही अधिक और बिना समझे-बूझे की जाती है काम भी उतना ही अधिक और खराब होता है। जब यह प्रशंसक वृत्ति किसी ऐसी वस्तु के प्रभाव में पड़ जाती है जो उसको स्तम्भित कर देती है तो कार्य अधिक होता है परन्तु वह कार्य अच्छे गुणों से न्यून अवश्य होता है।

यदि मैं तम्बाकू का प्रयोग न करूं तो मैं लिख नहीं सकता। मैं काम शुरू तो करता हूं मगर जारी नहीं रख सकता। यही प्रायः सभी कहते हैं और यही मैं भी कहा करता था। इस कहने का मतलब क्या है। इस का यही मतलब है कि जो यह कहते हैं उनको या तो कुछ लिखना ही नहीं है या जो उनको लिखना है उससे वे पूर्णतया अभिज्ञ नहीं हैं परन्तु उसे केवल अस्पष्ट रूप से जानते हैं और उनकी अन्तस्थ प्रशंसक वृत्ति उनको यह बात बताती है। यह बात उनको वह तभी तक बताती है जब तक वह तम्बाकू

द्वारा स्तम्भित नहीं की जाती है। यदि हम तम्बाकू का प्रयोग नहीं करते हैं तो या तो जो कार्य हमने प्रारम्भ किया है उसे हमें छोड़ देना पड़ेगा या उस समय तक प्रतिज्ञा करनी पड़ेगी जब तक हमारा विचार हमारे चित्त में बिलकुल अस्पष्ट न हो जाय। हम अपने इन अस्पष्ट विचारों को समझने का प्रयत्न करेंगे। उन व्याघातों को जो हमें अपने विचारों को अच्छी तरह समझने नहीं देते पराजित करेंगे और एकाग्र मन होकर अपने विचारों को समझेंगे परन्तु जब हम तम्बाकू का प्रयोग कर लेते हैं तो हमारा अन्तस्थ समालोचक कण्ठावरुद्ध हो जाता है और हमारे मार्ग के सब व्याघात एक दम हट जाते हैं। जब हम तम्बाकू पीने से उन्मत्त नहीं थे, उस समय हमको जो अरुचिकर और निन्द्य मालूम होता था वही तम्बाक पीने पर आवश्यक और रुचिकर प्रतीत होने लगता है। जो अस्पष्ट था वह स्पष्ट हो जाता है। जिन व्याघातों ने हमारे मार्ग को अवरुद्ध कर दिया था वे लुप्त हो जाते हैं और फिर हमारी लेखनी बिना किसी रोक टोक के कार्य में प्रवृत्त हो जाती है। हम बहुत सा काम जल्दी जल्दी कर डालते हैं।

(४)

यह क्या सम्भव है कि शराब इत्यादि पीने से जो थोड़ा सा मानसिक परिवर्तन हो जाता है उसका परिणाम बहुत बड़ा हो? "यदि मनुष्य तम्बाकू और अफीम के प्रयोग से या शराब को अधिकता से पीने से गिर कर बेहोश हो जाय तो वास्तव में परिणाम बहुत बड़ा कहा जा सकता है परन्तु थोड़ी तम्बाकू पीने से जो मानसिक परिवर्तन होता है उसका परिणाम बहुत बड़ा नहीं हो सकता" यह बहुधा कहा जाता है। लोग यह मान बैठे हैं कि अन्तःकरण का थोड़ा सा स्तम्भन, सदसद्विवेक की शक्ति का थोड़ा सा शिथिल होजाना जीवन पर कोई बड़ा प्रभाव नहीं डाल सकता। जो लोग यह कह सकते हैं वे यह भी कह सकते हैं कि घड़ी यदि पत्थर पर दे मारी जाय तभी उसको कोई हानि पहुंच सकती है परन्तु यदि थोड़ी सी धूल उसमें चली जाय तो उसपर कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता। जिस प्रकार यदि घड़ी के पुर्जे मैले हो जायँ तो घड़ी रुक जायगी उसी प्रकार यदि मनुष्य की अन्तरात्मा थोड़ी सी भी कुण्ठित हो जाय तो वह अपने कर्तव्यों का पालन कदापि नहीं कर सकता।

यह बात स्मरण रखने के योग्य है कि मनुष्य का काम करना उसके हाथ पैरों पर नहीं है परन्तु उसके ज्ञान या चेतना (consciousness) पर है। मनुष्य हाथ पैर से भले ही मोटा ताज़ा हो परन्तु एक बार यदि वह चेतनारहित हो जाय तो वह किसी काम का नहीं रहता। और जब मनुष्य अपने हाथ पैर से काम करने की इच्छा करता है तो उसके ज्ञान या चेतना में कुछ परिवर्तन अवश्य होता है। इसी परिवर्तन को अच्छी तरह समझने पर हम मनुष्य के सब कामों को अच्छी तरह समझ सकते हैं परन्तु ये परिवर्तन बहुत ही सूक्ष्म और दुर्ज्ञेय होते हैं।

रशिया देश का ब्रुलोफ़ एक बड़ा नामी गिरामी चित्रकार हो गया है। एक दिन उसका एक शिष्य उसके सामने एक चित्र लाया। चित्र अच्छा बना हुआ था परन्तु गुरु जी ने थोड़ी सी अशुद्धि निकाल ही दी। शिष्य को बड़ा आश्चर्य हुआ और वह कहने लगा, "आपने चित्र को बहुत थोड़ा सा ठीक किया है परन्तु तस्वीर बिलकुल बदल गई है"। गुरु जी ने उत्तर दिया कि "शिल्पकला तभी प्रारम्भ होती है जब मनुष्य को इस थोड़े से का विवेक हो जाता है।"

ब्रुलोफ़ का यह कहना शिल्पकला ही के विषय में ठीक नहीं है परन्तु मानवीय जीवन से भी इसका घनिष्ठ सम्बन्ध है। जब मनुष्य

को इस "थोड़े से" का ज्ञान हो जाता है, जब बहुत से सूक्ष्म और दुर्ज्ञेय परिवर्तन पैदा होने लगते हैं और मनुष्य उनको जान लेता है तभी वास्तविक जीवन प्रारम्भ होता है। जहाँ बहुत से बाह्य परिवर्तन हुआ करते हैं—जहां मनुष्य चलते फिरते लड़ते और एक दूसरे का गला काटते हैं वहाँ सच्चा जीवन नहीं होता परन्तु वहीं होता है जहाँ ये छोटे २ सूक्ष्मातिसूक्ष्म आन्तरिक परिवर्तन होते हैं।

रासकोलनिकोफ़* (Raskolinkof) ने अपना सच्चा वास्तविक जीवन तब नहीं व्यतीत किया जब उसने वृद्धा स्त्री या उसकी भगिनी की हत्या की। जब उसने उस वृद्धा स्त्री और विशेषतः उसकी भगिनी के जीवनतन्तु को खड्ग के एक प्रहार से काटा तब उसका जीवन अपने स्वभाविक प्रवाह से प्रवाहित नहीं हो रहा था परन्तु वह एक मशीन की भाँति था और उसे वह कार्य करना पड़ा जो वह करना नहीं चाहता था। उसने उस समय वह गोली छोड़ दी जो उसमें बहुत दिनों से भरी हुई थी। उसने एक स्त्री को संसार से उठा दिया। दूसरी उसके सामने थी। कुठार उसके हाथ में था—उसने उसका भी काम तमाम किया।

रासकोलनिकोफ़ ने अपना सच्चा स्वाभाविक जीवन तब नहीं व्यतीत किया जब वह वृद्धा की भगिनी से मिला परन्तु केवल उसी समय जब उसने किसी स्त्री की हत्या नहीं की थी, न किसी अपरिचित के घर में हत्या के विचार से प्रवेश किया था, न अपने हाथ में कभी कुठार उठाया था, न अपने कोट में कुठार छिपाया था और जब अपने कमरे में आराम कुर्सी पर लेट कर वह जीवहत्या या किसी निरपराध मनुष्य को दुनिया से उठा देने के विषय में नहीं विचार करता था परन्तु इन बातों पर विचार करता था कि उसे पिटर्सबर्ग (Petersburg) में रहना चाहिये या किसी अन्य स्थान में, उसे अपनी माता से रुपया लेना चाहिये या नहीं उसी समय उसका सच्चा जीवन व्यतीत हुआ था, ऐसे ही समय जब उसकी पाशविक वृत्ति बिलकुल निश्चल थी उसने इस बात को स्थिर किया कि उसे वृद्धा स्त्री को मारना चाहिये या नहीं। ऐसे समय पर मनुष्य को बहुत समझ बूझकर उन सवालों को हल करना चाहिये जो उसके सामने आते हैं और इस समय सब से अधिक भय इस बात का है कि कहीं एक शराब का ग्लास या एक सिगरट रङ्ग भङ्ग न कर दे। ऐसे समय शराब या तम्बाकू पीकर किसी प्रश्न का निर्णय ठीक रीति से नहीं होता। अन्तःकरण अवरुद्ध हो जाता है और मनुष्य रासकोलनिकोफ़ की भाँति अपनी पाशविक वृत्ति के आधीन हो जाता है।

मनुष्य के ज्ञान या चेतना में जो परिवर्तन होते हैं वे सूक्ष्म और दुर्ज्ञेय तो अवश्य होते हैं परन्तु कभी २ उनका परिणाम बहुत बड़ा होता है। हम अपने मन में किसी बात को निश्चित करते हैं और कार्य करना आरम्भ कर देते हैं। हमारे ऐसा करने के बहुत बड़े परिणाम हो सकते हैं—सम्भव है सैकड़ों घर नष्ट हो जायँ, लाखों रुपये नष्ट हो जायँ, हज़ारों आदमियों की जीवनलीला पर सदा के लिए पर्दा पड़ जाय परन्तु मनुष्य की चेतना में जो बात छिपी थी और जिसका परिणाम यह सब है उससे गुरुतर बात और कोई नहीं हो सकती है। जो कुछ हो सकता है उसकी सत्ता मानवीय चेतना से स्थिर कर दी जाती है।

लोगों को यह न समझ बैठना चाहिये कि जो कुछ मैं कहता हूं उसका इच्छा की स्वतन्त्रता के प्रश्न से कुछ सम्बन्ध है। इस समय इस विषय पर वादानुवाद करना बिलकुल अनावश्यक है। जो मनुष्य चाहे इच्छा की स्वतन्त्र

* Dostoyetsky लिखित "Crime and punishment" नामक [illegible]

कर सकता है या नहीं इस प्रश्न का बिना निर्णय किये ही यह कहना हितकर जान पड़ता है कि चूंकि मनुष्य का कार्य करना चेतना या ज्ञान के सूक्ष्मातिसूक्ष्म परिवर्तनों पर निर्भर है इसलिए हमें उस अवस्था पर जब कि इन परिवर्तनों के जन्म होने की विशेष सम्भावना है विशेष ध्यान देना चाहिये। जिस तराजू में हमें कोई वस्तु तौलना है उसके पासङ्ग इत्यादि पर हमारा विशेष ध्यान रहता है। इसी प्रकार उस अवस्था पर जब कि इन परिवर्तनों का जन्म होता है हमारा विशेष ध्यान रहना चाहिये। जहाँ तक सम्भव हो हम को अपने और दूसरों को उस अवस्था में रखना चाहिये जहाँ कि हम लोगों के विचार निर्मल और प्रशान्त रहें, जहाँ कि अन्तःकरण की मशीन के बिगड़ने की कोई सम्भावना न हो—हम लोगों को इसके प्रतिकूल नहीं चलना चाहिये, शराब और अन्य उन्मादक वस्तुओं का प्रयोग नहीं करना चाहिये क्योंकि ऐसा करने से अन्तःकरण का काम रुक जाता है।

जैसा कि कहा जा चुका है मनुष्य में दो वृत्तियां होती हैं एक आत्मिक और दूसरी पाशविक। जो बातें उसकी आत्मिक वृत्ति से सम्बन्ध रखती हैं उनका भी प्रभाव उस पर पड़ सकता है और जो उसकी पाशविक वृत्ति से सम्बन्ध रखती हैं उनका भी। जैसे कि घड़ी का चलाना आन्तरिक मशीन ही के द्वारा ठीक होता है इसी प्रकार मनुष्य को अपने जीवन को, चेतना के ज्ञान के द्वारा ठीक करना चाहिये। और जिस प्रकार उस आन्तरिक मशीन की सफाई पर जिस पर कि घड़ी का ठीक चलना निर्भर है हमें विशेष ध्यान देना पड़ता है इसी प्रकार ज्ञान या चेतना की सफाई इत्यादि पर जिस पर कि मनुष्य की जीवन घड़ी का चलना निर्भर है हमें विशेष ध्यान देना चाहिये। मनुष्य अपनी चेतना ही से काम करने के लिए बाधित किया जाता है। इसका प्रतिवाद कोई नहीं कर सकता, सब कोई इससे सहमत हैं परन्तु कभी कभी अपने को धोखा देने की आवश्यकता पड़ जाती है। हमलोग इस बात के लिए इतने उत्सुक नहीं रहते कि हमारी चेतना ठीक रहे जितना कि इस बात के लिये कि जो कुछ हम करते हैं वह हमें ठीक अन्तःकरणानुकूल प्रतीत हो और इस के साधन के लिये हम उन्मादक वस्तुओं का प्रयोग करते हैं। जो कि चेतना को नष्ट कर डालती हैं।

(५)

मनुष्य शराब या तम्बाकू का प्रयोग समय बिताने के लिए या चित्त को प्रसन्न रखने के लिए नहीं परन्तु अपनी अन्तरात्मा के सदुपदेशों को भूलने के लिए और पाशविक वृत्तिदर्शित मार्ग का अनुसरण करने के लिए करते हैं। ऐसा करने का कितना भयङ्कर परिणाम होता है यह शराबियों की जीवनी पढ़ने से भली भांति मालुम हो सकता है। राज लोग यदि किसी घर के निर्माण करने में टेढ़े पयमाने को प्रयोग में लावें तो यह सम्भव नहीं कि दीवारें सीधी हों और मकान सुन्दर बनें। जो पयमाना स्वयं इतना नरम है कि ऊंचे या नीचे स्थान को पाकर झुक जाता है वह बनानेवाले को इन बातों का ज्ञान कैसे करा सकता है? परिणाम यह होता है कि जहां वह रक्खा जाता है वहीं ठीक बैठ जाता है और दीवार की ऊंचाई निचाई सब वैसी ही रह जाती है। यही हाल अन्तःकरण के साथ होता है। जीवननिर्वाह की प्रणाली अन्तःकरण के अनुकूल नहीं होती, अन्तःकरण को जीवन की ऊंचाई-निचाई के अनुसार झुकना पड़ता है। हर एक आदमी के जीवन में यह होता है और प्रत्येक जाति के जीवन में भी ऐसा होता है क्यों कि जाति आदमियों का समूह है।

इस प्रकार अपने अन्तःकरण को कुण्ठा करने के परिणाम को अच्छी तरह समझने के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक मनुष्य अपने

जीवन के भिन्न भिन्न आत्मिक परिवर्तनों का सूक्ष्मतया निरूपण करे। ऐसा करने से हर एक आदमी को मालूम होगा कि उसके जीवन में कभी न कभी उसको ऐसा मौक़ा अवश्य पड़ा है जब कि उसका सामना कुछ ऐसे प्रश्नों से पड़ा हो जिनके उचित विवरण पर उसका मानसिक, आत्मिक और दैहिक उत्कर्ष निर्भर हो। इन प्रश्नों को भली भांति समझने के लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य एकाग्रचित्त हो और एकाग्रचित्त होना कोई साधारण बात नहीं है। यह बहुत ही कठिन काम है। प्रत्येक कठिन कार्य के आरम्भ में एक ऐसा समय होता है जब कि वह कार्य विशेषतया कठिन और कष्टप्रद प्रतीत होता है और जब कि मानवी प्रकृति मनुष्य को उसे छोड़ देने के लिए यथाशक्ति बाध्य करती है। दैहिक परिश्रम पहिले पहल बहुत ही कठिन और कष्टप्रद मालूम होता है। मानसिक परिश्रम उससे भी अधिक कठिन और कष्टप्रद प्रतीत होता है। लेसिंग Lessing का कथन है कि "जब विचार करना दुष्कर प्रतीत होने लगता है तभी हमारी इच्छा विचार को छोड़ देने की होती है यद्यपि विचार का सच्चा प्रतिफल हमें तभी मिलता है"। जब कभी हमारे सामने ऐसे प्रश्न आ उपस्थित होते हैं जिनका हल करना बहुत ही आवश्यक है तो हमको परिश्रम करना पड़ता है। हम इस परिश्रम से बचना चाहते हैं और यदि कोई दूसरा उपाय नहीं है तो हम उन्मादक वस्तुओं के प्रयोग द्वारा अपनी अन्तरात्मा को स्तम्भित करने की चेष्टा करते हैं जिस से उन प्रश्नों का उचित विवरण न करने के लिए वह हमारी निन्दा न करे। जब मदिरा पीकर हम उन्मत्त हो जाते हैं तो हमारी अन्तरात्मा हमको उन सवालों को हल करने के लिये बाधित नहीं करती। उन्मत्तावस्था के बाद जब हम अपनी प्रकृति में फिर आ जाते हैं तो वे प्रश्न हमारे सामने फिर उठते हैं और फिर उन को हल करने के लिये हम बाध्य होते हैं। हम फिर शराब पी कर अपने अन्तःकरण को स्तम्भित कर लेते हैं। यही क्रम मरण पर्य्यन्त लगा रहता है और कभी हम उन प्रश्नों का विवरण भली भांति नहीं कर पाते। हम यह जानते हैं कि इन्हीं प्रश्नों के विवरण पर हमारी उन्नति निर्भर है परन्तु मदिरादि उन्मादक वस्तुओं के ऐन्द्रजालिक जाल से छुटकारा पाना कोई सहज काम नहीं है। हमारे जीवन की उन्नति भले ही रुक जाय, हम दुःखपङ्क में सदा के लिये भले ही निमग्न हो जाँय परन्तु थोड़े से परिश्रम से बचने के लिए उन्मादक वस्तुओं का प्रयोग कर के हम अपने अन्तःकरण को अवश्य स्तम्भित करेंगे। धन्य मानवप्रकृति! जिसमें इतना भी बल नहीं कि पाशविक वृत्ति की प्रेरणाओं को रोक सके।

जब कोई मनुष्य गदले पानी के गर्त की सतह पर पड़े हुए किसी बहुमूल्य रत्न को लेना चाहता है परन्तु पानी में घुसने से हिचकता है तो वह क्या करता है? वह बैठे बैठे देखा करता है और जभी पानी स्थिर होने लगता है और उसमें की मट्टी बैठने लगती है तभी रत्न लेने के लिये उसे हिलोर कर वह फिर पङ्किल कर देता है। बहुत से मनुष्य अपने अन्तःकरण के साथ ऐसा व्यवहार करते हैं। जभी उनका अन्तःकरण मदिरादि के प्रभाव से निर्मुक्त होकर अपने कर्तव्यपालन में कटिबद्ध होने लगता है तभी वे शराब पीकर उसे फिर कण्ठावरुद्ध कर देते हैं। यही क्रम मरणपर्यन्त लगा रहता है। जो प्रश्न उनके सामने आते हैं उनका उचित विवरण कभी नहीं हो पाता—वे अज्ञान की दुर्भेद्य भित्ति का भेदन तो अवश्य करना चाहते हैं परन्तु उनकी विचार रूपी कुदाल तो कुण्ठित हो जाती है। वे सफलप्रयत्न कहां से हों।

प्रत्येक मनुष्य को उस समय का स्मरण करना चाहिये जब कि वह तम्बाकू इत्यादि का

प्रयोग किया करता था। उसको अपनी तुलना और मनुष्यों से करनी चाहिये और तब उसे यह बात अच्छी तरह मालूम हो जायगी कि उन लोगों में जो तम्बाकू का प्रयोग करते हैं और उनमें जो नहीं करते बड़ा भारी अन्तर है। जितना ही अधिक मनुष्य अपने अन्तःकरण को स्तम्भित करेगा उतना ही अधिक उसका कर्तव्याकर्तव्य का विवेक मन्द हो जायगा।

(६)

अफीम इत्यादि का प्रभाव मानवजाति पर बहुत बुरा पड़ता है। शराबियों पर शराब के प्रमाणाधिक प्रयोग का प्रभाव भी बहुत बुरा पड़ता है परन्तु शराब के थोड़े २ और प्रासंगिक प्रयोग का समाज पर सबसे भयङ्कर प्रभाव पड़ता है। "हमारे पढ़े लिखे देशवासी भी लज्जा और मान को जलाञ्जलि देकर उन्मादक वस्तुओं का प्रयोग स्वीकार करते हैं। इससे बढ़कर देश के सच्चे हितैषियों के लिये अधिक उद्वेगजनक बात और क्या हो सकती है।"

परिणाम अवश्य भयङ्कर होंगे क्योंकि जितने धार्मिक, वैज्ञानिक, राजनीतिक और साहित्यिक कार्य हैं वे सब प्रायः उन्हीं लोगों द्वारा किये जाते हैं जो मद्यसेवी हैं, जिनकी अवस्था मदिरा के परिमाणाधिक प्रयोग के कारण ख़राब और कार्य करने के अयोग्य हो गई है। यह कहा जाता है कि वह आदमी जो हमारे धनी भाइयों की तरह भोजन के उपरान्त थोड़ी सी मदिरा पीता है दूसरे दिन जब कोई काम करता है तो अपनी स्वाभाविक अवस्था में रहता है अर्थात् उस पर मदिरा का कोई प्रभाव नहीं पड़ता और वह अपने सब काम भलीभाँति कर सकता है। यह विचार सर्वथा अशुद्ध और भ्रान्ति उत्पन्न करनेवाला है। जिस मनुष्य ने कल एक बोतल शराब की पीई है वह आज अपनी स्वाभाविक अवस्था में कभी नहीं रह सकता। उस पर निद्रा, तन्द्रा, आलस्य, मानसिक विषण्णता आदि मदिरा के सन्तानगण सभी आक्रमण करेंगे और इनकी वृद्धि एक आध सिगरट या सिगार बड़ी सुगमता से कर सकता है। वह मनुष्य जो मदिरा का नियमित प्रयोग करता चला आया है अपने मस्तिष्क को स्वाभाविक अवस्था पर तभी ला सकता है जब वह एक या दो सप्ताह तक मदिरा और तम्बाकू को बिलकुल छूए नहीं। परन्तु लोग ऐसा बहुत कम करते हैं।

यहां पर यह शंका की जाती है कि अक्सर यह देखा गया है कि वे लोग जो मदिरा और तम्बाकू बिल्कुल नहीं पीते उन लोगों से जो कि पीते हैं कहीं ख़राब होते हैं। उनके मानसिक गुण इतने प्रकृष्ट नहीं होते और वे अपने कर्तव्यपालन में इतने दृढ़ नहीं होते। यह भी अक्सर देखा गया है कि वे लोग जो मदिरा का प्रयोग करते हैं उन लोगों की अपेक्षा जो मदिरा पान नहीं करते कहीं अधिक साधुवृत्त और सदाचारी होते हैं। उनमें गुण भी सब से प्रकृष्ट होते हैं।

इसका उत्तर यह है कि पहिले हम यह नहीं जानते कि एक मनुष्य कितनी उन्नति करता यदि वह शराब के पञ्जे में न पड़ जाता और दूसरे यह कि यदि शराब पीने वाला मनुष्य शराब पीकर भी इतने अच्छे काम कर सकता है तो शराब छोड़ देने पर वह इससे भी अधिक अच्छे काम करेगा। मेरे एक मित्र ने मुझ से एक बार कहा और उनका कहना बहुत ठीक है कि यदि कैंट शराब का प्रयोग न करता होता तो उसकी किताबें इतने बुरे और क्रमहीन ढँग पर न लिखी जातीं। मनुष्य की मानसिक अवस्था जितनी नीची होगी उतना ही वह अपने कामों और अन्तःकरण की असंगतता को न जान सकेगा और इस कारण मदिरा का प्रयोग करके उसे अपने अन्तःकरण को कण्ठावरुद्ध करने की आवश्यकता भी कम पड़ेगी। प्रत्युत वे मनुष्य जो शीघ्रचेता हैं, जो अपने अन्तःकरण और अपने कामों की असंगतता को बहुत शीघ्र जान सकते हैं मदिरा का प्रयोग

अधिक करते हैं और उसी के ग्रास बन कर शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं।

इससे यह स्पष्ट है कि अधिकांश वे लोग जो दूसरों का शासन करते या दूसरों को पढ़ाते हैं अपनी स्वाभाविक अवस्था में नहीं होते। यह कोई ऐसी बात नहीं है जिस पर ध्यान न दिया जाय या जो मज़ाक़ में टाल दी जाय। हमारे जीवन में जितनी गड़बड़ मची रहती है और हमारी जितनी निर्बलता है उस सब का कारण मदिरा ही है। जितने अपकृष्ट काम हमारे चारों ओर रोज़ किये जाते हैं उन्हें क्या कोई बुद्धिमान् और शान्त मनुष्य करेगा?

सैकड़ों मीनार इतना धन व्यय करके हर वर्ष बनाई जाती हैं। इतने लोहे का व्यय होता है, मज़दूर लोग इतना परिश्रम करते हैं। हम लोग आनन्द प्राप्ति के लिये उन पर चढ़ते हैं और उतर कर ऐसे ही मीनार और स्थानों में बनवाते हैं। मीनार बनवाने की वस्तुतः कोई आवश्यकता नहीं। क्या शान्त मनुष्य इतना धन व्यर्थ में कभी व्यय करेंगे और विशेषता यह कि जब धन का सदुपयोग और तरीक़ों से हो सकता है। यूरोप की सब जातियाँ बहुत वर्षों से इस बात में पीछे पड़ी हुई हैं कि एक दूसरे की हत्या करने का सब से सुगम उपाय कौन निकाला जाय। वे अपने नवयुवकों की पारस्परिक हत्या करने के लिये इतना परिश्रम करती हैं, पाठशालाएँ खोलती हैं और असंख्य धन व्यय करती हैं। इस बात को सब जानते हैं कि कहीं की जङ्गली जातियाँ उन पर आक्रमण नहीं करेंगी परन्तु सभ्य जातियों की ये सब तैयारियाँ एक दूसरे का गला काटने के लिये की जाती हैं। यह सब जानते हैं कि इन तैयारियों के करने में बड़ा कष्ट होता है, बहुत धन ख़राब होता है परन्तु तब भी तैयारियाँ होती जाती हैं। किस लिये? एक दूसरे की हत्या करने के लिये। इस बात की निर्णय करने के लिये कि कौन किस की हत्या करेगा। बहुत सी जातियाँ आपस में मिल जाती हैं। बहुत सी हत्या सिखाने का भार अपने ऊपर ले लेती हैं और बहुत सी अपने अन्तःकरण के विरुद्ध इस कार्य में योग देती हैं। क्या कभी शान्तप्रकृति मनुष्य ये सब बातें करेंगे? केवल शराबी जिनकी अन्तरात्मा कुण्ठित हो जाती है इस काम को कर सकते हैं। मानव जाति के इतिहास में ऐसा कभी पहिले नहीं हुआ है। मानव जाति आजकल बिल्कुल निश्चल हो गई है। ऐसा प्रतीत होता है कि कोई बाह्य कारण उस को अपने अन्तःकरण के अनुकूल चलने नहीं देता। अन्तःकरण के स्तम्भन के अतिरिक्त और क्या कारण हो सकता है? जिस दिन मानव जाति इस पाप से छुटकारा पावेगी वह दिन उसके इतिहास में सुवर्ण के अक्षरों में लिखे जाने के योग्य होगा। वह दिन अब शीघ्र ही आने वाला है। उन्मादजनक वस्तुओं के बुरे प्रभाव को सब समझने लगे हैं। हमारी बुद्धि अभी तक तिमिराच्छन्न थी, ज्ञानसूर्य के उदय होने से तिमिर छिन्न-भिन्न हो गया है। सब बातें अपनी असली हालत में हम को सुझाई देने लगी हैं। हम अपने अन्तःकरण के आदेशों को सुनने लगे हैं। हम लोगों ने मदिरा से भी नाता तोड़ दिया। ईश्वर वह दिन शीघ्र लावे जब सम्पूर्ण मानव जाति मदिरा के प्रभाव से निर्मुक्त हो कर अपने कर्तव्यपालन में कटिबद्ध हो जाय और हम लोग एक दूसरे को भाई कह के गले लगावें। अनैक्य छोड़ कर देशोन्नति के साधन में प्रवृत्ति हो।*

हे अज्ञान तमोविनाशक विभो आत्मीयता दीजिये।
देखें हार्दिक दृष्टि से सब हा! ऐसा कृती कीजिये॥
देखें त्या हम भी सदैव सब को सन्मित्र की दृष्टि से।
फूल और फल परस्पर सभी सौभाग्य की वृष्टि से॥

(मैथिलीशरण गुप्त)

*Tolstoy लिखित Why do men stupefy themselves शीर्षक निबन्ध का भावानुवाद।

मातृभाषा में शिक्षा।*

[लेखक—श्रीयुत पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी ।]

क्षाप्राप्ति और ज्ञानसम्पादन का सब से बड़ा साधन भाषा है। शिक्षा यदि अपनी भाषा में—मातृभाषा में—दी जाय तो इस साधन का महत्व और इसका प्रभाव और भी अधिक होजाय। चींटी से लेकर विशालकाय हाथी तक और रजःकण से लेकर हिमालय तक एक भी पदार्थ संसार में ऐसा नहीं जिसका सम्पूर्ण ज्ञान आजतक किसी ने प्राप्त किया हो। ज्ञान की सीमा नहीं। ज्ञानसागर की थाह नहीं; वह अगाध है; मर्यादारहित है। इस दशा में ज्ञानसाधन यदि सर्वश्रेष्ठ होता तभी कुछ सफलता की आशा की जा सकती है। तभी उसका शतांश, सहस्रांश प्राप्त किया जा सकता है। साधन जितनाही कठोर, श्रमसाध्य और दुष्प्राप्य होगा, ज्ञान-सम्पादन में सफलता भी उतनी ही कम होगी। शिक्षा बहुत व्यापक शब्द है। उसमें सभी प्रकार की शिक्षाओं का अन्तर्भाव हो सकता है। शिक्षा का अर्थ सीखना है और कोई बात सीखना उसका ज्ञान-सम्पादन करना है। इस दृष्टि से ज्ञान और शिक्षा प्रायः एक ही चीज़ है।

ज्ञानबल से बढ़कर और कोई बल नहीं। शारीरिक बल उसके सामने विशेष महत्व नहीं रखता। शरीरसम्बन्धी बल की अपेक्षा ज्ञानबल ही श्रेष्ठ है। ज्ञानशक्ति से जो पदार्थ प्राप्त हो सकता है, शरीरशक्ति से नहीं। ज्ञान की महिमा का अन्दाज़ा इसीसे कर लीजिए कि ईश्वर की प्राप्ति या उसके साक्षात्कार का साधन भी ज्ञान ही है। वर्तमान युद्ध के मैदान में लाखों सैनिक अपना शरीरबल खर्च कर रहे हैं। रोज़ ही जय-पराजय के समाचार आप अख़बारों में पढ़ते हैं। पर विजयी पक्ष की जीत का एक मात्र कारण आप सैनिकों की शारीरिकशक्ति न समझिये। ऐसा समझना बड़ी भारी भूल होगी। विजय का प्रधान कारण ज्ञानबल ही है। जिन विज्ञानियों, विद्वानों और शास्त्रज्ञों ने युद्ध के विशालाकार जहाज़, कालमर्दिनी तोपें, नरनाशक गोले, टारपीडो और सबमेरीन आदि का निर्माण किया है वही इस जीत के मूल और प्रधान कारण हैं। वे यद्यपि युद्ध के मैदान में नहीं, वे यद्यपि किसी एकान्त कोठरी में बैठे हुए शास्त्रीय रहस्यों के उद्घाटन में निमग्न हैं, तथापि जीत का कारण उन्हीं का ज्ञानबल है।

सब तरह की उन्नतियां, चाहे लौकिक हों चाहे पारलौकिक, ज्ञान ही की कृपा से होती हैं। अज्ञानियों और अशिक्षितों ने कभी कोई उल्लेखयोग्य उन्नति नहीं की। देश, जाति, समाज, कला-कौशल, वाणिज्य-व्यवसाय आदि से सम्बन्ध रखनेवाली सभी उन्नतियों की जड़ आप शिक्षा और ज्ञान को ही पाइयेगा। जिस ज्ञान, जिस शिक्षा का इतना माहात्म्य है उसकी प्राप्ति का साधन जितना ही सुलभ हो उतना ही अच्छा। अतएव हमारा कर्तव्य है कि हम अपने कल्याण के लिए इस साधन को खूब सुलभ कर दें। यह सुलभता मातृभाषा ही के द्वारा हो सकती है। बरसों की राह महीनों में इसी साधन से तै हो सकती है। इस साधन को सुलभ कर देना बहुत कुछ हमारे ही हाथ में है।

* यह लेख प्रथम प्रान्तीय हिन्दी कानफ़रेन्स में पढ़ा गया था और श्रीमान् राय देवीप्रसाद पूर्ण की कृपा से प्राप्त हुआ है।

अँगरेज़ी राजभाषा है। उसे तो हमें सीखना ही चाहिये। बिना उसे सीखे हमारा निस्तार नहीं। पर उसका व्यापक प्रचार देश में नहीं हो सकता। इस देश में अँगरेज़ी राज्य हुए कोई डेढ़ सौ वर्ष हुए। पर अब तक फी तीन चार सौ आदमियों पीछे कहीं एक आदमी थोड़ी बहुत अँगरेज़ी जानता है। इस दशा में गाँव गांव उसका प्रचार होना सम्भव नहीं। और अपने देशभाइयों को अज्ञानान्धकार में पड़े रखना पाप है। उनके इस अन्धकार को दूर करने के लिए अपने भाषाभास्कर के प्रकाश की ज़रूरत है। इस बात को गवर्नमेंट भी मानती है। १७ मार्च को इम्पीरियल कौंसिल में श्रीयुत रायनिङ्कर के प्रस्ताव के सम्बन्ध में गवर्नमेंट की ओर से जो कुछ कहा गया वह इस बात का दृढ़ प्रमाण है। गवर्नमेंट अँगरेज़ी भाषा की शिक्षा का मार्ग तो संकुचित नहीं करना चाहती; पर एक निर्दिष्ट सीमा के भीतर देशी भाषाओं के द्वारा शिक्षादान के मार्ग में बाधा भी नहीं डालना चाहती। सब बातों पर विचार कर के यदि उस मार्ग को अधिक प्रशस्त करने की आवश्यकता समझी गई तो वह वैसा ही करने को तैयार है। उसकी इस कृपा के लिए हमें कृतज्ञ होना चाहिये।

हमारी भाषा हिन्दी है। उसके प्रचार के लिए गवर्नमेंट जो कुछ कर रही है सो तो कर ही रही है। हमें चाहिये कि अपने घरों का अज्ञानतिमिर दूर करने और अपना ज्ञानबल बढ़ाने के लिए हम भी इस पुण्यकार्य में लग जायँ। यह काम अनेक प्रकार से हो सकता है। समाचारपत्र और सामयिक पुस्तक निकालकर इस तिमिर का परदा कुछ कुछ हटाया जा सकता है। अच्छी २ नई पुस्तकें लिखकर और अन्य भाषाओं के उपयोगी ग्रन्थों का अनुवाद कर के सुशिक्षा और ज्ञान की वृद्धि की जा सकती है। स्कूल और पुस्तकालय खोलकर, सभाएँ और सम्मेलन करके, व्याख्यान और उपदेश देकर भी इस कार्य की अंशतः पूर्ति की जा सकती है। जो शिक्षित हैं-जिन्होंने ज्ञानसम्पादन किया है-उन्हीं को इस कल्याणकारी कार्य में आगे बढ़ना चाहिये। घर का मुखिया ही बच्चों और अपने से छोटों की शिक्षा का जवाबदेह समझा जाता है। यदि वह उनकी शिक्षा का प्रबन्ध न करे तो समाज ही नहीं, ईश्वर भी शायद उसे कर्तव्यपराङ्मुख समझे। और अपना कर्तव्य न करना अधिकार का दुरुपयोग करना है, अक्षम्य अपराध करना है, कौटुम्बिक नियम को तोड़ना अतएव पाप करना है। समाज में जो शिक्षित हैं-दूसरों को शिक्षा देने की जिनमें शक्ति है-उनका दरजा भी घर के मुखिया ही के सदृश है। क्योंकि समाज भी एक प्रकार का विस्तृत घर है और उसके सारे मेम्बर-उसके सारे अङ्ग-उस घर के निवासी हैं। इस दशा में समाजरूपी घर के मुखियाजनों का कर्तव्य है कि वे उसके मेम्बरों की शिक्षा का यथाशक्ति प्रबन्ध करें। यदि आप इस कथन के कुछ भी सार समझते हों तो प्रण कीजिये कि वर्ष के बारह महीनों में बारह नहीं तो कम से कम एक मनुष्य में आप हिन्दी का प्रेम अवश्य उत्पन्न कर देंगे, अथवा उसे थोड़ी बहुत हिन्दी अवश्य सिखा देंगे, अथवा उसके लिए हिन्दी-शिक्षा की प्राप्ति अवश्य सुलभ कर देंगे। ईश्वर आपको इस कर्तव्यपालन के लिए शक्ति, उत्साह और अनुराग प्रदान करे!

सम्राट् अशोक।

[लेखक—श्रीयुत दयानन्द चौबे ।]

जिस दीपक ने आर्यवर्त में
पुंज प्रभा का दरसाया।
ईसा से भी तीन शताब्दी
पूर्व जन्म जिसने पाया॥
सकल जगत है जिसकी महिमा
वर्णन करता अबतक भी।
जबतक सूर्य चन्द्रमण्डल हैं
बनी रहेगी तबतक भी॥
विस्तृत साम्राज्य था जिसका,
न्यायपूर्ण था जिसका राज।
था अशोक सम्राट् वही
जिसके थे सारे उज्ज्वल काज॥
जिसने उच्च कलिंग मान को
मर्दन कीन्हा निज कर से।
अगणित सहस्र वीर को जिसने
मार गिराया निज सर से॥
समरभूमि का दृश्य देखकर
व्यग्रचित्त हो गया अशोक।
हृदय दुखित होगया कुँअर का
प्रकट किया अति दारुण शोक॥
अद्यावधि भगवान बुद्ध का
धर्म दयामय ग्रहण किया।
संसारिक दुःखों के कारण
दुष्कर्मों को छोड़ दिया॥
पटलिपुत्र में धर्म सभा को
स्थापित तब किया कुँअर।
अन्य देश को सद्उपदेशक
उसने भेजा तेहि अवसर॥

लंका, चीन, मिश्र, ब्रह्मा में
भेजा उसने उपदेशक।
ग्रीस, सीरिया, में भी भेजा
बौद्ध धर्म के संप्रेरक॥
इस प्रकार प्रचलित कर दिया
धर्मान्दोलन से उसने।
बौद्ध धर्म को उच्च शिखर पर
और अन्य रक्खा किसने॥
चौदह इसने नियम बनाकर
प्रजा से पालन करवाया।
पत्थर के स्तम्भों पर लिखवा
निज देशों में गड़वाया॥
वृक्ष लगाये गये सड़क पर
वासस्थान नियुक्त हुए।
न्याय, चिकित्सा, पाठालय से
देश नगर सब युक्त हुए॥
उत्पति के अनुसार प्रजा को
चौथाई कर देना था।
पर सुकार्य में औ सुरीति से
फिर वह उनको लेना था॥
मुनस्पेलटियां रहीं उपस्थित
चन्द्रगुप्त के शासन से।
अति उन्नति की योग्य नृपति ने
काज बना निज हाथन से॥
सुन्दर यश का भाजन होकर
फिर तो वह चल दिया अशोक।
अति दुःखित सब हुए प्रजागण
बहुत मनाया उसका शोक॥

गीताञ्जलि।

[लेखक-श्रीयुत रवीन्द्रनाथ ठाकुर।]

गताङ्क की पूर्ति।

(४१)

ये मेरे प्रियतम, तू अपने को छाया में छिपाये सब के पीछे कहां खड़ा है?

सड़क पर लोग तुझे तुच्छ समझकर और धिक्कार देते मार्ग से हटा देते हैं। तुझे अपेक्षा करने के लिए मैं वस्त्र फैलाये बैठा घड़ियां गिन रहा हूं। पथिक आते हैं और एक २ करके मेरे फूल ले जा रहे हैं, मेरे फूलों की डाली प्रायः खाली पड़ गई है।

प्रातःकाल गया और मध्याह्न भी होगया। शाम की छाया में मेरे नेत्र नींद से भर रहे हैं। अपने २ घरों को जानेवाले लोग मेरी ओर देखते हैं, मुसकराते हैं और मुझे लज्जित करते हैं। मैं भिखारी के समान बैठा हूं और अपने वस्त्र के छोर से अपने मुंह को उनकी घूरनेवाली आंखों से छिपाता हूं और जब वह मुझसे पूछते हैं कि तुम क्या मांगते हो, तो मैं अपनी दृष्टि नीचे कर लेता हूं और उत्तर नहीं देता।

हाय! मैं उन्हें कैसे बता सकता हूं कि मैं तेरी बाट देख रहा हूं और यह कि तू ने आने का वचन दिया है। मैं लज्जा के कारण कैसे बता सकता हूं कि मैंने अपनी निर्धनता दहेज़ में देने के लिए रख छोड़ी है। मैं इस पर अपने मनही मन में अभिमान करता हूं। मैं घास पर बैठा आकाश की ओर आशा बँधी दृष्टि डालता हूं और तेरे आगमन सम्बन्ध के [illegible] और विचित्र २ स्वप्न देखता हूं। मशालें जल रही हैं, सुनहरी झंडे तेरे रथ के ऊपर उड़ते हैं। जब लोग तुझे रथ से उतर कर मेरी ओर बढ़ते और इस भिखारिणी को पृथ्वी से उठा कर अपने पास बिठाते देखते हैं तो आश्चर्य में डूब जाते हैं।

घड़ियां बीतती चली जाती हैं और तेरे रथ के पहियों की कोई आवाज़ सुनाई नहीं देती। कई जलूस आनन्द-ध्वनि करते हुए चले जाते हैं। क्या तूही है जो चुपचाप छाया में खड़ा है और क्या केवल मैं ही हूं जो विफल तृष्णा में अपने हृदय को रो २ कर बेसुध रखता हूं।

* * * *

(४२)

प्रातःकाल यह इशारा हुआ था कि तू और मैं नाव पर बैठ कर चल देंगे और किसी को भी मालूम नहीं होगा कि किस देश को किस काम के लिये जा रहे हैं। इस समुद्र तट पर तेरी ध्वनि और तेरी मधुर हँसी पर मेरे भजन मधुरता का वस्त्र पहिनेंगे। वे लहरों के समान शब्दों के बन्धनों से स्वतन्त्र होंगे। क्या अभी समय नहीं हुआ है? क्या अभी कुछ काम करना बाकी है? यह लो, नदी के तट पर ही संध्या ने आघेरा। मध्यम प्रकाश में जल के पक्षी अपने घोंसलों में बसेरा करने को उड़े चले जाते हैं।

कौन जानता है कि बेड़ियाँ कब उतरेंगी और डूबते हुए आकाश की अन्तिम चमक के समान नैया रात्रि में कब लीन हो जायगी।

* * * *

(४३)

एक समय वह था कि जब मुझे तेरा आधिपत्य स्वीकार न था। तो भी ए मेरे मा[illegible]

राज ! तू साधारण मनुष्यों के समान बिना जाने मेरे हृदय में बिना बुलाये चला आया और अनन्त जीवन की मोहर मेरे जीवन की शीघ्र नाश होनेवाली घड़ियों पर लगा दी।

आज जब मैंने दैवयोग से उनको देखा तो तेरे हाथ की मुहर वहां मिली। इससे मालूम होता है कि मेरे जीवन के भूले बिसरे दिन जिनके साथ सुख दुख लगे हुए हैं मिट्टी में मिले हुए हैं। मुझे बालकों के समान मिट्टी में खेलते देखने पर भी तू ने मुझ से द्वेष नहीं किया और न अपना मुंह मेरी ओर से फेरा। और जिन पदों की ध्वनि मैंने अपने खेल के कमरे में सुनी थी-वह वही है जिसकी आवाज़ एक तारे से दूसरे तारे तक सुनाई देती है।

* * * *

(४४)

सड़क के किनारे पर जहां छाया प्रकाश के पीछे फिरती है और वर्षा-ग्रीष्म के पद पर उपस्थित होती है बाट जोहने और तेरा मार्ग देखने में मुझे आनन्द प्राप्त होता है।

दूत अनजान आकाशों की ओर से सँदेश लेकर आते और मुझे नमस्कार करते हुए तेज़ी से आगे निकल जाते हैं। मेरा मन भीतर ही भीतर प्रसन्न है।

सूर्योदय के समय से सायंकाल तक मैं अपने द्वार पर बैठा रहता हूं और मैं जानता हूं कि अचानक वह समय आवेगा जब मैं उसे देख सकूगा।

इसी बीच में अकेले प्रसन्नचित्त हँसता और आनन्द के गीत गाता हूं और तेरे आगमन की आशा की सुगंध से वायु भरी जारही है।

* * * *

(४५)

क्या तुमने उसकी धीमी चाल की आहट नहीं सुनी ?

वह आता है, वह सदा आता है. हर घड़ी आता है, हर रोज़, हर समय, हर साल वह आता है, वह नित्य आता है, मैंने बहुत से अजान अपने मन की भिन्न २ दशा में गाये हैं परन्तु उन सब के गीतों की कुंजी यही है कि वह आता है वह सदा आता है।

वह वैशाख की सुहावनी ऋतु में जब वायु फूलों की मन्द २ सुगंध से लदी हुई होती है वन के मार्ग से आता है।

वर्षा ऋतु में वह सावन की अँधेरी में बादलों के गर्जनेवाले रथों पर सवार होकर आता है। जब मैं शोक और सन्ताप से पीड़ित होता हूं तब उसके चरणों की आहट मेरे हृदय को हलका करती है और उसके सुनहरी चरणों के छूने से मेरा आनन्द चमक उठता है।

* * * *

(४६)

मैं नहीं जानता कि तू किस समय से मेरे मिलने के लिए निकट आरहा है। सूर्य और चन्द्रमा मुझसे तुझको सदा छिपाये हुए नहीं रख सकते। कई बार प्रतःकाल और सायंकाल तेरे चरणों की आहट सुनाई देती है और तेरा दूत मेरे हृदय के भीतर आता है और मुझे चुप चाप बुलाता है। मैं नहीं जानता कि आज मेरा जीवन विचलित क्यों है? और आनन्द की तरंगें मेरे हृदय में लहर क्यों मार रही हैं। ऐसा मालूम होता है कि अपना काम आज बन्द कर देने का समय निकट आपहुंचा है। मुझे वायु में भी तेरे आगमन का आभास हो रहा है।

* * * *

(४७)

इसकी प्रतीक्षा में प्रायः सारी रात निकल गई। मुझे डर है कि जब मैं थक कर प्रातःकाल सोजाऊं तो वह कहीं चुपके से न आजाय। मित्रो इसके लिए मार्ग खुला छोड़ दो। उसे मना

मत करो। यदि उसके पैरों की आहट से भी मेरी नींद न खुले तो मुझे मत उठाओ। मैं नहीं चाहता कि पक्षियों की चहचहाहट मुझे नींद से उठाये या सबेरे के प्रकाश में वायु के प्रवाह से मेरी आंख खुले। यदि मेरा प्रभु अचानक मेरे द्वार पर आजाय तो मुझे सोने दो।

अहा! मेरी नींद! मेरी प्यारी नींद! वह केवल उसी के हाथ लगने से दूर होगी जबकि वह इस स्वप्न के समान मेरे सामने आकर खड़ा हो जायगा। मेरे प्रभु सब प्रकाशों और रूपों से पहिले तू मेरे नेत्रों के सामने आ। मेरे स्वामी! प्रातःकाल होने के बाद जो आनन्द मेरी आत्मा को प्राप्त हो वह तेरे दर्शनों से उत्पन्न हो और जब मुझे अपने स्वरूप का ज्ञान हो तो उसी दम मैं अपने प्रभु के पास चला जाऊं।

* * * *

(४८)

शांति का समुद्र प्रातःकाल पक्षियों की चहचहाहट की छोटी २ लहरों के साथ उमड़ता है। सड़क के आस पास फूल हँस रह हैं और बादलों को चीरकर सोने का श्रोत बह निकलता है। परन्तु हम अपने ध्यान में मग्न अपने रास्ते चलते रहे। इन बातों का ध्यान हमने किया। न आनन्द के गीत गाये न बीणा बजाई।

हम गांव में भी नहीं गये। न हमने किसी से बात की, न हँसे और न मार्ग में विश्राम लेने को ठहरे। किन्तु ज्यों २ समय व्यतीत हुआ तेज़ी से कदम उठाते चले गये।

सूर्य आकाश के बीच आपहुंचा है और पक्षी छाया में छिपकर कुहूकुहू कर रहे हैं। मुर्झाये हुए पत्ते दोपहर की उष्ण वायु में वृक्षों की डालियों से टूटकर नीचे गिर रहे हैं, गड़ेरिये का लड़का बड़ की छाया में ऊंघ रहा है, मैं पानी के किनारे लेट गया और मैंने अपने थके हुए हाथ पांव घास पर फैला दिये।

मेरे साथियों ने मेरी हँसी उड़ाई और घमंड से सिर ऊंचा किये हुए जल्दी २ आगे बढ़े चले गये। पीछे फिरकर भी नहीं देखा।

जब मैं नींद से उठा तो तुझे हँसते हुए अपने सामने पाया।

* * * *

(४९)

तुम अपना सिंहासन छोड़ मेरे झोंपड़े में आये। मैं अकेला एक कोने में बैठा भजन गा रहा था। मेरी आवाज़ तुम्हारे कानों तक पहुंची। तुम नीचे उतरे और मेरी कुटी के द्वार पर आकर खड़े हो गये। तुम्हारे महल में सिद्ध गवैये हैं और सदा वहां गीत गाये जाते हैं। परन्तु इस नौसिखुए की आवाज़ से तुम्हारा प्रेम फड़क उठा। संसार के गीतों के साथ एक धीमी आवाज़ मिली हुई है। तुमने उसे सुना और इनाम देने को एक फूल लेकर नीचे आये और मेरी कुटी के द्वार पर आ ठहरे।

जय स्वतन्त्रते !

[लेखक—श्रीयुत भगवन्नारायण भार्गव ।]

जय स्वतन्त्रते ! मातु हमारी ।

जय सुभग-विद्या-सर-सुरभित-
सित-सरोजनी प्यारी ॥

जय २ सान्ति-कान्ति-प्रिय-त्रिभुवन-
मधि छहरावनवारो ।

जय निरमल-अविरल-यस-अमरित
सरित-बहावन वारी ॥

सुखद-सतत-सुचि-स्वाभिमान की
अजय-श्रेय-महतारी ।

पुरुसनु साँचौ पुरुस बनावे
जतन कियो तुम भारी ॥

प्रान-प्रिये ! तुम बिन पसुसम सब
ह्वै है सृष्टि विचारी ।

तुव प्रताप त करत प्रकासित
सूर चन्द्रमहिं सारी ॥

जग-जीवन-धारनहित बरसत
घन तें सावनवारी ।

अनुपम त्रिविध बयारि भई
कुसुमन विकसावनवारी ॥

मातु ! तुमहिं महिमहिम-महा-छबि
सादर सदय सँवारी ।

आत्म-तेज-करतें विनसाई
अघ-घन-माला-कारी ॥

जननि ! हरहु भारत अज्ञान ।

तुमहिं बहुत जन 'निमर्यादा'
हा हा ! लिय अब मान ॥

अरु अबोध ते वे सबु त्यागत
वृथा आपने प्रान ।

नीति-नियम-विपरीत-काज कों
समुझत वे कल्यान ॥

सदाचार-सेवा कों मानत
अधम-अधर्म महान ।

सज्जनु शास्त्रनु करत निरादर
करि मद-मदिरापान ॥

अम्बे ! निज सन्तानमात्र हित
कीजे बुद्धि-प्रदान ।

अपनि प्रभा ते हिन्द देश मधि
तानहु धरम-वितान ॥

काम क्रोध मद मत्सर असुरन
मारो तीखन बान ।

यासइ सहिं करहु अमर-सद-
गुन-गन-प्रिय-उद्यान ॥

आग की चिनगारी।*

[लेखक—श्रीयुत अम्बिकाप्रसाद पाण्डेय एम० एस० सी० ।]

माणिकपुर में 'रमेश' नाम का एक बहुत ही सम्पन्न कृषक रहता था। रुपया उसके पास बहुत था, अन्न भी हर साल खूब हुआ करता था। खूब चैन से दिन कटरहे थे। उसको ऐसी दशा में देखकर उसके बहुत से पड़ोसी उससे द्वेष रखते थे, उससे निष्कारण क्रुद्ध रहते थे। उसकी ऐसी दशा कैसे हुई? उसका समय इतने सुख से क्यों कट रहा है? ऐसेही अनेक प्रश्न उसके पड़ोसियों के हृदय में रह २ के उठा करते थे।

रमेश के पिता का नाम महेश था। उनकी अवस्था ८० वर्ष से अधिक होगई थी। अब उनसे कोई काम न होता था। चारपाई पर पड़े २ वा सोए २ बेचारे अपना बुढ़ापा किसी प्रकार बिता रहे थे। संसार में अब अधिक ठह-रने की इच्छा तो थी नहीं, पर किया क्या जाय? मृत्यु चाहने से तो आती नहीं। रमेश के ज्येष्ठ पुत्र नरेश का विवाह होगया था। मध्यम पुत्र उमेश के विवाह की भी बात चीत चलरही था। कनिष्ट पुत्र दिनेश की अवस्था उससमय सवा-दस वर्ष की थी। तौभी वह हलके २ कामों में, उदाहरणार्थ बैलों को चारा देने में; उनके लिए घास काटने में, अपने बड़े भाइयों की सहायता किया करता था। सारांश यह कि रमेश बड़ा सुखिया था। धन तो था ही, पुत्र भी बड़े योग्य थे। तो फिर उसके यदि दो चार वैरी होई जांय तो इस में क्या आश्चर्य है?

हरीश रमेश का पड़ोसी था, वह भी बहुत सम्पन्न था। महेश और हरीश के पिता गिरीश बड़े मित्र थे। आवश्यकता पड़ने पर सदा एक दूसरे की सहायता किया करते थे। पर अनायास ही उनकी मैत्री ढीली पड़गई। अब वे एक दूसरे की सहायता नहीं करते वरन सदा निन्दा करने में निरत रहते हैं। यदि इस वैमनस्य का कोई प्रत्यक्ष कारण है तो केवल यही कि वे दोनों डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की मेम्बरी के लिए कोशिश कर रहे थे।

रमेश ने बहुत से हंस पाल रक्खे थे। नरेश की स्त्री लक्ष्मी उन हंसों को बहुत चाहती थी। वह रोज़ सवेरे उठ कर उन हंसों को स्वयं बाहर हांक आया करती थी। एकदिन मुहल्ले के छोटे छोटे लड़कों के शोर से भयभीत होकर सब हंस रमेश के घर पर न आसके। किसी तरह हरीश के मकान के पास की एक झोंपड़ी में रात बिताई। लक्ष्मी बहुत सवेरे हंसों के घर में गई पर वहां हंस उस समय कहां थे। तब उसने विचारा, कदाचित् हमारी सास हमसे पहले यहां आकर उनको न लेगई हों। अतएव सास के पास जाकर बोली, "माता जी! हंस और उनके बच्चे कहां हैं?"

"मैं तो उस घर में गई ही नहीं, मैं क्या जानूं!"

"तब हंस चल कहां दिये? मालूम पड़ता है कोई उन्हें उठालेगया। पर ऐसा करेगा कौन?"

यह बात हो ही रही थी कि दिनेश वहां पहुंच गए और बोले "क्या है? भावज—"

"बाबू! न जानें हंस कहां चलदिए।"

'अजी तुम्हारे हंस तो कल शाम को यहां आए नहीं। वे हरीश के मकान के पास

* टाल्सटाय के एक लेख के आधार पर लिखित।

एक झोंपड़ी में कल रात को ठहर गए। मालूम होता है उनके बच्चे वहीं होंगे।

लक्ष्मी उनको ढूंढ़ने के लिए उसी ओर चली। इतने सुबह इस तरफ़ आते हुए देखकर हरीश की स्त्री मङ्गला ने पूछा "क्यों बेटी! क्या सोचकर तू आज इधर को चली है?"

लक्ष्मी—"सुना है कि हमारे हंस कल रात को यहीं कहीं ठहर गए थे। उन्हीं के बच्चों को देखने मैं आई हूं।"

मङ्गला—"अरी तेरे हंस के बच्चे और यहां! हमें दूसरे के हंसों से क्या प्रयोजन? हमारे हंसों ने भी तो इस समय बच्चे दिए हैं।"

बात ही बात में दोनों लड़ने लगीं। यह सुनकर हरीश व रमेश भी वहां पहुंच गये। रमेश को क्रोध अधिक होगया। उसने हरीश की दाढ़ी उखाड़ ली। 'कैसे इसका बदला चुकाऊं, हरीश रात दिन यही सोचा करता था।

उस दिन से दोनों में बोलचाल बन्द हो गई। एक दूसरे को देखना नहीं चाहते थे। लड़ाई दिनोंदिन बढ़ती ही गई।

महेश लड़ाई सुनकर बहुत उदास हुआ। अपने पुत्र को बुलाकर कहा, 'बेटा, बड़े अफ़सोस की बात है, कि ऐसी छोटी चीज़ के लिए तुमलोग लड़ रहे हो। तुम स्वयं विचारो, क्या तीन चार हंसों के लिए अदालत देखना युक्तिसङ्गत है। मानलो कि दिनेश ने उन्हें मार डाला। देखो तो उनका मूल्य ही कितना है। ईश्वर ने तुम्हें काफ़ी ऐश्वर्य दिया है। क्यों पाप का बोझ भारी कर रहे हो? बेटा, बुड्ढे का कहना मान जाओ। आग की चिनगारी को बुझाओ; नहीं तो यह सबको भस्म कर डालेगी।

रमेश बुड्ढे की बात को काहे को सुनता। हरीश से लड़ाई ठनी रही। लड़ाई दिनोंदिन बढ़ती गई। यदि ये दोनों कहीं मिल जाते तो फिर क्या द्वन्द्व युद्ध होने लगता। गालियों की बौछार होने लगती। यदि नदी-घाट पर इनकी स्त्रियां पानी लाने वा कपड़ा कचारने जातीं तो अन्य स्त्रियों के सामने लड़ने झगड़ने लगतीं। इस प्रकार ६ सालतक निरन्तर यह महाभारत जारी रहा। बीच बीच में बुड्ढा पुत्र से कहा करता, "बेटा! अब रहने दो। झगड़ा बन्द करो। बहुत हुआ। अपना काम काज भी तो करो। इस आग में जितनी आहुति पड़ेगी उतनी ही यह प्रचण्ड होती जायगी।"

रमेश पिता की बात को ध्यानपूर्वक सुन लेता था, पर हरीश से लड़ना न बन्द करता।

सातवें साल दिनेश की शादी हुई। उसी गोलमाल में रमेश का एक लँगड़ा बैल खोगया। रमेश की पुत्र-वधू ने कहा "यह उसी मुंहझोंसे का काम है। मैंने अपनी आंखों से देखा है कि वह एक ग्वाले से उसके सम्बन्ध में बातें कर रहा था।"

हरीश ने भी यह बात सुनी। उसके क्रोध की सीमा न रही। उन्मत्त के समान वह रमेश के मकान के अन्दर चलागया और लक्ष्मी से बोला "अरी नीच! अरी हरामज़ादी! तूने हमें बैल चुराते हुए देखा है न! अच्छा देख।" यह कहकर उसे एक लात मारा। युवती उससमय गर्भवती थी। चोट लगते ही बेहोश होगई। रमेश वा नरेश उससमय कोई घर पर नहीं था अतएव फिर कोई आपत्ति नहीं हुई। पर रमेश ज्योंही घर वापस आया उसकी स्त्री ने इस घटना को खूब चढ़ाबढ़ा कर उसे सुनाया। यह सुनकर रमेश बहुत ही प्रसन्न हुआ और बारबार बकने लगा 'हरामज़ादे को इसबार कैद ही कराकर छोड़ेंगे।'

पहले रमेश पञ्चों के पास गया, पर वे काहे को सुनने लगे। तब उसने कचहरी में नालिश की। नाज़िर को घूस देकर मुकद्दमा जीत लिया। जजसाहेब ने हुक्म दिया, "हरीश को ५० बेंत की सज़ा दी जाय।"

हुक्म सुनते ही हरीश ने अपने साथियों से कहा "अच्छा अब बेंत खा लेने दो पर छूटते ही ऐसी आफत मचाऊंगा जिससे रमेश का सर्वनाश हो जायगा।" यह बात इधर उधर से रमेश के भी कान तक पहुंच गई। रमेश ने तब जज साहेब से कहा 'दोहाई सरकार की। आप विचार करें, हरीश धमकाता है कि छूटते ही रमेश का मकान जला देंगे। उसको काट डालेंगे।'

जज साहेब ने हरीश से पूछा, "क्यों क्या यह बात सच है? तूने ऐसी धमकी दी है?"

हरीश; "मैं कुछ कहना नहीं चाहता। केवल हम ही दोषी हैं।"

वह और बोलना चाहता था पर क्रोध व लज्जा के कारण न बोल सका। उसकी वैसी अवस्था देखकर लोग कहने लगे, 'यह छूटते ही रमेश का कुछ न कुछ अनिष्ट अवश्य करेगा।'

जजसाहेब बड़े मुन्सिफ़मिजाज़ (न्यायशील) थे। बड़ी देर तक सोचते रहे, फिर बोले, 'अजी देखो, क्यों तुम दंगा फ़साद बढ़ा रहे हो? लक्ष्मी गर्भवती थी, उससमय क्या तुम्हें उसको मारना चाहिये था? यदि कुछ बुरा भला होगया होता, तो फिर तुम कहां के होते? अच्छा, सुनो रमेश्वर से तुम माफ़ी मांगो। यदि तुम ऐसा करो तो हम अपना हुक्म बदल देंगे।"

पेशकार ने देखा अरे अब तो धूल लोटाना पड़ेगा। अतएव जज साहेब से बोले, 'हुजूर! यह तो न्याय नहीं है। जो एक बार हुक्म होगया वह कैसे बदल सकता है।'

जज साहेब, "नाज़िर चुप रहो, हम तुम से तर्क करना नहीं चाहते।" और फिर उन्होंने हरीश से वही बात कही। पर रमेश काहे को किसी की बात माने। चाहे जो कुछ हो, माफ़ी तो न मांगेगा। मन में कहने लगा, 'बेंत खालूगा, पर रमेश से माफ़ी! यह तो कभी न होगा चाहे जो कुछ हो।' वह कांप रहा था और उसके मुंह से एक शब्द भी नहीं निकला।

शाम हुई। रमेश बाबू घर आए। घर पर उस समय कोई था नहीं। स्त्रियां सब नदी तीर चली गई थीं और पुत्र सब बाज़ार से वापस नहीं आए थे। अकेले बैठकर रमेश कुछ सोचने लगा। हरीश की भयङ्कर मूर्ति उसकी आंखों के सामने नाचने लगी। महेश चारपाई पर पड़ा था। अपने पुत्र की आवाज़ सुनकर उसने उसे बुलाया और कई बार पूछा "बेटा कहो! क्या हुआ?"

रमेश--"हरीश को ५० बेंत लगेंगे"।

महेश--"रमेश! यह बड़ी ख़राब बात हुई। तुमने सख्त ग़लती की। इसका बुरा परिणाम तुम्हारे सिर पड़ेगा। अच्छा! वह तो बेंत खायगा, पर उससे तुम्हें क्या लाभ होगा?'

रमेश—"पिताजी! उसे शिक्षा मिल जायगी, फिर ऐसा दुष्कर्म करने का उसे साहस नहीं होगा।"

महेश—"अफ़सोस, अरे अब तो क्रुद्ध हो कर और बुराई करेगा। और वह क्यों न करे, पहले तो तुम्हीं उसे छेड़ते हो। उसका कुछ दोष नहीं है।"

रमेश—हां! उसका कुछ दोष नहीं है। हमारी पुत्रबधू-को एक लात मारगया, और अब धमकारहा है कि घर फूंक देंगे। इसमें भी उसका दोष नहीं होगा।"

महेश एक दीर्घश्वास लेकर बोला, 'बेटा! जो जी में आवे करो। मैं तो घर में पड़ा हूं बाहर जाता नहीं, कुछ समझता नहीं। हां एक बात जानता हूं, तुम दूसरों के दोषों को भली भांति देखसकते हो पर अपने बड़े से बड़े दोष को नहीं देख सकते। केवल तुम्हीं ऐसे नहीं हो, सारी दुनिया ही की यही हालत है। तुम कहते हो "वह दोषी है।" मेरी समझ में नहीं आता यह कैसे होसकता है। भला कहीं एक हाथ से

भी ताली बजती है ! यदि तुम कुछ न बोलो, कुछ न करो तो आख़िर वह कितनी देरतक बकेगा ? बिना दो की शरारत से झगड़ा होई नहीं सकता। तुम्हीं सोचो, पहले तो तुम्हीं ने उसकी डाढ़ी उखाड़ी थी। फिर अदालत को खबर किसने पहले ली ? रमेश, तुम्हीं आगे चल रहे हो। तुम बालक हो नहीं; अब तुम बड़े हुए। देखो तुम भूल कर रहे हो। हम तुम्हारे बराबर शिक्षित भी नहीं थे पर हमारे समय में ऐसी दशा नहीं थी। हम और गिरीश बड़े मित्र थे। सदा एक दूसरे की सहायता किया करते थे। हाय ! पर इस समय लोग हँस रहे हैं, कहा करते हैं, 'कुरुक्षेत्र के युद्ध से भी यह कलह बढ़ा हुआ है !' ठीक है ये सब तुम्हारे पूर्वजन्म के कर्म के फल हैं सोचो तो सही लड़के भी देखादेखी झगड़ालू हो रहे हैं, दिनेश रात दिन पड़ोसियों की निन्दा किया करता है।"

रमेश पिता की बात चुपचाप सुन रहा था। उसकी आंखों से अश्रुपात हो रहा था।

बुड्ढा बहुत देरतक निरन्तर बोलने के कारण हाँफने लगा। उसका कंठ सूखगया, उसे खाँसी आगई। पर कुछ देर आराम करके फिर बोला, "देखो रमेश ! इस मामलेबाज़ी में कितना रुपया ख़र्च होगा। लड़ाई झगड़ा से किसी का फायदा नहीं होता, वरन् दोनों ही को हानि उठानी पड़ती है। अब अपने काम काज में चित्त दो, शान्त रहो, लड़कों की शिक्षा का प्रबन्ध करो। उनकी अवस्था दिनों दिन चली जारही है। यदि तुम्हारा कोई अनिष्ट करे तो तुम प्रतिशोध लेने के लिए व्यस्त मत हो। ईश्वर उसको उसके दुष्कर्म का फल देगा। रमेश अब झगड़ा बन्द करो।"

रमेश ने चुपचाप सब सुन लिया, कुछ उत्तर न दिया। बुड्ढा फिर बोला "बेटा ! बुड्ढे की बात मानो। इस झगड़े का अन्त करो। कुछ ऐसा प्रबन्ध करो कि हरीश को सज़ा न मिले।"

रमेश ने एक लम्बी सांस ली। उसने सोचा पिता जी सच कहते हैं। उनकी बात यथार्थ सत्य है। मैं ही पहले शरारत करता हूं......।

बुड्ढा रमेश को चुप देखकर फिर बोला, 'जाओ रमेश ! जल्दी करो। नहीं फिर काम न हो सकेगा।'

महेश यों कह ही रहा था कि स्त्रियां जल लेकर लौट आईं। हरीश को दण्ड मिल गया और उसने फिर घर फूंकने को कहा है, ये सम्वाद लेती आईं। रमेश सब बातें सुन रहा था। पिता की बातों से जो कुछ शान्ति हुई थी, वह इस संवाद को सुनते ही दूर हो गई।

काम करनेवाला चाहिये, काम की दुनिया में कमी नहीं है। रमेश बाहर जाकर, किसी से कुछ न कहकर, कुछ अगड़म बगड़म करने लगा। कुछ देर के बाद स्मरण हुआ, 'ओः, बहुत देर से तमाकू नहीं खाया'। पर तमाकू थी ही नहीं। ठीक इसी समय हरीश की आवाज़ सुनाई दी, 'अच्छा ! तुमने तो मेरी खूब भद्द उड़ाई। पर बच्चा इसका बदला लूंगा ज़रूर। हरामज़ादे ! दस भलेमानसों के सामने तुमने मुझे बेंत लगवाये; अच्छा अब चाहे तुही है या हम हीं ! अब तो खून करूंगा।' रमेश तो बहुत शान्त हो गया था पर उसकी बात सुन कर फिर जल उठा।

लक्ष्मी उस समय बरामदे में बैठकर खाना बना रही थी। खाना करीब २ तैयार होगया था। उमेश दिनेश खारहे थे। उनकी मा उन्हें परोस रही थी। तब तक रमेश वहां आकर बोला, "नाश की घड़ी दीख रही है। एक चिलम तमाकू भी नहीं है। अरे ओ दिनेश ! भोजन पाकर बाज़ार से आधा सेर कडुआ तमाकू ले आना।"

इतना कह कर रमेश अपने घर में जाकर बैठ रहा। दिनेश भी भात खाकर, मां से पैसा

लेकर, तमाकूं लेने चला। रमेश उसे बाहर तक पहुंचा कर अन्धकार में चुपचाप खड़ा रहा। भांति २ के विचार उसके मन में उठने लगे। वह सोचने लगा, 'इस समय यदि कोई चोर के समान एक दियासलाई जलाकर मेरे घर में आग लगादे तो......। पर ऐसा हम होने तो नहीं देंगे। एक बार यदि उसे पकड़पाते तो... ...।" उस समय हरीश को पकड़ने के लिए उसकी इच्छा ऐसी प्रबल हुई कि वह अपने मकान के चारों तरफ दबे पांव घूमने लगा। जब वह एक स्थान पर खड़ा हुआ तो उसे मालूम हुआ कि उस कोने पर कोई खड़ा है। वह वहां धीरे धीरे गया पर देखा कि कोई मनुष्य नहीं है पर एक हल वहां पड़ा है। उस-समय वह इतना धीरे २ चलरहा था कि वह स्वयं अपने पैरों की आहट नहीं सुन पाता था। फिर उसे भ्रम हुआ कि पूर्वोक्त स्थान पर कोई चीज़ जल रही है। ज्योति बढ़ने लगी, और उस रोशनी की सहायता से रमेश ने देखा कि वहां कोई मनुष्य शिर नीचा किए, गमछा बांधे खड़ा है। उसके हाथ में एक मूज की कूंची है जिसे वह जला रहा है। रमेश घबड़ा गया, उसके रोमांच खड़े होगये, छाती धड़कने लगी। उन्मत्त होकर बोल उठा, "बच्चा! जाने न दूंगा; चाहे जो कुछ हो पर तुम्हें पकड़ूंगा ज़रूर।"

तौभी रमेश उस स्थान पर न जासका। देखते ही देखते वह कूंचा धांय धांय जलने-लगा। कुछ देर के बाद छत भी जलने लगी। तब रमेश ने देखलिया कि हरीश वहां निर्भीत खड़ा है।

रमेश उसको पकड़ने के लिए दौड़ा पर हरीश इधर उधर देखकर भाग गया। रमेश लपक कर उसे पकड़ना ही चाहता था कि ठोकर खाकर वह ज़मीन पर गिर पड़ा। उठकर वह फिर दौड़ा और चिल्लाने लगा, "पकड़ो, पकड़ो। चोर है। खून......।" तब तक हरीश अपने घर पहुंच गया और लौटकर रमेश के सिर में एक लाठी ज़ोर से मारी। चोट बहुत ज़ोर से लगी और चक्कर खाकर वह ज़मीन पर गिर पड़ा। कुछ देर बाद होश हुआ, देखा कि वहां रमेश नहीं है। आग की प्रचण्ड ज्वाला से चारों तरफ दिन समान उजियाला छागया था। हरीश अपने चारों ओर आग देख कर बहुत घबरागया। अपनी छाती पीटने लगा, और सिर धरती पर पटकने लगा। मन में सोचा 'चिल्लायें और लोगों की सहायता मांगें पर अफ़सोस, आवाज़ ही नहीं निकलती। फिर सोचा कि उठके दौड़ूं, पर दौड़ते भी न बना। दो चार क़दम चलकर गिर पड़ा। देखते ही देखते आग ने भयङ्कर रूप धारण किया। आस पास के अन्य मकान भी जलने लगे। उस समय बिना बुलाए बहुत से लोग वहां आ पहुंचे थे। पर किसी ने आग बुझाने का प्रयत्न नहीं किया। सब दूर से यही कह रहे थे, 'पानी लाओ, पानी चाहिये।' आस पास के पड़ोसी बेचारे क्या करें। अपना सँभालें कि दूसरे का। जल्दी २ वे घर में से सब चीजें, कागज़ पत्र आदि निकाल रहे थे। सारांश यह कि किसी ने रमेश की सहायता न की। और सुनिए, आग बढ़ते २ हरीश के मकान तक पहुंच गई। उस समय अग्निसखा पवन भी जोर से बहने लगे। आग की चिनगारी ने अन्त में रमेश और हरीश के मकान को भस्म ही कर डाला किन्तु किसी तरह लोगों ने बुड्ढे की जान बचा ली।

रात भर यह तमाशा जारी रहा। रमेश अपने मकान के पास ही बैठा रहा। बीच बीच में कभी बोल उठता, "यह क्या है? ये...... ये लोग कौन......? क्या किसी से आग नहीं बुझती? अरे वहां जाओ तो सही.........हां! हा! मेरा सब जल रहा है......वह देखो..."

एक बार वह उन्मत्त हो घर में घुस गया। जल कर मरा ही चाहता था कि नरेश ने बाहर खींच कर जान बचाई। बहुत से

फफोले उसके शरीर पर पड़ गये थे और वह बेहोश था। होश में आने पर फिर बकने लगा, "ऐ यह क्या! हमारा क्या हो गया? ये लोग कौन हैं.........? हा! हा! मेरा सब जल गया ....वह देखो।"

सुबह होते ही मण्डन मिश्र का लड़का रमेश को बुलाने आया।

"रमेश काका! आपके पिता मरने के पहले आपको देखना चाहते हैं, हमारे साथ चलिये।"

रमेश तो ज्ञानशून्य हो ही रहा था। पुरानी बातें सब भूल गया। बकने लगा, "कौन? बाबा? बुलाते हैं? किसे बुलाते हैं? किसे बुलाते हैं?"

"रमेश काका! आपको बुलाते हैं। आपको देखना चाहते हैं। चलिये हमारे साथ उठिये।" यह कह कर रमेश का हाथ पकड़ उसे अपने साथ ले चला।

बुड्ढा कई जगह जल गया था, इस कारण वह मृतप्राय हो रहा था।

रमेश पिता के पास हताश होकर बैठ गया।

महेश—'बेटा! कहा था कि इस आग की चिनगारी को बुझाओ, नहीं सब कुछ जल जायगा। अब कहो आग किसने लगाई?"

रमेश—"उसी ने बाबा! उसी ने! मैंने उसे पकड़ लिया था पर......हाय, हाय........."

महेश—"रमेश! मैं भी मर रहा हूं और तुम भी एक दिन मरोगे। बताओ तो सही इस [illegible] भागी कौन होगा?"

रमेश चुप रहा, पिता की ओर देखता रहा। एक शब्द भी उसके मुंह से न निकला।

महेश—"बोलो रमेश! बोलो। ईश्वर तो सब देखता ही है पर मैं पहले ही से कह रहा हूं कि तुम्हीं पापी हो।"

रमेश को एकाएक ज्ञान होगया। पिता के दोनों चरणों को पकड़ कर रोने लगा, "बाबा! मैं ही पापी हूं। भगवान हमें माफ करें। पापी ......भगवन......।" उसकी दोनों आँखों से अश्रुपात होने लगा।

महेश ने फिर एक दीर्घ श्वास फेंका। उसके मुंह का रङ्ग उजला होगया। फिर बोला, "बेटा! बोलो ईश्वर तुम्हें अवश्य क्षमा करेगा। वही पतितपावन है। वह दयानिधि है, उसकी स्तुति करो।" वृद्ध की आंखें भक्ति-अश्रु से भर गईं। कुछ देर बाद वह फिर बोला, "क्यों! बेटा!"

रमेश—"हां! पिता जी।"

महेश—"अब क्या करने की इच्छा है?"

रमेश—(रोकर) "पिता जी क्या कहूं, क्या करूंगा। घर का कारबार कैसे चलेगा?"

महेश—"घर का सब काम ठीक हो जायगा। जिस जगदीश्वर ने जन्म दिया है वही रक्षा करेगा। कोई तकलीफ न होगी। उसकी आज्ञा का पालन करो।" कुछ देर चुप रह कर बुड्ढा फिर बोला, "और फिर यह बात किसी से न कहना। किसी को मत बतलाना आग किस ने लगाई। बेटा! मरते हुए बाप की आज्ञा-प्रार्थना-भूल न जाना। हमारी इच्छा है इस बात को तीसरा न जानें। बस अब तो मैं चला...........।"

... ...

यथासमय इस बात की तहक़ीक़ात होने लगी कि आग कैसे लगी। पर रमेश ने किसी का नाम नहीं बताया। यह देखकर हरीश रमेश के पास पास आया और उसका हाथ पकड़ रो रो कर कहने लगा, "भाई रमेश माफ़ करो।" धीरे २ वे फिर बड़े मित्र हो गये। एक दूसरे की सहायता करने लगे। दूसरे वर्ष अन्न भी खूब हुआ और वे शीघ्र ही पहले समान ऐश्वर्यवान् हो गये।

शिवाजी की समकालीन परिस्थिति ।

[लेखक—श्रीयुत तरुण भारत ।]

शिवाजी के जन्म के पूर्व की क्या परिस्थिति थी, इसका "शिवाजी की योग्यता" शीर्षक लेख में विचार कर ही चुके हैं। इस लेख में शिवाजी की समकालीन परिस्थिति कैसी थी और उसका उसपर क्या परिणाम हुआ उसका विचार करना है।

शिवाजी की समकालीन परिस्थिति के हमने ६ भाग किये हैं—(१) राजकीय स्थिति (२) धार्मिक स्थिति (३) जीजाबाई के शिक्षण का परिणाम (४) शहाजी के चरित्र का परिणाम (५) दादोजी कोंडदेव के शिक्षण का परिणाम (६) रामदास के सम्बन्ध का परिणाम।

राजकीय परिस्थिति

के विषय में यहां कुछ अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं। राजकीय परिस्थिति में कोई विशेष फेरफार नहीं हुआ; वह जैसी पहले थी वैसे ही उनके काल में थी। जो कुछ परिवर्तन हुआ वह सिर्फ इतना ही था कि औरंगजेब दक्षिण का सूबेदार होकर आया था। इस राजपुत्र ने दक्षिण के टुकड़े नोंचने का प्रयत्न किया था। इससे सिर्फ यही ज्ञात हुआ होगा कि दक्षिण के राज्यों में कोई जोर नहीं है—प्रयत्न करने पर धीरे धीरे महाराष्ट्र स्वतन्त्र हो सकता है। धार्मिक परिस्थिति का भी क्रम वही चला था। शिवाजी पर रामदास स्वामी का विशेष प्रभाव पड़ा, इसका हम यहां स्वतन्त्र विचार करेंगे।

२—किस परिस्थिति का और किन कारणों का शिवाजी पर अधिक प्रभाव पड़ा इसका निर्णय करना कठिन है; पर इतना कह सकते हैं कि उसकी माता का शिवाजी के समग्र जीवन पर जितना प्रभाव पड़ा उतना और किसी का नहीं हुआ होगा।

जीजाबाई अच्छे उच्चकुल में उत्पन्न हुई थीं। उनके पिता के और पति के बीच राजकीय बातों के कारण झगड़ा हो जाने से उसे पति ने छोड़ दिया। वह बड़ी मानिनी थी—पति के त्याग देने पर पिता के घर न जाकर वह स्वतंत्र रहने लगी। जिस समय उसका पिता जाधवराव अपने जामाता को पकड़ने के लिए पीछा किये चला जा रहा था, उस समय उसके साथ जीजाबाई भी थी और वह उस समय गर्भवती थी। जब शाहजी ने देखा कि पत्नी को लेकर भागना कठिन है तो उसने बीच में उसे छोड़ दिया। इसके बाद जीजाबाई ने शिवनेर किले में आश्रय लिया। इस विपन्नावस्था का जीजाबाई के मन पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ा। वह पूर्व ही से बड़ी दृढ़ स्त्री थी। पति और पिता दोनों ने त्याग दिया, पर शिवाजी के जन्म लेने पर उसे कुछ आशा उत्पन्न हुई। साहस, निश्चय, धैर्य, विचारशीलता इत्यादि गुण उसके मन में संकटों की परम्परा के कारण उत्पन्न हुए और इन गुणों का प्रवेश शिवाजी के हृदय में स्वाभाविक ही होगया। अब उसे यह आशा उत्पन्न हुई कि शिवाजी आगे बड़ा होकर नाम कमावे और मुझे अपने जन्म की सार्थकता प्राप्त हो! मानो स्वभाव के कारण उसे यह भी मालूम होता था कि [illegible] स्वतन्त्र रीति से मान धन प्राप्त करूं। [illegible] कारण शिवाजी ही उसकी एकमात्र आशा [illegible] एकमात्र आधार थे। इसलिए उसका अपने पुत्र पर निःसीम प्रेम था, शिवाजी भी अपनी माता से अतिशय प्रेम करते थे, अपनी माता की सलाह लिये बिना वे कोई काम [नहीं] करते थे और इस व्रत का उन्होंने जन्मभर पालन किया। माता भी योग्य सलाह देती थी

उनके कार्य में वृथा विघ्न नहीं डालती थी। अपने ध्येय की प्राप्ति के लिए उसने शिवाजी का मन शिक्षा देकर शिक्षित किया, पुरानी वीर-कथाएँ बतलाना तो उसका क्रम ही था, पर रामायण, महाभारत में से भी वह अनेक कथाएँ बतलाया करती थी । इन बातों को सुनकर स्वाभाविक ही शिवाजी का मन रोमांचित हो जाता था और उन वीरों के कर्तव्यों के सदृश कृत्य करने का निश्चय मन ही मन होता चला गया । शिवाजी का साहसी स्वभाव देखकर माता को मालूम होने लगा था कि अच्छी शिक्षा से यह आगे अच्छा नाम पैदा करेगा । 'शत्रु का नाश कर कुल का उद्धार करनेवाला शक-कर्त्ता अपने कुल में पैदा होनेवाला है, ऐसे देवी ने कई दृष्टान्त दिये हैं पर यह बात कब सत्य होती है ?" इस प्रकार के वाक्य वह शिवाजी से हमेशा कहा करती थी । इसका कितना भारी प्रभाव हुआ होगा यह समझदार मनुष्य को बतलाने की आवश्यकता नहीं । जीजाबाई वीराङ्गना थी और स्वावलम्बन के सिवा उसे कोई अन्य उपाय न था। उसे यह बराबर जान पड़ता था कि मुझे इस दुनिया में कोई विशेष महत्वपूर्ण काम करना है, इसी कारण वह ईश्वर में विश्वास रख शिवाजी को इस महान् कार्य के लिए तैयार कर रही थी। धीरे धीरे शिवाजी का मन इन बातों की ओर लग चला और बाल्यावस्था से ही उनके मन में निश्चय होने लगा कि हम महान् कार्य करेंगे, जगत् में जितने महान् पुरुष उत्पन्न हुए हैं उनका जीवनचरित्र बहुधा माता की शिक्षा से संगठित हुआ है । नेपोलियन, सिकन्दर, अकबर सब पर ही उनकी माताओं का प्रभाव पड़ा है। पर यदि सचमुच किसी का जीवन माता की शिक्षा से ही अधिकतर बना हुआ है तो वह शिवाजी ही का है ।

३-जीजाबाई के बाद दादोजी कौंडदेव की शिक्षा का शिवाजी के मन पर क्या प्रभाव पड़ा इसका विचार करना उचित है। दादोजी शाहजी का पुराना नौकर था और उनकी पूना के पास की जागीर की देखभाल करता था। पीछे से शिवाजी को लेकर उनकी माता भी पूने में आकर रहीं। इससे शिवाजी पर भी देखभाल करने का काम उस पर पड़ा। इस पुरुष ने दो काम किये (१) पूना की जागीर की सुव्यवस्था (२) शिवाजी की शिक्षा। दादोजी व्यवस्था करने में बहुत होशियार था। जागीर की देखभाल हाथ में लेने के पहले उसकी दशा बहुत बुरी थी। दुष्काल, युद्ध और वन्य पशुओं के कारण सब वीरान पड़ा था। कुछ खेती न होती थी परन्तु दस साल में ही उसने अपनी व्यवस्था से यह जागीर ऐसी कर दी कि उसका स्वामी फिर अधिक सेना रख सका, अपने क़िले मज़बूत कर सका और सब विपन्नावस्था जाती रही।

दूसरा काम, शिवाजी की शिक्षा का, उसने उतनी ही योग्यता से किया। दादोजी नेक, ईमानदार, धार्मिक और लोकहितैषी पुरुष था। पहले पहल उसे शिवाजी की उच्छृङ्खलता ठीक नहीं मालूम होती थी। पर धीरे धीरे यह उसे मालूम होने लगा कि शिवाजी के साथ साधारण नियम से व्यवहार करना ठीक नहीं—उसे कुछ लोकोत्तर ही समझना चाहिये। उसने उस वीर को योग्य और पूरी शिक्षा दी थी। दादोजी इतना पवित्र और धर्मभीरु था कि एक बार अपने स्वामी के वृक्षों में से एक आम तोड़ने की उसे इच्छा हुई तो उसके बाद उसने अपना हाथ ही तोड़ डालना चाहा। आखिर बड़ी कठिनाई से हाथ न तोड़ने पर सहमत हुआ। परन्तु उस हाथ की अस्तीन जन्मभर आधी रक्खी। इस पवित्रता का प्रभाव शिवाजी पर कितना हुआ होगा यह बतलाना आवश्यक नहीं। दादोजी की यह इच्छा थी कि शाहजी के समान यह भी कोई भारी राजा का मन-सबदार वगैरः कुछ हो—उसे शिवाजी के हृदय

की कल्पना का कुछ अन्दाज़ा न था। पर इस पुरुष ने तरुण पुरुष की उच्छृङ्खलता को बहुत नरम किया और इसका बड़ा अच्छा परिणाम हुआ। शिवाजी की कल्पना के अनुसार कार्य करने पर वह बड़ी कठिनाई से सहमत हुआ और मरते समय शिवाजी को वह उत्तम उपदेश दे गया। दादोजी को ज़मीन के महसूल की और राज्य की व्यवस्था इतनी उत्तम थी कि शिवाजी ने उसी पर अपनी इमारत खड़ी की। सारांश, इस पुरुष ने भी बहुत बड़ा काम किया था।

३-अब शाहजी के चरित्र का क्या परिणाम हुआ इसका विचार करना उचित है। बहुत कम लोगों ने इसका विचार किया है, और इसका सम्बन्ध राजकीय अवस्था से भी है।

शाहजी बहुत योग्य पुरुष था। शूर, साहसी, निश्चयी, ईमानदार तो वह था ही पर वह बड़ा भारी राजकार्य कुशल भी था। इतना बतला देना बस है कि वह मलिक अंबर का प्रतिस्पर्धी था। उसने कई निज़ामशाही के राजाओं को गद्दी पर बिठलाया और अहमद-नगर मुगलों के हाथ में निकल जाते तक वह इनसे लड़ता रहा। उसने अनेक राज्यों के कौशल देखे, ऐसे चरित्र का शिवाजी पर कुछ न कुछ प्रभाव हुआ होगा इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। शाहजी 'पुराने' पंथ का पुरुष था, स्वतंत्रता की उसे आकांक्षा उत्पन्न नहीं हुई थी। निजामशाही डूब जाने के बाद उसने स्वतंत्र राज्य की रचना करने का प्रयत्न नहीं किया, पर उसे भी कभी कभी स्वतंत्रता के विचार आ ही जाते थे, इन विचारों का तरुण पुत्र के मन पर विचार न हुआ होगा यह कहना ठीक नहीं।

दूसरी बात यह है कि शाहजी के जीतेजी शिवाजी के कृत्यों को कोई स्वरूप नहीं मिला था, क्योंकि पिता के जीतेजी 'राजा' का नाम किंवा अपने नाम के सिक्के निकालना ठीक नहीं मालूम होता था। पिता की मृत्यु के बाद उसे अपने कृत्यों को व्यवस्थित रूप देना पड़ा। शिवाजी जितना मातृभक्त था, उतना ही पितृ-भक्त भी था।

४-अब बड़ा विवादात्मक प्रश्न शिवाजी और रामदास के परस्पर सम्बन्ध का है।

एक पक्ष का कहना है कि शिवाजी पर रामदास का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। दूसरा पक्ष कहता है धर्म और स्वराज्य का उद्धार करने के लिए शिवाजी को रामदास ही ने तैयार किया। हमारी समझ में ये दोनों पक्ष सत्य को अपनी अपनी ओर खींच रहे हैं जो उन दोनों के बीच में है। इस बात का निर्णय हम यही जानकर कर सकते हैं कि शिवाजी और रामदास की भेंट कब हुई।

शिवाजी को बचपन में जीजाबाई और दादोजी कोंडदेव रामायण और महाभारत की कथाएँ सुनाया करते थे, यह हम ऊपर बतला ही चुके हैं। जब शिवाजी बड़ा हुआ, तो वह साधु पुरुषों के कथा-कीर्तन सुनने जाने लगा। शिवाजी के मन की वृत्ति इतनी धार्मिक हो गई थी कि पहुंच के भीतर जहां कहीं कथा-कीर्तन होता, वहाँ ज़रूर जाता था। जब उसने तुकाराम बाबा से भेंट की तो इस साधु पुरुष ने इस तरुण को स्वामी रामदास के पास भेज दिया। शिवाजी पर रामदास का कितना प्रभाव हुआ, इसका हम निश्चय अभी नहीं कर सकते हैं। हां, इतना अवश्य है कि इसके बाद शिवाजी और रामदास राजकीय और धार्मिक गुरु-शिष्य के नाते से हमेशा बँधे रहे।

इससे यह बात स्पष्ट है कि शिवाजी अपने कार्य के लिए पहले ही तैयार हो चुके थे। उन्हें ज्ञात हो गया था कि राज्य की, धर्म का और देश का उद्धार करना आवश्यक है। इस बात

के लिये उनका मन पक्का भी हो गया था, यह कह सकते हैं। इतना ही नहीं वरन् कार्य किस प्रकार शुरू करना चाहिये, इसका भी वे निश्चय कर चुके थे। शिवाजी ने पहला किला सन् १६४६ में लिया। इतना कार्य करने के पहले वे अपने मन का निश्चय दो तीन वर्ष पहले कर चुके होंगे। हमारी समझ में किस मार्ग का अवलम्बन करना चाहिये यह भी निश्चय उनके मन में हो गया होगा। राजकीय और धार्मिक परिस्थिति के निरीक्षण से उनके मन में इस बात का अंकुर उठा होगा, उस पर उनकी माता ने सिंचन किया और ऊपर बतलाये हुए दो पुरुषों ने उन्हें योग्य शिक्षण दिया, इन सब बातों से उसका मन हमेशा इस महाकार्य के लिए तैयार होता चला जा रहा था। ऐसे समय में रामदास स्वामी से भेंट हुई। अब कोई कहेंगे, तो फिर आप सब ही श्रेय शिवाजी को दे डालते हैं, स्वामी रामदास के लिए कुछ भी नहीं छोड़ते, परन्तु इसका उत्तर हम शीघ्र ही देते हैं।

महाराष्ट्र की राजकीय और धार्मिक परिस्थिति की हम आलोचना कर ही चुके हैं, यह भी बतला चुके हैं कि राज्य, देश, स्वतंत्रता और धर्म की जहां तहां पुकार मच रही थी। ये विचार शिवाजी के मन में ही क्या, वरन् प्रत्येक साधु, संत, गरीब, श्रीमान्, गृहस्थी, संन्यासी, सब के ही मनमें उठ रहे थे। शिवाजी को इस बात का श्रेय है कि उनमें इस परिस्थिति के उपयुक्त कला के योग्य गुण थे, उन्हें अन्तःकरण से जान पड़ता था कि यह कार्य उन्हीं का है और यह ईश्वरी संकेत है, और सबसे भारी बात यह कि इस महापुरुष ने इस परिस्थिति का योग्य रीति से निःस्वार्थ पुरुष की तरह उपयोग किया। फिर इसमें कौन आश्चर्य की बात है कि रामदास को यह जंचने लगा था कि राज्य का, धर्म का, स्वतंत्रता का, उद्धार होना चाहिये। इस स्वामी को भी ये विचार और स्वतंत्र रीति से जँचने लगे। रामदास स्वामी तब से इस बात के प्रयत्न में लगे थे। वे सच्चा धर्म फैलाते, लोगों की नीति सुधारते, और स्वराज्य और स्वतंत्रता की अभिलाषा लोगों के मनमें उत्पन्न करते अपना भ्रमण कर रहे थे, इसी कारण तुकाराम बाबा ने शिवाजी को रामदास के पास भेजा। बस, कार्यकर्त्ता और कार्योत्तेजक की भेंट हो गई, योद्धाओं को तैयार करनेवाले का और इन योद्धाओं को लेकर रणभूमि पर लड़नेवाले सेनापति का सम्मिलन हो गया, मेज़िनी और गेरीवाल्डी एकत्रित हो गये। इसके बाद शिवाजी रामदास की सम्मति सदा लिया करते थे और स्वामी भी इस तरुण पुरुष को सदा योग्य सलाह देते और उत्तेजित करते थे। शिवाजी का मन यद्यपि उच्च विचारों से भरा था और धर्म से संस्कृत था, तथापि आखिर वे एक संसारी प्राणी ही थे मामूली गृहस्थ को तो संसार के बखेड़े से विरति उत्पन्न हो जाती है, समय समय पर हताश हो जाना पड़ता है और कार्यशिथिलता उत्पन्न हो जाती है। फिर छोटी सी जागीर से महाराष्ट्र का तमाम राज्य फेर लेना कितना कठिन कार्य है, इसका विचार भी करना कठिन है, इस मौके के लिए रामदास स्वामी की आवश्यकता थी। वे हमेशा उपदेश देकर उत्तेजित करते रहे। शिवाजी को कई बार उपरति उत्पन्न हुई, राज्यपाट छोड़ कर ईश्वर-भजन में काल बिताने की इच्छा उसने कई बार प्रदर्शित की। ऐसे मौके पर रामदास स्वामी शिवाजी को बतलाया करते थे कि तुम्हारा यही सच्चा धर्म है कि तुम देश का, स्वराज्य का, और धर्म का, उद्धार करो, और इसी में तुम्हें उच्च गति प्राप्त होगी, इसीलिए परमेश्वर ने तुम्हें यहां भेजा है। इस प्रकार शिवाजी से बराबर कार्य करवाते रहे। इससे यह नहीं समझना चाहिये कि उन्हें कार्य करने की योग्यता न थी। नहीं, कार्य करने की योग्यता न रहती तो यह कार्य सिद्ध ही न होता। पर समय समय पर

उत्तेजित करना और कार्य करते समय फल की आकांक्षा न रखना यही वे बतलाते रहे। रामदास स्वामी का कार्य प्रत्यक्ष न था, वे न सिपाही एकत्रित करते थे, न लड़ने को किसी को बतलाते थे। उनका कार्य अप्रत्यक्ष था, वे लोगों की नीति सुधारते, सच्चे धर्म की कल्पना कर देते और यह प्रतिबिंबित करते जाते थे कि धर्म का उद्धार स्वराज्य के बिना न होगा। स्वामी के कार्य का महत्व यही है और इसी नाते से शिवाजी का और उनका संबंध रहा। उन्होंने प्रत्यक्ष उपदेश किसी को दिया हो तो वह शिवाजी को ही दिया, स्वामी निरेच्छु थे और अपना काल ईशसेवा में बिताया करते थे, पर पीछे से जब आपके अनुयायी बढ़ गये, तब उनके द्वारा कभी कभी प्रत्यक्ष सहायता जैसे समाचार बगैरः गुप्त रीति से पहुंचा देते पर यह भी सहायता अत्यंत परिमित थी।

५-सारांश, देश की परिस्थिति से शिवाजी के समान पुरुष उत्पन्न हुआ। उनमें सब स्वाभाविक गुण थे ही, उन पर माता के शिक्षण का सिंचन हुआ, दादोजी कोंडदेव ने उनकी उच्छृंखलता नियमित की, कथाकीर्तनों से धर्म की मन में जागृति हुई, उच्च विचार उत्पन्न हुए, मालूम होने लगा कि धर्म, स्वदेश, स्वराज्य के उद्धार के लिए परमेश्वर ने मुझे भेजा है, इसमें स्वार्थ की किसी प्रकार बाधा न होनी चाहिये। यह स्मरण रखने के योग्य है कि ऐसे विचारों से ही प्रेरित होकर शिवाजी ने इस महान् कार्य को हाथ में लिया। रामदास स्वामी लोगों के मनों को तैयार कर चुके थे और कर रहे थे। शिवाजी को सदा दैवी शक्ति की प्रेरणा रही और इसी स्फूर्ति से वे तमाम कार्य करते रहे। वे अपने लोगों के, देश के, काल के प्रतिनिधि थे और इसी नाते से वे तमाम कार्य निभाते रहे।

"स्वतंत्रता की प्राप्ति और उपयोग ही मनुष्य को स्वतंत्र होने के योग्य बनाता है।"

युद्ध के बाद भारत।

देश और विदेश चारों ओर आजकल विद्वानों और राजनीतिज्ञों में वह प्रश्न उठ रहा है कि युद्ध के बाद भारत की

स्थिति क्या होगी ?

ब्रिटिश साम्राज्य में उसे कौनसा स्थान मिलेगा, वह स्वतंत्र होगा या नहीं, उसे उसके तुल्य, उसके उपयुक्त स्थान प्राप्त होगा या नहीं, भारतवासियों को मनुष्योचित अधिकार प्राप्त होंगे या नहीं ? इस बात पर विशेष ध्यान पड़ने का कारण यह है कि भारत की राजभक्ति, और ब्रिटेन में अचल विश्वास को देखकर लोगों के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा है, जिस बात की उन्हें स्वप्न में भी आशा न थी, दिनदहाड़े जिसका स्वप्न देखकर वे विचलित हो जाते थे, उसे न होते देख वे स्तंभित हो गये हैं और सहृदय, उदार, विद्वान यह चाह रहे हैं कि भारत के स्वप्न सफल हों और उसे उसके योग्य गौरव का स्थान प्राप्त हो।

डा० गिलबर्ट मरे आक्सफर्ड विश्वविद्यालय के एक प्रसिद्ध अध्यापक हैं। आपने अभी लंदन में भारत के

राजनैतिक भविष्य

के विषय में एक व्याख्यान दिया था। व्याख्यान

विचारपूर्ण और उदारता की नीति से भरा हुआ था। उन्होंने कितनी ही बातें कही हैं जिनपर अङ्गरेज़ों और भारतवासियों को शान्तचित्त हो विचार करना चाहिये। उन्होंने कहा है कि इस युद्ध के कारण भारत और इङ्गलैंड में एक भ्रातृभाव पैदा हो गया है, यह दिन दिन गाढ़ा हो रहा है, इस भ्रातृभाव को और भी सुदृढ़ करना भारतवासियों और अङ्गरेज़ों का कर्तव्य है। उन्होंने कहा कि प्रश्न यह उपस्थित है कि यह बड़ा साम्राज्य, जिसके लिए अङ्गरेज़ और भारतवासी आज भाई भाई की भांति गले मिले हुए, फ्लैंडर्स, मिस्र, फारस की खाड़ी आदि में खून बहा रहे हैं, भविष्य में स्वतंत्र मनुष्यों और स्त्रियों का एक बड़ा समाज होगा या खूनखराबे और मारकाट द्वारा यह आपस में ही छिन्न-भिन्न हो नष्ट होगा? या यह साम्राज्य भी बेबिलान, मिस्र, रोम, बेजन्टाइन आदि निरंकुश साम्राज्यों की भांति कुछ दिनों तक चमककर सदा के लिए लुप्त हो जायगा और इस प्रकार से कि कोई उसकी याद भी न करे और न कोई उस के अस्त होने से दुःखी ही हो? उन्होंने कहा है "We must be together. I can see no future for an isolated India; no happy future for a Great Britain which is content to boast that she holds India merely by the sword" अर्थात् हम लोगों का साथ रहना आवश्यक है। विभिन्न, न्यारे भारत के भविष्य में मुझे विश्वास नहीं, साथ ही ब्रिटेन के लिए, जो इसका गर्व करता है कि वह तलवार के ज़ोर से भारत को काबू में किये है, मुझे कोई अच्छे भविष्य की आशा नहीं। दोनों ही साथ रहकर फल फूल सकते हैं। इङ्गलैंड में कितने ही गुण हैं, भारत में कितने ही गुण हैं; भ्रातृभाव के लिए यह आवश्यक है कि एक दूसरे की बुराइयों की ओर ध्यान न देकर गुणों पर ध्यान दें, भारतवासी और अङ्गरेज़ एक दूसरे का मान करना और पारस्परिक प्रशंसा करना सीखें। यदि दोनों एक दूसरे का मान करने लगेंगे, एक दूसरे के गुणों की कद्र करना आरम्भ करेंगे और एक दूसरे की भलाइयों को ग्रहण करना सीखेंगे तो सहज में ही गाढ़ी मित्रता स्थापित हो जायगी।

भारतवासियों को उपदेश देते हुए अध्यापक महोदय ने कहा है:—"जब कि संसार जीवन-संग्राम में लीन है, तुम स्वप्न देखना छोड़ दो। जो बातें हो रही हैं, उनकी ओर, यथार्थता की ओर ध्यान दो, ज्ञान उपार्जन करो, साधारण विवेक को हस्तगत करो, विश्वास करना और विश्वासपात्र होना सीखो, और अपने समाज की सेवा में लीन हो। अपने प्राचीन गौरव का स्वप्न देखना छोड़ो, भविष्य की चिन्ता में लीन हो, और अपने समाज में से उन त्रुटियों को, जिनके कारण भारत आगे बढ़ने में असमर्थ है, जड़ से खोद बाहर करो"। शिक्षा उपयोगी है और हम आशा करते हैं कि भारतवासी इसको ग्रहण करेंगे किन्तु अध्यापक महोदय से हम इतना कह देना अपना कर्तव्य समझते हैं कि अपनी विद्वत्ता के वाह्य पृष्ठस्थ निरीक्षण में, ऊपरी तह की देखरेख में उन प्रवाहों पर उन्होंने विचार ही नहीं किया जिनके कारण बढ़ता हुआ भी भारत गर्त में पटक दिया जाता और सड़ाया जाता है। वे प्रवाह सिविल सर्विस और एङ्गलो-इण्डियन लोगों के हैं। इनके मुँह में शक्ति, हुकूमत, हम का खून लगा हुआ है, इनके रहते भारतवासी योग्य होते हुए भी अयोग्य हैं, शक्ति रखते हुए भी शक्तिहीन हैं, क्योंकि ये नहीं चाहते कि भारतवासी भी इनके बराबर के हो जाँय। संयुक्तप्रान्त की कार्यकारिणी कौंसिल का न प्राप्त होना इसका सबसे बड़ा सुबूत है। अध्यापक महोदय ने कहा है "Face facts, beware all together of dreams and dreamlike passions"। हम भी

यही बात उनसे कहते हैं कि स्वप्न की बातें छोड़ कर यथार्थता की ओर ध्यान दीजिये। जिसके हाथ में शक्ति है वह उसका ह्रास कब स्वीकार कर सकता है? भारत का शासन भारतवासियों की सम्मति से नहीं होता, उनकी उसमें सुनवाई नहीं, हस्तक्षेप कर सकने की बात तो दूर रही, न भारत का शासन कोई वाइसराय या गवर्नर ही करता है। वास्तव में शासन करनेवाली संस्था सिविल सर्विस है। जब तक सिविल सर्विस की परीक्षा विलायत में होती है, जहाँ अधिक संख्या में भारतवासी पहुँच नहीं सकते, जबतक सिविल सर्विस गोरे चमड़ेवालों की बपौती है और १० में ९ की संख्या उनकी है, जबतक सभी कुछ भी शक्ति रखनेवाले पद अङ्गरेज़ों के हाथ में हैं, जब तक भारतवासी केवल लकड़ी काटने और पानी भरनेवाले हैं, जबतक भारतवासियों के भाग्य में क्लर्की के सिवा कुछ नहीं है, तबतक कोरी बातों से कुछ नहीं हो सकता। भारत अब एक राष्ट्र है और इसका अर्थ यह है कि

स्वराज्य

का वह सर्वथा अधिकारी है। कोई भी सभ्य जाति आजतक किसी भी सभ्य जाति को गुलामी के पाश में बांधे नहीं रह सकी। इतिहास इसका साक्षी है। सिविल सर्विस का यह गर्व, कि वह इस बात को तय करे, निश्चित करे कि भारत स्वराज्य के उपयुक्त हुआ या नहीं या कब होगा, धृष्टता और असहनीय है।

अध्यापक महोदय को चाहिये कि वे अङ्गरेज़ों से प्रश्न कर पूछें कि यदि भीतरी झगड़े के कारण आज इंगलैंड पर किसी अन्य जाति का शासन होता, यदि समस्त शासन का कार्य विजेताओं के हाथ में होता, उन्हें ऊँचे पद न मिलते, सेना और नौ-सेना में उन्हें कोई पद न मिलता, अस्त्र-आईन के कारण वे निरस्त्र रहते, देशरक्षा, जननी के मान-मर्यादा की रक्षा के लिए भी वे स्वयंसेवक न बन सकते, चांसलर से लेकर कलक्टर तक विजेता जाति के होते, शिक्षा का कार्य भी विजेताओं के हाथ में होता, शिक्षा से अधिक रेलों में खर्च किया जाता, जनता अविद्या के अंधकार से ग्रसित होती, केवल क्लर्कों के निमित्त विजेता जाति की भाषा उन्हें पढ़नी पड़ती और सबके ऊपर अपने ही देश में, इङ्गलैंड में ही, यदि इङ्गलैंड के निवासी तुच्छ और हीन गिने जाते, उनके साथ विदेशियों सा व्यवहार होता तो इङ्गलैंडनिवासी इसे कैसा समझते?

इतना सब कुछ होते हुए भी भारत शान्त है और उसका विश्वास स्वतंत्रताप्रेमी इङ्गलैंड में अचल है। वह बन्धुता के भाव को तोड़ना नहीं चाहता, वह चाहता है केवल एक बराबर का भाई होना। भारत स्वतंत्र होना चाहता है, वह इसे भिक्षा सदृश नहीं वरन् अधिकार की भांति माँगता है जैसे कोई छोटा योग्य भाई बालिग होने पर अपने वलो बड़े भाई से अपनी जायदाद चाहता है। वह चाहता है कि उसे वे सब अधिकार प्राप्त हों जो संसार में कोई भी बढ़ी से बढ़ी हुई जाति अपने लिए आवश्यक समझती है। भारत चाहता है कि उसके निवासी भारत में वैसे ही स्वतंत्र हों जैसे कि अङ्गरेज़ इङ्गलैंड में स्वतंत्र हैं। वह चाहता है कि उसका शासन उसीके पुत्रों के चुने हुए, उन्हींके भाई प्रतिनिधियों के हाथ में हो। वह चाहता है कि उसके पुत्र सेना और नौ-सेना में ऊंचे से ऊंचे पद पर पहुंच सकें, वह चाहता है कि उसके पुत्रों को अस्त्र-शस्त्र रखने का पूरा अधिकार रहे, वह चाहता है कि वे ही कर लगा सकें और उसे अपने इच्छानुसार खर्च कर सकें, वह चाहता है कि उसके पुत्रों के गृह उनके लिए गढ़ हों जैसे कि किसी अङ्गरेज़ का घर उसके लिए उसका महल होता है। भारत इन सबके साथ चाहता है कि साम्राज्य की कौंसिल में उसके प्रतिनिधि भी सम्मिलित हों और ब्रिटिश साम्राज्य में उसके

पुत्रों का हाथ वैसा ही रहे जैसा कि आयर्लैंड, स्काटलैंड, वेल्स, आस्ट्रेलिया या एफ्रिका के निवासियों का है।

अध्यापक महोदय ! इन बातों को सुनकर आप चौकेंगे। आप कह उठेंगे कि यह बहुत है किन्तु क्या आप कह सकते हैं कि इससे एक रत्ती भी कम वह आप अपने लिए या आपके भाई अपने देश में अपने लिए चाहते हैं? जो एक अङ्गरेज़ इङ्गलैंड में चाहता है वही एक भारतवासी भारत में चाहता है और वह बिलकुल स्वाभाविक और उचित है।

यह सब कोरी बातों से नहीं होगा, केवल एक दूसरे के गुणों के ग्रहण करने से न होगा, इसके लिए आवश्यक है उदारता, व्यर्थ के अहम्भाव, बड़प्पन का गर्व तथा स्वार्थ का बहिष्कार।

यह समय ऐसा न था कि ये बातें कही जातीं किन्तु जब "भारत के भविष्य" पर विचार हो रहा है, जब उसकी भावी स्थिति का निश्चय हो रहा है, जब उदार स्वतंत्रता के प्रेमी, उसके नाम पर बलिदान चढ़ानेवाले अङ्गरेज़ इस प्रश्न पर विचार कर रहे हैं उस समय भारत के हार्दिक विचारों का छिपा रखना, व्यर्थ भय से उसे दबा रखना हम निकृष्ट कर्म ही नहीं वरन् साम्राज्य के प्रति पाप समझते हैं। इसीलिए आज हमने ये बातें कह डाली हैं। हमारा इङ्गलैंड में विश्वास है, सदा अङ्गरेज़ों में विश्वास है और हम आशा करते हैं कि भारत के भावी भविष्य पर धीरता और वीरता से वे विचार करेंगे और भारत के स्वराज्य, औपनिवेशिक स्वराज्य और इङ्गलंड का दाहिना हाथ होने के स्वप्न को चरितार्थ करने में सहायक होंगे।

मुसलमानों की शासननीति।

[लेखक—श्रीयुत राधाकृष्ण झा।]

(१) अफगानों का समय।

जब से भारतवर्ष का मुसलमानों से सम्बन्ध हुआ है तब से उसकी काया पलट गई है। हिन्दू मुसलमानों में प्रायः सभी प्रकार से विभिन्नता थी। धर्म तो भिन्न था ही, रहन सहन भी पृथक्, सभ्यता न्यारी, भाषा दूसरी, बल पराक्रम असमान;—किसी प्रकार की एकता नहीं देख पड़ती थी। फिर उन लोगों की राज्यशासन-प्रणाली भी विभिन्न क्यों न होती! भारतवर्ष की आबहवा, इस देश की प्राकृतिक स्थिति ही कुछ ऐसी है कि लोगों को सुखलिप्सु और आलसी बना देती है। उनके मानसिक विचार दार्शनिक हो जाते हैं पर मुसलमान जिस देश से आये वह ऐसा है कि वहां स्वभाव से ही मनुष्य हट्टा-कट्टा और बलवान् होता है। मुसलमान पहाड़ों में रहनेवाले, तलवार चलानेवाले और शिकार से अपने पेट भरनेवाले थे। फिर ये महात्मा मुहम्मद के चलाये हुए धर्म के अनुयायी। इस धर्म में सब समान हैं—इसमें वर्ण वा जाति के विभाग नहीं हैं; ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र का भेदभाव नहीं—एकता और संहति इसके मूलमन्त्र हैं। इस पर मुहम्मद साहब का यह उपदेश कि धर्मप्राण मुसलमान अपने धर्म और अल्लाह की कीर्ति जी जान से सारे संसार में फैलावें, इसी में उनका लाभ है।

इस लोक में सांसारिक सुख और परलोक में मोक्ष, बस दोनों ही हाथों लड्डू हैं। अब क्या था, एकता, समानता और धर्म की दुहाई इन तीनों के बल मुसलमानों ने असाध्य को साध्य कर दिखाया, जहां गये वहीं उनकी जीत हुई और उनके पैगम्बर के चलाये धर्म का प्रचार बढ़ता गया। ऐसा भी एक समय था जब इस धर्म के आगे किसी शक्ति को ठहरने का साहस न होता था। इसका डंका एशिया, अफ्रिका और यूरोप में सर्वत्र बज रहा था। यूरोप में स्पेन तथा वियेना के शहर पनाह तक इसका झंडा पहुंच गया था, इसी इसलाम धर्म की इस बाढ़ में सोता हुआ दार्शनिक भारतवर्ष भी गोते खाने लगा।

पहले कहा जा चुका है कि आरम्भ में मुसलमानों की चढ़ाई लूट पाट कर क़ाफ़िरों का धन लेने और अपने पैगम्बर के चलाये धर्म की श्रेष्ठता और अल्लाह की प्रभुता दिखाने के लिए ही हुआ करती थी। उस समय इसलाम ज़ोर पर था। धर्मप्राण मुसलमान के लिए इससे बढ़ कर और कोई पवित्र कार्य ही न था। यह धारा-प्रवाह किसी न किसी रूप से अफ़गान बादशाहों के समय में भी जारी रहा। उनका प्रधान उद्देश्य भी क़ाफ़िरों को बश में लाना, अपने धर्म का प्रचार करना और इसलाम का झंडा नये २ देशों, नये २ राज्यों में फहराना था।

टेलर साहब ने अपने इतिहास में लिखा है कि मुसलमान इतिहास लेखकों से विदित होता है कि इस काल में बादशाहों के केवल दो उद्देश्य थे,—राज्य विस्तार करना तथा हिन्दुओं को वश में लाना। राज्य विस्तार तो अवश्य हुआ, परन्तु हिन्दुओं का मूलोच्छेद न हो सका। इसलाम का प्रचार करने और भिन्न धर्मियों को इस नये मत का सेवक बनाने का उन लोगों ने चाहे जितना प्रयत्न क्यों न किया हो पर हिन्दूधर्म का लोप न हो सका। अफ़गानों के समय हिन्दुओं को कष्ट अवश्य था पर ऐसे अफ़गान बादशाह भी हो गये हैं जिन के शासन में हिन्दुओं को बहुत कुछ स्वतंत्रता मिली हुई थी। यदि अलाउद्दीन ख़िलजी वा मुहम्मद तुग़लक जैसे कड़े और दुराग्रही बादशाह राज करते थे तो फ़ीरोज़ तुग़लक जैसे दयावान और न्यायी बादशाह भी दिल्ली के सिंहासन पर बैठते थे। तो भी हिन्दुओं को अपने धार्मिक आचार, विचार वा व्यवहार में पूरी स्वच्छन्दता न थी। जब फ़ीरोज़ तुग़लक जैसे प्रजाहितैषी, उदार-प्रकृति राजा के समय में भी हिन्दू मूर्त्तिपूजा न करने पाते थे, और हिन्दू होने के कारण जज़िया देने को लाचार किये जाते थे, तब दूसरे बादशाहों के समय में क्या होता होगा यह अनुमान का विषय है। परन्तु इतना तो अवश्य सत्य है कि मुग़लों के समय में हिन्दुओं को अधिक स्वतंत्रता थी, धर्म के कारण उन्हें उतना कष्ट, अनादर वा अपमान न सहना पड़ता था।

इस भेद का कारण सहज ही मिल सकता है। अफ़गान बादशाह स्वभाव से ही युद्धप्रिय थे; शारीरिक बलप्रयोग ही में उनका महत्व था। भारतवर्ष उनके लिए सब प्रकार से विदेश था; इसके लिए उनके हृदय में प्रीति होने की सम्भावना न थी। फिर इस पर राजा और प्रजा में विषम धार्मिक प्रभेद। अफ़गान अपने को ईश्वर के वरपुत्र समझते थे; धर्म का जोश उन्हें यहां लाया था। तब क्योंकर सम्भव था कि उस जोश में कमी करके वे भारतवर्ष से मेल-जोल बढ़ाते। मूर्त्तिपूजक हिन्दुओं की सहायता करना, उन्हें राजशासन में अधिकार देना, उनके धार्मिक व्यवहारों में हस्तक्षेप न करना, ये बातें कट्टर अफ़गानों को भला कब सह्य हो सकती थीं? एक और कारण भी हो सकता है,—रणक्षेत्र तथा शासनकार्य दोनों ही में निपुण होना बड़ा ही कठिन है। वीर अफ़गान बादशाह राजनीतिज्ञ भी थे, यह प्रतीत नहीं होता। यदि राजनीतिज्ञ होते, यदि मनु

प्रकृति को समझने और उसके शासन करने की सच्ची योग्यता रखते होते तो भारत का तत्सामयिक इतिहास कुछ और ही होता। परन्तु ऐसा न हुआ। विजेता ने सोचा कि भारतवर्ष बाहुबल से दख़ल किया गया है तो तलवार ही के ज़ोर से अधिकार में रक्खा जा सकता है। जब तक विजेता का शारीरिक बल अधिक रहेगा, जब तक कोई अधिक बली आकर उन्हें पराजित न करलेगा, तबतक वे भारत के शासक बने रहेंगे। ऐसा विचार करके अफ़गान अपना सामरिक बल पुष्ट रखने में ही दत्तचित्त रहे। समय २ पर अफ़गानिस्तान, तुर्किस्तान इत्यादि देशों से सिपाही बुला सेना में भरती किये। यहां के लोगों पर विश्वास कर उन्हें सेना में दायित्वपूर्ण अधिकार देना अनुचित समझा। यह उनकी कैसी भूल थी इसका परिचय इतिहास पुकार २ कर दे रहा है। एकमात्र अपनी सामरिक श्रेष्ठता पर भरोसा करके उन बादशाहों ने प्रजावर्ग से मिलना जुलना, उनके सामाजिक जीवन में शामिल होना और उनके प्रति बन्धुभाव प्रदर्शित करना उचित नहीं समझा, जिसका फल यह हुआ कि राजा-प्रजा में प्रेम का सम्बन्ध नाम को भी नहीं स्थापित हुआ--एक के सुख-दुःख से दूसरे को मानो कुछ सम्बन्ध ही नहीं था। एक राजवंश के बाद दूसरा आया और गया—गुलामवंश को हटा ख़िलजियों ने दिल्ली पर आधिपत्य जमाया, ख़िलजी गये तो तुग़लक आये; फिर सैयदों और लोदियों की बारी आई। पीछे इन सब को हटा तैमूर-वंशज बाबर ने अपना प्रभुत्व स्थापित किया। दिल्ली के राज-सिंहासन ने कितने ही उलट फेर देखे; विप्लव के बाद विप्लव हुआ; तीन सौ वर्षों में कितने आये और कितन गये; परन्तु प्रजा को मानो इसकी कुछ चिन्ता न थी। वह इन परिवर्तनों को आंखें फाड़ कर बस देख लिया करती थी। प्रजा को राजा के लिए, राजा को प्रजा के लिए सहानुभूति न थी, जो राजा-प्रजा में, शासक और शासित में, दोनों के मंगल के लिए होना उचित था। उधर शासकों ने समझ लिया कि प्रजा सुख में रहे या दुःख में हमारी बादशाही में तो बट्टा नहीं लगता; और इधर प्रजा ने सोच लिया कि "कोउ नृप होइ हमहिं का हानी" यही कारण है कि सम्पूर्ण अफ़गान इतिहास में एक भी ऐसा उदाहरण नहीं है जब लोकमत किसी विशेष राजवंश के लिए सहानुभूति से क्षुब्ध हुआ हो और उसको बचाने के लिए साधारण जनता वा रईसों और राजा महाराजाओं ने यत्न किया हो। कवि आर्नल्ड ने उचित ही कहा है:--

> The East bowed low before the blast
> In patient deep disdain
>
> She let the legions thunder past
> And plunged in thought again.

> तिरस्कार से भारत ने झोंके
> सशान्ति सामना किया।
> सेना की गर्जना देखली,
> निज विचार में चित्त दिया॥

(२) मुग़लों का समय।

हिन्दुओं ने मुसलमानी राज्य स्थापित होने के हज़ारों बर्ष पहले ही उन सिद्धान्तों का निश्चय कर दिया था जिनका आज अब बड़े २ अन्तर्जातीय कानूनों (International Laws) की पद्धति से निर्णय होता है। यहां के दूरदर्शी ऋषियों के बनाये शासन-नीति-विषयक नियम, जिनका समावेश मनुसंहिता में है, आज भी सब जगत में सद्यः वा प्रकाशान्तर में माने जाते हैं। मनु ने स्पष्ट ही कहा है कि जो राजा कोई नया देश दख़ल करे तो उसे उचित है कि वहां के प्रचलित धर्म तथा देवस्थल आदि की रक्षा करे, जागीरें वितरण करे, अपनी नयी प्रजा को घोषणा द्वारा आश्वासन दे, और उस देश के प्रच-

लित, सामाजिक तथा राजकीय नियमों को स्वीकार करे। यदि सम्भव हो तो विजित राजा से मेल कर उसकी सहायता ले, क्योंकि इस प्रकार मित्र राज्य स्थापित करने से राजा के बल की पुष्टि होती है। मनु के लिखे नियमों से अफ़गान राजाओं के समय की प्रथा का मिलान करने पर प्रकृत अवस्था का ज्ञान हो जयगा।

पूर्वोक्त उद्देश्यों को सामने रखकर प्रजाशासन नहीं करने के कारण ही विजित भारतवर्ष में तीन सौ वर्षों तक विप्लव ही होता रहा। जो राजा बली हुआ और अपने अधीनस्थ सरदारों और सेनाओं का योग्य शासन करता रहा वह तो यशस्वी हुआ, और राज्य का विस्तार कर सका, पर जो राजा अभ्याग्यवश इन गुणों से वंचित रहा उसके समय में कुशासन के फल से विप्लव ने सिर उठाया और अन्त में उस राजवंश की इतिश्री हो गई।

मुसलमान बादशाहों में अकबर ही सबसे पहला बादशाह हुआ जिसने उक्त राजनीतिक तत्व को समझा। वास्तव में मुग़लवंश का संस्थापक वही था, और उसे ही भारतवर्ष का—हिन्दू मुसलमानो का—सच्चा राजा बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उसका जीवनचरित्र पढ़ने से आरम्भ में ही विचित्रता झलकने लगती है। पराजित शत्रु के प्रति दया दिखाना नवस्थापित राज्य में कितना काम करता है यह अकबर खूब समझता था। उसकी राजनीति सब से निराली थी। उसके पहले मुसलमान बादशाहों ने न वैसा किया था, न उनसे वैसा होना सम्भव ही था। पानीपत की दूसरी लड़ाई के बाद जब प्रभु-भक्त हेमू घायल होकर पकड़ा गया, तब उसी आसन्न-मृत्यु अवस्था में वह अकबर के सामने लाया गया। वही योद्धा जो कुछ ही समय पहले एक बड़ी सेना इकट्ठी कर भारतवर्ष की ओर से मुग़लों का सामना करने गया था—उसके भाग्य ने ऐसा कुछ पलटा खाया कि—घायल और बन्दी होकर अपने शत्रु के सामने हाज़िर किया जाता है। ऐसे समय में पठान बादशाह क्या करते यह कहने की आवश्यकता नहीं। ख़ान बाबा बैरम खां ने प्रचलित नियमों के अनुसार ही युवक बादशाह अकबर से कहा कि आप इस पराजित क़ाफ़िर का शिर काट अपनी विजयिनी तलवार की प्यास बुझावें। अकबर लड़का था परन्तु भावी महत्व का चिन्ह उसके रोम २ से झलकता था। सच्चे वीर को जैसा चाहिये उसी प्रकार अकबर ने भी पराजित, बन्दी तथा कातर शत्रु को निर्दयता से मारने से साफ़ इनकार किया। परन्तु बैरम कब माननेवाला था, वह जिस रंग में रँग चुका था; उसने जिस पाठशाला में शिक्षा पाई थी उसके विरुद्ध जाना उसकी अवस्था के मनुष्य के लिए कठिन था। बैरम ने झट मरते हुए हेमू का सिर धड़ से अलग कर अपनी शत्रुता की आग बुझाई। पर इस एक घटना ने ही स्पष्ट कर दिखाया कि भारत का भावी सम्राट् किस प्रकार का मनुष्य थ। ज्यों २ अकबर की उम्र बढ़ती गई उसके विचार भी प्रौढ़ होते गये और साथ ही भारतशासन की पद्धति भी बदलती गई। अकबर ने मनुसंहिता में कहे गये ऋषियों की बातों का ही प्रयोग करना उचित समझा। सम्भव है कि अबुलफ़ज़ल और फ़ैज़ी जैसे संस्कृत के विद्वानों ने उक्त बातें अकबर को सुझाई हों। जो हो इतना अवश्य सत्य है कि अकबर ने निश्चय कर लिया था कि भारतवर्ष का राज्य केवल बाहुबल पर ही स्थित नहीं रह सकेगा। जबतक इस राज्य की नींव प्रजा के प्रेम तथा सहानुभूति पर न पड़ेगी तबतक इस का चिरस्थायी होना कठिन है। जब तक हिन्दू मुसलमान का मेल न बढ़ेगा, आपस की फूट न मिटेगी, विजेता और विजित का भेदभाव न घटेगा, तब तक वह निश्चिन्त न रह सकेगा। इन उद्देश्यों की पूर्त्ति के लिए अकबर ने कई उपाय किये। मुग़लों ने यद्यपि पानीपत की

लड़ाई में अफ़गानों को परास्त किया था, तथापि बंगाल इत्यादि प्रान्तों में उनका ज़ोर बहुत बढ़ा हुआ था। अफ़गानों को सर करना, मुग़लों के राज्य का विस्तार करना तथा हिन्दू प्रजा को भी मिलाये रखना एक साथ ये तीनों काम संकीर्ण नीति के अवलम्बन से नहीं हो सकते थे। अकबर दूरन्देश था, उसने पहिले हिन्दुओं को, विशेष कर राजपूत वीरों को, वश में करने की ठानी। लड़ाई से वा प्रलोभन से वा मनु के बनाये उपायों से किसी न किसी प्रकार उसने राजपूत नरेशों को अपनी मुट्ठी में कर लिया। क्रमशः सब के सब, केवल महाराना उदयसिंह और अद्वितीय वीर प्रतापसिंह को छोड़, अकबर के मित्र वा सम्बन्धी बन गये। वे बड़े २ पदों पर बिठाये गये, राजपूतों की सेना बनी, और उसके अधिनायक तथा नायक राजपूत राजा ही होने लगे। अब क्या था, राजा के प्रेम और विश्वास पर मुग्ध होकर हिन्दुओं ने प्राण तक अर्पण करना तुच्छ समझा। उन्हें अपनी योग्यता दिखाने तथा अकबर को अपना पक्ष पुष्ट करने का इससे बढ़कर और कौन अवसर मिल सकता था। हिन्दू मनसबदार काबुल या बंगाल के अफ़गानों को सर करने के लिए नियुक्त किये जाने लगे। जो बातें यहां मुसलमानों के इतिहास में कभी नहीं हुई थीं वे अकबर ने कर दिखाईं।

धर्म के नाम पर ईश्वर-भक्ति के बहाने आज तक कितनी खूनख़राबी हुई इसकी गवाही इतिहास पुकार २ कर दे रहा है। हमारा ही धर्म सच्चा है, हम ईश्वर को जो आकार, जो गुण देते हैं वही ठीक है, हम जिस प्रकार उसकी पूजा करते हैं, हमने उसकी उपासना के लिए जो पद्धति बनाई है और जो मन्दिर उठाया है वही ठीक है, मद्भिन्न दूसरों की सब बातें बिलकुल झूठी निःसार हैं। इतना ही नहीं, हम जो कहते हैं या जो करने की सलाह देते हैं दूसरों को भी वही मानना और करना पड़ेगा। यदि न करेंगे तो उन्हें तलवार के ज़ोर से 'सच्चे' रास्ते पर खींच लाना हमारा धर्म है। यही तो आज तक के धर्मयुद्धों की नीति रही है। इन्हीं विचारों से परिचालित होकर ईश्वर के भक्तों ने रक्त की कितनी नदियां बहाईं, और निरपराधियों के रुण्ड-मुण्ड के कैसे २ पहाड़ खड़े किये, उनका अब कौन हिसाब लगा सकता है। कैथलिक और प्रोटेस्टेंटों के युद्ध, मुसलमानों क्रूस्तानों की धार्मिक लड़ाइयां, हिन्दुओं और बौद्धों के समर और हिन्दू मुसलमानों के युद्ध ही उनके प्रमाण हैं। पर इन सब लड़ाई-झगड़ों का फल क्या हुआ? कोई किसी दूसरे धर्म का समूल नाश न कर सका। ईश्वर जो था वही रहा। वह न पराजितों के ही पास आया न उसने विजेताओं को ही अपनाया। उसके लिए सब बराबर हैं। सब उसीके जीव हैं। अपनी २ रुचि और बुद्धि के अनुसार लोग उसके रूप की कल्पना कर और उपासना की पद्धति बना लेते हैं। इन विचारों पर चलने के लिए असंकुचित बुद्धि चाहिये, उदार हृदय चाहिये। पर मत-मतान्तर का जोश लोगों को अनुदार और कट्टर बना देता है। मुसलमानों के समय में भारतवर्ष की भी ऐसी ही अवस्था थी। अकबर ने देखा कि धार्मिक प्रभेद के कारण हिन्दू मुसलमानों में बहुत बड़ा वैमनस्य फैला हुआ है और यह कभी सम्भव ही नहीं है कि सब के सब हिन्दू मुसलमान हो जायँ जिससे दोनों का झगड़ा मिटे और बादशाह सुख की नींद सोवे। इस कारण उसने सोचा कि मित्रभाव तथा धार्मिक प्रश्नों में उदारनीति का प्रयोग ही राजनीतिज्ञ का काम होगा। अतएव उसने ऐसाही किया और फल भी आशातीत हुआ। हिन्दुओं को अपने धर्म के कारण जो जज़िया नामक कर देना पड़ता था वह उठा दिया गया। हिन्दू तीर्थयात्रियों से जो कर लिया जाता था वह भी माफ़ कर दिया गया। अब

तक हिन्दू कर्मचारी उच्च पदों पर नियुक्त नहीं होते थे; जोखिम का काम उनके हाथ कभी नहीं सौंपा जाता था। अकबर ने इस रुकावट को भी हटा दिया। हिन्दू मुसलमान दोनों के अधिकार प्रायः बराबर होगये। दोनों अपनी २ योग्यता और कार्यकुशलता से उच्चपदों पर पहुंचने लगे। अकबर बादशाह इस उदारनीति से हिन्दुओं के प्यारे होगये। हिन्दुओं के बराबर कृतज्ञ जाति पृथ्वी पर ढूंढ़ने ही से मिलेगी। प्रेम और राजभक्ति से गद्गद हो हिन्दुओं ने कहना शुरू किया "दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा।"

अकबर के चलाये नियम और उसकी उदार नीति, उसकी मृत्यु के अनन्तर भी कुछ दिनों जारी रही। उसके पुत्र और पौत्र जहांगीर और शाहजहां ने भी अकबरी नीति से ही शासन किया। परन्तु औरंजेब ने आकर सब बातें पलट दीं। औरंगजेब, वीर, परिश्रमी, बुद्धिमान् तथा चतुर राजा था परन्तु उसके विचार बहुत ही संकीर्ण थे। शासकों में--विशेषकर हिन्दुस्तान जैसे देश में जहां अनेक जातियां और बहुत से धर्म प्रचलित हैं--जिन गुणों की आवश्यकता है वे औरंगजेब में बिलकुल न थे। वह अपने धर्म में बहुत पक्का था और मुलनाओं के उपदेश का बड़ा पाबन्द था। इसका परिणाम यह हुआ कि हिन्दुओं की अवस्था फिर पठानों के समय की सी हो गई। क्रमशः 'काफ़िर' उच्च पदों से हटाये गये। जिन राजपूतों ने मुसलमानों का साथ दे अपने ही भाई बन्धुओं का खून बहाया था उनपर भी अविश्वास होने लगा। बादशाह की कूटनीति से कई सम्भ्रान्त राजपूत वीरों को अपमान सहना पड़ा। घृणित 'ज़जीया' नामक कर फिर से जारी हो गया। मुसलमान कर्मचारियों पर भी इतना अविश्वास किया जाता था कि कोई सच्चे मन से बादशाह की सेवा नहीं कर सकता था। अकबर ने यत्न पूर्वक जिन दूषणों को हटाने की चेष्टा की थी (और पीछे उस के पुत्र तथा पौत्र ने भी उस चेष्टा को शिथिल नहीं होने दिया था) उनकी औरंगजेब के समय में फिर वृद्धि हुई। इसी समय से प्रसिद्ध तैमूरवंश के विशाल साम्राज्य का अधःपतन आरम्भ हुआ। औरंगज़ेब ने अपने मुसलमानी राज्य की सीमा को वृद्धि के उच्चतम शिखर पर भी पहुंचाया और साथ ही उसके नाश का मार्ग भी तैयार कर दिया। जब १७०७ ई० में प्रायः ९० वर्ष का बुड्ढा बादशाह इस संसार की लीला समाप्त कर रहा था उस समय उसके जीवन की घटनाएँ उसे बेचैन किये डालती थीं। उस सयय उसे विश्वास हो गया था कि अपने कार्यों का फल कुछ तो वह आप भोग चुका है और शेष उसके उत्तराधिकारी भोगेंगे। हुआ भी ऐसा ही। औरँगज़ेब के मरने पर ५०-६० वर्षों ही में मुग़लों का विशाल राज्य तहस नहस हो गया। उसी राज्य के भग्नावशेष पर एक नया दृढ़ साम्राज्य स्थापित हुआ जिसका प्रतापसूर्य आज तक बढ़ रहा है।

प्रेमी का पत्र।

हाल दिल वह है कि जो कहने के शाया* भी नहीं।
और जो चाहूं कि छिपाऊं तो यह इमकां† भी नहीं
बात वह कहनी है कहने में जो शरम आती है।
लब पे आ आके मेरे बात पलट जाती है॥
एक मुद्दत से रहा दिल में छिपाये जो बात।
आज कहता हूं उसे शरम है अब आपके हाथ॥
मेरी हिम्मत नहीं पड़ती के कहूं दिल की मगर।
अब छिपाये से तो छिपता भी नहीं दर्दे जिगर॥
मैं ज़बां से न कहूं हाल बता देंगे मेरा।
मेरे सूखे हुए होंठ और मेरा उतरा चेहरा॥
यह समझ कर तुम्हें लिखता हूं ये बात ऐ प्यारी।
खुद ही जानो मेरे दिल कि न के दुनिया सारी॥
देखना और किसी पर नहो ज़ाहिर यह हाल।
साफ लिखना मुझे दिलमें हो तुम्हारे जो ख्याल॥
अपने मतलब से भी पहले मुझे कुछ कहना है।
यह कि दुनिया में अभी तुमको बहुत रहना है॥
मदभरी अँखड़ियों में शरम का पानी आए।
चार दिन भी नहीं गुज़रे हैं जवानी आए॥
चश्मबद्दूर‡ अभी आप है ही क्या सिन।
चले आते हैं उमंगों के तरंगों के दिन॥
नशए इश्क जो आखों में कभी पावोगी तुम।
अपना मुह देखके आईने में शरमावोगी तुम॥
लाख घातों से जले दिल को जलायेगा ज़रूर।
कामदेव अपने बिरह बान चलायेगा ज़रूर॥
घाव पर घाव लगायँगे पपीहे अकसर।
फूल से गाल पै मंडलायँगे भौरें अकसर॥
खेलने तुमसे कभी तुमको खिलाने के लिये।
मौसम आयँगे कभी दिलको लुभाने के लिये॥
पूछ लो दिल से जो मानो न हमारा कहना।
है कठिन बात जवानी में अकेले रहना॥
कभी ग्रीष्म कभी बर्षा कभी आयेगा हिमन्त।
कभी आयेगा शरद गाह शिशर गाह बसंत॥

गरम गरमी कि हवा ऐसी कि दिल मुरझा जायँ।
ज़िकर फूलों का तो क्या नैनकमल कुम्हला जायँ॥
तुन्द झोंकों में हवा की वह हरारत तोबा।
और पसीने की वह गालों पै शरारत तोबा॥
वह दोपहरों की उदासी वह पहाड़ ऐसे दिन।
काटे कट जाय अकेले यह नहीं है मुमकिन॥
मुहं पे बहना वह पसीने का कभी लहरों में।
भिनभिनाना कभी सारंग का दोपहरों में॥
दिन अगर कट भी गया रात कटेगी क्योंकर।
जिसमें घंटों का तो क्या ज़िकर है पल पल दूभर॥
रात भर तो कोई पत्ता न हिलेगा प्यारी।
दिन मगर रात से जिस वक्त मिलेगा प्यारी॥
ऐसी सनकेगी हवा सुबः को प्यारी प्यारी।
भूल जायेगी वह शब* भर की शिकायत सारी॥
खिलखिला कर इसी मौसम में हँसेगे कभी फूल।
आपके हंसने पर आवाजें कसेंगे कभी फूल॥
फूल बेले का खिलाने के लिये आयेगी।
चांदनी तुमको लुभाने के लिये आयेगी॥
गर्मी कट जायगी वर्षा न कटेगी लेकिन।
फिर जवानी की वह रातें वह उमंगों के दिन॥
कभी आयेंगी घटाओं में घटाएं काली।
सरपे लायेंगी बलाओं पे बलाएं काली॥
बिजली आ आके अकेले में डरायेगी ज़रूर।
दिल में बिरहन के मगर आग लगायेगी ज़रूर॥
दिलजलों को कभी यों आके जला जायेगा।
कामदेव अपने बिरह बान चला जायेगा॥
दिल धड़क जायगा बिजली के चमकने से ज़रूर।
जी खटक जायगा बादल के कड़कने से ज़रूर॥
झोंके इठलाते हवा के जो कभी आयँगे।
तीर की तरह कलेजे में उतर जायँगे॥
आके बरसेंगे जो रिमझिम कभी बादल बनमें।
बूंदे बन बन के बिरह बान लगेंगे तनमें॥
नदी बढ़ बढ़ के कभी जी को जलायेगी ज़रूर।
धार पानी की कभी दिल को लुभायेगी ज़रूर॥

* योग्य। † बस की बात। ‡ ईश्वर तुम्हें बुरी नजर से बचावे।

* रात।

साथ की सखियों को जंगल में भी होगा मंगल ।
और बिरहन के लिये होगा भवन में जंगल ॥
गुदगुदाती हुई आयेगी हवा सावन की ।
जो जलाती हुई आयेगी हवा सावन की ॥
साथ लाती है बहारों के झमेले बर्षा ।
कहो किस तरह से काटोगी अकेले बर्षा ॥
मैंने माना कि गुज़र भी गई बर्षा लेकिन ।
काटना होगा शरद का न अकेले मुमकिन ॥
कभी खिल खिल के चमेली तुम्हें ललचायेगी ।
और कभी कोई सहेली तुम्हें ललचायेगी ॥
फूल हर रंग के खिल जायँगे इस मौसम में ।
भौंरे फूलों पे नज़र आयँगे इस मौसम में ॥
प्यार भौंरे कभी फूलों को करेंगे आकर ।
जोड़े सारस के कभी खेलते आयँगे नज़र ॥
आके बादल कभी दो चार बरस जायेंगे ।
झोंके आ आके हवा के कभी डस जायेंगे ॥
जान डालेंगे कभी तन में हवा के झोंके ।
दिल लुभा लेंगे कभी बन में हवा के झोंके ॥
सैर करती हुई आयेगी जो नदी पे नज़र ।
दिल दुखा जायगा चिड़ियों का तमाशा अक्सर ॥
कभी भौंरे कभी सारस कभी हंसों की सफ* ।
प्यार ही प्यार नज़र आयगा हर चार तरफ ॥
देख कर नशः जिन्हें आखों में आजायेगा ।
जो ख्याल आयेगा कुछ रंज बढ़ा जायेगा ॥
लाख मुश्किल से यह माना के शरद कट भी गया ।
नहीं कटने का भयानक वह हिमंती जाड़ा ।
अब हसीनों को भी भाता है गुलाबी जाड़ा ।
दिल को छीने लिये जाता है गुलाबी जाड़ा ॥
वह वह ऋतु है कि न सरदी है न गरमी इसमें ।
किसी कमसिन कि तबिबत की है नरमी इसमें ॥
चाँदनी रहती है हो यों तो सुहानी अक्सर ।
और ही बात है कुछ रात की इस ऋतु की मगर ॥
और मौसम तो गुज़र जायँ यह मुमकिन है मगर ।
कटना हो जायगा रातों को शिशिर का दूभर ॥
अब कहां फूलों पे जोबन कि कोई दिल बहलाय ।
अब न मौसम में है वह लुत्फ कि दिल को चैन आय

यह वह मौसम है कि पतझाड़ है सब पेड़ों का ।
सैर में अब नहीं बागों के वह अगला सा मज़ा ॥
मारे सर्दी के है दो गाम* भी चलना मुश्किल ।
है वह ठिठुरन कि कँपा जाता है सीने में दिल ॥
कामकाजी भी है सर्दी के सबब से मजबूर ।
दिल के बहलाने को है फक्र हसीनों को ज़रूर ॥
निकले आते हैं दुशालों पे दुशाले घर घर ।
कुछ अजब तरह का जोबन है चढ़ा दुनिया पर ॥
और मौसम तो यह माना भी के हो जायँगे अंत ।
पर किसी तरह से काटा नहीं कटने का बसंत ॥
कूक कोयल की कभी छेड़ेगी दिल को आकर ।
भौंरे डालेंगे कभी फूलों पे जादू आकर ॥
आम बौराये हुए दिल को लुभायेंगे कभी ।
फूल हँस हँस के जले दिल को जलायेंगे कभी ॥
चाँदनी तुमको दिखायेगा निखर कर जोबन ।
और हँसीनों पर नज़र आयगा घर घर जोबन ॥
दिल को बरमायगी† कोयल की कभी कूक आकर ।
कटना हो जायगा रातों का अकेले दूभर ॥
फूली सरसों कभी आयेगी जो खेतों में नज़र ।
कैसे मानू मैं कि रह जायगा काबू दिल पर ॥
धीमी धीमी कभी अठलाती हवा आयेगी ।
और दिल को कभी बरमाती हवा आयेगी ॥
भूल कर तुम जो पहिन लोगी बसंती सारी ।
तुम को डस जायँगी फागुन की हवाएँ प्यारी ॥
होली गाती हुई सुनलोगी किसी को जो कभी ।
वह तपिश होगी तबिबत में कि घबरायगा जी ॥
रंग होला का कुछ इस तरह से छाजायेगा ।
एक आलम तुम्हें सरमस्त नज़र आयेगा ॥
आयँगी साथ की खेलो हुई सखियां कहने ।
तुम भी देखो यह सखी फूलों के मेरे गहने ॥
मैं पहनती न थी लेकिन न उन्होंने माना ।
अब पड़ा है मुझे हमजोलियों में शरमाना ॥
दिल मचल जायगा सुन २ के यह बातें अक्सर ।
तुम समझ भी नहीं पाओगी यह बातें अक्सर ॥
इस तरह जीवन कटना ज़रा मुश्किल होगा ।
और पहलू में जब अरमान भरा दिल होगा ॥

* कतार ।

* गावा । † छेड़ेगी ।

और इस सब पै इज़ाफा मेरे दिल की हालत ।
मेरे कहने पै है क्या देख लो मेरी रंगत ॥
तुम से किस तरह कहूं तुम उसे भूलो प्यारी ।
ज़िन्दगी साथ में थी जिसके कि कटनी सारी ॥
मैंने जो कुछ भी लिखा दिल को दबाकर लिखा ।
सख़ शरमा के लिखा सख़ लजाकर लिखा ॥
बात कोई भी मेरे ख़त में मुहब्बत की नहीं ।
के बुरी तुमको न मालूम हो ऐ जान कहीं ॥
तुम बढ़ाओगी जो हिम्मत तो लिखंगा भी कभी ।
दिल के अरमानों का कुछ हाल मुहब्बत दिल की ॥
तुम करोगी मुझे ख़िदमत में अगर आपने कुबूल ।
समरः जीस्त में समझूंगा हुआ मुझको हसूल ॥
काश तुम हमदम व हमराज़ हमारी होजाओ ।
अपना प्यारा मुझे कह दो मेरी प्यारी होजाओ ॥

विधवा का जवाब ।

महरबां कीजिये बिरहन का यह परनाम कबूल ।
और साथ उसके मेरी पाक मुहब्बत के फूल ॥
आपके ख़त से हुई कुछ तो तसल्ली लेकिन ।
सख़्त अफसोस कि इकरार नहीं है मुम्किन ॥
आप शरमिंदा हैं क्यों शरम की बात इसमें है क्या ।
होती है वक्त पे मौक़ूफ़ ज़माने की हवा ॥
आपने साफ लिखा इससे बहुत खुश हूं मैं ।
अब जो कुछ मुझको है कहना वह ज़रा आप सुनें
जब तलक आप छिपायँगे, छिपेगा यह हाल ।
मुझको आयाथा न आयगा कभी फिर यह ख्याल
हक़ किसी तरहसे अलक़ाब न था प्यारी का ।
मुझसी बिरहन का परेशान का दुखियारी का ॥
नहीं टूटा हुआ दिल दिल के लगाने काबिल ।
मैं सियाबख़्त* नहीं प्यार जताने काबिल ॥
मेरी किसमत में अगर प्यार ही होता वारे ।
छोड़ जाते मुझे दुनियां में न तनहां प्यारे ॥
रहम क्या कुछ मेरी हालत पै न आता उनको ।
छोड़ कर मुझ को चले जाना न भाता उनको ॥

रात दिन मुझको न इस तरह रुलाते स्वामी ।
इस तरह दुख में मुझे छोड़ न जाते स्वामी ॥
इससे मालूम हुआ गम मेरी तक़दीर में है ।
और हर तरह से मातम मेरी तक़दीर में है ॥
पस यह बेहतर है मुझ से आप मोहब्बत न करें ।
मेरी फूटी हुई तक़दीर में शिरकत न करें ॥
मुझसे बदबख़्त के मिलने से न कुछ होगा वसूल ।
एक अफसुरदः* बना देना है महफिल को मलूल†
अब मेरा दिल कभी खुश हो यह नहीं है मुम्किन ।
मेरे नज़दीक बराबर है वही रात के दिन ॥
ख्वाह से दिल की मेरे मेरी उमंगें भी गईं ।
साथ स्वामी के मेरे मेरी तरंगें भी गईं ॥
प्राणपति लेगये सब साथ खुशी का सामान ।
बेहया जामा है अपना कि निकलती नहीं जान ॥
किसी सिंगार के क़ाबिल मेरी हालत न रही ।
देखूं आइने में ऐसी मेरी सूरत न रही ॥
साथ सेंदूर के स्वामी के बराबर रखकर ।
फूंक दी अपनी जवानी भी चितापर रखकर ॥
आईना देखना लाज़िम है सुहागिन के लिये ।
न कि मुझ ऐसे सियाबख़्त अभागिन के लिये ॥
आप कहते हैं कि मौसम मुझे तड़पायेंगे ।
मैं यह कहती हूं मेरा रंज घटा जायेंगे ॥
आपकी बात सुनें लोग तो क्या सुनके कहें ।
आप ही बात कहें और उसे काट भी दें ॥
दिलशिकन‡ होती है गरमी की दुपहरें माना ।
मुंह पै आयेंगी पसीने की भी लहरें माना ॥
मुझको गरमी में मगर आप न तनहा समझें ।
कि अकेले में भी दो होंगे "उदासी" और 'मैं' ॥
प्यारी तानों से मधुर गीत सुनाने के लिये ।
होगी सारंग मेरा रंज बटाने के लिये ॥
जब गजरदम कभी आयेंगे हवा के झोंके ।
यह सबक मुझको सिखायेंगे हवा के झोंके ॥
योंहीं हर रंग का अंजाम जो राहत होगी ।
एक दिन ख़त्म यह मेरी भी मुसीबत होगी ॥
गुंचे§ हल हँसं के यह कह कहके मुझे देंगे मदद ।

---

* भाग्यहीन ।

* दुःखी । † दुःख ‡ दिलदुखना । § फूल ।

"सब्र तलखस्त* व लेकिन शीरीं दारद" ॥
बस इसी तरह गुज़र जायगी गरमी एक दिन।
और होजायगा बरषा का भी कटना मुमकिन ॥
जब यह देखूंगी घटा झूम के काली आई।
मैं यह समझूंगी की दुख बाँटनेवाली आई ॥
साथ बाँधेगी मेरे आसुओं का तार घटा।
मैं कहूंगी कि फिर आना मेरी गमख्वार घटा ॥
बिजली तड़पेगी तो समझूगी मेरा दिल तड़पा।
बेकरारी में मुकाबिल के मुकाबिल तड़पा ॥
बन में आयेंगे बरसते हुए बादल जो नज़र।
मैं यह समझूंगी कि रोते हैं मेरी हालत पर ॥
क्या सुनायेंगे पपीहे मुझे बानी अपनी।
मेरा ही दुख तो कहेंगे वह ज़बानी अपनी ॥
"पी कहां" जब कभी सुने कि सखुन उनका है।
यह समझे कि ज़बां मेरी दहन† उनका‡ है ॥
आग बरषा को हवा दिल में लगायेगी ज़रूर।
मेरी आंसू की झडी इसको बुझायेगी ज़रूर ॥
बस इसी तरह गुज़र जायगी बरषा सारी।
और आजायगी कटने की शरद की बारी ॥
फूल खिलते हुए देखूंगी चमेली के अगर।
यह सबक होगा कि दुनिया की है हालत अबतर ॥
कल जो गुंचा था वही आज गुलेतर होगा।
और उसी फूल का कल खाक पै बिस्तर होगा ॥
रंग इसी तरह ज़माने का बदलता है सदा।
एक हालत पे नहीं एक घडी भी रहता ॥
भौंरे आयेंगे सबक मुझको सिखाने के लिये।
हाल ना अहल§ की उलफत का बताने के लिये ॥
इश्क का अपने किया करते हैं जो लोग इज़हार।
एक साइत भी नहीं उनको मुहब्बत को करार ॥
मैं उसी तरह से बिन प्रेम के चाहन वाले।
खुदगरज होते हैं बनवट के मोहब्बत वाले ॥
मोअतबर होते हैं कब? बात बनानेवाले।
अपने मतलब के लिये प्यार जतानेवाले ॥
अभी इस फूल के आशिक थे अब उस फूल के हैं।
फूल नादां है जो अपना उन्हें आशिक समझें ॥

शरद इस तरह से पल मारते जायेगा गुजर।
बिजली जिस तरह चमकती है घटा में अकसर ॥
और जो आयेगा बढ़ाते हुए सर्दी को हिमंत।
बात की बात में बस उसका भी होजायगा अंत ॥
चांदनी मुझको लुभायेगी तो क्या आके भला।
मैंने खुद चांद की हालत से सबक यह सीखा ॥
माह कामिल* जो हुआ बद्र† से घट २ के हिलाल‡।
क्या अजब है जो हुआ है मेरी हालत को जवाल ॥
चांद पै और मेरी हाल पै निसबत कैसी।
मैं तो इन्सान हूं तकदीर का जाया ठहरी ॥
झोंके गुलशन के हवा के मुझे बतलायेंगे।
जिनसे मिल आये हैं हम कल न उन्हें पायेंगे ॥
गरज इस तरह हिमंत आके चला जायेगा।
किसी मतवाले को हो नींद का जैसे झोंका ॥
और शिशिर के भी महीने योंहीं कट जायँगे।
मेरी बिगड़ी हुई हालत को पलट जायँगे ॥
बाग में फूल नहीं दिल पै उमंगें कैसी।
ऐसे पतझाड़ के मौसम में तरंगें कैसी ॥
लोग ओढ़ेंगे रजाई पै रजाई लेकिन।
आतिशे हिज्र§ से जलती हुई होगी बिरहन ॥
शिशिर इस तरह से जायगा जवानी जैसे।
यों बसन्त आयगा जिस तरह बुढ़ापा आये ॥
कूक कोयल की सुनूंगी तो यह समझूंगी ज़रूर।
कि जुदाई से है जोड़े के यह अपने मज़बूर ॥
और जो चिड़ियों में है यों प्रेम का ताकत पैदा।
हैफ¶ इनसां पै अगर हो न मोहब्बत पैदा ॥
मुझको बताये हुए आप बतायेंगे यह बात।
रंज व राहत नहीं होतो कभी इंसान के हाथ ॥
चंद वह फल है जो कल खाक मे मिल जायेंगे।
कुछ बढ़ेंगे तो कभी आम कहे जायेंगे ॥
दान जो आप बनेंगे वहीं सखियां हैं मेरी।
और मैं वह हूं जो मिट्टी में हो मिल कर मिट्टी ॥
बढ़ने पकने के लिये और बना होगा कोई।
खाक में मिल के बनूं खाक यह किसमत है मेरी ॥

* कड़वा। † मुंह। ‡ पपीहों का। § लोग।

* पूर्णिमा का चांद। † सम्पूर्ण। ‡ द्वितीया का चांद। § वियोग की अग्नि। ¶ शोक।

सरसों फूली हुई आयेगी जो खेतों में नज़र ।
शर्म और रंज से मैं ज़रद पड़ूंगी अक्सर ॥
शरम आयेगी कि झूंठी है मुहब्बत मेरी ।
प्राणपति के लिये क्यों ज़रद नहीं मैं ऐसी ॥
साल हो जायगा यों आंख झपकते में बसर ।
कुछ न कुछ मुझको सिखायेगा सबक हर मंज़र* ॥
आपकी सारे ज़माने से हैं बातें न्यारी ।
कहीं बेवा भी पहनती हैं बसन्ती सारी ॥
आपने रंज में शिरकत का किया क़स्द अगर ।
इस इनायत का करूं शुक्र अदायें क्योंकर ॥
ग़म की तासीर को पर आप समझिये न हक़ीर ।
मलिक इंसान को बनाती है यह ग़म की तासीर ॥
ग़म में हम शादी व अंदोह बहम जानते हैं ।
आप क्या रंज की तौक़ीर को कम जानते हैं ॥
सारी दुनियां की कशाकश से छुड़ाता है यह रंज ।
और इन्सान को इन्सान बनाता है यह रंज ॥
बस दिखाता है ख्यालात की दुनियां यही गम ।
और ईश्वर के है मिलने का ज़रिया यही गम ॥
क़दर क्या जाने वह न्यामत की न हो जिसके पास ।
रोने ही वाले को मालूम है आंसू की मिठास ॥
क्या यह ग़म मुझको न पहुंचायेगा उस मंजिल तक
जिसमें हो जाती है रद सारी मुसीबत बेशक ॥
जिस्म ख़ाकी नहीं दिखलाते हैं स्वामी न सही ।
सतह पर अब नहीं पड़ती हैं निगाहें मेरी ॥
जिस किसी ओर निगाह अब मेरी उठ जाती है ।
अपने प्यारे ही की तसवीर नज़र आती है ॥
अब पपीहे के तरानों में सदा उनकी है ।
और भौरों के भी तानों में सदा उनकी है ॥
कभी कोयल कहे वह कूक कभी मोर के शोर ।
कभी बादल कभी बनते हैं हवाओं के झकोर ॥
ख्वाब में मुझको कलेजे से लगाने के लिये ।
रोज आते हैं मेरा रंज बटाने के लिये ॥
प्यार करते हैं मुझे मुझको लुभाते भी हैं ।
गुदगुदाते मुझे मुझको हँसाते भी हैं ॥
दिल में स्वामी का मेरे प्रेम भरा है ऐसा ।
कि नहीं और किसी के लिये बाक़ी कोई जा ॥
दिल नवाज़ी की हूँ मैं आपकी दिल से मशकूर ।
पर करूं क्या कि तबियत से हूँ अपने मजबूर ॥

सम्पादकीय टिप्पणियां ।

नया कानून ।

विलायती कानून से उसका सादृश्य ।

बड़ी कौंसिल में भारत-रक्षा सम्बन्धी नवीन कानून का मसविदा उपस्थित किये जाने के पहिले सरकार की ओर से कहा गया था कि यह कानून विलायती कानून 'डिफेंस आफ़ दी रीलम एक्ट' के ढाँचे पर ही बनाया जा रहा है। परन्तु अब यह अच्छी तरह प्रकट होगया है कि इस कथन में कितना तथ्य है। न केवल नाम, रूप और उद्देश्य ही में हिन्दुस्थान का कानून विलायत के कानून से भिन्न है, अधिक कठोर है वरन ब्रिटिश सरकार अपने बनाये हुए कानून में महत्वपूर्ण सुधार करने को राजी भी होगई है। इङ्गलैंड की पार्लामेंट में जब डिफेंस आफ़ रीअम एक्ट का मसविदा उपस्थित किया गया था तो लार्ड्स सभा के कई विद्वान सदस्यों और कानून के विशेषज्ञों ने उसकी धाराओं की तीव्र आलोचना की। उदाहरणतः लार्ड हैल्सबरी ने कहा था--"व्यक्तिगत स्वतंत्रता की रक्षा के लिए जो भवन कई पीढ़ियों से बनाया गया है उसको दूर कर देने की आवश्यकता मैं नहीं देखता।" वह भवन क्या है ? अर्थात् नागरिक का यह अधिकार है कि साधारण कानून के अनुसार संगठित न्यायालय में जज और जूरी की उपस्थिति में और विधिपूर्वक गवाहों की दी हुई गवाही के आधार पर उसके अपराध का विचार किया जाय।

*-दृश्य ।

परन्तु नये कानून के अनुसार जो अदालतें बनेंगी वे एक प्रकार की 'कोर्ट मार्शल' ही होंगी और वे चटपट बिना विलम्ब के फैसला सुना दिया करेंगी । अब प्रश्न यह है कि प्रजाजनों की हिफ़ाजत और बचाव के लिए, निर्दोषों और अपराधियों की एकगति रोकने के लिए जो उपयोगी और हितकर नियम बने हुए हैं उनपर, केवल यह कह कर कि 'अब तो युद्ध का समय है' धूल डाल देना चाहिये या नहीं ? लार्ड हैल्सबरी, लार्ड ब्राइस, लार्ड लोरबर्न, लार्ड पारमूर आदि कई अनुभवी और दूरदर्शी सज्जनों ने ज़ोर के साथ उपर्युक्त कानून की धाराओं पर आपत्ति की क्योंकि उन्हें भय है कि उसके प्रयोग से बेचारे निर्दोष को भी अपराधी के साथ कष्ट भोगना पड़ेगा । लार्ड ब्राइस ने कहा--यह प्रस्ताव मुझे अपूर्व मालूम पड़ता है । यदि आक्रमण और अन्तर्देशीय (सिविल) युद्ध की बात होती तब तो अवश्य साधारण अदालतें मिल ही नहीं सकतीं परन्तु जब कि साधारण न्यायालय मौजूद हैं तब अपनी ऐतिहासिक प्रथा में ऐसा असाधारण परिवर्तन करने के लिए कुछ विशेष हेतु बताया जाना चाहिये ।" लार्ड पारमूर ने उस कानून के उचित सुधार के निमित्त एक उपयोगी बिल इस आशय का उपस्थित किया कि जिन स्थानों में उस कानून का अमल किया जाय वहां फौजी अदालतों में नहीं वरन् साधारण न्यायालयों में जज और जुरी के समक्ष ही अभियुक्त का विचार किया जाय और फौजी अदालतें इंगलैड पर आक्रमण होने या युद्ध-जन्य किसी विशेष विपत्ति के उपस्थित होने पर बनाई जायें । सुधार के प्रस्ताव में एक धारा है कि अभियुक्त को अभियोग सूचना मिलने के ४ दिन के भीतर तक यह अधिकार होगा कि वह अपना मुकदमा फौजी अदालत की अपेक्षा साधारण न्यायालय में भेजे जाने की प्रार्थना करसके। भारतीय बड़ी व्यवस्थापक कौंसिल में गैरसरकारी मेम्बरों ने नये बिल के सुधार के लिए जो जो उपप्रस्ताव यद्यपि वे बहुत हलके थे, पेश किये प्रायः वे सब रद्दी की टोकरी में डाल दिये गये । परन्तु लार्ड सभा में उपयुक्त लार्डों की आपत्ति का वास्तविक फल हुआ और सरकार की ओर से लार्ड चैंसलर ने लार्ड पारमूर के अभिप्राय के साथ न केवल सहानुभूति ही प्रकट की वरन् कानून में तदनुसार सुधार कर देने का बचन भी दिया । इतनाही नहीं, 'टाइम्स' जैसे अनुदार और कट्टर पत्र ने भी लिखा कि इंगलैंड ने इस बात का यश प्राप्त किया है कि विपत्ति के समय में भी उस के कानून का प्रवाह वैसा ही बना रहता है परन्तु नये कानून की कुछ धाराएं "जर्मनी में शोभा पाने योग्य हैं" !

अब इंगलैंड की अवस्था से भारत की तुलना कीजिये । न यहां आक्रमण का भय है न कोई विशेष हलचल या घबराहट ही फैली हुई है । फिर भी प्रभुओं ने एक ही दिन में नये कानून को पास कर डाला और विलायती कानून में सुधार होने के समय तक भी रुकना उचित नहीं समझा । फिर, हिन्दुस्थान के कानून में दो पहलू रक्खे गये हैं । एक कर सम्बन्धी फौज के विरुद्ध अपराधों से हैं जिसके साथ अवश्य समस्त भारतवासियों की सहानुभूति है । परन्तु दूसरा उन अपराधों को भी समेटता है जो साधारण फौजदारी कानून के क्षेत्र में हैं जैसे डकैती, राजनैतिक अपराध और यहां तक कि दो जातियों के बीच विद्वेष भी उत्पन्न करना जिसका विलायती कानून में कहीं पता भी नहीं है ! फिर, विलायत में अंगरेज़ों के मुकदमों का विचार उन्हीं के स्वजातीय भाई करेंगे परन्तु यहां हिन्दुस्थान में हिन्दुस्थानी अभियुक्तों का विचार भिन्न जाति और धर्मवाले करेंगे और तिस पर तुर्रा यह कि न जूरीवाले साथ बैठ सकेंगे और न उनके ब्रह्मवाक्य सदृश फैसले के विरुद्ध कोई अपील ही हो सकेगा ! पाठकों ने अब देख लिया होगा कि विलायती और भारतीय कानून में कैसा मनोहर सादृश्य है !

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग, में बद्रीप्रसाद पाण्डेय के प्रबन्ध से छपकर प्रकाशित हुई ।

भाग ९] मई सन् १९१५ [संख्या ५

यह क्यों।

[लेखक—श्रीयुत ठाकुर शिवनन्दन सिंह बी० ए० ।]

प्रभो ! यह कैसा हृदयविदारक दृश्य है-एक करोड़ वा सत्तर लाख सेना यूरोपीय रणभूमि में एकत्र है। १८ करोड़ रुपया नित्य युद्धकुण्ड में स्वाहा हो रहा है ! सिकन्दर, ज़ेरक्सीज़, हनीबाल, सुलादीन, नेपोलियन, चंगेज़ और तैमूर आदि ने मिलकर भी ऐसी ख़ून की नदियां न बहाई होंगी जैसी आज बह रही हैं ! जिस शताब्दी की सभ्यता का मुकुट धारण करनेवाली ही जातियां ड्रेडनाट, ज़ेपलिन, हवाई जहाज़ और नाना प्रकार के अन्य भयंकर यन्त्रों द्वारा एक दूसरे का सर्वनाश कर रही हैं ! संसारमात्र का व्यापार बन्द है, शिल्प, कला, विज्ञान, कृषि आदि सब का काम रुक गया है ! कैन्टन (अमेरिका में) से कैन्टन (चीन में) तक हाहाकार मचा है ! बड़े २ विद्वान मर रहे हैं, वीर और योद्धा कट रहे हैं ; सभ्यता का हृदय तलवार और भाले की नोक बेधे डालती है-पृथ्वी कांप रही है ! प्राणी थर्रा रहे हैं ! प्रलयकाल के अनेक सामान एकत्र हैं ! यह क्यों ?

और फिर यह यूरोपीय महायुद्ध कोई नई चीज़ नहीं है। मानवजाति के आरम्भ से ही हमें युद्ध के आरम्भ का भी प्रमाण मिलता है। जिस देश, जिस जाति या जिस काल के इतिहास को देखिये युद्ध से भरा पड़ा है। प्राचीन आर्यों को अनार्य, कोलभील आदि से लड़ना पड़ा। क्रोधी परशुरामने अनेकों वार पृथ्वी को क्षत्रियों से खाली कर दिया। मर्यादापुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र को अत्याचारी रावण को दमन करना पड़ा। भगवान श्रीकृष्णचन्द्र को महाभारत सा भीषण युद्ध कराना पड़ा। गत पांच हज़ार वर्षों से भारत में निरन्तर रक्त की नदियां बहीं हैं-भारत के छोटे बड़े राजे और ज़मींदार

आपस में ही लड़ मरे हैं । राजपूताना क्या समस्त भारत में आन्तरिक युद्ध होता आया । फिर यह अभागा देश विदेशियों के हाथ आया । ग्रीक, सिथियन, हुन्श, ग़ज़नी, ग़ोर, अफ़ग़ान, पठान, तुर्क, तातार और मुग़ल आदि जिसने चाहा भारत का रक्त पान किया । देश छिना ; स्वतन्त्रता छिनी ; मन्दिर टूटे ; पुस्तकालय भस्म हुए ; स्त्रियां जलीं, बच्चे दीवारों में चुने गये, ऋषिसन्तान मुसलमान और इसाई बनी ; धन, सम्पत्ति, व्यापार, कला, कौशल कुल विदेशियों के हाथ गया—यह क्यों ?

इस समय और सुशिक्षित समय में, संसार-मात्र के कल्याण के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सन्धि (International treaty) हुई ; प्रत्येक देशों में प्रत्येक सभ्य राज्यों के दूरदर्शी दूत (Ambassador) रहने लगे कि उनकी सलाह से अथवा अन्तर्राष्ट्रीय पंचायत द्वारा राज्यों के झगड़े तय कर दिये जायँ और राजाओं को व्यक्तिगत शासनप्रणाली छोड़ साधारण प्रजा की अनुमति से राज्य प्रबन्ध करने के लिए मज़बूर होना पड़ा । राजा-प्रजा में द्वेष का ह्रास और प्रेम की वृद्धि हुई । विद्या की वृद्धि से स्वतन्त्र विचारों की ओर लोगों की प्रवृत्ति हुई । धर्मसुधारकों का प्रभाव बढ़ा; पोप पादरी और पण्डितों की दैवी शक्ति का ह्रास हुआ । लोग परस्पर एक दूसरे का अधिकार और कर्तव्य समझने लगे । स्वार्थ घटा, परोपकार बढ़ा, समष्टिवादियों का बल बढ़ने लगा, राष्ट्र की सम्पत्ति पर प्रत्येक व्यक्ति का समान अधिकार माना जाने लगा । अनेक सभ्य राज्यों में प्रत्येक व्यक्ति को अपने योग्यतानुसार अपना सुधार करने का यथासम्भव पूर्ण अवसर दिया जाने लगा । जिस प्रकार रणमूर्ति भगवती दुर्गा को सब देवताओं के अंग-प्रत्यंगों की शक्तियां मिली थीं, उसी तरह हेग नगर में शान्तिमन्दिर की स्थापना में परस्पर विरोध अथवा मैत्री रखनेवाली शक्तियों ने मिलकर सहायता की और वह अनुपम 'अन्तर्राष्ट्रीय शान्तिमन्दिर' सर्वांगपूर्ण बन भी गया ।*

प्राचीनकाल के राम-रावण युद्ध से लेकर अर्वाचीन काल के रूस-जापान, इटली-रूम और जर्मनी के भीषण युद्ध तक लोग शान्तिपूर्वक झगड़ा निपटाने का यत्न करते आरहे हैं । रावण को अंगद ने समझाया ; दुर्योधन को उस समय के राजनीतिज्ञों ने युद्ध न करने की सलाह दी ; महारानी गान्धारी ने गुरुजनों की भरी सभा में युद्ध के विरुद्ध उपदेश किया ; श्रीकृष्णचन्द्र ने पाण्डवों की ओर से दूत बन कर बिना युद्ध किये ही शान्तिमय झगड़ा निपटा देने का पूर्ण प्रयत्न किया ।

घुष्यतां राजधानीषु सर्वसम्पन्महीक्षिताम् ।
पृथ्वी भ्रातृभावेन भुज्यतां विज्वरो भव ॥

पर तो भी कुरुक्षेत्र में १८ अक्षौहिणी सेनाएँ (४७,२३,९२० जन) कट ही गईं । अनन्तकाल

---

*"इस शान्ति मन्दिर के निर्माण के लिए धनकुवेर ऐन्ड्रू कारनेगी ने ३५ लाख मुद्रा प्रदान किया । डच पार्लियामेंट ने ८ लाख ४० हज़ार ज़मीन के लिए दिया । नारवे और स्वीडेन ने पत्थर दिया । हालैंड ने ईंटं दीं । ब्रेज़िल ने लकड़ी और दरवाजे बनाये । बृटेन ने दरवाज़ों के लिए कांच दिये । बेलजियम ने लोहे के किवाड़ दिये । जर्मनी ने बाहर का फाटक बनवाया । इटली ने संगमरमर दिया । फ्रांस ने रंग, पच्चीकारी और चित्रकारी कराई । रूम ने दरी बिछवाई । आस्ट्रेलिया और हेटी ने मेज, कुर्सी दीं । रूस ने एक बहुमूल्य संगेशब का गुलदान दिया । हंगरी ने अत्यन्त सुन्दर शमादान, आस्ट्रिया ने उसके रखने को बहुमूल्य रकाबी, अमेरिका ने कांसे और संगमरमर की मूर्तियां, चीन ने उत्तमोत्तम प्याले, जापान ने मनोहर रेशम के चित्र और स्विटज़रलैंड ने धरहरे के लिए घड़ी दी—इस तरह संसार की सभी शक्तियों की अनुमति और सहायता से शान्तिमन्दिर स्थापित हुआ"—भारीभ्रम ।

से लोग चिल्लाते आरहे हैं कि 'मा युध्यस्व-युद्ध मत करो' पर समय २ पर भीषण युद्ध छिड़ ही जाता है-यह क्यों ?

बात यह है कि सृष्टि बाइबिल-वर्णित रीति से कुल ६ दिन में शान्तिपूर्वक बनकर तैयार नहीं होगई। जिस रूप में हम आज सृष्टि को देखते हैं यह करोड़ों वर्ष के भयानक परिवर्तन का फल है। प्रकृति से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी, पृथ्वी से औषधि, औषधि से अन्न, अन्न से वीर्य और वीर्य से शरीर उत्पन्न हुआ।

प्रकृति का यह एक विलक्षण नियम है कि वह खानेवाले अधिक और खाद्यपदार्थ कम पैदा करती है और प्रत्येक प्राणियों में अपनी जाति बढ़ाने की प्रबल चेष्टा उत्पन्न कर देती है। इसका परिणाम यह होता है कि अपनी जाति बढ़ाने और जीवनरक्षा के लिए आवश्यकतानुसार खनिज, वनस्पति, पशु और मनुष्य में-परिमाणु-परिमाणु में, स्वभावतः कठिन संघर्ष जारी रहता है। सबल निर्बल को हड़प जाते हैं; योग्य, अयोग्य को निर्मूल कर देते हैं यानी अधिक योग्यतावाले ही फूलते फलते, अपनी जाति बढ़ाते और संसार में जीवित रहते हैं। इस प्राकृतिक और स्वाभाविक संघर्ष वा रगड़ारगड़ी को जीवनप्रयास कहते हैं; दूसरे शब्दों में इस संघर्ष, रगड़ारगड़ी या जीवन-प्रयास को युद्ध कहेंगे।

संसार के अन्य प्राणियों के समान मनुष्य-जगत् में भी अपनी जाति बढ़ाने और जीवन-रक्षा का संघर्ष जारी है।

स्त्री और पुरुष के मेल से सन्तान उत्पन्न होती है उसे कुटुम्ब कहते हैं। इस कुटुम्ब के प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे की सहायता और रक्षा करते हैं। धीरे धीरे कई कुटुम्ब एक साथ रहना स्वीकार करते हैं। इस परस्पर के मेल जोल से वे अपना कार्य भलीभांति कर सकते हैं और दूसरे ऐसे ही मिले जुले कुटुम्बों के आक्रमण और अत्याचार से अपनी रक्षा कर सकते हैं। इन कई कुटुम्बों के मेल को फिर्क़ा, कौम या जाति कहते हैं। एक कौम के लोगों को लूट मार नहीं सकते क्योंकि ऐसा करने से फूट पैदा होती है और तब दूसरी कौमों से रक्षा नहीं हो सकती। हां अपनी क़ौम के बाहर दूसरी कौमों की सम्पत्ति लूटना उन्हें काटना मारना सब उचित है।

समीपवासी छोटी छोटी क़ौमें देखती हैं कि एक दूसरे को लूटने से किसी बड़ी क़ौम के आक्रमण के समय वे एक दूसरे की रक्षा नहीं कर सकतीं। अस्तु जैसे कुटुम्ब से क़ौम बनी, वैसे ही कौमों के एकत्र होने से राष्ट्र बन जाता है। इस राष्ट्र के लिए अनेक सामाजिक और धार्मिक नियम बनते हैं। निज राष्ट्र की सीमा को लूटना न चाहिये, खून न करना चाहिये, ऐसा करनेवालों को राष्ट्र की रक्षक राजशक्ति और नेतागण दंड देते हैं, क्योंकि इस तरह की छोटी या बड़ी कोई ऐसी बात करने देने से निज राष्ट्र के व्यक्तियों को दुःख होता है और आपस में वैर बढ़ता है जिसका परिणाम फूट होता है। राष्ट्र में कमज़ोरी आती है और तब इसे दूसरे प्रबल राष्ट्र दबा डालते हैं।

राष्ट्रों की जनसंख्या बढ़ती जाती है। वे सदैव अपनी उन्नति करना चाहते हैं, अपनी वर्तमान दशा को ज़रा सी और अच्छी करना चाहते हैं, अपने आराम में कुछ न कुछ अधिकता करने का प्रयत्न किया करते हैं। आवश्यकताओं के बढ़ने के साथ नये देशों में उपनिवेशन करने की ज़रूरत दीखती है; नये बाज़ारों में प्रभुता जमाना; नये राष्ट्रों को अपना मतावलम्बी बनाना; छल से, बल से, धोखे से, कपट से; विश्वासघात, अथवा खुल्लमखुल्ला ज़बरदस्ती से दूसरे राष्ट्रों को आधीन करके उनकी सम्पत्ति लूटना, उनकी मेहनत का पैसा छीन लेना;

उस क्षीण, हीन, दुर्बल जाति का रक्तपान करके अपनी जाति को पुष्ट करना ही प्रत्येक राष्ट्र का मुख्य उद्देश्य होता है। राष्ट्र के बाहर जिस कार्य से स्वार्थ सधे वह करना परम धर्म है और जिसके करने से स्वार्थसिद्धि में बाधा पड़े वह कार्य करना भूल है। दूसरे राष्ट्रों से लड़ाई छिड़ जाने पर खून करने से कोई खूनी नहीं कहा जाता—लाखों करोड़ों का क़त्ल करके खून की नदी बहाना, बिधवा और अनाथों को तड़पाना, देश में आग लगाकर भस्मीभूत करना या जो कुछ हानि मनुष्य मनुष्य को पहुंचा सकता है, पहुंचा कर भी निज राष्ट्र की स्वार्थसिद्धि करने से लोक और परलोक दोनों बनना माना जाता है। ऐसा करनेवालों को निज राष्ट्र में नाम और मान और मरने पर हरि-धाम प्राप्त होता है। राष्ट्रनीति या राजनीति का दूसरा नाम स्वार्थसिद्धि है। पर दूसरा राष्ट्र यथाशक्ति इस स्वार्थसिद्धि में बाधा डालता है। उस समय रगड़ाझगड़ा आरम्भ होता है और उसका परिणाम भीषण युद्ध होता है।

प्राचीन और अर्वाचीन इतिहास से ज्ञात होता है कि जो राष्ट्र लड़ने को उद्यत रहते हैं और लड़ने में सब से अधिक उद्योग दिखाते हैं, वे शान्तिप्रकृतिवालों को निकाल बाहर करते हैं और इस तरह युयुत्सु जाति ही स्थायी रूप से बच रहती हैं—लड़ाकी जातियां पृथ्वी की उत्तराधिकारिणी होती हैं—It is a law of nature common to all mankind, which no time shall ever destroy, that those who have more strength and excellence shall bear rule over those who have less.

जर्मनी के प्रसिद्ध जेनरल वर्नहार्डी का कथन है कि 'शान्त आन्दोलन विषमय होता है, युद्ध करना ही मनुष्य का कर्तव्य है।' यदि स्वार्थवश दूसरे का अधिकार छीनने के लिए नहीं तो अपने देश और राष्ट्र का अधिकार बचा रखने के लिए ही प्रत्येक राष्ट्र को युद्ध के लिये तैयार रहना परम आवश्यक है।

प्रसिद्ध ग्रीष्म ने कहा है कि 'दयाशील और हितैषी राष्ट्रों का क्रमशः निर्मूल और लड़ाकी जातियों की दृढ़ पुष्टि होती है।' यदि दूसरे राष्ट्रों के साथ मैत्री, विश्वास और सद्भाव से आत्मरक्षा के उपायों में हम ढीले होजायँ तो इस ढिलाई में युद्धप्रिय असभ्य जातियों को हम पर चढ़ाई करने का अवसर मिलेगा और सभ्यता के शिखर पर बैठी हुई जातियां रण में हार कर अन्त को धूल में मिल जायँगी।

रोम की सभ्यता, इजिप्ट का महान् पुस्तकालय या भारत के इतिहास या साहित्य का सर्वनाश न हो सकता यदि ये राष्ट्र छोटे छोटे जंगलियों के आक्रमण रोकने के लिए तैयार होते।

हम भारतवासियों का अटल विश्वास है कि महाभारत के होने ही से भारत गारत नहीं हुआ, भारत गारत हो चुका था इसलिए महाभारत हुआ। और फिर महाभारत के हज़ारों वर्ष पश्चात् विदेशी वहशियों के आक्रमण हुए; क्या इस समय तक भारत को संभल जाने का अवसर नहीं था? क्या भारत में इन लुटेरों को रोकने की नई शक्ति का पैदा होना असम्भव था? नेपोलियन से हिलाया हुआ जर्मनी केवल एक शताब्दी में संसार की सम्मिलित महान् शक्तियों को नीचा दिखाने में अकेला अग्रसर हो सकता है; जापान कुल ४० वर्ष में रूस को नीचा दिखा सकता है; पर भारत, महाभारत के पश्चात् ५० शताब्दियों में भी अपने पैरों खड़ा होने में असमर्थ है। क्या महाभारत के बाद का भारत एक शताब्दी पहले की जर्मनी या आधी शताब्दी पहले के जापान से भी गया गुज़रा था? और क्या ५००० वर्ष इसके पुनरुत्थान के लिए काफी नहीं थे?

बात यह है कि जिन कारणों से महाभारत सा घरेलू युद्ध हुआ, वे कारण निरन्तर भारत का पीछा करते आये और अब भी उसके पीछे मौजूद हैं। आपस के ईर्ष्या, द्वेष, और स्वार्थ-परता ने ही राष्ट्र के भीतर भीषण युद्ध मचवाया। इन्हीं पापों के कारण पोरस ने सिकन्दर के सन्मुख सर झुकाया, शहाबुद्दीन ने पृथ्वीराज को हराया; लोदी ने मरहठों पर फ़तह पाई, और अन्त को भारत पश्चिमीय बणिकों के हाथ आया।

स्मरण रहे कि भारत में वीर और वीरांगनाओं की कमी नहीं; बल, पुरुषार्थ, उच्चाभिलाष, निश्छलता, साहस, सम्पत्ति, स्वास्थ्य, वीरता आदि अनेक सद्गुणों से भारतवासी सदैव सुशोभित थे और हैं। कमी यदि थी और है तो निज राष्ट्र (Nation) को पहचानने की, देशाभिमान की और देशभक्ति की। इसी त्रुटि से भारत का सर्वनाश हुआ। अकबर आदि अनेक पुराने राजाओं को छोड़ वर्तमान राजा को देखिये कि भारत का महान् राज्य इन्हें अपने बल और पौरुष से मिला या भारतवासियों के पुरुषार्थ से। कुछ युरोपीय इतिहासलेखक अब डींग हांक लें कि भारत अंगरेजों ने तलवार से विजय किया पर सत्य यह है कि पहले तो भारत में तलवार चली ही नहीं और जहां कहीं इससे काम लिया भी गया वहां भारतवासियों ही द्वारा यह कार्य हुआ। प्लासी, अरकट, बक्सर, मद्रास, पञ्जाब, अफ़ग़ानिस्तान क्या बल्वे (१८५७) तक में भारतसन्तानों ने ही गोरों के लिये तलवार चलाकर इनका गौरव कायम रक्खा और वे चीन, नैटाल या आज के जर्मनी युद्ध में अपने राजा की आज्ञा पर बिना किसी विचार के गर्दन देने को अग्रसर थे और हैं।

पर इससे क्या मतलब ? राजनीति में कृतघ्नता और विश्वास का अंकुर नहीं होता, इसमें मित्रता नहीं, सम्बन्ध नहीं, सहनशीलता नहीं, शान्ति आदि कोई सद्गुण नहीं पाये जाते। महात्मा वाशिंगटन ने जिस समय ये शब्द कहे थे, उस समय ये जैसे सत्य थे, वैसे ही सत्य अब भी हैं और बने रहेंगे कि, "स्वार्थ के सिवा और किसी उद्देश्य पर राष्ट्रों के निरन्तर दृढ़तापूर्वक आचरण करने की आशा करना व्यर्थ है।"

यदि एक राष्ट्र किसी दूसरे राष्ट्र के साथ सद्व्यवहार करता दीखता हो तो उसके व्यवहार की ओट में स्वार्थ अवश्य छिपा है। भारत और बृटेन में घनिष्ठ सम्बन्ध है। एक दूसरे के परम शुभचिंतक दीखते हैं। भारतवासी अपने ही सम्राट् के झण्डे की छाया तले पददलित किये जाते हैं; आस्ट्रेलिया में घुसने नहीं पाते; कैनाडा से बलपूर्वक धक्का देकर निकाले जाते हैं; नेटालवालों का कारुणिक रुदन सभ्य संसार का हृदय कँपा देता है। पर बृटेन इन झगड़ों में दख़ल नहीं दिया चाहता है, वह भारतवासियों का असह्य दुःख मेटने में असमर्थ है। लेकिन बेलजियम का जर्मनी से पददलित होना बृटेन नहीं देख सकता। बेलजियम से किसी तरह का सम्बन्ध न होने पर भी बृटेन अपने ख़ास नातेदार जर्मनी* के विरुद्ध लड़ने और बेलजियम की सहायता करने के लिए एकमात्र परोपकार से प्रेरित हो भयंकर युद्ध में आप से आप कूद कर जन और धन दोनों की आहुति दोनों हाथों से दे रहा है।

आक्सफ़ोर्ड और कैम्ब्रिज के विद्यार्थी लड़ाई पर भेजे जा रहे हैं पर उन्हीं विद्यालय में पढ़नेवाले भारतीय विद्यार्थी इस सेवा से भी वञ्चित रक्खे जाते हैं, प्रार्थना करने पर भी वे स्वयंसेवक नहीं बनाये जाते।

इंगलैंड पर विपत्ति आई है, उसका प्रभाव भारत पर भी पड़ रहा है। एक 'एमडन' भारत के व्यापार को भारी धक्का पहुंचा चुका है;

* जर्मनी के कैसर स्वर्गीय महाराणी विक्टोरिया की पुत्री से व्याहे थे।

निर्भय होकर भारत के प्रत्येक बन्दरगाहों में घुस घुस कर हानि पहुंचा चुका है, पर भारतवासी केवल हाथ पर हाथ रक्खे मुंह ताकते रह गये, करें क्या ? बेचारे अपंग तो हो गये हैं।

ईश्वर न करे कि कोई दुर्घटना उपस्थित हो, पर मानना पड़ता है कि यह संसार परिवर्तनशील है-कोई राजा, कोई राज्य, चाहे वह कितना ही अच्छा या बुरा क्यों न हो हमेशा क़ायम नहीं रह सकता। इतिहास हमें बताता है कि एक बार इंगलैंड रोमन्स के हाथ में था। वे विदेशी थे, पर राज्यकार्य में ऐसे कुशल थे कि अपनी प्रजा को भली भांति प्रसन्न और सन्तुष्ट रखते थे। इन विदेशियों ने इंगलैंड पर ३०० वर्ष राज्य किया। पर एक समय आया कि रोमन्स के घर में आक्रमण होने लगा। उन्हें अपने घर की रक्षा के लिए इंगलैंड को छोड़ना पड़ा। रोमन्स ने भी इंगलैंडवालों को लड़ना नहीं सिखाया था। परिणाम यह हुआ कि रोमन्स के लिए इंगलैंडवाले रोते रह गये कि वे उन्हें न छोड़ें पर वे छोड़ भागे और इंगलैंड पर दूसरे वहशियों ने आक्रमण कर २ के उनका देश छीन लिया।

इस कुसमय में भी भारतवासियों को युद्ध शिक्षा से वञ्चित रखना और उन्हें शस्त्रआईन के बन्धन में डालना ठीक नहीं है। इसमें शक नहीं कि कुछ बुद्धिफिरे लोगों ने बम आदि चलाकर दंगा फ़साद किया पर इससे समस्त भारत अविश्वास का पात्र बने यह ठीक नहीं। गरम दलवालों तक का तो अंगरेजों के विरुद्ध कार्य करने अथवा आन्दोलन करने का केवल यही कारण है कि वे अपना हक़, अपना न्यायमय अधिकार चाहते हैं। इस कुसमय में गरमदल वाले तक बृटेन के लिये अपनी जान देने को तैयार हैं। कम से कम अब तो बृटेन को भारत अपना लेना उचित थीं। बृटेन का यह भय कि 'England's peril is India's opportunity' सर्वथा व्यर्थ और भ्रान्त है।

इसके साथ ही यह भी कहना आवश्यक है कि हम कुछ दिन पहले अपने अधिकार, कर्तव्य, तथा राष्ट्र तीनों को नहीं पहचानते थे। ईश्वर की कृपा और दयालु भारत-सरकार की कृपा से हमारी आँखों का परदा उठने लगा है और हम ने निज राष्ट्र और अधिकार को पहचानना आरम्भ कर दिया है। पर अब भी हम भयंकर भूल कर रहे हैं। हम अपने अधिकार के लिए तो इतने चिल्लाते हैं पर अपने कर्तव्य पर ध्यान नहीं देते।

हर बात में भारत सरकार को दोष देना व्यर्थ है। अब तो, 'यथा राजा तथा प्रजा' का समय रहा नहीं, बल्कि 'यथा प्रजा तथा राजा' की बात सत्य दीखती है। जैसी प्रजा है वैसाही मजबूरन राजा को होना पड़ता है। यदि प्रजा में योग्यता है तो राजा को प्रजा का पक्ष लेना ही होगा। इंगलैंड की सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी पर ध्यान दीजिये। राजा प्रजा के मतभेद में जीत प्रजा की हुई। फ्रांस पर, अमेरिका पर, फ़ारस, या चीन, आदि जिस किसी देश पर दृष्टि डालिये जीत प्रजा की है। कैनेडा, आस्ट्रेलिया, निउज़ीलैण्ड, क्या नैटाल तक को इंगलैंड ने स्वराज्य दिया या यों कहिये कि देना पड़ा। अस्तु भारत की स्वतन्त्रता भारतवासियों के हाथ है। यदि हम उसके योग्य बनें, यदि हम में स्वतंत्रता की योग्यता है तो आपसे आप हम स्वतन्त्र बन जायँगे। संसार की कोई शक्ति हमें परतंत्र नहीं रहने देगी।

पर यह सब कुछ करने ही से होगा। 'भाग्य' में होगा तो मिलेगा; दुर्भाग्य के नाम रोना रोने से; हाथ पर हाथ रखकर मुंह ताकने से कुछ नहीं हो सकता। इस पुराने राष्ट्र में नाना प्रकार के दोष उत्पन्न होगये हैं। यह राष्ट्र रोगग्रस्त हो गया है। इस जाति के जीवन-सूत्र में गांठें पड़ गई हैं। यदि हम कड़वी दवा खाने पर तैयार हैं, नश्तर लेकर पुराना मवाद निकालने पर उद्यत हैं, पुरानी गाँठों को सुल-

जाना चाहते हैं, तो हम फिर आरोग्य बन सकते हैं अन्यथा हमारी मृत्यु एक निश्चित वस्तु है।

६ करोड़ भारतवासियों के तन से कावे की बू आती है इससे कुछ अधिक हिन्दुओं को हम छू नहीं सकते वे अन्त्यज हैं। ६ वर्ष के ऊपर की लड़कियों का व्याह करने से बिरादरी में हँसी होती है और हम हँसे जाना पसन्द नहीं करते। ढाई करोड़ विधवाएँ घर के कूड़े करकट की तरह फेंकी जाती हैं। जनसमूह को शिक्षा देने के लिए भारत-सरकार के पास धन नहीं है और न हम अधिक कर देकर उसके कोष की कमी को पूरा कर सकते हैं तो फिर ये मरहले कैसे तय होंगे ? इन गाठों के सुलझाने और राष्ट्र को आरोग्य करने का कौन सा उपाय है ?

सुनिये, भारत की जनसंख्या बहुत बढ़ गई है। अब अधिक बढ़ाने की आवश्यकता नहीं है। चीन छोड़कर भूमण्डल के सभी देशों से यहां अधिक आबादी है, पर साथ ही भारत सा गिरा हुआ देश सारी पृथ्वी पर नहीं है। जर्मनी के कुल ६ करोड़ निवासी (स्त्रियां, बच्चे, बूढ़े और रोगी भी इसी में शामिल हैं) संसार की सम्मिलित महान्शक्तियों से अकेले भिड़ कर उनके नाकों दम कर रहे हैं। इङ्गलैंड के करोड़ों लोग भूमण्डल के उस भाग पर राज्य कर रहे हैं जहां सूर्य अस्त नहीं होता। जापान और अमेरिका के मुट्ठी भर मनुष्य धुरन्धर रूस और प्रतापी इङ्गलैंड को रणक्षेत्र मे हरा सकते हैं-यह क्यों ?

इस लिए कि उनमें योग्यता है। योग्यता ही एक वस्तु है जिसके ऊपर संसार की सभी बातें निर्भर हैं। जान लेना चाहिये कि योग्यता से राजनैतिक अधिकार प्राप्त होते हैं न कि राजनैतिक अधिकार से योग्यता। यह ठीक है कि राजनैतिक अधिकारों से बहुत जल्द सुधार हो जाता है पर बिना योग्यता हुए वे अधिकार मिलने ही क्यों लगे। पहले अपने को योग्य प्रमाणित करो तो अधिकार मिलेंगे और मज़बूरन दिये जायँगे। स्वर्गीय लार्ड मिन्टो के रिफ़ार्म, बङ्गभङ्ग का पुनः एक किया जाना और नेटाल से टैक्स का उठना आदि प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। अस्तु योग्य बनना और योग्य बनाना ही एकमात्र उपाय है जिससे भारत की सब उलझनें एक साथ ही सुलझ सकती हैं। इस कार्य के लिए एक दूसरे का मुंह न देखें, जो जितना कर सके पक्षपातरहित होकर एक दूसरे के उठाने में तन, मन, धन से लग जाय।

हां, यह भी ख्याल रहे कि बिना स्वार्थत्याग के कुछ नहीं हो सकता। होश सँभालते ही हमें अपने ही परिवार से छुट्टी नहीं मिलती तो भला दूसरों की सहायता हम क्या और कैसे करें ? इससे प्रिय पाठकगण हमारा कर्तव्य है कि हम-

(१) अपनी योग्यता समझकर विवाह करें, बालविवाह कभी न करें।

(२) एकमात्र योग्य सन्तानोत्पत्ति करें और यह भी उतनी ही जितनी को हम सर्वथा सुयोग्य युवा बना सकें।

(३) दर्जन के दर्जन बच्चे न पैदा कर के केवल एक पुत्र और एक पुत्री उत्पन्न कर और पक्षपातरहित होकर अन्य भाइयों को योग्य बनाने में अपनी शेष सम्पत्ति और शक्ति लगावें। अन्य देशभाइयों को अपना भाई, बालकों को अपना पुत्र और बालिकाओं को अपनी ही पुत्री समझकर योग्य बनावें।

हम लोग दूसरों का मुंह ताकना छोड़ दें और शारीरिक, मानसिक और आत्मिक सब प्रकार की योग्यता प्राप्त कर अपने पैरों पर आप खड़े होने का यत्न करें, बिना ऐसी किये हमें सफलता प्राप्त नहीं हो सकती।

गान्धी स्वागत।

[लेखक—श्रीयुत ठाकुरप्रसाद शर्मा ।]

गीतिका छन्द ।

(१)

गर्व भारतवर्ष को जिस आर्यकुल के वीर का।
दे रहा संसार साक्षी जिसके अतुलित धीर का ॥
प्रेम-परिगर्भित दया का जो परिष्कृत रूप है।
दीन निर्बल हीन-आश्रम जाति का जो भूप है ॥

(२)

उदयकालिक दुःख हबशी देश में जिसने सहा।
फिर जहां उज्वल उजाला ज्ञान का जिससे बहा ॥
छिप गए कौटिल्य तारे देख जिस आलोक को।
भोग का अवसर मिला जिससे प्रवासी कोक को ॥

(३)

राज्य अत्याचार तम का दूर जिससे हो गया।
द्वेष से पूरित कुमुद के मुख मसीका जड़ गया ॥
सुःख के पङ्कज खिले जिसके प्रताप प्रकाश से।
हिन्दबासी गूंजते मधुकर बने रस स्वाद ले ॥

(४)

देश हबशी से सोई दिननाथ सम नर केशरी।
आगया भारत भगाने दुर्व्यवस्थित शर्वरी ॥
जग पड़ो सब भरतखंडी छोड़ दो आलस्य को।
भक्ति के शुचि वारि में करि शौच शुद्ध शरीर हो ॥

(५)

बद्ध अञ्जलि अर्घ दो होकर खड़े हित प्रीति से।
शुद्ध चित स्वागत करो वर आर्य कुल की रीति से ॥
धन्य गान्धी वीरवर जग जन्म का फल पा लिया
आत्मसुख को तज दिया शिर देश का ऊंचा किया

(६)

हो नहीं सकती प्रशंसा आपके कर्तव्य की।
मेरु ज्यों बावन उठावे गति भई वक्तव्य की ॥
पितृगण भी देखकर के आपका साहस उदै।
स्वर्ग में हैं दे रहे आशीस आनन्दित हृदै ॥

(७)

राम ही एक वीर ऐसे हो गए इस देश में।
जो गए मर्याद रखने सिन्धुपार विदेश में ॥
आपने उससे बड़े जल राशि को लंघन किया।
राम से ड्योढ़े बरस बनवास क्लेश उठा लिया ॥

(८)

आपकी पत्नी सती भी गुणमई करुणामई।
राक्षसों के हाथ में भी सीय सी बन्दी भई ॥
पुत्र ने सौमित्र ही सम भाग संगर में लिया।
सिंह होते सिंह सुत आदर्श यह दिखला दिया ॥

(९)

ज़ोर सारा मिट गया दशमाथ ज्यों मदवीर का।
शोर जग में मच गया प्रतिरोध निष्क्रय घोर का ॥
काम सारे विश्व का करता हुआ निष्काम है।
इसलिए इस युग में गांधी वीरवर श्रीराम है ॥

(१०)

चोट खाई शस्त्र से सुधि हीन होकर गिर पड़े।
भूमि रक्तमय हुई अरु प्राण के लाले पड़े ॥
दुष्ट मूर्ख पठान की नालिश नहीं तौभी किया।
कौन समता कर सके क्षमता महा दिखला दिया ॥

(११)

पुत्र रोगाकुल पड़ा शिर मृत्यु की गोदी दिए।
मित्रगण समझा थके सेवा चिकित्सा के लिए ॥
एक दिन भी देखने उसको नहीं घर तक गये।
वाहरी कर्तव्य-दृढ़ता मोह-विजयी बन गये ॥

(१२)

सभ्यता की शत्रु जज़िया न्याय अनुमोदित नहीं।
विधि किसी दातव्य उसका हो सही सकता नहीं ॥
इसलिए रोगार्त गृहिणी छोड़ कारागृह गड़े।
कौन है गांधी सरिस जो न्याय के हित यों लड़े ॥

(१३)

अग्निगत जीवित हुईं महिला जहां पति साथ में।
स्थान ऊँचा पागई संसार के शुचि गाथ में ॥
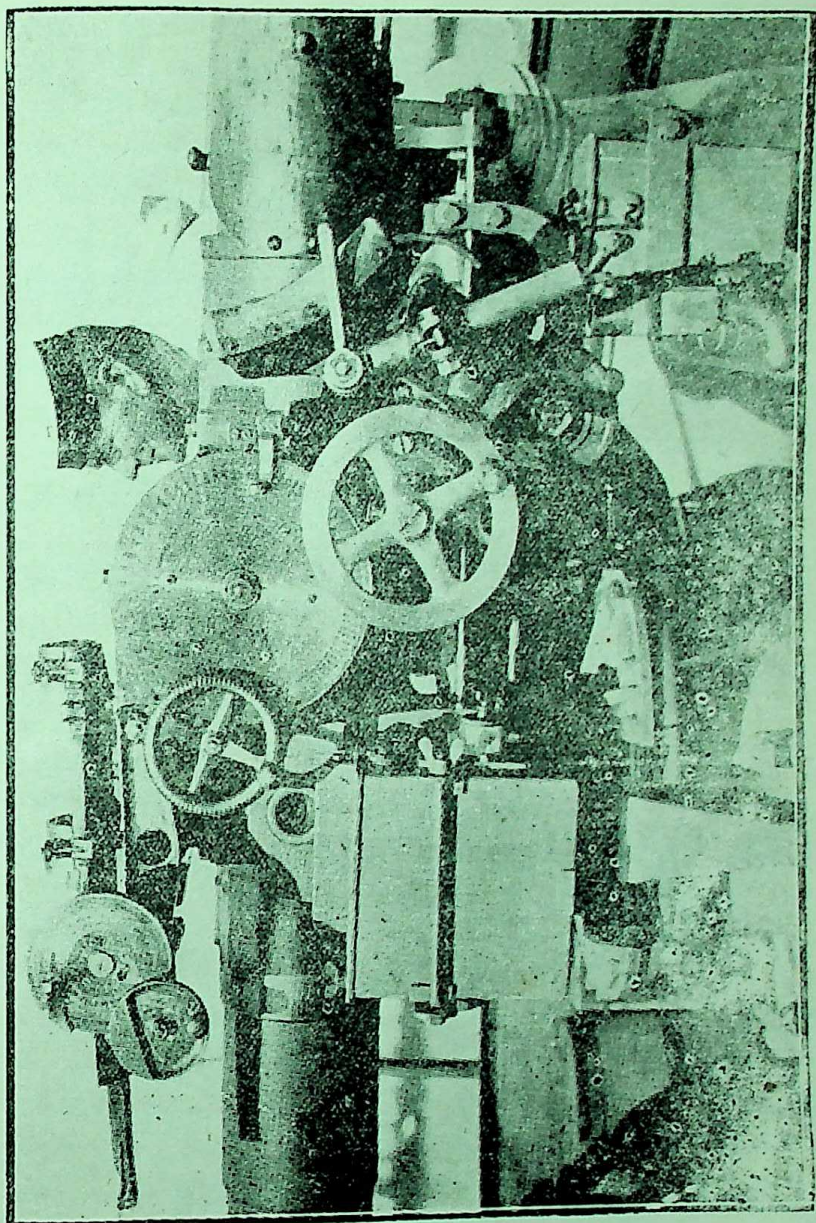
मनुष्य तोप चला रहा है।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग।

हाय हबशी भूमि में इस देश की ललना गई।
क्लेश कहते हो रहा कुलटा सदृश मानी गई॥

(१४)

भीष्म अर्जुन कृष्ण हलधर कर्ण औ कृप द्रोण के।
वंशधर स्वामी कुली हो रह गये यक कोण के॥
दुःख इस अपमान का जाता भला कैसे सहा।
भिड़ गया निर्भीक हो मर्याद पुरुषोत्तम महा॥

(१५)

लोभ होता आत्मसुख का जेल में था क्या धरा।
लोभ होता द्रव्य का क्या घर में था कमती भरा॥
लोभ होता मान का सन्मान क्या प्रस्तुत न था।
लोभ दुर्जय जीतना मतिमान का उद्देश्य था॥

(१६)

बात जो नहिं होसकी इस देश में अबतक किये।
सो हुई उस देश में हिन्दू मुसल्मां मिल गये॥
शब्द धार्मिक द्वेष का क्योंकर सुनाई दे वहाँ।
निष्कपट गांधी सदृश निस्स्वार्थ नेता हो जहाँ॥

(१७)

दुःख हो या दुःख हो कुछ भी नहीं परवाह है।
मानवर्द्धन देश का हो बस यही चितचाह है॥
न्यायनिष्ठा सत्यता औदार्य यश आगार है।
दीन रक्षक वीर गान्धी धर्म का औतार है॥

(१८)

आइये पग लाइये रज नेत्र में अञ्जन करें।
मूर्ति मृदुमय आपकी हिय भक्तियुक्त थापन करें॥
जाति का गौरव बढ़े कारण बने शुचि हर्ष का।
आपका स्वागत करे निस्तार भारतवर्ष का॥

युद्ध ।

[लेखक—श्रीयुत मुकुन्दीलाल ।]

हमारा जीवन युद्धमय है। सारा संसार एक संग्राम या युद्ध-क्षेत्र है। प्रत्येक क्षण हम किसी न किसी प्रकार की लड़ाई लड़ रहे हैं। यह लड़ाई ही मानवजाति के विकाश और जीवन का मूल कारण है। अपने जीवन की रक्षा के लिए हम प्रकृति से लड़ते भिड़ते हैं। इस लड़ाई के कारण हमारी शक्ति बढ़ती है। हम उद्योग करते हैं। इस उद्योग में हमारा बल बढ़ता है। हम दिन बदिन नई नई बातें सोचते और ढूंढ़ निकालते हैं और नई कला या विद्या सीखते हैं।

एक विचार और सिद्धान्त की दूसरे विचार और सिद्धान्त से लड़ाई (तर्क) होती है। बलवान् विचार की जीत होती है। इस विचार और बुद्धि की लड़ाई में दोनों पक्ष की बुद्धि बढ़ती है। दुर्बल विचारों को बलिष्ट विचारों के सामने सिर झुकाना पड़ता है।

पुराने आदर्शों को नये आदर्शों का सामना करना पड़ता है। एक ज़माने की रीति रस्मों को दूसरे (नये) ज़माने पर अपना सिक्का जमाने के लिए लड़ाई लड़नी पड़ती है। अपने बल को आज़माकर अपनी खूबी दिखानी पड़ती है। अगर कोई पुरानी रस्म या आदर्श वर्तमान समय के लिए ठीक न हो तो उसकी जगह नया आदर्श या रस्म आखड़ी होती है। बात बात पर युद्ध छिड़ जाता है।

अगर जाड़े ने आक्रमण किया तो उसका गर्मी से सामना करना पड़ता है। भूख लगी तो उसको भोजन से मार भगाना होता है।

गर्मी पड़ी तो उसे कोई ठंढक पहुंचानेवाले उपायों से हटाना या शिथिल करना पड़ता है। पर गर्मी जाड़े से लड़ाई वही कर सकते हैं जिन्हें ताकत है यानी जिनके पास पैसा है। ग़रीब लोगों को जाड़े में जाड़ा सताता है और गर्मी में गर्मी। जीत बलवान की ही होती है।

मनुष्य में बुरी आदतें और भली आदतें दोनों स्वभाव से ही पाई जाती हैं। हीन प्रकृति कुमार्ग की तरफ ले जाती है और अच्छी आदत अच्छा रास्ता बतलाती है। जिस आदमी की बुरी आदतों ने भली आदतों को हरा दिया उसका मटियामेट होगया। जिसकी सद्वृत्ति की जीत हुई वह आदमी बन गया। जो लोग उद्योग करते हैं वे उसका फल पाते हैं। सुस्त आदमी झींक झींक कर मरते हैं।

जातीय जीवन का भी यही हाल है। बलवान राष्ट्र कमज़ोर कौमों को दबा लेते हैं। जो कौम दूसरी कौम के आधीन नहीं रहना चाहती वह अपना बल बढ़ाती है और स्वतन्त्र होने की चेष्टा करती है। इस उद्योग में उसकी शक्ति बढ़ती जाती।

साधारणतः एक जाति दूसरी जाति को पराजय कर उसपर अपनी प्रभुता जमा उससे फायदा उठाती है। लड़झगड़ कर या दांव पच से और मुल्कों पर अपना कब्ज़ा कर लेने की आदत सी लोगों को होगई है और ताक़तवर कौमें अपना मुराद हासिल करती भी हैं पर उनकी तभी तक चलती है जबतक उनके आधीन देश के लोग कमज़ोर हों या स्वतंत्र न होना चाहें। ज्योंहीं उनको स्वतन्त्र होने की आकांक्षा हुई त्योंहीं वे छटपटाने लगे। इस संघर्षण में कई मनुष्यों को जान से हाथ धोने पड़ते हैं। आदमियों का मारा जाना अच्छी बात नहीं। यह किसी भी देश या जाति के लिए अच्छा नहीं कि उसके लोग नाहक़ मारे जायँ क्योंकि मनुष्य ही जाति की सम्पत्ति हैं। उनके कम होने से राष्ट्र की क्षति है। इसके अलावा लड़ाई के कारण खलबली मच जाती है, कई कामों में बाधा पड़ती है व्यापार और कलाकौशल को बड़ी हानि पहुंचती है और धन का धूंवां धार होता है इत्यादि..........

लड़ाई की छेड़छाड़ न करना विशेषतः उन्हीं राष्ट्रों का काम है जो स्वतंत्र हैं। युद्ध का अन्त तभी होगा जब हरेक जाति और देश स्वतन्त्र होगा। प्रत्येक जाति का हक़ है कि वह स्वतंत्र रहे और अपना राजकाज खुद चलावे। जबतक और मुल्कों को अपने कब्ज़े में करने की लालच ताक़तवर कौमों के सर सवार रहेगी तबतक लड़ाई की छेड़छाड़ होती ही रहेगी अर्थात् संसार की भिन्न भिन्न जातियों के बीच लड़ाई तब बन्द होगी जब कि सब जातियां साम्राज्य खड़े करने की कामना छोड़ देंगी। उदाहरण के लिए हम अमेरिका की बात कहेंगे। अमेरिका प्रजासत्ताक राज्य है। वहां कोई राजा नहीं। प्रजा में से सबसे योग्य पुरुष ४।५ वर्ष के लिए सभापति चुन लिया जाता है। प्रजाजन सब बराबर हैं। सब राजकाज में सम्मिलित होते हैं, अपने प्रतिनिधियों द्वारा अपनी राय देते हैं और क़ानून बनाते हैं। वे और देशों में अपना राज नहीं फैलाना चाहते हैं अर्थात वे चाहते हैं कि सब देश स्वतन्त्र रहें, अपना अपना राजकाज स्वयं करें और सब प्रजासत्ताक राज्य (Republic) हों। फिलिपाइन द्वीपसमूह अमेरिका के आधीन है। वे उस द्वीप को भी शीघ्र ही स्वतन्त्र कर देना चाहते हैं। उन्होंने १५ वर्ष में फिलिपायन लोगों को स्वराज्य करने योग्य बना दिया। अमेरिका के स्वराज्य और प्रजासत्ताक सुराज्य की खूबी और उदारता और देखिये। चीन में जब मांचू राजा पदच्युत कर दिया गया और प्रजासत्ताक स्वराज्य स्थापित हुआ तो पहले

पहल चीन को प्रजातन्त्र (Republic) राज्य अमेरिका ने ही माना। जब यूरोप के सब राष्ट्र चीन को कर्ज देने लगे तो अमेरिका इस गोष्ठी में सम्मिलित न हुआ क्योंकि कर्ज इस समय तो सहायता के रूप में दिया गया है पर पीछे इसी कर्ज के वसूल करने के बहाने चीन पर हाथ फेरने की नौबत पहुंचनेवाली थी। कोई राष्ट्र उसकी रेलों पर अपना अधिकार करता, कोई उसका खान' कोई सामुद्रिक व्यापार इत्यादि, कोई व्याजबट्टे में चीन की भूमि थोड़ी थोड़ी करके लेता उंगली पकड़ते पकड़ते पहुंचा पकड़ने की कहावत चरितार्थ होने में कुछ देर न लगती। पर इस समय यह डर नहीं क्यों कि साम्राज्यप्रिय यूरोपीय राष्ट्र स्वयं ही लड़ रहे हैं। इनके पनपने में कितने ही वर्ष लगेंगे तबतक शायद चीन अपने घर को ठिकाने कर लेगा। जहां चीनी प्रजातन्त्र राज्य सुगठित हुआ कि उसके आगे किसी की चलेगी कि नहीं।

भिन्न भिन्न राष्ट्र और देशों के बीच लड़ाई बंद होने का दूसरा कारण यह होगा कि सब सभ्य जातियां देखेंगी कि युद्ध के कारण वाणिज्य-व्यापार को बड़ा धक्का लगता है, कलाकौशल की हानि पहुँचती है. अंतर्जातीय व्यापार तो बिलकुल मिट्टी में मिल जाता है। जाति के बड़े बड़े योग्य पुरुष लड़ाई में काम आते हैं। सब तरह से नुकसान ही नुकसान है। तब अपने स्वार्थ के बश सब देशों के निवासी स्वयं लड़ाई चाहने वाले राजकर्ता, राजा या मंत्री के विरुद्ध खड़े होंगे। वे लड़ाई के खर्च के लिए रुपया नहीं देंगे किन्तु यह बात सम्भव तभी हो सकती है जब राज्य की बागडोर सर्वसाधारण के हाथ में हो। इस वक्त थोड़े से प्रजाप्रतिनिधि और राजमंत्री जो चाहें कर लेते हैं। हम इस बात के दृष्टान्त देंगे। इस युद्ध के आरम्भ होने के समय जर्मनी में कई लोग और प्रजा की समितियां थीं जो आखिरी दिन तक युद्ध होने के विरुद्ध थीं। जर्मन लोगों को लड़ाकू कौम कहते हैं पर वे इसवक्त बड़े ज़बरदस्त प्रजाहितैषी साम्यवादी Socialist लोग हैं जो अपना दल बांध कर एक दिन निरंकुश जर्मन सम्राट् की मनमानी नहीं करने देंगे। इंगलैंड में भी लड़ाई के चार दिन बाद तक कई अखबार और विचारवान् पुरुष इस युद्ध में सम्मिलित होने के विरुद्ध थे। यहां तक कि मंत्रिमंडल से मार्ले; मेकडानल, बर्नस् और ट्रेवेलियन ने अपना सम्बन्ध इसी बुनियाद पर परित्याग कर दिया कि वे प्रधान मंत्री और वैदेशिक मंत्री से युद्ध में योग देने में सहमत न थे। उन्होंने इस्तीफा दाखिल किया और कहा कि हम अंतर्जातीय लड़ाइयों के विरुद्ध हैं; हम नहीं चाहते कि इंगलैंड इस युद्ध में सम्मिलित हो।

कहने का तात्पर्य यह है कि एक समय आवेगा जब सब लोग इसी प्रकार सोचेंगे कि नाहक अन्य जातियों से लड़ झगड़ उनपर अपना आधिपत्य जमाना उचित नहीं। और लड़ाई छेड़ कर सभ्यता की चाल ढीली करना देश का अमित धन नष्ट करना और अपने स्वदेश-बांधवों को विकराल रणचंडी के मुंह में देना कहां की सभ्यता है।

वर्तमान युद्ध से साफ पता लगता है कि जो राष्ट्र अन्य राष्ट्रों को अपने अधीन कर और देशों पर अपना आधिपत्य जमाना चाहती हैं या यों कहिये कि जो जातियां और देशों को हड़पना चाहता हैं वही इस युद्ध की उत्तरदाता हैं। जर्मनी को इंगलैंड से ईर्ष्या थी कि इंगलैंड बड़ा साम्राज्य है हमभी क्यों न उसकी तरह और देशों पर अपना सिक्का जमावें। जरासा बहाना मिलते ही उधर रूस की लार भी टपकी। आस्ट्रिया ने सर्विया को पराजय करना चाहा। जर्मनी ने बेलजियम् पर हाथ फेरा। फ्रांस के प्रजातन्त्र राज्य को अपनी रक्षा के लिए मैदाने जंग में आना पड़ा। इंगलैंड को अपनी मित्रता

और अपने देश की रक्षा के हेतु युद्ध में योग देना पड़ा। सारे झगड़े की जड़ साम्राज्य की आकांक्षा है। अगर जर्मनी अपने देश से सन्तुष्ट रहता और रूस पोलैंड को स्वतन्त्र कर देता, आस्ट्रिया सर्विया को उसके प्रांत दे देता।

इसका इलाज यही है कि कोई देश या राष्ट्र दूसरे मुल्क और कौम पर अपना अधिकार न जमावे। अपने अपने देश का शासन सब लोग खुद करें। अभी कई शताब्दियों तक लोगों में यह भाव उत्पन्न नहीं होगा। अतएव युद्ध अपने भयंकर रूप में फिर फिर मानव जाति का संहार करने आवेगा। युद्ध का अंत जर्मनी, रूस और इंगलैंड के हाथ की बात है। जबतक ये देश उदार नहीं होते और एक दूसरे में विश्वास करना नहीं सीखते तबतक यह खटपट चलती ही रहेगी। इस खटपट की सम्भावना के भय से सब राष्ट्रों को सदैव युद्ध के लिए सुसज्जित रहना पड़ेगा।

हमारा क्या हक है कि हम अपने फायदे के लिए दूसरी कौम पर उसमें सभ्यता फैलाने या शान्ति स्थापित करने के बहाने अपनी प्रभुता जमायें। मैक्सिको अमेरिका महाद्वीप के अंतर्गत है। कुछ महीनों वहां घरेलू झगड़े के कारण अराजकता फैल रही थी और बड़ी गड़बड़ी मचरही थी। पर अमेरिका के प्रजातन्त्र राज्य ने उसमें हस्तक्षेप नहीं किया। कहा लड़मरो अपने घर का प्रबन्ध स्वयं करो; हम बीचबिचाव के बहाने तुम्हारे देश पर हाथ साफ नहीं करेंगे। अगर मैक्सिको यूरोप में होता तो कोई न कोई यूरोपीय राष्ट्र शांति स्थापित करने के बहाने उसपर अपना अधिकार जमा ही लेता। कई साम्राज्यप्रिय जातियां निर्बल देशों में जरा सी गड़बड़ी देख दोचार खून हो जाने पर 'हरेराम' 'हरेराम' कह कर शान्ति स्थापन करने को आपहुंचती हैं। पर आज वही सभ्य जातियां जान बूझ कर करोड़ों आदमियों की हत्या कर रही हैं। अगर सचमुच ही किसी के दिल में दया होती तो लट्ठ के सामने सिर झुका कर शान्ति करा लेतीं। पर स्वतन्त्रता और जातीय स्वाभिमान ऐसी बला है कि ये जीवित जातियां पराधीन नहीं होंगी और जीते जी अपनी स्वतन्त्रता खो अपने जातीय गौरव को कभी नष्ट नहीं होने देंगी।

मुहम्मद के चरित्र पर एक दृष्टि ।

[लेखक-श्रीयुत नारायणप्रसाद अरोड़ा ।]

(जन्म ५७० ; मृत्यु ६३२ ।)

मुहम्मद, अरब का विजयी, मक्का का उपदेशक और एक महान् विप्लव का कर्ता था। वह बड़ा विचारशील और पवित्रप्रकृति पुरुष था। पहले उसकी आर्थिक अवस्था अच्छी न थी, परन्तु विवाह होते ही उसकी आर्थिक अवस्था सुधर गई। तृष्णा और लालच के मार्ग से वह सदा बचता रहा और ४८ वर्ष की उम्र तक उसने अपना जीवन बड़ी सादगी के साथ व्यतीत किया। ईश्वर की एकता का विचार, प्रकृति और तर्क के अनुकूल होने के कारण उसे बहुत रुचा। यहूदियों तथा ईसाइयों से कुछ बातचीत करने के बाद वह मक्के की मूर्तिपूजा को घृणा से देखने लगा। उसने अपना यह कर्तव्य समझा कि अपने देशवासियों को पाप की घोर विपत्ति से बचावे और उन्हें मुक्ति का सन्देश सुनावे। वह सदा इसी धुन में लगा रहता था। इसलिए उसने समझा कि मुझे इस प्रकार का कार्य करने के लिए ईश्वरी आदेश है और अपने अन्तःकरण की आवाज़ उसे ईश्वरी फिरश्ते की आवाज़ (देनेवाली) मालूम होने लगी। प्रकृति का यह एक नियम है कि उत्साह में मनुष्य कभी कभी अपने आपको धोखा देने लगता है। मुहम्मद भी इस नियम से न बच सका। उदारता से चाहे हम भले ही इस बात को मान लें कि मुहम्मद के उद्देश निरे भलाई ही के थे किन्तु मानवी दृष्टि से देखने पर हम कैसे कह सकते हैं कि उसका दावा मानने के योग्य था और उसकी युक्तियां अकाट्य थीं।

मक्का के अन्याय के कारण उसे मदीने जाना पड़ा और मदीना जाते ही वह एक साधारण नागरिक से एक राजा बन गया। पहले का सीधासादा उपदेशक मदीना पहुंचते ही सेना का मुखिया बन गया और अपने मन में सोचने लगा कि मैंने तो पवित्रता के लिए तलवार उठाई है। जो परमेश्वर संसार को पाप का फल देने ही के लिए प्लेग और भूकम्प उत्पन्न करता है वही उन पापियों को सुधारने और उन्हें दण्ड देने के लिए अपने सेवकों में शक्ति उत्पन्न कर देता है। कभी कभी राजनैतिक शासन में मुहम्मद को अपना कट्टरपन कम करना पड़ा और बहुत सी बातों में उसे अपने अनुयायियों की इच्छा के अनुसार भी कार्य करने के लिए बाध्य होना पड़ा। बहुधा उसने लोगों की बुराइयों ही को उद्धार का ज़रिया बनाया। अपने मत का प्रचार करने में उसने धोखेबाज़ी, अन्याय, निर्दयता और अपवित्रता से भी काम लिया। जो यहूदी और मूर्तिपूजक लोग लड़ाई के मैदान से भाग गये थे उन्हें भी उसने क़तल करवाया। बार बार इस प्रकार के कार्य करने से उसका चरित्र भी धीरे धीरे दूषित होगया। किन्तु इस तरह के दूषित व्यवहार का कुछ प्रभाव कम करने के लिए उसमें कुछ ऐसे व्यक्तिगत और सामाजिक अच्छे गुण थे जिनका होना एक ईश्वरीय दूत में आवश्यक है ताकि अपने में अपने अनुयायियों की भक्ति बनाये रख सके। उसके जीवन के अन्तिम दिनों में उसे तृष्णा ने बहुत घेर लिया था। एक राजनीतिज्ञ शंका कर सकता है कि उस समय वह अपनी युवा अवस्था के जोश और अपने अनुयायियों के सरल विश्वास पर हँसता होगा।

अपनी सफलता के कारण उसे अपने देवदूत होने पर अधिक विश्वास होने लगा। उसके स्वार्थ और धर्म इस प्रकार मिले हुए थे कि एक दूसरे से अलग नहीं हो सकते थे।

उसे यह सोचने में बड़ा आनन्द मिलता था कि केवल मैं हीं एक ऐसा मनुष्य हूं जिसे सारे नैतिक नियमों के पालन करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि मुझे ईश्वर ने इन सब बातों से मुक्त कर दिया है। यदि मुहम्मद में उसके पुराने भोलेपन का कोई भी चिह्न बाक़ी था तो उसके सारे पापों को उसकी निष्कपटता का प्रमाण समझना चाहिये। सचाई की सहायता के लिए झूठ और फरेब को कम दोषी समझना चाहिये। यदि उसे अपने उद्देश के न्याय-सङ्गत होने और उसकी पूर्ति की आवश्यकता में पूरा पूरा विश्वास न होता, तो वह अपने उपायों की नीचता पर अवश्य चौंक पड़ता। प्रत्येक मनुष्य में चाहे विजयी हो या पुजारी कुछ न कुछ अकृत्रिमता अवश्य होती है। मुहम्मद की यह आज्ञा कि "कैदियों के बेचने के समय इस बात का खास ध्यान रक्खा जाय कि माताएँ अपने बच्चों से अलग न की जायँ," हमें मजबूर करती है कि हम उसके दोषों को बहुत कुछ हलका कर दें।

मुहम्मद को राजसी ठाठ-बाट दिखाने से बड़ी घृणा थी। ईश्वर का दूत अपने घर के नीच से नीच काम करने को तैयार रहता था। वह घर की आग सुलगाया करता था, घर में झाड़ू दिया करता था, भेड़ों को दुहा करता था और अपने हाथ से अपने फटे हुए कपड़े और जूतों को गांठा करता था। यद्यपि उसे तपस्या से नफरत थी और उसे तपस्वी होने का अभिमान भी न था तो भी वह स्वाभाविक रीति से सिपाहियों का सा सादा भोजन करता था। शुभ अवसरों पर वह अपने मित्रों को खूब भोजन कराता था। परन्तु उसके घर में कभी कभी सप्ताह के सप्ताह व्यतीत हो जाते थे और उसके चूल्हे में आग नहीं जलती थी। वह स्वयं शराब नहीं पीता था और इसीलिए उसके अनुयायी भी मदिरा से दूर रहते थे। वह जौ की रोटी खाकर अपनी क्षुधा निवारण करता था। शहद और दूध उसे बहुत रुचिकर थे किन्तु उसका साधारण भोजन खजूर और पानी ही था। सांसारिक भोगविलास में उसे केवल दो चीज़ें प्रिय थीं, एक तो स्त्रियां और दूसरे सुगन्ध और इन दोनों की उसके धर्म में कोई मुमानियत न थी। मुहम्मद कहता था कि ये दो प्रकार के आनन्द उसकी ईश्वरभक्ति को बढ़ाने में बहुत सहायता करते हैं। देश के गर्म जल-वायु का परिणाम लोगों पर अवश्य पड़ता है और अरब के लोग भी इसी नियम के वशीभूत थे। किन्तु कुरान के धार्मिक नियमों ने उन्हें बहुत कुछ मर्यादा के भीतर रहने पर बाध्य कर दिया। जहां बेशुमार विवाह किया करते थे वहां उनको केवल चार पत्नियां करने की आज्ञा रह गई। तलाक़ या पति अथवा पत्नी को छोड़ने की प्रथा (divorce) का प्रचार कम किया गया। व्यभिचार के लिए प्राणदण्ड की सज़ा रक्खी गई।

किन्तु अपने घरेलू जीवन में मुहम्मद में भी साधारण मनुष्यों की सी वासनाएँ थीं और वह देव-दूत के अधिकारों का दुरुपयोग करता था।

कैबिन ।*

[लेखक—श्रीयुत ठाकुरप्रसाद शर्मा ।]

कठिन लोह-मंडित जल-गृह में
कैबिन बैठा जाता था ।
अपने प्रबल यान को धूमा-
नल में से ले जाता था ॥
शत्रु-दुर्ग पर तीन घड़ी तक
उसने की गोलाबारी ।
अब इस खेल बन्द करने को
हमले की आई बारी ॥ १ ॥

लगता था वह महा भयानक
कम चौड़ा सागर का भाग ।
चिन्ह-रहित उसके नीचे था
सहस-मनुज का मृत्यु-विभाग ॥
शत्रु पक्ष के जल-यानों का
झुंड वहां तैराता था ।
कैबिन हो स्वपक्ष का नेता
निज झंडा फहराता था ॥ २ ॥

पीछे से जल-यान-प्रबल दल
आगे बढ़ता आता था ।
आगे जल-धारा के सन्मुख
नेता उनका जाता था ॥
पल भर गर्जन बन्द हुई
पथ-दर्शक से नेता बोला ।
रिपु पर प्रबल आक्रमण करने को
जहाज़ आगे डोला ॥ ३ ॥

एक ओर उस सलिल-खंड के
था सागर-तट का विस्तार ।
दूजी ओर मग्न जल-निधि में
कपटी नौ-सेना तयार ॥
कैबिन की नौका भी उसकी
ओर फिरी गर्जना हुई ।
पर्वत सम जल-राशि उठी जल
नौका सागर मग्न हुई ॥ ४ ॥

ऊपर उसी लोहमंडित जल
गृह में पथदर्शक सरदार ।
निज निज रक्षा हेतु भागते
मिले वहां पर अन्तिम बार ॥
घंटे सम उस विपद् समय पर
विपलदृष्टि एक आता था ।
क्योंकि एक बच जाने को था
द्वितीय विपद में पाता था ॥ ५ ॥

स्वप्न मग्न की भांति मनुजवर
दोनों भूले खड़े रहे ।
सेनापति ने वीर मनुज कां
भांति वहां यह शब्द कहे ॥
'पथदर्शक पहिले तुम जाओ"
सीढ़ी पर वह चला गया ।
इतने ही में वीर-शिरोमणि
कैबिन जल में डूब गया ॥ ६ ॥

---

* अङ्गरेज़ी कवि न्यूबोल्ट की कविता "कैबिन" का भाषानुवाद ।

पुरुषार्थ और एकता।

[लेखक—श्रीयुत गोवर्द्धनदास।]

इस संसार में जन्म लेने का कुछ उद्देश्य है। परमात्मा ने कोई वस्तु निरर्थक नहीं रची और विचार करने से यह मालूम होता है कि प्रत्येक प्राणी को परमपिता ने इस संसार की कर्मभूमि में, किसी न किसी महान् उद्देश के पालनार्थ रचा है।

मनुष्य परमात्मा की सृष्टि में, एक शक्तिशाली अंश होने के कारण तथा स्वयं उसी एक, का अंश होने के कारण पशु आदि अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ गिना जाता है। मनुष्य में विचारशक्ति नारायण की देन है और इसी का सदुपयोग करने से मनुष्य सद्गति को प्राप्त होता है और इसी विचारशक्ति के सदुपयोग से यह मालूम होता है कि इस संसार में प्राणियों को जन्म लेकर कुछ न कुछ करना पड़ता है।

यह संसार कर्मभूमि है। इसमें जन्म लेकर अपना शक्तियों तथा इन्द्रियों का सदुपयोग कर, सत्कर्म में अपनी प्रवृत्ति को लगाना और अपने जन्म को सफल करना प्रत्येक विचारवान् पुरुष अपना धर्म और कर्तव्य समझते हुए अपने जीवन को संसार के हित के लिए अर्पण कर देते हैं, और यही मानवी जीवन का उद्देश्य है।

यदि हम अपनी शक्तियों का दुरुपयोग करेंगे तो यह निश्चय है कि दुष्कर्मी होने के कारण पतित हो हम अपने उद्देश्य से विचलित होते हुए अन्त में दुःखसागर में, बारम्बार अनेकों जन्ममरण के दुःख भोगने के अवश्य ही भागी होंगे।

महात्मा तुलसीदास जी के निम्नलिखित वचन के अनुसार:—

"जन्मत मरत दुसह दुख होई"

अभी जन्म का दुस्सह कष्ट भोग कर इस संसार में चरण रक्खा है और यहां फिर भी कष्टों ही का अनुभव कर रहे हैं, पुनः वृद्धावस्था भी बाघिन की भांति मुंह बाए हुए है और अन्त में शरीर छोड़ना भी है, यह समझते और जानते हुए भी हम अपनी शक्तियों का सदुपयोग नहीं करते और अपनी विचारशक्ति को मलीन कर निपट स्वार्थपरायण होने ही में लगा कर स्वयं दुःख के भागी होते हैं और इस पर भी सुख और शान्ति पाने के अधिकारी होने का गर्व रखते हैं।

जब तक अबोध थे तब तक जो किया सो किया "गतस्य शोको नास्ति" पर जब बुद्धिरूपी कमल ज्ञान रूपी सूर्य के उदय होने पर खिल जाता है तो हमें अवश्य ही उसका सदुपयोग कर आनन्दमय होना चाहिये। पर शोक है कि संसार का कार्य निशदिन देखते हुए भी इस की असारता का विचार रखते हुए भी हम कर्तव्यपरायण नहीं होते।

हम पुरुष कहाते हैं। किस गुण से? केवल पुरुषार्थ ही से। भगवान् कहते हैं कि पुरुषों में पुरुषार्थ मैं हूं। तब बिना पुरुषार्थ किये "पुरुष" पद की शोभा नहीं है और पुरुषार्थ ही मनुष्य के प्रत्येक कार्य में सिद्धिप्रद है। बिना पुरुषार्थ किये, बिना शक्ति और इन्द्रियों के सदुपयोग किये हमारी जीवनयात्रा भी दुर्लभ है, यह हम भली भांति जानते हैं और प्रत्यक्ष देखने में आता है कि जब तक हाथ से भोजन उठाकर मुंह में दांतों द्वारा कुचल और चबा कर उदर तक नहीं पहुंचाते तब तक पेट भी नहीं भर सकता तो अब यह निश्चय है कि जब तक कर्म तथा पुरुषार्थ द्वारा हम स्वयं अपनी

उन्नति तथा समाज की उन्नति में कटिबद्ध नहीं होते तब तक केवल उन्नति २ रटने ही से हमारा कार्य नहीं चल सकता अतः कर्म और पुरुषार्थ पुरुष का विशेष धर्म है। और इसके बिना एक क्षण भी व्यर्थ व्यतीत करना, अपनी तथा समाज की उन्नति में बाधा डालना है। इसलिए हमें अब पुरुषार्थ करने में कटिबद्ध होना आवश्यक है और पुरुषार्थ ही देश के लिए उन्नतिशील होने में प्रथम साधन है।

अपनी इन्द्रियों तथा शक्तियों का सदुपयोग करना, उनसे देश तथा समाज अथवा स्वयं अपनी आत्मिक उन्नति का कार्य करना, प्रत्येक प्राणी का कर्तव्य होने के कारण हम यह कह सकते हैं कि समाज की सेवा तथा देश की सेवा ही, दूसरे शब्दों में धर्म और पुरुषार्थ है। संसार के कल्याण के लिए, इस कर्मभूमि में आकर, सत्कर्म द्वारा, उनके हित को अपना ही समझ अपने मानवी जीवन के लक्ष्य में लीन हो जाना और

अयं निजः परोवेति गणना लघु चेतसाम्।
उदारचरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

इस सिद्धान्त को ध्यान में रखते हुए इस कर्मभूमि में, वीरों, दानियों और भक्तों की भांति कमर कस अपने आप को निछावर कर देना चाहिये।

हमारे शास्त्रों का भी यही सिद्धान्त है और यही कारण है कि प्राचीन समय में समाज के हित ही के लिए ऋषियों ने वर्णव्यवस्था प्रचलित की और वर्णव्यवस्था के अनुकूल अपना आचरण रखते हुए, अपने कर्तव्यों के पालन में रत पुरुष ही अपने जीवन को सार्थक कर सकते हैं।

यही बात महात्मा कबीरदास भी कह गये हैं कि:—

'जननी जने तो भक्त जन, कै दाता कै शूर।
नाहीं तो तू बांझ रहु, काह गँवावे नूर॥

जन्म लेकर सब से पहिला कर्तव्य हमें संसाररूपी कुटुम्ब का हितचिन्तन और उनकी भलाई में सर्वदा कटिबद्ध होना है। इसी कारण देशसेवा प्रथम और मुख्य है क्योंकि—

सब आये इस एक में, डाल पात फल फूल।
कबिरा पीछे क्या रहा, गहि पकड़ा जब मूल॥

अपनी जननी, जन्मभूमि की सेवा, माता पिता और गुरू की सेवा से भी बढ़कर है और वे लोग माता पिता और गुरू कहलाने के योग्य नहीं, जिन्होंने अपनी प्रिय सन्तानों और शिष्यों को जन्मभूमि की सेवा के लिए शिक्षित और उत्साहित नहीं किया और जिन्हें देशसेवा की, सारे संसार को अपना जानने तथा समझने और अनुभव करने की शिक्षा ही न मिली वे अपने माता, पिता, गुरू, सम्बन्धी और मित्र तथा पड़ोसी किम्बहुना स्वयं अपनी तथा अपने कुटुम्ब की भी सेवा नहीं कर सकते। उन्हें तो यह जीवन एक बोझ मालूम होता है और स्वेच्छाचारी होने के कारण वे स्वार्थी और कपटी हो जाते हैं और अन्त में अपने आपको कलंकित कर अपने पुरुखों के भी विमल यश पर पानी फेरते हैं और आनेवाली सन्तानों के हित में भी बाधा डालते हैं।

देशसेवा रूपी यज्ञ में, चारो वर्णों की आवश्यकता है और जबतक प्रत्येक वर्ण के लोग अपने अपने धर्म और कर्तव्य से विमुख रहेंगे तब तक हमारा अभीष्ट सिद्ध नहीं होगा। अतः चारों वर्णों को इस महान् यज्ञ में अपने जीवन की आहुति देनी परम आवश्यक है।

ब्राह्मणों को शुभ मंत्रों द्वारा, क्षत्रियों को वीरता द्वारा, वैश्यों को दान द्वारा और शूद्रों को कठिन से कठिन परिश्रम के कार्यों द्वारा अपने आपको देश के लिए अर्पण करना चाहिये। देश के हित में सब का हित है। देश के यश में सब का यश है और देश के दुःखी होने पर सभी दुःखी होते हैं। इसलिए हमारा और

आपका अब यही कर्तव्य है कि चारों वर्णों में जागृति पैदा करें और उन्हें अपने २ वर्ण धर्म द्वारा निज २ कर्तव्यों में शीघ्र ही लीन देखें। जबतक हम अपने कर्तव्यों को नहीं समझते, उनके पालन में दत्तचित्त नहीं होते तभी तक कष्ट में हैं और जहां हम में अपने गुणों और कर्तव्यों का बोध हुआ और हम लोग अपना २ कार्य करने में दत्तचित्त हुए नहीं कि बस देश-हित का श्रीगणेश होगया।

देशहित में सभी का कल्याण है अतएव सब को मिलकर, एक होकर, एकता के लिए, उन्नतिशील होने का शीघ्र ही प्रयत्न करना चाहिये तभी वास्तविक जीवनोद्देश सफल होगा।

गर्भिणी स्त्री को प्रसव कष्ट क्यों होता है ?

[लेखक—श्रीयुत डाक्टर के० सी० औडी, एम० डी० ।]

बायोकेमिक् मतानुसार उसका निदान तथा प्रतिकार ।

जीवों के शरीर के सब प्रकार के रसों और झिल्लियों के वास्ते पोटासियम फास्फेट (Potasium phosphate) नामक धात्वीय लवण अत्यन्त आवश्यकीय द्रव्य है। शरीर में इसका परिमाण ठीक रहने के लिए शारीरिक सकल यंत्र आक्सिजन (Oxygen) नामक गैस पैदा करते रहते हैं तथा रक्त के अन्यान्य रासायनिक परिवर्तन करते और तैलिक पदार्थों को साबुन के सदृश पदार्थ में बदलते रहते हैं। जीवनशक्ति के विषय में इसका कार्य अति विचित्र है तथा इसके वर्तमान रहने पर जीवन शक्ति ठीक रहती है।

देह भर में मस्तिष्क ही प्रधान है, यह पोटासियम फास्फेट आक्सिजन नामक गैस की सहायता से शरीर के अण्डलालिक (albumca) पदार्थ के साथ मिलकर ग्रे मैटर (Gray matter) नामक पदार्थ उत्पन्न करता है। इसके अभाव होने पर मस्तिष्क और नसों के कार्य बन्द होकर शिथिलता और मानसिक शक्ति की हानि इत्यादि लक्षण प्रगट करते हैं और नस सम्बन्धी दुर्बलता प्रयुक्त रक्तकणिका और पेशी सब नष्ट हो जाती अथवा सूख जाती हैं और सड़ा खून बहने लगता है। शारीरिक तथा मानसिक कार्य इत्यादि अधिकतर मस्तिष्क के ग्रेमैटर नामक पदार्थ द्वारा होते रहते हैं। गर्भ की दशा में इसके अभाव होने से पेशी और स्नायु-मण्डली शुष्क हो जाने से जरायु अथवा कठिन हो जाती है और प्रसवकाल में नाना प्रकार के कष्ट और दुर्घटनाएँ होने लगती हैं।

यदि मस्तिष्क के ग्रेमैटर नामक पदार्थ का किञ्चित् अंश लेकर खुर्दबीन द्वारा परीक्षा की जावे तो वह अधिकतर विचित्र सजीव कोषों से युक्त दीख पड़ता है। उनमें से कुछ तो बड़ी पूंछवाले मेंढक के बच्चे के सदृश दीख पड़ते हैं और कुछ मकड़ी के सदृश शरीर में चारों ओर पैर फैलाये हुए दीख पड़ते हैं। ये इतने छोटे हैं कि एक इंच की लम्बाई के लिए ५०० से अधिक की आवश्यकता होगी और प्रत्येक सजीव कोष को अलग २ अपना २ सूक्ष्म कार्य करना पड़ता है।

यदि हम लोग सावधानी से परीक्षा करें तो ज्ञात होगा कि पूंछ अथवा उँगलियाँ जो

प्रत्येक सूक्ष्म सजीवकोष से सम्बन्ध रखती हैं और अपनी स्वाभाविक अवस्था में मस्तिष्क में वर्तमान हैं और अपने स्थान से काटी नहीं गई हैं, शरीर में सर्वत्र दौड़ने के लिए तैयार रहती हैं और इनमें से कुछ उँगलियाँ इतनी छोटी हैं कि अँगूठे की मोटाई के बनाने के लिए दस लाख की आवश्यकता है। इनमें से सहस्रों एकत्रित होने से एक नस बनती है। तथा रीढ़ की हड्डी का अधिकांश बनता है जिसके द्वारा मस्तिष्क शरीर के सब भागों से जुड़ा हुआ है। यदि उँगली के किनारे पर हम एक पिन चुभो दें तो इससे हमको कष्ट होगा क्योंकि मस्तिष्क में कुछ छोटे छोटे कोष हैं जिनसे कि लम्बे बाल सदृश सूक्ष्म रेशे उँगली की त्वचा तक लगे हुए हैं जहां पर कि पिन गड़ाई गई है। मस्तिष्क के कोष कष्ट को अनुभव करते हैं और कष्ट को उँगली की ओर आकर्षित करते हैं। इन विचित्र छोटे २ कोषों को स्नायुकोष कहते हैं।

मस्तिष्क और रीढ की हड्डी में स्थित ये स्नायुकोष बारह करोड़ से अधिक कल्पना किये जाते हैं। इन्हीं अपूर्व कोषों द्वारा समस्त शरीर की यथानियम से परिचालना होती है और शरीर के और सब यन्त्र केवल मस्तिष्क के सेवक ही माने जाते हैं। छोटे २ कोष अपनी लम्बी उँगलियों को पेशी, ग्रन्थि, फुसफुस, कलेजा, पेट इत्यादिकों को उत्तेजन करने के लिए शक्ति भेजते हैं। जैसे जब हम हाथ हिलाना चाहते हैं तो मस्तिष्क के कोष जो पेशी से सम्बन्ध रखते हैं हाथ की नसों को शक्ति भेजते हैं और उसी के अनुसार हम काम करते हैं, इसी प्रकार हृत्पिण्ड द्वारा रक्त संचालित होता है, फेंफड़े से सांस लेते हैं। जक्कीत से पित्त बनता है इत्यादि इनके अतिरिक्त और दूसरे यन्त्र भी मस्तिष्क के स्वसम्बन्धी कोषों की आज्ञानुसार काम करते हैं। कोष कई श्रेणियों में बँटे हैं और उनमें से प्रत्येक को अपना २ मुख्य कार्य करना पड़ता है। स्नायु कोष दो भागों में विभाजित किये जाते हैं। प्रत्येक भाग को मुख्य २ कार्य करना होता है। स्नायु-कोष के ये दोनों भाग रीढ़ की हड्डी में विशेष करके दीख पड़ते हैं। एक भाग जो समाचार ग्रहण करता है उसको उँगली के संयुक्त कोष शरीर के बाहर से समाचार देते हैं और दूसरी श्रेणी उँगली के संयुक्त-स्नायु-कोष को उसी स्थान पर उत्तेजन करने के लिए आज्ञा भेजता है अथवा उनको शरीर के सब स्थानों पर उत्तम प्रकार से कार्य करने को भेजता है। उदाहरण—अगर पैर के नीचे गुदगुदाया जावे तो उस पैर के नीचे की गुदगुदी रूप अनिष्ट से बचने वास्ते पैर को हटा लेते हैं। जब हम सोते हैं अथवा हमारे किसी स्थान पर लकवा मारता है तब हम लोग कुछ २ होश से रीढ़ की हड्डी के स्नायु-कोष द्वारा हिल डुल नहीं सकते।

फास्फेट आफ़ पोटास् नामक धात्वीय लवण के अभाव होने से गर्भिणी को प्रसव कष्ट असहनीय होता है। सदैव क्रोध, निराशा और प्रसव होने की चिन्ता समय २ पर इतनी अधिक होती है कि इससे उन्माद रोग तक उत्पन्न हो जाता है और इसके अभाव में शिरोपीड़ा, स्नायुशूल, ज्वरायुशूल, सम्पूर्ण अथवा असम्पूर्ण लकवा इत्यादि नाना प्रकार के कठिन रोग उत्पन्न होते हैं। औरभ्रूण (गर्भ का बच्चा) नीचे शिर हो के न निकलने से नार टूट के उसके कोई २ अंग—हाथ पैर इत्यादि—निकल आने से नाना प्रकार की विपत्तियाँ उत्पन्न होती हैं।

यदि फास्फेट आफ़ पोटास् प्रसव के कुछ दिन पहिले गर्भिणी को दिया जावे तो मस्तिष्क के ग्रे मैटर नामक स्नायुकोष रीढ़ की हड्डी द्वारा उन सब स्नायु कोषों से जो कि योनि और पेरिटोनियम (झिल्ली) में स्थित है उत्तेजन करके यथार्थ रीति से जीवनशक्ति द्वारा भीगा रख के प्रसव कार्य यथासमय में कराते

हैं। इसको यथानुसार प्रयोग करने से प्रसव कष्ट किञ्चित् सामान्यमात्र होगा अथवा कुछ भी न होगा जैसे कि गर्भिणी निद्रित अवस्था में अज्ञात रीति से प्रसव करेगी। वैज्ञानिक अध्यापक डाक्टर कैरी वाकर (Carry Walker) इत्यादिक कहते हैं कि फास्फेट आफ़ पोटास नियमित रूप से व्यवहार करने से मस्तिष्क का ग्रे मैटर नामक पदार्थ गर्भिणी को प्रसवकाल में सर्व प्रकार से रक्षा करने के लिए उपयोगी कार्य करता रहता है। प्रसवकाल में इसका कार्य अर्गट (ergot) के तुल्य है और प्रसूतिका का सब प्रकार से स्वस्थ रख करके अवश्य प्रसव कराता है। अनेक परीक्षाओं द्वारा ज्ञात हुआ है कि फास्फेट आफ़ पोटास् का कार्य धात्रीविद्याभिज्ञ (Mid-wifery) चिकित्सकों के कार्य के अनुसार होता है। जिस समय प्रसव कष्ट हो उसी समय यदि इसका प्रयोग किया जाय तो वह समय २ पर पीड़ा का घटना बढ़ना और प्रसव की निष्फल पीड़ा से उद्धार करके स्वाभाविक नियम से निश्चय ही प्रसव करावेगा। प्रसूतिका के मस्तिष्क में इस धात्वीय लवण का अभाव होने से गर्भस्थ भ्रूण के मस्तिष्क में इस धात्वीय लवण का अभाव होके प्रसव संकट होता है। यह निश्चय है; वैज्ञानिक पण्डित लोग इसको एकदम स्वीकार करेंगे।

आजकल रासायनिक परीक्षा के द्वारा ठीक २ निश्चय किया गया है कि गर्भकाल में रक्त के अवयव (Materials of blood) पूर्ण रूप से बदल जाते हैं। इनमें पानी का अंश बढ़ जाता है और शिर में अण्डलालिक पदार्थ थोड़ा रह जाता है और लाल रक्त कणिकाओं की संख्या अल्प हो जाती है। इन्हीं सभों के अदल बदल के साथ रक्त में फेब्रिन और एक्सटैकटिव पदार्थों की वृद्धि होती है। रक्त में इसके परिवर्तन के साथ हृत्पिंड में अल्पकाल की वृद्धि होती है। जरायु का संचालन इस समय अत्यन्त कठिन होकर इसका बढ़ाव होता है। यह बढ़ाव केवल बाएँ वेंट्रिकिल में होता है। मनुष्य, पशु, पक्षी, उद्भिद इत्यादि जितने मृन्मय पदार्थ हैं ऐश्वरिक नियम से पृथ्वी, जल, तेज, वायु, और आकाश इन्हीं चिरप्रसिद्ध पञ्चभूतों द्वारा निर्माणित, वर्द्धित और चलायमान होते रहते हैं। मिट्टी, जल, और वायु, ये तीन महाभूत उक्त धात्वीय लवण रूप विद्यमान हैं। मिट्टी, जल इत्यादि से धात्वीय पदार्थों को वृक्षादि ग्रहण करते हैं, और मिट्टी को उपजाऊ शक्ति कम होने पर चूना, क्षार इत्यादि खाद की चीज़ें डाली जाती हैं। उक्त द्रव्यों को वृक्ष लता इत्यादि ग्रहण करते रहते हैं और सब जीव वृक्ष लता शस्य इत्यादि का आहार करके वही धात्वीय पदार्थों को ग्रहण किया करते हैं। कम उपजाऊ भूमि में उत्पन्न शस्य इत्यादि आहार करने से शरीर में धात्वीय द्रव्य का परिमाण पूर्णतः नहीं पहुंचता अथवा आहार करने की वस्तु अच्छी तरह न पच कर के उक्त धात्वीय पदार्थ सम्पूर्णता से गृहीत न होने से अभावज्ञापक लक्षण उपस्थित हो जाते हैं जो नाना प्रकार के रोग कहे जाते हैं। रक्त में उक्त धात्वीय लवण पूर्णतः रहने से शरीरधारण अच्छी तरह होता है। कारण कुछ भी क्यों न हो रक्त में उक्त पदार्थों में से एक दो या उससे अधिक धात्वीय पदार्थ कम होने से (Organic) आरगैनिक पदार्थ व्यर्थ होकर शरीर में अन्यान्य लक्षणादि प्रकाश कर के आवश्यकीय धात्वीय पदार्थ में अभाव ज्ञापन करता है। उक्त अभावज्ञापक लक्षण ही को रोग कहते हैं। रोग केवल अभावज्ञापक लक्षण मात्र है। जर्मनी के प्रधान वैज्ञानिक अध्यापक विर्चो (Virchow) कहते हैं कि कोषों की बिगड़ी हुई दशा ही को रोग कहते हैं।

सत्य तत्व को बतलानेवाली "बायो केमिस्ट्री" से सहजही में ईश्वर की सत्ताविषयक और सृष्टिकौशल सम्बन्धी ज्ञान लाभ होता है जैसे

श्वासद्वारा जीव के शरीर से जो अनिष्टकारक कारबन नामक गैस बाहर होता है वह जड़ जीव उद्भिद्गणों का वायुरूप जीवन निर्दिष्ट होता है और उनकी आक्सिजन गैस चेतन जीवों की जीवन वायु होता है और चेतन प्राणियों के साथ उद्भिदगणों का परस्पर इसी प्रकार लेन देन का नियम स्थित रहकर संसार के समस्त जीवों का निर्वाह होता है। ईश्वर के इस सब सृष्टिकुशलता का स्वाभाविक परिचय "वायोकेमिक" विज्ञान से विशेष रूप से प्राप्त होता है।

मनुष्यों के जन्म समय में ग्रह जैसे बली होते हैं वैसेही शरीर का गठन, स्वास्थ्य, बल इत्यादि सम्भोग करते रहते हैं। ग्रह प्रकृत नियम से कभी बली और कभी निर्बल होकर ऐश्वरिक कार्य करते हैं। सूर्यादि ग्रह अपनी २ स्थानिक राशिगत बलाबल के अनुसार पृथ्वी के ऊपर यथारीति शक्ति परिचालन करते रहते हैं। मनुष्यगण पृथ्वी के अन्तर्भुक्त जीव हैं उनके ऊपर और ग्रहों की यथासम्भव शक्ति परिचालन क्यों न होगी ? पृथ्वी और सब ग्रह सूर्य के साथ परस्पर आकर्षणीय शक्ति रखने के लिए सौर जगत् के सकल ग्रह ही अपने २ स्थान पर रहकर परिभ्रमण करते हैं-- कोई ग्रह भी अपने स्थान से भ्रष्ट नहीं हो सकते हैं। इसी प्रकार परस्पर शक्ति के फलानुसार एक के ऊपर दूसरे की क्रिया सहज ही में हो सकती है जैसे सूर्य और पृथ्वी के पूर्वोक्तरूप परस्पर सशक्तिवश सूर्य पृथ्वी को गर्मी देता है और पृथ्वी से रस खींचता है। इसी प्रकार चन्द्रमा पृथ्वी को रस देता है। इसी प्रकार परस्पर आकर्षणीय शक्तिवश अमावस्या और पूर्णिमा को सूर्य पृथ्वी का रस खींचने के लिए और चन्द्रमा के उसके विपरीत दिशा में स्थित आकर्षणीय शक्ति द्वारा यावतीय रस परस्पर उल्टी चाल से एकत्रित होकर सूर्य के रसाकर्षनानुकूल्य करता है। इसी वास्ते पृथ्वी का जल उमड़ कर प्रबल ज्वार उत्पन्न करता है और उन्हीं तिथियों को जीव के शरीर में रस-धातु प्रबल-चन्द्रमा की शीतलता से अत्यन्त वर्द्धित अथवा सूर्य की आकर्षणशक्ति पूर्ववत् प्रबलता पाकर सब के न्यूनाधिक परिमाण से स्वास्थ्य की कमी होजाती है। सूर्य की चाल के अनुसार हम लोगों की ऋतुओं में भेद होता है। सूर्य जब कर्क राशि पर आते हैं तब श्रावण में पानी बरसता है और सूर्य के कन्या राशि पर आने पर शरद् ऋतु का प्रवेश होता है और जगत् शोभायमान होता है। ऋतुओं के साथ २ मनुष्य के देह की धातुओं में भी परिवर्तन होता है। और कुछ अन्तर भी हो जाया करता है जैसे वर्षा काल में वायु प्रकोप होता है और शरद् ऋतु में पित्तप्रकोप इत्यादि होता है और प्रतिदिन प्रातःकाल कफ, मध्याह्न में पित्त और अपराह्न में वायु प्रकोप होता है।

इसी प्रकार बाल्यावस्था में कफ, मध्य अवस्था में पित्त और अन्तिम अवस्था में वायुप्रकोप प्रबल होता रहता है। इनकी शक्ति का विचार करने से साफ २ विदित होता है कि ग्रीष्म ऋतु में मंगल और रवि प्रबल होते हैं और पित्त की प्रबलता होती है। वर्षाकाल में चन्द्रमा बली होता है इस कारण उसकी शीतलता से कफ संचार होकर वायु का रोक व प्रकोप होता है और जीवन काल के मध्य में ग्रहों के साधारण अधिकार के अनुसार कालभेद होता है।

जीवन काल में प्रथम चार वर्ष तक चन्द्रमा का अधिकार होता है। चन्द्रमा शीत उत्पन्न करता है, उस समय कफ श्लेष्मा की प्रबलता होती है। श्लेष्मा को जीव के बल का आधार कहकर इसको बालाप कहते हैं। बाल्यावस्था में ही जीव के शरीर में उत्तरोत्तर बलाकर्ष बढ़ता है और वही शक्ति बढने का यथार्थ समय है इसी वास्ते स्तन जो श्लेष्माजनक जल-सम्बन्धी पदार्थ होता है उसी समय शरीर का

पोषक होता है। चन्द्रमा मस्तक, उदर इत्यादि के ऊपर आधिपत्य रखता है। इसके उपरान्त दश वर्ष तक बुध का अधिकार होता है। बुध बात, पित्त व कफ़ को समान रखता है। उस समय पूर्वसंचित-यथासमावेश क्रम से काम होना प्रारम्भ होता है। इसी वास्ते इस समय में स्वभाव से ही चञ्चलता, बातचीत करने में चतुराई और बुद्धि का प्रकाश हृदय में आने लगता है। इसी कारण इसी समय बात बोलना इत्यादि जितनी शिक्षा और उनके अनुसार क्रियादि हैं उनमें प्रवृत्ति होती है। बुध मस्तक और जिह्वा के ऊपर अधिकार रखता है। इस देश में चौदह वर्ष की अवस्था में स्त्रियों को प्रायः गर्भवती देखा जाता है। साधारण रीति से चौदह वर्ष की अवस्था से शुक्र का अधिकार होता है। इस समय सब को जवानी होती है। शुक्र रजोगुण का उद्दीपन करता है और वाक्-पटुता, रसज्ञता, विलासिता आदि मनुष्य में होने लगती है। शुक्र ग्रीवा और ज्ञानेन्द्रियों के ऊपर आधिपत्य करता है। इसी प्रकार यथाक्रम से रवि, मंगल इत्यादि आधिपत्य करते हैं। बायोकेमिक के निदान में फास्फेट आफ् पोटास (Phosphate of Potas) मेष राशि चक्र स्वरूप का काम करता है। मेष राशि का मालिक मंगल है और इसके अधिकार के समय साधारण स्त्रियों को गर्भ होता है। मंगल रक्त और ग्रीवा के ऊपर आधिपत्य करता है।

जीवनकाल में शुक्र, रवि और मंगल का साधारणतः शरीर के ऊपर आधिपत्य रहता है और जन्मकाल के ग्रहों का अपने अपने स्थानीय बल के अनुसार कार्य होता है। जन्म-काल में जिन स्त्रियों के शुक्र, रवि और मंगल विरुद्ध होते हैं वे प्रसव के समय निश्चय ही कष्ट पाती हैं। जब हम लोगों के शरीर को धातुप्रबलता स्वभावसिद्ध होती है तब इसके बिगड़ने से स्वास्थ्य का बिगड़ना अवश्य सम्भव है और गर्भस्थित भ्रूण के ऊपर चन्द्रमा का आधिपत्य रहता है। चन्द्रमा मस्तक के ऊपर आधिपत्य रखता है इसी वास्ते भ्रूण का मस्तक पहिले बाहर निकलता है। फास्फेट आफ़ पोटास् गर्भिणी को यथानियम सेवन कराने से प्रसवकालीन नानाविधि संकटों से रक्षा होगी यह बात निश्चय है। प्रसवकाल में इसकी असाधारण क्षमता देखकर धात्री विद्या-भिज्ञ चिकित्सकों को आश्चर्य होता है, अतएव हम सर्वसाधारण गर्भिणी स्त्रियों को इसका नियमित व्यवहार करने की अनुमति देते हैं। इसमें किसी प्रकार का विष नहीं है कि जिससे गर्भिणी को किसी प्रकार की हानि पहुंचे। इसके व्यवहार करने से प्रसूतिका और बालक की रक्षा कवच के तुल्य होती है, इसमें अधिक प्रशंसा नहीं की गई है। इसके व्यवहार से बालक उत्पन्न होते समय किसी प्रकार का गर्भिणी को कष्ट नहीं पहुंचता और दाई आदि को बुलाने की आवश्यकता नहीं पड़ती और न किसी प्रकार का गर्भिणी का अपमान होता है। डाक्टर इत्यादि को बुलाने के खर्च की आवश्य-कता नहीं पड़ती और न किसी प्रकार का कष्ट उठाना पड़ता है। प्रयोग विधि यह है कि दो ग्रेन मात्रा प्रति दिन प्रातःकाल और सायंकाल सेवन करनी होती है और प्रसवकालीन स्त्रियों को ग्रेन करके प्रति १० दश मिनट पर सेवन कराने से अति स्वल्प समय में निर्विघ्नता से प्रसव होगा इसमें कुछ सन्देह नहीं। दवा गरम पानी के साथ खाने से लाभ अधिक होगा। सबके ज्ञानार्थ इसके बनाने की विधि बताई जाती है:—

पोटासियम नामक धातु गरम पदार्थ, हाइड्रोजन, आक्सिजन नामक गैस और फा-स्फोरस नामक अधातु गरम पदार्थ इन तीनों को परस्पर रासायनिक संयोग द्वारा फास्फेट आफ पोटास (Phosphate of Potas) तैयार होता है।

"प्रेम-पराकाष्ठा ।"

[लेखक—श्रीयुत पं० रामनारायण चतुर्वेदी ।]

प्रियजनों का नित्य दर्शन
भाग्य का फल लभ्य है ।
हृदयाभिनन्दन दर्शनों का
योग भोग अलभ्य है ॥
जीवन वही जीवन सुखी
जो हो दुखी न वियोग में ।
अविरत रहै अनुरक्त हो
प्रियभक्त सा संयोग में ॥
इस हर्ष के उद्यान में
मन मुग्ध कलिका हो खिली ।
नेहसिंचन नीर से हो
भावना धारा मिली ॥
अन्योन्य के शीतोष्णकर
फिर एकमात्रिक भाव हो ।
तल्लीन तन्मय होय तद्गत
सर्वथा तद्भाव हो ॥
यों रूप का पार्थक्य हो
पर बुद्धितुल्य विचार हो ।
अतुल प्रेमा वरन ही से
परम शुद्ध प्रभाव हो ॥
दुर्वासना, दुर्बुद्धि, हठ का
सर्वतः ही अभाव हो ।
इस द्वैत से अद्वैत पथ का
लोक में विस्तार में ।
तब प्रेममय संसार में
सुख भाग्य का संचार में ॥
कामना की रम्य क्यारी
नेह दृग की सींच से ।
होगी हरी आशा भरी
पूरी मनोरथ बीच से ॥
प्रेम भी कोई पदारथ
लोक मायाजाल है ।
सम भाग से मिलता नहीं
सिब को अलभ्य प्रबाल है ॥

रसिकेश नटवर की दया
जिसके सदय हिय को मिलै ।
सुन्दर हृदय मन्दिर वही
यह रत्नमणि जोती खिलै ॥
यों तो पशू जल जीव जन्तू
पक्षि उद्भिज सृष्टि से ।
स्वायत्त समभाविक प्रगटता
है परस्पर दृष्टि से ॥
पर भावना की भूमिका में
हृदस्थ हो अनुराग से ।
दैवी प्रभाव प्रकाशता
प्रकटै सती की आग से ॥
ज्वाला विरह की सत्यता
प्रणयी कभी सहते नहीं ।
प्रियजन वियोगों की व्यथा
दुख की कथा कहते नहीं ॥
सारे जगत के विघ्न दुख
व्याघात से बहते नहीं ।
जीव जीवन के गए
प्रेमी सुजन रहते नहीं ॥
विश्व का सम्पूर्ण सुख भी
स्वप्न में भाता नहीं ।
मोह माया, रम्य काया,
उनको सुख होता नहीं ॥
प्राण वल्लभ विश्व में
उनके लिए परमेश है ।
मूल जोति विलोप होते
शेष फिर आवेश है ॥
ईश, ससि, सुर, सक्र,
विष्णू भी उन्हें भाते नहीं ।
ब्रह्माण्ड के नायक विनायक
भी उन्हें पाते नहीं ॥

अन्य लोक में जाकर गिरा हुआ पुरुष।

[लेखक—श्रीयुत चम्पालाल जौहरी (सुधाकर)।]

मुझ से बातचीत करने की, अब ईश्वरराय को इतनी चटपटी लग रही थी कि दूसरे रोज कार्यालय का समय बीतते ही वह तुरन्त मेरे पास आया और आतुरता से मुझसे पूछने लगा, "क्यों भाई, आज भी आपको छुट्टी है या नहीं?"

मैंने सहज ही हँस कर कहा, "हाँ आओ बैठो।"

मेरी अनुमति पाते ही खुशी खुशी मेरे सामने पड़ी हुई एक आरामकुर्सी पर ईश्वरराय जा बैठा। मैंने भी अपना बाकी कार्य पांच छे मिनट में पूर्ण कर, उससे बातचीत करनी शुरू की। मैंने कहा "ईश्वरराय, वायु में छिद्र करने की कला का ज्ञान मैंने कहां से प्राप्त किया यही जानने की तुम्हारी इच्छा है न? मैं इस विषय में तुम्हें विस्तारपूर्वक कहूंगा, और इस विषय के सम्बन्ध की कुछ अंगरेज़ी पुस्तकें हैं वे भी तुम्हें पढ़ने को दूंगा। परन्तु मैं ने यह जो ज्ञान प्राप्त किया है वह केवल पुस्तकों से ही नहीं वरन् विशेषकर पृथ्वी पर कूदते हुए पृथ्वी पर न गिर अन्य लोक में जाकर गिरे हुए एक चमत्कारिक पुरुष से प्राप्त किया है,?"

ईश्वर राय, जो कि मेरी बात अत्यन्त ध्यानपूर्वक सुन रहा था, मेरे अन्तिम वाक्य सुनते ही, बात भली प्रकार न समझा हो, इस प्रकार मुख का भाव दरसाते हुए, बीच ही में बोल उठा, "क्या कहा? 'पृथ्वी पर कूदते हुए अन्य लोक में जाकर गिरे हुए' किसी पुरुष के पास से आपने यह ज्ञान प्राप्त किया क्या यह बात बिलकुल सत्य है।"

मैंने निश्चयपूर्वक कहा "हां, मैं बिलकुल सत्य कहता हूं। मैंने उस पुरुष को छत की खिड़की से धरती पर कूदते हुए देखा; परन्तु वह धरती पर न गिर करोड़ों मील की दूरी पर किसी नक्षत्र (तारे) में जाकर गिरा।"

इस पर पुनः अविश्वास कर ईश्वर राय ने कहा, "खूब! यह भी एक नई गप्प है! आप का मग़ज़ भी कुछ अजब तरह का है।"

मैंने कहा, "इसके माने क्या? क्या तुम यही कहना चाहते हो कि मैंने अपने भ्रम-पूर्ण मग़ज़ से यह एक नई बात पैदा कर दी है? नहीं बिलकुल नहीं। जब तक मनुष्य गूढ़ विद्याओं के प्रान्त भाग पर भी न आया हो, तब तक इन विद्याओं की सामान्य बातें भी उसे तरंगी मग़ज़ की गप्पें ही मालूम पड़ती हैं। यथार्थ बात जानने के लिए जो प्रयास करना पड़ता है, उसके करने में कायरता ही ऐसे वचनों का कारण है।"

मेरे इस प्रकार स्पष्टवाद पर किंचित लज्जित हो ईश्वरराय ने कहा—"तो क्या आपका कहना बिलकुल सत्य है? यदि ऐसा हो, तो कृपया यह बात सम्पूर्ण कह डालिये।"

सो तो मैंने कहना आरम्भ किया ही था, किन्तु मेरी बात सम्पूर्ण तो नहीं, किन्तु आधी भी सुनने का तुम धैर्य नहीं धारण कर सके। जगत में असंख्य मनुष्य ऐसे ही होते हैं। कोई बात किसी ने कहनी आरम्भ की, तो वह सम्पूर्ण तो दूर रही, आधी भी न सुन, प्रारम्भ ही से उसपर अपना अभिप्राय व्यक्त करने लग जाते हैं और इस प्रकार अपना भूल भरा अभिप्राय रख सच्ची बात को खोटी जान सदैव इससे अनभिज्ञ रहते हैं! ऐसे मनुष्य यदि ज्ञानवृद्धि में आगे उन्नति न कर सकें तो उस में आश्चर्य ही क्या है? इस समय मैं तुम्हारा
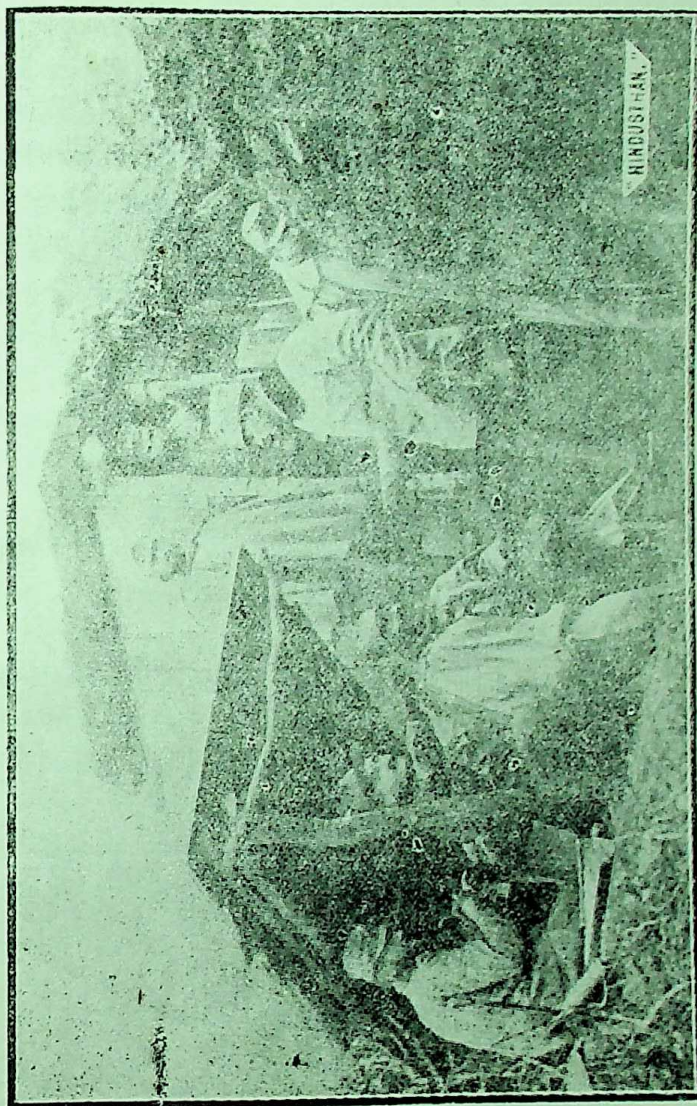
आस्ट्रियन खाई में अफसरों के रहने का स्थान।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग !

कोई मुख्य दोष प्रगट नहीं करता न करना ही चाहता हूं, किन्तु केवल तुम्हारे हित के लिए ही, प्रसङ्ग छिड़ जाने पर इतनी बात कही है। इस से तुम अपने अन्तःकरण में क्षुभित नहीं होगे। अच्छा; तो अब मैं, तुम्हें, उस चमत्कारिक पुरुष का वृतान्त सुनाता हूं:—"

"आज से लगभग चार वर्ष पहिले उस पुरुष से मेरी ताजमहल होटल में भेंट हुई थी। तुम फिर कहीं ऐसा खोटा अनुमान न कर लेना कि मैं उपर्युक्त होटल में भोजन करने के लिए गया होऊंगा। तुम जानते ही हो कि पहिले मैं 'टाइम्स' आफिस में नौकर था। दुनिया भर के विविध साप्ताहिक तथा मासिक पत्रों से उपयुक्त वैज्ञानिक समाचारों का संग्रह करने और उन समाचारों को टाइम्स में प्रकाशित करने के कार्य पर मेरी नियुक्ति थी। कभी कभी मैनेजर को भी प्रसङ्गानुसार मैं सहायता देता था, इसलिए सप्ताह में दो तीन दिन लगभग रात रात भर आफिस में रहना पड़ता था।

"एक दिन मुझे एक संवाददाता द्वारा यह संवाद मिला कि एक वैज्ञानिक विद्वान आस्ट्रेलिया से भारत में आया है और यहां के 'ताजमहल होटल' में ठहरा है। मैं उससे मिलने के लिए अपने एक मित्र को साथ लेकर उक्त होटल में गया। मुझे उस वैज्ञानिक का नाम तथा वह 'होटल के किस कमरे में ठहरा है' आदि कुछ नहीं मालूम था न होटल के व्यवस्थापक से उसका ठीक ठीक पता ही मिला। अतएव कमरे के द्वार पर जैसे अनेक मनुष्य अपने नाम का साइन बोर्ड लगाते हैं, वैसे ही इस वैज्ञानिक विद्वान् ने भी कदाचित अपने कमरे के द्वार पर लगाया हो और उससे शायद उस विद्वान् का पता लग जाय तो लग जाय" ऐसा अनुमान कर हम लोगों ने यह निश्चय किया कि होटल का आधा भाग मैं देखूं और आधा भाग मेरे मित्र देखें।"

इस प्रकार निश्चयकर हम दोनों मित्र उस वैज्ञानिक पुरुष के अनुसन्धान में लगे। मैं अनुसन्धान करता हुआ होटल के चौथे मंज़िल तक चला गया और उस मंज़िल के कमरों में उसका अनुसन्धान करने लगा। अभी उस मंज़िल के दो एक कमरे ही देखने पाया था कि मेरा मित्र मुझे ढूंढ़ता हुआ मेरे निकट अत्यन्त वेग से आया और कहने लगा "भाई! ज़रा मेरे मुख की ओर तो ध्यानपूर्वक देखो! मुझे कुछ होगया है या मेरी मिथ्या भ्रान्ति है? भला मेरी आखें तो देखो और कहो कि ये ठीक हैं या नहीं?"

दीनानाथ पहले ही से मसखरा था। उसे इस प्रकार असंगत प्रलाप करते देख मैंने समझा कि वह दिल्लगी कर रहा है। अतएव मैंने उसकी बातों पर कुछ ध्यान नहीं दिया। जब वह बार बार मुझसे कहने लगा तब मैंने उससे कहा "दीनानाथ! तुम्हारा यह स्वभाव यहां भी नहीं गया? जिस कार्य के लिये यहां आये हैं वह कार्य पहले कर लो, पीछे हास्य-विनोद तो है ही।"

इस पर दीनानाथ ने कुछ चिढ़कर कहा—"एक बार जो झूठा या दिल्लगीबाज़ ठहर गया फिर चाहे वह सत्य अथवा गम्भीर बात भी कहे तो पहले वह दिल्लगी ही समझी जायगी! भैया! मैं दिल्लगी नहीं करता सत्य कहता हूं। ज़रा परमेश्वर के लिए कहो मेरी आँखों में कुछ फर्क तो नहीं पड़ गया?"

अब मैंने जाना कि दीनानाथ हँसी नहीं करता किन्तु सच्चे अन्तःकरण से बोल रहा है। अतएव उसके मुंह की ओर क्षणभर स्थिर दृष्टि से देखकर मैंने कहा "तुम्हें कुछ नहीं हुआ और तुम्हारे नेत्र भी मुझे पहले के समान ही दीखते हैं।"

मेरी इस प्रकार बात सुनकर दीनानाथ ने शान्त होकर कहा, "अच्छा तो मेरे साथ इकी-

सर्व नम्बर वाले कमरे की ओर चलो और ज़रा उसमें देखने का कष्ट करो। वहां मैंने जो देखा यदि आप भी वही देखेंगे तो मैं मानूंगा कि मुझे कुछ नहीं हुआ और न मेरी आँखों में कुछ फर्क पड़ा पर देखना एकदम कमरे के भीतर न चले जाना। कमरे का किवाड़ ज़रा अधखुला रह गया है, उसी में से देख लेना आप ही सब हाल मालूम हो जायगा।"

मैंने कहा, "अच्छा चलो मैं चलता हूं किन्तु कुछ कहोगे भी कि तुम ने उसमें क्या देखा?"

इस पर दीनानाथ ने ज़रा हँस कर कहा— "एक आदमी ने नाऊ से कहा नाऊ! मेरे सिर में कितने बाल हैं? नाऊ ने कहा जरा धीरज धरो आपके आगे ही आगिरेंगे, गिन लेना! यही अपने प्रश्न का भी उत्तर समझो। कुछ दूर नहीं केवल २०-२५ कदम का फ़ासला है। चलो और प्रत्यक्ष देख लो। जो कुछ होगा आप ही स्पष्ट हो जायगा।"

मैं कुछ न कह दीनानाथ के साथ हो लिया। हम दोनों उस कमरे के पास पहुंचे। कमरे के किवाड़ अधखुले रह गये थे सही परन्तु उसमें से झाँकना असभ्यता समझ मैं रुक गया। इस पर दीनानाथ ने मुझे पीछे से ज़रा ढकेला और कहा "डरते क्यों हो ज़रा आगे बढ़कर देखो न!" मैं भी ज्यों त्यों कमरे के भीतर दृष्टि डालते हुए दरवाज़े के पास गया। वहां से कमरे के भीतर का दृश्य देखते ही स्तम्भित होगया! मैं क्या देखता हूं कि चार फुट कद का एक छोटा सा मनुष्य सामने दीवार पर दस फुट ऊंचे पर टँगे हुए एक चित्र को धरती से पाँच फुट ऊँचे हवा में बिना किसी वस्तु के सहारे अधर खड़ा हुआ देख रहा है! इस प्रकार आश्चर्यभरा दृश्य देखते ही थोड़ी देर के लिए मैं भी चकित हो खड़ा रहा! मुझे भी दीनानाथ के समान ही मेरी आँखों पर विश्वास नहीं हुआ। चित्रावलोकन में वह इतना तल्लीन था कि हमारे आने की आहट उसे बिलकुल भी ज्ञात नहीं हुई। उसकी पीठ हमारी तरफ़ थी 'किसी चीज़ पर चढ़कर वह चित्र देख रहा है या सचमुच अधर खड़े खड़े ही वह उसे देख रहा है' इस विषय का स्पष्टीकरण करने के लिए मैंने कमरे का किवाड़ ज़रा ज्यादा खोला और देखा तो मुझे स्पष्ट विदित हुआ कि 'वह किसी भी वस्तु के सहारे नहीं किन्तु वायु में अधर ही खड़ा है!' इतने में वह मनुष्य चित्र को और भी भली प्रकार देखने के लिए हवा ही में दो चार कदम पीछे हटा! अब और भी भली प्रकार स्पष्ट होगया कि उसके पैरों के नीचे कोई भी कठिन वस्तु नहीं है किन्तु जिस समय वह पीछे हटा उस समय ऐसा मालूम होता था कि वह हवा में नहीं वरन् कठिन धरती पर चल रहा है! पीछे हट कर वह अपना मस्तक दाएँ बाएँ, आगे पीछे कर चित्र को देखने लगा। मुझे विश्वास हो गया कि यह मेरा भ्रम नहीं; किन्तु हवा में चलने की सामर्थ्य रखनेवाला कोई जीता जागता मनुष्य ही इस कमरे में है और वह कुछ नाटा होने के कारण धरती पर से चित्र बराबर न देख सकने से अपनी सामर्थ्य से अधर हवा में चढ़कर उसे देख रहा है।

इस प्रकार निश्चय कर मैं जहां दीनानाथ खड़ा था वहां आया और उससे कहने लगा, "दीनानाथ! तुम ने जो देखा है वह सत्य है। मुझे भी तुम्हारे समान ही विदित होता है।"

हम पूरी बातें करने भी नहीं पाये कि इतने में उसी कमरे से एक पुरुष निकला और जहां हम खड़े थे उसी के सामने की ओर जहां कि लिफ्ट* (Lift) थी वहां गया। लिफ्ट नीचे उतरी हुई देख, वह कुछ भी विचार न कर

* ऊँचे मंज़िलों पर उतरने व चढ़ने का एक प्रकार के हिण्डे का झूला।

पास ही एक खिड़की थी वहां गया और तत्काल अदृश्य होगया ! यह देख दीनानाथ एकदम चिल्ला उठा और उस मनुष्य को खिड़की से नीचे गिरा हुआ समझ उस खिड़की के पास दौड़ा हुआ गया। मैं भी उसके पीछे हो लिया। हम दोनों ने खिड़की से झांक कर नीचे देखा; किन्तु वह कहीं भी दिखाई नहीं दिया। इतने में लिफ्ट ऊपर आई। हम चौथे मंज़िल पर थे, यह मंजिल बहुत ऊंचा होने से धरती पर के मनुष्य स्पष्ट दिखाई नहीं पड़ते थे। इसलिए उस मनुष्य को नीचे उतरकर देखने की आशा से हम लिफ्ट में बैठ नीचे आये; किन्तु वह मनुष्य हमें कहीं भी नहीं दिखाई दिया। अन्त में आस पास दृष्टि डालने पर वह हमें बीच रास्ते में जाता हुआ दिखाई दिया !

दीनानाथ आश्चर्य और सन्देह भरी दृष्टि से, मेरी मुँह की ओर टकटकी लगाकर देखने लगा। सचमुच वह दृश्य आश्चर्यमय ही था और दीनानाथ के हृदय को तो अतिशय उथल पुथल कर डालनेवाला था; परन्तु मैं तो कुछ काल से निगूढ़ विद्या का अभ्यासी था। कुछ समय पूर्व ही से, मनुष्यों में गुप्त रहनेवाले सामर्थ्य-सम्बन्धी तथा ऐसे अलौकिक सामर्थ्य-सम्पन्न पुरुषों के चरित्रसम्पन्न विषयों का, (योग-विद्या और निगूढ़-विद्या के अत्यन्त उच्च-ज्ञाता अपने सद्गुरु के समागम से) मुझे बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त होगया था। तब से उपर्युक्त विद्या के विषय में मेरा मोह और भी प्रबल होने लगा था। अतएव इस समय निगूढ़ विद्या के विषय में मेरा पूर्व परिश्रम कई अंशों में सफल होता जाता था। इससे मुझे दीनानाथ के समान अपार आश्चर्य तो नहीं मालूम हुआ; किन्तु उस पुरुष की वह क्रिया, मुझे बड़ी मनोहर और सरल विदित हुई।

हम दस मिनट तक, उसके वापिस आने की आशा से, प्रतीक्षा करते वहां खड़े रहे, इतने में दीनानाथ की दृष्टि सहसा ऊपर की ओर गई। वह मेरे कंधे पर हाथ रखकर आश्चर्य से बोल उठा, "देखो ! वह चौथे मंजिल की खिड़की पर खड़ा हुआ कौन दिखाई देता है?"

मैंने तुरन्त ही ऊपर देखा। देखते ही मालूम हुआ कि वही पुरुष अपने कमरे के सामने की खिड़की में खड़ा हुआ समुद्र की ओर देख रहा है। देखते ही मैंने दीनानाथ से कहा "यह मुझे वही मनुष्य दीखता है, चलो ऊपर जाकर पुनः उसका पता लगावें।"

दीनानाथ तो तैय्यार ही था। हम दोनों पुनः 'लिफ्ट' में बैठ ऊपर गये। उसके कमरे के किवाड़ खुले थे और वह खिड़की में खड़ा खड़ा समुद्र की ओर देख रहा था। हम भी जाकर वहां पर थोड़ी देर तक खड़े रहे। इतने में वह पीछे फिरकर, हमारी ओर देख, कमरे में चला गया।

हम भी उसके पीछे पीछे उसके कमरे में गये और भीतर जाकर उससे हमने नम्रता-पूर्वक पूछा, "क्षमा करें, मैं आपको जानता नहीं परन्तु अनुमान करता हूं कि आस्ट्रेलिया से आये हुये समर्थ वैज्ञानिक आप ही हैं? मेरी इच्छा आप से मिलने की है।" उसने हाँ कह कर हम से बैठने को कहा। उसकी आज्ञानुसार हम उसके सांकेतिक स्थान पर जा बैठे (ईश्वरराव के और मेरे पूर्व कथनानुसार ही वह पुरुष ज़रा बौना और कृश था।)

थोड़ी देर इधर उधर की बातें कर मैंने उससे पूछा, "आप निगूढ़ विद्या के अभ्यासी हैं या सिद्धि प्राप्त (Medium) हैं?"

मेरे इस प्रकार पूछने पर सहज ही हँस कर उसने उत्तर दिया, "महाशय ! आपके इस प्रकार प्रश्न करने की मैं आशा ही कर रहा था और आप के प्रश्न का उत्तर यही है कि, "हां और नहीं; परन्तु इस विषय में [illegible] के पूछताछ करने का कारण ?"

इसके उत्तर में मैंने और दीनानाथ ने जो देखा था उससे कह सुनाया। इसपर उसने कहा :—

"यह मैं जानता हूं कि आप भी जीवन की गुप्त विद्या के प्रेमी और अभ्यासी हैं और इस विद्या में आपका जितना प्रवेश हुआ है वह भी मैं जानता हूं। अतएव इस विद्या के नियमानुसार जिस समय जो कुछ जानने योग्य होगा वह आप को विदित होता ही रहेगा और ऐसा अनुमान होता है कि आपके उपर्युक्त ज्ञान की वृद्धि में मैं निमित्त रूप होऊं। परन्तु यह बात ध्यान में रखिये कि मैं आपको केवल निमित्त रूप होने को कहता हूं। कारण कि मैं अथवा कोई निमित्त-रूप तथा साधन-रूप हो सकता है। जीवन के प्रत्येक रहस्य में ऐसा ही होता है। यह विद्या कोई सिखला नहीं सकता और यदि कोई किसी को सिखलाना भी चाहे तो सीखनेवाला अन्य से सरलतापूर्वक ग्रहण भी नहीं कर सकता। यही इस विद्या की अलौकिकता है अद्भुत सामर्थ्य को प्रगट करने वाले जो जो रहस्य हैं उन रहस्यों का अयोग्य मनुष्यों द्वारा रक्षण हो सकता है; किन्तु इसका वास्तविक ज्ञान कोई अत्यन्त योग्य बिरले मनुष्य को ही प्राप्त होता है। अतएव इस समय इन रहस्यों पर इसके रक्षक रूप का सत्ता हो रही है और वह इनकी रक्षा के लिए सदा सावधान रहता है। यही कारण है कि इस दिव्य विद्या का सच्चा रहस्य अभीतक किसी अयोग्य पुरुष को प्राप्त नहीं हुआ। विशेष आश्चर्य की बात तो यह है कि किसी को यदि इसका कुछ वास्तविक ज्ञान प्राप्त हुआ और उसने उस ज्ञान का दुरुपयोग करने का विचार किया कि तत्काल ही उस ज्ञान की रक्षकसत्ता उसे उसका रहस्य भुला देती है, और पुनः उतनी योग्यता प्राप्त होने तक, किसी भी प्रकार से उसे वह ज्ञान प्राप्त नहीं होने देती। मेरे इतने कहने का कारण यही है कि ईश्वरानुग्रह से और उसीके मूल संकल्प से तुम्हें किसी भी समय कोई अद्भुत ज्ञान की प्राप्ति हो, तो उसे अत्यन्त गुप्त रखना। मनुष्य को, जीवन के किसी रहस्य का ज्ञान प्राप्त करने में किसी अन्य बल की जब पँचगुनी आवश्यकता होती है तब उसके गुप्त रखने में उसे २५ गुना अधिक बल लगाने की भी ज़रूरत होती है। साथ ही जब कभी तुम्हें कुछ भी ज्ञान प्राप्त हो, तो उसका, किसी समय भी, दुरुपयोग न करना। इस उपर्युक्त सूचना के पश्चात् मुझे तुम्हें जो कुछ उपर्युक्त विद्या के विषय में कहना है कहता हूं :—

"मैं एक प्रवासी हूं। मैंने पृथ्वी भर में प्रवास किया है और ईश्वर के अनुग्रह से जीवन के जो कुछ रहस्य हैं उनका मुझे कुछ प्रबोध भी हुआ है। इसे यदि तुम्हारे ही शब्दों में कहूं तो 'निगूढ़ विद्या के जो कुछ तत्व हैं, उन्हीं की मुझे कुछ प्राप्ति हुई है।' इस प्रवास के अन्त में मुझे विदित हुआ कि जगत में बहुत ही थोड़े मनुष्यों को इस तत्व का वास्तविक ज्ञान होता है। मैं स्वयं ही अपने को दृष्टान्तरूप मानता हूं। मुझ में रही हुई कोई अयोग्य सत्ता ही मेरी नियामक है और उसीसे मुझ में ज्ञान की प्रतीति होती है। दूसरे जिसे चमत्कार रूप कहते हैं, उस प्रकार के प्रयोग के नियमों का उपयोग भी मैं इसी के द्वारा कर सकता हूं अर्थात् जो कुछ मुझ में तुम्हें चमत्कार विदित होता है उसका कारणरूप मुझ में रहनेवाली इस नियामक सत्ता ही को समझो।"

उसके ये सब विचार अपने आर्यशास्त्र से मिलते हुए देख मैंने उससे पूछा, "आपने यह ज्ञान भारतवर्ष ही में प्राप्त किया है या आपको किसी योगी, महात्मा अथवा सत्पुरुष के समागम अथवा स्वानुभव से प्राप्त हुआ है?"

इसके उत्तर में उसने कहा, "तुम्हारे इस प्रश्न का उत्तर भी फिर से 'हां और नहीं' ही है। पाश्चात्य देशों में भी मैं गया हूं और वहां

के ज्ञाता पुरुषों को भी मैंने देखा है । उनके विषय में इतना ही कहना बस होगा कि वे 'अध जल गगरी' के समान छल कपट ही करते हैं। वे जो चमत्कार दर्शाने का प्रयत्न करते हैं, उसकी अपेक्षा वस्तुतः उनमें बहुत ही थोड़ी सामर्थ्य होती है। उसी प्रकार तुम्हारे देश के जिन जिन पुरुषों का मुझे अनुभव हुआ है उनमें कुछ तो जिनमें विशेष महत्व नहीं है, छोटी छोटी बातों को भी छिपा छिपा कर रखने का प्रयत्न करते हुए मैंने देखे हैं। शेष देशों के जिन यथार्थ सामर्थ्यसम्पन्न पुरुषों को मैंने देखा है उनकी ज्ञान सम्बन्धी प्रवृत्ति में मुझे कोई भेद नहीं ज्ञात हुआ। इसका कारण यही है कि सर्व सम्प्रदाय के शास्त्र एक ही 'सत्य' का प्रतिपादन करते हैं । उसमें भेद इतना ही है कि उसका वर्णन वे अनेक प्रकार के रूपों से करते हैं। यही उनकी अलौकिकता है। अतएव इस समय इस विषय का विस्तार करना अनुपयुक्त है। केवल इतनाही जानना काफ़ी है कि प्रत्येक मनुष्य परमात्मा का समान अनुग्रहपात्र है और सबको अधिकार प्राप्त होते ही वास्तविक ज्ञान प्राप्त होता है । उसका निमित्तरूप होनेवाला पुरुष किसी भी देश का हो सकता है; किन्तु अन्त में वह निमित्तरूप ही है। ज्ञान प्राप्त करने की वस्तु तो सब की एक ही है।

"तुम बस प्रकाश को पाने के योग्य हुए हो यह मैं जानता हूं और इसीलिए यहां मेरा आना भी हुआ है। मैंने जो कुछ क्रियाएँ की हैं, वे तुम ने देखी हैं । ये सब इसीलिए की भी गईं थीं नहीं तो इस प्रकार सत्ताधारी पुरुष अपना प्रयोग करने में निरन्तर अत्यन्त सावधान होते हैं। जो तुम यह मानने लग गये हो कि 'मनुष्यों में इस प्रकार की सामर्थ्य है' तो और देखो आओ, इस खिड़की द्वारा मैं वायु में पदसंचालन करता हुआ पृथ्वी पर उतरता हूं।"

इतना कह वह तुरन्त ही उठा और मुझे भी उसने उठने का संकेत किया। मैंने दीनानाथ की ओर देखा तो मुझे मालुम हुआ कि उसका हृदय अत्यन्त वेग से धड़क रहा है, उसका मुख पीला पड़ गया है, उसके नेत्र स्थिर हैं और वह घबड़ाया हुआ मालूम होता है! उसे संकेत द्वारा सचेत रहने की सूचना दे, मैं उठकर खिड़की के पास गया। खिड़की बड़ी थी उसके कांच के किवाड़ बराबर खोलकर वह उसकी देहली पर खड़ा हुआ था। इस समय मुझे भी थोड़ी कँपकँपी छूटने लगी । खिड़की इतने ऊँचे पर थी कि उसके द्वारा धरती की ओर देखते ही हृदय दहल जाता था । मैंने सोचा कि कदाचित् यह मनुष्य विक्षिप्त होगा। यहां से यह कूदेगा और नीचे गिरते ही यदि इसका प्राण निकल जायगा तो हमारी क्या दशा होगी? परन्तु तुरन्त ही मैं अपनी इस अश्रद्धा पर हसा और उसकी ओर देखा तो वह दृष्टि के कुछ विलक्षण भावपूर्वक उच्च आकाश की ओर देख रहा है । सहसा एक प्रकार के आवेग से मैं उसे पुकारना एवं पकड़ना ही चाहता था कि वह बिजली की तरह एकदम छिप गया! मैंने खिड़की द्वारा झांककर नीचे मार्ग की ओर देखा; किन्तु वह कहीं भी दिखाई नहीं दिया। मैं एकदम नीचे उतरा और निर्बलतावश इधर उधर उसका अनुसन्धान करने लगा; किन्तु कहीं भी उसका चिह्न तक न दीख पड़ा।

हम लौट आए। वह फिर न लौटा। दिन पर दिन बीतने लगे। हम ने उसे अनेक जगह तलाश किया, पत्रों में भी उसके विषय में लिखा, किन्तु किसी प्रकार से भी उसका पता न लगा। किसी भी स्थान में उसके विषय में कुछ सुनाई न दिया—उसका निशान भी दिखाई न दिया।

इस घटना को बीते आज एक वर्ष होगया। पुनः उसी दिन ठीक उसी तारीख़ को, रात को

मैं अपने घर में गद्दी पर पड़े पड़े कुछ विचार कर रहा था। ठीक मेरे सामने एक खिड़की थी। मैं उठा और खिड़की के पास आ इधर उधर देखने लगा। उस समय मुझे पिछली घटना का स्मरण हो आया और उस समय का सम्पूर्ण चित्र, वह कमरा, वह बात चीत, वह हाव भाव वह खिड़की—यह सभी कुछ मेरी आंखों के सामने आने लगा।

मैं क्या देखता हूं कि उस खिड़की के सामने वही पुरुष खड़ा हुआ मेरी ओर देख रहा है और मुझे देखते ही वह उछल कर खिड़की द्वारा मेरे कमरे में घुस आया! तथा जब उसने निम्नलिखित वृत्तान्त कहा तब तो मेरे आश्चर्य की सीमा ही नहीं रही!

"क्यों कैसी घटना घटित हुई? अपना निर्धारित किया हुआ छोटा सा प्रयोग जिस प्रकार मैंने करना आरम्भ किया उसकी अपेक्षा वह किसी दूसरे ही प्रकार से सिद्ध हुआ। मुझे विदित होता है कि इसके कारण तुम्हीं हो। जिस समय मैं अपने आन्दोलन की गति को तीव्र कर रहा था, उस समय मुझे सहसा पुकारने और रोक रखने को तुम्हारी प्रबल इच्छा और साथ ही उसी समय तुम्हारे हृदय में उत्पन्न हुआ भय, इन दोनों ने मेरे चलते हुए आन्दोलन में किसी समय मेरे अनुभव में न आई हुई एक ऐसी विलक्षण गति प्रगट की जिससे पृथ्वी पर उतरने के बदले मैं उससे दूर जा गिरा!"

इस पर मैंने ज़रा हंस कर कहा "परमेश्वर के लिये स्वस्थ होकर इस रहस्य को स्पष्ट करने की कृपा तो कीजिये। भला एक वर्ष तक आप रहे कहां?"

उसने कहा—"मैंने तुम से अभी कहा उसी प्रकार हुआ; मैं पृथ्वी से दूर जाकर गिरा! परन्तु इस प्रकार मुझे दूर गिरे आज कितना समय हुआ?"

मैंने उत्तर दिया—"पूरा एक वर्ष।"

इस पर उसने चकित होकर कहा, "क्या एक वर्ष? चाहे जितना समय हुआ हो परन्तु मुझे तो कुछ भी मालूम न हुआ—मुझे तो केवल कुछ ही क्षण का समय मालूम हुआ! तुम्हें स्मरण ही होगा कि जिसमें रात और दिन विदित होना है, ऋतु आदि प्रगट होकर जिसे हम लोग समय कहते हैं और जिनकी गणना होती है, इन सब के साथ जब हम पृथ्वी का त्याग करते हैं तब फिर काल अथवा समय ऐसी कोई वस्तु रह ही नहीं जाती। इस पृथ्वीलोक के व्यवहार के लिये ही समय आदि वस्तुओं की कल्पना कर ली गई है। वस्तुतः समय अथवा काल आदि कुछ नहीं हैं।"

"तो क्या सचमुच आप इस पृथ्वीलोक से कहीं किसी अन्य लोक में जाकर गिरे थे?" मैंने कुछ अधिक चकित होकर पूछा।

इस पर उसने उत्तर दिया कि "मैं सत्य ही कहता हूं और विज्ञान भी इस बात को सिद्ध करता है। सुनो एक वर्ष पूर्व जिस समय मैं खिड़की द्वारा निकला, उस समय मेरी दृष्टि एक चमकते हुए नक्षत्र (तारे) पर लग रही थी और मैं उसी का विचार कर रहा था। मैं आन्दोलन की गति को तीव्र कर रहा था, इतने में तुम आवेशमय हो गये और मुझे पकड़ लेने को तुम्हारी प्रवृत्ति हुई। तुम्हारे चंगुल से छूट जाने के लिये मुझे आकाशस्थ उच्चप्रदेश में आन्दोलन करना पड़ा। उस सम्बन्ध में ज्यों हीं मैंने सङ्कल्प किया, त्योंही तुरन्त मैं किसी दूसरी सृष्टि के सुन्दर लोक में जाकर गिरा अर्थात् मैं इस पृथ्वी से दूर जाकर गिरा और किसी अन्य लोक में मैंने प्रवेश किया। इतना होते भी ये सब नियमानुसार होने के लिये जिस समय मैं तुम्हें लाभ पहुंचाने का यत्न कर रहा था, उसी समय एक असाधारण और अत्यन्त महत्व का लाभ मुझे भी प्राप्त हो गया।

"यह घटना केवल आश्चर्यजनक थी उसे किसी अन्य प्रसङ्ग पर मैं तुम्हें कहूंगा। परन्तु, मैं पृथ्वी से दूर जाकर गिरा और पुनः इस पृथ्वी पर लौट आया, यह विषय इस समय सिद्ध करके नहीं बताया जा सकता; किन्तु इस समय तुम्हें मैं कुछ कहता हूं, और अनुमान करता हूं कि वह उसके लिये पूर्ण प्रमाण स्वरूप है।

"दूसरे अनेक विषयों के साथ ही उस दूर के लोक में एक इस प्रकार की घटना हुई। वह यह कि जिसे हम विद्यालय (College) कह सकते हैं, ऐसे वहां के एक प्रशस्त स्थान में मैं गया और जिसे तुम 'देव' संज्ञा दे सको, ऐसा एक दिव्य व्यक्ति तत्काल वहां पर, वैसे ही दूसरे अनेक व्यक्तियों को कुछ प्रबोध न करता हुआ मुझे विदित हुआ।

"उस देव की दिव्यता और सुन्दरता जो मैंने देखी उसका और जिसे मैं विद्यालय कहता हूं उस अलौकिक स्थान का सविस्तर वर्णन कर मैं तुम्हें आश्चर्यचकित करना चाहता हूं किन्तु उसकी प्रशंसा के लिये उपयुक्त शब्द नहीं मिलते। उसका स्वरूप वाणी से भी बाहर है। तो भी, आगे मैं जो कुछ कहूंगा उस से तुम उसका थोड़ा बहुत अनुमान करलो।

"उस दैवी व्यक्ति ने अपने श्रोताओं से कहा जीवन के परम केन्द्रस्थान में से जब कोई वस्तु इस अण्डकटाह रूप अस्तित्व में आती है तब से अमुक गोलक में अमुक प्रकार से प्रवर्तित जीवन का इतिहास तो हमने जान लिया है। अब एक ऐसे लोक को ले लीजिये जिस पर शरीर अथवा मनुष्य निवास करते हैं। वहां पर निवास करनेवाले अपने अनुभव स्वयं अपना ही विकास करना आरम्भ करते हुए विदित होते हैं। यह सूचित करने का हेतु यही है कि, तुमने कितना विशेष विकास प्राप्त किया है ? यह तुम्हें विदित हो जाय। अब हमें इस प्रकार के आन्दोलन को ग्रहण करना चाहिए कि जिसे ये लोग सूर्य-गोलक कहते हैं उसके भीतर वाले भू नामक लोक के सम्बन्ध में आवें और हम उसके भी आगे जिसकी तुम इच्छा करते हो उस विकास काल को देख और जान लें।"

"जिस समय मैंने 'भूलोक' शब्द श्रवण किया उस समय मेरे मन में दो इच्छाएं प्रगट होती हुई मालूम पड़ीं। जिसमें एक प्रबल विचार यह उत्पन्न हुआ कि मैं पुनः भूलोक में लौट जाऊं और दूसरा अत्यन्त दुर्बल विचार यह हुआ कि मुझे इन लोगों का इतिहास जान लेना चाहिये। अतएव जिस समय उक्त महा-पुरुष ने जो इस लोक से सम्बन्ध रखनेवाले आन्दोलन को हम में प्रसार करना आरम्भ किया कि तत्काल उस दूरस्थ अगम्य सदृश लोक को मैं त्याग रहा हूं ऐसा मुझे विदित हुआ। और उसके साथ ही मैं उसी समय अनेक अद्भुत एवं अवर्ण्य चित्रों को देखते हुए चला। विज्ञान शास्त्र कहता है कि प्रकाश का आन्दोलन एक क्षण में १८६,४०५ मील के प्रमाण से गति करता है। जब कि यही अपनी कल्पना के बाहर की बात है तब विचार की गति के साथ उसी की तुलना करें तो उसकी गति केवल अन्धपरम्परा के समान ही है। यदि विचार की गति गरुड़ के समान मानें तो प्रकाश की गति चींटी के समान माननी चाहिये।"

"हम को यह बताया गया है कि कितने ही तारे अथवा लोकों (नक्षत्रों) का प्रकाश आकाश में हज़ारों वर्षों से निकल चुका है तो भी अभी अभी वह पृथ्वी पर आने की सन्धि में है। उसी प्रकार यह भी बताया गया है कि प्रत्येक विचार, प्रत्येक शब्द तथा प्रत्येक क्रिया जिस प्रकार ध्वनि प्रसरित करती है, उसी प्रकार प्रकाश में चित्रचित्राङ्कित होकर वह भी प्रसरित होता है और सर्वदा यह उसकी किरणों

द्वारा जहां तहां गति करता है। यदि मैं उस दूर के लोक में रह जाता, तो जो कुछ वृत्तान्त मैंने वहां से आते हुए देखा उसे देखने के लिए मुझे सैकड़ों वर्षों की ज़रूरत पड़ती। सच कहा जाय तो जो कुछ मैंने देखा उसका थोड़ा सा भाग भी सैकड़ों वर्ष बीतने पर भी तुम नहीं देख सकोगे। किन्तु ऊपर कहे अनुसार वहां तो समय कोई वस्तु ही नहीं है।"

"अतएव ज्यों ज्यों मैं अवकाश Space में से इस पृथ्वी की ओर आता गया, त्यों त्यों मैंने उसका वृत्तान्त देखा। किसी समय वह हर आदमी को दिखाई देगा।"

"प्रथम तो सब कुछ मुझे नवीन मालुम हुआ। इस पृथ्वी पर की किसी भी वस्तु को दृष्टान्त रूप देकर उसका स्वरूप नहीं दर्शाया जा सकता। अन्त में मैंने पूर्व के इतिहास के अनेक चित्र देखे। वे मुझे कुछ कुछ समझ में आने लगे, उन चित्रों को मैं कुछ कुछ समझ सका। तुम्हारे देश का गत महाभारत का युद्ध, अद्भुत द्वारिका आदि, एवं पाश्चात्य प्रजा के धर्म-युद्ध Crusade के चित्र मुझे दिखाई दिये। एक वर्ष पूर्व की घटनाओं का चित्र भी इस वातावरण के भीतर मुझे दिखाई दिया। पश्चात् मुझे अदृश्य होना था वह भी अन्त में मुझे दिखाई दिया। तत्पश्चात् इस खिड़की द्वारा मैं यहां आकर खड़ा हुआ।"

ईश्वरराय! इतना कहकर अन्त में उसने कहा कि "तुम प्रकाश, विचारद्योतन, इच्छा-शक्ति आन्दोलन तथा वर्णोच्चार के विश्व में प्रवर्तित नियमों को जानते हो, और तुम यह भी जानते हो कि यह विज्ञान शास्त्र से सिद्ध है। परमात्मा तुम्हारा कल्याण करे।"*

हा! गोखले।

[लेखिका—श्रीमती तोरन देवी (लली)।]

फूट गई भाग आज भारत बसुन्धरा की।
नित्त नव विचार निज उन्नति को छूटिगो॥
छूटि गई आश हाय उच्च अधिकारन की।
बाइस स्वरूप वो विशाल थंभ टूटिगो॥
बैरी काल तूने क्रूरता को करि दीन्हों अन्त।
साथहि कपार हाय तेरहु न फूटिगो॥
माननीय गोखले बिराजे देवलोक हाय।
भारत अभागे आज तेरो लाल लूटिगो॥ १॥

भारतनिवासि ही न भारत अकेल नहीं।
गोखले बियोग सर्व जग थहरागो॥
कैसी बज्र हृदया बनी थी तू बसुन्धरा।
हा! गोखले सपूत तेरी गोद में हेरायगो॥ २॥

डारि शोक सागर के बीच दीन भारत को।
देव लोक जाय हाय गोखले जु बसिगे॥
रंचहू न दीन्ह ध्यान हाय निज प्यारेन पै।
तिन के वियोग केहि भांति वे तरसिगे॥
सांच मानियेगा माननीय रावरे के बिन।
बाइस करोर आज हियरे झरसिगे॥
संवत इकहत्तर अभाग तेरी, फागुन में।
बरस्यो न रंग हाय अँसुआ बरसिगे॥ ३॥

जानि परती है ये असारता जगत ही की।
मृत्यु पापिनी को हा प्रताप दरशायगो॥
कौन गिनती है आज लाखन करोरन के।
उन्नत करेजेन पै बज्र भहरायगो॥

---

* गुजराती "महाकाल" नामक मासिक पत्र से स्वतंत्र रूप से अनुवादित।—अनुवादक।

लोकनायक के रूप में शिवाजी ।

[लेखक—तरुण भारत ।]

१—शिवाजी सम्बन्धी मर्यादा की पिछली संख्याओं में प्रकाशित दो लेखों से पाठकों की यह धारणा हो जाने का डर है कि हमने परिस्थिति को ही सब महत्व दे डाला है और शिवाजी के लिए कुछ बाकी न रक्खा तौ भी हम शिवाजी की योग्यता पर लेख लिखने का संकल्प कर रहे हैं। हम अपने पाठकों को इस विषय में सावधान करते आये हैं, तथापि हमारा डर झूंठा नहीं है, यह हमें मालूम है इसलिए आगे अब इस शंका को दूर करने का प्रयत्न किया जाता है।

इतिहास के निर्माण में व्यक्ति और प्रवृत्ति का महत्व कितना है यह निश्चय करना बड़ी कठिन बात है। एक पक्ष व्यक्ति को सारा महत्व देता है और यहां तक कहने का साहस करता है कि दुनिया का इतिहास महापुरुषों के चरित्र के सिवा और कुछ नहीं है।* दूसरा पक्ष कहता है कि मनुष्य जाति के दैवसूत्र कुछ ऐसे नियमों से नियमित हैं जो कभी नहीं बदले जा सकते, और जो हम स्पष्टतया जान सकते हैं। इस पक्ष का कहना है कि मनुष्य जाति के कार्यों की दशा निश्चित करने में व्यक्ति का कोई महत्व नहीं है। महापुरुष भी जिस परिस्थिति में रहते हैं, उस परिस्थिति के वे केवल बच्चे मात्र हैं। हमारे दैवसूत्रों को बदलने की उनमें कोई शक्ति नहीं† रहती। शिवाजी के पूर्व चरित्रकार नितांत पहले पक्ष के हैं। इसके दो तीन कारण हैं। एक तो इतिहासलेखन की शैली बदलती आरही है। कहीं का भी प्राचीन इतिहास-ग्रंथ उठाइये, आप उसमें व्यक्ति का महत्व पायेंगे-परिस्थिति का विचार बहुत कम किंवा नहीं भी मिलेगा। दूसरा कारण यह है कि समकालीन व्यक्ति के कार्यों से उस काल के लेखकों का मन इतना दीप्त हो जाता है कि वे उस व्यक्ति का सच्चा महत्व नहीं जान सकते वे ज़रूर बढ़ाकर लिखेंगे। तीसरी बात यह है कि अपने अपने प्रिय पुरुषों का चरित्र उसके भक्त अथवा अनुयायी पक्षपात से ही लिखते हैं। उनकी दृष्टि निष्पक्षपात नहीं हो सकती। इन तीन कारणों से प्राचीन ग्रंथकारों ने सब श्रेय अथवा दोष (स्तुतिपाठक किंवा निंदक जिस प्रकार जो हो) शिवाजी को ही दे डाला है। धीरे धीरे यह स्थिति बदलती गई है, और परिस्थिति को भी महत्व मिलता गया है* और अब परिस्थिति का विचार शिवाजी के व्यक्तित्व के विचार करने के पहिले किया जाता है। परन्तु, जैसा हम ऊपर कह आये हैं यह निश्चय करना बड़ा कठिन कार्य है कि किसे कितना महत्व दिया जाय। व्यक्ति का महत्व स्पष्ट है और साधारण जनता को तुरन्त जँच जाता है। शिवाजी ने महाराष्ट्र के स्वातंत्र्य और धर्म का उद्धार किया, यह स्पष्ट है और उसे हर आदमी स्वीकार करेगा परन्तु इस कारण परिस्थिति का महत्व हम नहीं भूल सकते। ओलिव्हर क्रामवेल में सब योग्यता थी। उसके विचार ऊंचे थे, और उसने उसी प्रकार प्रयत्न किया पर उसे सफलता प्राप्त न हुई। जो बात इंगलैंड में १६४७ में सफल न हुई, वही बात १६८८ में बिना रक्तपात के फलीभूत हुई इसका क्या अर्थ है?

---

* The History of the world is the biography of great men-Carlyle.

† Buckle (History of the Civilization of England).

* यह ख्याल रखने की बात है कि Grant Duff ने भी परिस्थिति का थोड़ा बहुत विचार अवश्य किया है।

क्या इसका यह अर्थ नहीं कि क्रामवेल के कार्य के लायक परिस्थिति उत्पन्न नहीं हुई थी? १६४७ में अंगरेज़ लोगों में उस धार्मिक और राजकीय स्वतंत्रता की कल्पना भी न थी, जो क्रामवेल उन्हें देना चाहता था, और इस कारण उसका प्रयत्न सफल न हुआ! परिस्थिति परिपक्व हो जाने पर वही कार्य १६८८ में बिना रक्तपात के हो गया। एक और उदाहरण लीजिये, जान विकलिफ वही कार्य करना चाहता था, जो मार्टिन लूथर ने १५१७ में किया पर जान विकलिफ को जब भी सफलता प्राप्त न हुई पर मार्टिन लूथर ने यूरोप का ही क्या बरन सारी दुनिया का इतिहास बदल दिया! क्या इसमें परिस्थिति का महत्व नहीं दिखाई पड़ता पर ख्याल रखिये कि लूथर का महत्व इससे कम नहीं हो जाता, नहीं, इसीसे व्यक्ति का सच्चा महत्व उसकी सच्ची योग्यता दिखाई पड़ती है। परिस्थिति का विचार दो कारणों से करना ही पड़ता है। एक तो जब हम बड़े बड़े राष्ट्रीय आन्दोलनों के कारण ढूढते हैं तब व्यक्तिविषयक महत्व कम होता जाता है और परिस्थितिविषयक महत्व बढ़ता जाता है। दूसरी बात यह है कि इससे हमें ज्ञात होता है कि व्यक्तिविषयक महत्व के सिवा और कई तत्व भी ऐसे हैं जिनका हमें विचार करना आवश्यक है ताकि हम सब घटनाओं का कार्य-कारण-संबंध सरलता से समझ सकें पर जितने प्राचीन इतिहासों पर (विशेषतः यह बात हिन्दुस्थान के विषय में अधिक घटती है) हम विचार करेंगे उतना ही व्यक्तिविषयक महत्व बढ़ता दिखाई देगा क्योंकि उस काल में व्यक्ति की आकांक्षा—महत्वकांक्षा—पर राजकीय बातें निर्भर रहा करती थीं। इस कारण हमें शिवाजी की योग्यता का दिग्दर्शन दोनों दृष्टि से करना आवश्यक है। ऊपर जैसा कह चुके हैं कि यह काम बड़ा कठिन है क्योंकि दोनों की मात्रा का क्या संबंध है, यह निश्चित करना आखिर कठिन ही है। दो पहाड़ियों के बीच की घाटी में चलना है, और मार्ग टेढ़ा है। तथापि आगामी लेखों में उस मार्ग के तय करने का प्रयत्न यथाशक्ति किया जायगा।

२—शिवाजी का सब से बड़ा भारी महत्व यह है कि परिस्थिति का उन्होंने पूर्ण और योग्य उपयोग किया। उस काल के लोगों की जो इच्छा थी वही उनकी इच्छा थी; उस काल के लोगों का जो ध्येय था वही उनका ध्येय था; उस काल के लोगों की जो महत्वाकांक्षा थी वही उनकी महत्वाकांक्षा थी; उस काल के लोगों का जो सुख दुःख था वही उनका सुख दुःख था; उस काल के लोगों की जो स्फूर्ति थी वही उनकी स्फूर्ति थी; सारांश, वे अपने काल की परिस्थिति के मूर्तिमंत स्वरूप थे। इतना होने पर भी वे अपने काल को पहिचान सकते थे उन्हें मालूम था कि इस कार्य में ये लोग साथ देंगे, और उनका उपयोग करना हमारा कर्तव्य है। उन्हें आन्तरिक स्फूर्ति हो गई थी कि परमेश्वर ने हमें दुनिया में इसी कार्य के लिए भेजा है। उन्हें विश्वास हो गया था कि ईश्वर इसमें हमें सफलता देगा। यह प्रश्न हो सकता है कि उस परिस्थिति में रहनेवालों में से शिवाजी ही को इतनी भारी स्फूर्ति क्यों हुई? मार्टिन लूथर के समय पोप के घृणित कृत्यों को देखने और समझनेवाले क्या अन्य कोई न थे, पर विटेनबर्ग के चर्च पर पोप के विरुद्ध लेख लिखकर चिपकाने की स्फूर्ति और हिम्मत इसी महापुरुष को क्यों हुई? इस प्रश्न के उत्तर में आप यदि कह सकते हैं तो यही कहेंगे कि परिस्थिति को महत्व है ही, पर उसके उपयोग करने का महत्व व्यक्ति को है. यही उत्तर शिवाजी के लिए भी उपयुक्त है। इसी प्रश्न का एक पहलू और है। स्फूर्ति और कार्य आरम्भ करने की हिम्मत आवश्यक है ही पर उस कार्य की सफलता के लिए अनेक उच्च गुणों की भी आवश्यकता होती है जिनके अभाव से वह

श्रेष्ठ कार्य विफल हो जाता है। इन गुणों का हम इस लेख में प्रथम विचार करेंगे। इसके सिवा यह ख्याल रखने के लायक है कि शिवाजी एक ऐसे अद्वितीय व्यक्ति थे कि उनके साथ किसी ने विश्वासघात नहीं किया। उनकी नौकरी में सब जाति और सब कौम के लोग (मुसलमानों को मिलाकर) शामिल थे। यह महत्व बहुत थोड़े महापुरुषों को प्राप्त हुआ है। क्रामवेल, लुथर इत्यादि महापुरुषों को सदा विश्वासघात का डर बना रहता था पर इस पुरुष को न ऐसा डर था और न उसके आदमियों में से किसी ने ऐसा प्रयत्न किया था। इस बात से यह विचार उत्पन्न होता है कि ऐसे कौन इस पुरुष में अद्वितीय गुण थे जिनके कारण लोग उसके सदा विश्वासपात्र बने रहे?

३—सफलता प्राप्त करने के लिए लोकनायक में प्रथम गुण जो चाहिये वह सुन्दर शील है। शीलरहित लोग भले ही धोखेबाजी से चार दिन धूमधाम कर लें पर जीवन में उन्हें सफलता नहीं प्राप्त हो सकती। किसी भी क्षेत्र में जाइये, सुन्दर शील सफलता की नींव दिखाई पड़ेगा। जबतक अनुयायी यह न जान लें कि जिसका हुक्म हम मानते हैं, वह सब दुर्गुणों से रहित है तबतक वे निर्भय हो विश्वासपूर्वक उसका हुक्म न मानेंगे। यदि उन्हें थोड़ी भी शंका हो कि उनका नायक किसी प्रकार उन्हें धोखा देता है तो वे भी इसी प्रकार उससे बर्ताव करने लगेंगे। किसी भी लोकनायक को लेलीजिये, उसमें नाना गुणों का संघ अवश्य मिलेगा। हैदरअली में कुछ दुर्गुण अवश्य थे, पर उसके गुण ही श्रेष्ठ थे और इस कारण ही थोड़े दिनों के लिए राजा बन बैठने की सफलता उसे प्राप्त हुई। बाबर को शराब की आदत थी, पर फतेहपूर सीकरी में पहले जब उसे हार खानी पड़ी तो उसने तुरन्त शराब छोड़ दी। अकबर में कुछ दुर्गुण अवश्य थे पर जिस समय कार्य आ पड़ता था, उस समय वे दुर्गुण उसके आधीन हो जाते थे; वह उनके आधीन नहीं रहता था। जो अपना शील खो देता है, उसके हाथ से कोई महान् कार्य नहीं हो सकता और उसका कृत्य दीर्घस्थायी न होगा। शिवाजी के विषय में इतना ही लिखना बस है कि उनमें किसी प्रकार का व्यसन न था। उनकी फौज में सख़्त नियम था कि स्त्री बालक और दुर्बल पुरुष को किसी प्रकार न छेड़ा जाय। इस नियम को तोड़ने पर प्राणदंड तक भी हो सकता था। एकबार एक सरदार ने एक यवन स्त्री पकड़ ली। सुन्दरी रहने के कारण उसे वह शिवाजी के पास ले आया। उसे छत्रपति ने इतने ज़ोर से धिक्कार दी कि उसने फिर ऐसा काम कभी नहीं किया। शिवाजी अत्यन्त धार्मिक थे यह हम बतला ही आये हैं। उन्होंने कई बार रामदास स्वामी को अपना राज्य प्रदान कर दिया था। इससे ही ज्ञात होता है कि वे निःस्वार्थ होकर स्वराज्य का उद्धार करने को तत्पर हुए थे। उन्हें अपना निज का कोई खयाल न था, यह उनके अनेक कृत्यों और भाषणों से स्पष्ट है। निर्व्यसन, निःस्वार्थ, महत्वाकांक्षाहीन, दयालु, सत्यनिष्ठ, धार्मिक और पापभीरु होने से पुरुष लोकनायक हो सकता है और ये सब गुण शिवाजी में मौजूद थे। उनके अनेक शत्रु थे पर किसी ने यह नहीं लिखा है कि उनमें इस प्रकार का कुछ भी दोष था। लूट करते समय उनका सख़्त हुक्म था कि किसी को किसी प्रकार की शारीरिक व्यथा न पहुंचाई जाय, ग़रीबों के, दुर्बलों के, बालकों के, स्त्रियों के तो वे त्राता और संरक्षक ही थे। इस कारण ये लोग उन्हें देवता के समान मानते थे। दूसरी बात यह ख्याल रखने लायक है कि जिसे राष्ट्रीय कर्तव्य करना है और राष्ट्र को उस कर्तव्य में लगा देना है उसमें किसी प्रकार का दोष रहने से उनका कार्य उतना ही लँगड़ा हो जाता है। वह जोश, वह प्रेम जो सच्चे मन

से स्वार्थत्याग पूर्वक कार्य करने से उत्पन्न होता है उसका आनन्द अपूर्व है और उस कार्य को जो शक्ति प्राप्त होती है वह बहुत काल तक टिकती है। ऐसे गुण शिवाजी में न होते तो शिवाजी का स्मरणमात्र इतना बलदायक न हो जाता। शिवाजी मन के उदार थे इस कारण उनके अनुयायी सदा सन्तुष्ट रहते थे। योग्य काम पर इनाम देना वे अपना मुख्य कर्तव्य समझते थे ही पर उस पुरुष की अन्य प्रकार से वे अच्छी प्रतिष्ठा भी करते थे। उनका व्यक्तिगत जीवन सादा था इस कारण वे मित-व्ययी थे। यह मामूली बात है कि श्रेष्ठ पुरुष अपने शरीरमात्र के लिए आवश्यक से ज्यादा कभी नहीं खर्च करते। जो राष्ट्रीय कार्यों के अगुआ होते हैं वे सादे ही होते हैं और इस कारण वे लोगों के प्रिय बने रहते हैं। शिवाजी का धार्मिक स्वभाव इतना प्रज्वलित था कि उन्हें अपने शरीर का कभी ख्याल न रहता था, फिर राज्य धन वगैरः का लोभ कहां? उन्होंने श्रीसमर्थरामदास से इस झगड़े से दूर होने की कई बार इच्छा प्रगट की और प्रत्येक बार स्वामी ने उन्हें सच्चे कर्तव्य की शिक्षा दी। ऐसा धार्मिक पुरुष उच्च और उदात्त विचारों से प्रेरित, प्रज्वलित स्वदेशाभिमान से पूर्ण और धर्म सहिष्णु, जिस कार्य में हाथ डालता उस कार्य में सफलता होना कोई आश्चर्य की बात नहीं थी।

५—इन्हीं गुणों के अनुसंगी उनमें अनेक गुण थे। वे संकट से डरनेवाले न थे इतना ही नहीं संकट के समय वे स्वतः आगे होते थे। इन गुणों के बिना लोकनायक यशस्वी नहीं हो सकता। जब उसके अनुयायी देखते हैं कि वह अपना जीवन अधिक मूल्यवान समझता है और संकट में दूसरों को डालना चाहता है तो वे हिम्मत के साथ काम नहीं करते। अगुआ के आगे होने से अनुयायी पीछे पीछे दौड़ते चले आते हैं। जितने श्रेष्ठ सेनापति हुए हैं वे सब से प्रथम संकट से भेंट करने जाते हैं। इससे जोश पैदा होता है और उसीसे कार्य होता है। अकबर सेना के आगे रहता था। हुमायूं कई बार किलों की दीवारों पर सब से प्रथम चढ़ा है। औरंगज़ेब ने सामूगढ़ पर अपने हाथी के पांव बँधवा दिये और इसी कारण उसे विजय प्राप्त हुई। आरम्भ से ही शिवाजी सब कार्यों में प्रथम रहते थे और पीछे भी उन्होंने अपना यह क्रम न छोड़ा। अफजलखां से त्रस्त रहने पर भी शिवाजी स्वतः मिलने गये। शाइस्ता खां के महल में शिवाजी ही स्वतः घुसे थे। दिल्ली से अकेले वे अपने राज्य में चले आये, इससे उनका अतुल साहस प्रगट होता है। बाबर की सफलता का एक विशेष कारण यह था कि वह अपने को अपने अनुयायियों के समान ही समझता था और उनके समान सब संकट सहने को तैयार रहता था। यह गुण शिवाजी में कुछ ज्यादा ही था। अनुयायियों के आगे चलना ही नहीं वरन् कई बार उनकी सहायता के बिना उनकी जान जोखिम में न डालने की इच्छा से कई कार्य अकेले ही कर आते थे। कहते हैं कि निडर होकर मुगलों की छावनी में भेस बदलकर कई बार वे गये थे। पर इससे यह न समझना चाहिये कि वे केवल साहस-प्रिय थे। चातुर्य का उपयोग करने पर ही वे साहस का उपयोग करते थे। विशेषता यही थी कि समय पड़ने पर पीछे हटना वे जानते ही न थे।

६—इन गुणों के साथ एक अत्यन्त आव-श्यक गुण बुद्धि है। इस गुण का महत्व बड़ा भारी है और हर कार्य करने में इसकी आव-श्यकता होती है। कई बार तो इसी के जोर से सफलता प्राप्त होती है। जितने बड़े बड़े सेना-पति और धुरंधर राजनीतिज्ञ पुरुष हुए हैं वे सब इसी महान् शस्त्र के बल से अपने कार्य में सफल हुए हैं। बाबर, अकबर, औरँगजेब, शेरशाह ये सब अत्यन्त बुद्धिमान् और चतुर

हैम्पशायर के ब्रोकनहर्स्ट पार्क में हिन्दुस्थानी अस्पताल का रसोईघर।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग।

हुए हैं हमारी समझ में शिवाजी की बुद्धिमत्ता इन सब की बुद्धिमत्ता से श्रेष्ठ है क्योंकि प्रत्येक कार्य में उनका अधिकार दिखाई पड़ता है। आक्रमण करना, चालाकी से भाग जाना, न जानते ही आ खड़े होना, चालाकी से हटा देना ये सब कार्य चातुरी और बुद्धिमत्ता के हैं। ख्याल रखने की बात है कि शिवाजी का कोई कार्य विफल न हुआ। शिवाजी की किले की रचना, राजकीय व्यवस्था, लश्कर का संघटन, मुल्की व्यवस्था सब मनन करने के योग्य विषय हैं।* इन्हीं में तो श्रेष्ठता अधिक दीखती है। हम आगे दिखलावेंगे कि इनमें से आजकल के शासन में भी कई बातें सब परिस्थिति बदल जाने पर भी पाई जाती हैं। अफजल खां से भेंट होने पर वे अपनी अटल दूरदर्शिता प्रदर्शित करते हैं। उनकी दूरदर्शिता और चातुर्य की जितनी तारीफ की जाय थोड़ी है। केवल बीस साथियों को लेकर शिवाजी बरात बनाकर पूने में घुसे। वहां से साहस के साथ उसके महल में चले गये। इधर दूसरी ओर यह चालाकी की गई थी कि पाँच सौ बैल सींगों में मशालें बांधकर खड़े कर दिये थे और हुक्म दे दिया गया था कि इशारा पातेही मशालें जलाकर बैलों को हांक देना और लड़ाई के बाजे बजाने लग जाना। स्वयं शिवाजी ने शाइस्ता खां को इतना डरा दिया कि फिर पूने में ठहरने की उसकी हिम्मत न हुई। उधर दूसरी ओर जो थोड़ी सेना रख दी थी, उसने शाइस्ताखां की फौज को तीन तेरह कर डाला। शहाजी को जब आदिलशाह ने कैद किया तो बड़ी चालाकी से बिना कुछ किये ही उन्होंने पिता को छुड़ा लिया। दिल्ली के जाने के पहले किले का बन्दोबस्त करना, सब राज्य की व्यवस्था कर जाना, वहां से चालाकी से छूट जाना, चतुरता से संभाजी की रक्षा करना और मुग़ल राज्य में से सुरक्षित चले आना यह सब उनकी चतुरता और बुद्धिमत्ता का प्रदर्शक है। दिल्ली जाने में उनकी गलती थी ऐसा कई लोग समझते हैं पर जैसा हमने पहले लेख में दिखा दिया है, उनकी चतुरता और बुद्धिमत्ता ही दिखाई देती है। यहां तक कि राज्याभिषेक में भी उनकी दूरदर्शिता दिखाई देती है। राज्याभिषेक न होने से उनके कृत्य को गदर-बलवे का ही स्वरूप रहता पर राज्याभिषेक होने पर सब के मुंह बन्द होगये। शिवाजी के बनाये हुए किले आज तक विद्यमान हैं और उनकी चतुरता के प्रदर्शक हैं।

७—लोकनायक में एक यह बात और आवश्यक है कि नायक को अपने कार्य की सफलता का पूर्ण विश्वास होना चाहिये। अगर नायक को ही अपने कार्य में सफलता की आशा न हो तो अनुयायियों को कहां से हो सकती है? जितने बड़े बड़े कार्य सफल हुए हैं उन सब के नायकों को उनके विषय में पूर्ण आशा थी। क्रामवेल ने जो लड़ाई जीती है उसके बारे में उसे पहले से ही पूर्ण विश्वास रहता था कि वह जीतेगा। नेलसन हमेशा आनन्दी और आशावादी रहता था। हालैंड के स्वातन्त्र्य के लिए लड़नेवाले विलियम (दी सायलेंट) ने कभी निराशा का उद्गार नहीं निकाला। उसके पश्चात् विलियम (जो कि १६८८ में इङ्गलैंड का राजा हुआ) ने जो अपने कार्य के विषय में आशा दिखलाई वह अतुलनीय है। जब हालैंड लुई (चौदहवाँ) ले चुका था, उसकी सेना चारों ओर फैल गई थी, उच्च लोगों को अपना कहने के लिए कोई अवसर नहीं रहा था, ऐसे समय में लुई की पराधीनता वह स्वीकार करने को तैयार न था। हालैंड का स्वातन्त्र्य नष्ट हो चुका, इस प्रकार जब उसे इस महान् आक्रमणकर्ता का संदेश मिला तो उसने उत्तर भेजा कि ऐसा कभी नहीं हो सकता; निदान हालैंड के बचें खुचे बाहु में

---

* क्रमानुसार इन विषयों पर भी हमारे लेख आवेंगे।

लोग अपनी जान दे देंगे फिर हमारा स्वातन्त्र्य कैसे नष्ट होगा। और हुआ भी ऐसा ही। हालैंड का स्वतन्त्र्य प्रचंड लुई नष्ट न कर सका। इसी प्रकार जितने स्वदेश के स्वातन्त्र्य के उद्धारक हुए हैं, वे प्रचंडआशावादी हुए हैं—उनके रोम रोम में अपने कार्य की सफलता की आशा पाई जाती है। शिवाजी ने जब कार्य शुरू नहीं किया था, तब से उसे उसके विषय में पूर्ण विश्वास था कि सफलता होगी। "बुजुर्ग" लोग उसे भी कहा करते थे कि "तरुण है इस कारण इसे ऐसा मालूम होता है। चार दिन के बाद सीधा हो जायगा" पर उन्हें निराशा छू भी नहीं गई थी। उन्होंने कोई कार्य शुरू नहीं किया जिसके बारे में उन्हें पूर्ण विश्वास न रहा हो। उन्हें पूर्ण विश्वास था कि महाराष्ट्र का स्वातन्त्र्य फिर से उसे मिल जायगा और उन्होंने स्वातन्त्र्य प्राप्त करके ही छोड़ा।

६—मानसिक और नैतिक गुणों के सिवा उनमें शारीरिक गुण भी थे। कहते हैं कि शिवाजी का भाषण इतना मनोमोहक होता था कि जिससे वे बोलते वह पूरे कहने में आजाता था। अफजल खां से सन्धि का प्रश्न उठा तो उसने शिवाजी के पास अपना ब्राह्मण वकील भेजा था उसे उन्होंने अपने भाषण से ऐसा मोहित कर लिया कि वह उनका सब कहना मान गया, उस वकील के सामने जब स्वदेशोद्धार का उन्होंने प्रश्न उपस्थित किया तो वह इतना मोहित हो गया कि बोल उठा कि आपके कार्य से मैं पूर्ण सहमत हूं और मेरी पूर्ण सहानुभूति है, पर खान का निमक मैंने खाया है इसलिए मैं उसके विरुद्ध कोई काय नहीं कर सकता; तथापि मैं आपके भा विरुद्ध कोई कार्य न करूंगा। वृद्धावस्था के कारण वकील में वह जोश नहीं था जो तरुणों में होना चाहिये, नहीं तो उसका वह भी साथी हो जाता! जयसिंह से जब सुलह की बातचीत चली तो इस अति वृद्ध योद्धा को भी उसने अपने भाषणचातुर्य से मोहित कर लिया और उसने भी उनके कार्य से अपनी पूर्ण सहानुभूति प्रगट की पर जयसिंह मुसलमानों की नौकरी करते करते वृद्ध हो चुका था; अपने मान से वह कई बार हाथ धो चुका था और विजयी पक्ष में वह तुरंत मिल जाता था। इन अनेक कारणों से उसमें कोई जोश नहीं रह गया था। वृद्धों की सदा यही अवस्था होती है। वे निराशावादी, जोश रहित "जैसी बहै बयार पीठ पुनि तैसी कीजै" के अनुसार दासवृत्तिक रहा ही करते हैं पर तरुण उनके विरुद्ध होते हैं। इस कारण इनके कार्य सत्वहीन जीवों को नहीं सुहाते। इसका एक और कारण है कि उन्हें अपने मृतवत् कार्यों की चिंता बड़ी भारी हो जाती है जो हो, शिवाजी के भाषण से अनेक प्रसंग पर बड़ा भारी कार्य हुआ है। निदान सैनिक में तो यह बड़ा भारी गुण है। बाबर अपने मनोमोहक भाषण से अपनी सेना का उत्साह बढ़ाता रहा। फतेहपुर सीकरी की लड़ाई में इसी कारण उसे विजय प्राप्त हुई नहीं तो शायद हिन्दुस्थान का इतिहास बदल जाता। लड़ाई होने के पहले उसने जो सुन्दर भाषण किया उससे उसके सिपाहियों में ऐसा उत्साह भर गया कि वे बड़े जोश से लड़े और उन्होंने विजय प्राप्त की।

इस सब कार्य को करने के लिए जिस शरीरयष्टि की आवश्यकता होती है वह भी अनुकूल ही थी। वे सरदारों के कुल में पैदा हुए थे जिनका पेशा युद्ध के सिवा और कुछ न था। वे बचपन से पहाड़ पर्वतों में घूमते फिरते थे। उन्होंने भी जन्मभर अविश्रान्त वही कार्य किया। यह ख्याल रखने के लायक है कि मामूली सिपाही की तरह वरन् उससे भी ज्यादा ये सब कार्य स्वतः करते रहे। उन्हें शत्रु की रात दिन चौबीसों घंटे जन्मभर चिन्ता लगी ही रही। विश्राम किसे कहते हैं यह शिवाजी को मालूम नहीं। ऐसी अवस्था में वे

सदा ऐसे प्रचंड कार्य करते रहे। इससे ही उनकी शारीरिक अवस्था ज्ञात हो सकती है। राज्याभिषेक के समय शिवाजी का वज़न ७० सेर था।

६—इस प्रकार शिवाजी निर्दोष, निर्व्यसन, सर्व आवश्यक गुणों से पूर्ण स्वदेशत्राता के रूप में जन्मे थे। इस पुरुष को अच्छी तरह से जान लेना सैकड़ों अनेक पुरुषों को जानना है। दुराग्रह, पक्षपात, अज्ञान, शत्रुता ऐसे अनेक कारणों से कुछ लोग इस महापुरुष को अनेक बीभत्स नामों से पुकारते थे। पर आनन्द की बात है कि यह नासमझी धीरे धीरे दूर हो चली है। नैतिक, मानसिक, शारीरिक आदि सब गुणों से संयुक्त यह महापुरुष महाराष्ट्र में जन्मा। इसी कारण आज महाराष्ट्र का कुछ मूल्य है। महापुरुष की संगति सदा वाञ्छनीय और लाभकारी होती ही है पर संगति नहीं तो स्मृति भी कुछ कम लाभकारी नहीं होती। उसका स्मरण ही प्रचंड उत्साह, जोश और आदर उत्पन्न करनेवाला होता है। उसके कार्य का मनन करना अपने को उसी के काल के दर्पण में देखना है। जिस महापुरुष ने अविश्रान्त श्रम करके प्रज्वलित स्वदेशाभिमान से उत्तेजित हो महाराष्ट्र का उद्धार किया और एक नया राष्ट्र निर्माण कर दिया और जिसका स्मृति आज भी नई ही जान पड़ती है, वह पुरुष करोड़ों धन्यवाद का पात्र है।

हमारी डायरी।

[लेखक—श्रीयुत शिवप्रसाद गुप्त ।]

३ अगहन-(१६-११-१४)

आज मैं साढ़े छै मास के उपरान्त फिर अपनी दिनचर्या लिखना प्रारम्भ करता हूं। मुझे पाँच दिन पूर्व ही इसे प्रारम्भ करना उचित था क्योंकि मैंने इङ्गलिस्तान १४ नवम्बर को छोड़ा था किन्तु सागर इतना अस्थिर था कि ३ दिन तक सर उठाना दुस्तर होगया। अपनी कोठरी में विस्तर पर लेटकर ही समय व्यतीत करना पड़ा, खैर।

यह वृत्तान्त मैं केवल अपने निज के लिए नहीं लिखता किन्तु अपने प्रिय मित्र मर्यादा के सम्पादक महोदय की आज्ञा से मर्यादा के पाठकों के लिए ही यह लिखा जारहा है इस से यह उचित है कि मैं उन्हें यह बताऊं कि मैं साढ़े छै मास तक क्या करता रहा और कहां कहां घूमा और क्या २ अनुभव प्राप्त किये और इतने दिनों तक चुप क्यों रहा और प्रति दिन दिन भर का अनुभव क्यों नहीं अंकित करता गया। ये सब प्रश्न हैं जिनका उत्तर देना मुझे उचित है। अन्तिम प्रश्न का उत्तर मैं नहीं देना चाहता और मुझे आशा है मेरे प्रिय दयालु पाठक मुझे इसके लिये अवश्य ही क्षमा कर देंगे।

बाकी प्रश्नों का उत्तर मैं धीरे २ दूंगा और सहृदय पाठक मेरे आगे का वृत्तान्त पढ़ कर उसे स्वयं समझ जायँगे।

मैं......को सिकन्दरिया नगर छोड़ फिर जहाज़ पर सवार हो मारसेल्स के लिए रवाना हो गया था। दिन में मारसेल्स पहुंच गया था। रास्ते में कुछ विशेष घटना नहीं हुई,

सिवा इसके कि २ दिन समुद्र में अत्यन्त डावांडोल रहा और मेरा जहाज़ ११ हज़ार टन का होते हुए भी इस भांति हिल रहा था जैसे गंगा जी पर बरसाती हवा में डोंगी हिलती हो। लहरें जहाज़ की छत पर से होकर गुज़र जाती थीं और यात्री बेचारे अपनी २ कोठरी में पड़े या छत पर कुर्सी पर पड़े रहकर समय व्यतीत किया करते थे।

यहां पर यह भी बता देना उचित होगा कि जहाज़ दो प्रकार से हिलता है एक तो अगल बगल और दूसरे आगे पीछे। पहिले प्रकार के हिलने को करवट लेना रोलिङ्ग (Rolling) कहते हैं और दूसरे प्रकार को पैग लेना पिचिङ्ग (pitching) कहते हैं। पिचिङ्ग रोलिंग से भयंकर है। पिचिंग के समय मनुष्य का माथा घूमने लगता है और पेट में का अन्न पानी मुंह के राह बाहर निकल आता है। जिन मनुष्यों का ऐसे समय में जी नहीं मिचलाता उन्हें अच्छा नाविक कहा जाता है।

हम लोगों ने अपना टिकट विख्यात कुक की कोठी के मार्फत नहीं लिया था क्योंकि ये महाशय भारतवासियों के विशेष मित्र हैं और उनपर अधिक प्रेम के कारण उन्हें निराले में या कोनेकाने में ही जहाज़ पर जगह देते हैं जिस में हिन्दुस्थानियों को उन अंगरेज़ों से दुःख न पहुंचे जो कि भारत में रहकर उस सिद्धान्त को भूल जाते हैं जिसके लिये उनके देश में बड़ा नररक्त बहाया गया है अर्थात् दासत्व की प्रथा उठाने में जो कार्य अंगरेज़ जाति ने किया है उसे ये महापुरुष लोग बिलकुल भुला देते हैं और बिचारे पंगु भारतवासियों से बड़ा ही अनुचित व्यवहार करते हैं। यही नहीं कुक महाशय की और बहुत कीर्ति है जिसके कारण हम लोगों ने उनसे बचना ही निश्चय किया था।

५ अगहन-शनिवार (२१-११-१४)

और अपने टिकट दूसरी कोठी के मारफत लिये थे किन्तु मारसेल्स में पहुंचने पर हमें अपने कोठीवाले का कोई भी मनुष्य बन्दर पर सहायतार्थ नहीं मिला किन्तु कुक के कई मनुष्य यात्रियों के सहायतार्थ बन्दर पर उपस्थित थे किन्तु हमें उनसे कुछ भी सहायता नहीं मिल सकी। हम लोगों ने एक दूसरे यात्रीवाल के मारफत अपने असबाब का प्रबन्ध कराया। मैं एक बात यहां अन्यत्र की कह देना चाहता हूं जिसके लिए कदाचित पाठकगण मुझे क्षमा करेंगे। मुझसे एक विदेशी ने बात करते हुए कहा था कि अंगरेज़ जाति ने अमेरिका में दासत्व की प्रथा उठाने में जो असंख्य धन तथा मनुष्यों के प्राण होम दिये थे उसका कारण केवल यही नहीं था कि उन लोगों का हृदय मानव-ऐक्य के भाव से पवित्र होगया हो और उन्होंने इतना बलिदान केवल मानव अधिकार व स्वतन्त्रता के लिए कर दिया हो। उसका विचार तो यह है कि यह बलिदान नहीं किन्तु व्यापार था क्योंकि स्पेनिश जाति को गुलामों के बदौलत सस्ता माल बनाने में सहायता मिलती थी और इस कारण अंगरेज़ों को उनके मुकाबिले में कठिनाई पड़ती थी। इसी को दूर करने के लिए उन्होंने इतना नुकसान उठाया था किन्तु उसका फल यह निकला कि स्पेनवालों का व्यापार चौपट हो गया और अंगरेज़ों ने एक २ पाई के दस २ रुपये से अधिक व्यापार से भर पाये। जरा विचार करने से और यह देखने से कि आजकल ये पाश्चात्य जातियां अपने अधीनों के साथ कैसा व्यवहार करती हैं यह विचार कुछ २ ठीक प्रतीत होता है।

हम लोग

१० अगहन १९७१-वृहस्पतिवार (२६-११-१४)

को मारसेल्स में उतरकर और असबाब को एक यात्रीवाल के पास छोड़ और यात्रीवाल का एक आदमी ले हम लोग नगर देखने चले। पहिले हम लोग एक गिर्जाघर

देखने गये जो एक पहाड़ी पर स्थित था। सुन्दर सड़कों से होते हुए हम लोग गिर्जाघर की पहाड़ी के नीचे पहुंचे वहां से एक लिफ्ट (ऊपर लेजानेवाले यन्त्र) पर बैठ हम लोग ऊपर पहुंचे। यह गिर्जाघर बड़ा प्राचीन है। १६वीं शताब्दी में यह निर्माणित हुआ था, यह मेरी देवी का गिर्जा कहा जाता है, इसके भीतर जाने से एक प्रकार का धर्मभाव उत्पन्न हो जाता है। यह भाव वैसा ही है जैसा किसी धार्मिक मनुष्य के हृदय में किसी देवस्थान में जाने से उत्पन्न होता है। वहां पर ईसामसीह की मूर्ति सूली पर चढ़ी हुई एक ओर रक्खी है और प्रधान वेदी पर माता मेरी बालक ईसा को गोद में लिये खड़ी है और इधर उधर देवतागण आकाश में उड़ रहे हैं। इनके अतिरिक्त और बहुत से देवी-देवताओं की मूर्तियां यहां रक्खी हैं, बहुत से राजाओं के मुकुट भी यहां रक्खे हुए हैं जिन्होंने समय २ पर धार्मिक युद्ध किया है।

जिस प्रकार अपने देश में देवस्थान में जाते समय यात्री लोग फूल पत्र दियाबत्ती इत्यादि अर्चनार्थ ले जाते हैं उसी प्रकार यहां भी मोमबत्ती लेजाने की रिवाज है। सभी लोग छोटी बड़ी मोमबत्ती लेकर जाते हैं जो ईसा की सूली पर विराजमान मूर्ति के सामने मन्दिर का पुजारी जला देता है। वहीं पर एक ताले से बन्द छोटा सा बक्स रक्खा है जिसमें जो कुछ द्रव्य श्रद्धालु यात्री चाहते हैं डाल देते हैं। यह द्रव्य अपने देश की प्रथा के अनुसार अब पुजारियों के जेब में नहीं जाता। पहिले यहां भी ऐसा ही होता था किन्तु अब उससे मन्दिर की रक्षा होती है व अन्य सार्वजनिक उपकार के काम में लगाया जाता है।

बाहर यहां भी दीन पुरुष व स्त्रियां भिक्षा मांगने के लिए खड़ी रहती हैं जिन्हें देखकर हृदय पिघल जाता है। देखें यह कुप्रथा संसार में कब तक रहती है कि जिसके कारण समाज में कुछ तो ऐसे लोग होते हैं जिनके पास बिना मेहनत मशक्कत के हाथ पैर हिलाये बिना ही इतना धन दूसरों के पसीनों से कमाया हुआ समाज की कुप्रथा के कारण आजाता है कि वे उसे व्यय करना ही नहीं जानते और जानें भी तो अपने ऊपर व्यय नहीं कर सकते क्योंकि मानुषिक आवश्यकताओं से वह कहीं अधिक होता है, निदान उन्हें अपच हो जाता है और धन अपव्यय के मार्ग से चला जाता है। इस अपव्यय के बहुत मार्ग हैं और उनका सविस्तर वर्णन यहां प्रसंगविरुद्ध है। वह निराला ही विषय है जो समाजसंगठनशास्त्र में लिखा जाना चाहिये-और कुछ मनुष्य ऐसे होते हैं जो बेचारे हाथ पैर से बेकार या अन्धे अपाहिज होते हैं और स्वयं रोटी नहीं कमा सकते उन्हें इन मनुष्यों के सामने हाथ फैलाना पड़ता है जिन्हें लोग भूलकर समृद्धिशाली भाग्यवान् कहते हैं। वास्तव में इन्हें हत्यारे, चोर व डाकू के नाम से संकेत करना अधिक ठीक व सच्ची बात होगी। खैर।

यहां से होते हुए हम लोग अजायबघर देखने चले। सड़क की शोभा का वर्णन करना मेरी सामर्थ्य के बाहर है किन्तु दिग्दर्शन करा देना उचित जान इतना लिख देता हूं कि सड़क अत्यन्त चौड़ी व खूबसूरत थीं। दोनों ओर चौड़ी २ जगह गाड़ियों इत्यादि के लिये थी। एक ओर से जाने के लिए बनी थी दूसरी ओर से आने के लिए। बीच में चौड़ी पटरी मनुष्यों के चलने के लिए बनी थी जिसके दोनों ओर ऊँचे २ वृक्ष लगे थे। वृक्ष वसन्त ऋतु के कारण पुष्प तथा नरम कोपलों से भरे थे जिनमें प्रकृति ने इतना सुहावना हरा रंग भर दिया था कि जिससे बीच की पटरी हरी देख पड़ती थी। मन्द २ वायु पत्तों को हिलाती थी और सारी जगह को विचित्र प्रकार का सुगन्धि से भरे देती थी। हमें यह देख दिल्ली की चाँदनी चौक-

वाली सड़क याद आगई। जिस समय यह नगर अपने यौवन पर होगा जब इसे संसार की सब से बड़ी शक्तिशालिनी जाति की राजधानी होने का गौरव प्राप्त रहा होगा तब इसमें कैसी शोभा रही होगी वह इसके टूटे फूटे खँडहर ही बता सकते हैं। जाओ किसी उन ईंटों (Sic) पर जो अब भी चांदनी चौक के बीच में वर्तमान हैं और उनसे पूछो कि तुम्हारी अवस्था नरपति अकबर के समय क्या थी तो तुम्हें यदि हृदय है तो ठीक उत्तर मिलेगा और तुम अश्रुपूरित आंखों से लौटोगे।

अब हम लोग ११ अगहन १९७१ शुक्रवार २७-११-'१४ को अजायब घर में पहुंच गये। यह एक बड़े सुन्दर स्थान में है। बीच में एक बहुत बड़ा फुहारा है उसके ऊपर स्वतंत्रता देवी की एक विशाल मूर्ति है। जिस रथ पर वह मूर्ति विराजमान है उसे चार बैल खींचते हैं, उन्हीं नांदियों के मुख से जल की धारा गिरती है और ऊंचे नीचे ३ सरोवरों में से होती हुई बाग में चली जाती है।

इस विशाल भवन के कई जुदे २ विभाग हैं। हम लोगों ने इसके दो विभाग देखे। एक में बड़े २ विख्यात मूर्तिनिर्माणकर्ताओं की बनाई हुई सैकड़ों मूर्तियां हैं, दूसरे में चित्रों का संग्रह है। यहां पर निरीक्षक ने मुझे एक बड़ा चित्र दिखाया जिसका मूल्य दस लाख पाऊंड अर्थात् डेढ़ करोड़ रुपया दिया गया है। मेरी बुद्धि में यह सब अमीरी चोचले हैं। मैं यह नहीं कहता कि चित्रकार चित्र बनाने में बुद्धि की तथा विद्या के सीमान्त तक नहीं पहुंच गया है किन्तु एक चित्र के लिए इतना व्यय जब कि देश में करोड़ों मनुष्य क्षुधाग्नि में जल रहे हों यही प्रकट करता है कि संसार में न्याय नहीं है 'जबर्दस्त का ठेंगा सर पर' यह सभी जगह चलता है। न्याय का जामा पहने हुए अन्यायी सभी जगह विराजमान हैं और इनसे गरीबों को बचाने का कठिन परिश्रम कभी न कभी संसार भर को एक साथ मिलकर करना पड़ेगा।

इस भवन में एक विभाग है जिसमें ऐसे जन्तुओं की अस्थिपिंजरों का संग्रह है जो अब संसार में नहीं हैं अर्थात् जिनकी नसल नष्ट होगई है किन्तु मरम्मत के कारण वह विभाग बन्द था और हम लोग उसे नहीं देख सके।

यहां से अब रेल घर पहुंच अपना २ सामान सँभाल हुए लोगों ने यात्रा प्रारम्भ की। हमें रास्ते में बहुत सी छोटी २ नदियों, नालों व पहाड़ियों को पार करना पड़ा। फ्रांसीसी देश की विख्यात नदियों को जिनके बारे में इतना पढ़ रक्खा था देख २ हँसी आगई। वे काशी की वरुणा नदी से बड़ी नहीं निकलीं किन्तु इन्हीं को काट काट कर इस प्रकार नहरें बना दी गई हैं कि जिनके कारण सारा देश हरा भरा होगया है। मैंने बंगदेश को भली प्रकार नहीं देखा है किन्तु फ्रांस को देख एकबारगी "सुजलां सुफलां शश्यश्यामलां मातरम्" जबान पर आगया।

मुझे फ्रांस देश को दक्खिन से उत्तर तक पार करने में २४ घंटों से अधिक लगा था किन्तु मैं सत्य कहता हूं कि मुझे एक इंच भी भूमि ऐसी नहीं दीख पड़ी जिस पर हरियाली न हो। पहाड़ की चोटियाँ तक लता, गुल्म और घास से परिपूर्ण थीं। नाना प्रकार के धान यहां देखने में आये। सब्ज़ी व तरकारियों की खेती भी बहुत बड़ी मिकदार में थी। बहुत सी प्रकार की भाजियां वनस्पतियां व अन्य ऐसी चीज़ें कांच के गमलों के नीचे या कांच के घरों में बन्द थीं। बञ्जर, ऊसर या उजाड़ का नाम भी यहां नहीं था। बड़े बड़े हरी २ घासों से लहलहाते हुए मैदानों में गोसन्तान स्वच्छन्दता से विचर रही थीं। घोड़ों व भेड़ों के लिये भी अनेक रमणीय स्थान घासों से लहलहा रहे थे।

वहां पर पशु निडर हो विचर रहे थे। यहां की यह अवस्था देख भारत की डींग पर हँसी आगई। दया धर्म की पुकार मचानेवाले और झूंठी गप्पों से संसार को सर पर उठानेवाले हिन्दुओं की बस्तियों में भी इसका शतांश प्रबन्ध गोसन्तान तथा पशुओं के लिये नहीं है जैसा कि इन हिंसक देशों में देखने में आया। इन छै महीनों में मुझे एक पशु भी ऐसा नहीं मिला जो दुःखी, अपाहिज, निर्बल या आहत हो। यह अवस्था देख स्वामी रामतीर्थ के यह वचन स्मरण हो आये कि भारत का धर्म मुर्दा है व अन्य देशों का जीवित—भारत में धर्म का नाम लेकर शोर मचाया जाता है किन्तु और देशों में धार्मिक जीवन है अर्थात् अन्य देशों में धर्म चल अवस्था में है और भारत में अचल अवस्था में है।

इसी प्रकार इधर उधर देखते कभी प्रसन्न होते कभी खिन्न होते थे पर रेल अपना कार्य हमारी प्रसन्नता या खिन्नाभाव के लिए नहीं छोड़ती थी, वह तो ५०, ६० मील की गति से दौड़ी हुई चली जाती थी। उसके सामने नदी पहाड़ बन कुछ भी नहीं थे। कहीं नीचे ऊपर कहीं पहाड़ के हृदय को छेद कहीं नदी के सिर पर सवार वह बेतहाशा भागी चली जाती थी। इसी प्रकार भागते २ संध्या होगई और हम लोग खाने पीने की फिक्र में पड़े। कुछ रेल के उपहारगृह में खा पी दूसरी गाड़ी में सवार हुए और रात भर चलकर विख्यात 'परी' (Paris) नगर में पहुंच गये। इस विचार से कि इस नगर को फिर भलीभांति देखेंगे २ घंटा समय रहने पर भी हम लोग स्टेशन छोड़ बाहर नहीं गये। ८ बजे दूसरी गाड़ी पर सवार हो फिर रवाना होगये और १२ बजे के निकट 'कैलन' पहुंचे। वहां से एक छोटे अग्निबोट पर सवार हो इङ्गलिस्तान को प्रयाण किया। अंगरेज़ी खाड़ी बेतहाशा उछल कूद रही थी। नाव की छत पर जहां हम लोग बैठे थे बराबर लहरें पानी फेंक रही थीं। सब असबाब इत्यादि भीग गया। उस समय जितने लोग उस छत पर थे सभी उलटी कर रहे थे। मैं भी एक कोने में बैठा तमाशा देख रहा था। खैर किसी प्रकार राम २ करके जहाज़ डोवर पहुंचा और हम लोगों ने अपने प्रभुओं की जन्मभूमि में पदार्पण किया। अंगरेज़ कुलियों ने सलाम कर असबाब उठा रेल में रख दिया। रेल सीटी दे चल दी। ३, ४ घंटे के बाद हम लोग 'चेरिङ्ग-क्रास' स्टेशन पर पहुंच गये। यहां पर मेरे एक मित्र मुझे लेने आये थे उनके साथ जा ९ मई को एक मकान में ठहर गया।

इङ्गलिस्तान में मैंने क्या २ देखा इसका विस्तृत वर्णन फिर कभी पृथक् लिखूंगा किन्तु इस दिनचर्या को पूर्ण करने के लिए इतना लिख देना आवश्यक है कि मैंने यहां ९ मई से लेकर १४ नवम्बर तक ६ महीने ६ दिन निवास किया।

मई, जून, जुलाई इन ३ मासों में इस देश के प्रधान नगर अर्थात् आक्सफोर्ड, कैम्ब्रिज एडिनबरा, ग्लासगो, लीड्स, मानचेस्टर, डबलिन, लिवरपूल, पार्डिघम व ब्राइटन देखे,। इस उपर्युक्त देख भाल को हम लोगों ने ३१ जुलाई तक समाप्त कर दिया था और यह विचार था कि अगस्त के प्रथम सप्ताह में जर्मन देश में जाऊं किन्तु इसी बीच में यूरोपीय महाभारत का सूत्रपात होगया और हम लोग एक प्रकार से लन्दन में बन्द होगये। पहिले तो यही विचार होता था कि २०वीं शताब्दी में लड़ाई नहीं होगी यदि प्रारम्भ भी हुई है तो शीघ्र समाप्त हो जायगी पर ऐसा नहीं हुआ। घर भी लौटने का प्रबन्ध निष्फल हुआ। ३ मास तक इसी आगे पीछे में पड़े रहने के उपरान्त १४ नवम्बर को अमेरिका के लिए पयान कर दिया।

१७ पौष १९७१ शुक्रवार १-१-१५।

आज मुझे इस देश में आये प्रायः १ मास ४ दिन होगये किन्तु मैंने यहां का कुछ वृत्तान्त अंकित नहीं किया—कारण आलस्य।

कल तक मैं न्यूयार्क में ही था। कल ही वहां से चलकर बोस्टन नगर में आया। न्यूयार्क किस प्रकार का नगर है, वहां कौन २ वस्तुएँ देखने योग्य हैं उनका समाचार फिर कभी यदि संयोग हुआ तो लिखूंगा, इस समय कल रेल की यात्रा में जो कुछ देखा है उसी को अंकित करने की इच्छा है।

न्यूयार्क से बोस्टन प्रायः रेल द्वारा ५ घंटे का रास्ता है। इस हिसाब से इसकी दूरी भी २०० मील से कम नहीं है। हम लोग १२ बजे दिन की गाड़ी से चलकर ५ बजे सायंकाल यहां पहुंचे थे। आज का दिन बड़ा सुहावना था, धूप निकली हुई थी, प्रकृति की छटा देखने का खूब आनन्द आरहा था। जिस मार्ग से मेरी गाड़ी जा रही थी वह नाना प्रकार के सुन्दर दृश्यों से पूर्ण था—मार्ग में अनेक छोटे २ ग्राम थे किन्तु ग्राम के नाम से आप लोग अपने देश के टूटे फूटे टपकते हुए छप्परों तथा मट्टी की दीवालों के घरों का अनुमान मत कर लीजियेगा। ग्राम से केवल इतना ही तात्पर्य है कि घनी बस्ती नहीं छिट फुट दस २ बीस २ गृहों का समूह है। किन्तु ये सब गृह सुन्दर ईंटों अथवा लकड़ी के बने हुए थे, सब की खिड़कियों में पर्दे लगे हुए थे। खिड़कियों की राह भीतर का दृश्य भी मनोहारी देख पड़ता था। छोटे २ पौधों के गमले भीतर दृष्टिगोचर होते थे, टेबुल, कुर्सी भी देख पड़ती थी। धूप के कारण बाहर डोरी की अर्गनी बांध कर कपड़े भी सूखने को डाले हुए थे जिनके देखने से ज्ञात होता था कि घर में रहनेवाले क्षुधित निर्वस्त्र मनुष्य नहीं हैं किन्तु सांसारिक सुख की सामग्री से भरपूर सुखी मनुष्यों का यह वासस्थान है। यहां यह भी कह देना अनुचित न होगा कि अमेरिका में जीवननिर्वाह का व्यय बहुत अधिक है अर्थात् जिस प्रकार से यहां मामूली श्रेणी के मनुष्यों को रहना पड़ता है उसमें बड़ा व्यय होता है इसी कारण यहां मजूरी भी अधिक मिलती है—मामूली फावड़े से ज़मीन खोदनेवालों को भी ८ घंटे दिन में काम करने के बदले प्रायः ३ डालर मिलते हैं जो ९) रु० के बराबर प्रतिदिन हुआ। मैं आपके मनोरञ्जनार्थ एक मेमार अर्थात् मकान बनानेवाले राज के गृह का समाचार सुनाता हूं :—

न्यूयार्क में एक हमारे पूर्वपरिचित अंग्रेज़ सज्जन के पुत्र रहते हैं। आप यहां मेमारी का काम करते हैं। आपकी आय ५ डालर प्रतिदिन है। आपने मुझे एक दिन अपने घर भोजनार्थ बुलाया था। आप न्यूयार्क के बाहर रहते हैं। चौमंज़ले पर आपका निवासस्थान है। आपके पास २ कमरे हैं। एक में सोने व बैठने का प्रबन्ध है दूसरे में भोजन करने और पाक का प्रबन्ध होता है। आपके बैठने के कमरे में सुन्दर गलीचा बिछा है। एक ओर उत्तम पीतल का पलँग पड़ा था जिस पर खूब साफ बिस्तर था, बीच में मेज थी ५, ६ अच्छी कुर्सियां थीं, २ आलमारियों में पुस्तकें भरी थीं और इधर उधर ताकों पर सजावट के सामान थे। ऐसे सामान अपने देश में ज़मींदार, साहूकारों की तो क्या गरीबों को लूटनेवाले वकीलों तथा बड़ी २ तनख्वाह से भी सन्तोष न कर ऊपरी आमदनी करनेवाले डिप्टियों के घर में भी नहीं देखने को मिलते। इसपर तारीफ यह कि यहां उनके पास कोई नौकर भी नहीं सिर्फ गृहपत्नी ही भोजन इत्यादि बनाती हैं, बर्तन मांजती हैं और घर को भी साफ करती हैं किन्तु घर के सब पदार्थ आरसी के भांति चमकते थे और सब वस्तुएँ अपने २ स्थान पर थीं। अब आपके भोजन का हाल सुनिये! प्रथम तो चकोतरा जिसे माहताबी

भी कहते हैं आया फिर एक प्रकार का मांस आया, पीछे ३ प्रकार की तरकारी आई, फिर अंडों का बना सलाद आया, अन्त में फिर फल आये जिसमें अंगूर भी थे, अन्त के फल को छोड़ कर बाकी इनका रोज का भोजन था। कांटे, छुरी भी सभी उत्तम चांदी की कलई के थे, वर्तमान बर्तन भी साफ और दुरुस्त थे, पास ही नहाने का घर भी बड़ा साफ सुथरा था और घर में एक पियानो बाजा भी था। मैंने इस वृत्तान्त को विस्ताररूप से इसी कारण लिखा है जिसमें यहां के रहन सहन का अन्दाज़ा अपने देशवासियों को लग जावे, यहां आमदनी भी अधिक है और इसीके साथ आवश्यकताएँ भी अधिक हैं। लोग कमाते भी हैं और व्यय भी करना जानते हैं, बटोर के रखते नहीं और यही कारण है कि उनकी आमदनी जब घटने लगती है तो हाथ पर हाथ धर वे सन्तोष कर चुप नहीं बैठते किन्तु आकाश पाताल एक कर देते हैं यहां तक कि देश के निरीक्षकों को झख मार कर उनकी बात सुननी पड़ती है और केवल सुननी हो नहीं उसी के अनुसार कार्य भी करना पड़ता है नहीं तो दूसरे ही दिन बड़े साहेब कान पकड़कर कुर्सी से उतार दिये जाते हैं और दूसरा मनुष्य वहां नियत किया जाता है। खैर।

हां मार्ग के ग्रामों में डाकघर, तार, बिजली की रोशनी टेलीफोन, नल का पानी, नल द्वारा मैल के बहाने का प्रबन्ध इत्यादि सब कुछ है वह यहां की मामूली आवश्यकताएं होगई हैं जिनके बिना काम ही चलना कठिन है।

मैंने उर्दू तथा हिन्दी के काव्यों में खिज़ां अर्थात् पतझड़ का वर्णन बहुत पढ़ा है किन्तु कभी देखने का सौभाग्य नहीं मिला था वह यहां देखने में आया। २०० मील की यात्रा में एक इञ्च भी ऐसी पृथ्वी नहीं मिली जो बरफ से न ढकी हो। एक वृक्ष भी ऐसा नहीं देखा जिस पर एक भी पत्ती हो, हां केवल चीर के पेड़ कहीं २ पत्ती सहित देख पड़ते थे किन्तु अधिकांश वे ही वृक्ष थे जिन पर शहतूत से पत्र लगे थे। किन्तु सब नीरस थे और सूख कर लालिमामिश्रित पीत वर्ण के होगये थे। उनपर सूर्य की लाल किरणें पड़ने से जो अनोखी शोभा देख पड़ती थी उसका वर्णन मेरी लेखनी नहीं कर सकती। अहा! ऐसा प्रतीत होता था कि मानो जंगल में आग लगी है और वह धीरे २ सुलग रहा है। हवा के झोंके से बरफ के रेणू धूल की भांति उड़ रहे थे और सारी प्रकृति में नीरसता छा रही थी केवल प्रचण्ड हिम का राज्य था। कैलासनिवासी शंभूनाथ के ताण्डवनृत्य के लिए यह स्थान बड़ा ही उपयुक्त जान पड़ता था।

चलते २ थक कर सूर्य भगवान अस्ताचल में निवासार्थ बैठ गये। देखते २ क्षितिज से सूर्य की अंतिम लालिमा का भी लोप होगया किन्तु आकाश में निशाकर का राज्य होगया। रजनीनाथ अपनी सोलहों कला से निकल आये और बरफ पर अपनी ज्योत्स्ना फैलाने लगे। रेल सर्प की भांति इधर उधर चक्कर लगाती जा रही थी जिससे चन्द्रदेव कभी सामने कभी पीछे कभी बगल में आजाते थे। इसीभांति थोड़ी देर में हम बोस्टन के निकट पहुंच गये। दूर से ही नगर का दृश्य देख पड़ने लगा। धीरे २ गाड़ी स्टेशन पर पहुंची और आज का दिन खतम हुआ।

२० पौष १९७१ सोमवार ४-१-१५।

शुक्रवार १ तारीख को प्रातःकाल प्रायः कुछ नहीं किया, सायंकाल युनिटेरियन चर्च Unitarian Church (यह एक प्रकार की धार्मिक संस्था है जो ईश्वर में विश्वास करती है किन्तु किसी पुस्तक को या किसी विशेष व्यक्ति को ईश्वरीय पुस्तक व मनुष्य का बतानेवाला नहीं मानती अर्थात् ईसा, मूसा, मोहम्मद इत्यादि महात्माओं

को वह समाज ईश्वर का पुत्र या पैगम्बर इत्यादि नहीं समझता किन्तु उन्हें महान् पुरुष जान कर उनका सन्मान करता है) में नव वर्ष के नवीन दिन का महोत्सव था वहीं के निमन्त्रण पर हम लोग इस नगर में आये थे, वहां गये। एक बड़े कमरे में वहाँ के सभापति महाशय हम लोगों को लेगये। हम लोग भी एक किनारे खड़े होगये। सैकड़ों नर नारी वहां आये। सभी सब से हाथ मिला अपना २ नाम इत्यादि बताते थे, वह एक पारस्परिक सम्मिलन था। एक घंटे के उपरान्त यह दृश्य समाप्त हुआ, उसके उपरान्त दो भारतवासी सज्जन उनमें से एक तो अध्यापक जगदीशचन्द्र बोस व दूसरे लाला लाजपतराय यहां उपस्थित थे। इन लोगों की ब्रह्मसमाज तथा आर्यसमाज के विषय में छोटी २ वक्तृताएं हुई बाद में नीचे जा जलपान कर अतिथि लोग अपने २ घर गये। लेखक भी वहां से अपने निवासस्थान पर आ भोजन कर बाजार को गये। वहां "प्रकृति की पुस्तक" (The book of nature) नामक एक खेल देखने चला गया। यह चलती तस्वीरों के मिस से दिखाया गया था। ये तस्वीरें रेमांड एल० डिटमर (Raymand L. Ditmars) महाशय न्यूयार्क पशुशाला (Zoological Gardens) के निरीक्षक की बनाई हुई उनके ३ वर्षों के अनुभव का फल है। इसमें नाना प्रकार के जन्तुओं का हाल था।

२ तारीख शनिवार को दोपहर के भोजन का निमन्त्रण 'बीसवीं शताब्दी क्लब' (Twentieth Century Club) से मिला था। यहां भी मैं गया था। यहां कोई ३०० मनुष्य उपस्थित थे। दर्वाज़ा ठीक १ बजे खुला। दर्वाज़े के पास भोजन करनेवालों की भीड़ थी। अपने देश के जेवनार के सदृश थी, सभी पहिले भीतर घुसने के उत्सुक थे। धक्कमधक्का तो नहीं कह सकते किन्तु उसी के निकट दृश्य होगया था। भोजन के बाद फिर उपर्युक्त कल के दो भारतीय महानुभावों की वक्तृताएं हुईं। अध्यापक महाशय ने अपने अद्भुत आविष्कारों का वर्णन किया और लाला जी ने देश की स्थिति की चर्चा की इसके बाद ऊपर सुलफेबाजों का कोठरी में जमाव हुआ। इस छोटे से कमरे में कोई ५०।६० विद्वान बैठे थे किन्तु सभी सिगरेट पी रहे थे। कमरा धूए से भरा था। सर्दी के भय से कोई दर्वाज़ा नहीं खुला था। इससे और भी कष्ट था। खैर वहां पर अनेक प्रश्न उपर्युक्त दोनों महाशयों से हुए अधिकतर प्रश्न लाला जी से हुए जिनका उत्तर उन्होंने अपने तजुर्बे के कारण बड़ी उत्तमता से दिया। इन प्रश्नावली से यह मालूम हुआ कि यहां के विद्वानों को भारत का कुछ समाचार नहीं मालूम है और जो कुछ उन्हें मालूम है वह नितान्त भ्रममूलक व स्वार्थियों द्वारा ही ज्ञात हुआ है। उन लोगों को यह जानकर आश्चर्य होता था कि भारतवासी अपने बच्चों को मार नहीं डालते अथवा उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में २ करोड़ मनुष्य केवल क्षुधा से मर गये किन्तु उसी समय २५ वर्षों में करोड़ों मन गल्ला प्रति वर्ष विदेश जाता रहा अथवा विदेशियों तथा स्वदेशियों के बीच में झगड़ा होने से न्याय नहीं होता अथवा देश के बने हुए सूती माल पर देश में ही चुंगी लगती है जिसमें विदेशी माल को हानि न हो इन बातों को जान कर उन्हें अचम्भा होता था। सायंकाल यह सभा समाप्त हुई और मैं वहां से उठ भोजन कर महाकवि शेक्सपियर का नाटक "किङ्ग जान" देखने चला गया।

रविवार ३ तारीख को मध्याह्न भोजन के उपरान्त महात्मा 'अमरसन्त' Emerson की समाधि देखने गया। नगर के बाहर १२ मील पर एक ग्राम है उसी के निकट एक श्मशान है जिसका नाम स्लीपी हालो Sleepy hollow निद्रा खंड है उसी में इस महात्मा की समाधि है। समाधि पर एक बिना गढ़ा हुआ सुन्दर संगमर्मर का ढोंका रक्खा है। आसपास हजारों

समाधियां हैं यहां जाने में बर्फ के ऊपर चलना पड़ा था जिस प्रकार बालू में पैर धँसता है उसी प्रकार बिचारे २ पैर हिमबालुका में धँस जाते थे। कई जगह पैर खिसक जाने से गिरा भी। सर्दी बहुत थी रात्रि को कहीं नहीं गया।

बोस्टन नगर में हा प्रथम २ युरोपीय लोगों ने आकर अपना अधिकार इस देश में फैलाया है इससे यह नगर बड़े ऐतिहासिक महत्व का है।

जब अठारहवीं शताब्दी के मध्य में अंगरेज़ों के ज़ुल्म से तंग आकर एमेरिका निवासियों ने दासत्व श्रृङ्खला को तोड़ने के लिए कटिबद्ध हो कृपाण उठाई थी वह भी प्रथम २ इसी नगर से प्रारम्भ हुई थी। स्वाधीनता के युद्ध के चिन्ह व स्मरणस्तूप यहां अनेक हैं जिन्हें देख हृदय गद्गद हो जाता है। संसार की विचित्र लीला है 'काने चाटें कनौड़े मेंटे' की कहावत बहुत सत्य है। गुलामी के पंजे में पड़े हुए देशों में स्वतंत्रता की लड़ाई जब प्रारम्भ होती है तो वह प्रथम २ थोड़े ही मनुष्यों का समूह हुआ करता है। किन्तु यदि स्वतन्त्रता की विजय हुई तो यही छोटा दल देशभक्तों के दल के नाम से समय के पत्र पर अंकित होता है और आनेवाली जाति इन्हें सन्मान से देखती हैं, इनका अनुसरण करती है और ये युवकों के हृदयमन्दिर में स्थान पा पूजे जाते हैं किन्तु यदि दुर्भाग्यवश गुलामी का जुआ हटानेवाले वीरों की हार होती जाती है तो वेही विद्रोही बागी पुकारे जाते हैं और भविष्य जाति इनके नाम से जालिमों के डर के मारे डरती है। अपने को प्रतिष्ठित समझनेवाले लोग इन्हीं देशभक्तों को दुष्ट, दुरात्मा, पापी कहकर पुकारते हैं और उनसे घृणा करते हैं। हा! काल की विचित्र गति है।

क्रमशः।

रे मन !

[लेखक—श्रीयुत भगवन्नारायण भार्गव ।]

काहे खिन्न होय तू रेमन !
आलसनिद्रा सोवै।
सांसारिक दुख दल लखि लखि किमि
विह्वल तू अब होवै॥
ईश्वर आराधन मधि लगि जा
आपद सब नस जैहैं।
या जग के परिवर्तन तोकों
नेकहुं कलेश न देहैं॥ १॥

सदुपकार महँ तन मन धन तें
निशिदिन सकल बितावो।
अन्तरीय आनँद रस पाके
जीवन फल तुम पावो॥
मद मत्सर कामादि पाप सब
अबहिं चित्त ते काढ़ो।
सात्विकभाव साधि सत सों पुनि
प्रेम करो तुम गाढ़ो॥ २॥

सत्य शान्ति जल ते अपुण्य की
पावक भ्रान्ति बुझावो।
"सत्यं जयति नाऽनृतं" ऐसो
जग कों वाक्य सुनावो॥
धर्म हेतु तुम असहनीय हू
घोर दुःख सह जावो।
और "स्वधर्मे निधनं श्रेयः"
येही गायन गावो॥ ३॥

आत्मदेश को मान कबहुं प्रिय !
छीण होन ना दीजो।
"मानधनानां मानं प्राणाः"
याको सुमरन कीजो ॥
आलस खेद त्यागि जगमाहीं
कर्मवीर बन जावो।
"काज सिद्धि उद्योग ते होवै"
इमि कहि सबनु जगावो ॥ ४ ॥

स्वार्थत्याग पुरुषार्थ आपनो
तेज कहिन प्रकटा दो।
और अनुद्यम घोर घटा को
घटा २ बिनसा दो ॥
विद्या सुरस पान ते कबहूं
तनिकहु नाहिं अघावो।
अरु व्रत-ज्ञान-गान के सच्चे
गायक तुम बन जावो ॥ ५ ॥

अशोक के शिलालेख।

[लेखक-श्रीयुत रमाशंकर अवस्थी।]

मिश्र के प्राचीन इतिहास के स्मारक जैसे ऊँची मीनारें (pyramids) हैं और चीन के पुरातन चिह्न दीवारें कहकहा आदि हैं, वैसे ही यदि कहा जाय कि, भारतवर्ष के एक समय के इतिहास-प्रदर्शक अशोक सम्राट् के स्तम्भ और शिला-लेख हैं तो कुछ अत्युक्ति नहीं होगी। परन्तु, इनमें कुछ विशेषता भी है क्योंकि, केवल इनसे प्राचीन इतिहास का स्मरण ही नहीं होता किन्तु कुछ सच्चा ज्ञान भी होता है। इन शिला-लेखों से भारतवर्ष के उस समय का ज्ञान होता है जब कि, भारतवर्ष का कीर्ति-मार्त्तण्ड चीन, फारस और ग्रीस आदि देशों तक विस्तृत था। इनसे इस देश की पुरातन राजनीति, शासननीति तथा व्यवहारनीति का भी कुछ पता लगता है। सम्राट् अशोक के इन शिला-लेखों में यद्यपि सब अथवा अधिकतर धार्मिक राजाज्ञाएं ही हैं परन्तु इनके बीच में कहीं कहीं पर कुछ इतिहास-चर्चा भी है, जो अशोक के समर्थस्य दर्शो और शासकों का कुछ परिचय कराती है।

सम्राट् अशोक ने अपने राज्याभिषेक के १३ वा १४ वर्ष पश्चात् चौदह राजाज्ञाएं प्रकाशित की थीं* उन्हीं को शिलांकित कराके भिन्न भिन्न स्थानों पर स्थापित कराई थी। पूर्ण सम्भावना है कि, उनमें से कुछ शिला-लेखों का नाम निशान मिट गया हो परन्तु, आज भी जिन स्थानों में ये शिलाएँ हैं वे स्थान कपूर्दीगिरि (अटक के पश्चिमोत्तर में,) खालसी के निकट (जमुना के तट पर,) गिरिनार (गुजरात में,) धौली (उड़ीसा में) और जौगदा (उड़ीसा के दक्षिण में चिलका भील के तट पर) हैं। इन शिलाओं में अंकित १४ राजाज्ञाओं का सारांश निम्न लिखित है :—†

(१) जीवहत्या की मनाही।

(२) जड़ी बूटी आदि औषधियों के संवर्द्धन करने की सम्मति तथा उन देशों के नाम जिनमें इनका प्रबन्ध किया गया है।

(३) धार्मिक समारोह (अनुसम्यान) होने का आदेश।

---

* Les Inscription de Piyadasi. Mr. Senart.

† 1st Valume of Corpus Inscriptionum Indicarum ; 1877.

(४) धर्मप्रतिष्ठा की घोषणा।

(५) धार्मिक मंत्रियों तथा प्रचारकों की नियुक्ति की विज्ञप्ति।

(६) मनुष्यों के सामाजिक तथा गृहजीवन के सम्बन्ध में उचित शिक्षा देनेवाले उपदेशकों की नियुक्ति की विज्ञप्ति।

(७) संसारव्यापी धार्मिक सहिष्णुता की घोषणा।

(८) मृगया आदि मनोरंजक कार्यों के स्थानों में धार्मिक और पवित्र मनोरंजक कार्यों के करने का उपदेश यथा दया, दान और सेवा आदि।

(९) धार्मिक शिक्षाओं तथा उचित उपदेश करने की प्रतिष्ठा।

(१०) सत्य धर्म प्रचार में सच्ची वीरता।

(११) दान करने से भी धार्मिक उपदेशों के करने की प्रशंसा अधिक बताई।

(१२) संसारव्यापी धर्म (बौद्ध) पर विश्वास करने और ग्रहण करने का निवेदन किया।

(१३) कलिंग की जीत तथा पांच ग्रीक राजाओं की सूची और उन देशी तथा विदेशी राज्यों के नाम जहां धर्मप्रचारक भेजे।

(१४) इन राजाज्ञाओं को शिलाओं पर अधिक संख्या में खुदवाने और प्रकाश करने का निवेदन किया।

पूर्वोक्त राजाज्ञाओं में इतिहास की दृष्टि से द्वितीय, पंचम तथा तेरहवीं आज्ञा महत्वपूर्ण है।

दूसरी आज्ञा में अशोक के समय के हिन्दू राजों के नाम दिये गये हैं जिनमें औषधि प्रचार किया गया था।

तक्षशिला, तासली और समाया आदि तो अशोक के ही हस्तगत थे परन्तु इनके अतिरिक्त यवन (बैक्ट्रिया), कम्बोज (काबुल), गान्धार (कन्धार), सौराष्ट्र (काश्मीर आदि), महाराष्ट्र (महाराष्ट्रदेश), पेतनिका (दक्षिण भारत-भाग), पुलिन्द (दक्षिण भारत-भाग), प्रतिस्थान (पूना आदि), अन्ध्र (दक्षिण भारत-भाग), भोज (मालवा), नाभक और नाभापन्ती आदि चौदह राज्यों पर भी सम्राट् अशोक के प्रभुत्व की छाया थी और इन राज्यों में भी औषधि प्रचार किया गया था। भारत के अन्तिम दक्षिणीय भाग में कोला, पाण्ड्य, सत्यपूत, कलशपूत और टम्बापन्ती आदि राज्य स्वतन्त्र थे पर वहां भी अशोक की दूसरी आज्ञा का प्रचार था।

पंचम तथा कई आज्ञाओं में अशोक के अफसरों के नाम आये हैं वे निम्नलिखित हैं। जैसे पुरुष (कार्यकर्ता), धर्ममहामात्र (धर्म प्रचारक), प्रदेशक (सूबेदार), प्रतिवेदक या अन्त-महामात्र (धर्मोपदेशक) और विबुध (धार्मिक प्रचारक) आदि हैं।

तेरहवीं आज्ञा में उन ग्रीक राजाओं के नाम हैं जिनके साथ अशोक की सन्धि हुई थी।

अन्त्योक (Antiochus) सीरिया का, तुरमाये (Ptoleunj) मिश्र देश का, अन्तकीन (Antigona) मेसीडोनिया का, माका (Magas) मारीन का, और सिकन्दर (Alexander) इपिरस का राजा था।

इन १४ आज्ञाओं के अतिरिक्त कई और आज्ञाएं प्रकाशित की गई हैं।

एक शिलांकित आज्ञा धौली और जौगदा में प्राप्त हुई है जिसमें अशोक की आज्ञा तुसाली राज्य के प्रबन्ध के सम्बन्ध में हैं। उसी आज्ञा में उज्जयिनी तथा तक्षशिला में धार्मिकोत्सव प्रति तृतीय वर्ष में होने की घोषणा है। एक दूसरी आज्ञा भी इन्हीं दो स्थानों में प्राप्त है जिसमें तुसाली और समाया राज्यों के शासननियम अंकित हैं।

दो राजाज्ञाएं रूपनाथ (जबलपुर के निकट) और सहसराम (बनारस के दक्षिण में) प्राप्त हुई

हैं, जिनमें २५६ प्रचारकों को भिन्न २ देशों में भेजने की विज्ञप्ति है।

वैरत में (दिल्ली के निकट) एक राजाज्ञा में अशोक के धर्म विश्वास तथा प्रचारकों के कार्य की चर्चा है।

प्रयाग के स्तम्भ में जिसमें अशोक के बाद कई अन्य राजाओं के लेख हैं, अशोक की द्वितीय रानी का भी एक लेख है जिसमें उन्होंने धर्म शिक्षा के सम्बन्ध में उपदेश किया है।

कुछ गुफाओं के ऊपर भी खुदे हुए लेख मिलते हैं जिनमें नागार्जुनी (गया के निकट) खण्डागिरि (कटक के दक्षिण में) रामगढ़ (मध्यप्रदेश में) और बारबर की गुफाएं विशेष परिचित हैं। बारबर के गुफा-लेख में यह लिखा है कि, यह आज्ञा अशोक के वंशज दशरथ के द्वारा अंकित कराई गई है, और खण्डागिरि तथा उदयागिरि की आज्ञाएँ कलिंग के राजा की खुदवाई हुई हैं।*

स्तम्भ पाँच है और इनमें दो दिल्ली में, एक प्रयाग में, एक लौरिया में (भूपाल) और एक सांची में (भूपाल) हैं। इन सब में अशोक की ६ आज्ञाएं एक ही प्रकार की अंकित हैं किन्तु दिल्ली के स्तम्भ में दो अधिक अंकित हैं। दूसरी स्तम्भ को फीरोज की लाट कहते हैं।

स्तम्भों पर की सब आठ आज्ञाओं की सूची यह है।

(१) अपने धार्मिक कार्यों को हृदय से और उत्तरदायित्व के साथ करने का उपदेश किया।

(२) धर्म को दया, दान, सत्यता और पवित्रता के साथ करने को कहा।

(३) स्वयं प्रश्नता और पाप से बचने को कहा।

(४) रज्जुकों (उपदेशकों को) प्रजा को धर्म उपदेश करने को सौंपा।

(५) कई प्रकार के विशेष जीवों की हत्या की मनाही की।

(६) इच्छा प्रकट की कि, प्रजा बौद्ध हो जावे।

(७) आशा की कि, वह नियम जनता को सुपथ-प्रदर्शक होंगे।

(८) अपने किये हुए कामों को गिनाया और अपनी धर्मवृत्ति के लिए तथा प्रजा को चित्त से धर्मानुगमन के लिए कहा।

प्रार्थना।

प्रभु निज विमल ज्योति दिखरावो।

बुद्धिपूर्वक कर कर्म हम,
हिय की मैल मिटावो ॥ १ ॥

छल अरु कपट कूटनीती कहँ
बेगहिं काट हटावो ॥ २ ॥

आत्मठगी कर लीडर बनने
की अभिलाष दुरावो ॥ ३ ॥

अहं वयं के 'दम्भ तिमिर हित'
विनय रविहिं प्रकटावो ॥ ४ ॥

आह मिटै "ग्रामीण" जनों की
यह सुधि सबहिं दिलावो ॥ ५ ॥

---

* 1st Volume of corpus Iuscriptionum Indicarune ; 1877.

(२)

[ग्रामीण बोली]

अब हम प्रभु तजि कहवां जाईं।
स्वारथ में सब अपने भूले
केसे व्यथा सुनाईं ॥ १ ॥
तजैं गांठि मतलब सब हमको
कौन कौन दुख गाईं ॥ २ ॥
मेला, ठेला, रेल, कचहरी,
सगरौं मुक्का खाईं ॥ ३ ॥
मांगे सहेबवा मारि रुपैया
तुहईं बतावा कहां पाईं ॥ ४ ॥
ऐसन मन होला भागि उहां से
तोहरे पसवां आईं ॥ ५ ॥
दिन भर करत करत मरिजाईं
तबौ न पेट भर खाईं ॥ ६ ॥
लड़िका औ मेहरारू रोवै
रतिया रोइ बिताईं ॥ ७ ॥
तुहऊं झूठै ईश्वर बनलबाय
तोहसे बहुत का बताईं ॥ ८ ॥
उठा चला संगे हमरे तू
भारत दशा देखाईं ॥ ९ ॥
जे देखी ते जानी दुख के
का "ग्रामीण" सुनाईं ॥ १० ॥

"ग्रामीण"।

महात्मा गोखले।

[लेखक—श्रीयुत भगवन्नारायण भार्गव।]

जो साँचो स्वदेश-अभिमानी,
जो विद्या अनुरागी।
जाको आतम तन मन धनते,
देशभक्ति प्रिय लागी ॥
जो राखत राष्ट्रीयभाव जिय,
जगहिं स्वधर्म अति प्यारो।
सोइ सुमन परम उपकारी,
प्रिय तारो देस हमारो ॥

आज भारतमाता का हृदय घोर दुःख से भर रहा है, राष्ट्रीयता के नभमण्डल से एक मुख्य नक्षत्र का अस्त होगया, कर्मण्यता का क्षेत्र विक्षिप्त और तेजहीन प्रतीत होता है, देशसेवा के सरोवर के कमल कुम्हलाये दीख पड़ते हैं, उद्योग और अध्यवसाय के सेवकों में घबराहट मालूम होती है, परोपकार के नाटकपात्रों ने दृश्य के बिना पूरे हुए ही पटाक्षेप कर दिया है। शोक! शिक्षा और स्वराज्य का मधुरगान गानेवाला मराल गोपाल कलरव को बन्द करके अपने धाम पहुंच गया परन्तु स्मरण रहे कि इस ध्वनि की गूंज भारत से न जाने पावेगी।

जिनकी नस २ में प्राचीन वीर्यधुरन्धर महाराष्ट्रों का रक्त सञ्चरण कर रहा था, जो नित्यप्रति स्वार्थनिष्ठा के मूल के नाश के प्रयत्न में लगे रहते थे और जो प्रेमपूर्वक कर्तव्य-तत्परता की बेल का सिञ्चन किया करते थे वेही सर्वप्रिय भारतमनमोहन गोपाल कृष्ण इस वसुधा को त्याग कर चले गये।

उन्हीं भारत-हृदय सरोज विकसानेवाले महात्मा महापुरुष ने लोकोपकारार्थ सन् १८६६ ईसवी में एक पवित्र विप्र-कुल में जन्म लिया था। बाल्यावस्था में ही आपको भावी महत्ता

के शुभ लक्षण आपके मोदद्दायी आकार से प्रकट होते थे । यद्यपि आपके पिता जी की आर्थिक दशा बहुत अच्छी नहीं थी तथापि "शिक्षाप्रेमी" गोखले के पिता ने आपको पढ़ाना आरम्भ किया । प्रारम्भिक शिक्षा के पश्चात् स्थानीय कालेज से सन् १८८२ में एफ० ए० पास किया और पूना के डेकन कालेज में बी० ए० पढ़कर बम्बई के एलफिन्सटन कालेज में परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। आपकी गणना सदैव उत्तम श्रेणी के विद्यार्थियों में की जाती थी और आपके अनुकरणीय सच्चरित्र से सहपाठियों ने अनेकों लाभ उठाये । यद्यपि आपने अंगरेज़ी शिक्षा भली प्रकार से पाई थी तथापि आज कल के अनेकों अंग्रेजी पढ़े हुए नवयुवकों के समान आप पाश्चात्य बातों के अन्ध, अधम व राष्ट्रीय भावहीन अनुगामी कदापि स्वप्न में भी नहीं थे। कालिज छोड़ने के पश्चात् आप "शिक्षा सम्बन्धी दक्षिणी सभा" (Deccan Education Society) के सदस्य हो गये क्योंकि शिक्षा से तो आपको जन्म से ही उत्कृष्ट प्रेम था। उसी समय आप फर्गूसन कालिज पूना में इतिहास व सम्पत्तिशास्त्र के अध्यापक होगये। फिर आपने बीस वर्ष तक ७५) मासिक वेतन पर उसी महाविद्यालय की सेवा व उसीके द्वारा देशोपकार करने के लिए प्रतिज्ञा की। आप कुछ काल पश्चात् उसके प्रिंसिपिल होगये । आपने इस महाविद्यालय के लिए बहुत काम किया। वहीं आप न्यायाधीश रानाडे के कृपापात्र हुए और उनसे विविध उपदेशों को पाकर उन्होंने संसार के नाटकालय में उनका भली प्रकार प्रयोग किया। १४ वर्ष तक इन दोनों महापुरुषों ने साथ २ सम्पत्तिशास्त्र व राजनीतिशास्त्र का अध्ययन और मनन किया और भारतवर्ष के लिए अनेक श्रेयस्कर कार्य किये। जिन दिनों आप अध्यापक थे उस समय आप देशसेवा व परोपकार के कार्यों से सर्वदा सम्बन्ध रखते थे। सन् १८८७ में न्यायाधीश रानाडे के इच्छानुसार आप त्रैमासिकपत्र (Quarterly Juarnal) का सम्पादन करने लगे और फिर देशसुधार के लिए 'सुधारक' के उपसम्पादक होगये ।

उसके बाद Bombay Provincial Congress (बम्बई की प्रान्तीय कांग्रेस सभा) के मंत्री चार वर्ष के लिए होगये और फिर १८९७ में भारत की राष्ट्रीय महासभा (Indian National Congress) के उपमन्त्री होगये । इस अवस्था में आपके उत्कृष्ट ज्ञान और कर्तव्यपरायणता का मनुष्यों पर ऐसा गम्भीर प्रभाव पड़ा कि वे लोग आपको ज्ञान का सूर्य समझने लगे। उसी वर्ष बम्बई की सार्वजनिक सभा ने आपको भारतीय आर्थिक दशा व व्यय के निमित्त कमीशन में साक्षी देने के लिए चुना—इस विषय में आपने इङ्गलैंड जाकर महती योग्यता प्रकट की। उस समय जबतक आप वहां रहे बराबर भारतीय विषयों पर ही व्याख्यान देते रहे। इंगलैंड से लौटने के बाद आप १९०० ई० में बम्बई के लाट की कौंसिल के मेम्बर होगये। सन् १९०२ में आपने फर्गूसन कालेज से आज्ञा पाकर वहां के मुख्याध्यापक की पदवी २५) मासिक पेन्शन पर छोड़ दी पर उसी वर्ष आप सर फीरोज़शाह मेहता के स्थान में बड़े लाट की कौंसिल के मेम्बर होगये तब से बराबर आप निर्वाचित होते रहे ।

बजट पर आपकी प्रथम वक्तृता जो २६ मार्च १९०२ ई० में हुई साधारण पुरुषों व राजकीय जनों की मति में बड़ी प्रभावशाली समझी गई । तब से अब तक आपने बजट के सम्बन्ध में बारह वक्तृताएँ दीं जिन्होंने भारतसचिव और बड़े लाट को आश्चर्य में डाल दिया । सन् १९०५-०६ के बजट के सम्बन्ध में लार्ड कर्ज़न ने लिखा था कि "ईश्वर ने आपको असाधारण योग्यता से युक्त किया है जिसको आपने अपने देश की सेवा में स्वतन्त्रतापूर्वक लगा रक्खा
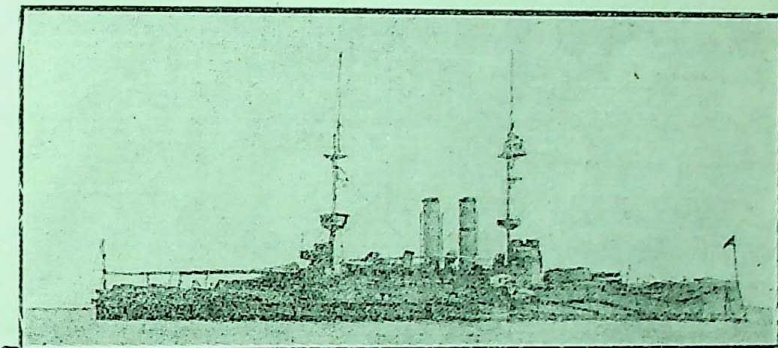
"गोलियथ" नामक जहाज़ ।

है।" जब लार्ड मिएटो ने सन् १६०६ की बजट-सम्बन्धी वक्तृता सुनी तब उन्होंने कहा था कि "इङ्गलेंड के अग्रगएय वक्ताओं में भी मि० गोखले के समान योग्यपुरुष शायद ही कोई हो।"

आपने बड़े लाट की कौंसिल में भारत के हित के लिए बहुत से अच्छे अच्छे काम किये जैसे सेना सम्बन्धी व्यय के आधिक्य की निन्दा, इस्पातकला (Irrigation Engineering) में अधिक व्यय पर ज़ोर देना, भूमि पर राजकीय कर की न्यूनता के लिए प्रार्थना, नमक पर टैक्स कम करने के लिए उद्योग करना, वैज्ञानिक रीति से कृषि के उत्कर्ष के लिये कृषिसम्बन्धी बैंकों की स्थापना के हेतु विज्ञप्ति, औद्योगिक और वैज्ञानिक शिक्षा के लिए प्रयत्न और १६११ में आपने 'प्रारम्भिक शिक्षा' का बिल पेश किया था। जब आपने टैक्स लगाने के सिद्धान्त में परिवर्तन के लिए मर्मस्पर्शिनी वक्तृता दी थी तब सर गाई फ्लीटवुड विल्सन ने यह कहा था "माननीय मि० गोखले को देखकर मुझे ग्लैडस्टन का स्मरण आता है। एक बार अधिक कार्य करने से ग्लैडस्टन अस्वस्थ होगये। उनसे डाक्टर ने आराम करने के लिए कहा तो उन्होंने डाक्टर के उपदेश पालनार्थ टर्की भाषा पढ़ना आरम्भ कर दिया। उसी प्रकार मुझे कोई संदेह नहीं कि मि० गोखले के वैद्यों ने इन्हें अधिक काम करने को मना किया है, उसी आज्ञा को मानने के लिए इन बचे हुए पन्द्रह मिनटों में आपने सब चीज़ों पर टैक्स लगाने के सिद्धान्त की आलोचना के समान छोटे से विषय पर वक्तृता दे डाली।" और उन्होंने यह कहा था कि "बजटसम्बन्धी सभा मि० गोखले के बिना ऐसी है जैसे शेक्सपियर का हैमलेट नामक नाटक हैमलेट बिना" अथवा मुद्राराक्षस नाटक 'राक्षस' के बिना।

परन्तु आपकी निपुणता केवल बजट व कौंसिल ही से परिबद्ध न थी। आपके वास्तविक लोकहितकर कार्य तो देश की उत्तेजना और उसकी उन्नति में दृष्टिगोचर होते हैं:—

१२ जून सन् १६०५ में आपने सर्वेंटस् आव इंडिया सुसाइटी नामक सभा स्थापित की जिसका प्रधान स्थान पूना में रक्खा गया। इसका उद्देश्य यह था कि अपने देशवासियों को नागरिकता (Citizenship) के कर्तव्य और उत्तरदायित्व की शिक्षा दी जावे। इसी वर्ष आप कांग्रेस के सभापति निर्वाचित किये गये और "रानाडे साम्पत्तिक संस्था" (Ranade Economic Institute) स्थापित की गई। फिर आप बम्बई की ओर से भारतीय राजनैतिक दशा के विवेचन के लिए इङ्गलैंड भेजे गये, वहां पर आपने पचास दिनों में पैंतालीस वक्तृताएँ दीं जिनसे वहां के विद्वज्जन मुग्ध और चकित हो गये। वहां से जब आप अपने गृह को लौटे तो काशी कांग्रेस के सभापति बनाये गये। १६०६ ई० में कांग्रेस के प्रतिनिधि होकर इङ्गलैंड पधारे और लार्ड मार्ले के साथ अपरिवद्ध शासनप्रणाली के सम्बन्ध में बहुत मननपूर्ण बातें कीं—वहां से जब आप लौटे तो आपके एक महान् कार्य के परिणामरूप सूरत सभा का अधिवेशन न हुआ।

आप जब सन् १६०८ में इङ्गलैंड पधारे तो लार्ड मार्ले को आपने भारतीय राजनैतिक जटिल समस्याओं के सुलझाने में बहुत सहायता दी।

आपके दो प्रसिद्ध कार्य भारत कभी नहीं भूलेगा एक तो अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा-सम्बन्धी उद्योग, दूसरे दक्षिण अफ्रिका के भारतीयजनों की राष्ट्रीय अवस्था सुधारसम्बन्धी महती चेष्टा। १६१२ में आप दक्षिण अफ्रिका जाकर जनरल बोथा से मिले और आपने भारत का गौरव बचाया—उस समय यद्यपि आप रुग्णावस्था में थे तथापि कुछ परवाह न की और यही कहा कि एक पुरुष के लिए समस्त भारत हानि नहीं उठा सकता है।

'इसके पश्चात् बड़े लाट ने कहा था कि अफ्रिका सम्बन्धी असुविधाएँ मि० गोखले की सहायता से व उनकी राजनीति के नियमानुसरण से शान्त हुई। यद्यपि आपका सार्वजनिक प्रारम्भिक शिक्षा का प्रस्ताव प्रचलित न हो सका-तथापि भारतीय जनों के हृदयों में उसका अंकुर जम गया है और वे उसके प्रचार की सिद्धि के लिये मार्ग पाकर सोत्साह प्रयत्न करेंगे। मार्ग प्राप्त करना ही दुष्कार होता है जब किसी महापुरुष ने इस विषय में सहायता दे दी तो फिर साहसी जनसमुदाय उसके लिये हृदय से चेष्टा करने लगता है।

आपके जीवन के अन्तिम वर्ष पबलिक सर्विस कमीशन के सम्बन्ध में व्यतीत हुए। जब आप रायल कमीशन के मेम्बर नियुक्त हुए तब आप पंद्रह हज़ार रुपया प्रति वर्ष प्राप्त होने के अधिकारी हुए थे परन्तु आपने जब देखा कि इस अवस्था में बड़े लाट की कौंसिल के सभ्य का पद त्यागना पड़ेगा त्योंही शीघ्र आपने उसको अस्वीकार किया और उस सभा में रहते हुए कमीशन का कार्य करने लगे। सन् १९१३-१४ में आप इस कमीशन की रिपोर्ट तैयार करने में सहायता देने गये थे परन्तु शोक! कि वह रिपोर्ट अब उनके हस्ताक्षर के बिना ही निकलेगी। यह निस्सन्देह सत्य है कि यदि आप जीवित रहते तो भारत और इङ्गलैंड का शासन-विधि-सम्बन्धी सम्मेलन अवश्य करा देते।

सबसे बड़ा उपकार आपने "भारत सेवक समिति" नामक सभा से किया जिसका पूर्ण उद्देश्य यही है कि संसार के कार्यक्षेत्र में "राजनीतिज्ञ सन्यासियों" को भेजे जो कि इस देश के राष्ट्रीय जीवन की विक्षिप्त शक्ति में ऐक्य उत्पन्न करें। केवल हिन्दू मुसलमान व ईसाईयों ही के नहीं किन्तु आप समस्त भारतीय जनों के प्रेमी थे। आप भली प्रकार जानते थे कि यदि हम अपने देश के शासन में भाग लेना चाहते हैं तो प्रथम हमको राजनीतिज्ञान, बहुत विद्याध्ययन व आत्मत्याग परमावश्यक हैं। आपने समस्त भारत से प्रार्थना की थी कि जो लोग इसमें केवल धर्मभाव से कार्य करना चाहें वे इसके सदस्य हो जावें, बस आपके शब्द सुनते ही अनेकों आत्मत्यागी परोपकारी जन प्रतिवर्ष उस सभा के सदस्य होते जा रहे हैं। इस सभा का मुख्य स्थान भी बहुत अच्छे नगर (पूना) में रक्खा गया है जहां राजनीति ज्ञान प्राप्त करने के हेतु एक पुस्तकालय है जो समस्त भारत में श्रेष्ठ है। इस सभा में एक सभ्य होता है जो इसका अध्यक्ष कहलाता है, कुछ साधारण परिसभ्य होते हैं और कुछ सदस्य शिक्षाप्राप्त्यर्थं भी रहते हैं। यह सभा हम लोगों को शिक्षा देती है कि हम स्वच्छन्द सेवा व आत्मत्याग द्वारा मातृभूमि से हार्दिक प्रेम प्रकट करें, विविध जातियों में प्रेमभाव उत्पन्न कर और औद्योगिक व वैज्ञानिक शिक्षा में विशेषतः स्त्रियों व नीच जातियों की शिक्षा में सहायता दें। हम लोगों ने अभी इसका दस वर्ष का ही काम देखा है अभी भविष्य काल में इसके लिए दीर्घ उन्नतिक्षेत्र पड़ा हुआ है।

आपके अनुभवशील और तेजोपूर्ण कार्यों को देखकर हृदय प्रेमतरङ्गों से उमड़ने लगता है। आप कठिनाइयों से कदापि हतोत्साह नहीं हुए क्योंकि "विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रति हन्यमानाः प्रारभ्य चोत्तमजना न परित्यजन्ति" अपने मार्ग में आए हुए विघ्नों को काटकर अपना मार्ग सरल और सुगम बना लेते थे। सन् १९०५ से ०९ तक जो घोर असुविधाओं का समय था आपने अपनी बुद्धिप्रखरता और साहस, आत्मसंयम और शान्ति से सब दुर्घटनाएँ दूर करदी थीं क्योंकि न तो आप राजविरोधी थे न आप राजा के शब्दमात्रों के अनुकरण करनेवाले थे। आप राजनीति को

अच्छी प्रकार समझकर कार्य करते थे। आप किसी अन्याय को सहन नहीं कर सकते थे जो सत्य होता था बेधड़क कह देते थे। सन् १९०८ के बजट की वक्तृता में आपने बड़े लाट से कह दिया था कि "सरकार अवश्यमेव सब गड़बड़ों को न्याय से सहला दबा सकती है परन्तु वास्तव में न तो पुलिस के डंडे की न सिपाही की बरछी की किन्तु केवल राजनीतिज्ञता, बुद्धिमत्ता और साहस की ही आवश्यकता है। और मनुष्यों को इस योग्य बनाना चाहिये कि वे अपने कल्याण को समझें ऐसा करने के लिए कुछ शासनविधि के अन्तरङ्ग भावों का पूरा २ परिवर्तन करना पड़ेगा।" यदि अब वह परिवर्तन हो गया है तो हमको समझना चाहिये कि यह सब गोखले की उस शक्ति का प्रभाव है जो इङ्गलैंड के आन्तरिक भाव भारत को और भारत की वास्तविक दशा इङ्गलैंड को समझाती थी। राज्यसम्बन्धी दो विरोधी पक्षों से आप बहुत दूर थे, आप मध्यस्थ थे, सदा अपनी बुद्धि अन्तःकरण व सत्य के अनुगामी थे। आपही के देशवासी जब आपसे द्रोह करते थे तो आप उनको अपनी सहनशीलता और शान्तात्मा से अशान्तिरहित करते थे। आपको इसकी कुछ परवाह न थी कि लोग आपकी निन्दा करें, आपका साथ छोड़ दें, आपका निरादर करें यहां तक कि आपका देशीय कार्य भी बन्द कर दें तौभी कुछ नहीं परन्तु आप वह पुरुष न थे कि जो अपने देशोत्कर्ष के मूल से हाथ धो बैठते। जो कुछ आप स्वयमेव भारत की उन्नति के हेतु उचित समझते थे वही करते थे और कहते थे। सन् १९०७ में प्रयाग की वक्तृता में आपने कहा था कि "मैं चाहता हूं कि हमारे देशवासी अपने देश में वैसे ही होवें जैसे और देशों में वहां के मनुष्य; जाति आदि का विचार त्याग कर उन्नतिमार्ग पर सब मिलकर चलें। भारत समस्त राष्ट्रों में राजनैतिक, औद्योगिक, धार्मिक, साहित्यिक, वैज्ञानिक और कलासम्बन्धी उच्चस्थान पावे" आपने अपना जीवन भारत की राष्ट्रीय दशा व शासनविधि सुधारने के सम्बन्ध में व्यतीत किया। कौन्सिल में यद्यपि आपके विरोधी बहुत थे आपको सलाह देनेवाला कोई न था तथापि अपनी योग्यता व अद्वितीय श्रम से आपने राजनीति व शासनप्रणाली का परिपक्वज्ञान प्राप्त कर लिया था।

वास्तव में ईश्वर के सिवा और किसी की सहायता के आप भूखे न थे क्योंकि आप अपनी कुशाग्र व कुशल बुद्धि से परिश्रम व अध्यवसाय का सदा पूरा २ सेवन किया करते थे। आपका उपदेश भी सबके लिये यही रहता था कि परिश्रमी बनकर देशोपकार करो और धन, द्रव्य, पद और प्रतिष्ठा के लालची न बनो। इस बात को आपने सिद्ध करके भी दिखला दिया। जब आपको के० सी० आई० ई० की पदवी सम्राट् की ओर से दी जानेवाली थी तो आपने स्वाभाविक नम्रतापूर्वक उसे अस्वीकार किया।

एक बार जब आप श्रीमती सरोजनी नायडू के साथ चाँदनी रात में बैठे थे आपने उनसे कहा था "ये तारे और पहाड़ियां तुम्हारे साक्षी हैं, इनके सामने अपनी जन्मभूमि के लिए अपना जीवन, अपनी योग्यता, अपना संगीत, अपनी वक्तृता, अपने विचार व अपना स्वप्न उत्सर्ग करो। पहाड़ व घाटियों में देश की दशा देखो और घाटियों से परिश्रमीजनों की दशा देखो और उनमें आशा का सँदेशा फैलाओ।"

अहो! कैसे साहस, आशा व विश्वास के उत्पन्न करनेवाले वचन हैं। क्या ऐसे माधुर्यमय देशभक्तिभावभरित, उत्साहपूर्ण और राजनीतिविशिष्ट वाक्यों को सुनानेवाले माननीय गोखले यहां से सदा के लिए चले गये? नहीं २ यह असम्भव है। उनकी आत्मा का सत्प्रभाव अब भी भारत में—नहीं नहीं—समस्त संसार में, राजा और रङ्क के हृदय में सञ्चालन कर रहा

है। आपके जीवन से शिक्षा लेकर कार्यक्षेत्र में सोत्साह कूद पड़ना चाहिये और स्वार्थ त्याग कर स्वदेशोपकार में तत्पर होना चाहिये। ईश्वर से हमारी यही प्रार्थना है कि,

देवैं ऐसे तिय नर-वर वे सतरत नित जे होवैं।
अस अधिकार राजलोलुप ह्वै, देसकीर्ति जनि खोवैं॥
सत्व समर माहीं स्वदेस के द्रोही-जननु पछारैं।
करि स्वतंत्रता-सेवन अपनो जीवन सदा सँवारैं॥
राखैं श्याम भरोस, निज करतब महँ चितधरैं।
नासैं सकल स्वदोस, सदाचार मूरति बनैं॥

आशा विफल हुई।

आयो एक भ्रमर विकासित सरोज पास,
मंजु मकरन्द के सनेहजाल परि कै।
तौलौं कुसुमार दिवाकर बिदा ह्वै गयो,
मुंदिगो सरोज भौंर ठौरै रह्यो डरि कै॥

बीतैगी विभावरी प्रकाश भानु दैहै तब,
जैहौं कहूं बाहर सुपासों हौं निकरि कै।
सोंचत ही रहिगो उपाय इमि जौलौं वह,
तौलौं गज तोरयो आय पांखुरी पकरि कै॥

"कुसुमाकर"

नैतिक-साहस।

[लेखक—श्रीयुत विश्वनाथ देव।]

साधुता का बल नैतिक और शारीरिक साहस है। इसी के बल सभी सच्चे साधुमनुष्य तथा साध्वी स्त्रियां सांसारिक हास्य और घृणा की परवाह नहीं करते।"

"जो कोई प्रतिदिन एक दो विघ्नों का सामना नहीं करता, मनुष्य-जीवन से क्या शिक्षा मिलती है उसे उसने नहीं सीखा।"

मेरा वक्तव्य विषय 'नैतिक-साहस' है अतः 'शारीरिक-साहस' का समावेश पूर्णतया इस लेख में नहीं हो सकता, किन्तु यत्रतत्र प्रकरणानुसार इसकी चर्चा अवश्य की जायगी।

'नैतिक-साहस' वही शक्ति है कि जिसके बल, जिस विषय को हम लोग ठीक जानते हैं उसी को कहते और करते हैं। अतः शारीरिक-साहस सर्वदा नहीं किन्तु बहुधा नैतिक-साहस का अवश्य साथ देता है। हम लोगों को बहुधा नैतिक-साहस अपने परिणामस्वरूप शारीरिक वेदनाओं को सहन करने के लिए उत्तेजित करेगा। नैतिक-साहस मन का और शारीरिक-साहस शरीर से सम्बन्ध रखता है किन्तु मन और शरीर में परस्पर इस प्रकार का घनिष्ठ सम्बन्ध है कि मनुष्य-जीवन में एक प्रकार के साहस को दूसरे प्रकार के साहस से पृथक् करना मुझे असम्भव सा जान पड़ता है। मानुषिक साहस के जितने उदाहरण हैं उनमें नैतिक-साहस तथा शारीरिक साहस परस्पर मिले हुए हैं। जहां पर शारीरिक वेदना सहन करने की दृढ़ता है वहां पर कर्तव्य का ज्ञान भी है। परन्तु जहां पर किसी मनुष्य में शारीरिक साहस कम से कम बहुत ही थोड़ा नैतिक साहस का बोध कराता है वहां पर नैतिक-साहस कहीं अधिक जतलाता है, क्योंकि ऐसे

बहुत सी चीजें हैं जिनको सहन करने में शारीरिक वेदना सहन करने की अपेक्षा अधिक कठिनता पड़ती है; किन्तु नैतिक साहस सत्य के लिए उन सबों का सहन करने में सक्षम है। यही नैतिक साहस हम लोगों को अपना कर्त्तव्य कर्म सम्पादन करने के लिए सर्वदा सुदृढ़ बनाये रखता है। इसी के बल सब विघ्नबाधा, लोकपरिहास, क्षति तथा कष्ट सहते भी हम लोग जिसको ठीक जानते हैं उसी को सोचते, कहते और करते हैं। इस प्रकार का साहस सर्वोन्नत है तो भी हम लोगों को सचराचर इसकी आवश्यकता है; हमें अपने जीवन में प्रतिदिन क्या प्रायः प्रति घंटे ही इसी साहस को दिखलाना पड़ता है।

यही सर्वोत्कृष्ट वीरत्व है जिसे हम लोग अपने जीवन में प्रतिदिन दिखलाते हैं; क्योंकि यह चरित्र का बल है जिसकी तुलना दूसरी शक्तियों के साथ करने से वे दुर्बल जान पड़ती हैं। यह वही शक्ति है जो वय या स्त्री, पुरुष का भेद न करके शारीरिक बल या दुर्बलता की अपेक्षा न करके प्रत्येक के हृदय में बल का सञ्चार करती है; सिवा इसके हम लोगों की अवस्था के साथ २ यह बढ़ती जाती है तथा बहुधा हम लोग प्रत्येक का शारीरिक बल जितना ही ह्रास होता जाता है उतना ही यह प्रबल होती जाती है।

प्रत्येक दशा में सत्य बोलना नैतिक साहस है। जब हम लोग अपने किए हुए अपराध को जान जाँय तब उसकी लज्जा से न डरना किन्तु निर्भय होकर अपना अपराध स्वीकार कर लेना नैतिक साहस है। साधु होने से लज्जित न होना, सचमुच अपने को यथातथ्य प्रकाशित करना नैतिक साहस है। दूसरों के साथ तुलना करने से यदि हम लोग दरिद्र ठहरें, दुर्बल जान पड़ तथा अज्ञान हों तो इससे लज्जित न होना नैतिक साहस है। साधारणतः दूसरों के साथ तुलना करने से यदि हम लोग निकृष्ट ही ठहरें परन्तु इससे लज्जित न होकर बल्कि सभी दशाओं में किसी मनुष्य की परवाह न करके केवल अपने कर्त्तव्य कर्म तथा ईश्वर की ओर अपना लक्ष्य रखकर, आडम्बर शून्य निष्कपट एवं साधुभाव से अपने कर्तव्य कर्म को सम्पादन करने की यथासाध्य चेष्टा करें तो हमारा ऐसा करना नैतिक-साहस है। बहादुरी से विपत्ति का सामना कर हृदय में भावी मङ्गल की आशा धारण कर तथा विपत्तिरूप मेघ के भीतर शुभ सूर्य को पाकर, शान्त एवं अविचल चित्त से दुःख, नैराश्य तथा शोक को सहन करना नैतिक-साहस है। 'रेनेलटेलर' नामक एक पञ्जाबी अफसर की जीवनी में जो कि अभी हाल ही में छपी है, लिखा है कि वह सम्पूर्णतया निर्भीक बहादुर था, वह केवल युद्ध ही में नहीं और न शारीरिक दुःख ही सहने में निर्भय था किन्तु अपने जीवन के प्रतिदिन के कार्य में निडर रहा करता था। वह ईश्वर को छोड़ कर और किसी से नहीं डरता था। ईश्वर के अतिरिक्त और किसी से न डरना नैतिक साहस है। मनुष्य के कर्तव्य कर्म का बहुत बड़ा हिस्सा इस प्रकार के साहस में आजाता है। इसके होने से सभी अच्छे गुण सहायक रूप से इसमें आजाते हैं। इसका अभिप्राय यही है कि आप मनुष्यों के सामने इन गुणों को दिखलाने में लज्जित नहीं होते हैं। नैतिक साहस का ठीक यही अर्थ है कि हम लोग साधु और गुणी होने में लज्जा न करें। वस्तुतः यह एक उन्नत गुण है जो कि सब से अधिक प्रतिष्ठा के योग्य है; क्योंकि वही मनुष्य सच्चा मनुष्य है जो इसको पूर्णतया और सचमुच प्राप्त करता है और किसी बात को ठीक ठीक जानकर उसको करने के लिए साहस करता है। परन्तु तो भी मुझे सन्देह ही है कि इस प्रकार के सर्वोन्नत गुण का जितना आदर होना चाहिये साधारणतः उतना

नहीं होता। कभी २ तो ऐसे मनुष्यों की हंसी उड़ाई जाती है। संसार में बहुधा इसका दर्जा शारीरिक साहस से कम ही दिया जाता है जोकि मन शरीर से जितना बड़ा है उतना ही इससे बड़ा है।

किन्तु शारीरिक साहस, बहादुरी तथा बल को इनकी योग्यता से कहीं अधिक महत्व देना प्रधानतः नवयुवकों की स्वाभाविक प्रवृत्ति ही होगई है और जो मनुष्य अपना सम्पूर्ण कर्तव्य कर्म सम्पादन करने के लिए दृढ़तापूर्वक यत्न करता है किसी भी कठिनता से नहीं डरता उसका नैतिक मान उसी प्रकार कम समझा जाता है। उदाहरणार्थ स्कूल के विद्यार्थियों की प्रवृत्ति की ओर ध्यान दीजिये—क्या वे लड़के जो खेल में घोड़े पर चढ़ने या सामान्यतः शारीरिक स्फूर्ति और बल में दूसरों से तेज हैं अपने को उन लड़कों से जो कि पढ़ने में परिश्रमी हैं, सहनशील हैं तथा सुशील एवं अच्छे हैं, अधिक योग्य नहीं समझते? इससे मेरा यह अभिप्राय नहीं है कि मैं शूरतासम्बन्धी खेलों को तुच्छ समझता हूं; मैं जानता हूं कि उनका मूल्य बहुत अधिक है; मुझे विश्वास भी है कि ये पुट्ठों के साथ चरित्र को भी सबल करते हैं। किन्तु चरित्र बहुत बड़ी चीज़ है और पुट्ठे चरित्र नहीं हैं। निश्चय ही ज्ञान और सत्यासत्य-विवेचन-शक्ति कोमल या सुन्दर शरीर की अपेक्षा कहीं अधिक महत्व की है। क्या प्रसन्न-चित्त, निःस्वार्थता और दयालुता आदि गुण शारीरिक बल से बड़े नहीं हैं? क्या राम और अर्जुन का बड़प्पन उनकी बहादुरी की अपेक्षा उनके साधुस्वभाव के कारण अधिक नहीं है? जब हम लोग इन प्रश्नों को सोचते हैं तब इनके उत्तर में 'हां' अवश्य कहते हैं। किन्तु जैसा हम लोग सोचते हैं वैसा कार्य सर्वदा नहीं करते। शायद सर्वदा हम लोग सोचते ही नहीं। यदि हम लोग उतना दूर तक सोचें तो नैतिक विषयों की प्रतिष्ठा कहीं अधिक हो और ये हमारी आँखों के सामने अधिक रहें किन्तु ये छिपे रहते हैं।

मैंने अभी कहा है कि चरित्र-बल जिसको हम लोग नैतिक-साहस कहते हैं कभी २ सम्मानित न होकर हम लोगों का उपहास कराता है। इसका कारण भी यही है कि लोग सोचते नहीं। लोग सोचते तो नहीं किन्तु दूसरों का अनुकरण करते हैं; पृथ्वी पर या किसी भी छोटे खण्ड में जहां वे रहते हैं प्रचलित मतों को देख कर उन्हीं का अनुकरण करते हैं। इसका परिणाम यही होता है कि कोई भी नूतन वस्तु कितनी ही अच्छी क्यों न हो यदि उस समय के प्रचलित मत से वह न मिलती हो; तब उसके केवल नये ही होने के कारण प्रायः लोग उसकी अवज्ञा करते हैं। पृथ्वी की दैनिक गति तथा सूर्य के चतुर्दिक उसकी वार्षिक परिक्रमा आदि सिद्धान्तों को आजकल के मनुष्य वैसाही मानते हैं जैसा कि वैज्ञानिकों ने इन्हें प्रमाणित किया है। किन्तु अभी थोड़े ही दिन हुए कि इन सर्वमान्य सिद्धान्तों की यूरोप का सबसे बड़ा वैज्ञानिक अवज्ञा करता था। सत्रहवीं शताब्दी के आरम्भ में जब गैलिलियो ने इन सिद्धान्तों को स्थिर किया तब ये असम्भव और अधार्मिक कहे गये और उस बड़े वैज्ञानिक को इस प्रकार के सिद्धान्त मानने, सिखलाने या पुष्टि करने से पोप ने मना कर दिया। वैज्ञानिक ने अपने धर्मगुरु पोप की आज्ञा स्वीकार करली; किन्तु आजकल सभी मनुष्य जानते हैं कि गैलिलियो सच्चा और पोप झूठा था।

अब आप देखें कि किसी नूतन वस्तु को एक बड़े वैज्ञानिक के सम्मुख प्रचार करने में कुछ ऐसे महान् पुरुष के साहस से बढ़कर अधिक नैतिक साहस की आवश्यकता है। एक विचित्र वस्तु को जनसमुदाय में प्रचार करने के लिए मनो-बल की भी आवश्यकता है। एक

साधारण छाते ही को ले लीजिये । एशिया में इसका प्रचार बहुत दिनों से है; परन्तु यह सुन कर शायद आपको आश्चर्य होगा कि इङ्गलैंड में इसका प्रचार हुए डेढ़ सौ वर्ष से अधिक नहीं हुए हैं पहले पहल १७५० ई० में मि० जोनस हैनवे छाते को वहां ले गया जो चीन तथा पूर्वीय दूसरे २ प्रान्तों में रह चुका था । लोग कहते हैं कि वर्षा के दिन जब वह छाता लगाये गलियों में घूम रहा था, तब मनुष्य और लड़के उसकी ओर मुंह बना बना कर चिढ़ाते थे और उसपर कंकड़ तक फेंकते थे । आप देखें कि ऐसी छोटी बात के लिए कि मनुष्य छाते का उपयोग समझें अत्यधिक नैतिक-साहस की आवश्यकता थी । आप यह भी देखें कि नैतिक धुन ने अन्त में विजय लाभ भी की है कि प्रायः प्रत्येक इङ्गलैंडनिवासी इस वस्तु को अब अनिवार्य वस्तु की तरह धारण करता है जो कि १५० वर्ष पहले अस्वाभाविक एवं हास्यप्रद समझी जाती थी ।

इसी प्रकार हम लोग सभी कार्य तथा उद्योगारम्भ में बहुधा अनुत्साहित किये ही जाते हैं, किन्तु अन्त में विजय-लाभ के लिए हम लोगों को अध्यवसाय एवं साहस की आवश्यकता होती है । भूतपूर्व बेकन्सफील्ड की जीवनी में इस प्रकार के साहस का जानने-योग्य एक दृष्टान्त है । उस शताब्दी के वृटिश-हाउस-आफ्-कामन्स के बड़े २ वक्ताओं तथा राजनीतिज्ञों में से एक ये भी थे । पहले पहल जब वे पार्लियामेंट में बोले तो उनकी हंसी उड़ाई गई । इसमें सन्देह नहीं कि उनका ढंग तथा आकृति कुछ विलक्षण थी । किसी प्रकार उनको अपनी वक्तृता बन्द ही करनी पड़ी, पराजित तो हुए किन्तु उन्होंने हिम्मत न छोड़ी । जब उन्होंने अपना आसन ग्रहण किया, भावी महत्व-प्रदायक साहस के साथ बोल उठे कि हमने कई बार अनेक विषयों का आरम्भ किया है और बहुधा अन्त में सफलता भी प्राप्त की है, महाशय, स्मरण रहे कि इस बार यद्यपि मैं चुपचाप बैठ जाता हूं, तथापि एक दिन ऐसा आवेगा कि जिस दिन आप मेरी बात अवश्य सुनेंगे । वे इसी धुन में लगे रहे और सचमुच ऐसा समय उपस्थित हुआ कि सम्पूर्ण इङ्गलैंड उनके वाक्यों पर मोहित होगया । ऐसा ही हुआ है और समयान्त पर्यन्त ऐसाही होगा । लोग नैतिक खूबी की ओर अन्धे रहते हैं, किन्तु जिसमें दत्तचित्त रहने का साहस है अन्त में उसकी प्रतिष्ठा होगी और वह माना जायगा ।

लार्ड लारेन्स की जीवनी का लेखक १८५७ के पञ्जाब के अत्यन्त नाजुक समय को वर्णन करता हुआ निम्नलिखित मन्तव्यों को प्रकाश करता है, साहस दो प्रकार के हैं एक प्रकार का साहस सर्वदा उत्फुल्ल रहता है; ईश्वर जिस को आशाशील प्रकृति प्रदान करते हैं उसी में इस प्रकार का साहस परिलक्षित होता है । इस प्रकार के मनुष्य विपद से चिन्तित होना क्या उस पर ध्यान ही नहीं देते; वे बारूद भरी सुरङ्ग तथा तोपखाने के बीच हँसते मुख और प्रसन्नचित्त से विचरा करते हैं । किन्तु इससे भी उच्चतर एक दूसरे प्रकार का साहस है । यह धीर और युक्तिपूर्ण साहस दायित्वपूर्ण शासक ही में परिलक्षित होता है जो सम्पूर्ण विषयों को अपनी आंखों से देखने में दृढ़संकल्प रहते हैं, विपद उपस्थित होने पर उसके अङ्ग प्रत्यङ्ग की जांच पड़ताल करते हैं । जय पराजय होने से किस प्रकार लाभ या हानि होगी उसकी पूर्ण उपलब्धि करते हैं तथा दूसरे भी आवश्यकतानुसार इसकी उपलब्धि करें इसके लिये यत्नवान रहते हैं और विपत्ति उपस्थित होने पर जिस प्रकार इसका व्यतिक्रम किया जायगा इसके पूर्वही व्यय तथा जय या पराजय की सम्भावना का विचार कर यथा-साध्य सम्भव को असम्भव सा कर डालने में कृत-संकल्प रहते हैं । पहले ही सब बातें देख लेना, राजनीतिज्ञों के समान विचार करना ऐसे

ही मनुष्य का खास हक है जो किसी के कहने या ख्याल करने की परवाह न कर प्रशंसा या निन्दा की प्रतीक्षा न कर इसका फल कैसा ही क्यों न हो सत्यकार्य करने में दृढ़संकल्प रहते हैं और समय आपड़ने पर आत्मोत्सर्ग भी कर बैठते हैं। अर्थात् वागिन्द्रिय-संयम, अपनी प्रबल इच्छाओं का दमन तथा सत्यसंकल्प में जो कुछ बुराई हम लोगों में प्रवेश कर गई है उसको दृढ़ानुरक्ति द्वारा बहादुरी से मार भगाने में नैतिक साहस पूर्ण रूप से दिखाया जा सकता है। किन्तु अपने पड़ोसियों के प्रति उन विषयों के लिए जिनको हम लोग बुरा समझते हैं, दोषारोपण करने से नैतिक-साहस नहीं दिखाया जा सकता। पहले पहल अपने ही कुविचारों पर विजयलाभ करना उचित है। हम लोगों का पहला कर्त्तव्य अपने ही प्रति मनोयोग करना है; और हम लोगों को केवल इसी एक कर्त्तव्य-कर्म सम्पादनार्थ अनेक कार्य करने पड़ेंगे, बहुत से शत्रुओं से संग्राम करना पड़ेगा तथा नैतिक साहस दिखलाने के लिये अनेक अवसर उपस्थित होंगे, क्योंकि मनुष्य के सबसे भयानक शत्रु उसके हृदय की बुरी इच्छाएँ तथा बुरे कर्म हैं। इन्हीं सब शत्रुओं के विरुद्ध हम लोगों में से प्रत्येक को जीवन-व्यापी संग्राम करना पड़ेगा।

मैं कह चुका हूं कि सत्य साहस बुद्धि ही पर स्थिर रहता है। इसकी पुष्टि के लिए दृढ़-संकल्प भी अत्यावश्यक है। नैतिकभाव को लेकर यह कहा जा सकता है कि संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं है जिसको बलवती इच्छा प्राप्त नहीं कर सकती। जीवन धारणार्थ जितनी वस्तु आवश्यकीय हैं दृढ़ मनोरथ के लिए सब कुछ सम्भव है। जब किसी अच्छी वस्तु के लिए दृढ़मनोरथ का अभ्यास जोर शोर से किया जाता है तब यह असम्भव वस्तु को सम्भव [illegible] कर सकता है। यदि आपका संकल्प दृढ़ एवं साहसपूर्ण हो तो आप जो चाहें हो सकते हैं। हम सभी जानते हैं कि जिस मनुष्य का संकल्प दृढ़ है उसका प्रभाव दूसरों पर किस तेजी के साथ पड़ता है; यह प्रभाव केवल नैतिक ही नहीं है किन्तु कुछ अंश में शारीरिक भी है। निश्चय ही यह प्रभाव अपने मन तथा शरीर पर अधिकतर पड़ता है। मनुष्य के दृढ़ संकल्प का प्रभाव उसके शरीर पर इतना पड़ता है कि रोगाक्रान्त सिपाही भी युद्धजनित मनोत्तेजना में भयानक बुखार से मुक्त सा हो अपने बिस्तर से उठ खड़ा होता है। मैं स्वयं इस प्रकार के एक दृष्टान्त को जानता हूं। दृढ़ संकल्प बिफल मनोरथ नहीं होता, यह अवश्यही फल लाता है।

इस प्रकार के साहस का एक जानने योग्य दृष्टान्त जिसको आप दृढ़ संकल्प ही कहें, बाबर की जीवनी में दिया है। यह किसी बीमारी से मुक्त होने का नहीं किन्तु दूसरे की बीमारी को अपने ऊपर ले लेने का एक दृष्टान्त है। एल्फिन्स्टन के कथनानुसार बाबर एशिया में सबसे बढ़कर प्रशंसनीय राजा हुआ है। सरल स्वभाव के साथ २ उसमें बड़ा साहस भी था और अध्यवसाय उसकी असाधारण प्रज्ञाशक्ति सी हो रही थी। 'तवारीखिए बाबर' नामक पुस्तक में उसने अपने साहसिक कर्मों का वर्णन ऐसे निष्कपट और सरल ढंग से किया है कि सभी का दिल उधर खिंच जाता है। वह यथार्थ मनुष्य था; उच्च और साधु था किन्तु मनुष्योचित कमी से बचा भी नहीं था। उसका जीवन ही विचित्र है; किन्तु उसकी मृत्यु का ढंग जैसा कि इतिहास में वर्णित है उससे भी विचित्र है। ऐसा लिखा है कि जब हुमायूं रोगाक्रान्त हुआ और मृतप्राय हो रहा था, तब बाबर ने अपने पुत्र को बचाने के लिये आत्मोत्सर्ग की प्रतिज्ञा की। अतः हुमायूं के विस्तर के चारों ओर कुछ समय सच्चे हृदय से ईश्वर की प्रार्थना करते हुए तीन बार उसने भ्रमण किया और अन्त में

बोल उठा कि हमने इससे इसकी बीमारी को ले लिया। सम्भव है कि पिता के दृढ़ संकल्प ने उस पुत्र के हृदय में स्वस्थ होने का अटल विश्वास पैदा कर दिया हो। कम से कम इतना तो निःसन्देह सच है कि उस दिन से हुमायूं अच्छा और बाबर क्षीण होने लगा। खैर इस घटना का कुछ औरही कारण हो किन्तु मुसलमानों का इस कथा पर हमारे वर्णन का सा विश्वास है। और साधारणतः मेरा यह विचार है कि हम सब इस बात को अवश्य स्वीकार करेंगे कि जब मनुष्यसंकल्प का उपयोग तेजी से किया जाता है तब यह ईश्वरेच्छा में भी कुछ प्रभाव डाल देता है क्योंकि यदि ऐसा न हो तो ईश्वरप्रार्थना से अभिप्राय ही क्या है यह वही बल है जो ईश्वर से प्राप्त होता है अर्थात् जो ईश्वर की प्रार्थना करते हुए उसमें तन्मय होने से प्राप्त होता है, जो मनुष्यों को, जैसा मेरा विश्वास है सच्चा साहस प्रदान करता है। इस प्रकार के साहस को शारीरिक या मानसिक वेदना, आपत्ति और क्लेश कोई भी नहीं पराजय कर सकता है।

हम अपने सबों के अभ्यास करने योग्य कुछ बातों को कहकर इस लेख की समाप्ति किया चाहते हैं। जिसको हम लोग ठीक समझें उसी को अपने सम्पूर्ण हृदय, मन, आत्मा तथा बलपूर्वक सुदृढ़ एवं अचल नैतिक साहस के साथ, ईश्वर, कर्त्तव्य तथा हिताहित ज्ञान के भिन्न और किसी से न डर कर करें। हमलोगों को भी अपने शत्रुओं को जीतना है, वे ये हैं मूर्खता, क्रोध, अमिष्ट भाषण, मद तथा अहंमन्यता ये शत्रु कभी विश्राम नहीं करते, इनका दमन केवल दृढ़ साहस तथा अविश्रान्त उत्साह ही द्वारा हो सकता है।

हम लोग अपनी अत्यधिक परीक्षा नहीं कर सकते। अतः हम लोगों के साहस का संस्कार प्रज्ञा द्वारा हो सकता है किन्तु सत्यपथ का एकबार निश्चय हो ही जाने से हम लोगों को उस पर दृढ़ संकल्प के साथ लिपट जाना चाहिये। अपने में केवल दृढ़ता ही होने से हम लोग अपने निकटवर्त्ती मनुष्यों को उत्साहित कर सकते हैं। यदि हम लोग सबल हैं तो वे भी सबल होंगे। किन्तु यदि हम लोग निर्बल हैं तो उनकी गति भी रुद्ध हो जायगी। मुझे भय है कि शायद विचारशून्यता या निर्बलता के कारण हम लोग जनसमुदाय ही का अनुकरण करने की ओर अधिक झुक जाते हैं और कुकर्म करने तक उनका पीछा नहीं छोड़ते। उसी प्रकार मुझे और भी भय है कि शायद अपनी विवेचनशक्ति तथा आत्मा के विरुद्ध भी बहुधा हम लोग कुछ कर डालते हैं। यदि ऐसी ही बात है तो साहस अपना प्रत्यक्ष कर्तव्य होते हुए इस कायरता के लिए क्या हम लोग दोषी नहीं हैं? नैतिक दृष्टि से मान लीजिये कि हम लोग डूबते हुए बेकेनहेड नामक जहाज़ में सिपाही के पद पर नियुक्त हों और तब यदि अपने अफसर की आज्ञा पाकर अपनी २ जगहों पर न डट गये तो क्या हम लोग नैतिक विचार से भीरु एवं कर्तव्यरहित नहीं हैं? क्योंकि अपनी आत्मा ही अपना आज्ञादाता अफसर है; और कालेज हम सब विद्यार्थियों के लिये एक जहाज़ सा है, जिसे हम लोगों को अपने २ स्थान पर रहकर ठीक २ खे लेजाना है और इसके बन्दरगाह तक निरापद पहुंचा देना है।

ईश्वर के अतिरिक्त और मनुष्यों से न डर कर दिलेर एवं दृढ़ होने का यत्न कीजिये। किसी भी कार्य में जिसको आप करने जाते हैं या जिसके विषय में कुछ कहते हैं, अपने हृदय में केवल यह विचार रहने दीजिये कि—क्या यह कार्य ठीक है या नहीं? और यदि आपकी आत्मा इसे सत्य बतलावे तो आप किसी भी बाधा से न डर कर उसको दृढ़तापूर्वक कीजिये और कहिये। कुछ आपके साथी आपके विरुद्ध भी हो सकते हैं और कभी २ तो आप मनुष्यों

के प्रीतिभाजन तक भी नहीं हो सकते हैं किन्तु इसकी परवाह न कर दृढ़ एवं बहादुर बनिये, क्योंकि ईश्वर आपके पक्ष में है। जबतक आप जानते हैं कि आपका संकल्प सत्य है, लोग आपको कैसा भी क्यों न ख्याल करें उसकी परवाह न कीजिये। जबतक आप अपने अंतःकरण की आज्ञा पालन करते हैं तबतक सत्यता के साथ उसकी आज्ञा पालन करते चले जाइये। पवित्र-हृदय अच्छे प्रकार दिलेर हो सकता है क्योंकि उसको किसी का भय नहीं रहता। अतः जो ठीक हो उसी को कीजिये तथा साहस रखिये; ईश्वर-प्रदत्त कवच पहिन सबल बने रहिये और उसी की सहायता से हम सब अपने प्रत्येक पड़ोसी को सहायता तथा उत्साह देने के लिए कुछ कर सकते हैं, कठिन जीवन-यात्रा के पथ को कुछ सहज बना सकते हैं-अर्थात् यदि कोई मनुष्य नैतिक निर्बलता के कारण पदच्युत हो जाय तो उसकी जगह दूसरे को नियुक्त करना, छिन्न-भिन्न दल को उत्साहित कर बलवान बनाना, तब सजकर जीवन-यात्रा के कठिन मार्गों को पार करते हुए अन्त में ईश्वर को प्राप्त करना उसी की सहायता से हो सकता है।

इन सब का सिद्धान्त यही है कि ईश्वर से डरिये और उसकी आज्ञाओं का पालन कीजिये क्योंकि यही मनुष्य का सम्पूर्ण कर्तव्य है, क्योंकि ईश्वर हमारे प्रत्येक गुप्त या प्रगट अच्छे या बुरे कर्म का विवेचन करता है।

सम्पादकीय टिप्पणियां।

नया मन्त्रिमंडल।

मँझधार में जोड़ी बदलनी पड़ी! कहते हैं कि उदारदल का मंत्रिमंडल युद्ध के कठिन काम को अच्छी तरह सम्हाल सकने में असमर्थ था, 'टाइम्स' आदि विपक्षी पत्र और नेता उसकी कार्यवाहियों पर टीका-टिप्पणियां किया करते थे, इसलिए मंत्रिमंडल में भारी उलट-फेर करना आवश्यक होगया। अब जो नया मंत्रिमंडल तैयार हुआ है, वह गंगाजमुनी या संयुक्त मंत्रिमंडल है। उसके २२ मंत्रियों में १२ उदारदल के, ८ कान्सरवेटिव या लकीर के फकीर, १ मज़दूर दल के और एक लार्ड किचनर पक्षहीन हैं। लार्ड कर्ज़न, लैंसडौन आदि भारतवासियों के सुपरिचित मित्र और सर एडवर्ड कार्सन आदि अल्स्टर में बलवे का झंडा उठानेवाले भी अब अधिकारारूढ़ हुए हैं।

जब सारा मंत्रिमंडल उदार दल का था तभी बेचारे भारतवासियों को क्या मिल गया, अबतो शायद मुंह खोलने की भी गुंजायश नहीं है। जिन नये अनुदार मंत्रियों का प्रवेश हुआ है, उनका व्यक्तित्व बड़ा प्रभावशाली है और यह समझना असंगत नहीं है कि उनके ऊपर उदार मंत्री किसी तरह हावी न हो सकेंगे। ऐसी अवस्था में हमारा रामही मालिक है!

लार्ड क्रू अब भारतमंत्री नहीं रहे और उनका वियोग हमारे लिए खेदजनक है। यह सच है कि लार्ड क्रू भारतवासियों के स्वत्वों के उत्साही समर्थक नहीं थे; उन्होंने २५ अगस्त १९११ में सरकारी खरीते में प्रान्तिक स्वराज्य में दिये हुए वचन का खंडन करके भी बड़ी भारी गलती की, जिससे भारतवासियों के हृदय को चोट पहुंची। परन्तु फिर भी यह उल्लेखयोग्य है कि लार्ड हार्डिंग के परामर्श को मानकर वे बंग-भंग को रद्द करने के लिए राज़ी हो गये, उन्होंने इंडिया कौंसिल में भारतवासियों के निर्वाचित

प्रतिनिधि को स्थान देने के लिए बिल उपस्थित किया, जो पास नहीं हुआ और अन्त में संयुक्तप्रान्त के लिए कार्यकारिणी कौंसिल की स्थापना का समर्थन और लार्ड सभा के विरोध का प्रतिवाद किया। इन सब बातों के लिए भारतवासी उनको सराहेंगे। लार्ड क्रू मंत्रिमंडल में अब भी बने हुए हैं परन्तु उनका पद और कार्य अब दूसरा है। नये भारतमंत्री का नाम है मि० आस्टन चेम्बरलेन, जो एक प्रसिद्ध पिता के पुत्र हैं। भारतवासियों के प्रति ये किस नीति का अवलम्बन करेंगे, यह अभी देखना ही है।

चिरंजीलाल बागला डिस्पेन्सरी, हाथरस।
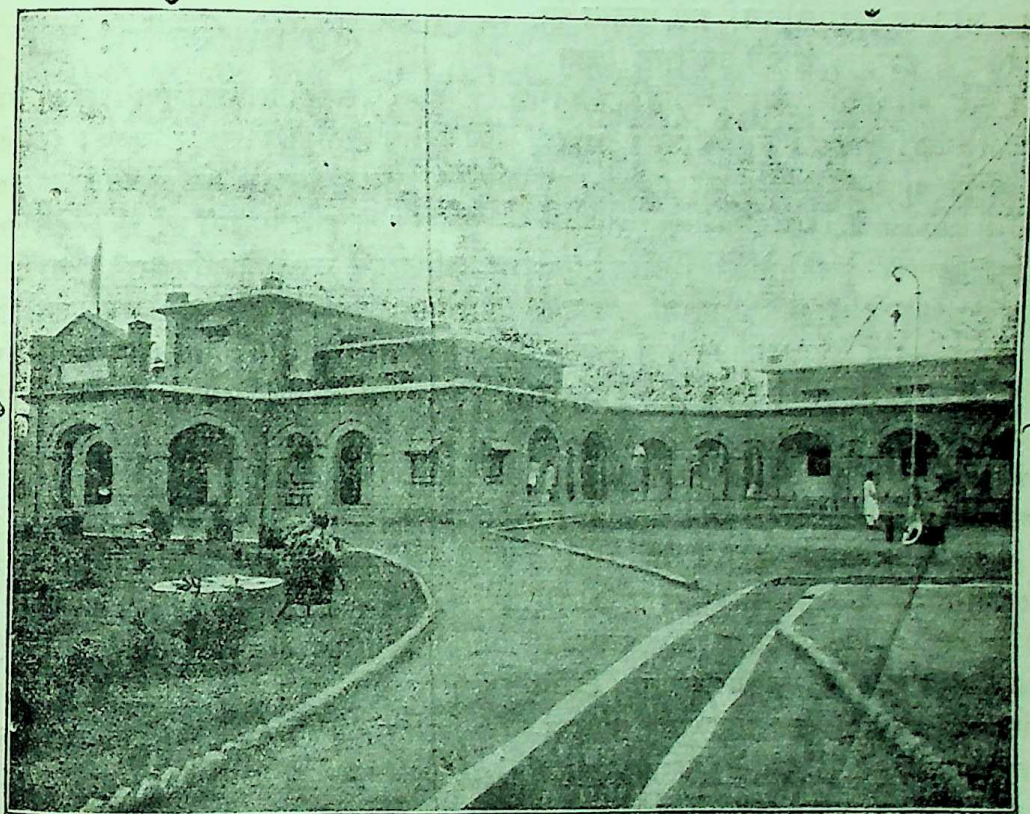
अलीगढ़ जिले के हाथरस नगर में जो सरकारी अस्पताल था और जिसे बने ४६ वर्ष होगये वह हाथरस के लिये बहुत छोटा और अपर्याप्त था। इस लिये हाथरस के प्रसिद्ध रईस, बैंकर, मिलओनर और अनरेरी मैजिस्ट्रेट सेठ चिरंजीलाल बागला ने ५३०००) रु० की लागत से एक नया विशाल और सुन्दर अस्पताल बनवा दिया है। इस नये अस्पताल का नाम इस समय "चिरंजीलाल बागला डिसपेन्सरी हाथरस" है। पुराने अस्पताल में केवल १५ मरीजों के रहने के लिये स्थान था पर नये में ४० मरीज रह सकते हैं। नये अस्पताल में एक उमदा "आपरेशन रूम" बना है और आंखा की परीक्षा करने के लिये एक कमरा अलग बनाया गया है और चार कमरे ऐसे बनाये गये हैं जिनमें बड़े अस्पतालों के समान रोगी किराया देकर रह सकते हैं। यह अस्पताल २७ अप्रेल सन् १९१४ को अलीगढ़ के कलक्टर मि० मैरिस सी० आई० ई० द्वारा खोला गया था।

विशेष कान्फरेन्स।

सन् १८३२ में यह तय हुआ था कि आगरा प्रान्त में कौंसिल गवर्नमेंट स्थापित की जाय। कुछ अनुदार सज्जनों की चालों से संयुक्तप्रान्त को यह नसीब न हुआ। बड़ी बड़ी कठिनाइयों के बाद दो वर्षों से यह मसला राजनीति के रंगमंच पर आया। सन् १३-१४ में यहाँ तक यह बढ़ा कि सर जेम्स मेस्टन और लार्ड हार्डिंग की सिफारिश के ज़ोर पर भारतसचिव ने इस मन्तव्य को पार्लमेंट के सभ्यों के सामने उपस्थित किया। लोग यह समझे कि अब देर नहीं है और अब कौंसिल मिल गई किन्तु लार्डों के विरोध के कारण आशा निराशा में परिणत हुई; उन लोगों ने कहा कि अधिकतर जनसंख्या इस सुधार को नहीं चाहती, कुछ थोड़े से शिक्षित मनुष्य ही इस सुधार के पक्ष में हैं। यह भी कहा गया कि सयुक्तप्रान्त में हिन्दू मुसलमानों में वैमनस्य बहुत है और कौंसिल की स्थापना से यह और अधिक बढ़ जायगा क्योंकि हिन्दू चाहेंगे कि एक सभ्य हिन्दू हो और मुसलमान चाहेंगे कि वह मुसलमान हो। इन पोच दलीलों का मुंह तोड़ जवाब देने के लिए ३० मई रविवार को प्रयाग में हिन्दू मुसलमान, राजा, नवाब, रईस और गरीब, जमींदार और साधारण मध्यम श्रेणी के मनुष्यों ने मिलकर एक विशेष कान्फरेंस की। सभापति थे राजा महमूदाबाद! आज के पहिले ऐसी सभा पहिले कभी इस प्रान्त में नहीं हुई थी। लार्डों की दलीलों की धज्जियां उड़ाई गईं और एक गवर्नर-इन-कौंसिल लीग की स्थापना हुई। इस लीग का उद्देश्य नियमबद्ध कार्यवाहियों द्वारा कौंसिल की स्थापना के लिए आन्दोलन करना होगा। लार्डों के हम इसलिए कृतज्ञ हैं कि उनकी बदौलत संयुक्तप्रान्त भी सजीव हो उठा और अब आशा होती है कि यह भी उन्नति की सीढ़ी पर दिन प्रतिदिन ऊँचा होता जायगा।

युद्ध की स्थिति!

प्रायः वैसी ही है गेलेशिया में कभी जर्मनों की विजय होती है और कभी उनकी हार होती है। पश्चिमीय रणक्षेत्र में मित्रदल की सेना "कुतरने" के काम में लगी हुई है। इस समय प्रिज़मिस्ल के चारों ओर घमासान युद्ध हो रहा है प्रायः एक सप्ताह में एक लक्ष जर्मनों का नरमेध हो चुका है। रूसियों को भी पीछे हटना पड़ा है किन्तु विगत दो चार दिवसों से रूसी सेना फिर सफलता प्राप्त कर रही है। नूतन बात इस मास में यह हुई है कि डार्डेनेलीज में तुर्कों ने अंगरेज़ों के दो तीन युद्ध-पोत डुबो दिये हैं, साथ ही इटली भी मित्रदल का साथ दे रणक्षेत्र में उतर आया है। इसने आस्ट्रिया पर विजयलाभ करना भी आरम्भ कर दिया है। इटली के आजाने से आस्ट्रिया की तबाही निश्चित सी है। मित्र दल को इससे बहुत लाभ पहुंचेगा साथ ही जर्मनों को बड़ी हानि भी उठानी पड़ेगी।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग, में बद्रीप्रसाद पाण्डेय के प्रबन्ध से छपकर प्रकाशित हुई।

भाग ९] जून सन् १९१५-ज्येष्ठ [संख्या ६

देश-भक्ति।

[लेखक-एक एम० ऍं० एल० एल० बी० ।]

सृष्टि के आदि में अर्थात् जब मनुष्य की इस संसार में प्रथम उत्पत्ति हुई, उस समय की दशा का अङ्गरेज़ तत्त्ववेत्ताओं ने जो वर्णन किया है उसमें वे कहते हैं कि इस आदि युग में मनुष्य किसी भी प्रकार के समाज में संगठित नहीं थे। प्रत्येक मनुष्य अपनी २ व्यक्तिगत तथा स्वतंत्र आजीविका प्राप्त करने का प्रयत्न करता था। उस समय केवल अपने २ पेट भरने की चिंता के सिवा और कोई उद्योग इन लोगों में न था। ये लोग जंगल में रहते, किसी खोह वा कंदरा में पशुओं के समान रात्रि काटते, वस्त्रों का काम वृक्षों की छाल तथा पत्तों आदि से लेते, तथा अपने आहार आदि का प्रबंध पशुओं को मार कर कर लेते थे। जब इस नित्यकर्म में शरीर की अस्वस्थता आदि के कारण बाधा आने लगी तब ये लोग खाने पीने का सामान संचित करने लगे। किन्तु ज़ो लोग बलवान थे वे इस प्रकार संचित किया हुआ आहारादि का सामान अपना बल दिखाकर बलहीनों से छीन ले जाते थे। किन्तु वे लोग भी ऐसे छीने हुए माल की पूरी रक्षा नहीं कर सकते थे, क्योंकि उनसे जो अधिक बलवान होता था, वह उनसे भी छीन लेता था। सारांश 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाली कहावत उस काल में पूरी तरह से चरितार्थ होती थी। आज कल के समय में भी यह नियम इस संसार में पाया जाता है; किन्तु उस युग और इस युग में इतनाही अन्तर है कि उस समय यह बात व्यक्तियों में पाई जाती थी और अब यह राष्ट्रों में देखी जाती है। आजकल जिस राष्ट्र का सैनिक दल बढ़ा चढ़ा एवं बन्दूक, तोपें, विज्ञान के नूतन आविष्कारों के आधार पर बनी हुई होती हैं, उसी

की जीत होती है । अस्तु । ऐसी स्थिति में आदि युग में बलवान से बलवान मनुष्य भी किसी प्रकार सुरक्षित नहीं था, क्योंकि उसे इस बात का भय सदा लगा रहता था कि मुझसे जो अधिक बलवान होगा वही मेरी इस सम्पत्ति का नाश कर डालेगा और होता भी ऐसा ही था । इस स्थिति में रहते हुए जब बहुत काल बीता और इस प्रकार का जीवन जब मनुष्यों को असह्य कष्टपूर्ण जी उबानेवाला और रसहीन मालूम हुआ, तब उन्होंने उसमें विचित्रता लाने का प्रयत्न किया। मनुष्य स्वभाव से ही विचित्रता पसंद करता है । एकही बात उसको कभी सन्तुष्ट नहीं रख सकती। ऐसी स्थिति में उन लोगों ने दल बांध कर रहना आरंभ किया। इससे मनुष्यों के छोटे २ दल जहां तहां दिखाई देने लगे। अब जब कभी लड़ाई झगड़ा होता तो व्यक्तिगत न होता किन्तु इन दलों के बीच होता। ये दलही आजकल के भिन्न २ समाज राष्ट्रों के प्रारम्भिक रूप हैं । एकही दल में रहने के कारण एक दूसरे को अपने मन का भाव समझने की आवश्यकता मनुष्यों को जान पड़ी और इसके लिए उन्होंने भिन्न २ प्रकार के शब्दों का उपयोग करना आरंभ किया । ये विचित्र शब्द ही इस समय की भिन्न २ भाषाओं के प्रारम्भिक रूप थे। इस प्रकार इन सब लोगों के एक जगह समावेश होने तथा वर्षा आदि से बचने के लिए इनको झोपड़ियों की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। सारांश भिन्न २ दलों का संगठन होने से इन लोगों को संसारयात्रा के साधनों की आवश्यकता बढ़ती गई और 'आवश्यकता आविष्कारों की जननी है' इस कहावत के अनुसार ये सब आवश्यकताओं को पूरा करते रहे। इसी प्रकार विवाह आदि संस्कार भी जारी हुए और भिन्न २ कुटुम्बों का श्रीगणेश हुआ। इस समाजसंगठन में एक बात विशेष ध्यान देने योग्य यह है कि इस प्रकार दल बांध कर रहने में प्रत्येक मनुष्य को अपनी २ व्यक्तिगत स्वतंत्रता के कुछ अंश को तिलाञ्जलि देनी पड़ी। इन दलों के पहले वे चाहे जो कार्य स्वतंत्रता से कर सकते थे, किन्तु ये लोग जबसे किसी विशेष दल के सभासद हुए तब से उनको इस प्रकार अपना व्यवहार रखना होता था जिससे उस दल के किसी अन्य सभासद को नुकसान न पहुंचे। अर्थात् इस दल में रहने के लिए या दूसरे शक्तिवालों से अपनी रक्षा करने के लिए इनको अपने स्वार्थ का कुछ त्याग करना और दूसरों के फायदे की ओर यदि नहीं तो नुकसान की ओर ध्यान देना आवश्यक हो गया। इससे यह सिद्ध हुआ कि समाज का संगठन आदि काल में थोड़ा बहुत अपने अपने स्वार्थ का त्याग करने से हुआ। यह बात हमको विशेष कर ध्यान में रखनी चाहिये। किन्तु जब भिन्न भिन्न कुटुम्ब होने से इन दलों की जनसंख्या बढ़ती ही गई एवं आवश्यकता के अनुसार एकही दलके भिन्न २ मनुष्य अपने तथा दूसरों के हित के लिए भिन्न २ उद्योग करने लगे तब फिर इस प्रत्येक दल में वही पहली त्रुटि दिखाई देने लगी। अब फिर प्रत्येक दल में जो अधिक बलवान था वह दूसरों का वित्त और स्त्रियां आदि हरण करने लगा। जब यह स्थिति कष्टदायक हुई तब इन दलों के मनुष्यों ने किसी विशेष मनुष्य को समाज की रक्षा का भार देना आवश्यकीय समझा, अपने में से ही सबके मतानुकूल एक मनुष्य को राजा नियत किया, इसकी आज्ञा के अनुसार चलना स्वीकार किया और इसने इसके पलटे इन सब लोगों की रक्षा का प्रबन्ध करने का वचन इन लोगों को दिया। इस विषय में इन तत्त्ववेत्ताओं में मतभेद है। कोई कहते हैं कि इस समय 'राजा' नियत नहीं किया गया किन्तु अपने में से बहुमत से कई मनुष्यों को चुन कर उनको शासनभार सौंपा गया। अर्थात् कुछ इस समय राजकीय (monarchy) और कुछ प्रजासत्तीक पद्धति का

(democracy) आरंभ होना बतलाते हैं। चाहे जो मत सही हो इसमें सन्देह नहीं है कि इस समय शासनप्रणाली की आवश्यकता इन दलों के लोगों को ज्ञान पड़ी और उनके तथा शासकों के बीच पूर्वनिर्दिष्ट करार हुआ। शासन की व्यवस्था करने में इन लोगों ने अपने एक और स्वत्व का त्याग किया। यह स्वत्व इनकी स्वतंत्रता थी। अबतक जब किसी से किसी बात पर अनबन हो जाती तो ये स्वयं ही उससे बदला ले लेते थे किन्तु अब इनको शासक की मुंह की ओर ताकना आवश्यक हुआ। इसमें हमको दो बातें विशेषरूप से स्मरण रखनी चाहियें। एक यह कि इस बार भी अपने और अपने साथियों के हित के लिए इनको अपने स्वार्थ (स्वतंत्रता) के कुछ अंश का त्याग करना पड़ा। दूसरी बात यह कि शासक की नियुक्ति के समय शासक और शासितों में एक प्रकार का करार—चाहे वह खुले शब्दों में हुआ हो या नहीं—हुआ। निदान इतना तो सब को मानना ही होगा कि अपने धन जन की रक्षा ही इन शासकों की नियुक्ति का हेतु था।

स्वार्थ के लिए त्याग।

ऊपर इस बात पर अधिक ज़ोर दिया गया है कि 'समाज का संगठन तथा शासकवर्ग की नियुक्ति के समय मनुष्यों को अपने निज के हित के लिए कुछ अपने स्वत्वों का त्याग करना पड़ा।' अर्थात् दूसरे शब्दों में एक प्रकार इस समय से इनको दूसरे के हित की ओर ध्यान देने की आवश्यकता हुई। इसी बात को अध्यात्मविद्या (Psychology) के तत्वों से इस भाग में सिद्ध करने का प्रयत्न किया जायगा।

माता का अपने गर्भ की रक्षा का प्रयत्न करना अपनी ही रक्षा का प्रयत्न करना है, क्योंकि इस गर्भ की स्थिति में गर्भस्थ बालक माता के शरीर का एक अवयव ही होता है। अतएव माता इस स्थिति में अपने ही हित के लिए, अपने ही शरीर की रक्षा के लिए गर्भ की रक्षा करती है। किन्तु बालक का जन्म होने पर यह स्थिति बदल जाती है। अब बालक उसके शरीर का अवयव न होकर एक भिन्न तथा स्वतन्त्र जीव हो जाता है। इस समय इस बालक की रक्षा माता अपना ही दूसरा स्वरूप जानकर करती है। किन्तु इस समय की तथा इसके पूर्व की गर्भ समय की वृत्ति में अन्तर पड़ जाता है क्योंकि गर्भ समय में माता को अपने निज की ही रक्षा करनी होती थी, किन्तु पहले प्रेम के कारण अब दूसरे जीव की रक्षा करनी होती है अर्थात् स्वार्थवृत्ति से परहितवृत्ति (सहानुभूति) का इस प्रकार (अर्थात् स्वार्थ द्वारा ही) प्रादुर्भाव होता है।

इसी प्रकार आरम्भ में मनुष्य के सब प्रयत्न केवल अपने हित के लिए होते हैं। विकाशवादियों का (evolutionists) यह सिद्धान्त है कि वनस्पति जन्तु एवं प्राणि विश्व में प्रत्येक व्यक्ति का अखंडरूप से 'आत्मरक्षा' के लिए संग्राम चलता रहता है। इस संग्राम में शक्तिवान व्यक्ति अपनी रक्षा करते हैं और शक्तिहीनों का नाश होता है। इसी को 'जीवन संग्राम' कहते हैं। यह संग्राम इस जगत में स्वयंभू है। यह अनादिकाल से चला आरहा है और इसी प्रकार चलता रहेगा। इसका उदाहरण ऊपर के विवेचन में सृष्टि की उत्पत्ति के समय की मनुष्य की स्थिति में दिया ही गया है। आगे चलकर उसमें यह भी दिखाया गया है कि किस प्रकार मनुष्य अपने ही हित के लिए, इस 'जीवनसंग्राम' में ही, समाजसंगठन तथा शासकों को नियुक्त कर अपने स्वार्थ को परहित वृत्ति वा सहानुभूति में परिणत करते हैं। यह परिवर्तन इस प्रकार होता है:—

प्रथम मनुष्य अपने हित, या सुख का साधन समझ कर रुपया, कीर्ति, पुण्य आदि

का संचय करता है। अर्थात् इन वस्तुओं से उसे कुछ भी प्रेम नहीं रहता। केवल अपने सुख-सम्पादन के लिए बरबश हो इन चीजों को उसे प्राप्त करना होता है। किन्तु कुछ समय के अनन्तर वह उद्देश्य—वह सुख का उद्देश्य—उसकी आंखों से दूर हो जाता है और वह इन वस्तुओं को, रुपये कीर्ति आदि को ही अपना उद्देश्य समझ जाता है। इसी प्रकार से प्रथम मनुष्य केवल अपने हित, अपनी रक्षा के लिए स्वार्थ का त्याग एवं परहित साधन करता है, किन्तु कुछ काल बीतने पर परहित साधन तथा स्वार्थ का त्याग ही उसके उद्देश्य हो जाते हैं। इसके सिवा जिस सुख या रक्षा के लिए वह स्वार्थ का त्याग तथा परहितसाधन करता है, वह जब उसे इन साधनों में ही अर्थात् स्वार्थ-त्याग में ही मिल जाय तब भला वह उन साधनों ही को क्यों न प्राप्त करे?

इस विवेचन से यह सिद्ध हुआ कि मनुष्य जन्म से ही स्वार्थपरायण होता है और अपना स्वार्थसाधन करते २ ही वह स्वार्थ के त्याग को अपना अवलम्ब समझ लेता है। परन्तु यद्यपि आदिकाल में मनुष्य स्वभाव से ही स्वार्थी उत्पन्न होता है तो भी कुछ काल के अनन्तर स्वार्थत्याग रूपी संस्कार जन्म से ही उसमें दृढ़ हो जाता है, कारण यह कि वह संस्कार उसे परम्परा से—अपने पूर्वजों से—माता पिता आदि से प्राप्त होता है। किन्तु यह बात सृष्टि के आदि काल में नहीं पाई जाती। केवल कुछ समय बीतने पर सभ्यता (civilization) की वृद्धि के साथ २ इस संस्कार की—स्वभावज ज्ञान को—वृद्धि होती जाती है। इससे यह बात सिद्ध हुई कि जितनी पुरानी जिस राष्ट्र की या समाज की सभ्यता होगी उतनी ही दृढ़ उस राष्ट्र वा समाज के मनुष्यों की स्वार्थत्याग वृत्ति होगी। दूसरे शब्दों में जिस परिमाण में समाज संगठन होकर शिक्षा आदि का प्रचार होगा उसी परिमाण से परहितसाधन वृत्ति की वृद्धि होगी जिस राष्ट्र या समाज में यह वृद्धि न पाई जाय उसे किसी प्रकार राष्ट्र न समझना चाहिये अथवा यदि वह राष्ट्र समझा भी जाय तो वह सृष्टि के नियमों का अपवाद-स्वरूप होगा।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या सचमुच ही परहित साधन से मनुष्य का निज का हित हो सकता है? यह प्रश्न सहज ही उत्पन्न होता है, क्योंकि यह कैसे संभव है कि आप भला करें दूसरे का और इस भला करने में आपका नुक़सान न होकर उलटा आपका लाभ ही हो? इस प्रश्न को हम बहुत ही सहज रीति से हल कर सकेंगे यदि हम समाज और उस समाज के प्रत्येक व्यक्ति—सभासद—के बीच कुछ घनिष्ठ सम्बन्ध सिद्ध कर सकें अर्थात् यदि हम यह सिद्ध कर सकें कि एक का हित दूसरे के हित पर अवलम्बित है सत्य ही इन दोनों में हम ऐसा गहरा सम्बन्ध पाते हैं। बल्कि यही कहना होता है कि ये दोनों एक ही वस्तु के दो भिन्न भिन्न रूप हैं। उदाहरणार्थ प्रत्येक व्यक्ति अपने निज के जीवन की रक्षा करता देखा जाता है और इस रक्षा को हम स्वार्थप्रेरित नहीं तो और क्या कह सकते हैं? किन्तु इसके साथ २ जब हम यह देखते हैं कि प्रत्येक मनुष्य अपनी कीर्ति, द्रव्य या कुटुम्ब परिवार का नाश होने पर अपने प्राणों का भी त्याग करने के लिए भी कटिबद्ध हो जाता है तब उसके रक्षारूपी प्रयत्न को हम केवल स्वार्थप्रेरित कैसे कह सकते हैं? सच तो यह है कि समाज में रह कर जो एक प्रकार का महत्व उसको प्राप्त होता है, इस कारण ही वह अपने जीवन को अमूल्य समझता है और यह महत्व समाज का हित करने से ही प्राप्त होता है।

किन्तु इसके पलटे जैसे स्वार्थ में परहित पाया जाता है वैसे ही दूसरों के हित करने की उदार कामना में भी स्वार्थ की झलक पाई जाती है। क्योंकि मनुष्य वही कार्य करता है जिससे

करने की उसे इच्छा होती है। और किसी भी कार्य करने की मनुष्य को इच्छा तभी होता है जब उसके करने में वह अपना हित देखता है यह बात समाजसंगठन के इतिहास से सिद्ध हो चुकी है।

किन्हीं २ का मत है कि मनुष्य या व्यक्ति का समाज से कुछ भी सम्बन्ध नहीं रहता। मनुष्य के निज के कुछ नैसर्गिक स्वत्व होते हैं इत्यादि। किन्तु वह सिद्धान्त ठीक नहीं है। हां यह बात निःसन्देह सत्य है कि व्यक्ति तथा समाज का हित एक दूसरे पर अवलम्बित है। उदाहरणार्थ, नैसर्गिक स्वत्वों ही की बात लीजिये। इस सिद्धान्त के उत्पादक रूसों का कथन है कि मनुष्य जन्म के समय स्वतन्त्र रहता है अर्थात् समाज के नियमों से किसी प्रकार वह बद्ध नहीं रहता। किन्तु यह बात सत्य नहीं है। जन्म से ही बालक पर समाज राष्ट्र तथा कुटुम्ब की बातों का तथा स्थिति का प्रभाव पड़ता है और वह अपने स्वभाव बुद्धि आदि का बहुत सा हिस्सा परम्परा से अपने माता पिता आदि से, प्राप्त करता है। ऐसी स्थिति में नैसर्गिक स्वत्वों का सिद्धान्त कहां तक ठीक हो सकता है ? जो विद्वान् व्यक्ति का समाज से कुछ भी सम्बन्ध होना नहीं स्वीकार करते वे नवजात बालक की आत्मा को एक कोरे कागज़ के टुकड़े की उपमा देते हैं किन्तु सच कहा जाय तो उसकी आत्मा को कथा प्रबन्ध के एक शब्द या वाक्य की उपमा देना चाहिये। क्योंकि जैसे वह शब्द या वाक्य पूरे कथा प्रबन्ध से अपना सम्बन्ध दर्शाता है और जैसे उस शब्द या वाक्य का पूरा २ अर्थ उस कथा प्रबन्ध और उस शब्द या वाक्य का सम्बन्ध जाने बिना नहीं जाना जा सकता, वैसे ही इस नवजात बालक की आत्मा के संस्कारों को पूर्णतया आप तब तक नहीं जान सकते, जबतक कि आप इस आत्मा का जिस समाज में यह उत्पन्न हुआ है उस समाज से तथा उसमें प्रचलित रीति रिवाज, सभ्यता आदि से सम्बन्ध नहीं जान लेते।"

कुछ और विद्वानों का मत है कि मनुष्य वह नैसर्गिक स्वत्व शिक्षा से प्राप्त करता है। शिक्षा से उसको शक्ति, व्यक्तित्व और स्वतंत्रता प्राप्त होती है। यह ठीक है किन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि वह समाज के विरुद्ध किसी प्रकार के स्वत्व प्राप्त करता है। उलटे इस मत से तो व्यक्ति का समाज पर अवलम्बित रहना और भी अधिक स्पष्ट हो जाता है। क्योंकि कोई भी मनुष्य 'आत्मशिक्षित' हो नहीं सकता और यह भी कहना उपयुक्त नहीं कि एक मनुष्य दूसरे मनुष्य से शिक्षा प्राप्त करता है। कारण मनुष्य की शिक्षा का आरम्भ जन्म से ही हो जाता है और व्यावहारिक शिक्षा पूरी होने पर भी वह अविच्छिन्न रूप से जारी रहता है। यह शिक्षा किसी एक व्यक्ति से वह प्राप्त नहीं करता, किन्तु जिस समाज में वह उत्पन्न होता है उस समाज की भाषा और साहित्य के द्वारा वह शिक्षा प्राप्त करता है। ऐसी ही पुस्तक लिखने की बात है। यह कहा जाता है कि अमुक २ मनुष्य ने अमुक २ विषय पर पुस्तक लिखी है। वह मनुष्य भी उस पुस्तक के प्रथम पृष्ठ पर अपना नाम लिखता है और उस विषय के प्रमाणभूत लेखकों के नाम जिनसे वह सहायता लेता है, पुस्तक की प्रस्तावना या पुस्तक के अन्त में लिखता है। पर वस्तुतः उसे अपना नाम पुस्तक के किसी छिपे स्थान में लिखकर अपने प्रमाणभूत लेखकों के नाम प्रथम पृष्ठ पर लिखने चाहियें। कारण जो विचार बहुधा लेखक प्रकट करते हैं, किसी न किसी पुराने लेखक के होते हैं। इस प्रकार प्रत्येक लेखक 'शब्दचोर' नहीं तो 'विचारचोर' तो अवश्य होता है।

मनुष्य का समाज पर अपने प्रत्येक कार्य के लिए अवलम्बित रहना, उद्योग धन्धों की

बात में और भी स्पष्टरूप से दीख पड़ता है। हम लोग व्यवहार में कहते हैं कि अमुक अमुक मनुष्य 'स्वोद्यमलब्ध प्रतिष्ठ' (Self-made) है। परन्तु यह बात वैसी ही असम्भव है जैसी आत्म-शिक्षित की है। यह मनुष्य केवल उन अवसरों का जो समाज उसको देता है उनका सदुपयोग कर लेता है। सिवा इसके, उसका उद्योग, बगैर पालिसी की रक्षा, बाज़ार जहां से कच्चा माल वह पाता है और मज़दूर और रेल बन्दर आदि की सहायता के, कैसे चल सकता है? अर्थात् यदि कच्चा माल समाज के लोग उसको न बेचें, यदि मज़दूर उसके उद्योग में सहायता न करें, यदि रेल आदि उसका माल ढोने को तैयार न हों, एवं पुलीस आदि उसकी रक्षा सर्वप्रकार न करें, तो वह कैसे अपने उद्योग में सिद्धि प्राप्त कर सकता है? सारांश, यदि समाज का अस्तित्व और उसकी सहायता न हो तो किसी भी व्यक्ति का एक क्षण भी काम नहीं चल सकता।

इस विवेचन से यह सम्यक् रूप से सिद्ध हो जाता है कि व्यक्ति तथा समाज के हित एक दूसरे पर निर्भर हैं। अर्थात् यदि मनुष्य समाज का भला करे तो उसका भला आप ही आप हो जाता है, और अपना ही भला कोई करना चाहे तो भी थोड़ा बहुत समाज का हित होता ही है। एक बात इससे और सिद्ध होती है और वह यह है कि जितना समाज उन्नत होगा, उतने ही व्यक्ति भी उन्नत होंगे। व्यक्ति का उन्नत वा अवनत होना समाज के उन्नत वा अवनत होने पर निर्भर है। इससे यह उपदेश हमें ग्रहण करना चाहिये कि जो कोई अपनी निज की उन्नति चाहे, उसे समाज की उन्नति करने का यत्न करना चाहिये। सिवा इसके यह बात उपदेश के तौर पर ग्रहण नहीं करनी चाहिये, वरन् इसको अपना कर्तव्य समझना चाहिये। यह कर्तव्य क्योंकर हुआ इसका विवेचन आगे चल कर किया जायगा।

जब कोई मनुष्य किसी दूसरे मनुष्य से कुछ रुपया उधार लेता है तब यह उसका 'कर्तव्य' होता है कि वह उसका रुपया अदा करदे। इस प्रकार जब हम ऊपर के विवेचन से स्पष्ट देखते हैं कि समाज हमारे जन्म से लेकर मृत्यु तक—नहीं २ परजन्म में भी हमारी सहायता करता है, हमको सर्वप्रकार सुशिक्षित, धनबल सम्पन्न बनाता है, हमारी चोर डाकू शत्रु आदिकों से रक्षा करता है, तब क्या हमारा यह 'कर्तव्य' नहीं कि हम उसकी उन्नति करें, उसका हित साधें? पुनः यदि इस समाजहित के साधन से हमारा नुकसान हो तब तो कदाचित् मनुष्य कुछ आपत्ति कर सकता है; पर जब इसके विरुद्ध हमारा हित ही इससे होता है; जैसा कि ऊपर दिखाया गया है, तब तो हमें 'देशहित' को अपना 'पवित्र कर्तव्य'-'धार्मिक कर्तव्य'—ही समझना चाहिये। हम तो यह कहते हैं कि जैसा हमारा सनातन वैदिक धर्म पांच 'ऋण' बतलाता है, वैसे ही यह छठा ऋण 'देश-ऋण' है। या यों भी कह सकते हैं कि इस 'देश-ऋण' में ही पांचों ऋणों का समावेश हो जाता है।

'भक्ति' शब्द 'भज सेवायाम्' इस संस्कृत धातु से बना है। अर्थात् 'भक्ति' के लिए पर्याय शब्द सेवा, प्रेम, अनुराग हो सकता है। देश की भक्ति करना अर्थात् देशसेवा करना यही अर्थ उपयुक्त होगा। देश की भक्ति क्यों करना चाहिये यह बात तो पूर्व में बताई ही जा चुकी है। हमारे ऋषिमुनियों ने धर्म तथा समाज का संगठन इस सुन्दर प्रकार से किया था जिससे सहज ही देश का हित हो जाता था तथा उनके अनुसार चलने से अब भी हो सकता है। उदाहरणार्थ, प्रातः स्नान करने का नियम इस देश की परिस्थिति तथा प्रकृति के अनुकूल ही चलाया गया था। ऐसे ही देवताओं के पूजन के लिए जो पुष्प हों वे अपने हाथ से लगाये पौधों के ही हों। यह नियम सहज ही में हमारे

स्वास्थ्य की रक्षा का कारण हो जाता था। एक क्या वरन् जितने नियम आदि बनाये गये थे सब से कुछ न कुछ देश का हित होता ही था, किन्तु आजकल इनका कोई पालन नहीं करता इस कारण सहज ही होनेवाले हित का अभाव देख पड़ता है। एक हिन्दी के आधुनिक प्रसिद्ध लेखक ने उचित ही कहा है कि हमको 'अवस्था देखकर व्यवस्था बदलनी चाहिये'। सत्य ही इस नियम के अनुसार न चलने ही से बहुत से दोष हमारे समाज तथा धर्म में घुस गये हैं। जैसे, पूर्व में हमारे मन्दिर सुप्रसिद्ध विश्वविद्यालय तथा गरीब अपाहिजों की रक्षा करने के साधन थे, किन्तु आज हम क्या देखते हैं? उन्हीं मन्दिरों के आचार्य विद्याहीन, लण्ठ और व्यसनों में रत पाये जाते हैं। दूसरों का सुधार करना तो अलग रहा वे अपना ही सुधार नहीं कर सकते। इसपर तुर्रा यह कि जिन विषयों का उनको ज्ञान नहीं उन विषयों में भी वे अपनी राग अलापते हैं! यह हुई मन्दिरों की बात, ज़रा हमारे धर्म के आचार्य ब्राह्मणों की भी दशा देखिये। ये अब भी अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखने को ही अपना धर्म समझते हैं। अपने उदरपोषण को ही जगत का हित समझते हैं। 'अहिंसा परमोधर्मः' का तत्व तो कदाचित् आजकल के ब्राह्मण नामधारियों को छू तक नहीं गया! अहो! यह दुर्दशा!! यह अधःपात!!! यह उन्हीं ब्राह्मणों के वंशज हैं जिन्होंने देश-जगत् के हित के सामने अपने हित को सर्वदा तुच्छ समझा था। यह उन्हीं ब्राह्मणों के वंशज हैं जिन्होंने स्वतः जंगल में रहकर, सर्व सत्ता क्षत्रिय आदि वर्णों के हाथ में दे दी थी, जो सदा सर्वदा ईश्वरचिन्ता में निमग्न रहते थे, ईश्वरनिर्मित जगत् के हित में रत रहते थे। अब भी किसी प्रकार इनमें जो सद्गुण बच गये हैं उनके स्वीकार करने से हम मुख नहीं मोड़ते हैं। किन्तु,

'संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादितिरिच्यते।'

इस नियमानुकूल इनकी अपकीर्ति, इनके गौरव का नाश देखकर बलात् ऐसी बातें कहनी पड़ती हैं। इस पर भी हर्ज नहीं। अभी समय है। अब भी ये चेतें तो अपना तथा समाज का सुधार बहुत ही थोड़े काल में कर सकते हैं। बुद्धिमान मनुष्य गिरने पर उठने की कोशिश करते हैं, वहीं पर पड़े नहीं रहते। इस विषय पर स्वर्गवासी पं० माधवप्रसाद जी मिश्र ने क्या ही सुन्दर उपदेश किया है। वे कहते हैं:—

'चढ़ता है सो गिरता भी है,
पर गिरकर जो उठे नहीं;
उससे बढ़कर शोच्य जगत में,
मिल सकता कब मनुज कहीं॥

साधु वृत्त कन्दुक सम गिर कर;
बेर बेर ऊपर आते।
वृत्तहीन मृतपिण्ड सदृश गिर,
तुरत धूलि में मिल जाते॥

उठते हैं वे वीर पुत्र,
जिनको पितरों का है अभिमान।
नहीं उठाने से उठते वे,
जारज कायर मृतक समान॥

पैरों में गिर ठोकर खाना,
यह कब किसको प्यारा था।
उठना और उठाना सबको,
यह एक काम हमारा था'॥ आदि।

सत्य धर्म।

कई महाशयों का कथन है कि हम यदि अपने धर्म का सुधार करें, अपने धर्म के अनुकूल चलें तो हम तुरन्त ही उन्नतावस्था को प्राप्त होंगे। किन्तु प्रश्न यह उठता है कि 'सत्य धर्म' क्या है? क्या केश, नख, आदि बढ़ानेवाले पाखण्डमत धारण करनेवाले, 'बम् भोलानाथ महादेव' के पूर्णभक्त, गांजा भांग आदि सेवन करनेवाले, भीख मांग अपना उदर पोषण करने-

वाले, आधुनिक 'साधु' महात्माओं को दान देना ही 'सत्य धर्म' है ? क्या किन्हीं मतमतान्तरवाले मन्दिरों में जा पद दर्शन कर, मर्यादा लेकर, मुंह से राधाकृष्ण का भजन कर, अपने स्वतः को भक्त श्रेष्ठ मानना; किन्तु अपने व्यवसाय में नौ रुपये के सौ रुपये करना, असत्य बोलना, और सर्वप्रकार नृशंसता का परिचय देने में कसाई से भी बढ़ जाना ही 'सत्य धर्म' है ? यदि यह नहीं तो क्या अपनी जाति में अपनी शुद्धता सिद्ध कर 'आठ कनौजिये नौ चूल्हे' की शेखी बघारना, किन्तु नौकरी के समय नीचातिनीच लोगों का जूंठन साफ करना, और दूसरों की अनुपस्थिति में छिपे हुए चाहे जो वस्तु अखाद्य अस्पृश्य आदि खाना यही 'सत्य धर्म' है ? कहां तक कहा जाय ऐसी कितनी ही परस्पर विरोधी बातें 'धर्म' के नाम से हमारे देश में आजकल प्रचलित हैं जिनको देख सुन कर प्रत्येक विचारवान मनुष्य का मस्तक लज्जा से नीचा हो जाता है। अस्तु। अब 'सत्य धर्म' किसे कहना चाहिये इस बात का विवेचन यहां पर संक्षिप्तरूप से किया जाता है । प्रत्येक धर्म में 'परोपकार' धर्म का प्रधान अंग माना गया है। हमारे सनातन वैदिक धर्म में तो 'अहिंसा परमो धर्मः' यह सिद्धान्त परोपकार की पराकाष्ठा का द्योतक है तथा सच्चा धर्म सच्चा पुण्य 'परोपकार' ही है यह सर्वप्रकार सिद्ध किया गया है। श्रीवेदव्यास जी महाराज ने स्पष्ट ही कहा है कि :—

'परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम् ।'

अथवा श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदास जी के शब्दों में :—

'परहित सरिस धर्म नहिं भाई,
परपीड़ा सम नहिं अधमाई ॥'

अर्थात् परोपकार सा 'धर्म वा पुण्य' नहीं और परपीड़ा के समान 'अधर्म' संसार में नहीं है।

सिवा इसके, यह बात सब लोग मानते हैं कि ईश्वर-भक्ति करना सर्वोत्कृष्ट धर्म है। ईश्वर-भक्ति का अर्थ चाहे जो हो, हमतो इसका यही अर्थ समझते हैं 'ईश्वर की सेवा करना या ईश्वर को संतुष्ट करना'। इसके चाहे जितने मार्ग हों, उसके संतुष्ट करने का एक सत्य और निश्चित मार्ग नीचे लिखा है। अखिल विश्व, चर अचर, जड़ चेतन, सब कुछ उस परमेश्वर का बनाया हुआ है यह सर्वमान्य सिद्धान्त है। इस सिद्धान्तानुसार ईश्वर इस जगत का पिता हुआ, और अखिल विश्व उसकी सन्तान। पिता को अपने प्यार के बदले अपने पुत्र के प्यार से अधिक आनन्द तथा सन्तोष होता है। इसी प्रकार क्या जगत्पिता परमेश्वर अपनी सन्तान अखिल विश्व का लालन देखकर सन्तुष्ट न होगा ? अवश्य ही होगा। अतएव सबसे सुलभ तथा सत्य मार्ग परमेश्वर को संतुष्ट करने का यह है कि उसकी सन्तान अखिल विश्व का सर्वप्रकार हित किया जाय। सर्वप्राणियों की रक्षा करना, सर्व जगत् के मनुष्यों से सहानुभूति दिखाना, नीच हो या ऊँच, सबल हो या निर्बल, दीन हो या श्रीमान, सबको एक आंख से एक समान देखना, उनके क्लेशों को दूर करना, और यथाशक्ति सर्व जगत को सुखी करने का प्रयत्न करना, सबसे सुखकर और सुगम मार्ग परमेश्वर को सन्तुष्ट कर परमपद प्राप्त करने का है । इसके विरुद्ध, मनुष्य, चाहे जितना योग साधे, चाहे जितना वेद और उपनिषदों के ज्ञान समुद्र का मथन करे, चाहे जितना द्वैत, अद्वैत, ज्ञान, वैराग्य, भक्ति आदि के पचड़े में पड़ चक्कर खाता रहे और अपने परमपद को पहुंचा हुआ माने, चाहे वह अपने को ब्रह्म ही क्यों न समझे जब तक वह मनुष्यमात्र के परोपकार करने की इच्छा नहीं रखता और इस प्रकार की इच्छा के साथ ही साथ, उस इच्छा को कार्य में परिणत नहीं करता,
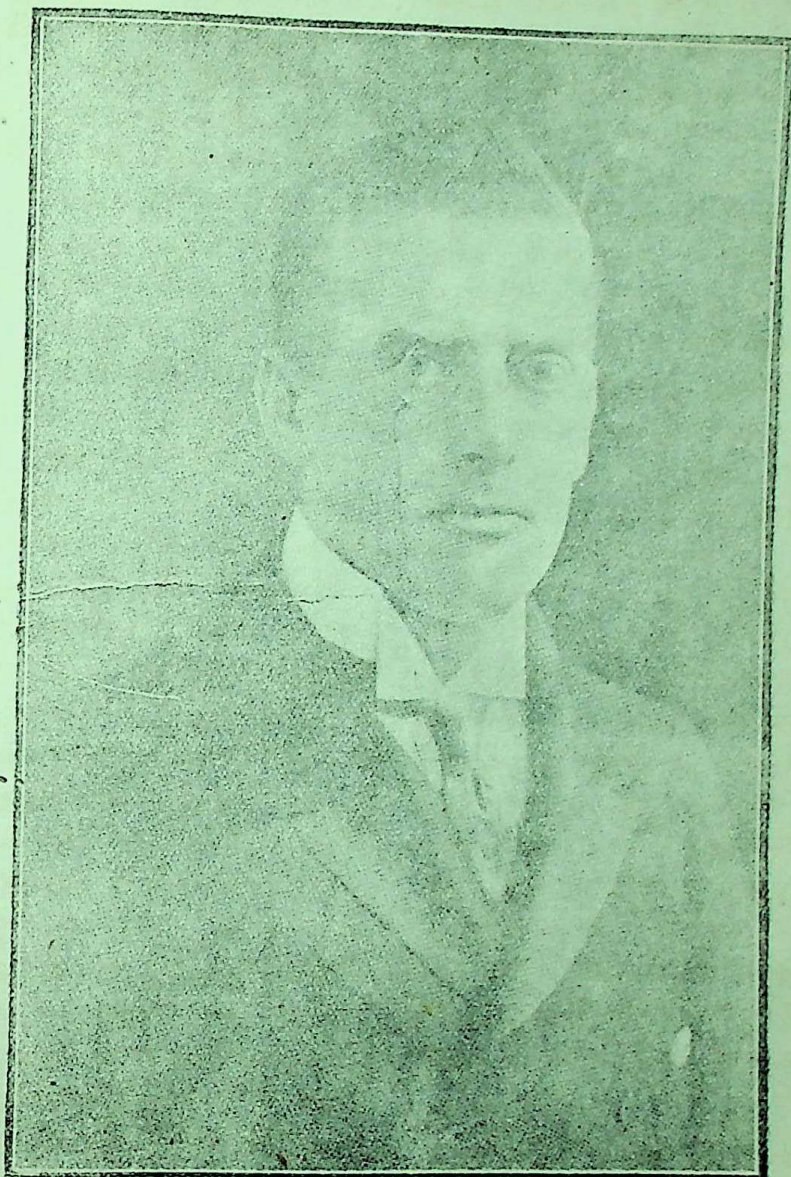
राइट आनरेबिल मिस्टर आस्टन चेम्बरलेन, नये भारत-मन्त्री !

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग।

तब तक वह कदापि सच्चा ज्ञानी या ब्रह्मवेत्ता नहीं हो सकता। वह ज्ञान सच्चा ज्ञान नहीं, वह योग सच्चा योग नहीं, वह भक्ति सच्ची भक्ति नहीं; यह सब संसार को धोखा देने का आडम्बरमात्र है, साधनसामग्री है। क्योंकि 'परोपकाराय सतां विभूतयः' अर्थात् साधुओं का प्रधान लक्षण परोपकार है। इस प्रकार धर्म की दृष्टि से भी यह बात सिद्ध है कि परोपकार करना ही श्रेष्ठ धर्म है।

ऊपर यह सिद्ध किया गया कि अखिल विश्व का, प्राणिमात्र का, हित करना ही श्रेष्ठ धर्म है। किन्तु हम अब तक 'स्वदेश' के हित पर ही ज़ोर दे रहे थे। यह क्यों? इसका कारण यह है जैसा पूर्व में कहा गया है, कि परहित वृत्ति का उद्भव स्वार्थवृत्ति से ही होता है। इससे यह सिद्ध होता है कि परहित वृत्ति की वृद्धि क्रम २ से होती है। अर्थात् जितना अभ्यास परहित वृत्ति का बढ़ता जायगा, उतना ही परोपकार का परिमाण बढ़ता जायगा। पूर्व में अपना कुटुम्ब, फिर मित्र का कुटुम्ब, फिर अपने समाज के दूसरे मनुष्य, फिर अपना पूरा समाज इसके अनन्तर अपना देश और इसके अनन्तर दूसरे देश, और अन्त में अखिल मनुष्यमात्र इस प्रकार परोपकार की परिधि बढ़ती जायगी। किन्तु आरम्भ में ही सब मनुष्यों के हित करने की बात मनुष्य के दिल में समा नहीं सकती। अतएव मनुष्य की परहित वृत्ति की वृद्धि, पूर्व-संस्कार और अभ्यास पर अवलंबित है। यह बात पूर्व में कही गई है कि जितना समाज उन्नत होगा उतनी ही परहितवृत्ति की वृद्धि होगी। अतएव हमारे भारत की सभ्यता को देखते हुए तो प्रत्येक भारतवासी को प्राणिमात्र का परोपकार करना चाहिये—निदान, इतना नहीं तो अपने स्वदेश का हित तो अवश्य ही साधना चाहिये।

परन्तु हमें तब अत्यन्त खेद होता है जब हम यह सोचते हैं कि सच्चे देशहित साधने-वाले इनेगिने भारतवासियों के विपक्ष में सैकड़ों देशद्रोही कुलांगार अब भी इस देश में वर्तमान हैं। क्या यह भारत की सभ्यता को देखते हुए सुसमाचार है? क्या यह बात भारत की उन्नति दर्शाती है? कदापि नहीं। इस पर भी सैकड़ों क्या करोड़ों भारतवासी अपनी पुरानी सभ्यता का डंका पीटते हैं, अपने पूर्वजों के यश को अपना ही यश मानते हैं। हम यह नहीं कहते कि हमको अपने पूर्वजों की कीर्त्ति पर गर्व न करना चाहिये, वा अपनी सभ्यता को सर्वोच्च न मानना चाहिये। हम भले ही इन बातों को करें, किन्तु इनके साथ ही साथ हमको अपनी निज की कीर्त्ति सम्पादन करनी चाहिये। हमें अपने पूर्वजों से बढ़कर नहीं तो उनके तुल्य तो अवश्य बनना चाहिये।

इसलिए प्रिय देशबन्धुगण! आपसे सविनय यही निवेदन है कि आप यथाशक्ति देशहित सम्पादन कर अपनी पहिली कीर्ति प्राप्त कीजिये, अपने देश के जन धन की रक्षा कीजिये, अपनी परम्परागत सभ्यता के योग्य बनिये। किन्तु यह स्मरण रखिये कि यदि ऐसा करने में हम इस समय चूकेंगे तो हम इस जन्म में अपकीर्ति और पर जन्म में नरक के भागी होंगे।

कई मनुष्यों का कथन है कि इस कलियुग में हमारी उन्नति कदापि नहीं हो सकती। कारण हमारे हिन्दुओं के शास्त्रानुसार दिन पर दिन हमारी अवनति का होना ही पाया जाता है। प्रथम तो इस कथन को हम मानते ही नहीं। द्वितीय, यदि इसको सत्य मानकर चला जाय तो भी हमें इस प्रकार हताश न होना चाहिये। यह ऊपर बताया ही गया है कि देशहित साधना मनुष्य मात्र का 'कर्त्तव्य' है। जब वह कर्तव्य सिद्ध हो चुका, तब श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द के वचनानुसार हमको कर्त्तव्य के फल की आशा कदापि न करनी चाहिये॥

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान ने कहा है—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
माकर्मफलहेतुर्भूर्माते संगोऽस्त्वकर्मणि ॥

पुनः कर्तव्य वह वस्तु है जिसका फल उसकी पूर्ति पर अवलंबित नहीं रहता। कार्य में परिणत किया हुआ कर्तव्य का सूक्ष्म अंश भी सिद्धि का दाता और विघ्नों का हरण करने वाला होता है। इसीलिए भगवान् मधुसूदन गीता जी में कहते हैं कि—

नेहाभिक्रम नाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते ।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ॥

अर्थात् आरम्भ किये हुए कर्म का नाश नहीं होता न उसमें किसी प्रकार रुकावट होती है और धर्म का, कर्तव्य का अल्पांश भी बड़े २ भयों से मनुष्य को बचाता है। इससे यह तो सिद्ध है कि देशहित के साधन से उन्नति अवश्य होगी ही। किन्तु इसके विपक्ष में यदि हम देशहित साधन न करें तो अवश्य ही हमको अवनति के गड्ढे में गिरना होगा। ऐसी स्थिति में प्रिय देशबन्धुगण! आपसे हमारी हाथ जोड़ यही प्रार्थना है कि इन दो मार्गों में से जो आपको सुन्दर, सहज, श्रेयस्कर मार्ग प्रतीत हो, उस ही को आप ग्रहण कीजिये। आप जैसे सभ्य शिरोमणियों से अधिक कहना क्या अनुचित न होगा।

एक राष्ट्रीय आवश्यकता।

[लेखक—श्रीयुत भगवन्नारायण भार्गव ।]

अब अस नर-वर चहियतु स्याम ।
जे सांचे जियतें नित परहित
करहिं स्वतन्त्र सुकाम ॥
अरु सेवें भारत-जननी-सुचि
चरन-कमल करि भक्ति ।
आत्म-त्याग उर ज्योति जरावें
लहि निज सुकृतनु शक्ति ॥
सत्य भाखिबे निरभय होवें
जग किन करे विरोध ।
निज सुधर्म पालनु महँ नासें
सकल अहित अवरोध ॥
सत-विद्या उत्कट प्रेमी हों
पावन ज्ञान निधान ।
सुभग-राष्ट्र-जीवनु सजाविबे
देवें प्रानहु दान ॥
देस-सत्व-संग्राम माहिं
जे पावें नाम प्रवीर ।
आपदनु छल त्र्यच होहिं ना
दुख महँ तनिकु अधीर ॥

अतुल-साहसी काज-कुसल हों
शिल्प-कलानु प्रवीन ।
चित नित हुलसित राखें होंवें
कबहुं न दीन मलीन ॥
अहङ्कार तजि स्वाभिमान की
सरन गहें सब लोग ।
त्यागें काम कोह मद लोभहु
मत्सर मोह कुभोग ॥
सुचरित-पवन सुद्ध करि जिनको
थल २ सकल-स्वदेस ।
मूरखता-अन्याय-तिमिर को
राखें कतहुं न लेस ॥
जीवनु की रण-भूमि माहिं जे
पावें जय अभिराम ।
करि उद्योग कर सु-तेजमय
प्रियतम-भारत-धाम ॥
अब अस नरवर चहियतु स्याम ॥

सहयोग समितियां ।

[लेखक—श्रीयुत भगवन्नारायण भार्गव ।]

"If the System of Co-operation can be introduced and utilized to the full, I foresee a great and glorious future for agricultural interests of this country (H. M. The King Emperor; 13th Dec. 1611.)

"यदि सहकारिता की प्रणाली का प्रचार व सदुपयोग भली प्रकार हो जावे तो मुझे विश्वास है कि इस देश की कृषि-सम्बन्धी दशा महाप्रतापी व समृद्धि शालिनी हो जावेगी" (श्रीमान् राजराजेश्वर पञ्चम जार्ज के वचन, १३ दिसम्बर सन् १६११)।

भारत एक कृषि प्रधान देश है और यहां के कृषकजन प्रायः इतने धनाढ्य नहीं होते कि बिना ऋण लिये वे अपनी कृषि का कार्य अच्छी प्रकार चला सकें। उनके ऋण देनेवाले प्रायः साहूकार होते हैं जो कि उनसे मनमाना ब्याज लेते हैं और उतने ही ब्याज पर बेचारे कृषकों को ऋण लेना पड़ता है क्योंकि उसके बिना उनका काम चल ही नहीं सकता। ये साहूकार लोग अपने कर्ज़दारों की दुर्दशा से अत्यन्त लाभ उठाते हैं, जब कर्ज़दार आपत्ति में होता है तब वह यह नहीं विचारता है कि ब्याज उससे अन्याय से लिया जा रहा है जैसे कि कोई मनुष्य जब किसी नदी में डूबा जा रहा हो तब वह कूलस्थ मनुष्यों से यह नहीं ठहराता है कि यदि वे उसको बचा देंगे तो वह क्या देगा, जो कुछ वे मांगते हैं वही उसको देना पड़ता है।

यहां के कर्ज़ देनेवाले लोग बड़े चालाक होते हैं वे रुपया तो उधार दे देते हैं परन्तु उसके बदले में बाज़ार की अपेक्षा कम मूल्य पर अनाज ले लेते हैं। वे यह भी जानते हैं कि ब्याज का व कर्ज़दार के विश्वासपात्रत्व का सम्बन्ध रखना चाहिये अर्थात् यदि कर्ज़दार अधिक विश्वसनीय है और उसके पास अच्छी ज़मीन है तो वे उससे कम ब्याज लेते हैं पर वह भी १८। १६ रु० सैकड़े से कम नहीं होता और यदि किसी कर्ज़दार की आर्थिक व कृषि सम्बन्धी दशा सन्दिग्ध होती है तो वे उससे ३७), ३८) सैकड़े ब्याज लेते हैं और यदि वह ऋण नहीं चुका सकता है तो कभी २ उसकी ज़मीन भी लेली जाती है। इससे यह प्रतीत होता है कि कृषक की ज़मींदारी एक प्रकार से ऋणयुक्त करने की ज़मानत है। यदि कृषक समय पर ऋण न चुका सके तो ब्याज दूना कर दिया जाता है और फिर ब्याज पर ब्याज लिया जाता है। कभी २ तो ऐसा भी देखा गया है कि ब्याज मूल ऋण से दस बारह गुना हो जाता है वह भी बेचारे कृषकों को भोगना पड़ता है, यद्यपि वे कभी २ अपने साहूकारों को अपने क्षेत्र में उत्पन्न तृण शाक ईंधनादि भी बिना मूल्यही दे देते हैं। ऐसी दशा में यही प्रतीत होता है कि कृषक अपनी श्रमोत्पत्ति को प्रायः साहूकारों को ही दे डालता है, केवल अपने व अपने कुटुम्ब के पोषणार्थ कुछ रख लेता है। यहां पर यह विचारणीय है कि दुष्काल के दिनों में इन बेचारों की क्या दशा होती होगी। उन दिनों में तो धनाढ्य साहूकार भी इनको ऋण न देते होंगे क्योंकि फसल अच्छी तरह होने की आशा के अभाव से कृषकजन अविश्वासपात्र हो जाते हैं, ऐसे समय में कृषक बहुत रहन देते हैं और यदि उस ऋण को नहीं चुका सकते हैं तो उनकी ज़मीन भी चली जाती है और वे महा शोचनीय दशा को प्राप्त हो जाते हैं। जब सानीय

अकाल होता है तब उस स्थान के कृषक लोग महर्घ खाद्य पदार्थों के लिए अधिक मूल्य नहीं दे सकते और उस समय यदि किसी दूसरे स्थान में अच्छी फसल हो गई हो तो ये लोग वहां के साधारण मूल्यवाले खाद्य पदार्थों को भी नहीं खरीद सकते क्योंकि वे तो पहले ही दुष्कालपीड़ित होने से धनहीन रहते हैं। इस से ज्ञात होता है कि यहां पर दुष्काल विशेषतः कृषि प्रधान मनुष्यों की धनहीनता और ऋण के कारण होता है। कृषकों की तो यह दशा है साथ ही ऋण और कृषि-सम्बन्धी शिल्पों की भी दशा धन की न्यूनता के कारण भारत में शोचनीय हो रही है।

इन दुर्दशाओं को दूर करने के लिए प्रयत्न करना हमारा परम कर्तव्य है। यहां की दशा तभी सुधर सकती है जब ऋण लेने के नियमों में कुछ परिवर्तन किया जावे। कृषकजनों को रुपया थोड़े ब्याज पर मिल जाया करे और वे फजूलखर्ची न करें जैसे कि वे बहुधा किया करते हैं। लड़की के विवाह में यदि दो सौ रुपयों से काम चलता हो तो पांच सौ रुपये का ऋण ले लेते हैं और बहुत से व्यर्थ कामों में नष्ट करते हैं यह सब उपाय सहयोग-समितियों और बैंकों ही से हो सकता है।

इन्हीं समितियों के द्वारा दुष्कालपीड़ित कृषकों के लिए रुपये अलग रक्खे जा सकते हैं, कृषि की और अन्य स्थानीय शिल्पों की उन्नति के हेतु पूंजी की वृद्धि की जा सकती है और शिल्पकारों का निकृष्ट ऋण लेना दूर हो सकता है।

ऐसी समितियां रफ़ाईसन् (Raffaisen) और शुल्ज़ो (Schulze) नामक जर्मनों ने सन् १८४९ में स्थापित की थीं और इनका सिद्धान्त जर्मनी, डेन्मार्क, स्विट्ज़रलैंड और इटली में लाभकारी प्रमाणित हुआ। भारत में इनका प्रादुर्भाव १९०४ में हुआ और दो साल में ऐसी २ समितियां आठ सौ बन गईं। यद्यपि मद्रास में सहयोगनिधियां पहिले से ही प्रचलित थीं परन्तु वे ऐसी गुणमयी और लाभदायिनी न थीं। पूर्णरीति से इनका प्रचार ऐक्ट सन् १९१२ से हुआ। आजकल इन समितियों की संख्या बारह हज़ार से अधिक है। उनमें छः लाख सदस्य हैं और पांच करोड़ रुपयों से अधिक पूंजी है।

अब जिस २ स्थान में ये समितियां हैं वहां पर कृषकों की दशा पूर्वकाल की अपेक्षा अधिक अच्छी है। एक कृषक की साख पर ऋण देना व ब्याज लेना निर्भर नहीं है वरंच कुछ व्यक्तियों के समुदाय की सामूहिक साख के आधार पर ऋण दिया जाता है। इस प्रकार निर्धन कृषकों को हानि नहीं पहुंचती।

साख दो प्रकार की है, प्रथम तो वह साख जो ऋणदाता ऋणकर्ता की करता है, द्वितीय वह जो कि ऋणकर्ता ऋणदाता से प्राप्त करता है अर्थात् यह प्रतिज्ञा कि वह उचित समय पर ऋण उतार देगा। इन्हीं दोनों साख के आधार पर कृषकसमूह उचित ब्याज पर ऋण पाता है। इन नियमों के अनुसार संयुक्तप्रदेश में ब्याज केवल १२॥) सैकड़े लिया जाता है। साधारण ऋणदाता लोग यहां १८) से ३७) रु० और मध्यप्रदेश में १८ से २५ रु० सैकड़े तक ब्याज लिया करते हैं।

ये समितियां मुख्यतः तीन भागों में विभक्त हैं। १-ग्रामीण। २-नागरिक। ३-प्रधान समितियां।

१ ग्रामीण—इनके सभ्य अधिकतर कृषि प्रधानजन होते हैं। इनमें सभ्यों की ज़िम्मेदारी अपरिमित होती है और सदाचारी पुरुष ही सदस्य किये जाते हैं। एक ग्राम अथवा अनेकों समीपस्थ ग्रामों के दस आदमी मिलकर एक समिति बना लेते हैं। इन बकों से जो आर्थिक

लाभ होता है वह रक्षित भंडार में डाला जाता है। पीछे वह विभक्त किया जाता है। ऋण प्रामिसरी नोट पर दिया जाता है। ऋण की ज़मानत में जेवर आदि रजिस्ट्रार की सम्मति से, जो सरकार की ओर से प्रत्येक समिति के लिए नियत किया जाता है लिया जाता है। इसके सिवा एक निरीक्षक (Inspector) भी प्रत्येक प्रान्त में रहता है। इन समितियों से रजिस्टरी फ़ीस नहीं ली जाती।

२ नागरिक—ये नगर के शिल्पकारों, मज़दूरों, लेखकों आदि के लाभार्थ स्थापित की जाती हैं। इनकी संख्या ग्रामीण समितियों से न्यून होती है और इनमें सदस्यों की ज़िम्मेदारी परिमित होती है और इनमें सदस्यों के सदाचार पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता।

३ प्रधान—१९०४ के ऐक्ट में इन पर विवेचना नहीं की गई थी। १९१२ के ऐक्ट में इसका पूर्णतया प्रादुर्भाव हुआ। ये भी अब बहुत प्रान्तों में हैं। इनका काम एक बैंक की पूँजी की अधिकता से दूसरे बैंकों की कमी को पूरी करना है।

परन्तु प्रधान बैंकें सदा अपना काम पूरा २ नहीं कर सकतीं क्योंकि कभी २ उनकी भी आर्थिक दशा अच्छी नहीं रहती और उन्हें भी कहीं से सहायता लेनी पड़ती है। अतएव अनेकों प्रान्तों में यह आवश्यकता हुई है कि प्रान्तिक बंक स्थापित किये जायँ। बर्मा, बम्बई, मध्यप्रदेश में ऐसे बैंक स्थापित हैं। सर्व प्रकार के बैंकों को ध्यान रखना चाहिये कि रक्षित भांडार (Reserved funds) का धन चाहे जैसे व्यय न होने पावे। कोई यदि कहे कि थोड़े से धन के उठ जाने में कोई हानि नहीं तो यह ठीक नहीं क्योंकि यदि धन थोड़ा है तो उससे थोड़ी सहायता तो अवश्य मिलेगी और व्यर्थ उठा देने में हानि अवश्य होगी। रक्षित भांडार से यह भी लाभ है कि इसकी अच्छी दशा देखकर मनुष्यों को विश्वास उत्पन्न होता है और सब से मुख्य लाभ यह है कि सदस्यों में अच्छा ऐक्य हो जाता है।

इस बात का भी विचार सब बैंकों में होना चाहिये कि स्थावर सम्पत्ति पर रुपया उसी समय उधार दिया जाय जब कि उस जायदाद को साहूकारों के हाथों से बचाना हो और यह भी देख लेना चाहिये कि जो मनुष्य सदस्य होना चाहता है उसे कहीं अन्यत्र का ऋण तो देना नहीं है। यदि दे चुका है अथवा इतना देना है कि सहयोग समितिवाले सहायता कर सकें तो उसको सभ्य बनाने में कोई हानि नहीं, अन्यथा नहीं बनाना चाहिये।

अब यह बतलाना उचित प्रतीत होता है कि इन सब प्रकार के सहकारी बैंकों की उन्नति होने के लिए सदस्यों में कौन २ गुण होने चाहियें।

(१) प्रत्येक सभ्य को सत्यरत और सदाचारी होना चाहिये और अन्य सदस्यों से सज्जनतापूर्वक व्यवहार करना चाहिये। इन सदस्यों में से जो हीनाचार हो जाता है वह बहिष्कृत कर दिया जाता है।

(२) सदस्यों को ऐसा स्वभाव डालना चाहिये कि वे नियत समय पर ऋण उतार दें यदि वे दुष्काल के कारण नहीं दे सकते तो समय बढ़ा दिया जाता है।

(३) सदस्यों को विशेषतः शिक्षा दी जानी चाहिये इस बात की कि वे कर्तव्यपरायण हों।

सहयोगसमितियोंवाले बैंकों से तीन प्रकार के लाभ होते हैं:—

(१) साम्पत्तिक (२) कृषि सम्बन्धी (३) आत्मिक।

(१) (क) ग्रामीण ऋणदाता जो घाव अपने व्याजरूपी शस्त्र से कृषकों के सम्पत्तिरूपी शरीर में कर देते थे वे दूर होगये हैं।

(ख) कृषकों का प्राचीन ऋण दूर हो जाता है।

(ग) दुष्काल निवारणार्थ एक अपूर्व शस्त्र सुसज्जित है।

(घ) रक्षित भण्डार के धन से अनेक लोकोपकारी शिल्पकला आदि की वृद्धि होती है।

(ङ) मुकदमों में धन कम व्यय होता है।

(च) यदि कृषकजन चाहें तो अपने प्राचीन रेहनदारों से भी उचित व्याज पर ऋण ले सकते हैं क्योंकि अब उनके मनमाने व्याज पर ऋण लेनेवालों से उनके पास रुपया फालतू रहता है।

(छ) प्रत्येक सदस्य मितव्ययी हो जाता है। बङ्गदेश में ऐसे बैंक जब नहीं थे, मनुष्यों को विवाह में धूमधाम से निमन्त्रण भोजनादि के लिए ऋण लेना पड़ता था परन्तु अब यह बात नहीं है। पूर्वकाल में ग्रामवालों को अन्य सहवासियों से विवाहादिक में स्पर्धा करने के लिए ऋण लेना पड़ता था परन्तु अब तो जो इन बैंकों के सदस्य हैं उनको परस्पर के ऋण के लिए अनुयोगाधीन होना पड़ता है अर्थात् यदि उनमें से एक अपना ऋण न दे सका तो शेष सभ्यों को मिलकर देना होता है इसलिए वह पुरानी चाल दूर होगई है।

(२) कृषिसम्बन्धी लाभ—(क) कृषकों की आर्थिक दुर्दशा दूर होने पर उन्हें बुरी भूमि से भी अच्छी फसल प्राप्त होती है।

(ख) समय २ पर सरकार से बीज व बैलों के लिए ऋण मिल जाता है।

(ग) ऋतुजनित असुविधाएँ कुल्यादिकों द्वारा दूर हो जाती है।

(घ) कृषकों को सस्ता खाद और विदग्ध जन-परीक्षित शस्त्रादिक मिल जाते हैं।

(ङ) ग्रामीण बैलों की वृद्धि के लिए अच्छे गुणवाले बहुत बैल सुगमता से प्राप्त हो जाते हैं।

(३) आत्मिक लाभ—(क) सदस्यों को परस्पर सहायता देने का स्वभाव पड़ जाता है। इनमें से यदि कोई आदमी नियम नहीं जानता है तो दूसरे बतला देते हैं और ऋण के लेने देने में भी एक दूसरे की सहायता करते हैं।

(ख) परोपकार की शिक्षा अच्छी मिल जाती है। प्रत्येक सदस्य संपूर्ण बैंक के लिए परिश्रम करता है परन्तु स्वार्थ पर ध्यान नहीं देता।

(ग) सदाचार, संयम, दूरदर्शिता, शक्तिशालिता, श्रमस्वभाव और स्वाभिमान इन सबों की उन्नति होती है।

(घ) सहानुभूति, प्रेम और धर्मरति के विचारों का वितान तन जाता है और ऐक्य की सुरभित पवन चलने लगती है।

(ङ) लोग अधम जातियों से घृणा नहीं करते वरञ्च उनको भी ईश्वर का बनाया हुआ जानकर अपना सहयोगी मानते हैं।

(च) जब मनुष्य व्यापार करते हैं तो उन्हें शिक्षा की आवश्यकता पड़ती है। यदि वे अनपढ़ हों तो अपना हिसाब कैसे रख सकते हैं, प्रामीसरी नोट पर हस्ताक्षर करना और पास बुक आदि पढ़ना उनके लिए असम्भव है। जो पढ़े होते हैं वे स्वयं वंचित नहीं किये जा सकते हैं। सारांश यह है कि इन बैंकों से बड़ा उपकार होता है और यदि अच्छे नियमानुसार अपना कार्य ये अच्छी तरह चलाते जायँ और इनके सदस्य भी पुरुषार्थी हों तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि एक दिन भारत में इनके द्वारा बहुत उन्नति हो जायगी।

इन बातों पर विचार करके हम भारतवासियों को उचित है कि ऐसा प्रयत्न करें जिससे अधर्म, अज्ञान, ईर्ष्या और मात्सर्य का अन्धकार, धर्म, ज्ञान, प्रेम और सहानुभूति के उत्कृष्ट प्रकाश से सर्वथा दूर होजाय, अविद्या और दरिद्रता की मूर्तियों का बहिष्कार शीघ्र ही इस देश से कर दिया जावे और हम सब उत्साहपूर्ण होकर विद्या देवी का सेवन करके पवित्रोन्नति के मार्ग पर विघ्नों को दूर करते हुए ईश्वर में विश्वास करके वास्तविक मनुष्यों के समान गमन करें।

विचित्र अभिनयकर्ता ।*

[लेखक—श्रीयुत महावीरप्रसाद पोद्दार ।]

(१)

मुझे जब की बात कहनी है उसके प्रायः छै मास पूर्व कलकत्ते के प्रसिद्ध अलायन्स बैंक में चोरी हो गई थी । इसमें सन्देह नहीं कि यह चोरी उसी बैंक के कोषाध्यक्ष हरेन्द्रनाथ और उसके सहकारी भुवनचन्द्र ही की करतूत थी । चोरी होने के बाद ही से वह दोनों लापता थे । पुलीस ने बहुतेरा सिर मारा पर अभी तक उनका पता नहीं लगा ।

मैं यूनियन थियेटर का मालिक हूं । उस समय हम लोगों के पृष्ठपोषक हेमेन्द्र बाबू ने 'काश्मीर-गौरव' नाम का एक नाटक लिखा था । यह उनकी पहिली ही रचना होने पर भी मैं उसे खेलने को राज़ी था, इसका क्या कारण था सो बुद्धिमान् पाठक स्वयं समझ सकते हैं । उस समय मेरे मन को इसी बात की चिन्ता सता रही थी कि क्या उपाय किया जाय कि खेलवाले दिन खूब भीड़ हो ।

कई दिन सोचते २ मुझे एक तरकीब सूझी उसे कार्यरूप में लाने के लिए मैं हेमेन्द्र बाबू से भेंट करने गया ।

सात बजे का समय होगा । हेमेन्द्र बाबू बिछौना छोड़ कर चाह पीने बैठे ही थे । मुझे देखतेही आग हो गये । बड़ी रुखाई से बोले, अब क्यों ? फिर कहीं फेर बदल कराने चले हैं क्या ? ऐसा हो तो यह सीधा मार्ग पड़ा है अपनें घर की राह लीजिये; अब मैं एक शब्द की कौन कहै एक कामा तक नहीं बदलुंगा । आपको सौ दफे गर्ज हो मेरा नाटक खेलिये चाहे न खेलिये । आपको नाटक क्या दिया आफत मोल ले ली । सब कामों की एक हद होती है पर आपने तो नाकों दम कर दिया । नित्य आज यह बदल दीजिये, यह ठीक कर दीजिये, यहां ऐसा कर दीजिये, वहां से यह निकाल दीजिये लगाये रहते हैं कोई कहां तक बरदाश्त करेगा । इससे अच्छा है कि आप मेरी पुस्तक लौटा दीजिये मैं बाज आया उसके खेल से । मैं अपने नतीजे को पहुंच न गया । यह सब मेरी ही बेवकूफी थी ! और देखिये ।

इधर मेरी हँसी रोके न रुकती थी । मुझे हँसते देखकर वह और अधिक बिगड़ कर बोले, "जी हाँ आपका हँसना तो ठीकही है ! इसमें कुछ लगता थोड़े ही है ! अगर आपको मालूम होता कि इससे लेखक के हृदय को कितनी चोट लगती है, कैसा दुख........इस बार मैंने ज्यों त्यों हँसी रोकी और उनकी बात काटकर बोला अजी ठहरिये साहब, ठहरिये, उस काम के लिए मैं नहीं आया हूं और ही बात है ।

मेरी बात सुनकर उनका क्रोध दूना हो गया । वह झुंझला कर बोले-"तो फिर अब तक कहा क्यों नहीं ?" फिर थोड़ी देर चुप । चाह पीने के बाद कहा, "तो दूसरा कौन काम है ?"

"बतलाता हूं, सुनिये, मैं चाहता हूं कि आपका नाटक खूब ठाट बाट से खेला जाय ।"

मेरी बात सुनकर नाट्यकार फूले न समाये । मुस्कराकर बोले, "देखिये देवेन्द्र बाबू, कल रात को खटमलों के मारे आंख तक नहीं लगी ! तबियत बड़ी खराब है । झुंझलाहट में

* प्रवासी से अनुवादित ।

यदि आपको कुछ कह सुन दिया हो तो माफ कीजियेगा । फिर क्या कहना था ? हां तो आप कृपा करने कहते हैं ।"

. मैंने जो तरकीब सोची है वह एक दम निराली है । आप और मैं काश्मीर चल कर..........

हेमेन्द्र बाबू बीच ही में मेरी बात काट कर बोले, काश्मीर चल कर ? एँ, देवेन्द्र बाबू आप कहते क्या हैं ? काश्मीर भारत की उत्तरी सीमा पर हम लोग चलेंगे ? यह ठीक नहीं वह असम्भव है; दूसरी कोई तरकीब हो तो बतलाइये ।"

हेमेन्द्र बाबू शरीर से जैसे मोटे हैं, स्वभाव के भी वैसेही आलसी हैं । एक जगह से दूसरी जगह जाना उनके लिए यमराज के यहां जाने के बराबर है । आलस्य ही तक नहीं, एक बाधा और भी थी, दूसरे व्याह की नई स्त्री मनीषा थी । "वृद्धस्य तरुणी भार्या" वाली कहावत सर्वत्र की भांति यहां भी चरितार्थ होती थी । इस अधेड़ अवस्था में वे षोड़शी मनीषा पत्नी के पीछे पागल से हो रहे थे । सदा उसके पल्ले के कोने बांधे रहना चाहते थे । इसीसे मुझे उनके काश्मीर जाने से इन्कार करने पर कोई सन्देह न हुआ । मैं तो उसके लिए पहिले ही तैयार होकर आया था ।

मैंने हसते हुए उन्हें समझा कर कहा—"अजी नहीं नहीं । मैं सचमुच काश्मीर जाने को थोड़े ही कहता हूं । तीन महीने आप और हम किसी गवई गांव में चलकर छिप रहें । इधर मेरे चेले चांटी पत्रों में खबर उड़ावेंगे कि—"यूनियन थियेटर के मालिक 'काश्मीर-गौरव' के नाट्यकार को साथ लेकर काश्मीर के ऐतिहासिक चित्र संग्रह करने और वहां की रीति रिवाज का अनुभव प्राप्त करने काश्मीर गये हैं ! इस बार बहुत खर्च करके बिलकुल नये ढङ्ग से काश्मीर गौरव खेला जायगा ! अबतक कोई नाटक इस ठाट बाट से नहीं खेला गया है न आगे खेले जाने की आशा है ! इत्यादि २ ।"

उसके बाद लिखगे आज उन्होंने अमुक पर्वत दृश्य का फोटो लिया है । आज अमुक २ विषयों में खोज की है । इत्यादि । "इतने ही से समझ लीजिये कि जब हम लोग तीन महीने के बाद लौटेंगे तब सारे कलकत्ते में शोर मच जायगा । और खेलवाले दिन वह भीड़ होगी कि कितने ही लोग जगह न पाने के कारण लौट जायँगे ।"

मैं जब बड़े ढङ्ग से अपनी कल्पना की कलम से भविष्य का चित्र खींच कर उनकी आंखों के सामने रख रहा था उस समय तकिये के सहारे बैठे हुए आखें फाड़कर प्रशंसमान दृष्टि से वे मेरी ओर देख रहे थे और जान पड़ता था मानों कल्पना द्वारा प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि प्रथम रजनी के अभिनय की आमदनी के अनगिनत रुपये और नोटों का बण्डल सामने धर कर वे गिन रहे हैं ! मेरे इस अनुमान का यह कारण है कि जिस समय मैं यह सब काल्पनिक बातें उनके सामने बना रहा था, उस समय उनके दोनों मोटे होठों के बीच से रह २ कर हँसी यों चमक रही थी ज्यों सावन भादों में बिजली चमका करती है । हँसी को वह रोकना चाहते थे पर वह रुकती न थी ।

मेरे कह चुकने पर वह बड़े उत्साह से बोले,—"वाह ! वाह ! देवेन्द्रबाबू आपकी भी क्या ही अनोखी सूझ है ! बस यही कीजिये, यही । शाबास इस सूझ को । वाह ! मैंने तो ऐसी अनोखी तरकीब कभी नहीं सुनी ।"

"तो आप चलने को मुस्तैद हैं ?"

"मैं ! क्या अन्याय है, मैं ! मैं कहां चलूंगा ? देखिये मुझे एक बड़ी पाजी बीमारी है, बीच बीच में उसका दौरा हो जाता है, आजकल तो

इससे बहुत तङ्ग आ रहा हूं। आप अकेले ही जाइये न ?"

उहँ यह नहीं हो सकता, सब मिट्टी में मिल जायगा। हम दोनों को साथ ही जाना चाहिये!"

हेमेन्द्र बाबू थोड़ी देर कुछ सोच कर बोले,—"पर इस काम में कोई आफत आने का डर तो नहीं है? मान लीजिये किसी ने देख ही लिया तो फिर? अच्छा यह तो कहिये चलियेगा कहां ?"

"यह अभी ठीक नहीं रात ही तो यह बात सूझ पड़ी और इस समय आपसे पूछने चला आया कि यह किया जाय तो कैसा। चलना ऐसी जगह चाहिये जहां कलकत्ते के बहुत ही थोड़े आदमी हों; छिपकर रहने की जगहों का क्या अकाल है? और उसके लिए बड़ी दूर जाने की क्या आवश्यकता है! अभी उस दिन हरेन्द्र और भुवन बैङ्क पर हाथ साफ करके चलते बने और अब तक पता न लगा? मेरा तो विश्वास है कि वह पास ही के किसी गांव में छिपे बैठे हैं और इधर पुलीस सारे शहर की धूल छान रही है। अस्तु, आपने रामनगर का नाम कभी सुना है?"

"नहीं। क्यों? वहां क्यों ?"

"वह जगह जाड़े में ऐसी निर्जन हो जाती है जैसे मरुभूमि। वहां नाम बदल कर रहने से कोई हम लोगों की खबर न पा सकेगा। रामनगर के पास ही एक नदी है, सांझ सवेरे आप उस नदी के किनारे टहलियेगा, इससे आपका शरीर भी खूब स्वस्थ हो जायगा।"

"मैं बिल्कुल अस्वस्थ नहीं हूं, उस गँवई गांव में चलकर स्वास्थ्य सुधारने की मुझे कुछ आवश्यकता नहीं है और बात भी क्या एक दो दिनों की है। तीन तीन महीने, बापरे बाप!

बहुत तर्क वितर्क होने के बाद हेमेन्द्र बाबू ने इस विषय में भलीभांति सोच विचार कर उत्तर देने को कहा, मतलब यह कि नई स्त्री से सलाह करके जवाब देंगे।

(२)

बड़ी युक्तियों और भविष्यत् के सब्ज़ बाग दिखाने के बाद अन्त में हेमेन्द्र बाबू को राज़ी किया।

सप्ताह भर के अन्दर हम लोग रामनगर जाने को स्टेशन पहुंचे। टिकटें खरीद कर गाड़ी में बैठने के बाद हेमेन्द्र बाबू ने जो मुहर्रमी सूरत बनाई वह जन्म भर याद रहेगी। ऐसा शोक तो उन्हें पहिली स्त्री के मरने पर भी नहीं हुआ था! बिचारे की सूरत पर तरस आता था! स्टेशन से मैंने दो अंगरेज़ी अखबार खरीद लिये थे—उन दोनों ही में हम लोगों के काश्मीर जाने की बड़ी लम्बी चौड़ी खबरें थीं। उन्हें पढ़ते समय ऐसा जान पड़ता था मानों सचमुच हम लोग काश्मीर जा रहे हैं।

यथासमय हम लोग रामनगर पहुंच गये। गांव बहुत छोटा है। सब का सब खाली ही पड़ा है। इससे बिना तकलीफ के ही हम लोगों को मकान किराये पर मिल गया। घर के मालिक को समझा दिया कि मेरे मित्र का स्वास्थ्य खराब है सो यहां हम लोग हवा पानी बदलने के लिए ठहरेंगे। वह आदमी झट से बोला—"हवा बदलने की ऐसी दूसरी जगह नहीं मिलने की साहब! किसी को हवा बदलनी होती है तो डाकृर यहीं आने की सलाह देते हैं।"

पांचही सात दिन बाद वासन्ती पवन बहने लगा। एक दिन मैंने हेमेन्द्र बाबू से पूछा। "कहिये स्थान कैसा है ?'

वह मुंह भारी करके बोले, "अरे छिः छिः ऐसे स्थान पर भी आदमी भेजते हैं। न कोई गाने बजाने का अड्डा न राग रंग। गांव क्या है स्मशान है। बैठे २ जी ऊबा जाता है, न कोई

"काम न काज। संध्या को तो दैनिक अंगरेज़ी पत्र आजाते हैं पर सारा दिन कैसे कटे ?"

"आते समय कलकत्ते से हेमेन्द्र बाबू सौसे अधिक पुस्तक अपने साथ लाये थे पर कुछही दिनों में बैठे २ सबकी सब पुस्तकें पढ़ कर समाप्त कर डालीं; इसी से अब बेकारी असरती थी।

थोड़ी देर चुप रह कर फिर बोले, कहिये कितने दिन बीत गये ? मेरे तो नाकों दम आ गया। इस मैले कुचैले घर में बैठे २ मैं तो पागल होगया। कहीं जरा घूम आने का भी सुभीता नहीं है, मैं मोटा ऐसा बे हिसाब हूं कि रास्ते में निकलने से लड़के पीछे हो जायँगे। कुशल इतनी ही है कि इस गांव में लड़के अधिक नहीं हैं। नहीं तो आज तक सचमुच मुझे पागल बना छोड़ा होता।

मेरे लिये ये बातें आज कुछ नई न थीं। नित्यही यह रोना सुनना पड़ता था। हँसी रोक कर मैंने इतना ही कहा हम लोगों को आये बीस दिन हो गये, अब केवल सत्तर दिन और बाकी हैं। उसके बाद फिर पौबारह है, ख्याल कीजिये फिर कैसी चमक दमक से सौभाग्य सूर्य आपके भाग्याकाश में उदय होगा।"

"जी हां तब तक जिन्दा रहा तो पर यहां तो योंहीं मेरी जान निकल रही है। अगर बीचही में दुलक गया तो यह सौभाग्य कौन भोगेगा ! अभी सत्तर दिन है। बाप रे बाप एक युग का युग पड़ा है ! नहीं मैनेजर साहब, इससे तो कलकत्ते लौट चलिये तो अच्छा; सच कहता हूँ यहाँ की हवा मेरे लिए असह्य हो गई है। स्वास्थ्य भी खराब हो चला है। इधर वहां घर में पड़ा कोई कराह रहा है उसकी भी चिन्ता सता रही है।"

मुझे तो पहिलेही मालूम था कि हेमेन्द्र बाबू इन थोड़ेही दिनों में पत्नी विरह में यक्ष की भांति व्याकुल होकर हाय तोबा मचा देंगे। इस बात को टाल कर मैंने कहा, "लेकिन अब तो लौटने का कोई चारा नहीं है।"

एक ठण्ढी सांस लेकर हेमेन्द्र बाबू चुप हो रहे।

(३)

उस दिन हेमेन्द्र बाबू को डेरे पर अकेला छोड़ कर मैं बाज़ार में एक दूकान पर कागज़ खरीदने गया था।

वहां देखा दुकान के अन्दर तख्ते पर बैठा हुआ एक आदमी उस दिन का अखबार ज़ोर से पढ़ रहा था और कुछ बेकार आदमी पास बैठे सुन रहे थे। वह आदमी जो मज़मून पढ़ रहा था वह हम लोगों के भ्रमण का मनगढ़न्त इतिहास था।

मैंने एक जिस्ते कागज़ के लिए एक रुपया दे कर बाकी पैसे फेरने को कहा ! मैं पैसों के लिए खड़ा था इसी बीच में एक दुबले पतले फटे पुराने कपड़े पहिने हुए आदमी ने आकर एक पैसा फेंक कर चाह मांगी। मैंने मन में कहा ऐसे दीन मनुष्य भी चाह पीते हैं ? उस आदमी को अपनी ओर घूरते देखकर मुझे बड़ा अचरज हुआ। बहुतेरा सोचा पर याद न पड़ा कि उसे पहिले भी कहीं देखा है। यह कहना व्यर्थ है कि मैं बहुत भयभीत हो गया था। उसका घूरना देखकर मुझे निश्चय हो गया कि मैं उसे नहीं पहिचानता तो क्या हुआ वह मुझे ज़रूर पहिचानता है। मेरे भय का यह कारण था कि कहीं उसने पत्रों में मेरे काश्मीर जाने और वहां खोज करने के समाचार पढ़े हों और यहां वह मुझे प्रत्यक्ष विद्यमान देख भंडाफोड़ मेरा सारा का सारा खेलही न बिगाड़ दे। हम लोगों की सारी पोल खुल जायगी और इस धोखेबाज़ी का समाचार आजही कल में देश भर में फैल जायगा। चिन्ता के मारे चित्त चञ्चल हो गया। मनही मन

अपने पर बहुत झुँझलाया। कहना भूल गया कि उस दिन के पत्रों में हम लोगों के काश्मीर पहुंच कर अनेक तथ्यों के आविष्कार करने का सम्वाद छपा था।

अस्तु। रुपये के बाकी पैसे पाते ही मैं यथासम्भव जल्दी २ पैर उठा कर घर की ओर बढ़ा; पर दोही चार कदम रक्खे थे कि पीछे से किसी ने पुकारा, "अजी साहब! अजी देवेन्द्र बाबू।"

मैंने पीछे फिर कर कहा—"आप भूलते हैं साहब! मेरा नाम देवेन्द्र बाबू नहीं है।"

क्यों साहब, आप झूठ क्यों बोलते हैं! मैं आपको खूब पहिचानता हूं। पर उसे जाने दीजिये, कृपया पांच मिनट ठहर कर मेरी दो बातें सुनते जाइये। थियेटर में जाकर तो आप के दर्शन होने के नहीं।

मेरे परिचय के सम्बन्ध में इस व्यक्ति ने ऐसा निश्चित भाव दिखलाया कि मुझे चुप रहना पड़ा। लाचार खड़े होकर मैंने पूछा "आप मुझसे क्या चाहते हैं?"

वह कहने लगा—मैं एक अभिनेता हूं। बचपन ही से मुझे अभिनय का शौक है। इतनी ही उम्र में प्रहसन से लेकर विद्यागान नाटक तक सभी में खेल चुका हूं। मुझ में अभिनय करने की शक्ति है, पर कोई जामिनदार न मिलने के कारण कलकत्ते के किसी थियेटर में मेरी नौकरी न लगी। मेरे अभिनय करने की क्षमता का प्रमाण पाये बिना कोई विश्वास नहीं करना चाहता। मैंने इतनी देर मार्ग में आपका समय नष्ट किया इसके लिए क्षमा कीजियेगा। मेरी प्रार्थना है कि एक बार मुझे काम देकर देखिये वास्तव में मुझे अभिनय करना आता है या नहीं!"

उसकी बातों से यह तो मालुम हो गया कि इसे अभी तक हम लोगों के काश्मीर जाने की खबर नहीं है। पर कौन जाने कि आध घंटा बाद उसे इस बात का पता नहीं लगेगा समझ में नहीं आया कि क्या करूं। यदि इसे नौकरी न दूं और योंही बिदा करदूं तो यह अवश्य ही लोगों में मुझ से भेटे होने की बातें प्रगट कर देगा, फिर तो मुझे लोगों में मुंह दिखाने की जगह न रह जायगी। फिर?

अन्त में मैंने गम्भीरता से कहा,-ओह ठीक है! अच्छा तो आप काहे का पार्ट अच्छी तरह खेल सकते हैं!

जान पड़ता है खुशी में भर जाने के कारण उसने मेरी बात नहीं सुनी, वह बोला "जी मैं बहुत थोड़ी तनखाह पर राजी हूं।"

मुश्किल से हँसी रोककर मैंने कहा, "च-लिये थोड़ी दूर तक मेरे साथ चलिये, राह में बातें करते जायँगे। अच्छा आपको काम देने के पूर्व एक बार आपकी परीक्षा लेनी आवश्यक है क्योंकि हम देख तो लें कि आप में अभिनय करने की शक्ति है। आपतो जानते हैं कि यूनिवर्स थियेटर के नौकर नौकरानी तक काम पड़ने पर अभिनय कर सकते हैं? तो क्या आपके गांव में कोई रामेश्वर थियेटर भी नहीं है? क्या कोई ठीके का काम भी नहीं मिलता?"

उसने ठण्ढी सांस लेकर कहा, "जी नहीं न ठीके का न और अन्य प्रकार का, कोई काम नहीं मिलता इसीसे घर बैठा हूं।"

"पर आप तो नाट्य जगत् से बड़ी दूर पड़े हुए हैं।"

"हां कारण यह है कि मैं अकेला नहीं हूं, मेरी एक छोटी लड़की भी है।"

"कलकत्ते में भी तो बहुतेरे अभिनेता लड़के लड़कियों को साथ लेकर रहते हैं।"

"जी हां उनकी वैसी ही चलती भी तो है। पर मेरे ऐसा बेकार आदमी कौन से कलेजे पर कलकत्ते जाकर रहे? गरीब की लड़की सभी

की आँखों में खटकेगी, मेरी बेटी उनकी दुरदुराहट से सूख जायेगी, इसीसे कलकत्ते जाकर रहने का साहस नहीं होता। जन्म भर इसी गांव में पड़े रहना मञ्जूर है पर मैं बच्चे को उठाकर यमराज के मुंह में नहीं डालूंगा। वही मेरे जीवन की सर्वस्व है!"

"यही, यही आपका आर्ट है!"

"मेरा आर्ट! आप देवेन्द्रबाबू करते क्या हैं? पें-" वह उछल पड़ा।-"मेरा तो आपसे कहना है कि मैं एक अभिनेता हूँ और शिक्षा पाने पर आगे और भी अधिक उन्नति कर सकता हूं! पर वह सब चूल्हे में गया! आप मुझसे थियेटर के स्टेज बुहारने का काम लें और महीने २ तनख्वाह दिये जायँ तो वही मेरे लिए बहुत है। लड़की को दो समय खाने को मिल जाय यही क्या थोड़ा है। चूल्हे में गया आर्ट फार्ट! चाहिये केवल रुपया, रुपया देवेन्द्रबाबू रुपया! दूसरों के लड़के भरपेट खापीकर हँसते खेलते फिरते हैं वैसे ही मैं भी अपनी लड़की को रखना चाहता हूं—बस इतना कर दीजिये देवेन्द्रबाबू और अधिक मैं कुछ नहीं चाहता।

"आप जो चाहते हैं वह कौनसी बड़ी बात है। एक दिन आपकी तनख्वाह से ही वह सब होकर बहुत बच जायगा।"

"क्या इसकी भी आशा है, देवेन्द्र बाबू? क्या यह भी होगा?"

एक बार परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाने पर झट २ आपका महीना बढ़ जायगा—होगा क्यों नहीं?"

"पर साहब, वह कहां होता है? बरसों से मैं थियेटरों के दरवाजों पर धक्के खाते फिरता हूं पर मेरी ऐसी फूटी किस्मत है कि कहीं भी काम नहीं मिलता। हां तो साहब आप क्या कहते हैं?"

"हां आपका नाम क्या है?"

"जी मेरा नाम प्राणपद पान है।"

"तो प्राणपद बाबू आपका अभिनय देखे बिना तो मैं आपको काम देने में असमर्थ हूं और सोच देखिये इसमें मैं कोई बेजा बात नहीं कहता हूं।"

"नहीं बेजा क्या है? तो आपसे खबर पाऊँगा?"

"हां तो मैं क्या कह रहा था? मेरे पास से आपको खबर मिलने में थोड़ी देर लगेगी। 'काश्मीर गौरव' नाटक का अभिनय आरम्भ होने पर आप एक पत्र लिखकर मुझे स्मरण करा दीजियेगा। सम्प्रति कुछ दिनों मैं यहां नहीं रहूंगा, कल ही सबेरे की ट्रेन से काश्मीर जाऊंगा। अखबारों में आज हम लोगों के काश्मीर पहुंच जाने की खबर निकल चुकी है। इससे आज आपके साथ मेरी भेंट होने की बात किसी पर प्रगट मत कीजियेगा। तो हां आपकी बात मुझे याद रहेगी।"

उसे मेरी बातों का यक़ीन न हुआ वह चुपचाप खड़ा रहा। उसके दोनों होंठ कांप रहे थे। परमात्मा जानता है, इससे अधिक आशा देने का शक्ति मुझ में न थी।

"आपने आज मेरे साथ जो भलमनसी की है वह मुझे सदा याद रहेगी। पर देवेन्द्र बाबू, आपने मेरा उपकार क्या किया? मैं तो वैसा का वैसा बेकार ही बना रहा!"

"नहीं २ आप निराश मत होइये; मैं शीघ्र ही आपको पत्र लिखूंगा।"

पर उस समय नहीं मालूम था कि विधि की विडम्बना में फँस कर उसी दिन उसे बुलाना पड़ेगा।

(४)

मैंने डेरे पर आकर देखा कि हेमेन्द्र बाबू बिछौने पर नाक बजा रहे हैं।

उन्हें जगाकर कहा, "लीजिये चीज़ पत्र समेट कर तैयार हो जाइये—आज ही यहां से खिसकना पड़ेगा।"

उन्होंने विस्मित होकर कहा "बात क्या है?"

"बात है मेरा सिर! यहां एक अभागा छोकरा है वह मुझे पहिचानता है। मैं उससे कह आया हूं कि आज ही काश्मीर जायँगे। इसीसे कहता हूं चीज़ पत्र समेट लीजिये, आज ही टल जाना चाहिये, कलह जिसमें वह हम लोगों को देख न पावे।"

हेमेन्द्र बाबू लेटे हुए थे इस बार उठकर बोले—"तो हम लोगों को कलकत्ते चलना होगा न?"

"अरे नहीं नहीं यह कैसे होगा? और कहीं शरण लेनी पड़ेगी।"

"क्यों? हम लोग क्या चोर हैं? अच्छा देवेन्द्र बाबू इस तरह यहां से वहां खराब होने फिरने से क्या यह अच्छा न होगा कि मैं कलकत्ते लौट जाऊँ? वहां खूब खबरदारी से किवाड़े बन्द कर मैं घर में घुस कर बैठा रहूंगा, कोई पता न पावेगा। यह सब से अच्छा होगा!"

मैंने उनकी बात अनसुनी कर दी।

× × × ×

उस समय सन्ध्या हो चली थी। घर में चारों ओर अँधेरा छागया था। हम लोग नौकर के रोशनी लाने की बाट देख रहे थे। कई मिन्टों बाद रोशनी लेकर एक अनजान सज्जन कमरे में आये। उसे देखकर मैं जितना नहीं चौंका था उससे अधिक उसकी बात सुनकर चौंक पड़ा। हजरत कहते क्या हैं कि हमीं लोग बंक से चोरी करके भागनेवाले असामी हैं और वह पुलीस इन्सपेक्टर है, हमीं लोगों को गिरफ़्तार करने आये हैं!

हम दोनों ने आपस में एक दूसरे की ओर देखा। समझ लिया कि जैसी दशा आपड़ी है उससे अब असल नाम छिपा कर झूठा नाम बतलाने से काम न चलेगा।

मैं पहिले हिम्मत बांधकर आगन्तुक इन्सपेक्टर से बोला—"आप साहब भूलते हैं! मेरा नाम देवेन्द्र नाथ पात्र है—मैं यूनियन थियेटर का मालिक हूं और इनका नाम हेमेन्द्रनाथ पोद्दार है; इनका घर भी कलकत्ते में है। नाहक़ हम लोगों को दिक़ मत कीजिये।

वह हम लोगों की बातों से ज़रा भी विचलित न हुआ।

मेरी जेब में मेरे नाम के कार्ड थे मैंने एक कार्ड निकाल कर कहा—"यह देखिये मेरे नाम का कार्ड है।"

उसने वैसेही अविचलित रूप से कहा, "इसमें क्या रक्खा है? इसमें ऐसी तो कोई खास बात नहीं है जिससे आपकी निर्दोषता प्रमाणित हो सके। फिर आपने देवेन्द्र बाबू के नाम का कार्ड चुरा नहीं लिया इसी का क्या सबूत है? मैं ये सब बातें नहीं सुनना चाहता; आप लोग मेरे साथ आइये, बाहर मेरे सिपाही खड़े हैं। आपको जो कुछ कहना सुनना हो सो थाने में चल कर कहिये सुनियेगा। चलिये २ उठिये!" इतना कहकर वह मेरी ओर बढ़ा।

"खबरदार मूर्ख! हाथ लगाया तो बिना सत्यानाश किये न छोड़ूंगा। जान रखना मैं ऐसा वैसा आदमी नहीं हूं, मैं यूनियन थियेटर का मालिक हूं, मुझे मामूली आदमी मत समझना। फिर पैरों पड़ कर क्षमा मांगने से भी माफ नहीं करूंगा तेरा सत्यानाश किये बिना नहीं मानूंगा।"

फिर भी वह अटल था। मेरी ओर देख कर बोला हरेन-की होलिया में जैसा—लम्बा कद, ऊँचे गाल और मूंछ मुड़ाये लिखा है वह

सब ज्यों का त्यों आपसे मिलता है और भुवन की होलिया में सिर के बाल बड़े हुए, उम्र पचास साल, बेहद मोटा जो लक्षण बतलाये गये हैं वह सब इन साथी साहब में मिलते हैं। व्यर्थ का बखेड़ा न कीजिये, चुपचाप मेरे साथ चले आइये।"

बहुत गर्ज कर हेमेन्द्र बाबू बोले, एक दम बना बनाया गदहा है! क्यों रे अहमक कलकत्ते भर में क्या भुवन के सिवा और कोई मोटा है ही नहीं?"

"अजी जनाब यह तो किसी और से जाकर पूछियेगा, न मैं जानता ही हूं न सुनना ही चाहता हूं।"

हेमेन्द्र बाबू दांत पीस कर बोले—"मैं तुम्हें कहे देता हूं अब भी सम्हल जाओ, अभी कुछ बिगड़ा नहीं है। अपनी खैरियत चाहो तो चले जाओ। नहीं मैं तुम्हें सहज में नहीं छोड़ूंगा। भुवन ही दुनिया भर में एक मोटा है यह कौन बात है? पर हां वह ज़रूर मोटा था और मालूम होता है मैं भी ज़रा मोटा आदमी हूं लेकिन इसी से मेरे भुवन होने का क्या प्रमाण पाया?"

उसने मज़ाक से हँस कर कहा,—"और इसी का क्या प्रमाण है कि आप भुवन नहीं हैं? प्रमाण में तो आप लोगों के पास बस यही एक देवेन्द्र बाबू के नाम का कार्ड भर है लेकिन इसका साक्षी कौन है कि आप लोगों में से एक देवेन्द्र बाबू हैं! जाने दीजिये सब हो गया, अब मेरे साथ चलिये; यों व्यर्थ खोने के लिए मेरे पास समय नहीं है।"

अब मुझसे चुप न रहा गया; क्रुद्ध होकर बोला,—"चुप रहो, ज़रा ठहरो! अच्छा सुनो, मैं यदि यहां के किसी आदमी से साबित करा दूं कि मैं हरेन्द्र नहीं हूं तब तो फिर इम लोगों से कोई मतलब न रहेगा?"

हेमेन्द्र बाबू ने अगाह सागर में सहारा पाकर झटपट पूछा—"उसी आदमी की बात कहते हैं जिससे आज राह में आपकी भेंट हुई थी?"

इन्सपेक्टर ने कहा—"हमारी जान में तो हमने यहां के किसी आदमी से पूछना बाकी लगाया नहीं।"

"हां यहां एक ऐसा आदमी है जो मुझे खूब पहिचानता है;—और वह भी यहां का नया नहीं पुराना रहिवासी है।"

"खैर उसका नाम बोलिये।"

मैंने कहा,—"उसका नाम—" कैसी आफत है। नाम भी मुझे याद नहीं पड़ता है! सच कहने में क्या हर्ज़ है मुझे उसके नाम याद रखने की कुछ भी आवश्यकता न जान पड़ी थी। उस समय तो केवल पीछा छुड़ाने के लिए कह दिया था,—"आपकी बात मुझे याद रहेगी।" बड़ी देर तक सोचने पर मुझे उसका नाम याद न पड़ा; थोड़ी देर चुपचाप खड़े रहने बाद बोला,—"साहब उसका नाम तो नहीं याद पड़ता।"

"देख लिया, बहुत हो गया! चलिये मालूम हो गया कि यह सब आपके बहाने हैं।"

मैंने रोक कर कहा—"नहीं, नहीं, आज ही पहिले पहिले उससे मुलाकात हुई थी इसीसे नाम ठीक याद नहीं पड़ता है, थोड़ा २ याद पड़ता है—ज़रा ठहरो मैं बतलाता हूं।"

निराशा से व्यथित होकर हेमेन्द्र बाबू बैठ गये।

पुलिस इन्सपेक्टर ने कहा, "बहुत देर देख लिया अब नहीं देख सकता, चलिये २ उठिये आप लोग!"

आफत देखकर मैंने अपनी सारी स्मरण शक्ति लगाकर उसका नाम याद किया। मैंने बड़ी तत्परता से कहा,—"उसका नाम—उसका नाम—हां प्रणापद पान है।"

उसने अपने पाकेट बुक में यह नाम दर्ज कर लिया। फिर बोला,—"उससे कहां भेंट होगी!"

"यह मैं कैसे बतला सकता हूं? इस गांव के किसी आदमी को जाकर पूछो। और सुनो, मैंने अब इस गांव के एक ऐसे आदमी का नाम बतला दिया है जो मुझे पहिचानता है। अब भी अपनी खैरियत चाहो तो उसे बुलाकर अपनी भूल दुरुस्त करलो; तुम्हारे लिए आत्मरक्षा का यह अन्तिम सुयोग है।"

अच्छा! और मैं भी आप से कहे देता हूं कि याद वह आदमी खोजने पर भी न मिला तो उसके लिए आपही भोगगे।"

उसने जँगले के पास जाकर एक छोटी सी सीटी बजाई, उसके बाद दबी जबान से किसी को कहा, जाओ जी यहाँ प्राणपदपान नाम का कोई आदमी है उसे बुला लाओ और उससे पूछना कि क्या आज यूनियन थियेटर के मालिक देवेन्द्र बाबू के साथ उसकी भेंट हुई थी?"

फिर वह वापस आकर हम लोगों के पास बैठ गया। जो आदमी प्राणपद को बुलाने गया था बड़ी उत्सुकता से हम लोग उसकी प्रतीक्षा करने लगे। ओफ, कैसे दुःख से उतना समय कटा था! कितना समय हम लोगों ने उत्सुकता से काटा था। बैठे २ उक्ता जाने के कारण इन्सपेक्टर बाहर चला गया।

हठात् हेमेन्द्र बाबू बोले,—"सुनते हैं कुछ? जान पड़ता है आदमी लौट आया है, यह सुनिये वह बातें कर रहे हैं।

कुछ मिनट और बीत गये। इन्सपेक्टर ने अकेले घर में आकर कहा,—"प्राणपद बाबू से मेरे आदमी की भेंट हुई; और उन्होंने भी कहा कि आज सवेरे देवेन्द्र बाबू से उनकी भेंट हुई थी। पर इससे क्या हुआ? आप दोनों में से कौन देवेन्द्र बाबू हैं यह मुझे कैसे मालूम हो? प्राणपद बाबू बैठे अपनी लड़की की कहानी सुना रहे हैं—इस समय नहीं आसकेंगे। अब व्यर्थ देर करने से क्या लाभ—चलिये थाने में।"

मैंने निराशा से बहुत दुःखित होकर पुकारा—"हे भगवन्!" सच कहने में क्या डर है। मेरा हृदय उस समय निराशा से भर गया था। मेरी अन्तिम आशा निष्फल होगई!

अधीर होकर मैं घर में टहलने लगा, प्राणपद क्या बोला, बदमाश ने क्या कहा कहिये तो?"

"मेरे आदमी की ज़बानी मालुम हुआ कि वह कहता है जान पड़ता है देवेन्द्र बाबू मेरा नाम तक याद न रख सके और जब उन्होंने मेरा कोई उपकार नहीं किया तो मैं ही क्यों उनकी बेगार करने जाऊँ?"

मैं बैठ गया। मुझे चारो ओर अन्धकार दिखाई देने लगा। शरीर सन सन कर रहा था। मेरी दशा देख इन्सपेक्टर भी अधीर हो गया। बोला—"शायद उसके नाम एक चिट्ठी लिखने से काम बन जाय। आप चिट्ठी लिखना चाहें तो मैं थोड़ी देर ठहर सकता हूं।"

मैं मेज़ पर से कागद कलम उठाकर चिट्ठी लिखने बैठा। उसने रोक कर कहा—अँहँ वह नहीं, आप उसे कोई बात सिखा दें तो फिर क्या होगा? मैं बोलता हूं आप लिखिये, वह ठीक होगा।"

लाचार मैंने उसकी बात मान कर कहा—"अच्छा आप ही बोलिये क्या लिखना होगा।"

उसने कहा हाँ लिखिये "श्रीयुत प्राणपद महाशय समीपेषु,—

महाशय—"

"हां लिख चुका—आगे बोलिये आगे।"

वह बोलने लगा—"मैंने इतनी देर में भली भांति समझ लिया कि आप में अभिनय करते

की अद्वितीय शक्ति है। यह जानकर आज से आपको अपने थियेटर में एक सौ रुपये मासिक में अभिनेता के पद पर नौकर रक्खा। मैं जब तक थियेटर में रहूंगा तबतक आपको नौकरी से न छुड़ाऊंगा।"

चुपचाप अचरज से मैं उसकी ओर देखने लगा। कुछ देर बाद वाक्शक्ति लौट आने पर मैंने उससे पूछा—

"आप कौन हैं महाशय?"

उसने मुसकुरा कर कहा, "क्यों आपका तावेदार प्राणपद पान—अभी जिसे एक सौ रुपये मासिक वेतन पर नौकर रक्खा है। अब हस्ताक्षर कीजिये।"

अब प्राणपद की अभिनव अभिनय-दक्षता में मुझे कुछ भी सन्देह न रह गया। इससे चुपचाप मैंने उस पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये।

प्राणपद मुसकुरा कर बोला—"नमस्कार महाशय! तो अब चलता हूं।"

कान्यकुब्जाधिपति श्री हर्षवर्धन।*

[लेखक–श्रीयुत बालमुकुन्द बाजपेयी।]

पाश्चात्य पुरातत्वविद् विद्वानों की कृपा से महात्मा ईसा के ३०० वर्ष पूर्व तक का भारत का तिथि सम्वत सहित धारावाहिक इतिहास अथवा वे बातें जिन्हें पाश्चात्य पुरातत्वविद् इतिहास मानते हैं और जिनसे जातीय उत्थान के लिए बहुत कुछ मालूम हो सकता है—भलीभांति विदित हो गई हैं। यों तो चन्द्रगुप्त मौर्य्य से भी तीन सौ वर्ष पूर्व के मगध के तत्कालीन मुख्य राज्य राजगृह के राजाओं का नाम गिनाना तथा उसी प्रान्त के या निकटवर्ती और भी दो एक राजघरानों का दृढ़ आधार पर, स्थूल परिचय करा देना, संभव हो गया है; पर इससे अधिक इन ३०० वर्षों के इतिहासस्वरूप जो घटनाएँ जानी जाती हैं उनमें से अधिकांश के सम्बन्ध में अभी तक पुरातत्त्ववेत्ता आचार्य एक मत नहीं हो सके हैं। चन्द्रगुप्त मौर्य्य के समय से ऐतिहासिक सामग्री का वह अभाव नहीं है परन्तु जिस प्रकार किसी २ समय का पर्य्याप्त इतिहास प्राप्त है उसी भांति एकाध शताब्दी घोर अन्धकाराच्छन्न भी है तथा किसी २ स्थल पर विशेष महत्वपूर्ण घटनाओं के सम्बन्ध में भी मान्य इतिहासज्ञों में मतभेद उपस्थित है। उदाहरणार्थ, हमारे प्रचलित सम्वत के नायक महाराज विक्रमादित्य के काल और व्यक्तित्व की अभी तक निर्विवाद मीमांसा नहीं हुई है।

मूर्ख, धर्मान्ध शत्रुओं की कृपा से स्वयं भारतवासियों के लिखित इतिहास ग्रन्थों का

* विं० विनसेण्ट ए० स्मिथ के "भारत का प्राचीन इतिहास सिकन्दरी चढ़ाई युक्त" नामक ग्रन्थ के आधार पर लिखित।
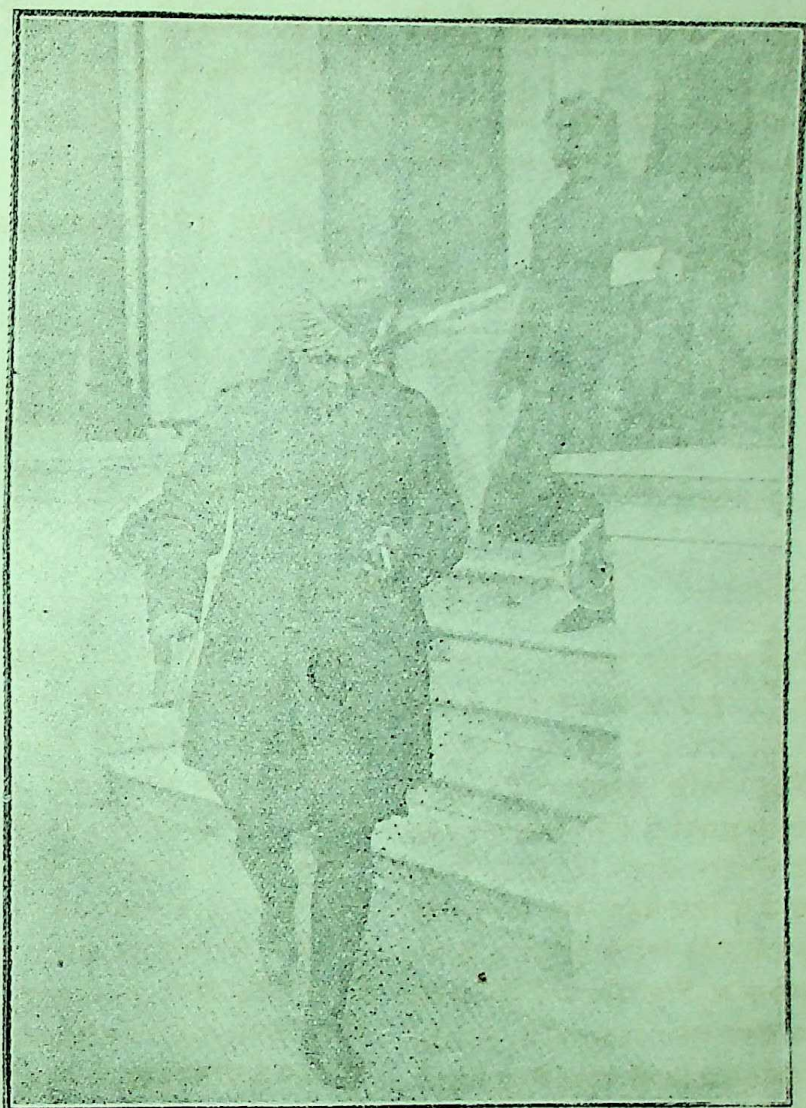
नवानगर के जाम साहब भी हिन्दुस्थानी सेना के साथ लड़ाई पर गये हैं। इस चित्र में आप लन्दन के इंडिया आफिस से निकलते हुए दिखाये गये हैं। घायलों के लिए स्टेन्स में आपने अपने खर्च से एक अस्पताल भी स्थापित किया है।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग।

कहीं पता न होने पर भी * अध्यवसायी, परिश्रमी, इतिहासप्रेमी पाश्चात्य विद्वानों के लिए सकल प्रकार की ऐतिहासिक सामग्री का अभाव न हुआ और उन्हें सहस्र सहस्र सधन्य-वाद बधाई है जिन विदेशियों ने अपने आदर्श तथा ज्ञान के अनुसार इससामग्री से पूर्ण लाभ उठाने में कोई कसर नहीं उठा रक्खी; यद्यपि अभी भी बहुत कुछ करना है और बहुत राख छाननी है। भारतवासी इतिहास का मूल्य समझते थे, इतिहास की रक्षा भारत में अनेक उपायों से की जाती थी यह स्पष्ट है परन्तु साथ ही यह भी निर्विवाद है कि, भारत के गत ढाई हज़ार वर्ष के नष्टप्राय इतिहास के आंशिक उद्धार का श्रेय पाश्चात्य पण्डितों को ही प्राप्त है। स्वनामधन्य डा० भण्डारकर आदि दो एक भारतीय विद्वानों ने भी उपर्युक्त अगाध पाण्डित्यसाध्य पुण्यकार्य में अच्छी सहायता दी है तथा दे रहे हैं† परन्तु यह सहायता समुद्र में बिन्दु के समान है और शतांश गौरव की भी अधिकारिणी बनाने के योग्य नहीं।

किसी जाति का प्रकृत इतिहास भिन्न मता-वलम्बी, भिन्न आदर्शधारी, सहानुभूति-शून्य विजातीय लेखक की लेखनी से लिखा जाना सम्भवपर नहीं है, यदि यह सिद्धान्त निर्भ्रान्त हो तो भारतीय इतिहास-लेखकों का विदेशी विद्वानों पर किसी प्रकार का दोषारोपण करना असङ्गत है। प्रत्येक घटना को, महापुरुषों के चरित्रों को, सामाजिक रीति नीति को, कला कौशल के उत्थान पतन के क्रम को, धार्मिक विश्वासों तथा सम्प्रदायों और उनके संस्थापकों को अपनी सभ्यता, अपने आदर्श के चश्मे से देखना एवं तदनुसार उनपर प्रकाश डालना प्रत्येक लेखक के लिए सर्वथा स्वभावसिद्ध है। अतएव विदेशियों के परिश्रम के लिए हम उनके कृतज्ञ हैं। यह हमारा—भारतवासियों का—कर्तव्य है कि, उनकी प्राप्त की हुई सामग्री से पूर्ण लाभ उठा कर, जातीय उत्थान के अनुकूल, जातीय आदर्श स्थापक, आर्य जाति की कीर्ति तथा भ्रान्त बातों का स्पष्ट प्रदर्शक-अपना प्रकृत इतिहास लिखें। जातीय किम्वा राष्ट्रीय जागृति तथा उत्थान के लिए राष्ट्र के प्राचीन इतिहास की अनिवार्य आवश्यकता है यह सर्ववादि सम्मत है। वर्तमान समय में हमें अपने पूर्वजों की वीरतापूर्ण कहानियों, और उनकी शासनप्रणाली जानने की जितनी आवश्यकता है उतनी विज्ञान की नहीं है। अस्तु।

---

* हमारे पुराणों में ऐतिहासिक राजाओं की अभ्रान्त नामावली दी हुई है, इसमें अब किसी को विवाद नहीं है। यदि यूरोपियन विद्वानों के मता-नुसार ईसा की तीसरी चौथी शताब्दी में लिखे हुए, हमारे धर्मग्रन्थों में भी इतिहास की अवहेलना नहीं की गई है तो यह कैसे मान्य हो सकता है कि इसके पश्चात् सहसा हमारी प्रवृत्ति ऐसी हो गई कि पुस्तकों की सम्पूर्ण उपेक्षा कर शिलालेख, जयस्तम्भ आदि अधिक स्थायी साधनों द्वारा ही इतिहास की रक्षा करना हमने उचित समझा। यह कलङ्क निस्सार है। कुछ छोटी मोटी प्रान्तीय इतिहासों की प्राप्य पोथियां इस बात का प्रमाण है। उपस्थित विषय का पूर्ण विचार इस स्थान पर असंभव है। संक्षेप में, शिला-लेख, जयस्तम्भ, ताम्रपत्रादि अधिक स्थायी इति-हास सामग्री तो बच गई परन्तु पुस्तकें असभ्यों से न बचीं।

† ऐतिहासिक अनुसन्धान के हेतु पूर्व बङ्ग में "वीरेन्द्र अनुसन्धान समिति" नामक एक प्रभावशाली संस्था भी कुछ वर्षों से स्थापित हुई है और अच्छा काम कर रही है। यदि हम भूलते नहीं हैं तो इङ्गलैंड के एक प्रसिद्ध विश्वविद्यालय से जो नवीन सर्वाङ्ग सुन्दर तथा नूतनतम प्रमाणित तथ्यों से पूर्ण भारतीय इतिहास ग्रन्थ प्रकाशित होनेवाला है उसके निमित्त बङ्गदेश का इतिहास लिखने का भार इसी समिति पर है।

जिस इतिहास के उद्धार का उल्लेख किया गया है वह भारत के पतन का इतिहास है। परन्तु हमारे सौभाग्य से इस पतनकाल में भी सुदूर भूतकालिक गौरव की परिचायक उच्च आदर्शप्रदर्शक घटनाओं का, वीर गाथाओं का, प्रतापी सम्राटों के अनुकरणीय राज्य-प्रबन्ध के मनोहर दृश्यों का अभाव नहीं है। हूणों की लूटमार के उपरान्त पाञ्चाल देश में हर्षवर्धन नामक एक प्रतापी सम्राट् ईसा की सातवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में हो गया है। उसका संक्षिप्त इतिहास "मर्यादा" के पाठकों की सेवा में अर्पित है। मनोयोग पूर्वक पढ़ने से विदित होगा कि हर्ष परम धार्मिक, उदारचेत्ता, राज-काज में निपुण और वीर पुरुष था। इस वैज्ञानिक युग में भी उसके सदृश दूरदर्शी, ईश्वरपरायण सम्राट् के दर्शन मिलना सहज नहीं है।

समसामयिक ग्रन्थ द्वय ।

समकालीन दो साहित्यिक ग्रन्थों की कृपा से हर्षवर्धन के समय की मुख्य मुख्य घटनाओं का बहुत कुछ विवरण मिलता है। इसी की छठीं शताब्दी के उत्तरार्ध में भारत के इतिहास लेखक को जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है सातवीं के प्रारम्भ में वे काफूर हो जाती हैं। सामान्य शिला-लेख तथा मुद्राओं की सामग्री के अतिरिक्त प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वएनसंग—जिसने ईसवी ६३० से ६४४ तक समग्र भारत में पर्यटन किया था—लिखित अमूल्य भ्रमण ग्रन्थ तथा हर्षवर्धन के राजकवि भूदेवबाणकृत अपने आश्रयदाता का स्तुत्यात्मक ऐतिहासिक काव्य यही दो ग्रन्थ हैं जिनसे हर्ष का इतिहास लिखने में बड़ी सहायता मिलती है। इनके अतिरिक्त राजकीय चीनी इतिहासों से भी बहुत कुछ सहायता मिलती है।

हर्ष की प्रारम्भिक स्थिति ।

छठीं शताब्दी के अन्त में थानेश्वर-कुरुक्षेत्र के राजा प्रभाकरवर्धन ने अपने पड़ोसी छोटे मोटे राजाओं मालव प्रदेश, पश्चिमोत्तर पञ्जाब के हूणों तथा राजस्थान के गुर्जरों पर विजय प्राप्त कर अच्छी ख्याति पाई। इस राजा की माता पाटलिपुत्र के प्रसिद्ध गुप्त राजवंश की, जिसका सूर्य अब अस्त हो चुका था, कन्या थी। इस कारण उसकी (प्रभाकर वर्धन की) राज्यविस्तार करने की लालसा को प्रोत्साहन मिला तथा सफलता प्राप्त करने में भी सहायता मिली। ई० ६०४ में इसने अपने ज्येष्ठ पुत्र राजवर्धन को, जिसकी अभी मसें भीज रही थीं, विपुल सेना के साथ पञ्जाब की पश्चिमोत्तर सीमा पर हूणों की किसी टुकड़ी का दमन करने के हेतु भेजा और छोटा पुत्र हर्ष जो युवराज से चार वर्ष छोटा था तथा अधिक प्रेमपात्र था, घुड़सवारों की सेना लेकर बड़े भाई के बहुत पीछे २ चला। युवराज तो पहाड़ों में घुसकर शत्रु को ढूंढ़ने लगा, इधर हर्ष पहाड़ों के पदतल में, जहां आखेटयोग्य जीवों की बहुलता थी, आनन्द से विचरने लगा। इसी अवसर में पन्द्रह वर्ष के हर्ष को समाचार मिला कि, ज्वर के कारण उसके पिता की शारीरिक अवस्था बड़ी ही शोचनीय हो रही है। अति शीघ्रतापूर्वक राजधानी को लौट कर उसने देखा कि पिता के बचने की कोई आशा नहीं है। शत्रु को परास्त कर राज्यवर्धन के लौटने के पूर्व ही रोग ने अपना काम पूरा किया और प्रभाकरवर्धन बड़े परिश्रम से प्राप्त विशाल राजपाट छोड़ कर चलता बना। इस समय उसकी वीरता कुछ भी न कर सकी और उसकी भी वही गति हुई जो सामान्य मार्ग के भिक्षुक की हुआ करती है।

युवराज की राज्यप्राप्ति और मृत्यु ।

कुछ दर्बारी हर्ष को सिंहासन पर बैठाना चाहते थे परन्तु समय रहते राज्यवर्धन के

लौट आने के कारण उनका उद्योग निष्फल हुआ और यथासमय युवराज ने राजमुकुट धारण किया। सिंहासनासीन होते ही उसे अपने बहनोई कन्नौज के राजा गृहवर्मन मौरधारी के, मालवा के राजा द्वारा, मारे जाने का दुखदायी समाचार मिला। हर्षकी बहिन राज्यश्री इस को व्याही थी जिसके साथ घातक ने बड़ा ही नीचा बर्ताव किया। चोर लुटेरों की स्त्री की भांति बेड़ियां डाल कर वह कैद की गई। अपनी भगिनी का बदला लेने के लिए नवयुवक राजा शीघ्रतावश हाथियों आदि को हर्ष के साथ पीछे छोड़ कर केवल दस हज़ार अश्वारोही सेना लेकर चढ़ दौड़ा। मालवा के राजा पर विजय प्राप्त करने में उसे अधिक प्रयास नहीं करना पड़ा परन्तु मालवराज के सहायक गौड़ देश के राजा शशाङ्क ने प्रलोभनों द्वारा विजयी राजा को मंत्रणा के निमित्त सम्मत किया और धोखे से उसका बधकर डाला। हर्षोत्पादक विजय संवाद के साथ ही साथ हर्ष के बड़े भाई की अकालमृत्यु का दुखदायी समाचार भी मिला। उसकी विधवा भगिनी ने किसी प्रकार भाग कर विंध्य के जङ्गल में शरण ली है, यह भी उसने सुना परन्तु राज्यश्री किस स्थान में छिपी है, यह निश्चित रूप से उसे न विदित हुआ।

हर्ष का सिंहासनारोहण।

हर्ष को सिंहासन पर बैठाने में परिजनों को कुछ आगा पीछा हुआ। परन्तु अराजकता में व्यतिक्रम और अराजकता से देश को हानि पहुंचते देख आमात्यों को बाध्य होकर उत्तराधिकार का निर्णय करना पड़ा। हर्ष से अवस्था में कुछ बड़ा, राजपुत्रों के बाल्यकालीन सहपाठी भण्डी नामक हर्ष के एक चचेरे भाई के अनुरोध से सचिवों ने हर्षवर्धन से राज्य भार ग्रहण करने की प्रार्थना की। परन्तु राजपुत्र को न जानें क्यों यह निवेदन स्वीकार करने में सङ्कोच हुआ। कहा जाता है कि, राज्यभार ग्रहण करने के पूर्व उसने दैवीबलसम्पन्न एक प्रामाणिक बौद्ध से शकुन उठवाया और उत्तर अनुकूल मिलने पर राज्याधिकार ग्रहण किया। इस पर भी दैव कोप से बचने के लिए उसने कुछ दिनों तक राजानुरूप अभिधान नहीं ग्रहण किया और नम्रतापूर्वक अपने को कुमार शिलादित्य ही कहता रहा।

इन विचित्र सामान्य बातों से यह अनुमान होता है कि हर्ष के मार्ग में कोई बाधा अवश्य थी और इसी से राज्यप्राप्ति के हेतु पैतृक अधिकार की अपेक्षा स्वजनों के निर्वाचन पर ही निर्भर रहना उसने अधिक उचित समझा। सिंहासनारूढ़ होने के ५।६ वर्ष बाद तक वह स्पष्टरीत्या अपने को राजा घोषित करने में हिचकता रहा और उसका तिलकोत्सव ई० ६१२ में हुआ।* हर्ष का स्वतंत्र संवत भी प्रचलित हुआ और ई० ६०६, जिस वर्ष उसने राज्यभार ग्रहण किया था, हर्ष संवत का प्रथम वर्ष है।† चाहे जिस कारण से थानेश्वर के राजमंत्रियों ने हर्ष को राजा बनाने में

---

* चीनी यात्री ने लिखा है कि हर्ष वैश्य था, संभवतः इसी ओर यहां सङ्केत किया गया है। मि० स्मिथ ने भी प्रसिद्ध यात्री के इस कथन पर पूर्ण विश्वास नहीं किया है। निस्सन्देह हुएनसङ्ग को यह भ्रान्त समाचार मिला। यदि हर्ष वैश्य होता तो अन्ततः राजवर्धन उस पर कभी विश्वास न करता और जिस समय वह शीघ्रतावश अपने बहनोई का बदला लेने को केवल अश्वारोहियों को लेकर चढ़ दौड़ा था हाथी और पैदल सेना हर्ष के अधिकार में न छोड़ता इत्यादि। और भी घटनाएं ऐसी हैं जिनका पूर्वापर विचारने से यात्री का भ्रम स्पष्ट हो जाता है।

† प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता मि० कीलहार्न के अनुसार २० शिलालेख ऐसे प्राप्त हो चुके हैं जिनमें हर्ष संवत का प्रयोग है।

आगे पीछा किया हो परन्तु यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि झण्डी की सम्मति सर्वथा उचित थी और उसके मनोनीत हर्ष ने बहुत ही शीघ्र अपनी योग्यता का परिचय देकर यह प्रमाणित कर दिया कि राजमुकुट का प्रकृत अधिकारी वही था।

भगिनी का उद्धार।

राज्याधिकार प्राप्त करने के पश्चात् हर्ष का प्रथम कर्त्तव्य अपने अग्रज का बध करनेवाले से प्रतिशोध लेना और बिधवा राज्यश्री का उद्धार करना था। इन दोनों में अन्तिम का महत्व अधिक समझ कर शशाङ्क का पीछा करना छोड़ उसने राज्यश्री की रक्षा के हेतु प्रस्थान किया। उसकी यह शीघ्रता अत्यन्त सामयिक प्रमाणित हुई क्योंकि जिस समय पहाड़ी सरदारों के साथ विंध्य के घोर जङ्गल में वह उस स्थान पर जहां राज्यश्री के होने का पता लगा था पहुंचा उस समय उद्धार की आशा छोड़कर वह (राज्यश्री) परिचारिकाओं सहित उस कार्य के लिए प्रस्तुत हो चुकी थी जो केवल भारतीय ललनाओं के ही बांट में पड़ा है। अरक्षित अवस्था में भारतीय स्त्रियां अग्निदेव से अधिक अपना रक्षक किसी को नहीं समझतीं और राज्यश्री भी अपने परम रक्षक के अङ्क में रक्षा पाने के लिए उद्यत थी।

शशाङ्क के विरुद्ध हर्ष के आक्रमण का विस्तृत वर्णन प्राप्त नहीं है और यह स्पष्ट है कि भाग बचने में उसे (शशाङ्क को) बहुतही सामान्य क्षति उठानी पड़ी। यह पता लगता है कि ईसवी ६१९ तक वह अधिकारच्युत नहीं हुआ था परन्तु सम्भवतः इसके कुछ ही दिनों पीछे उसके राज्य पर कन्नौजी झण्डा फहराने लगा।

राज्यविस्तार।

बौद्धधर्म की सम्मितीय शाखा के सिद्धान्तों में निपुण असाधारण बुद्धिमती अपनी युवती भगिनी का उद्धार करने के पश्चात् हर्षवर्धन विधिवत समग्र उत्तर भारत को एक छत्र के आधीन करने की धुन में लगा। इस समय उसकी सेना में ५००० हाथी, २०००० घोड़े और पचास हज़ार पैदल थे। इस प्रबल सेना की सहायता से उसने उत्तर भारत रौंद डाला। न ऐसा कोई क्षत्री बचा जिसके अस्त्र उसने न रखा लिये और उसकी आज्ञा न माननेवालों में कोई राजा भी ऐसा न बचा जिसे उसका लोहा न मानना पड़ा हो। जब तक यह नहीं हो गया तब तक चीनी यात्री के ओजस्वी शब्दों में "न तो हाथियों के हौदे उतारे गये और न सैनिकों ने अपने सन्नाह खोले।" साढ़े पांच वर्ष में समग्र उत्तर और पश्चिम तथा बङ्ग के अधिकांश भाग पर उसकी पताका फहराने लगी। इस अवसर में उसकी सैनिक शक्ति भी इतनी बढ़ गई कि अब वह साठ हज़ार हाथी और एक लाख घोड़े आवश्यकता के समय रणक्षेत्र में उपस्थित कर सकता था। इस प्रकार विशाल राज्य का स्थापन करने के उपरान्त हर्ष ने छत्तीस वर्ष तक बिना चिन्ता के राज्य किया। इस शान्तिपूर्ण दीर्घकाल और अपनी महान् शक्ति का उसने सुव्यवस्थित शासन करने में उपयोग किया।

सम्भवतः ६३३ ईसवी के बाद और ६१९ या ६४१ के पूर्व, जिस वर्ष हूएनसंग ने बल्लभी की यात्रा की थी, हर्ष ने बल्लभी राज्य पर आक्रमण किया। परिणाम में बल्लभी राजा ध्रुव भट्ट द्वितीय को सोलहों आने हार खा कर भरोच के राजा की शरण लेनी पड़ी। अन्तिम राजा कदाचित् सोलंकी सम्राट् का, जिसका वर्णन अभी किया जायगा, भरोसा रखता था। फिर भी अन्त में बल्लभी के राजा ध्रुवभट्ट को* हर्ष

* सौराष्ट्र और मालवा के मध्य में अथवा वर्तमान काठियावाड़ के पूर्व में मैत्रक कुलोत्पन्न भट्टार्क नामक एक सरदार ने पांचवीं शताब्दी के अन्त में

से सन्धि कर सामंत होना स्वीकार करना पड़ा। साथही हर्ष की पुत्री के साथ उसका पाणिग्रहण भी हो गया। अनुमानतः इसी चढ़ाई में आनन्दपुर, कच्छ, दक्षिणी सौराष्ट्र आदि राज्यों का भी जो ई० ६४८ में पश्चिमी मालवा राज्य के अन्तर्गत समझे जाते थे पराभव हुआ क्योंकि पश्चिमी मालवा राज्य बल्लभी का करद राज्य था। हर्ष का अन्तिम अभिलषित आक्रमण बङ्गोदधितटस्थ गञ्जाम प्रान्त के निवासियों पर ई० ६४३ में हुआ।

एक बार असफलता।

हर्ष की भांति नर्मदा के उस पार दक्षिण में चालुक्य या सोलंकी वंश के पुलकेशिन द्वितीय ने भी अपने राज्य का बड़ा विस्तार किया था।* दक्षिण भारत में उसकी वही स्थिति थी जो हर्षकी उत्तर में। हर्ष से अपना प्रतिद्वन्दी न देखा गया और उसने पुलकेशिन का भी मान भंग करने की अपने मन में ठानी। उत्तर भारत के तत्कालीन प्रसिद्ध सेनाध्यक्षों सहित वह स्वयं अपनी विपुलवाहिनी सेना लेकर चढ़ दौड़ा। परन्तु दक्षिणी सम्राट् ने नर्मदा के घाटों को ऐसा रोका कि हर्ष को हार मान कर लौटना पड़ा। यह घटना ई० ६२० के लगभग की है। हर्ष ने छः वर्ष तक निरन्तर और २६ वर्ष तक समय समय पर युद्ध किया। इस दीर्घकालव्यापी विजयचर्या में हर्ष को केवल एक बार मुख मोड़ना पड़ा। उसमें उचित से अधिक अभिमान न उत्पन्न होजाय कदाचित् इसीलिए परमात्मा ने यह व्यवस्था की थी।

राजत्व के अन्तिम दिनों में मालवा, गुजरात तथा सौराष्ट्र के अतिरिक्त हिमालय से लेकर नर्मदा तक सम्पूर्ण देश पर उसका निर्विवाद प्रभुत्व था। शासनकार्य अवश्य ही स्थानीय राजाओं के हाथों में था परन्तु पूर्व में आसाम सरीखे दूर देश का भूपति और सुदूर पश्चिम में उसका जामात्र बल्लभी का राजा सम्राट् की आज्ञा पालन करने को बाध्य थे।

शासनप्रणाली।

काल की महिमा के कारण शासनप्रणाली की ओर ही हमारी दृष्टि अधिक आकृष्ट होना उचित है। प्रजा की बातों की उपेक्षा करने और नीचातिनीच कर्मचारियों को साक्षात् देवता माननेवाले यदि हर्ष के इतिहास का यह पृष्ठ पढ़ सकें तो बड़ा लाभ हो सकता है। अपने विशाल साम्राज्य का नियंत्रण तथा शासन का निरीक्षण अक्लान्त उद्योगपूर्वक हर्ष स्वयं करता था। स्वेच्छाचारी शासकों पर निर्भर रहना उसे पसन्द नहीं था। वर्षा ऋतु के सिवा जिन दिनों भ्रमण करना बड़ा ही कष्टसाध्य होता है, वह निरन्तर दुष्टों का दमन और शिष्टों का पालन करता हुआ भ्रमण करता रहता था। मुग़लों के समय की सी परम सुखदायी उपकारिकाओं का (राजकीय शिविरों का) तब तक आविष्कार न हुआ था अतः हर्ष को डालों और घास फूस के पथ-प्रासादों से ही सन्तोष करना पड़ता था*। ये झोंपड़े प्रत्येक

बल्लभी का राज्य स्थापित किया था। सातवीं शताब्दी में बल्लभी बड़ा समृद्धिशाली राज्य था। हूएनसंग ने जिन दिनों राजधानी बल्लभी को देखा था, अर्थात् ६४१ से ६४२ ईसवी में उन दिनों वह महानगरी थी तथा नालन्द की भांति बौद्ध शास्त्र की विद्यापीठ समझी जाती थी। ई० ७७० में अरबी आक्रमणकारियों ने इस नगर का विनाश किया।

* लगभग ५५० ईसवी के सोलंकी क्षत्रियों के वंश के पुलकेशिन नामक एक महापुरुष ने वातापी नगर पर अधिकार कर राज्य-स्थापन किया। इसका पौत्र पुलकेशिन द्वितीय अपने घराने में बड़ा प्रतापी हुआ। वातापी आज भी बीजापुर जिले में बादामी के रूप में वर्तमान है।

* बहुत सम्भव है कि यह लेखक का भ्रम हो। हमारे प्राचीन साहित्य में स्थान २ पर वितानों तथा

विश्राम स्थान पर बना लिए जाते थे और चलते समय जला दिये जाते थे।

दो शताब्दी पूर्व भारत भ्रमण करनेवाले अपने स्वदेशी अग्रगामी फाहियन की† भांति हुएनसंग पर भी शासन-प्रणाली का प्रभाव बहुत अच्छा पड़ा और उसके मत से दया धर्म पर वह अवलम्बित थी। राजस्व का मुख्य द्वार भूमि-कर था। कृषकों से उपज का छठा भाग लिया जाता था। आजकल के विपरीत अन्यान्य कर बहुत ही लघु थे। राज कर्मचारियों को पुरस्कार में जागीर दी जाती थी। राजकीय सार्वजनिक कार्यों के हेतु बाध्य होकर परिश्रम करनेवालों को पारिश्रमिक दिया जाता था। प्रजा को व्यक्तिगत राजकार्य या सेवा बहुत ही कम करनी पड़ती थी। विभिन्न धर्मानुयायी समाजों को सम उदारतापूर्ण दान देने की व्यवस्था थी।

उद्दण्ड अपराधों की नितान्त कमी थी परन्तु स्थल अथवा जल मार्ग फाहियन के समय के से सुरक्षित न थे। सम्पूर्ण भारत-भ्रमण में फाहियन पर एक बार भी लुटेरों की कृपा नहीं हुई थी परन्तु हुएनसंग को दो तीन बार यह विपत्ति उठानी पड़ी। दारुण कारागार साधारण दण्डविधि थी। यात्री महोदय का कथन है कि "बन्दियों की सुध ही नहीं ली जाती थी, चाहे मरें या जीएँ मनुष्यों में मानों उनकी गणना ही न थी।" भयानक पापियों के हाथ, पैर, नाक, कान आदि काट लिये जाते थे। माता पिता के प्रति पवित्र पुत्र धर्म का पालन न करनेवालों के प्रति भी यही दण्ड-व्यवस्था थी। परन्तु ऐसे दण्डों के बदले में कभी २ दयावश निर्वासन भी हो जाया करता था। अपराधों के लिए अर्थदण्ड की व्यवस्था थी। जल, अग्नि, विष आदि द्वारा परीक्षा करना सत्य निर्णय करने का बहुत ही सुन्दर उपाय समझा जाता था। चीनी यात्री ने इन उपायों का अनुमोदन किया है।

शिविरों का उल्लेख हुआ है। हर्ष भले ही घास फूस के झोंपड़ों से ही यात्रा में अपना काम चला लिया करता रहा हो परन्तु शिविरों का आविष्कार ही तब तक भारत में नहीं हुआ था यह समझ में आने की बात नहीं है। जिस जाति के साहित्य ग्रन्थों में शामियानों तथा खीमों का बारम्बार वर्णन मिलता है, वह शिविरों को बनाने में असमर्थ थी, यह कौन मान लेगा।

† फाहियन ने ३९९ से ४१५ तक भारत में भ्रमण किया था।

सम्राट् का विद्या-प्रेम।

प्रत्येक प्रान्त में सार्वजनिक घटनाओं का इतिहास संग्रह करने को वेतनभोगी कर्मचारी नियुक्त थे। "बुरी और भली, विपत्तिजनक और कल्याणकारी" दैवी घटनाओं को लिपिबद्ध करना उनका कर्त्तव्य था। महत्वपूर्ण ऐतिहासिक शिलालेखों की रचना में इनका उपयोग होता था परन्तु दुर्भाग्यवश अब उपर्युक्त राजकीय इतिहासों की एक चिट भी उदाहरणार्थ दुष्प्राप्य है। शिक्षा का विशेषतः ब्राह्मणों और बहुसंख्यक बौद्ध साधुओं में प्रचार अत्यधिक था। राजद्वार में पाण्डित्य का बड़ा आदर होता था। सम्राट् हर्षवर्धन केवल विद्वानों का आदर ही नहीं करता था वह स्वयं भी शोभन लेखन-कला में पूर्ण निपुण और प्रसिद्ध ग्रन्थकार था। एक व्याकरण ग्रन्थ के अतिरिक्त तीन सुलभ संस्कृत नाटकों तथा अनेक रचनाओं का वह प्रणेता माना जाता है। भारतमें अनेक ग्रन्थकार सम्राट् हो गये हैं, हर्ष अनोखा नहीं हुआ। हर्ष के नाटकों में "नागानन्द" जिसका आधार एक बौद्ध उपाख्यान है, श्रेष्ठ श्रेणी के नाट्य ग्रन्थों में गिना जाता है। "रत्नावली" तथा "प्रियदर्शिका" नामक उसकी अन्य नाटिकाएँ भी विचारों और शैली की सरलतार्थ अति प्रशस्य हैं यद्यपि मालिकता का

उनमें अभाव है। "प्रभुचरित्र प्रशंसात्मक, प्रशंसनीय तथा सजीव वर्णनों का समूह, रोषकारी, महाकुरुचिपूर्ण तथापि अति चतुरता का परिचायक और एक कल्पित इतिहास ग्रन्थ का रचयिता बाण हर्षाश्रित साहित्य-सेवियों का मुकुटमणि था" इस पूर्वापर विरुद्ध परिचय के लेखक ने इस वर्णन में अपनी विचित्र रुचि का जिसे कुरुचि न कहेंगे परिचय दिया है।

धार्मिक स्थिति।

अशोक की रक्तपिपासा एक ही युद्ध में बुझ गई थी। हर्षका ४२ वर्ष के बाद, प्रायः साठ वर्ष की प्रौढ़ावस्था में क्षात्रित्व से मन हटा। ऐसा प्रतीत होता है कि अन्तिम दिनों में उसने संसारप्रसिद्ध अशोक को अपना आदर्श बना लिया था। फलतः बुद्ध भगवान् के शान्तिपूर्ण उपदेशों की ओर हर्ष ने अधिक ध्यान देना प्रारम्भ किया। पहले हीनयान और पीछे महायान सम्प्रदाय की ओर उसकी रुचि बढ़ी। वह साधुओं की भांति जीवन व्यतीत करने लगा और बौद्ध धर्म के प्रधानाङ्ग अहिंसा धर्म का बड़ी दृढ़ता से पालन करने लगा। धर्म की जड़ पुष्ट करने की इच्छा उस की इतनी प्रबल हो उठी कि, आहार, निद्रा, जल तक वह भूल गया। किसी भी जीव का बध न करने तथा मांस न खाने की उसने आज्ञा प्रचारित की। इस राजाज्ञा का विपरीताचार करनेवालों को प्राणदण्ड देने की व्यवस्था की गई। ऐसे अपराधी को क्षमा मिलनी दुष्कर थी।

दीन, रोगी, और यात्रियों की सुविधाओं के हेतु उसने संस्थाएं स्थापित कीं। नगरों और ग्रामों में धर्मशालाएं बनवाई गईं जिनमें भोजन, जल तथा आवश्यकता पड़ने पर बिना किसी प्रकार की रोक टोक के औषधि देने का प्रबन्ध था। हिन्दू देवताओं तथा बौद्ध धर्म सम्बन्धी क्रियाओं के हितार्थ उसने अनेक संस्थाएं स्थापित कीं। जीवन के अन्तिम दिनों में बौद्ध धर्म का पक्ष वह अधिक करने लगा और बहुत से बौद्ध मठ उसने बनवाये। बौद्ध धर्मानुसार स्तूपों का निर्माण करवाना पुण्यकार्य समझा जाता था, हर्ष भला क्यों चूकने लगा, उसने सहस्रों स्तूप प्रायः ६५, ६६ हाथ ऊंचे बनवा डाले परन्तु वे केवल बांस और लकड़ी के बनवाये गये एक का भी चिन्ह तक न बचा। हर्ष के समय में बौद्ध धर्म क्षीण होने लगा था फिर भी बौद्ध साधु बहुत थे। चीनी यात्री के अनुसार मठ-निवासियों की संख्या दो लक्ष थी।

हर्ष के समकालीन ग्रन्थकारों ने धार्मिक दशा का बड़ा ही गङ्गायमुनी चित्र खींचा है। राजघराने के भी व्यक्ति धार्मिक विश्वास के सम्बन्ध में पूर्ण स्वतंत्र थे। हर्ष के पिता को सूर्य भगवान का इष्ट था। नित्यप्रति वह माणिक्य के अर्घ्यपात्र से लाल कमलों की अँजुलियां अपने आराध्यदेव को देता था। हर्ष के अग्रज राज्यवर्धन और भगिनी राज्यश्री बौद्ध धर्म में विश्वास करते थे। हर्ष की अपने पैतृक धर्म पर तो श्रद्धा थी ही परन्तु जैसा उल्लेख हो चुका है वह बौद्धधर्मका भी सम्मान करता था। उसने महादेव, सूर्य तथा बुद्धदेव के विशाल मन्दिर बनवाये। चीनी यात्री ह्वएन-संग के पाण्डित्य और ओजस्विता का हर्ष पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि अपने अन्तिम दिनों में वह बौद्ध धर्म की महायान शाखा का प्रबल पक्षपाती हो गया, यद्यपि पूर्व से वह हीनयान शाखा के सम्मितीय ग्रंथ के उपदेशों से ही परिचित था। राजघराने की यह धार्मिक अवस्था जनता की धार्मिक दशा का प्रतिबिम्ब-मात्र है।

यद्यपि उत्तर भारत में, हर्ष के समय में बौद्ध धर्म का वह दौर दौरा नहीं था जो कुछ

शताब्दियों पूर्व था तथापि बौद्धों की संख्या कम नहीं थी। हिन्दू या बौद्ध धर्म की तुलना में जैन धर्म हर्ष के समय में भी पूर्व की भांति नगण्य ही था। हर्ष के समय तक हिन्दू धर्म की दशा बहुत कुछ सुधर चुकी थी एक की दशा जिस परिमाण में सुधर चुकी थी प्रतिद्वन्दी बौद्ध धर्म की दशा उसी के अनुसार शोचनीय भी हो चुकी थी। भारत के अधिकांश प्रान्तों में प्राचीनकाल की भांति पुनः शिव, विष्णु आदि देवताओं की प्रतिष्ठा हो चुकी थी।

सनातनधर्मी हिन्दू तथा अन्य धर्मावलम्बी शान्तिपूर्वक एकत्र निवास करते थे। बहुत से ऐसे लोग भी थे जो दैवी आशीर्वाद के लिए दोनों धर्मों के देवताओं को पूजने में कुछ भी सङ्कोच नहीं करते थे। ऐक्य का साम्राज्य था, धार्मिक विद्वेष का कहीं लेश भी न था परन्तु वङ्ग का राजा शशाङ्क जिसने हर्ष के भ्राता राज्यवर्धन को धोखे में डालकर मारा था, "काबुल का गधा" था। यह कट्टर शैव था और बौद्ध धर्म के संहार करने का इसने बड़ा प्रयत्न किया परन्तु वह स्वयं न रहा। गया के जिस पवित्र बोधि वृक्ष की अशोक असाधारण भक्ति करता था उसे इसने उखड़वा कर जला दिया* पाटलिपुत्रस्थ बुद्धदेव पदाङ्कित शिला तुड़वा डाली और मठों का नाश कर उनके अधिवासियों को भगा दिया।

अकबर तथा अन्यान्य भारतीय सम्राटों की भांति हर्ष भी प्रतिद्वन्दी धर्माचार्यों का धार्मिक शास्त्रार्थ बड़ा प्रसन्नता से सुनता था। महायान मार्ग के प्रतिपादन में हुएनसंग की युक्तियां उसने बड़ी प्रसन्नता से सुनीं। खण्डन मण्डन के निमित्त हिन्दू धर्माचार्यों को भी वह सभा में बुलाता था परन्तु कभी २ पक्षपातशून्य विचार करने में असमर्थ हो उठता था। अपने अतिथि चीनी विद्वान की हार उसे असह्य थी। एक दिन हर्ष समाचार मिला कि प्रतिद्वन्द्वियों की घृणित प्रेरणा से हुएनसंग के प्राण लिये जानेवाले हैं। संवाद पाते ही उसने घोषणा की कि,

"यदि धर्मशास्त्री की उंगली भी कोई स्पर्श करेगा तो उसे प्राणदण्ड दिया जायगा, विरोधी वक्ताओं की जीभ निकलवा ली जायगी परन्तु उसके उपदेशों से जो लाभ उठाना चाहते हैं उन्हें कोई भय नहीं है।"

हुएनसंग के जीवनचरित लेखक ने सरलता पूर्वक यह भी लिख डाला है कि इस घोषणा के प्रचारित होते ही भ्रान्त प्रतिद्वन्दी मौन साध गये।

यदि बौद्ध धर्म के तिब्बती इतिहासकार तारानाथ की बात सच हो जो उसने जनश्रुति के आधार पर लिखी है तो यह मानना पड़ता है कि वैदेशिक धर्मों के प्रति हर्ष का उदार भाव नहीं था। लिखा गया है कि मौल स्थान या आधुनिक मुलतान के निकट उसने लकड़ी का एक विशाल मठ बनवाया। उसमें उसने विदेशी धर्मोपदेशकों को टिका कर कई महीने तक उनका भली भांति सत्कार किया और अन्त में मठ में आग लगवा दी। फलतः कोई १२००० उपदेशक और उनके ग्रन्थ भस्म हो गये। इस अत्याचार के कारण शकों और पारसियों के धर्मों की एक शताब्दी तक बड़ी ही हीन अवस्था रही। कहा जाता है कि, खुरासान निवासी एक जोलाहे ने जूराष्ट्रियन* धर्म को जीवित रक्खा।

धार्मिक महासभा।

हर्ष और हुएनसंग की बङ्गाल में भेंट हुई थी। जिन दिनों सम्राट् प्रवास में था हुएन-

* कहा जाता है बोधि वृक्ष का अशोक के अन्तिम वंशधर पूर्ण वर्मन ने कुछ दिनों के बाद पुनः रोपण किया। वे मगध के एक साधारण राजा थे।

* पारसी लोग इसी धर्म के अनुयायी हैं।

संग के भाषणों से वह इतना प्रसन्न हुआ कि उसके उपदेशों का सम्यक् प्रचार करने के अभिप्राय से उसने राजधानी कन्नौज में एक महासभा करने का सङ्कल्प किया। गङ्गा के दक्षिण तट पर बड़े समूह के साथ सम्राट् हर्ष और उत्तर तट पर उसके सहायक कामरूप के अधिपति कुमार ने कन्नौज के लिए प्रस्थान किया। धीरे २ सुखपूर्वक चलते २ नब्बे दिन में वह कन्नौज पहुंचा। कन्नौज पहुंचने पर उपर्युक्त राजा कुमार बल्लभी के राजा ध्रुव भट्ट (हर्ष का दामाद) तथा अन्य १८ करद राजाओं ने उसका स्वागत किया। स्वागतकारियों में चार हज़ार विद्वान बौद्ध साधु, जिनमें एक सहस्र प्रसिद्ध नालन्द विश्वविद्यालय के थे, तीन सहस्र जैन विद्वान और अनेक ब्राह्मण भी थे।

महासभा के हेतु गङ्गा तट पर एक विशाल मठ और देवालय बनवाया गया। देवालय के सौ फुट ऊंचे एक बुर्ज में बुद्ध भगवान की मनुष्याकार सुवर्ण प्रतिमा स्थापित की गई। ऐसी ही राजभार की एक और छोटी प्रतिमा नित्य शोभायात्रा में घुमाई जाती थी; पीछे पीछे बीस राजा और तीन सौ हाथी चलते थे। हर्ष स्वयं प्रतिमा पर छत्र लगाकर चलता था और उपस्थित करद राज्यों में प्रधान कामरूप का राजा कुमार चमर हिलाता था। हर्ष दूसरे हांथ से मोती, सुवर्ण पुष्प इत्यादि अमूल्य पदार्थ लुटाता रहता था। अपने हाथों से प्रतिमा को स्नान कराकर हर्ष रत्नजटित सहस्रों वस्त्र नित्य चढ़ाता था। भोज के पश्चात् सार्वजनिक भाषण होता था। बहुत दिनों तक यह क्रम चला। महासभा की इतिश्री एक विचित्र घटना द्वारा हुई। एक दिन अस्थायी मठ में अग्निदेव की कृपा हो गई और अधिकांश मठ भस्म होगया। जब तक सम्राट् स्वयं प्रज्वलित अग्नि में नहीं घुस गया तब तक वह न बुझी। दारुण दृश्य अवलोकनार्थ अनुयायी भूपति वर्ग के सहित हर्ष बड़े स्तूप पर चढ़ा। उतरते समय एक धर्मोन्मत्त व्यक्ति ने उसे कृपाण से मार डालने की चेष्टा की परन्तु भावी घातक तुरन्त पकड़ लिया गया और हर्ष ने स्वयं उससे बड़ी पूछताछ की। पकड़े हुए मनुष्य ने स्वीकार किया कि बौद्ध धर्म की ओर अधिक ध्यान देने के कारण कुछ उत्तेजित ब्राह्मणों ने इस कुकर्म में उसे प्रवृत्त किया था। यह रहस्य प्रगट होने पर पांच सौ प्रसिद्ध २ ब्राह्मण पकड़े गये और प्रवीणतापूर्वक किये हुए प्रश्नों के उत्तर में उन्हें भी स्वीकार करना पड़ा कि धार्मिक द्वेष के कारण अग्निबाणों द्वारा मठ में आग लगाई गई और यह आशा की गई थी कि परिणामस्वरूप उत्पन्न होनेवाली व्याकुलता और व्यग्रता में सम्राट् के प्राण लिये जा सकेंगे। निस्सन्देह दारुण कष्ट देकर स्वीकारोक्ति प्राप्त की गई तथा सम्भवतः पूर्णतया असत्य थी। परन्तु पांच सौ ब्राह्मणों को निर्वासन दण्ड दिया गया।

सर्वस्व दान।

राजधानी का धर्मसङ्घ समाप्त होने पर सर्वस्व-दान-यज्ञ देखने के निमित्त हर्ष ने अपने अतिथि से प्रयाग चलने की प्रार्थना की। यद्यपि चीनी यात्री कष्टसाध्य गृहाभिमुख यात्रा करने को अधिक उत्सुक था तथापि सौजन्यवश वह आमंत्रण अस्वीकार न कर सका और प्रयाग के लिए उसने सम्राट् के साथ पयान किया। स्वयं हर्ष के कथनानुसार वह प्रति पांचवे वर्ष अपने पूर्वजों की रीत्यानुसार गङ्गा यमुना के पवित्र सङ्गम पर एक महासभा किया करता था और पांच वर्ष का सञ्चित धन दीन दुखियों, तथा विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों में वितरण कर देता था। पांच ऐसी महासभाएँ वह कर चुका था; यह छठी थी। इस सर्वस्व-दान यज्ञ में करद राजा भी पधारे थे। दीन, हीन, अनाथ, साधु-तथा

पण्डित सब मिलाकर कोई पांच लक्ष मनुष्यों की भीड़ हुई थी। इनके अतिरिक्त विशेष रूप से निमंत्रित विद्वान ब्राह्मण और उत्तर भारत के सब सम्प्रदायों के साधुगण भी आये थे। यह यज्ञ ढाई महीने में सम्पन्न हुआ। इसका श्रीगणेश एक प्रकाण्ड शोभायात्रा द्वारा हुआ जिसमें सब सामंत राजा और उनके सहचरगण सम्मिलित हुए थे। समयानुसार, धार्मिक उपासना की शैली विचित्र थी। प्रथम दिवस बुद्धदेव की प्रतिष्ठा पूजा हुई और बहुमूल्य वस्त्र तथा अन्यान्य मूल्यवान पदार्थ बांटे गये। द्वितीय तथा तृतीय दिन शिव और सूर्य का पूजन हुआ परन्तु प्रथम दिन जितना धन वितरण किया गया था उसका आधा इन देवताओं की पूजा उपलक्ष्य में वितरित हुआ। चौथे दिवस दस सहस्र प्रसिद्ध बौद्ध धर्माचार्यों को दक्षिणा दी गई। प्रत्येक को सौ मोहरें, एक मोती और सूती कपड़े, उत्तमोत्तम भोजन, पानी, पुष्प तथा सुगन्धित द्रव्य प्रदान किये गये। परवर्ती बीस दिन तक ब्राह्मणों के बड़े भारी समूह का सम्मान किया गया। इसके बाद दस दिन तक जैनियों और दस दिन तक अन्य धर्मावलम्बियों की बारी आई। तत्पश्चात् दस दिन तक दूर देशों के भिक्षुकों को भिक्षा दी गई। तदनन्तर एक महीना दीनों, अनाथों तथा विकलाङ्गों की इच्छा पूर्ण करने में लगा। इस भांति पचहत्तर दिनों में सम्राट् ने पांच वर्ष का संगृहीत सम्पूर्ण धन दान कर दिया और घोड़े, हाथी, आदि सैनिक प्रसाधनों के अतिरिक्त जो राज्य की रक्षा और सुशासन के हेतु आवश्यक थे, उसके पास कुछ भी न रह गया। धन और द्रव्य के अतिरिक्त सम्राट् ने अपने रत्न और सम्पूर्ण आभूषण, वस्त्र और सामग्री बिना किसी विचार के बाँट दिये। सर्वस्व दान कर चुकने पर उसने अपनी भगिनी राज्यश्री से एक साधारण पुराना वस्त्र मांग कर धारण किया और इस प्रकार पूर्ण उसने आनन्द अनुभव किया कि उसका पांच वर्ष का सञ्चित धन पुण्य कार्य में लग गया। किसी सम्राट् का प्रति पञ्चम वर्ष अपना सर्वस्व दान कर देने का दृश्य बड़ा ही विलक्षण है। यह भारत की विचित्रता है। संसार के इतिहास में ऐसा उदाहरण मिलना दुर्घट है। सांसारिक जीवन में विराग उत्पन्न होने पर राजपाट का मोह छोड़ उदासीन वृत्ति धारण कर ईश्वराराधन में रत हो जाना एक बात है; और सम्राट् के समस्त कर्तव्यों का पालन करते हुए यथासमय तथा आवश्यकतानुसार दान धर्म करते हुए अवशिष्ट सर्वस्व प्रति पञ्चम वर्ष दीन दुखियों को बांट देना सर्वथा भिन्न है। पांच वर्ष तक राज-पदानुरूप वस्त्र, रत्न और आभूषण संग्रह करना और पांचवें वर्ष निर्मोह होकर सब पर कुशा रख देना और नये सिरे से फिर क का कि की पढ़ना उसी देश के सम्राट् के किये हो सकता है जहां भगवान् श्रीकृष्ण ने कर्मयोग की पवित्र सुरसरि-धारा बहाई हो और रामचन्द्र जैसे पितृभक्त, लक्ष्मण सरीखे ब्रह्मचारी, सीता तुल्य सती, भरत जैसे भाई, राजर्षि जनक सम ज्ञानी, व्यास सरीखे ग्रन्थकार, वाल्मीकि जैसे कवि, पातञ्जलि जैसे वैयाकरण, गौतम बुद्ध सरीखे त्यागी, अशोक जैसे धर्म-प्रचारक सम्राट् ने जिस देश की रज पूत की हो उसी देश में हर्ष जैसे कर्मवीर दानी का जन्म हो सकता है। संसार में सभ्यता फैलानेवाले इसी आर्यावर्त का हर्ष भी बालक था, जिस भूमि की शोभा एक दिन युधिष्ठिर जैसे सत्यवक्ता और कर्ण जैसे दानी ने बढ़ाई थी।

हूएनसंग की गृहाभिमुख यात्रा ।

सर्वस्व-दान- यज्ञ पूर्ण होने के बाद सम्राट् ने हूएनसंग को दस दिन तक और रख कर विदा किया। चलते समय सम्राट् और कामरूप के राजा कुमार ने बहुत सी सुवर्ण मुद्राएं

तथा अन्य बहुमूल्य वस्तुएं उसको भेंट कीं। परन्तु धर्मप्राण यात्री ने कुमार का भेंट किया हुआ एक रोएंदार भूशिरस् या ग्रीवाप्रच्छद (Fur lined cape) तो स्वीकार किया और उसने कुछ न छुआ। व्यक्तिगत सुखभोग के लिये तो उसने धन नहीं लिया परन्तु स्थल मार्ग से चीन पहुंचने के लिए आवश्यक मार्गव्यय उसे स्वीकार करना ही पड़ा। मार्गव्यय बड़ी उदारतापूर्वक दिया गया था और यात्री महोदय ने भी उदारतापूर्वक उसे स्वीकार कर लिया। तीन सहस्र सुवर्ण और दस सहस्र रौप्य मुद्राएं हाथी पर लदवा कर उसके साथ की गईं। उद्धित नामक एक राजा उसे सकुशल साम्राज्य की सीमातक भेज आने के लिए साथ किया गया। प्रायः छ महीने में धीरे २ चलकर वह जलन्धर (पञ्जाब) पहुंचा। यहां एक महीने विश्राम ले कर वह नवीन रक्षकों के साथ सिंधुनद पार कर खोतान आदि होता हुआ ई० ६४५ की वसन्त ऋतु में अपने घर पहुंचा। भारतयात्रा उसकी निष्फल नहीं हुई। बीस घोड़ों पर लाद कर ६५७ अपूर्व ग्रन्थ, बुद्धदेव की सोने चांदी तथा चन्दन की प्रतिमाएं और ड़ेढ़ सौ शारीरिक अवशिष्टांश वह ले गया।

धर्मभीरु हूएनसंग के शेष जीवन की चर्चा कितनी ही संक्षिप्त क्यों न हो, इस स्थान पर कुछ अप्रासङ्गिक अवश्य है। परन्तु जिस महात्मा की कृपा से सातवीं शताब्दी के भारतीय सम्राट् के जीवनचरित की विस्तृत आलोचना संभवपर है, उसके अनुकरणीय शेष जीवन विषयक दो चार पंक्तियों के लिए उदार पाठकों की दृष्टि में लेखक कोपभाजन कदापि नहीं ठहर सकता। हूएनसंग ने स्वदेश पहुंच कर अपना शेष जीवन साहित्यसेवा द्वारा राष्ट्र तथा धर्म को पुष्ट करने में व्यतीत किया। भारत से वह बहुत से ग्रन्थ अपने साथ ले गया था यह पूर्व ही कह चुके हैं; इनमें से ई० ६६१ तक उसने १७४ ग्रन्थों का चीनी भाषान्तर कर डाला। तीन वर्ष तक शान्तिपूर्वक विश्राम लेकर ई० ६६४ में वह देवताओं की पंक्ति में स्थान पाने के लिए इस मृत्यु लोक से चल दिया। हूएनसंग बौद्ध संसार में विद्वता और धार्मिक पवित्रता में शिरोमणियों में परगणित होता है। वास्तव में घर से दूर पन्द्रह वर्ष के कठिन परिश्रम से सैकड़ों उत्तमोत्तम पुस्तकें प्राप्त कर उसने अपने साहित्य और धर्म की अनूठी सेवा की। विदेशयात्रा उसकी सार्थक हुई। हमारे भारतीय भाई जो विदेश से केवल दृश्य देखकर कोरे चले आते हैं और हंस की चाल चलने के फेर में पड़ कर कव्वे की चाल भी भूल जाते हैं, उन्हें सातवीं शताब्दी के इस असभ्य धर्मभीरु चीनी की ओर एक बार दृष्टिपात करना उचित है।

हर्ष का चीन से राजनैतिक संसर्ग।

हूएनसंग के भारत-भ्रमणवृत्त और उसके जीवनचरित से हर्षविषयक प्रत्यग्र (Latest) समाचार मिलता है। हर्ष की दृष्टि भारत की सीमा में अवरुद्ध न थी। उसने चीनी साम्राज्य से राजनैतिक सम्बन्ध स्थापित किया। ई० ६४१ में हर्ष ने एक ब्राह्मण राजदूत चीन के दरबार में भेजा जो ६४३ में लौटा। राजदूत ब्राह्मण के साथ चीनी सम्राट् ने भी अपना दूतदल भेजा। यह दूतदल हर्ष के पत्र का उत्तर भी लाया और ई० ६४५ में स्वदेश लौटा। ई० ६४६ में चीनी सम्राट् ने द्वितीय अभियान भेजा जिसका प्रधान वांग-ह्यूेन-ट्सी था जो प्रथम अभियान में द्वितीय अधिकारी था। परन्तु द्वितीय अभियान कुअवसर में भारत पहुंचा।

हर्ष का देहावसान और साम्राज्य का विनाश।

ई० ६४४ में उपर्युक्त सर्वस्वदान के पश्चात् की कोई उल्लेखनीय घटना, हर्ष के [illegible] की

विदित नहीं है। तीन वर्ष तक और जीवित रह कर वह ६४७ ई० के अन्त में या ६४८ के आदि में इस जरामरणग्रस्त शरीर को त्याग कर स्वर्गवासी हुआ। हर्ष के मरते ही साम्राज्य छिन्नभिन्न हो गया। अर्जुन या अरुणाश्व नामक एक राजमंत्री ने राज्यापहरण किया। इसी के समय में द्वितीय चीनी अभियान भारत पहुंचा पर राज्यापहारी दुष्ट अरुणाश्व ने दूत-दल के साथ अतिही मलिन वर्ताव किया। रक्षकों को उसने मरवा डाला और अभियान की सम्पत्ति लूट ली। परन्तु प्रधान राजदूत और उसके सहयोगियों ने भाग कर नैपाल में प्राण बचाये। तिब्बत का तत्कालीन राजा स्ट्रांग-सानगम्पू बड़ा शक्तिशाली था और चीन की एक राजकुमारी उसकी अर्धाङ्गिनी थी। तिब्बत के एक सहस्र घुड़सवार और सात हज़ार नैपाली सेना की कुमुक से अभियान के प्रधान पदाधिकारी वांग-ह्यूयेन-ट्सी ने अर्जुन को नीचता का अच्छा प्रतिफल दिया और अन्त में उसे बन्दी कर चीन ले गया।

योग्य उत्तराधिकारी के अभाव में हर्ष का स्थापित किया हुआ विशाल राज्य इस प्रकार मट्टी में मिल गया और प्रायः सौ वर्ष के बाद कन्नौज के फिर इतिहास के पृष्ठ पर दर्शन होते हैं। हम पहलेही कह चुके हैं कि, गत पचीस सौ वर्ष का इतिहास भारत के पतन का इतिहास है और इस काल में हर्ष जैसे प्रतापी सम्राट् का दर्शन यत्रतत्र यदा कदा ही होता है। हर्ष के जन्म से उसके वंश का ही गौरव बढ़ा ऐसा नहीं है; ऐसे महापुरुष, राजनीतिनिपुण, धर्मपरायण प्रजा-पालन-रत सम्राट् से भारतमाता भी धन्य हुई। हर्ष का जीवनचरित बीसवीं शताब्दी के जन्म प्रकाश में भी खरा सुवर्ण ही जँचता है। यह हम लोगों के सौभाग्य का विषय है कि देशभक्तों को उत्साहित और अनुप्राणित करनेवाले तथा अदीक्षितों में जातीय गौरव का बीज वपन करनेवाले पूर्वजों के चरित्र-चित्र उपस्थित किये जा सकते हैं। जातीय उत्थान की चेष्टा के अवसर पर ऐसेही प्रकाश स्तम्भों से अन्धकार दूर होता है।

ग्रीष्मागमन।

[लेखक—श्रीयुत मन्नालाल द्विवेदी "द्विजलाल"।]

कैसा विश्व विश्वकर्ता ने
रचा महा विस्मयकारी।
जिसकी अनुपम मोददायिनी
रचना देख बुद्धि हारी॥
सृष्टि काल से करते आते
छान-बीन वर विज्ञानी।
तौ भी रंचमात्र अब तक है
महिमा नहीं गई जानी॥ १॥

जल थल अनल पवन अम्बर रच
अमित जीव जग विस्तारे।
दिनकर और निशाकर विरचे
अगनित दीप्तिमान तारे॥
किये मनुज बल बुद्धि ज्ञाननिधि
स्वावलंबकारी श्रमवान।
नाना विधि पशु प्रकृति भिन्न जो
महामनोहरता की खानि॥ २॥

काल चक्र स्थिर कभी न रहता
यह है प्रकृति-नियम अभिराम ।
प्रातकाल मध्यान् यथाक्रम
रविगत हुए हुई शुचि शाम ॥
शीतकाल में शीतवायु अति
तन से सही न जाती है ।
वही बसन्ती वर मलयानिल
मन को मुग्ध बनाती है ॥ ३ ॥

उस अखिलेश लोकनायक ने
अटल नियम हैं निरधारे ।
जिनसे सदा विश्व भर के हैं
होते स्वयं कार्य सारे ॥
प्रकृति नियम आधीन यहां से
चला गया ऋतुराज बसंत ।
स्थापित हुआ राज्य ग्रीषम का
धारण करके प्रभा अनन्त ॥ ४ ॥

अब ऋतुराज साज सज्जित नहिं
रम्यारण्य दृष्टि आते ।
पुष्पवाटिका में विचरण कर
वैसा नहीं मोद पाते ॥
शीतल मंद सुगन्ध बसन्ती
मारुत श्रवन मोदवाला ।
प्रखर असैह्य तीव्र तन तापक
प्रकटीं सूर्य रश्मिमाला ॥ ५ ॥

सुधामयी कल कंठ कोकिला
ध्वनि वैसी न सुनाती है ।
भ्रमरावली सुमन तरुओं पर
उड़ने दृष्टि न आती है ॥
मृगगण शांत मोदयुत वैसे
क्रीड़ारत न दिखाते हैं ।
झरना गिरि समूह से झर २
अब जल नहीं बहाते हैं ॥ ६ ॥

वे आराम धाम सुखमा के
फूले जहां पुष्प अभिराम ।
मलयानिल के मंद झकोरे,
गाती भ्रमरावली ललाम ॥
करते जहां विहार विहँगगन
नंदन बन का जो उपमान ।
नष्ट हुई उनकी निदाघ में
हा मन मुग्धकरी वह शान ॥ ७ ॥

लघु सरिता सर आदि जलाशय
हुए सभी जल से खाली ।
उनके चारों ओर वर्तिनी
नष्ट हुई सब हरियाली ॥
प्रलय मीनगण का आ पहुंचा
वे चिंतित देखे जाते ।
जल क्षय से सानन्द उन्हें हैं
बकुले बीन २ खाते ॥ ८ ॥

बिहँगावलि ने किया यहां से
मान सरोवर का प्रस्थान ।
अब प्रवास प्रेमी पथिकों बिन
मारग सभी हुए सुनसान ॥
दिन परिमाण बढ़ा तैसे ही
क्षीण हुआ रजनी का मान ।
शंकर भाल नेत्र ज्वाला सम
प्रलय काल के प्रकटे भान ॥ ९ ॥

दस बजते २ भवनों के
द्वार बंद हो जाते हैं ।
चार बजे पर्यंत मार्ग में
मनुज दृष्टि नहिं आते हैं ॥
हाट बाट जो जन समूह से
संकुल महा मोदकारी ।
वहां पवन अब धूल उड़ाती
पावक तुल्य उष्ण भारी ॥ १० ॥

धनी व्यक्ति खस की टटियों में
सोते हैं पर्यंक बिछाय ।
चारों ओर वारि सिंचनकर,
उर पर चंदन लेप लगाय ॥

पान हेत जल स्वच्छ सुराही
का मिश्रित गुलाब आला।
सौंफ कासनी का सेवन है
बिजना त्यों बिजलीवाला ॥११॥

पवन कराल रूप धारण कर
बनी उष्णता का आगार।
करती विकल विशेष स्पर्श से
मानों सहस्रानन फुंकार ॥

प्रस्थर आतप तप्त हुए हैं
दहक रहे जैसे अंगार।
प्राणिमात्र को ग्रीष्मकाल में
जल हो गया सुधा का सार ॥१२॥

इन उपचारों से श्रीकाया
रंच चैन नहिं पाती है।
प्रखर रूप से अमित उष्णता
विकल विशेष बनाती है ॥

नित मध्यान् काल त्यों रजनी
करवँट लेते जाती है।
स्वेद धार अविरल बहती है
निद्रा किन्तु न आती है ॥१३॥

आतप तप्त पतित सुमनों से
छादित बनस्थली सारी।
व्याकुल श्रमित भ्रमैं चारों दिशि
जीव दुखित काननचारी ॥

भूमि स्पर्श से मृदु चरणों में
झलका यों छबि पाते हैं।
कमल कोष जिस भांति वराटक
रुचिर विशेष दिखाते हैं ॥१४॥

मृगगण तृषित विकल जल आशा
मृग तृष्णा में भ्रमैं विहाल।
होता व्यर्थ परिश्रम सारा,
झुलसाती है लू विकराल ॥

यज्ञ केहरि मयूर औ विषधर
स्वाभाविक निज बैर भुलाय।
आतप से संतप्त हुए सब
छिपे एक झाड़ी में आय ॥१५॥

होती वृष्टि अँगार गगन से
मृगगण श्याम रंगकारी।
खग जब नीरव तरु कोटर में
छिपे देख आतप भारी ॥

पशुगण चरना छोड़ जुगाली
करते हैं बैठे चुपचाप।
महि खनि श्वान अचेत पड़े हैं
भूल गया सब वृथा प्रलाप ॥१६॥

लेमनड सोडावारि बर्फ से
नहीं ताप तन का जाता।
इंग्लिश फैशन का वर बँगला
रवि किरणों से गरमाता ॥

करके कोटि यत्न नहिं पाते
यहां शांति जब जेंटिलमैन।
शिमला, उटकमंड, मंसूरा,
दार्जलिंग में करते चैन ॥१७॥

भारत के अति दीन कृषकगण
सहकर भस्मकरी यह घाम।
जिनके पादत्राण नहीं पद में,
नहीं वस्त्र का तन पर नाम ॥

दुखिया दुखित चित्त से करते
संतत निज खेतों में काम।
पाते पेट पूर्ण भोजन नहिं
हा! पलभर भी नहीं विराम ॥१८॥

बड़े वेग से उठे बवंडर
वारिद तुल्य रूप धारी।
रजरूपी जल को बरसाते
वायु शब्द गर्जन भारी ॥

धुन्धकार से सकल दिशाएं
होतीं अनुरंजित सविशेष।
कोई दृष्टि नहीं आता है
वृक्षावली छोड़ निःशेष ॥१९॥

शीतल वायु नहीं होता है
गत होते रजनी युगयाम ।
श्रमजीवी पुरुषों की तच २
त्वचा हुई कर्कश औ श्याम ॥
यों मध्यान समय दिनकर की
रश्मि राशि शोभा पाती ।
ज्यों कल्लोल लोल सागर में
जल धारा हो लहराती ॥२०॥
महिलाओं के मुख मंडल पर
शोभित स्वेदविंदु की जाल ।
मानो रति नायक ने गूंथे
मुक्ताफल वर कोष मृणाल ॥

जिह्वा बार २ अपनी वे
शुष्का धरन चलाती हैं ।
आतप तप्त, तप्त कंचन का
कांति समान दिखाती हैं ॥२१॥
द्रवीभूत हिम हुआ हिमालय
यह विचार मन आता है ।
जीववृन्द को दुखित देख
गिरि अश्रुधार बरसाता है ॥
गंगा सिंधु सदृश सरितों का
अब रह गया न्यून विस्तार ।
देखी नहीं किसी की जाती
सदा एकसी गति संसार ॥२२॥

बालकों को वर्णमाला सिखाने का सुगम उपाय ।

[लेखक—एक शिक्षक ।]

शिक्षण शास्त्र के नेताओं का कथन है कि बालकों की शिक्षा कष्टदायक प्रतीत न होकर रोचक प्रतीत होनी चाहिये जिससे वह इसे प्रेम से ग्रहण ही न करते चले जायँ परन्तु उनकी इच्छा दिन प्रति दिन इस तरफ प्रबल होती चली जाय ।

बालकों का स्वभाव है कि वह गाने बजाने, नाच, खेल, कूद, आदि को अधिक पसन्द करते हैं अतः वर्णमाला सिखाने के लिए सबसे उत्तम उपाय यही होगा कि खेल कूद आदि द्वारा ही उनकी चित्तवृत्ति एकाग्र की जाय जिससे दिलबहलाव के साथही साथ उनको शिक्षा भी मिलती चली जाय ।

आदि में कुछ २ गाने का आश्रय लेना लेखक को ठीक मालुम होता है जिससे शब्द द्वारा बालक के कान को शिक्षा मिलती है । यह गाना किसी पद्य का नहीं बल्कि बिनामात्रा* के साधारण शब्दों का उच्चारण होना चाहिये । बिना मात्रा के शब्दों की एक ऐसी सूची बनानी चाहिये जिसमें शब्दों की संख्या वर्णमाला के अक्षरों की संख्या से तिगुनी या चौगुनी हो और वर्णमाला का प्रत्येक अक्षर तीन चार वार इन शब्दों के आदि में आवे जैसे नीचे के चार शब्दों के आदि में का है

कमल, कलम, कपट, कसर,

सूची तैयार होने के पश्चात् पाठक एक शब्द बोले और बालकों को लम्बी राग के साथ इसको उच्चारण करने को कहे जिससे उनको तमाशा भी मालुम हो और स्वयंही शब्द के पृथक २ भाग करना भी सीख जायँ जैसे ।

कमल	क	म	ल
सपट	स	प	ट
परस	प	र	स

* बिना मात्रा के शब्दों से मेरा तात्पर्य उन शब्दों से है जिनमें अकार के सिवा और कोई मात्रा न हो ।

इस प्रकार शब्द के खंड करने का अभ्यास इस सूची से करा चुकने के पश्चात् दूसरा पाठ यह होगा कि प्रत्येक शब्द के प्रथम अक्षर के उच्चारण के बाद बालक ठहर जावें जैसे।

शब्द	दिल में बोले	उच्चारण करके बोले
बतक	(ब... त... क...)	ब...
सड़क	(स... ड़... क...)	स...

इस अभ्यास से बालकों को किसी भी शब्द का प्रथम अक्षर बोल देना आजायगा परीक्षार्थ उनको ऐसे शब्दों का प्रथम अक्षर भी बताने को कहा जाय कि प्रथम अक्षर के सिवा और कोई बिना मात्रा का न हो जैसे,

पाठक का प्रश्न "कमीज" शब्द का प्रथम अक्षर क्या है।

बालक का उत्तर (मनमें क मी ज) क

यहां तक तो बालक के कान व मुख से काम लिया गया आगे दृष्टि की भी आवश्यकता है। दृष्टि से काम लेने के लिए अब बालकों के हाथ में चित्रों की पुस्तक या तास† देने चाहियें जिसमें चित्र के साथही वर्णमाला का अक्षर लिखा हो।

याद रहे बालकों को अभी अक्षर पहिचानना कठिन है इसलिए उनके मनबहलाव के लिए चित्र दिखलाकर उसका नाम बता देना चाहिये। नाम का उच्चारण बालक से भी सुना जावे यह अभ्यास इतना होना चाहिये कि किसी भी चित्र को देख कर बालक उसका नाम बता दे। इसके बाद फिर वही पुराना पाठ दुहराया जाना चाहिये याने चित्र को देख बालक उसका नाम आप ही बता चुकने के पश्चात् उस शब्द को लम्बी राग से उच्चारण करके उसका प्रथम अक्षर बतावे जैसे:—

† ऐसी पुस्तकें और ताश बाजार में बहुत मिलते हैं पुस्तकों के दाम तो अक्सर दो पैसे से अधिक नहीं होते।

पाठक—यह चित्र काहे का है?

बालक—बतक का

पाठक—बतक शब्द के अक्षरों का पृथक् २ उच्चारण करके प्रथम अक्षर बताओ।

बालक—ब त क—ब

इस तरह बालकों को ऐसा अभ्यास हो जाना चाहिये कि चित्र को देखते ही उस चित्र के नाम के प्रथम अक्षर का आपही उच्चारण कर दे।

यहां पर बालक को अब यह बताना चाहिये कि जिस अक्षर का वह उच्चारण कर रहा है उसका आकार कैसा है। चित्र को देख बालक जब अक्षर का उच्चारण करे तो उसकी दृष्टि चित्र के पास ही लिखे उस अक्षर की आकृति की तरफ फेरनी चाहिये जिससे उच्चारण के साथ ही साथ उस उच्चारण किये हुये अक्षर की आकृति उसके हृदय पर अंकित हो जाये। उच्चारण के साथ ही अक्षर को बता देने के अभ्यास के बाद अक्षर को देख कर उसके उच्चारण का अभ्यास कराना चाहिये परन्तु ऐसा करते समय स्मरणशक्ति को बढ़ाने के लिए चित्र को हाथ से छिपा लेना चाहिये। पुस्तक के पृष्ठ पर चित्र के पास (बिना चित्र के देखे) के अक्षर को देखकर जब उसका उच्चारण करना सीख जाय तो दूसरी पुस्तकों के ऊपर के पृष्ठ पर लिखे हुये बड़े २ अक्षरों का उच्चारण परीक्षार्थ करवाना चाहिये। यदि वह इस परीक्षा में सफल हो जाय तो समझना चाहिये कि वर्णमाला के अक्षर उसको बहुत अच्छी तरह आगये। इस रीति बिना बालक के हृदय पर यह अंकित करा देना कि किस बोले हुये अक्षर का कैसा आकार है और किस आकार के अक्षर का कैसा उच्चारण है बहुत कठिन है।

कदाचित पाठक यह कहें कि इस भांति शिक्षण में तो समय बहुत लग जायगा और हम
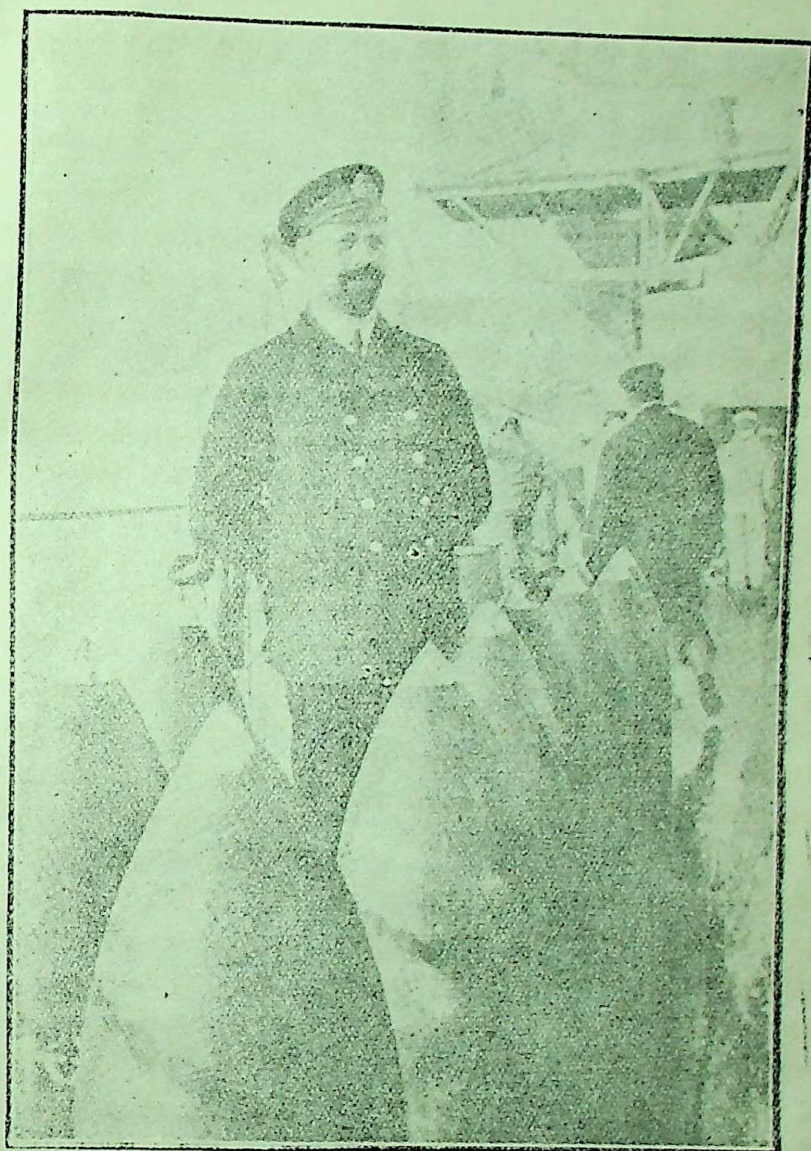
डार्डनेलीस के मुहाने में एक ब्रिटिश जङ्गी जहाज़ पर १२ इंच के गोले दिखाये गये हैं जो तुर्की किलों पर चलाये जाते हैं।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग।

को कष्ट भी पूरा उठाना पड़ेगा परन्तु याद रखना चाहिये पाठक आप स्वयं कष्ट उठाकर उन कोमलहृदय बालकों का जो शिक्षार्थ उनके सुपुर्द किये गये हैं कष्ट ही दूर नहीं करते बल्कि बातों ही बातों में दिल बहलाव के साथ वर्णमाला के सारे अक्षर पढ़ाते हैं जिसमें उनको कई चपतों और रुदन की भी बचत हो गई। दूसरी बात यह है कि पुराने ढंग से जिस आयु के बालक वर्णमाला सीखते हैं इस ढंग से उससे कम आयु के बालक चाह के साथ सीख सकते हैं और पाठक को 'हौवा' नहीं समझते।

पाठकों का परम कर्तव्य है कि जहां तक हो सके बालकों को शिक्षा सहज से सहज और रोचक से रोचक रीति पर स्वयं कष्ट उठाकर या अधिक समय लगाकर भी दें ताकि उनका मस्तिष्क कोमलावस्था में तो ठीक रहे इसके बिगाड़ने के लिए आगे की वर्तमान भारतीय शिक्षा ही बहुत है।

कला और स्वदेशी।*

[लेखक—श्रीयुत परशुराम चतुर्वेदी।]

यदि आप भारतवर्ष के प्रसिद्ध नगरों में किसी उस दूकान पर जायँ जहां विदेशी यात्री बहुधा जाया करते हैं तो आपको ऐसे गढ़े हुए काठ के टुकड़ों तथा नक्काशीदार पीतल के बर्तनों के बीच में जो कि बिलकुल पुराने पड़ गये हैं ऐसी वस्तुएँ दिखलाई देंगी जिन पर चित्रकारी तथा सुई का काम भलीभांति किया गया है और जिनके ऊपरी भाग को देखने से जान पड़ता है कि वे भारतवर्षीय निर्माण-कौशल की अवनति के खासे नमूने हैं। ये हो वस्तुएँ जो कभी प्रायः प्रत्येक बाज़ार में मिला करती थीं और जो भारत के निवासियों के लिए धन समान थीं और लगभग गत तीन सहस्र वर्षों तक जोकि उनके विदेश भेजे जानेवाली वस्तुओं के मूलमन्त्र थीं आज बड़ी कठिनता से मिलती हैं; ये अब "पुरानी चीज़" कहलाती हैं। इनको अमेरिका के परीक्षक तथा जर्मनी के संग्राहक (Collectors) अपने कौतुकागारों अर्थात् म्यूजियम्स में रखने के लिए ले जाते हैं और इस प्रकार की वस्तु बनाने की शिक्षा इनके द्वारा यूरोप में की जाती है। वहां इनके विषय पर यूरोपीय कारीगरों के लाभार्थ Journal of Indian art इत्यादि पत्रों में लेख प्रकाशित किये जाते हैं और इन पर Technical Schools और Schools of art में व्याख्यान दिये जाते हैं। क्योंकि यद्यपि कारीगरों की निर्माणशक्ति कितने दिनों से पश्चिमीय वाणिज्य द्वारा नष्ट होगई है तथापि यह अभी कलतक हम लोगों में वर्तमान थी और अभी आजतक कुछ न कुछ जीवित अवस्था में है।

सूक्ष्म २ आविष्कारों के लिए भारतीय विधान एक ऐसी सामग्री है जो कभी घट नहीं सकती। किन्तु क्या कभी आपने यह विचार किया है कि ये सभी आविष्कार प्राचीन समय के हैं और इस आधुनिक अंगरेज़ी भारत ने कुछ भी सुन्दर तथा काल्पनिक वस्तु उत्पन्न नहीं किया है, प्रत्युत हमारे प्राचीन २ ऐसी वस्तुओं का नाश भी कर डाला है? किसी

---

* यह लेख डाक्टर ए० के० कुमार स्वामी के अङ्गरेजी लेख "दी आर्ट ऐण्ड स्वदेशी" का अनुवाद है। ले०

स्वदेशी दूकान में आप कहीं भी भारतीय आविष्कार के उदाहरण न पायेंगे जिसको प्राचीन भारतीय कारीगर अपना धन समझता था और जिसे दैनिक कार्यों में भी व्यवहार की जानेवाली एक साधारण सी वस्तु पर—उन रेशमी बूटेदार वस्त्रों पर जिनसे गृहणियां सुशोभित की जाती थीं, उन पीतल के बर्त्तनों पर जिनमें हम लोग नित्यशः खाते पीते थे, उन क़ालीनों पर जिन पर हम नंगे पैर टहला करते थे तथा उन चित्रों पर—व्यय किया करता था जिनमें श्रीराधा देवी का प्रेम अथवा प्रकृति की छटा दिखलानी होती थी। आप वहां ये बातें कभी न पाइयेगा किन्तु आपको वहां वही वस्तुएँ दीख पड़ेंगी जिनमें यूरोप की वाणिज्यवाली वस्तुओं की नक़ल की गई है और जिनका कुछ बुरा होने पर भी कुछ अधिक ही मूल्य रक्खा गया है। आपको काले भूरे रंगे हुए वस्त्र मिलेंगे जिन पर रंग तो खूब चटकीला है पर जो टिकाऊ नहीं; यात्रावाले ट्रङ्क मिलेंगे जिन पर इन्द्र-धनुष के सभी रंग दिखलाये गये हैं पर जो आधे साल भी नहीं ठहर सकते और जूते की रोशनाई, स्याही, साबुन तथा क़लम इत्यादि सभी वस्तु रँगीली ही दिखलाई देंगी। हमारे अर्थशास्त्र के जाननेवाले तथा राजनीतिज्ञ लोग बहुधा केवल बाहरी चमक दमकवाली ही वस्तुओं को वृद्धि में अधिक यत्न कर रहे हैं। मैं अभी दिखलाऊंगा कि यह भी सफलता के साथ नहीं होता। किन्तु कुछ देर के लिए एक दूसरे विषय पर दृष्टि डालिये।

आप यह भलीभांति जानते होंगे कि राष्ट्रीयता का सब से उत्तम आदर्श सेवा है। पर क्या कभी आपने यह विचार किया है कि भारतवर्ष सम्पत्ति तथा राजनीतिविषयक बातों में स्वतन्त्र होते हुए यूरोप द्वारा आन्तरिक अवस्था में आधीन होने के कारण जीवित रहने तथा मरने के लिए भी कभी आदर्श नहीं कहा जा सकता ? जैसा कि एक भारत-प्रेमी अंगरेज़ ने हाल ही में लिखा है, "आधुनिक शिक्षा तथा आधुनिक व्यापार के आदर्शों द्वारा बिगड़ा हुआ भारतवर्ष सुन्दरता का ज्ञान होने पर भी कभी अपने ऊपर अनुकम्पा तथा दया नहीं कर सकता।" क्या कभी आपने यह अनुभव किया है कि यूरोप के कई एक कारीगरों को इस बात में विश्वास है कि जब कभी यूरोपीय कला में कोई नवीन उत्तेजना आयेगी तो वह पूर्व ही से फिर आवेगी। क्या कभी आपने सोचा है कि जब भारत एशिया में एक बड़ा भारी राजनैतिक बल था और जब इसने जावा को बसाया तथा चीन को उद्बोधित किया था उस समय में भी वह अपनी कला ही में अत्यन्त निपुण था ? क्या कभी आपके मन में यह नहीं आया है कि उसे सौन्दर्यशाली बनाना मेरा उतना ही कर्तव्य है जितना उसे नैतिक बनाना तथा यह कि निस्सन्देह बिना सौन्दर्य के नीति कभी नहीं होती और न बिना नीति के सौन्दर्य ही होता है ? अपने चारों ओर भारत की बिगड़ी दशा पर तनिक दृष्टि फेरिये और देखिये वाणिज्य के समक्ष हमारी कला कैसी है, किस प्रकार किरोसिन तेल के टीन में जल भरा जा रहा है; किस प्रकार बिजली की शक्ति द्वारा खींचे गये दस्ते खपड़ों का काम दे रहे हैं, किस प्रकार हम लोग यूरोप के पहनावों की नक़ल कर रहे हैं; किस प्रकार हमारे छोटे २ गांव समुद्र तटस्थ नगरों की भांति शीशों तथा कृत्रिम पुष्पों से सजाये गये हैं तथा किस प्रकार हमारे घरों में हारमोनियम और ग्रामोफोन का आदर हो रहा है। ये ही ऊपरी तथा नाश करनेवाली बातें इस बात के सच्चे प्रमाण हैं कि "हमारे आत्माओं के भीतर किसी बड़ी भारी दुर्मति का समावेश होगया है।"

इस बात में विश्वास रखिये कि हम लोगों की इस निर्दयता से तथा माध्यमिक शिक्षाप्रणाली की चाह घटादेने से हमलोगों की निर्बलता ही प्रकट होती है; सबलता नहीं।

ध्यान रहे कि भारतवर्ष का पुनरुत्थान केवल राजनीति ही विचारने और सम्पत्ति शास्त्र के देखभाल करने से नहीं, किन्तु कला कौशल से होगा। ऐसे २ भौतिक विषयों पर ही केवल विचार करने से हमारी गई दशा फिर नहीं फिर सकती। इसके लिए हमें प्राचीन कला की उन्नति का स्वप्न अवश्य देखना होगा।

हमलोगों में इस जीवन के सौन्दर्य का न होना हमलोगों के भारत पर प्रेम न करने का प्रत्यक्ष प्रमाण है क्योंकि भारत हालही में सभी राष्ट्रों से अधिक सुन्दर था। हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन की यह निर्बलता है कि हम लोगों का भारत के साथ प्रेम नहीं। हमलोग इङ्गलैंड को प्यार करते हैं और हमलोग उस आगे की लुभानेवाली सम्पत्ति से प्रेम करते हैं जो हम लोगों की इस वैज्ञानिक उन्नति तथा कला विस्मृति के कारण कुछ ही दिनों में आधुनिक यूरोपीय वाणिज्य द्वारा यहां स्थापित होने चली आरही है। इस प्रकार राष्ट्र कभी नहीं बनते। इसलिए मैं आप से मिष्टर हैवेल की भांति कहना चाहता हूं कि "अपनी कला तथा अपने उद्योग के पुनरुत्थान के लिए गवर्नमेंट से प्रार्थना करनी छोड़ दो। तुम अपने योग्य कार्य निश्चयपूर्वक स्वयं कर सकते हो और तुम्हारे सफल होजाने पर कोई गवर्नमेंट तुम्हारे नैतिक स्वत्वों को अस्वीकार नहीं कर सकती। तुम अपनी खोई हुई भारत की कला शक्ति के सुधार के हेतु फिर प्रयत्न करो। इसके करने से तुम्हारे कार्यों में एक जीवन शक्ति का संचार होगा जो आजकल तुमलोगों में दिखलाई नहीं देती।"

अब इसे व्यावहारिक रूप में देखिये। सब से अधिक भारतवर्ष के व्यवसायों की हानि कला की अवनति से हुई है और इसी के कारण इनके पुनरुत्थान में सन्देह भी पाया जाता है। भारतीय सङ्गीत की उपेक्षा करने से सङ्गीत यन्त्रों के बनानेवाला की जीविका मारी गई और उनकी वंशपरम्परा से आती हुई वह निपुणता भी चली गई। अब गायकों की भी वृत्ति जाती रही और बाहर के देशों से लगभग १५ लाख रुपयों के बाजे हमारे यहां प्रति वर्ष आने लगे। विचार कीजिये इसमें दूनी हानि हुई है क्योंकि न केवल हम लोगों ने वस्तुओं के ही रूप में धन नष्ट किया है किन्तु इसके साथ ही ऐसे मनुष्यरूपी धन का भी नाश कर डाला है जो इनके बनाने में दक्ष और सिद्धहस्त थे। और यदि भारतवर्ष प्रत्येक वर्ष सैकड़ों लाख रुपये ग्रामोफ़ोन में व्यय करने के लिए धनी रहता तो भी यह हानि ज्यों की त्यों बनी रहती।

ग्रामीण जुलाहों की भी वही दशा है। भारतीय रँगाई की ओर ध्यान नहीं दिया गया और न इनसे प्रेम ही किया गया। फल इसका यह हुआ कि जुलाहों की जीविका मारी गई और अब उनको खेत बोने और पहले ही से भरे हुए कामों में नौकरी करने की आवश्यकता हुई। अब यह भी देखने में आता है कि हम लोगों ने हाथों की कारीगरी से बनाई गई उच्चकोटि की वस्तुओं से ध्यान खींच कर केवल व्यावहारिक विषयों पर ही इसे लगाये हुए अधिकतर मैन्चेस्टर के कारखानों में जिस प्रकार परिश्रम कराया जाता है उसी भांति कराने का विचार कर रहे हैं। इससे बालकों की स्वस्थता आदि ही से चली जायगी और इस प्रकार राष्ट्रीय शक्ति में कुल्हाड़ा लगेगा। बात तो यह है कि हम लोग उस कारीगरी को पहचानते ही नहीं। स्मरण रखिये इङ्गलैंड के विषय में वहां के लोग कहा करते हैं कि हमलोगों के बड़े २ नगरों में जनसंख्या लगभग उतनी ही है जितनी आज छः शताब्दियां हो चुकीं इङ्गलैंड और वेल्स दोनों में मिलाकर थी, किन्तु आधुनिक मनुष्यों की अवस्था अधिक शोचनीय है, रहने के घर अधिक भद्दे, इनके आवश्यक अधिक अनि-

श्चित और इनकी दशा उनमें से सब से दरिद्र मनुष्य से भी अधिक निकृष्ट है"। विचार कीजिये कि अंगरेज़ जाति के दशांश लोग उन कारखानों में ही मर जाते हैं जिन्हें कारागार अथवा पागलखाना कहना चाहिये। अतएव इस क्षणस्थायी नैतिक युद्धानल में अपने राष्ट्रीय बल की आहुती दे देना मत सीखिये किन्तु ध्यान रखिये कि इस काल के ही द्वारा आप अपने प्राचीन कौशल और व्यापार को और भी निश्चित रूप में ला सकेंगे और इसे ठीक आधार पर ले आने से ही हम लोगों को फिर सुख मिल सकता है क्योंकि इस संसार में ऐसी कोई भी मनोहर वस्तु देखने में नहीं आती जो सौन्दर्य के आधार पर न बनी हो।

दूसरा व्यावहारिक रूप में उदाहरण लीजिये "मिर्ज़ापुर में बने हुए कालीनों की कभी उनके स्वच्छ, पक्के और चमकीले रंग के कारण प्रशंसा की जाती थी, किन्तु इस समय उनकी तुलना उन वस्तुओं से की जाती है जिनमें रंग और बनावट का भद्दा उदाहरण पाया जाता है। इनकी अवनति के कारण अब नील के रंग anilinedyes और विदेशी बनावट होगये जिनके द्वारा एक ऐसा व्यवसाय मारा गया है जिससे थोड़े ही दिन हुए उन्नति की आशा की जाती थी"। अब देखिये, केवल बुरी चाह के होने तथा कलाकाशल की पहचान के न होने से ही रंग बनानेवालों और कालीन तय्यार करनेवालों का नाश हो गया और इसी कारण भेजे जानेवाली वस्तुओं के वाणिज्य के पुनरुत्थान की सम्भावना भी जाती रही।

बात तो यह है कि बिना कला-विषयक ज्ञान प्राप्त किये भारत की कारीगरी की उन्नति फिर कभी हो ही नहीं सकता। सस्तेपन के आधार पर यूरोप के साथ स्पर्धा करना आत्मघात करना है। यदि करना है तो युग के विषय में स्पर्द्धा क्यों नहीं करते? इसके साथही सस्तेपन ही में ऊंचा होने का यत्न करना नाश का घर है क्योंकि "बिना कला के उद्योग करना पशुत्व के समान है"।

स्वदेशी को नैतिक शस्त्र से कुछ अधिक अवश्य होना चाहिये। इसको कला-सम्बन्धी धार्मिक आदर्श भी बनाइये। मैंने राष्ट्रीय मतावलम्बियों को स्वदेशी वस्तु के प्रयोग करने के लिए आपस में उत्साह देते हुए मुंह से बलिदान शब्द लाते हुए सुना है। लज्जा की बात है कि हम उसे बलिदान कहते हैं। कम से कम आज की भांति इसको कभी भी धन तथा गुण का बलिदान नहीं होना चाहिये यदि हम लोग भारतीय कला को प्यार करते हैं तथा इसे समझते भी हैं तो हमें यह जानना चाहिये कि भारत का कारीगर, यदि अभी भी हम लोग उसे बनाने दें तो ऐसी वस्तु बना सकता है जैसी कहीं नहीं मिल सकती और हमें इस प्रकार सुन्दरता के साथ सुशोभित भी कर सकता है जिस प्रकार आधुनिक यूरोप को कितना ही धन व्यय करने पर कोई वस्तु कभी नहीं कर सकती। यदि हम चाहें तो आज भी देवता की भांति रह सकते हैं, किन्तु हम तो आज मिश्र के मांस-पात्रों (Flesh-pots) पर लिपटे हुए हैं और इसी कारण हमारे धन का उचित रूप से ह्रास भी हो रहा है।

इसलिए मुझे धनियों से यह कहना है कि आपके लिए स्वदेशी रंग से रँगी हुई बनारसी साड़ी के लिए ढाई सौ रुपये व्यय करना यद्यपि विदेशी रंग से रँगी हुई का दोही सौ मूल्य क्यों न हो, किसी स्वदेशी कारखाने के लिए जिसमें निव और कपड़े तय्यार होते हों उसके दस गुना दान देने से कहीं अच्छा है और निर्धनों से भी यही प्रार्थना है कि वे भी अपनी योग्यता के अनुसार उसमें कुछ जोड़ दें क्योंकि अग्निपुराण में लिखा है कि "दरिद्र मनुष्य का छोटा से छोटा भी मन्दिर बनवा

देना, धनी मनुष्य के बड़े से भी बड़े देवालय बनवा देने से कम कीर्त्तिकर नहीं है"।

यह भी स्मरण रहे कि राष्ट्रीय धन के विचार से थोड़ी सी भी वस्तुओं पर का चिरस्थायी अधिकार अधिक वस्तु विषयक क्षणिक अधिकार से अधिक अच्छा है। पांच शताब्दियों तक ठहरनेवाली वस्तुओं का बनानेवाला पचास वर्ष ठहरनेवाली वस्तु के बनानेवाले से कहीं अधिक जाति का काम कर सकता है। इसी भांति वह जुलाहा जिसका सच्चा काम वंशपरम्परा से चला आ रहा है अपने देश के लिए क्षणस्थायी काम करनेवाले से अधिक कुछ कर सकता है। अपनी इच्छाओं का बढ़ाना ही नहीं किन्तु जो कुछ हो उसे अच्छा बनाये रखना भी सभ्यता है।

अतएव भाइयो! आओ हम लोग कला से प्रेम इसलिए ही न करें कि इसके द्वारा हमें सुख समृद्धि प्राप्त होगी प्रत्युत इसलिए कि यह हमारा परम कर्त्तव्य है। यह वह द्वार है जिससे होकर हम परोक्ष से प्रत्यक्ष समय में आ सकते हैं, यह उन विचारों का मूल कारण तथा उस कल्पना का सार भाग है जिससे हमें एक राष्ट्र में होना है। यह कल्पना कम नहीं किन्तु पहले से अधिक बलवती और अधिक सुन्दर है और यह संसार की सभी जातियों को उदारता के साथ सौन्दर्य प्रदान करनेवाली है।

शनिग्रह।*

[अनुवादक—श्रीयुत चन्दीप्रसाद।]

"छायायाः गर्भसम्भूतं वन्दे भक्त्या शनैश्चरं।
नीलाञ्जन चय प्रख्यं रविसूनं महाग्रहं ॥१॥"

पुराणादि शास्त्रों में शनिग्रह सूर्य के पुत्र माने गये हैं। शनि की जन्मकथा पुराण में जिस प्रकार लिखी है, हम पहिले वैसी ही लिखेंगे। प्रजापति विश्वकर्मा ने संज्ञा नाम की एक कन्या भगवान् सूर्यदेव को प्रदान की किन्तु यह कन्या सूर्यदेव का प्रचण्ड तेज सहने में अशक्ता होकर पिता के घर चली गई। जाने के समय वह छाया नाम्नी कन्या स्वामी के घर रख गई। इसी छाया के गर्भ से शनि का जन्म हुआ। दूसरे मत से यह है कि प्रजापति विश्वकर्मा ने सूर्यदेव को तेज ह्रास करने की आज्ञा दी। सूर्यदेव के तेज कुछ प्रशमित करने पर उससे एक चक्र निर्मित हुआ—

"शातितं चास्य यत्तेजस्तेन चक्रं विनिर्म्मितं ॥"

इस प्रकार शनि की उत्पत्ति हुई। रविसुत, छायापुत्र, मन्द, नीलवास, भास्करि, और वक्र प्रभृति शनि के नाम कथित हैं। सब ही के मत से शनि क्रूर ग्रह है; इनके दृष्टि करने से जीव का सर्वनाश हो जाता है। कहा गया है कि, शनि की क्रूर दृष्टि उनकी पत्नी के शाप के प्रभाव से हो गई थी। इसीलिए शनि से सब देवता भय करते हैं। गणेश को देखा था, इसीलिए उनका मस्तक उड़ गया था। भगवान

---

* बङ्गभाषा के सुप्रसिद्ध मासिक पत्र 'भारतवर्ष' में प्रकाशित बङ्गभाषा के सुलेखक श्रीयुत ज्ञानेश्वर घटक के शनिग्रह लेख का अनुवाद।

नारायण ने शनिदेव की दृष्टि से बचने के लिए अनेक दिन गण्डकी नदी में छुपकर शालिग्राम शिला प्रस्तुत की थीं। शनि वार भी अच्छा नहीं है।

पूर्वकाल में शनिग्रह किस निमित्त इतना निन्दनीय हो गया था, सो स्थिर नहीं किया जा सकता। सब देशों में अति पुरातन काल से लोगों का यह विश्वास था (अब भी है) कि शनिग्रह ही से हमें कष्ट मिलता है। लोकव्यवहार में देखा जाता है कि शनिवार को कोई भी शुभकार्य अनुष्ठित नहीं होता है। यहूदी जाति के लोग शनिवार को कोई भी वैषयिक कर्म नहीं करते हैं। चासर (Chaucer) नामक प्राचीन अंग्रेज कवि अपने काव्य में शनि को देवता कल्पना कर उससे इस प्रकार कहलाता है :—

"यह सत्य है कि हमारा पथ बहुत दूर है, एवं हमें बहुत काल तक उसी पथ पर भ्रमण करना होता है, तथापि हमारी जो क्षमता है वह क्या किसी और की भी है? मैं ही जलवृष्टि कर समुद्र में तूफान पैदा करता हूं; मेरे ही प्रभाव से लोगों को उद्बन्धन अथवा फांसी होती है; मेरे ही कटाक्ष से सतत राजविद्रोह होता है; एवं सब प्रकार से प्रजा की हानि होती है; जितने हृदयविदारक क्रन्दन, जितने गुप्तविष प्रयोग, जितनी प्रतिहिंसा अथवा जितने दण्ड मेरे प्रभाव से होते हैं उतने और दूसरे ग्रह की दृष्टि से नहीं होते; प्रकाण्ड अट्टालिका भूमिसात होती है; बड़े बड़े दुर्ग विपक्ष के अधिकार में चले आते हैं, सुदृढ़ प्राचीर गिर कर टूट जाती है—यह सब मेरे ही कर्म हैं। सर्दी, खांसी, वात एवं महामारी; हमारी दृष्टिमात्र से घटित होती हैं।"

जिस प्रकार हम अंग्रेज़ कवि को शनिग्रह के प्रभाव के सम्बन्ध में आलोचना करते हुए देखते हैं उसी प्रकार रूस के एक बड़े दर्शन-तत्वविद् कवि को भी मानवावस्था के ऊपर शनिग्रह के अद्भुत प्रभाव के सम्बन्ध में उल्लेख करते हुए देखते हैं। उसने कहा है—"जहां शनिग्रह है वहीं दुर्दशा है।" शनि का नाम तक लेना महापाप है, यह उसकी धारणा है!

पृथ्वी की समस्त जातियाँ शनिग्रह को इस प्रकार अनिष्ट का मूल कहकर भय करती हैं। इसका कारण क्या है? यह गम्भीर रहस्य-भेद करने में हम असमर्थ हैं।

दूरवीक्षण (दूरबीन) यन्त्र द्वारा देखने से भी शनिग्रह इस सौर जगत के अन्यान्य ग्रहों से विभिन्न दिखाई देता है! इसके नौ चन्द्र हैं, एवं इस ग्रह के विषुवरा के निकटवर्ती कुछ थोड़े से चक्र हैं। जितना ही इन चक्रों का व्यापार पर्यालोचित किया जाता है उतना ही वह विस्मयकर प्रतीत होता है। इस सौर जगत में जितने ग्रह हैं, बुध एवं शुक्र को छोड़कर और सब ग्रहों के एक व उससे अधिक चक्र हैं किन्तु शनिग्रह की तरह चक्र और किसी ग्रह में नहीं दिखाई देता है।

ज्योतिषिक दूरवीक्षण (Austronomical telescope) द्वारा देखने से यह चक्र दिखाई पड़ता है एवं इस चक्र में कुछ अंश सुवर्ण की तरह पीला और उज्ज्वल दिखाई पड़ता है। इस चक्र का कुछ अंश अर्द्धस्वच्छ और छायायुक्त है।

पृथ्वी से सूर्य का जितना दूरत्व है उससे साढ़े नौगुण दूर अर्थात् ९०९००००० नब्बे करोड़ नब्बे लाख मील दूर पर शनि की कक्षा अवस्थित है। पृथ्वी से बृहस्पतिग्रह का जितना दूरत्व है उससे दुगनी दूर पर शनिग्रह अवस्थित है। इस पृथ्वी से हम सूर्य का जो आकार देखते हैं, शनिग्रह के उपरि भाग से देखने से सूर्य की आकृति उसके शतांश की एकांश मात्र अर्थात् प्राय नक्षत्र की तरह सूर्य की आकृति

दिखाई पड़ती है। सूर्य के उत्ताप की भी उसी प्रकार कम होने की सम्भावना है।

दृष्टिविज्ञान एवं आलोक तत्व के नियमानुसार हम समझ सकते हैं, कि विप्रकृष्टत्व वस्तुतः दूर की वस्तु छोटी दिखाई देती है, एवं इसी प्रकार उत्ताप भी कम हो जायगा। अतएव अङ्क शास्त्र और प्राकृतिक विज्ञान इस विषय में हमारा सहाय है। हम बातें अङ्कशास्त्र ही द्वारा जान सकते हैं। शनिग्रह सूर्य से दूरी पर अवस्थित है, इससे शनिग्रह के उपरिभाग पर से यदि सूर्य को कोई देखे, तो वह सूर्य को निश्चय ही नक्षत्र के बराबर क्षुद्र देखेगा। इस प्रमाण को अनुमान कहना होगा।

दूरवीक्षण द्वारा देखने से बहुत साफ दिखाई देता है कि शनिग्रह सूर्य की रश्मि द्वारा ज्योतिषमान है, कारण कि सब देशों से ज्योतिर्विदगणों ने लक्ष्य किया है कि शनिग्रह के ऊपरी भाग में चक्र की छाया पड़ती है। और किसी समय यह भी देखा जाता है कि ग्रह-पिण्ड की छाया चक्र के ऊपर पड़ती है। हमने जिस अवस्था में उसकी परीक्षा की थी, उस समय ग्रहपिण्ड की छाया चक्र के ऊपर दिखाई पड़ती थी।

इस समय स्वभावतः यह प्रश्न पाठकों के मन में उत्पन्न हो सकता है कि अङ्क शास्त्र एवं दृष्टिविज्ञान के मत से शनिग्रह से सूर्य की आकृति नक्षत्राकार दिखाई पड़ती है, यह अनुमान से भी सिद्ध है किन्तु दूरवीक्षण द्वारा चक्र की छाया ग्रहपिण्ड के ऊपर ग्रहपिण्ड की छाया चक्र के ऊपर जिस प्रकार साफ दिखाई पड़ती है, यदि प्रकृतपक्ष में सूर्य नक्षत्राकार होता तो उस नक्षत्राकार सूर्य की स्वल्पज्योति शनिग्रह के ऊपर इस प्रकार छायापात नहीं कर सकती। हमारी इस पृथ्वी से किसी नक्षत्र के आलोक पर इस प्रकार छायापात होते हुए नहीं दिखाई देता है। प्राकृतिक तत्वविद् पण्डितगण ने इस विषय को लेकर बहुत चिन्ता की है। नक्षत्राकार सूर्य किस प्रकार शनिग्रह पिण्ड और चक्र को इस प्रकार तीव्र आलोक द्वारा समुद्भासित करता है, यह वर्तमान काल में भी एक विषम वैज्ञानिक समस्या हो रही है।

स्वच्छ काच के खण्ड द्वारा जो लैन्स तैयार होता है, उसके द्वारा आलोक की गति कुञ्चित, प्रसारित, वर्द्धित, अथवा समान्तर की जा सकती है। दूरवीक्षण यन्त्र द्वारा हम बहुदूरस्थ ज्योतिष मण्डल को जो वर्द्धित आकार में देखते हैं वह केवल यन्त्रमध्यस्थित कुछ लैन्सों ही के कारण है। वायुमण्डल कांच की भी अपेक्षा परिष्कार और स्वच्छ है, सुतरां शनिग्रह का वायुमण्डल यदि लैन्स के आकार का ही गठित हो, तो नक्षत्राकार सूर्य शनिग्रह के उपरिभाग से आवश्यक मत वृहदाकार एवं तेजोमय दिखाई पड़ सकता है। विश्वदेव ने हमारे इस क्षुद्रादपि क्षुद्र देह के दृष्टि ज्ञान के लिए चक्षु के मध्य में भी कुछ जल के लैन्स कर दिये हैं। यह सब देखने से मालूम होता है, कि इस अनन्त विज्ञान के अनन्त वैज्ञानिक शिल्पी ने शनिग्रह के सूर्य से दूर अवस्थित होने के कारण उसके वायुमण्डल को लैन्स के आकार का ही बनाया है। *

शनिग्रह की कक्षा भी इलिप्स आकार की है। इस कक्षा के एक फोकस में सूर्य अवस्थित है। अपनी कक्षा में घूमने के समय शनिग्रह कभी सूर्य के पास आ जाता है और कभी

---

* यह लेखक का अनुमानमात्र है। अबतक किसी वैज्ञानिक ने यह बात नहीं कही है। शनिग्रह का चक्र समष्टि जिस कारण से शनिग्रह के मध्यभाग में अवस्थित है, तो शनिग्रह का वायुमण्डल, निश्चय ही इस चक्रसमष्टि के ऊपर अवस्थित है सुतरां वह पार्थिव वायुमण्डल की तरह चक्राकार न होकर किसी प्रकार Concavo and convex लेन्साकार भी होना ही चाहिये।

अपेक्षाकृत दूर चला जाता है। निकट आने पर ८५८,०००,००० माईल, एवं दूरस्थ होने पर ९६०,०००,००० मील व्यवधान होता है। २९ वर्ष, ५ महीने, १७ दिन में शनिग्रह एक बार सूर्य को वेष्टन कर लेता है।

पृथ्वी से हम शनिग्रह को प्रथम श्रेणी के नक्षत्र की तरह समुज्ज्वल देखते हैं; सूर्य से बहुत दूर अवस्थित होते हुए भी शनिग्रह की उज्ज्वल प्रभा एक विस्मय का कारण है एवं इसीलिए उसका अवस्थान ज्योतिर्मय कहते हुए भी सन्देह हो सकता है; किन्तु दूरवीक्षण यन्त्र द्वारा देखने से मालूम होता है कि ग्रह का छाया चक्र के ऊपर पड़ती है और सूर्य के अवस्था के अनुसार किसी समय देखा जाता है कि चक्रसमष्टि की छाया ग्रह के ऊपर पड़ती है। शनिग्रह अथवा उसके चक्र के दीप्तमान होने से ऐसी छाया न दिखाई देती। सूर्य की ज्योति शनिग्रह के ऊपर से प्रतिभात होने के कारण वह ज्योतिष्मान दिखाई देता है। पृथ्वी की तरह शनि भी अपना मेरु अवलम्बन कर घूमता है, इसलिए उसमें भी दिवा रात्रि होती हैं। दश घंटा, २९ मिनट, १७ सेकन्ड के समय में वह अपना अक्षावर्त्त समाप्त करता है, सुतरां दिवारात्रि का परिमाण ५ घंटा मात्र है।

इस ग्रह के उत्तर एवं दक्षिण के केन्द्र स्थान विशेष चपटे मालूम होते हैं। शनि के मध्यप्रदेश का व्यास एवं केन्द्र के स्थान का व्यास को तुलना करने से ६८३० मील का प्रभेद दिखाई देता है। इसके द्वारा मालूम होता है कि शनिग्रह के केन्द्र का चपटापन एक बटे तीन सौ मात्र है किन्तु शनिग्रह का केन्द्र-चाप एक बटे ग्यारह अंश है। शनिग्रह की केन्द्र स्थानीय परिधि २१४००० मील एवं विषुवत रेखा की परिधि २३६००० मील है। किन्तु उसके पदार्थ-समष्टि का आपेक्षिक गुरुत्व पार्थिव पदार्थ समष्टि के गुरुत्व का अपेक्षा कम है। और क्या, वह जल की अपेक्षा भी कम है।

शनिग्रह के मध्यप्रदेश में मेखला की तरह छायायुक्त कुछ चिह्न दिखाई देते हैं, इन चिह्नों के स्थानविशेष का आवर्तन लक्ष्य करने से देखा जाता है कि ठीक १० घंटा, २९ मिनट और १७ सेकेन्ड में चिह्नित स्थान घूम आता है। इन्हीं लक्षणों के द्वारा ज्योतिर्विद पण्डित लोग शनिग्रह की आह्निक गति समझ सके हैं।

इस ग्रह की आकृति विशाल होते हुए भी मङ्गल, पृथ्वी, शुक्र अथवा बुध ग्रहों की अपेक्षा उसकी आह्निक गति का द्रुतवेग है। हमारी इस पृथ्वी का ३६५ दिन रात में वर्ष समाप्त होता है, शनिग्रह के २४,६३१ आवर्तन होने पर उसका एक वत्सर समाप्त होता है।

वृहस्पति ग्रह के मेरु एवं विषुव रेखा के परस्पर के समकोण में अवस्थित होने के कारण इस विशाल ग्रह के शीत और ग्रीष्मकाल के उत्ताप में बहुत अधिक पार्थक्य नहीं होता है शनिग्रह की विषुव रेखा के साथ मेरु का ६०००'.१".७२" कोण दिखाई पड़ता है।

शनिग्रह की ग्रीष्म ऋतु पार्थिव सात वर्षों से कुछ अधिक की होती है। इसी परिमाण से शरद, शीत, एवं वसन्त ऋतु होते हैं। १५ वर्ष से (कुछ कम) के अन्तर उसकी दिवारात्रि समान होती है एवं १५ वर्ष के अन्तर ही उसका अयनान्त (Solotices) होता है। इन सब अपूर्व व्यापारों के साथ शनिग्रह की विशाल चक्र समष्टि, एवं कुछ चक्रों की बात सोचने पर किसी अपूर्व ज्योतिर्मयी शोभा का आभास पाया जाता है।

इस ग्रह के वार्षिक गति के अनुसार किसी समय उसका उत्तर केन्द्र और किसी समय उसका दक्षिण केन्द सूर्य द्वारा आलोकित होता है। इसीलिए उसका चक्र पृथ्वी से नाना

प्रकार का मालूम होता है। जिस समय सूर्य शनिग्रह की विषुवत रेखा के ऊपर होता है उसी समय पृथ्वी से उसका चक्र प्रायः नहीं दिखाई देता है। छोटी २ दूरबीनों से वह बिल्कुल दिखाई नहीं देता है, खूब वृहदाकार यन्त्र से भी वह भली प्रकार नहीं मालूम पड़ता है, ग्रह के दो पार्श्व सूक्ष्म ज्योति रेखामात्र दिखाई देती हैं।

ग्यालिलीने भी जिस समय शनिग्रह के चक्र को देखा था तब वह सम्भवतः अयनान्त के समीपवर्ती था। इसके कई एक वर्ष बाद ग्यालिली भी अपनी क्षुद्राकृति की दूरबीन द्वारा शनि के चक्र को न देख सकने से विस्मयापन्न हुआ था। किन्तु बाद के ३० वर्षों के बीच ज्योतिर्विदगण विशेष यत्न एवं अध्यवसाय द्वारा शनिग्रह को देखकर चक्रविषयक सकल बातें स्थिर कर सके थे। हम क्रम से वे सब लिखेंगे।

मध्यमाकार की दुरबीन से देखने से भी चक्र के तीन विभाग लक्षित होते हैं। ग्रहपिण्ड से सर्वापेक्षा दूर पर जो चक्र है; उसका वर्ण कुछ मलीन बोध होता है, मध्य चक्र सर्वापेक्षा उज्ज्वल है एवं ग्रह का निकटस्थ चक्र सर्वापेक्षा मलीन और छायायुक्त दिखाई देता है। सर जान हारसेल ने इस कृष्ण वर्ण के चक्र के बीच में से शनिग्रह के कुछ चन्द्र देख कर स्थिर किया था कि सम्भवतः यह चक्र किसी स्वच्छ वस्तु का बना हुआ है।

इसके कुछ काल बाद एमेरिकन ज्योतिर्विद बंड ने अपनी वृहत दूरवीक्षण यन्त्र द्वारा शनिग्रह के निकटस्थ कृष्ण वर्ण के चक्र को देखा था। उसके बाद डूज नामक अंगरेज़ ज्योतिर्विद ने भी ६॥ इञ्च व्यास युक्त दूरबीन द्वारा इस अर्द्ध स्वच्छ चक्र को देखा था। इस चक्र के बीच में से भी शनिग्रह की पार्श्वरेखा (outline) साफ दिखाई पड़ती है।

शनिग्रह के यह काल वर्ण के चक्र एक २ कर के बढ़ते जाते हैं। जिस समय बंड एवं डूज नामक दो ज्योतिर्विदों ने वह देखा था तब वह खूब उत्कृष्ट दूरबीन द्वारा देखे बिना नहीं दिखाई पड़ता था। उत्कृष्ट यन्त्र से भी वह बहुत कष्ट करके दिखाई पड़ता था। इस समय वह ४ इञ्च व्यासयुक्त दूरबीन से भी दिखाई पड़ सकता है।

सर्वापेक्षा बाहर के चक्र का व्यास १७३,५०० मील, और उसका अभ्यन्तरस्थ व्यास १६३,५०० मील है सुतरां इसके चक्र का विस्तार १०,००० मील है। मध्यवर्ती चक्र का वहिर्व्यास १५०,००० मील, अभ्यन्तर व्यास ११३,१५० मील और विस्तार १८३०० मील है। इन दो चक्रों के मध्यस्थल में जो कृष्ण वर्ण की रेखा दिखाई पड़ती है वह दोनों चक्र का व्यवधान मात्र है, उसका विस्तार १७५० मील है। छायायुक्त चक्र मध्यम चक्र के साथ मिला हुआ है। इससे शनिग्रह पिण्ड का व्यवधान १०,१५० मील है सुतरां शेषोक्त चक्र का विस्तार ६००० मील है।

इस प्रकार विशालाकृति के तीन चक्र किस प्रकार समान होकर रहते हैं? पूर्व ही कहा है कि शनिग्रह द्रुत गति से अपना अक्षावर्त समाप्त करता है एवं प्रायः साढ़े २६ वर्ष में अपनी दूरवर्ती कक्षा में सूर्य को वेष्टन करता है। इन दो प्रकार की गति होते हुए भी चक्र विचलित अथवा स्थान भ्रष्ट नहीं होता है, यह अतीव विस्मयकर व्यापार है।

ग्यालिली ने भी सोचा था कि शनिग्रह के दो पार्श्व दो तारे हैं किन्तु वे तारे नहीं हैं। जिस समय इस ग्रह का विषुवण अर्थात् दिवारात्रि समान होती हैं उसी समय उसका चक्र पृथ्वी से रेखा की तरह दिखाई पड़ता है।

क्रमशः शनि अपनी कक्षा में घूमकर सूर्य से जितनी दूर जाता है उतना ही उसका चक्र

स्पष्ट दिखाई पड़ता है। १८५५ अब्द में (सात वर्ष बाद) चक्र सर्वापेक्षा विस्तृत देखा गया था।

इस समय के बाद से चक्र फिरता रहा है, फिर सात वर्ष बाद (१८६२ अब्द में) अदृश्य हो गया। १८६६ अब्द में चक्र दूसरी ओर से विस्तृत देख पड़ा यह १८५५ अब्द की विपरीत अवस्था थी।

पार्थिव हिसाब के २६ वर्ष, ५ मास, १७ दिन बाद शनिग्रह सूर्य को एक बार प्रदक्षिण करता है इसलिए १८१८ अब्द में इस ग्रह का चक्र १८४६ अब्द की तरह* ही देखा गया था।

सूर्य के चारो तरफ घूमने के समय दो बार सूर्य के साथ इसका समसूत्रपात होता है। इस कारण १४ बरस, ८ महीने, २३ दिन, १२ घंटे के अन्तर में यह चक्र हमारी पृथ्वी से रेखा की तरह दिखाई पड़ता है।

१९०१ अब्द में सेप्टेम्बर मास की २६ तारीख को यह चक्र अदृश्य (अर्थात् रेखामात्र) हो गया था। इस तारीख के बाद से चक्र क्रमशः बढ़ने लगा। १९१५ अब्द की ८वीं फरवरी को यह चक्र सर्वापेक्षा विस्तृत दिखाई पड़ेगा। १८५५ साल की तरह वह ग्रहपिण्ड की बाईं ओर दिखाई देगा। १९१५ अब्द की दिसम्बर मास में शनिग्रह सूर्य की ठीक विपरीत अवस्था में (७वें स्थान) में आवेगा। अतएव उस समय रात्रि में शनिग्रह के चक्र को देखने में बड़ी सुविधा होगी।

चक्र समय समय पर रेखा की तरह का दिखाई पड़ता है उसका कारण यह है कि चक्र दल में बहुत छोटा होता है। सब चक्र का एकत्र व्यास १७२,५०० मील होते हुए भी वह दल में १०० मील से अधिक नहीं होता है।

यह पतले अथच बहुत बृहदाकार चक्र किस शक्तिबल से शनिग्रह को वेष्ठित किये रहते हैं? अधिकन्तु वह स्थानच्युत नहीं होते हैं, चूर्ण विचूर्ण होकर ग्रहपिण्ड के ऊपर नहीं पड़ते हैं, यह क्या अतीव विस्मयकर व्यापार नहीं है?

लापल्यास नामी फरासीसी वैज्ञानिक ने प्रथमतः इस विषय का अनुसन्धान किया था। वह अङ्कशास्त्र द्वारा जान सका था, कि इस प्रकार का पतला चक्र किसी प्रकार नहीं ठहर सकता है इसलिए उसने सिद्धान्त कर लिया था कि अनेक पृथक चक्र समकेन्द्रस्थ होकर (Concentric) पृथक २ भाव से शनिग्रह को वेष्ठन कर सकते हैं। लापल्यास ने यह भी कहा था कि इस चक्र का १० घंटे से कुछ अधिक समय में एक आवर्त होना आवश्यक है नहीं तो मूलग्रह के प्रचण्ड आकर्षण से वह चूर चूर हो जाय। लापल्यास ने अङ्कशास्त्र के द्वारा इन दो आवश्यक विषयों के विषय में सोचा था। परवर्ती ज्योतिर्विदगण ने यह स्थिर किया कि यह दोनों अवस्थाएँ शनिग्रह के चक्र में विद्यमान थीं। अर्थात् यह चक्र १० घंटा ३२ मिनट में एक बार घूमता है एवं आजकल के बृहदाकार दूरबीन यन्त्र द्वारा असंदिग्ध रूप से यह भी प्रतिपन्न हो गया है कि एक केन्द्र को अवलम्बन कर बहुत से चक्र हैं।

किन्तु इनके सिवा और भी बातें हैं। लापल्यास ने जो स्थिर किया था उसमें भी अनेक विपत्ति घटित हो सकती हैं। इस प्रकार के कुछ चक्रों के मध्यस्थ प्रकाण्ड ग्रह के आकर्षण में रहकर घूमते रहने से थोड़े ही समय में चक्रों की गति विपर्यय हो सकती है एवं शीघ्र ही चक्रों के साथ मूलग्रह के साथ एक भयङ्कर संघर्ष होजाने की भी संभावना है। इस प्रकार के संघर्ष होने से चक्र एक बार ही टूट जायगा

* १८४६ अब्द की २२वीं नवम्बर को शनिग्रह का चक्र रेखा की तरह दिखाई दिया था।

साथ ही साथ वह मूलग्रह का भी यथेष्ट अनिष्ट कर देगा।

लापल्यास ने यहीं तक सोचा था। इसके बाद लगभग अर्द्ध शताब्दी तक उसकी इस बात पर किसी ने हड़ताल नहीं फेरी लापलास के ऊपर टिप्पणी करने की किसी को साहस नहीं हुआ और इसीलिए यह बात कुछ दिनों उसी तरह रह गई।

१८५० अब्द के नवम्बर मास में बंड नामक ज्योतिर्विद ने एमेरिका के हारवर्ड मान मन्दिर से पहिले पहिल देखा था कि अभ्यन्तरस्थ बैंगन के रंग के चक्र में कुछ आलोक दिखाई पड़ता है। दूसरी रात को यह आलोक और भी साफ दिखाई दिया इसलिए उसने सोचा कि वह दूसरा छायामय अर्द्धस्वच्छ चक्र है। इसी साल २५ नवम्बर को इङ्गलैंड से डाराज नामक ज्योतिर्विद ने यह चक्र देखा था। उसके बाद पृथिवीस्थ अपरापर ज्योतिर्विदगण ने इसे देखा था। छायामय चक्र पहिले नहीं था, यह एक नूतन व्यापार है, इस प्रकार की धारणा अधिकांश वैज्ञानिकों की हो गई थी।

इसके बाद पियर्स और मेक्सवेल नामक पण्डितों ने स्थिर किया था कि यह चक्र किसी कठिन व तरल पदार्थ से गठित है। यह भी स्थिर हुआ था कि यह चक्र क्रमशः वर्द्धित होता था।

सर्व प्रथम हाईचेनस (Huyghens) नामक ज्योतिर्विद ने नाप कर स्थिर किया था कि चक्र का विस्तार २३६,६७१ मील है। इसके बाद हार्सेल ने नाप कर देखा कि यह २६२६७ मील है। आजकल यह नापे से इतना २८३०० मील मालूम हुआ है। यह सब परिणाम स्वीकार करने से मालूम होता है कि प्रति वत्सर शनि के इस चक्र का आयतन २९ मील बढ़ता है।

शनि की यह चक्र समष्टि किस पदार्थ द्वारा निर्मित है? पहिले कहा है कि लापलास ने इसको कठिन पदार्थ का बना हुआ माना था एवं अनेक पतले २ चक्र एकत्र हैं ऐसा सिद्धान्त किया था। अङ्कशास्त्र के मत से यह चक्र कुछ काल तक अवस्थित रह सकते हैं किन्तु मूलग्रह की गति, आकर्षण, चक्र समष्टि की गति एवं परस्पर आकर्षण इत्यादि लेकर अवस्था ऐसी जटिल और विपज्जनक होगी कि अल्पकाल ही में इस चक्र समष्टि अथवा मूलग्रह के परस्पर संघर्ष में किसी समय एक प्रलयकाण्ड उपस्थित हो जायगा।

सब प्राकृतिक व्यापारों की पर्य्यालोचना करने से बोध होता है कि इस विश्व में इस प्रकार की दुर्घटना अति विरल है। महाकाल-प्रलय प्रभृति का शास्त्र में उल्लेख होते हुए भी वे कभी बहुत दिनों बाद होती हैं। किन्तु जिसमें प्रति मुहूर्त प्रलय की शङ्का करनी पड़े ऐसी सब अवस्थाएँ प्राकृतिक नियम के विरुद्ध हैं। यह सब विचार कर वैज्ञानिक पंडितों ने स्थिर किया है कि शनिग्रह की चक्र समष्टि किसी कठिन पदार्थ की निर्मित है।

बंड नामक ज्योतिर्विद ने अनुमान किया था कि अभ्यन्तरस्थ छायामय चक्र अथवा और सब चक्र किसी तरल पदार्थ के बने हैं। बंड ने सोचा था हम जिसे पृथ्वी से चक्राकार देखते हैं हो न हो, वह बहु विस्तृत जल समुद्र चक्राकार में ग्रह को घेरे हो। केवल यही नहीं; यह जलराशि क्रमशः ग्रहपिण्ड के निकटवर्ती होती जाती है। पीछे वैज्ञानिक पण्डित यह मत भी छोड़ने को वाध्य हुए थे।

चक्र कठिन पदार्थ भी नहीं है, तरल भी नहीं है, तब वह है क्या?—यह प्रश्न वैज्ञानिकों के हृदय में बहुत दिनों तक उदित था।

और एक अवस्था की विवेचना अभी बाकी है—अर्थात् असंख्य छोटे २ खंड एकत्र होकर यह चक्रसमष्टि निर्मित हुई है। रात्रि-

काल में आकाश मण्डल में जो सकल उल्का-पिण्ड दृष्टिगोचर होते हैं, इसी प्रकार के असंख्य उल्कापिण्ड के एकत्र होने से इस चक्र की सृष्टि हुई है। अन्त में वैज्ञानिक पण्डितों ने यही सिद्धान्त निश्चित किया कि यह छोटे २ टुकड़े कठिन अथवा तरलाकार भी हो सकते हैं और वह सब खंड किसी प्रकार वाष्प द्वारा भी आच्छन्न हो सकते हैं। प्रत्येक टुकड़ा स्वाधीन भाव से अपनी गति में ग्रहपिण्ड को वेष्टन करता है। इस मत में कोई भी आपत्ति नहीं।

१८८६ अब्द में केम्ब्रिज विश्वविद्यालय ने इस विषय की मीमांसा करने के उद्देश्य से एक पुरस्कार प्रदत्त किया। क्लार्क मेक्सवेल नाम के वैज्ञानिक का लिखित प्रबन्ध ही सर्वश्रेष्ठ माना गया और उसे ही पुरस्कार मिला। उसने अङ्कशास्त्र द्वारा यह सुन्दर रूप से प्रतिपादित किया था कि पृथक् २ असंख्य खंडों के शनिग्रह के आकर्षण में अवस्थित होने से वे सब मिलकर वह चक्रसमष्टि गठित कर सकते हैं। वह सब टुकड़े जिस जगह पर खूब घने होते हैं उसी जगह पर सूर्य का आलोक प्रतिभात होकर अधिकतर समुज्ज्वल दिखाई देता है। जिस जगह यह टुकड़े नहीं हैं वह कृष्ण वर्ण का दिखाई देता है। और जिस स्थान में वह बहुत कम है वह घोर वर्ण का दिखाई देता है।

शनिग्रह के दोनों केन्द्र की अपेक्षा मध्य-प्रदेश में माध्याकर्षण शक्ति अधिक है इसीलिए वह टुकड़े ग्रह के मध्यस्थल ही चक्राकार हो अवस्थित हैं।

पूर्वकाल में ज्योतिर्विद पंडितगण ने शनिग्रह के आठ चन्द्र देखे थे। इन आठों चन्द्रों के नाम, शनिग्रह से उनका दूरत्व एवं उनके परिभ्रमणकाल की तालिका नीचे देते हैं।

चन्द्र का नाम	दूरत्व	परिभ्रमण			
	मील	दिन	घं०	मि०	से०
मिमास	११७,०००	०	२२	३७	५
एनसिलाडस	१५०,०००	१	८	५३	७
टेथिस	१८६,०००	१	२१	१८	२६
डायोन	२३८,०००	२	१७	४१	१०
ह्रिया	३३२,०००	४	१२	२५	१२
टिथन	७७१,०००	१५	२२	४१	२७
हाईपारियन	६३४,०००	२१	६	३८	२४
ईयापेटस	२२२५,०००	७९	७	५६	२३

१९०४ अब्द में प्रोफेसर ई० सी० पिकारिंग ने शनिग्रह के नवम चन्द्र का आविष्कार किया है। इस चन्द्र का नाम पड़ा है "फिबि" वह लगभग १॥ डेढ़ बरस में शनि के चारो तरफ एक बार घूमता है एवं उसका शनिग्रह से ८०००,००० अस्सी लाख मील दूरत्व है।

हमारे पार्थिव हिसाब के अनुकूल सूर्य्य शनिग्रह के उत्तर में १५ वर्ष रहता है सुतरां शनिग्रह के केन्द्र स्थान की दिवारात्रि का परिणाम भी इसी प्रकार है। जिस समय शनिग्रह के उत्तर केन्द्र में १५ वर्ष का दिन होता है उसी समय उसके दक्षिण केन्द्र में १५ वर्ष की रात होती है परवर्ती १५ वर्ष की उत्तर केन्द्र में रात्रि एवं दक्षिण केन्द्र में १५ वर्ष का दिन हो जाता है।

इसमें सन्देह नहीं कि शनिग्रह का वायुमण्डल बहुत घना है। उसके चक्र के निकट गुहाङ्क में जो मेखला की तरह कुछ चिह्न दिखाई पड़ते हैं वह निश्चय ही मेघमाला है। इन सब मेघों के ऊपर सूर्य किरण उद्भूत होने ही से यह सब समुज्ज्वल मेखला की तरह दिखाई पड़ते हैं।

हमने जो शनिग्रह का विवरण दिया पृथ्वी के प्रधान २ ज्योतिर्विद् उसे प्रत्यक्ष करते हैं।

अब हम इस तत्व की फिर आलोचना करेंगे। शनिग्रह में वर्तमानकाल में जो अवस्था है उसमें वहां पर समुद्र का अवस्थान सम्भव नहीं है। इस ग्रह का समस्त जल मेघाकार हो आकाश-मण्डल में भासमान है एवं इस ग्रह की अब भी तरुण अवस्था है। सब वैज्ञानिकों का यही मत है कि अब भी पिण्ड अग्नितत लोहितवर्ण का है। अतएव इस विशाल ग्रह में वृक्ष, लता, तृण, अथवा कोई और प्रकार की जीवोत्पत्ति अभी नहीं हुई है। यह पृथ्वी जब शीतल हो जावेगी एवं चन्द्र की तरह जल और वायु-शून्य होकर जीवनहीन हो जावेगी, उस समय, हो न हो, शनिग्रह जीवों के वासोपयोगी होवेगा।

शनिग्रह के पदार्थ समष्टि का आणविक गुरुत्वप्राय जल के बराबर है। इसलिए कोई कोई वैज्ञानिक अनुमान करते हैं कि पृथ्वी से हम शनिग्रह का जो आकार नाप कर देखते हैं वह निश्चय ही उसकी मेघमाला के समेत है। असल ग्रहपिण्ड के दृश्यमान मेघ समेत आकृति की अपेक्षा बहुत छोटी होने की सम्भावना है। इस कारण से उसका गुरुत्व कुछ कम दिखाई पड़ता है। बोध होता है कि पार्थिव हिसाब के अनुकूल बहुत युगयुगान्त काल अतीत होने पर शनिग्रह के ऊपर के भाग में समुद्र अवस्थान करेगा। उस समय वह भी पृथ्वी की तरह नाना प्रकार के के जीवों की आवास स्थान होगा; वैदिक महर्षिगण ने ब्रह्माण्ड की अवस्था सोच कर विस्मयोत्फुल्ल नयन हो कहा है कि अद्धा वेद ?—अर्थात् कौन कह सकता है ? हम भी इससे अधिक कुछ नहीं कह सकते। विश्व अनन्त है, और मनुष्य के ज्ञान और बुद्धि की सीमा है। इसीलिए हम जितना ही ज्ञान लाभ करते हैं, उतना ही हम ब्रह्माण्ड की कार्य-प्रणाली की अपार महिमा देखते हैं, एवं हम मनुष्य कितने तुच्छ हैं यह सोच कर हताश हो जाते हैं।

युद्धक्षेत्र की सैर। *

बहिनो !

उस दिन की सैर अभी आप भूली न होंगी। उस दिन आपने कोई बड़ी लड़ाई नहीं देखी थी। मैदान में पहुंचते ही बड़ों की खुदाई हम लोग देखकर लौट आई थीं। अनन्तर कुछ युद्ध भी हुआ था किन्तु वास्तव में वह जिसे युद्ध कहना चाहिये वह न था। बहुत सी बहिनों को उस दिन यह शिकायत थी कि उन लोगों ने युद्ध नहीं देखा। उनकी यह शिकायत ठीक थी किन्तु इसका भी कुछ कारण था।

मैं जान बूझकर आप लोगों को ऐसे स्थान पर ले गई थी जहां पर आपको भीषण युद्ध न दिखाई दे। सिंह का शिकार देखनेवालों को जिन्होंने पहिले कभी सिंह का शिकार देखा नहीं है सिंह का शिकार नहीं दिखाया जाता क्योंकि सम्भव है कि नया देखनेवाला सिंह का गर्जना सुनकर, उसका तड़पना देखकर, डर जाय, मचान से नीचे गिरपड़े, बेहोश हो जाय अस्तु इसी कारण से नये शौक़ीनों को पहिले शूकर आदि का शिकार दिखाया जाता है। जब वे एक दो बार देखते देखते अभ्यस्त हो जाते हैं, जब उनका कलेजा पोढ़ा हो जाता है त

* यह लेख विशेषकर "स्त्री दर्पण" के लिए लिखा गया था।

फिर उन्हें शिकारी लोग सिंह का शिकार दिखाने ले जाते हैं।

इसी नीति के अनुसार उस दिन मैंने आपको भीषण युद्ध नहीं दिखाया। आपने यह नहीं देखा कि युद्धक्षेत्र में सेना समुद्र की लहरों की भांति कैसे हिलती डोलती है, आपने यह नहीं देखा कि शत्रुओं के सामने आने पर पूर्णिमा के चन्द्रमा को देखती हुई, मतवाली समुद्र की लहरों की भांति सेना कैसे उतावली हो गुथ जाने को बढ़ती है। रक्त रूपी फेन इधर उधर बड़ते कैसे दिखाई देते हैं। आपने यह भी नहीं देखा था कि जो शरीर कुछ ही देर पहिले हँस बोल रहा था, जिसमें सब कुछ कहने और करने की शक्ति थी, वह खड़े ही खड़े एक शब्द के होने हो कैसे उलट जाता है। संज्ञाहीन मुंह से रक्त टपकते हुए सवार को लिये हुए घोड़ों का पागल की भांति इधर उधर दौड़ना और फिर गोली लगने से वहीं ढेर होकर गिर जाना यह सब आपने नहीं देखा था। साथ ही इनसे कितनी ही अधिक भीषण बातों को आप लोगों ने नहीं देखा था। धीरे धीरे इन सब बातों को मुझे दिखाना है।

अच्छा तो आइये! आज फिर चलने का कष्ट उठाइये। बालबच्चों को घर ही पर रहने दीजिये। समझ लीजिये महिला-समिति के अधिवेशन में चल रही हैं। बड़े लेक्चरारों की भांति मैं यह कहना उचित नहीं समझती कि मैं आपका बहुत सा समय नहीं लूंगी। मैं पहिले से ही सावधान किये देती हूं। समय आपको बहुत देना होगा संभव है कहीं युद्ध-क्षेत्र में खड़े ही खड़ें कई दिन बीत जायँ। इसलिए कहती हूं ज़रा दिल को मजबूत कर लीजिये बुद्धि, विवेक, धीरता और वीरता को साथ लेकर चलिये, देखिये आज की सैर कैसी है?

* * * * *

लीजिये हम लोग पहुंच गए। यह स्थान भी देखा हुआ सा मालूम होता है किन्तु कुछ ठीक तौर से इस समय हम लोग इसे पहचान नहीं पा रहे हैं। देखिये यह एक आदमी इसी तरफ़ आता दिखाई दे रहा है। इससे पता चल जायगा। अरे, यह तो हमीं लोगों के पास आता हुआ मालूम देता है।

आइये तब तक हम लोग इस जगह पर बैठ कर कुछ जलपान करलें। बहुत दूर चल चुके हैं। कुछ आराम ही मिल जायगा, साथ ही पेट में भी कुछ पहुंच जायगा।

अभी हम लोग खा ही रहे थे कि लीजिये वह मनुष्य आ गया. अरे वह तो कोई भूखा सा मालूम पड़ रहा है। यह तो एक दम हम लोगों के खाने पर टूट पड़ा, और भोजन उठा कर भागा चाहता है। किन्तु सूरत से यह भला आदमी मालूम होता है। देखिये, इसका कारण इससे पूछती हूं। "सुनती थी पश्चिमीय मर्द बड़े नियम से चलनेवाले होते हैं। कम से कम दुनियाँ की दृष्टि में वे स्त्रियों का बड़ा मान करते हैं, इसके विपरीत तुम्हारा यह कर्त्तव्य कैसा है? या क्या स्त्रियों पर डाका डालना तुम्हारा काम है?" यह क्या? इस प्रश्न को सुन कर तो वह रोने लगा। अब देखिये यह कुछ कहता है। "मैं बड़ा भूखा हूं, पेट की ज्वाला से शरीर जल रहा है। मैं चोर नहीं, डाकू नहीं, एक भला आदमी हूं। मेरे शरीर में भी आप लोगों के सदृश ही रक्त बह रहा है, किन्तु लाचार होकर मैं असद्व्यवहार करने पर उतारू हुआ था।" मेरे यह कहने पर कि "अच्छा, बैठ कर भोजन कर लो," उसने कहा "नहीं घर पर भूख से हमारी जननी के प्राण निकल रहे हैं पहिले उसे अन्न पहुंचा कर ही मैं अपने उदर में कुछ डाल सकता हूं।"

भोजन मिल जाने पर बहुत धन्यवाद दे वह जाने को तैयार हुआ; और कहने लगा

"आप लोग बैठो रहें, मैं अभी वापस आता हूं और आप लोगों की सेवा करूंगा।" यह अच्छा ही हुआ, यह यहां का रहनेवाला है, इसके साथ घूम कर हम लोग बहुत सी बातों को देख सकेंगी।

लीजिये हम लोग भोजन कर बैठी ही हैं कि वह आ गया। अब इससे पूछना चाहिये कि हम लोग कहां हैं, यह स्थान कौन सा है, और उसकी यह उजाड़ दशा कैसी है। देखिये वह उत्तर में कहता है—"यह बेलजियम की राजधानी ब्रूसल्स है। थोड़े दिनों से इसपर जर्मनों ने कब्ज़ा कर लिया है। अब यह भिख-मङ्गों का शहर हो गया है। निवासियों के पास किसी प्रकार का सामान बाक़ी नहीं है। रोज़गार भी अब सिवा भीख मांगने के और कोई नहीं रहा है। अब हम लोग आगन्तुकों से कुछ मांग कर पेट पालते हैं। दिन रात योंहीं कार चलता है।

कहीं भी अपनी हँसी खुशी का सामान नहीं, थियेटर सब बन्द हैं, होटल सब बन्द हैं। बड़ी खराब दशा हो रही है।

हम लोग मित्रदल की सहायता की बाट बड़ी उत्सुकता से निहार रहे थे किन्तु उनका कहीं पता न था। एक ओर यह दशा थी दूसरी ओर रोज़ ही जर्मनों के पास पहुंचते जाने की खबरें दिल को दहलाये देती थीं। मित्रदल की सहायता कोरी बातों की रह गई, अगणित जर्मन सेना के सामने थोड़े से वीर बेलजियम कुछ न कर सके, और आज हम लोगों की यह दशा है। जर्मन सेना अब पेरिस की ओर बड़े वेग से बढ़ी जा रही है। इतना कह उसने निगाह नीची कर ली, आँखें डबाडब भर आईं और उनमें से मुक्ता के समान आंसू झरने लगे। उसकी दशा देख कलेजा दहल गया। अच्छा अब बहुत स्वस्थ हो लिये, आइये अब कुछ चल कर देखें। देखिये यह हम लोगों का पथ-प्रदर्शक कह रहा है कि कल वृहस्पतिवार को ऐन्टवर्प से विजयी जर्मन सेना दक्षिण की ओर गई है। वानक्लूकों की सेना बाम अङ्ग में है और वह साम्ब्रे की ओर बढ़ी है दाहिनी ओर से वान क्लुक की सेना मार्न की ओर बढ़ रही है और घोड़सवारों (शह सवारों) की सेना है। ये सब ब्रिटिश सेना का चेनल की ओर से नई आई हुई सेनाओं से सम्बन्ध तोड़ देने के लिये बढ़ रही है। इतनी बड़ी बड़ी तोपें जो लीज़ के क़िले को तोड़ फोड़ चुकी हैं, इस समय आगे हैं। हम आपको इसी जर्मन सेना की ओर लिये चल रहे हैं।

वह देखिये फ़रासीसी घोड़सवार भी साम्ब्रे के उस पार पड़े हुए हैं। इनकी छुट्टा लड़ाई या जर्मन उलहान और ड्रैगन सवारों से हुई थी। विजय श्री भी इनके हाथों आती दिखाई देती थी। किन्तु जर्मन सेना के पास प्रति घंटे सहायक सेना पहुंचती जाती थी। आख़िर में विवश हो इन लोगों को नदी के पास की ओर हट जाना पड़ा। अब यहां पर दोनों ओर की सेनाएं एकत्र हो रही हैं, दोनों तरफ खूब तैयारियां हो रही हैं, शीघ्र ही यहीं कहीं पर भीषण युद्ध आरम्भ होगा। यदि आप लोगों को युद्ध देखना है तो यहीं ठहर जाइये, संध्या भी हो रही है, आगे हम लोग जाने भी न पावेंगे। अब रात्रि में यहीं विश्राम करिये, कल रणक्षेत्र का दृश्य देखियेगा।

* * * * *

प्रातःकाल होगया। चलिये आज कहीं न कहीं भीषण युद्ध दिखाई देगा। ये बादल जो इतने ज़ोर शोर से उमड़े हुए हैं बिना बरसे न जायँगे।

लीजिये हम लोग रणक्षेत्र में पहुंच गये। यह देखिये इस ओर मित्रदल की सेना ही बड़ी हुई है।

यह वृटिश सेनानायक कहता है कि फ्रेंच सेना शार्लिरोइ (Chârleroi) में पड़ी हुई थी।

वहीं पर ब्रिटिश सेना भी पहुंच गई। सर जान फ्रेंच के पास ७०००० सैनिक और २८० तोपें थीं। बानक्लुक की जर्मन सेना भी सामने मैदान में थी। सेना के सफ़रमैना (Advanced Guards, Patrols) में भी कहीं कहीं मुठभेड़ होगई। दिन भर पैदल सेना और गोलन्दाज़ों ने योंहीं कुछ काम किया। वे तोपों के लिए स्थान बना रहे थे। यह ख़बर मिल चुकी थी। एक बड़ी भारी जर्मन सेना आरही है। यह तय हो चुका था कि ब्रिटिश और जर्मन सेना धावा नहीं वरन् रक्षा कर लड़ेंगी। संध्या समय दक्षिण की ओर से दूर से गड़रररडम की ध्वनि सुनाई देने लगी। कुछ लोगों का यह ख्याल था कि नामूर के क़िले पर जर्मन की तोप गरज रहीं हैं, किन्तु वास्तव में ध्वनि साम्ब्रे (Sambre) के युद्ध से आरही थी। वान बूलो की सेना फ्रेंच सेना को ध्वंस कर रही थी। शार्लिरोई पर भी भीषण युद्ध हुआ। दिन में ५ बार विजय का पासा कभी फ्रेंचों का कभी जर्मनों का पड़ा। कभी उस पर फ्रेंचों का और कभी जर्मनों का क़ब्ज़ा हो जाता था। आख़ीर में क्रप की तोपों ने आग उगलना शुरू किया. शहसवार शहसवारों से जुट गये, पैदल पैदल से भिड़े, तलवारें चमकने लगीं, दो बार फ्रेंच सैनिकों ने जर्मनों को पीछे हटा दिया, मालूम हुआ कि विजय फ्रेंच सेना की होगी। किन्तु परिणाम बिलकुल विपरीत हुआ। जर्मन पीछे हटते ही और तेज़ी से आगे बढ़ते थे और संध्या होते होते उन लोगों ने शार्लिरोई पर क़ब्ज़ा कर लिया। यह एक नाममात्र का युद्ध था, वास्तव में फ्रेंच सेना के दाहिने भाग पर जर्मनों ने बड़ी भारी विजय प्राप्त की। वे सामने की ओर घुस गये। इसका फल यह हुआ कि मित्रदल की सेना नामूर से अलग हो गई। और दूसरे ही दिन नामूर के क़िले ने आत्म समर्पण कर दिया। फ्रेंच सेनानायक ने हम लोगों का इस युद्ध की ख़बर नहीं दी। हमारे अफ़सरों को यह विदित नहीं था कि जर्मन सेना ने विजय लाभ की है और वह विजय से मस्त हमारी ओर बढ़ी आ रही है। अभी वायुयानों और स्काउटों ने ख़बर दी है कि जर्मन सेना कम से कम संख्या में हमारी सेना से दुगनी है। अब कुछ ही समय बाद सम्भव है भीषण युद्ध होगा।

* * * * *

अफ़सर से बात कह कर हम लोग आकर सेना से दूर एक पेड़ के नीचे बैठ गये। सेना में बड़ी चहल पहल दिखाई देती थी। समय तीन का रहा होगा। एक दम गररररडम, गररररडम, की आवाज़ से पृथ्वी कांपने लगी। मालूम हुआ कि जर्मन सेना ब्रिटिश सेना पर बेतहाशा टूट पड़ी। घोड़सवार स्काउटों ने ख़बर दी कि जर्मन सेना आगे की ओर मैदान में दाबती चली आ रही है। इसी समय जर्मन गोलन्दाजों ने अग्निवर्षा शुरू की। देखिये वह पैदल सेना गोली चलाती हुई कितनी भीषणता से बढ़ती आ रही है। मालुम होता है वे समझते हैं कि जीवन कोई चीज़ ही नहीं और उस की ममता उन्हें है ही नहीं। देखिये देखिये ब्रिटिश सेना ने भी यह जवाब देना शुरू किया। खड्डों से ब्रिटिश सैनिक गोली चला रहे हैं। उधर देखिये उस टीले से ब्रिटिश तोपें कैसी विकरालता से आग उगल रही हैं। प्रायः २५ मील का यह फ्रन्ट है, सभी जगह से आग बरसाई जा रही है। तोपों की ध्वनि के कारण कान के परदे फटे जा रहे हैं। अरे वह देखिये उस टीले पर क्या हुआ। कुछ ही देर पहिले वहां पर कितने ब्रिटिश गोलन्दाज़ थे किन्तु अब वहां पर लोथही लोथ दिखाई दे रही हैं। किन्तु यह क्या! गोलन्दाज़ी अब भी कैसी जारी है! अरे! अरे! वह देखिये वह लोगों में एक सैनिक है। उसके पैर कट गये हैं। किन्तु तब भी वह अपना कर्तव्य पालन करता ही
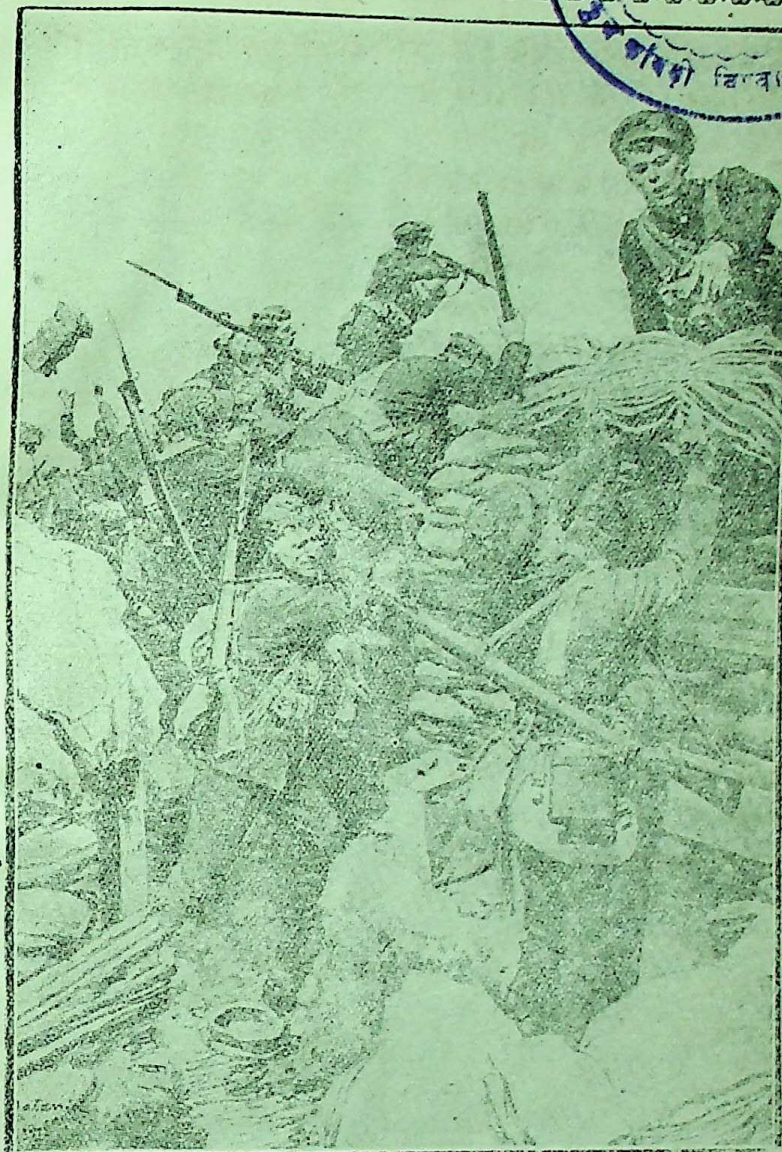
मि० मैटेनिया ने ब्रिटिश युद्धक्षेत्र से लौटने के बाद ६० नं० की पहाड़ी पर या उसके आसपास जो युद्ध हुआ उसका पहिले पहिल ऊपर दिया हुआ चित्र लिया। सिपाहियों को आगे बढ़ने का हुक्म दिया गया है और वे खाई में से निकलकर आक्रमण कर रहे हैं। कुछ सिपाही मट्टी के दर्जनों बोरों में मट्टी ले जा रहे हैं कि जर्मनों से छीनी हुई खाई को बनावें।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग।

जाता है। वह देखिये लोथों पर बैठा हुआ वह तोपों को कैसे छोड़ रहा है। लीजिये वह जर्मन गोला उसी पर आकर गिरा, और उसका भी अन्त हो गया।

वह देखिये यह गोली चलाते हुए सैनिकों पर यह गिद्ध कैसे घुमड़ा रहे हैं। मालूम होता है इन्हें गोलियों का भय ही नहीं और ये ज़िन्दा ही सैनिकों को उठा ले जावगे। इन पर सैनिक रह रह कर गोलियां भी चला देते हैं। किन्तु वे भागते भी नहीं। अरे वे तो और भी नीचे आ गये, अब तो ये बिलकुल सैनिकों के सिर पर ही उड़ रहे हैं। ये तो कुछ गिराते भी नज़र आते हैं। क्या कबूतरों की भांति गिद्ध भी यहां पर सिखलाये हुए होते हैं। नहीं नहीं यह नहीं हो सकता आगे चल कर इसका मर्म किसी से पूंछना चाहिये। आप लोग यहीं ठहरी रहें मैं उस अफ़सर से पूंछ कर अभी आती हूं।

सुनिये वह कहता है कि ये गिद्ध नहीं ये जर्मन वायुयान हैं। ये ऊपर से बम के गोले गिराते हैं किन्तु इन गोलों में धड़ाका नहीं होता, न इनसे किसी की जान ली जाती है। ये अजीब गोले हैं। गिरते ही इनसे काला धुआं चारों ओर फैल जाता है। फल यह होता है कि धुआं फैलने से अन्धकार हो जाता है। उस समय गोलों के चलने से यह पता चल जाता है कि गोलन्दाज़ किस स्थान पर है। बम फिर उन पर ऊपर से बम गिराये जाने लगते हैं। ऊपर से वे अपने गोलन्दाज़ों को इशारा कर यह भी बतलाते हैं कि वे गोले किस ओर छोड़ें।

वह देखिये जर्मन पैदल सेना किस तैश से बढ़ आई है। लीजिए ब्रिटिश सैनिक भी वहां उन पर टूट पड़े। कैसा घमासान युद्ध हो रहा है। वह देखिये जर्मन सेना पीछे हट रही है। ब्रिटिश सैनिक, आहा, जान को हथेली पर रख कर कैसे टूट पड़े हैं। वह देखिये एक सैनिक गिर पड़ा। उसका ब्रिटिश साथी उसे पीठ पर लादे ले जा रहा है। हैं यह तो पीठ पर सवार ही सवार गोली दाग़ता जाता है। वाह रे वीर, आख़िर हो तो हमारे स्वदेशी भाई ही।

देखिये, देखिये वह जर्मन सेना उस बड़ु पर टूट पड़ी है। वह क्या वह तो एक दम नष्ट हो गई। जर्मनों ने समझा था कि उनकी गोलन्दाज़ी के कारण बड़ु की तोपें नष्ट हो गई हैं, किन्तु बात वैसी नहीं थी। गोलन्दाज़ यौहीं चुप चाप रह गये थे, अवसर आते ही उन्होंने बाढ़ दागी और जर्मन सेना वहीं पर उलट गई। किन्तु देखिये, इससे जर्मन हताश नहीं हुए हैं। पीछे से सैनिक फिर आगे बढ़ते चले आते हैं। लीजिये अब की बार उन्होंने बड़ु पर कब्ज़ा जमा लिया।

जर्मन सेना चारों ओर भर रही है। सम्हल कर देखिये लड़ना यह जानती ही नहीं। बलती आग में कूदना ही उन्होंने लड़ना समझ लिया है। इस समय जर्मन सेना प्रायः १५०००० सैनिक हैं, इसके विपरीत ब्रिटिश सेना में हद से हद ८०००० हैं। देखिये वह वान क्लूक की सेना बढ़ती आरही है। पूर्व की ओर से वह देखिये वान पूलो के सैनिक भी आ पहुंचे। ब्रिटिश सैनिक भी जानतोड़ कर लड़ने लगे। वह देखिये वह घोड़ा कैसा भागा आ रहा है। जिधर जाता है उसे गोली की दायँ, दायँ, सुनाई देती हैं। किसी ओर निकल भागने का उसे मौक़ा ही नहीं मिलता अरे उस पर तो एक सवार भी है। हाय, हाय, उसके मुंह से कैसा रक्त बह रहा है। लीजिये उस सैनिक को कुचलता हुआ वह घोड़ा भागा जाता है। अरे वह सैनिक प्यासा है। देखिये वह पानी के लिए कैसा चीत्कार मचा रहा है। अरे यह और सैनिकों का ढेर सा लगा आ रहा है। अंधेरा भी हो रहो है किन्तु लड़ाई वैसे ही जारी

है। मालुम ही नहीं होता कि इसका कभी अन्त होगा।

हैं, यह क्या? वह ब्रिटिश सेना दक्षिण भाग की ओर कैसे दबती जा रही है। मालूम होता है अब यह पीछे खिसक कर विश्राम करेगी। अब तो अंधेरा भी हो गया और लड़ाई भी हलकी होती जाती है। देखिये देखिये वह जर्मन सेना और आगे बढ़ आई। ब्रिटिश आहत सैनिकों को उठाकर वह अस्पताल में भेज रही है। ब्रिटिश तोपों को भो उसने हस्तगत कर लिया है और मालुम होता है अब वह भी पड़ाव डालेगी। चलिये हम सब भी बहुत देर से आई हुई हैं। घर चलें और बाल बच्चों को इस भीषण युद्ध का हाल सुनावें।

आपकी
उमा नेहरू।

आदर्श-पुरुष।

[लेखक—श्रीयुत प्रेमदास वैष्णव।]

उन प्राचीन महा-पुरुषों को
बार बार अभिवादन कर।
सब प्रकार से हैं हम देते
धन्यवाद! शतशः सादर॥
उन आदर्श दिव्य-पुरुषों के
सुन सुनकर अनुकरण सभी।
पाते हैं शिक्षा उत्तम जिसका
न अन्य को ज्ञान कभी॥ १॥

सत्वर अन्य-प्राण-रक्षा के
हेतु हृदय प्रमुदित होकर।
शिवि राजा ने निज शरीर का
मांस समस्त दिया प्रियवर॥
निज तनु के सम्पूर्ण अस्थि
देवों के हाय! मांगने पर।
दे डाले नृपवर दधीच ने
पर उपकार बृहत लखकर॥ २॥

वामन ने बलि को वंचन कर
दृढ़ बंधन में बाँध दिया।
तौ भी वह प्रतिकूल न होकर
निज तन तक को दान दिया॥
रखने को निज सत्य डोमघर
हरिश्चन्द्र नृप जाय बिके।
स्वयं बेंचकर सुत रानी को
हैं प्रख्यात नाम उनके॥ ३॥

सौख्य हेतु सम्पूर्ण-प्रजा के
कैसे कैसे कार्य महान।
पृथु नृप ने थे किये आज भी
कविजन करते हैं गुणगान॥
राम समान पुत्र को भी वन
दिया शीघ्र होकर दृढ़-हीय।
स्वयं प्राण भी तजा भूप
दशरथ ने पर पाला प्रण-स्वीय॥ ४॥

तज राज्याभिषेक पितु आज्ञा
से होकर प्रमुदित मन में।
चले गये श्रीराम अहो!
अतिशय दुर्गम निर्जन वन में॥
राज मिला था बिन प्रयास पर
उसको तत्क्षण छोड़ दिया।
उत्तम-भ्रातृ-स्नेह भरत ने
भू-मंडल में प्रकट किया॥ ५॥

अति सुकुमारी जनकपुत्रिका
पांव पयादे ही प्रियवर।
पतिसेवा हित चली गई
वन दुस्तर में हर्षित होकर॥

जिसने निर्वासित निज सुत को
किया उसीके प्रिय-सुत को।
माना कौशल्या निज सुत से
बढ़कर धन्यवाद उसको ॥ ६ ॥

लक्ष्मण भी तज आत्म-सौख्य
निज बंधु-भक्ति अनुपम प्यारे !
किये सज्जनों में प्रस्तुत
गाते हैं यश बुध जन सारे ॥

हनूमान ने स्वामिकार्य के
हेतु महासागर तर कर।
रिपुपुर में निर्भीक हो किया
कार्य समस्त उचित दृढ़तर ॥ ७ ॥

पितु के कार्य सिद्ध करने को
जा निषाद के निकट तुरंत।
लिया भीष्म ने ब्रह्मचर्य-व्रत
अति कठोर सब भांति दुरंत ॥

आन पांडवों ने जननी-
आज्ञा-उच्छेदन दुखदाई।
ब्याह लिया हुत एक द्रौपदी
को सहर्ष पांचो भाई ॥ ८ ॥

मोरध्वज प्रमुदित हो आरे
से निज तनु को चिरा दिया।
पर हा हा ! उन किसी भाँति
का वैमनस्य द्विज से न किया ॥

जगत्पिता होकर के भी
श्रीकृष्णचन्द्र ने अति सत्वर।
धोया विप्र सुदामा के पद
निजकर-कमलों से सादर ॥ ९ ॥

इन सब सुकृतों के बदले पाये
वे हर्ष, सौख्य, कल्याण।
अक्षय कीर्त्ति छई है उनकी
अभिनवसी सम्पूर्ण-जहान ॥

उत्तम शुचि वृक्षों के उत्तम
फल होते हैं है यह रीति।
इससे हे पाठको ! सदा करिये
स्वधर्म ही पर दृढ़ प्रीति ॥१०॥

---

(४) अभिमन्यु और सुभद्रा (कविता)–ठाकुर किशोर सिंह।

(५) स्त्रियां और राष्ट्र–पं० माधवराव सप्रे बी० ए०

लेख में क्या है सो शीर्षक से ही प्रगट है। लेखक भी हिन्दीसंसार के एक जगमगाते नक्षत्र हैं। इसीसे लेख का अनुमान पाठक कर सकते हैं।

(६) शिशु-पालन–श्रीमती किशनमोहिनी नेहरू।

इस लेख को पढ़ कर माताएं अच्छी शिक्षा ग्रहण करेंगी।

(७) हिन्दू धर्म में स्त्रियों का स्थान–श्रीमती कुन्ती देवी।

इस लेख में यह दिखलाया गया है कि स्त्रियों को आदर और स्वतंत्रता हिन्दू धर्म में सब से अधिक प्राप्त है।

(८) धनार्जन और नारीजन–श्रीयुत कपिलदेव मालवीय।

के० डी० मालवीय के नाम से मर्यादा के पाठक भली प्रकार परिचित हैं। चुटीलेपन और कडुवाहट में यह लेख पहिलेवालों से कम नहीं।

(९) स्त्रियों के अधिकार– श्रीमती कमला देवी श्रीवास्तव।

(१०) भारत के उद्धार में स्त्रियों का भाग–श्रीमती एनीबीसेन्ट।

(११) सुतवती सीता (कविता)–पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय।

(१२) माता–श्रीमती रामेश्वरी देवी नेहरू।

लेख बहुत सुन्दर है। माताओं के सामने वर्तमान समय में कौनसी समस्याएं उपस्थित हैं उनका इसमें दिग्दर्शन कराया गया है।

(१३) भावी महिलाएँ–श्रीयुत मंज़र अली सोख़्ता बी० ए० एल० एल० बी०।

लेख बड़ा गवेषणापूर्ण है, भविष्य की स्त्रियों का चित्र देख स्त्री को दासी समझने वालों को तनिक विचार करना पड़ेगा।

(१४) भारत माता और ब्रह्मचारी (कविता)–

(१५) सामाजिक संगठन में स्त्रियों का स्थान–सम्पादिका।

लेख मार्के का है, एक एक बात तौल कर कही गई है। पढ़ने से पाठक पाठिकाओं को सामाजिक संगठन की कितनी ही मार्के की बातें मालूम होंगी।

रंगीन चित्र।

भारतमाता और ब्रह्मचारी।
यशोदा का गोदोहन।
तुर्की महिला।
स्वर्गीय सुख।
तपोवन में सीता और लव, कुश।
अभिमन्यु और सुभद्रा।

ग्राहकों की सेवा में जुलाई के प्रथम सप्ताह में संख्या भेजी जायगी। संख्या दोबारा न भेजी जायगी। जो ग्राहक नहीं हैं उन्हें यह संख्या ॥=) में दी जायगी। विशेष अंक बहुत कम संख्या में छपा है, मांग बहुत है जिन्हें लेना स्वीकार हो उन्हें ॥=) भेज पहिले से ग्राहकों में नाम दर्ज करा लेना चाहिये।

मैनेजर
मर्यादा।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग, में बद्रीप्रसाद पाण्डेय के प्रबन्ध से छपकर प्रकाशित हुई।